प्रकाशकीय

सुधानिधि के पाठको को चिरप्रतीक्षित उदर रोग निदान चिकित्साक का यह द्वितीय भाग प्रस्तुत करते हुये मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। इस विशेषाक के प्रकाशन को साथ ही सुधानिधि अपने जीवन के २३ बसन्त पूर्ण करके २४वे वर्ष मे प्रवेश कर रहा है। सुधानिधि का पिछले २३ वर्षो का एक गौरवशाली इतिहास है जिसे स्मरण करते हुये हमारा हृदय प्रफुल्लता से भर उठता है। हिन्दी भाषा मे प्रकाशित होने वाली आयुर्वेद की मासिक पत्रिकाओ मे सुधानिधि की सर्वाधिक प्रसार सख्या विगत् २३ वर्षो मे बने रहना अपने आप मे एक गौरवशाली उपलब्धि ही मानी जानी चाहिए। पिछले १० वर्षों से तो स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिकाओ की भारतवर्ष मे बाड ही आ गयी है जिनमे बडे-बडे शहरो से प्रकाशित होने वाली कई त्रैमासिक पत्रिकाये भी शामिल है। इन पत्रिकाओ की बाड मे भी एक छोटे से कस्बे से प्रकाशित सुधानिधि का निरन्तर प्रगति की राह पर अग्रसर बने रहने के कुछ विशेष कारण है। वर्तमान मे जो स्वास्थ्य-पत्रिकाये प्रकाशित हो रही है वह २ प्रकार की है, एक प्रकार की पत्रिकाये वह है जो आयुर्वेद के गूढ ज्ञान को प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखती हैं तथा दूसरी पत्रिकाये वह है जिनका सामान्य व्यक्तियो के लिये स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य जानकारिया प्रस्तुत करना ही अपना ध्येय है। इन दोनो प्रकार की पत्रिकाओ के मध्य सुधानिधि की अपनी एक अलग पहचान है। हम न तो आयुर्वेद को दुरूह और जटिल रूप मे प्रस्तुत करते हैं और न बिलकुल सामान्य रूप मे। हमे प्रसन्नता है कि हमारे पाठको ने हमारी इस नीति को सदैव मे उपयोगी पाया है और हमे प्रोत्साहित किया है। हम पाठको को एक बार पुन इस प्रकाशकीय के माध्यम से विश्वास दिलाना चाहते है कि विगत २३ वर्षो मे जिस राह पर चलते हुये सुधानिधि ने आयुर्वेद-जगत् की सेवा की है उसी राह पर चलते हुये यह सेवा निरन्तर गतिशील बनी रहेगी।

प्रस्तुत विशेषांक

प्रस्तुत विशेषाक गतवर्ष प्रकाशित उदर रोग निदान चिकित्साक का द्वितीय भाग है जैसा कि पाठको को विदित है कि गत वर्ष प्रकाशित उदर रोग निदान चिकित्सा मे चिकित्सा खण्ड के अन्तर्गत् केवल भोजन-प्रणाली, आमाशय तथा आत्र के रोगो की चिकित्सा का ही समावेश किया जा सका था इसके अतिरिक्त विविध चिकित्सा-पणाली उपखण्ड तथा विशेषाक का महत्वपूर्ण खण्ड 'अनुभवाक' का मैटर प्रकाशित रहने से रह गया था। हमने यह उचित समझा कि इस विशेषाक का अविष्ट भाग भविष्य के लिये न छोडकर इसी वर्ष ही प्रकाशित कर दिया जावे तदनुसार 'उदर रोग निदान चिकित्सा द्वितीय भाग एव अनुभवाक' पाठको की सेवा मे प्रस्तुत हे। इस विशेषाक मे पाठको को चिकित्सा-खण्ड यकृत्-पित्ताशय एव प्लीहा के रोग, उदर्याकला के रोग, अग्न्याशय के रोग एव गुदा के रोग उपखण्डो के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। चिकित्सा खण्ड के बाद विभिन्न चिकित्सा प्रणाली उपखण्ड के माध्यम से उदर रोगो की प्राकृतिक, वायोकैमिक, एलोपैथिक, एक्यूप्रेशर, ज्योतिष एव योग सम्बन्धी चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया गया है। विशेषाक के अन्त मे 'अनुभवाक' उपखण्ड के माध्यम से उदर रोग सम्बन्धी आयुर्वेद के विशिष्ट विद्वानो के उदररोग सम्बन्धी अनुभव प्रकाशित किये गये है, इन अनुभवो के साथ उदर रोग सम्बन्धी अनेक अनुभूत योगो का सग्रह भी पाठको को इस खण्ड मे देखने को मिलेगा। हमने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियो के माध्यम से भी अनेक उदर रोगो पर अपने अनुभव प्रस्तुत किये है, आशा है पाठक उनसे भी लाभ उठा सकेगे।

इस तरह इस विशेषाक के माध्यम से पाठक उदर रोग सम्बन्धी सारगर्भित तथा अनुभवगम्य ज्ञान प्राप्त कर सकेगे। हमे विश्वास है कि सुधानिधि द्वारा प्रकाशित उदररोग निदान चिकित्सा के यह दोनो भाग उदररोग सम्बन्धी एक एनसाइक्लोपीडिया के रूप मे मान्यता प्राप्त करेगे।

अप्रैल में 'उदर रोग अनुभव परिशिष्टांक'

अनुभवांक का जो मैटर हमें प्राप्त हुआ वह सम्पूर्ण रूप मे विशेषांक मे प्रकाशित नहीं हो सका इसलिए अब हम यह मैटर अप्रैल के अंक मे उदर रोग अनुभव परिशिष्टांक के रूप मे प्रकाशित कर रहे हैं, आशा है पाठक इस अंक को भी इस विशेषांक का ही एक भाग समझते हुये स्वीकार करेंगे।

इस वर्ष प्रकाशित होने वाले लघु अंक

इस वर्ष १९९६ में निम्न ४ लघु अंक प्रकाशित किये जावेंगे।

१ निर्मूल उपचार अंक-सुधानिधि द्वारा पूर्व मे इस विषय पर लघु विशेषांक प्रकाशित किया जा चुका है जो समाप्त हो चुका है। अब इसी विषय पर पुनः एक लघु अंक इस वर्ष मई माह मे प्रकाशित किया जावेगा।

२ मोतिया बिन्द निवारण अंक-मोतियाबिंद वर्तमान की अत्यन्त प्रचलित नेत्र-व्याधि है इस विषय पर एक उपयोगी लघु अंक इस वर्ष जौलाई माह मे प्रकाशित किया जावेगा।

३ वाजीकरण योगांक-आयुर्वेद के वाजीकरण योगों का संग्रह कर यह लघु अंक वैद्य चन्द्रशेखर व्यास के सम्पादन मे अक्टूबर माह मे प्रकाशित किया जावेगा।

४ सौन्दर्य वर्धन उपाय अंक-आयुर्वेदीय सौन्दर्य वर्धक योगो की पूरे विश्व मे धूम मची हुयी है। इसी विषय पर एक लघु अंक दिसम्बर माह मे प्रकाशित किया जायेगा।

आशा है इस वर्ष प्रकाशित होने वाले इन चारो लघु विशेषांको को पाठक अत्यन्त उपयोगी पावेंगे। सुधानिधि के साधारण अंकों मे भी इस वर्ष पर्याप्त सुधार करने की हमारी योजना है और हमे विश्वास है कि हम इसमे अवश्य ही सफल हो सकेंगे।

आगामी विशेषांक

जैसा कि हमने प्रारम्भ मे उल्लिखित किया है कि यह सुधानिधि का २४वां वर्ष है इस तरह आगामी वर्ष सुधानिधि का २५ वा रजत जयन्ती वर्ष मनाया जाना है। हमारी इच्छा है कि रजत जयन्ती वर्ष मे सुधानिधि का कोई महत्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित किया जावे। गत वर्ष हमने घोषणा की थी उदर रोग विशेषांक के दोनो भाग प्रकाशित होने के बाद बीच मे रुकी हुयी वनौषधि रत्नाकर तथा निदान चिकित्सा विज्ञानांक श्रृंखलाओ को पुनः प्रारम्भ किया जावेगा। लेकिन रजत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य मे अब हम किसी अन्य विषय पर विशेषांक प्रकाशित करने की इच्छा रखते हैं। ज्वर रोग के सम्बन्ध मे एक विशेषांक प्रकाशित करने की योजना काफी समय से हमारे मस्तिष्क मे है सम्भव है इसी विषय पर आगामी वर्ष विशेषांक प्रकाशित करने की रूपरेखा बनायी जावे। हम सुधानिधि के विद्वान् पाठको से इस सम्बन्ध मे उचित परामर्श के आकांक्षी हैं। हम सुधानिधि के विद्वान् लेखको को भी आमन्त्रित करते हैं कि जो विद्वान सुधानिधि के आगामी वर्ष प्रकाशित विशेषांक के सम्पादन का भार स्वीकार करना चाहे वह हमसे शीघ्र सम्पर्क कर ले।

लेखक पुरुस्कार योजना

गतवर्ष की तरह इस वर्ष भी लेखक पुरुस्कार योजना के अन्तर्गत निम्न ३ लेखो को पुरुस्कार के लिये छाटा गया है-

१ उदर रोगो मे उपयोगी वनौषधिया (उदर रोग निदान चिकित्सा)-वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश', पचार (सीकर) राजस्थान- (प्रथम पुरुस्कार ५०१/-)

२ अम्लपित्त और उसकी चिकित्सा (उदर रोग निदान चिकित्सा)-वैद्य गुरुचरण वर्णवाल, मेजरगंज, सुल्तानपुर (उ० प्र०) (द्वितीय पुरुस्कार २५१/-)

३ पुनर्नवादि चूर्ण का वृद्धावस्था मे अप्रतिम प्रभाव (अक्टूबर १९९५) लेखक वैद्य हरिभाई के० त्रिवेदी प्रोफेसर-कार्य चिकित्सा, शासकीय आयुर्वेदिक कालेज, बडौदा (गुजरात) (तृतीय पुरुस्कार १५१/-)

उपरोक्त तीनो महानुभावो को हम यह पुरुस्कार प्राप्त करने हेतु अपनी बधाई प्रदान करते हैं तथा सुधानिधि के विद्वान् लेखको से अनुरोध करते हैं कि वह सुधानिधि के लिये अपने उपयोगी लेख प्रेषित करते हुये अपना कृपापूर्ण सहयोग सदैव बनाये रखें।

सुधानिधि के पाठको को एक सुखद सूचना

आचार्य रघुवरीप्रसाद जी त्रिवेदी को मरणोपरान्त १ लाख का वैद्य रामनारायन शर्मा पुरुस्कार



सुधानिधि के पाठको को हमे यह सूचित करते हुये विशेष प्रसन्नता है कि सुधानिधि के पूर्व सम्पादक तथा आयुर्वेद-जगत के विशिष्ट विद्वान् आचार्य रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी को उनकी जीवन पर्यन्त आयुर्वेद सेवा के लिये वैद्य रामनारायन शर्मा पुरुस्कार के अन्तर्गत १ लाख रुपये नगद तथा डेड किलो चादी की धन्वन्तरि भगवान् की प्रतिमा भेट कर पुरुस्कृत किया गया है। यह सम्मान भारत के प्रधानमत्री श्री नरसिहराव के हाथो आचार्य त्रिवेदी की पुत्रवधू को गत दिनो एक समारोह के अर्न्तगत नई दिल्ली मे प्रदान किया गया। यहा यह उल्लेखनीय है कि वैद्यनाथ सस्थान के सस्थापक वैद्य रामनारायन जी शर्मा की स्मृति मे यह पुरुस्कार हर वर्ष एक आयुर्वेद-विद्वान् को प्रदान किया जाता है। आचार्य जी के जीवन-काल मे ही यह सम्मान उन्हे प्राप्त होने की कई वार चर्चायें हुयी थीं, लेकिन आचार्य जी के स्वय इस पुरुस्कार समिति मे सदस्य रहने के कारण उन्होने इस पुरुस्कार को स्वीकार नहीं किया। अब उनके देहावसान के वाद आयुर्वेद का यह सर्वोच्च पुरुस्कार उन्हे प्रदान किया गया है। हमारी राय मे आचार्य जी को इस पुरुस्कार प्रदान करने से आचार्य जी को नहीं अपितु इस अलकार को गौरव प्राप्त हुआ है। देश-विदेश मे फैले आचार्य जी के सहस्रो शिष्यो तथा अनुयायिको को इस सूचना से निसंदेह अपार प्रसन्नता होगी।

इस वर्ष मूल्य वृद्धि नही।

जैसा कि सुधानिधि के पाठक भली प्रकार जानते हैं कि सुधानिधि के प्रकाशन मे हमे सदैव से घाटा रहा है, अन्य पत्रिकाओ की तरह न तो हम पत्रिका मे विज्ञापनो की भरमार कर सकते हैं ओर न ही उसकी पृष्ठ-सख्या ही घटा सकते है। जब कि कागज, छपाई आदि मे निरन्तर मूल्य वृद्धि होती जा रही हे और सुधानिधि का घाटा भी बढता जा रहा है। गत वर्ष हमने सुधानिधि के वार्षिक मूल्य मे मात्र २०० की वृद्धि की थी जिसके लिये भी हमे पाठको की शिकायते मिली अत इस वर्ष हमने सुधानिधि के ग्राहक मूल्य मे वृद्धि न करने का निर्णय लिया। सम्भवतया आगामी वर्ष एक साथ अधिक मूल्य वृद्धि का कटु निर्णय लेना पडेगा।

सहयोग के लिये निवेदन

निरन्तर घाटा उठाते हुये भी सुधानिधि का प्रकाशन सुधानिधि के पाठको के सहयोग से ही सम्भव है। सुधानिधि के पाठक हमारा यह सहयोग दो तरह से कर सकते हैं।

१ सुधानिधि की सहयोगी सस्था गर्ग वनौषधि भण्डार द्वारा निर्मित शास्त्रोक्त एव पेटेन्ट दवाये, आयुर्वेदिक कैपसूल आदि का निर्माण करती है और उसका विज्ञापन हम सुधानिधि मे प्रकाशित करते है। इस सस्था द्वारा ही सुधानिधि के घाटे की पूर्ति की जाती है। इसलिये सुधानिधि के पाठको का यह सहयोग आवश्यक है कि वह इस सस्था द्वारा निर्मित उत्पादनो का ही प्रयोग अपनी चिकित्सा मे करे। पाठको के इस सहयोग से सुधानिधि और उसकी सहयोगी सस्थान गर्ग वनौषधि भण्डार को बहुत लाभ मिलेगा।

२ सुधानिधि के नवीन ग्राहक बनाकर भी पाठक हमारा सहयोग कर सकते हैं। सुधानिधि की जितनी अधिक प्रसार सख्या होगी उतना ही उसका घाटा कम हो सकेगा। हमारा पाठको से निवेदन है कि वह सुधानिधि के १-२ नवीन ग्राहक बनाकर हमारा सहयोग अवश्य करे।

हम नव सम्वत् की पुनीत वेला मे सुधानिधि के सभी पाठको को अपनी हार्दिक शुभकामनाये अर्पित करते हैं।

२० मार्च (नव सम्वत्)। —गोपालशरण गर्ग

शुभकामना सन्देश

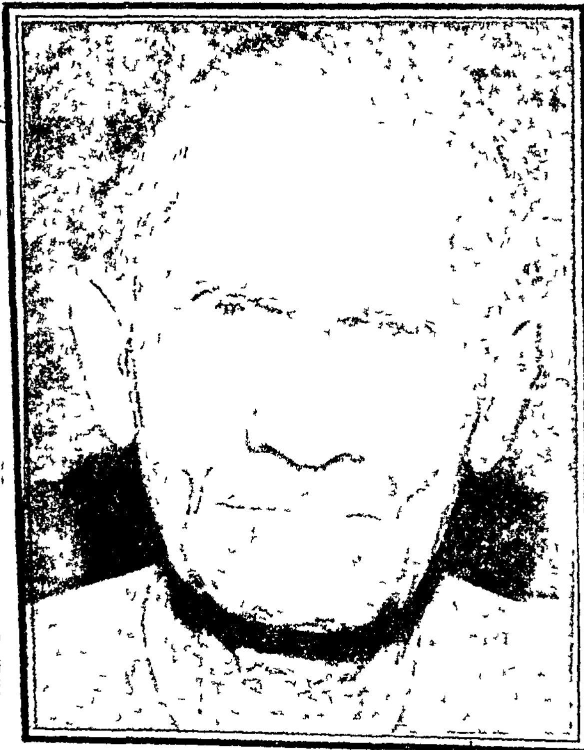
वैद्यराज डा० गिरधारीलाल मिश्र
आयुर्वेद चक्रवर्ती
चीफ फिजीशियन
केदारमल मेमोरियल आयुर्वेदिक हास्पीटल,
पुर (आसाम)



प्रिय गोपालशरण जी,

नमस्कार ! यह जानकर प्रसन्नता हुयी कि इस वर्ष १९९६ मे सुधानिधि द्वारा उदर रोग निदान चिकित्साक द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। उसका प्रथम भाग विशेष उपयोगी प्रकाशित हुआ है आशा है यह भाग भी विशेष उपयोगी प्रकाशित होगा। आप सुधानिधि पत्रिका के माध्यम से आयुर्वेद की जो सेवा कर रहे है व स्तुत्य है। मै उस विशेषाक के प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनाये अर्पित करता हूँ।

-गिरधारी लाल मिश्र

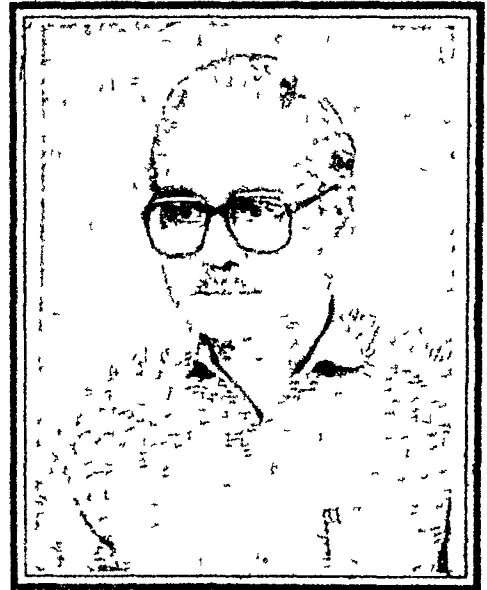


श्री प० ताराशकर वेद्य
रामपुरी जगतगज
वाराणसी

चि० गोपाल जी,

यह जानकर प्रसन्नता हुयी कि आप अपने लोकप्रिय मासिक-पत्र सुधानिधि के माध्यम से उदर रोग निदान चिकित्साक का अनुभव खण्ड १९९६ मे प्रकाशित करने जा रहे हो आशा है यह विशेषाक सुधानिधि के स्तर के अनुरूप प्रकाशित होगा। मै विशेषाक के लिये अपनी शुभकामनाये तथा तुम्हे आशीर्वाद प्रदान करता हूँ।

-ताराशकर



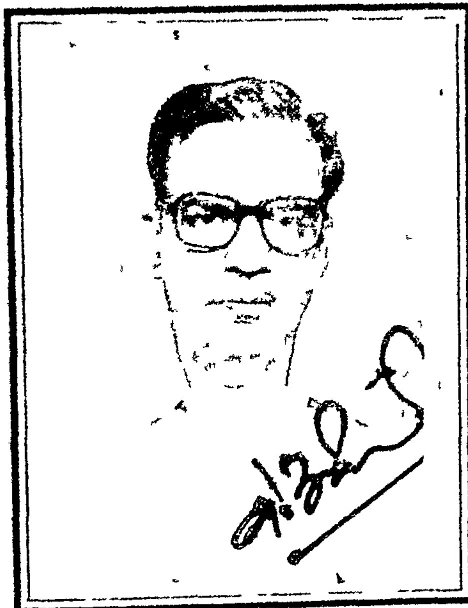
वैद्य ब्रज विहारी मिश्र
अध्यक्ष
प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन उ० प्र०
२८० रामनगर कालौनी, लखनऊ

माननीय गोपाल शरण जी

नमस्कार। आपका पत्र पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुयी कि इस वर्ष सुधानिधि द्वारा गत वर्ष प्रकाशित उदर रोग निदान चिकित्सा का द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाग मे अनुभव खण्ड का भी समावेश किया गया है यह विशेष प्रसन्नता का विषय है। सुधानिधि के विशेषांको ने आयुर्वेद-जगत् मे जो स्थान बनाया है वह अद्वितीय है। आचार्य त्रिवेदी जी के देहावसान के बाद भी आप पूरी तल्लीनता से सुधानिधि का प्रकाशन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है। विशेषाक के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाये स्वीकार करे।

–ब्रज विहारी मिश्र

कविराज वैणीमाधव शास्त्री
प्रोफेसर कायचिकित्सा विभाग
शासकीय आयु० महाविद्यालय, ग्वालियर।



प्रिय गर्ग,

यह जानकर प्रसन्नता हुयी कि इस वर्ष उदर रोग निदान चिकित्सा द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। गत वर्ष इसका प्रथम भाग विशेष उपयोगी प्रकाशित हुआ है। आशा है यह द्वितीय भाग भी उपयोगी प्रकाशित होगा।

विशेषाक के प्रकाशन के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाये स्वीकार करे।

–वैणीमाधव



वैद्य अम्बालाल जोशी
साहित्यायुर्वेद
मकराना मोहल्ला, जोधपुर

प्रियवर गर्ग

प्रसन्न रहो। यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुयी कि १९९६ मे उदर रोग चिकित्साक का द्वितीय भाग 'अनुभवाक' के रूप मे प्रकाशित होगा। आशा है उस भाग के प्रकाशित होने पर यह दोनो भाग उदर रोग सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ का रूप ले सकेगे। विशेषाक के लिये कुछ अनुभव भेज रहा हूं मै तुम्हारे सम्पादन मे प्रकाशित इस विशेषाक की सफलता की कामना करता हूँ।

–अम्बालाल जोशी

डा० जहानसिह चौहान
आयुर्वेद-वाचस्पति
ठठिया (फर्रुखावाद)



मान्यवर गर्ग जी,

नमस्कार ! सुधानिधि मे प्रकाशित विज्ञप्ति से ज्ञात हुआ कि वर्ष १९९६ मे 'उदर रोग अनुभवाक' प्रकाशित करने का आपने निर्णय लिया है। यह निर्णय मेरी दृष्टि मे बहुत सामयिक है। उदर रोग सम्बन्धी अनुभव प्रकाशित होने पर यह दोनो विशेषाक उदर रोग विषयक सम्पूर्ण ज्ञान पाठको तक पहुचा सकेगे। मै आपके इस विशेषाक के लिये अपनी शुभकामनाये प्रेषित करता हूँ।

–जहान सिह



कविराज वैणीप्रसाद शास्त्री एम० ए०
कर्ताराम स्ट्रीट,
लुधियाना (पजाब)

मान्य गर्ग साहब,

नमस्कार । आपके पत्र से ज्ञात हुआ कि इस वर्ष सुधानिधि द्वारा उदर रोग चिकित्साक का द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। आप इस भाग मे उदर रोग सम्बन्धी अनुभव भी प्रकाशित कर रहे है यह विशेष प्रसन्नता का विषय है। आशा है कि विशेषाक मे प्रकाशित अनुभवो से पाठको को लाभ प्राप्त होगा।

विशेषाक प्रकाशन के लिये मै अपनी शुभकामनाये अर्पित करता हूँ।

–वैणी प्रसाद शास्त्री

वैद्य पी० एस० अशुमन एच० पी० ए०
प्रोफेसर –मौलिक सिद्धान्त विभाग,
शेठ जी प्र० सरकारी आयुर्वेद कालेज
भावनगर (गुजरात)



मान्य गर्ग जी,

आज के युग मे उदर रोगो से सम्पूर्ण मानव जाति पीडित है आहार-विहार की अव्यवस्थ इन रोगो का मूल कारण है। यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुयी कि आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध मासिक सुधानिधि द्वारा उदर रोग सम्वन्धित महत्वपूर्ण विशेषाक इस वर्ष प्रकाशित किया जा रहा है। मै इस विशेषाक के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनाये अर्पित करता हूँ।

–पी० एस० अशुमन



डा० शिवदत्त शर्मा
आरोग्य निकेतन
गान्धीनगर, जम्मू ।

प्रिय गर्ग जी,

सादर नमस्कार ! उदर रोग सम्बन्धी एक और विशेषाक आप 'अनुभवाक' के रूप मे प्रकाशित करने जा रहे है आशा है यह विशेषाक भी पहले भाग की तरह उपयोगी प्रकाशित होगा ।

विशेषाक के लिये एक लेख भेज रहा हूँ आशा है आपको उपयोगी लगेगा । विशेषाक की सफलता के लिये मै अपनी हार्दिक शुभकामनाये अर्पित करता हूँ ।

-शिवदत्त शर्मा

डा० रणवीर सिह शास्त्री
आयुर्वेदाचार्य
इन्द्र भवन, पचकुइया मार्ग
आगरा-१०



मान्यवर गर्ग साहब,

नमस्कार ! आपका उदर रोग निदान चिकित्सा (द्वि० भा०) के लिये लेख भेजने हेतु निवेदन प्राप्त हुआ। विशेषाक के लिये एक लेख भेज रहा हूँ।

सुधानिधि द्वारा आयुर्वेद की महती सेवा की जा रही है आशा है यह विशेषाक भी सुधानिधि के पूर्व प्रकाशित विशेषाको की तर आयुर्वेद-जगत् मे सम्मान प्राप्त करेगा ।

-रणवीर सिह

उदर रोग निदान चिकित्सा

द्वितीय भाग एवं अनुभवांक

की

विषयानुक्रमणिका

चिकित्सा खण्ड

(अ) यकृत्-पित्ताशय एव प्लीहा के रोग (उपखण्ड)

(DISEASES OF LIVER, GALL BLADDER AND SPLEEN)

(आ) उदर्याकला के रोग (उपखण्ड)
(DESEASE OF PEITONIUM)

(इ) अग्न्याशय के रोग
(DISEASE OF THE PANCREAS)

(उ) गुदा के रोग
(DISEASES OF THE RECTUS)

विभिन्न चिकित्सा प्रणाली खण्ड

अनुभव खण्ड-

सम्पादकीय एवं अन्य टिप्पणियां-

सम्पादकीय

आयुर्वेद एवं उदर रोग

सामान्य व्यक्ति 'उदर रोग' कहने से पेट का कोई सा भी रोग, जैसे-अजीर्ण, मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठ, अम्लपित्त, अतिसार, सग्रहणी, गुल्म आदि समाता है। परन्तु आयुर्वेद मे 'उदर रोग' से जिन रोगो का उल्लेख है, वे उपरोक्त रोगो से भिन्न है, क्योकि उल्लिखित सभी रोगो का निदान और चिकित्सा अलग-अलग अध्यायो मे वर्णित है। आयुर्वेद ग्रन्थो मे 'अष्टौ उदराणि' कहकर उनकी सख्या आठ बताई है। प्लीहोदर और यकृदुदर को एक ही रोग मान लिया है। यकृद्विकार तथा प्लीहा के विकार भिन्न है और लक्षण भिन्नता के कारण उनकी चिकित्सा मे भी समानता नही है। इसलिये हम उदर रोगो की सख्या नौ मानकर ही उनका वर्णन यहा कर रहे हे।

आयुर्वेद के आधार ग्रन्थ, चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट्ट, जिन्हे बृहत्त्रयी के नाम से भी जाना जाता है, के अनुसार पाच उदर रोगो का स्थान-सम्प्राप्ति के अनुसार पर्युदर्या (पैरिटोनियम) है। ये है-वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज तथा दकोदर (जलोदर)। अन्य चार उदराभ्यन्तर विशिष्ट अगो को प्रभावित करते हैं। इन रोगो को प्लीहोदर, यकृदुदर (यकृद्दाल्युदर), क्षतोदर और बृद्धगुदोदर कहा जाता है। उपरिलिखित उदर रोगो का निदान और चिकित्सा आयुर्वेद-शास्त्र मे जिस प्रकार दी गई है, वह यहा दी जा रही है। जहा आवश्यक समझा गया है, वहा आधुनिक आयुर्विज्ञान का भी सहारा लिया गया है।

वातज, पित्तज, तथा श्लेष्मज उदर रोगो का निदान बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इनका आश्रय पर्युदर्या (पैरिटोनियम) होने के कारण इनमे उदर का ऊपरी भाग शोथ-युक्त हो जाता हैं। नस-नाडिया उभर आती है और पर्युदर्या के आभ्यन्तर रिक्त स्थान मे कुछ जलाश भी उत्पन्न हो जाता है। वातादि दोष जलवाही स्रोतो को अवरुद्ध करके कुक्षि (यहा इसका अभिप्राय पर्युदर्या से है) को फुलाकर उदर रोग उत्पन्न करते है। सामान्यत उदर रोगो मे पैर, हाथ और उदर सूज जाते है, मुह सूखता है, शरीर दुर्बल हो जाता है और भूख कम लगती है। इसके अतिरिक्त उसका पेट फूल जाता है। वातज मे पीडा और उदर मे गुड्गुड् शब्द होता है, पित्तज मे दाह तथा त्वचा के रग मे कुछ पीलापन हो जाता है और श्लेष्मज मे त्वचा मे कुछ श्वेत, अत्यधिक आलस्य और भारीपन आदि विकार होते है।

त्रिदोष (सन्निपातज) उदर रोग सामान्यत विरुद्धाहार अथवा दूषीविषो के प्रयोग के कारण उत्पन्न होता है। वर्तमान मे जिसे स्लो पोइजनिग (Slow Poisoning) कहते है।, उसके कारण जो लक्षण प्रकट होते है, वे इसी उदर रोग के अन्तर्गत समझने चाहिए। जलोदर भी पर्युदर्या के आभ्यन्तर होता है, परन्तु इसमे जल का परिमाण अत्यधिक होने के कारण इसे जलोदर कहते है। अन्य लक्षण पूर्वोक्त उदर रोगो के ही समान होते है।

प्लीहोदर और यकृदुदर (यकृद्दाल्युदर), जिनको प्राचीन ग्रन्थो मे एक ही श्रेणी मे रखा गया है, दोनो एक दूसरे से भिन्न है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उनकी विकृति के कारणो तथा रूपो मे भी अन्तर है। एक ही बात मे समानता है, जैसा कि आयुर्वेद-ग्रन्थो मे वर्णित है कि प्लीहा तथा यकृद् दोनो पिण्ड है और रुग्णावस्था मे दोनो मे वृद्धि हो जाती है। प्लीहा उदर मे बाई ओर अन्तिम पसलियो के अधोभाग मे बाये वृक्क (गुर्दा) तथा आमाशय के बीच मे स्थित है। इसके विपरीत यकृत् उदर मे दायी ओर अन्तिम पाच पसलियो के अधोभाग मे दाये वृक्क से ऊपर स्थित है। आकार मे यह प्लीहा से बडा होता है। इसमे दो मुख्य खण्ड (अथवा चार उपखण्ड) होते है। प्लीहा मे परिमित मात्रा मे रक्त सचित होता है। दूपित रक्ताणुओ को बाहर निकालने की पक्रिया भी कुछ अशो मे इसी अग द्वारा होती है। परन्तु यकृत् के कार्य प्लीहा से कहीं अधिक है और यह शरीर का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एव आवश्यक अग है। भोजन के दुष्पाच्य अशो को जैसे-स्नेह, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि का रस के साथ एकीकरण करना यकृत् का मुख्य कार्य है। यकृत् से ही पित्त रसता है, जो पित्ताशय मे एकत्र होता रहता है। पाचन-क्रिया मे पित्त का कितना अधिक महत्व है, इससे भिषग्वर्य पूर्णत परिचित है। पाचक पित्त को तो अग्नि की सज्ञा दी गई है। यकृत् मे पर्याप्त मात्रा मे रक्त सचित होता है।

उपरिलिखित प्लीहा एव यकृत् सम्बन्धी विवरण केवल यह बताने के लिये है कि प्लीहा और यकृत् दोनो भिन्न हैं, इनके कार्य भिन्न है, इसलिये इन दोनो मे उत्पन्न होने वाले रोगो को भिन्न-भिन्न श्रेणी मे रखना चाहिए। इसीलिये उदर रोगो की सख्या नौ मानकर प्लीहोदर तथा यकृदुदर का अलग-अलग विशेष विवरण दिया जा रहा है।

प्लीहोदर की उत्पत्ति के प्रमुख कारण है, भोजन के बाद अश्वादि की सवारी करना, अत्यधिक श्रम करना, निरन्तर रोग के कारण कृश हो जाना तथा रसादि धातुओ से रक्त का प्रवाह अधिक मात्रा मे प्लीहा मे सचित हो जाना आदि कारणो से प्लीहा का आकार बढ जाता है। कुछ समय बाद वह अष्ठीला की भाति और अन्त मे वह कछुए की पीठ की तरह अत्यन्त कठोर होकर जठर (आमाशय) को घेर लेती है। इसके कारण रोगी पीला पड जाता है और श्वास, कास, आध्मान, ज्वर आदि विकार हो जाते है। पेट के ऊपर की नसे लाल नीली सी उभर आती है। यह अनुभव मे आया है कि चिरकालीन मलेरिया ज्वर, रक्त-क्षीणता, रक्ताल्पता आदि से पीडित रोगी की प्लीहा सामान्यत काफी बढ जाती है। प्लीहा-वृद्धि का एक अन्य कारण है ल्यूकेमिया। इस रोग मे अपरिपक्व

श्वेताणुओ की सख्या, जो सामान्यत ८५०० होती है, १५ गुणा से भी अधिक हो जाती है। उनका आश्रय-स्थल प्लीहा होने के कारण ये श्वेताणु प्लीहा मे अत्यधिक सख्या मे पहुच जाते है, जिससे प्लीहा असाधारण रूप से बढ जाती है। इसका आकार बढकर समस्त आमाशय को घेर लेता है। यहा तक कि वह दक्षिण पार्श्व मे यकृत् के क्षेत्र तक पहुच जाती है। और स्पर्श मे काफी कठोर प्रतीत होती है।

यकृत् रोग अनेक प्रकार का होता है। भिन्न रूप और लक्षणो से वह पृथक् श्रेणी मे रखा गया है। पाण्डु, कामला, रक्ताल्पता आदि यकृत्-विकार के कारण ही होते है। परन्तु उनका उल्लेख पृथक् रूप मे तत्सम्बन्धी अध्यायो मे किया गया है। उदर रोगो के अन्तर्गत यकृत्-वृद्धि को ही यकृदुदर की सज्ञा दी गई है। यकृत्-वृद्धि के कारण और लक्षण भी लगभग वे ही बताये गये है। जो प्लीहा-वृद्धि के है और चिकित्सा मे भी समानता है। सम्भव है इसी कारण से यकृदुदर को प्लीहोदर के अन्तर्गत मान लिया गया है। परन्तु आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार यकृत्-वृद्धि के अतिरिक्त यकृत्-विकार के कुछ अन्य रूप भी है। इसलिए इसकी गणना एक पृथक् उदर रोग के रूप मे ही करनी चाहिये। यकृत्-विकार का एक कष्ट-साध्य रोग है सिरोसिस। यकृत् मे शोथ हो जाता है, शरीर पीला पड जाता है, भूख नहीं लगती, शक्ति का ह्रास और यकृत् मे पीडा आदि अनेक उपद्रव इस रोग मे हो जाते है। यदि इस रोग की चिकित्सा शीघ्र न की गई तो रोगी के प्राण सकट मे पड जाते है। ल्यूकेमिया मे रोगी का यकृत् भी बढ जाता है और उसकी कार्य-क्षमता प्राय नष्ट हो जाती है। अगर यकृत् के किसी भाग मे सिस्ट (पुटी) उत्पन्न हो जाय तो यकृत् का आकार बहुत अधिक बढ जाता है और वह पाषाणवत् कठिन भी हो जाता है।

क्षतोदर अथवा छिद्रोदर अत्यधिक भोजन तथा किसी तीक्ष्ण धार वाली जैसे-अस्थि तीक्ष्ण लोह-खण्ड तथा अन्य इसी प्रकार की कठोर वस्तु का भोजन के साथ उदर मे प्रविष्ट हो जाने पर आतो मे क्षत हो जाता है। इसके कारण आतो से पतला द्रव-पदार्थ व कभी गाढा और पूय के समान भी रिसता है और मलद्वार से निकलता रहता है। आतो मे पीडा और बेचैनी रहती है। यदि किसी कारणवश यह मल-द्वार से बाहर न आये तो रोगी सकट मे पड जाता है। इसके अतिरिक्त आतो मे अति कटु एव अम्ल पदार्थो के सेवन तथा कोष्ठबद्धता के कारण छाले पड जाते है। इन्हे अल्सर (व्रण) की सज्ञा दी गई है। यह रोग भी कष्ट साध्य होता है।

नवा उदर रोग बद्धगुदोदर नाम से उल्लिखित है। भोजन के साथ कुछ दूषित पदार्थ अथवा बाल जैसे अभोज्य पदार्थ खाने से आतो के अन्दर रुकावट पैदा हो जाती है। रुकावट धीरे-धीरे बढकर उग्र रूप धारण कर लेती है और आते पूर्ण रूप से अवरुद्ध हो जाती हैं। मल आतो मे रुक जाता है और मलाशय मे होकर बाहर नहीं जाता। आतो मे सडाध पैदा होती है और अपान-वायु की अधोगति न होकर ऊर्ध्वगति हो जाती है। इसके कारण पेट मे दर्द, उत्क्लेश, बेचैनी हो जाती है। थोडे समय बाद वमि (छर्दि) होने लगती है और जो मल रुका हुआ है, वह मुह से बाहर आने लगता

है। इस प्रकार के मलावरोध का एक और कारण है आत मे गाठ पड जाना अर्थात् ऐंठन होकर उसका मार्ग रुक जाना। इसे आधुनिक चिकित्सक वोल्वुलस नाम से पुकारते हैं। यदि समय पर इसकी शल्य-चिकित्सा न की जाय तो बद्धगुदोदर का रोगी मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

इनके अतिरिक्त एक रोग और है, जिसे अपेण्डिसाइटिस (उण्डुकपुच्छशोथ) कहते हैं। इस रोग मे क्षुद्रान्त्र और बृहदान्त्र की सन्धि मे सूजन आ जाती है। चिकित्सा न करने पर तथा असावधानी के कारण यह सूजन बढकर व्रण का रूप धारण कर लेती है इसका इलाज शल्य-क्रिया द्वारा ही किया जा सकता है।

चिकित्सा सूत्र तथा सामान्य उपचार

अन्तिम चार उदर रोगो तथा एपेण्डिसाइटिस को छोडकर प्रथम प्रकार के उदर रोगो की चिकित्सा मे काफी समानता है। इन सभी मे बलाबल के अनुसार स्नेहन, स्वेदन और विरेचन कराने से लाभ होता है। विरेचन कराना ही इनकी मुख्य चिकित्सा है। मूत्र विरेचन भी अत्यन्त आवश्यक है। विरेचन के कारण दुर्बलता हो जाती है, इसलिये चिकित्सा मे इसका भी ध्यान रखना पडता है। इसके लिये बल-प्रदायक औषधि देना जरूरी रहता है। विरेचन के लिये नारायण चूर्ण, नाराच रस, इच्छाभेदी रस, अभयादि मोदक जैसी रेचक औषधियो का प्रयोग किया जा सकता है। तीव्र रेचक औषधिया होने के कारण इनकी मात्रा, काल आदि का निर्धारण रोगी की दशा के अनुसार किया जाना चाहिए। बल प्रदायक औषधियो मे चन्द्रप्रभा वटी की दो गोलिया सुबह और शाम को देने से लाभ होगा। उदर रोग सभी कष्टसाध्य हैं और इनको दूर करने मे काफी समय लग सकता है, इसलिये रोगी की समय-समय पर परीक्षा करना और रोगी की दशा के अनुसार औषधियो मे परिवर्तन, परिवर्द्धन एव सशोधन करने का निर्णय चिकित्सा को ही करना चाहिए। रोगी के आहार के सम्बन्ध मे अत्यधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। सन्निपातज उदर रोग इन सबसे अधिक कष्ट साध्य है, क्योकि शरीर मे दूषीविष फैल जाता है। उसे शरीर से बाहर निकालना अत्यन्त दुष्कर है। इसीलिए ऐसे रोगी को असाध्य मानकर ही उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

जलोदर की चिकित्सा उपरलिखित ढग से की जा सकती है। परन्तु इसमे शल्य-चिकित्सा से शीघ्र लाभ होने के आशा रहती है। शल्य-क्रिया द्वारा उदरस्थ पानी निकालकर औषधियो का प्रयोग निरन्तर करते रहने से पुन पानी नहीं भरने पाता। केवल शल्य-क्रिया से ही रोगी का सर्वथा रोग-मुक्त होना सम्भव नहीं है। एक बार पानी निकाल देने पर रोगी कुछ दिन ठीक मालूम पडता है, परन्तु कुछ काल बाद वह पुन पहली स्थिति मे आ जाता है। इसीलिए दोनो प्रकार की चिकित्सा आवश्यक है।

सामान्य प्लीहोदर मे अग्निवर्द्धक औषधिया जैसे लवणभास्कर चूर्ण, मण्डूरवटक तथा लोहासव, कुमार्यासव, रोहितकारिष्ट आदि देने से लाभ होता है। मलेरिया के बाद होने वाले प्लीहोदर मे

अमृतारिष्ट का प्रयोग अधिक लाभप्रद है। ल्युकेमिया रोग मे हुई प्लीहा-वृद्धि का कोई अचूक इलाज देखने-सुनने मे नहीं आया है। यह वृद्धि ल्यूकेमिया रोग के लक्षण अथवा उपद्रव होने के कारण ल्युकेमिया रोग से मुक्ति पाने पर ही ठीक हो सकती है। ल्युकेमिया रोग का उल्लेख आयुर्वेद-ग्रन्थो मे नहीं मिलता और आधुनिक आयुर्विज्ञान के अनुसार यह रोग कैसर (ल्युकेमिया को ब्लड कैसर भी कहते है) की तरह ही परीक्षण के चक्र मे है। इसकी कोई अचूक दवा अभी तक सामने नहीं आई है। प्लीहोदर मे मलावरोध न रहे, पाचन-शक्ति मे वृद्धि हो और उसका बलक्षय न हो, इसका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। आरोग्यबर्धिनी वटी का प्रयोग इस रोग मे अत्यन्त लाभदायक है। आहार-विहार मे सावधानी बरतना चाहिए। यदि ज्वराश न हो तो तक्रपान करना लाभप्रद है।

यकृदुदर रोग की विशेष अवस्थाओ को देखकर अवस्थानुरूप चिकित्सा करना श्रेयस्कर है। यदि यकृत की क्रियाशीलता मे कमी है और वह शिथिल है तो पुनर्नवामण्डूर दिन मे दो या तीन बार पुनर्नवा तथा गुडूची स्वरस के साथ देने से लाभ होता है। इसके साथ ही भोजन के बाद रोहितकारिष्ट तथा कुमार्यासव मिलाकर देना हितकर है। यकृत्-वृद्धि मे हिग्वादिचूर्ण मे अर्क लवण मिलाकर भोजन से एक घण्टा पूर्व दोनो समय तक्र के साथ देना चाहिये। अन्य दवाये यथापूर्व चल सकती है। अनेक वैद्य पुनर्नवामण्डूर के स्थान पर यकृत् रोग नाशक पेटेन्ट योग देकर लाभ उठा रहे है। यदि यकृत वृद्धि सिस्ट के कारण हो तो इसकी चिकित्सा शल्य क्रिया द्वारा सिस्ट को निकालकर ही की जा सकती है। बिना सिस्ट को निकाले अन्य दवाये सामान्यतया सफल सिद्ध नही हो सकतीं। ल्युकेमिया के कारण हुई यकृत्-वृद्धि मे रोगी को तभी लाभ पहुचाया जा सकता है जब ल्युकेमिया की चिकित्सा मे सफलता हो। सिरोसिस अत्यधिक कष्ट-साध्य है। इस रोग मे यकृत मे शोथ हो जाता है, उसकी कार्य-शक्ति क्षीण हो जाती है, पित्त और रक्त निर्माण मे इसका योगदान नगण्य हो जाता है। इस अग की मृदुता के कारण तीव्र तथा उष्ण-वीर्य औषधिया अनुकूल प्रभाव नहीं डालती, इसलिये मृदुपाकी एव सौम्य औषधियो से ही इसमे लाभ की आशा रहती है। यदि रोगी मद्यप है तो उसे मदिरापान बिल्कुल छोडना पडेगा, तभी कुछ लाभ की आशा की जा सकती है। भोजन सुपाच्य हो तथा मल-शोधन होता रहे, इस प्रकार की व्यवस्था करना आवश्यक है। घी और मीठा देना अहितकर है। गाय या बकरी का दूध लाभदायक है। ज्वराश न रहने पर तक्रपान लाभदायक सिद्ध होगा। मण्डूर भस्म रक्त मे जल्दी मिल जाती है, इसलिए तीक्ष्ण लौह भस्म की जगह उसी का प्रयोग करना चाहिये, पुनर्नवामण्डूर अथवा मण्डूर वटक अधिक उपयोगी है। पुनर्नवा एव गुडूची स्वरस का प्रयोग उत्तम है, सुदर्शन चूर्ण का फाण्ट देना भी लाभदायक है। पीने के लिए उबला पानी ही देना चाहिए। पालक तथा शलजम और कुलथी की दाल तथा चावल का माड अथवा लाल चावल का भात भोजन मे देना हितकर है। फलो मे पपीता, अनार और फालसा का प्रयोग किया जा सकता है। रोगी को श्रम, सन्ताप से तथा अत्युष्ण अथवा अतिशीत वातावरण से भी बचाना चाहिए। यदि औषधि एव उपचार मे सावधानी बरती जाय तो यकृत् सिरोसिस का रोगी ठीक हो सकता है।

बद्धोदर अथवा बद्धगुदोदर भी कष्टसाध्य है। विरेचन से इसमे लाभ होने की बजाय हानि हो सकती है। क्योकि आते मल के कारण अवरुद्ध हो जाती है और रेचक औषधि प्रभावहीन सिद्ध होती है। प्रत्युत उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भ्रम एव बेचैनी तथा उत्क्लेश और छर्दि भी हो जाती है। यदि मलावरोध मलाशय मे मलविबन्ध के कारण है तो विरेचन द्वारा उसे निकाला जा सकता है। क्योकि इस हेतु बस्ति (एनिमा) का प्रयोग सफल रहेगा। परन्तु यदि बद्धोदर का कारण बृहदान्त्र मे ऊपर मल शुष्क होकर अत्यन्त कठिन हो गया है। अथवा आत मे ऐठन (Volvulus) पड जाने के कारण मलावरोध हो गया हो तो शल्यक्रिया के अतिरिक्त और कोई उपाय नही है। चिकित्सक को उसका निर्णय शीघ्र करना चाहिए अन्यथा देर हो जाने पर मलोत्पन्न विषाक्त वायु उदर मे तथा मस्तिष्क और हृदय पर भी बुरा प्रभाव डालकर उपद्रव उत्पन्न कर देता है। यदि रोगी का मल, जो मलावरोध के कारण क्षुद्रान्त्र मे पडा है, ऊर्ध्वगामी होकर वमन द्वारा मुख से निकलना प्रारम्भ हो जाय तो रोगी के बचने की आशा नहीं रहती। इसलिये इस रोग मे औषधि प्रयोग के बजाय शल्यक्रिया ही एकमेव उपाय है।

क्षतोदर अथवा छिद्रोदर भी इसी प्रकार का रोग है, क्योकि आन्त्र के क्षतो का औषधि से ठीक करना असम्भव है। इसलिये ऐसे रोगी को शल्य-चिकित्सक के पास भेज देना चाहिए। एपेण्डिसाइटिस (उण्डुकपुच्छशोथ) भी इसी प्रकार का रोग है। शल्य-चिकित्सक रोगयुक्त भाग को काटकर आतो को सीं देता है और कुछ दिनो मे आवश्यक उपचार के बाद रोगी बिल्कुल ठीक हो जाता है। आधुनिक चिकित्सा मे आतो को निष्क्रिय रखने के लिए सामान्य आहार बन्द कर देते है और उसकी पूर्ति सुई द्वारा ग्लूकोज आदि पोषक औषधिया सीधे रक्त मे पहुचा देते है।

ऊपर लिखा विवरण उदर रोगो की सामान्य जानकारी प्रदान करने की दृष्टि से दिया गया है। इसमे से प्रत्येक रोग की चिकित्सा के लिए रोगी को किसी सुविज्ञ अनुभवी वैद्यराज की शरण मे जाना चाहिए। उदर रोगो से सम्बन्धित अनुभूत चिकित्सा का विवरण विशेषाक मे पाठको को पढना चाहिये।

उदर-विकारों में आहार की उपयोगिता

आहार की उपयोगिता बतलाते हुए आयुर्वेद-शास्त्र मे आहार को शरीर के बल, वर्ण और ओज का मूल प्रतिपादित किया गया है- *"प्राणिना पुनर्मूलमाहारे बलवर्णोजसा च।"* साथ ही यह निर्देश भी दिया गया है कि मनुष्य को मात्रा पूर्वक भोजन करना चाहिये। आहार की मात्रा मनुष्य की अग्नि (पाचकग्नि) के बल की अपेक्षा रखती है।-"मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी।" इसका आशय यह है कि आहार की जो मात्रा भोजन करने वाले मनुष्य की प्रकृति मे बाधा नहीं पहुचाते हुए यथा समय पच जाय वही उस व्यक्ति के लिए अभीष्ट एव प्रमाणित मात्रा है। आगे इसे और

अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है-"मात्रा खादेद् बुभक्षित ।" तथा "नाप्राप्तातीतकाल वा हीनाधिकमथापि वा ।" अर्थात् जिसे अच्छी भूख लगी हो ऐसा बुभुक्षित व्यक्ति उचित मात्रा पूर्वक आहार ग्रहण करे तथा समय से पूर्व एव समय बीत जाने के बाद भोजन नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त बिल्कुल हीन मात्रा या अत्यधिक मात्रा मे भी भोजन नहीं करना चाहिए। मात्रा पूर्वक आहार से होने वाले लाभ का प्रतिपादन आयुर्वेद के आचार्य चरक ने इस प्रकार से किया है।

आहार हमारे शरीर की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए ही आवश्यक नहीं है वह प्राणिमात्र के जीवन निर्वाह के लिए भी आवश्यक है। आहार के द्वारा शरीर का भरण-पोषण होता है, अत वह शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा और स्वास्थ्य सवर्धन का मुख्य आधार है। यह एक स्वत स्थापित तथ्य है कि कोई भी मनुष्य खाए बिना जी नहीं सकता। अत कुछ करने के लिए जीना आवश्यक है और जीने के लिए आहार ग्रहण करना आवश्यक है। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह के लिए आहार की अपेक्षा है।

दैनिक रूप से हम जो भी आहार लेते है वह तीन प्रकार का होता है-

सात्विक, राजसिक और तामसिक। शुद्ध, लघु और सुपाच्य आहार सात्विक आहार होता है। जिस आहार के सेवन से सत्व (मन) बुद्धि और विचार शुद्ध, निर्मल और सरल होते है, वह आहार सात्विक होता है। सात्विक आहार के सेवन से हृदय मे सरलता और निर्मलता आती है, विचारो मे पवित्रता आती है और भाव-परिणाम शुद्ध होते है। सात्विक आहार के अन्तर्गत सभी प्रकार का अनाज, दलहन, साग, सब्जिया, फलिया, फल, सूखे मेवे तथा उचित मात्रा मे दूध, मक्खन पनीर आदि आते है। ऐसा आहार मानसिक शान्ति और समरसता उत्पन्न करता है, चित्त और मस्तिष्क मे विकार उत्पन्न नहीं होने देता तथा मनोभावो को दूषित नहीं होने देता।

अधिक मात्रा मे मिर्च-मसाले, आचार, चटनी, खट्टे तीखे, तीक्ष्ण पदार्थों वाले भोजन का सेवन करना राजसिक आहार के अन्तर्गत आता है। राजसिक आहार स्वभाव को उग्र बनाता है। उत्तेजक होने से मन, मस्तिष्क और इन्द्रियो को उत्तेजित करता है। राजसिक आहार सेवन करने वालो का मन अशान्त और असन्तुलित होता है। उन्हे क्रोध जल्दी आता है, उनके विचार अस्थिर होते है। ऐसे व्यक्ति कोई निर्णय नहीं कर पाते है।

बासी खाना, मास, मछली, अण्डा, मुर्गे का चूजा, स्मैक, हैरोइन गाजा, भाग, धतूरा आदि। विभिन्न नशीले द्रव्यो का सेवन एव मदिरा आदि नशीले पेयो का सेवन तामसिक आहार मे परिगणित होता है। तामसिक भोजन बुद्धि को मन्द करता है तथा विचारो को कुण्ठित करता है। सतत् तामसिक आहार लेने वाले व्यक्ति हिसक एव क्रूर प्रकृति के होते है, उनकी विचार-शक्ति कुण्ठित हो जाती है, उनके हृदय मे स्वाभाविक सहज भाव उत्पन्न नहीं हो पाते। वे सतत् दुर्भावना से ग्रस्त रहते है, उनके विचारो की पवित्रता नष्ट हो जाती है। ऐसे व्यक्ति बहुत जल्दी कुण्ठाग्रस्त हो जाते है।

उपर्युक्त तीन प्रकार के आहार मे सात्विक आहार सर्वोत्तम होता है, राजसिक आहार मध्यम और तामसिक आहार अधम होता हे। निर्मलबुद्धि एव सात्विक विचारवान् लोग सर्वथा सात्विक आहार को ही ग्राह्य मानते है। अत वे अपने आचार-विचार एव व्यवहार को सरल एव निर्मल बनाने के लिए सात्विक आहार ही ग्रहण करते हे। आध्यात्मिक, मानसिक एव बौद्धिक विकास के लिए भी सात्विक आहार ही अनुकूल होता है। व्यक्ति चाहे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय से जुडा हो, ईश्वराराधन के लिए उसे सात्विक होना आवश्यक हे और सात्विक होने के लिए सात्विक आहार का ही ग्रहण करना आवश्यक है। विभिन्न धर्मों का सन्देश भी हमे यही प्रेरणा देता है कि हम सात्त्विक बने और सात्विक आहार ही ग्रहण करे।

आहार के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण ज्ञातव्य तथ्य यह भी है कि जब हम इस बात के लिए सचेष्ट और सावधान है कि हम क्या खाए ? इसका समाधान किया है आचार्य चरक ने। वे कहते हैं-"हिताशी स्यान्मिताशी स्यात्।" अर्थात् हितकारी भोजन करने वाला और परिमित यानि सीमित भोजन करने वाला होना चाहिये। इसका आशय यह है कि लघु, सुपाच्य एव सुस्वादु वह भोजन करना चाहिए जो मनुष्य की अपनी प्रकृति के अनुकूल हो। इसके साथ ही परिमित मात्रा यानी सीमित प्रमाण मे आहार सेवन करना चाहिए। परिमित परिमाण मे खाने से शरीर सदा स्वस्थ एव निरोग तो बना ही रहता है, मन मे प्रसन्नता और बुद्धि मे निर्मलता रहती है। व्यवहार मे सामान्यत देखा गया है कि कुशाग्र या तीव्र बुद्धि वाले लोग सीमित मात्रा मे ही आहार लेते है। आत्महित चिन्तन मे लगे हुए धार्मिक वृत्ति वाले लोग भी केवल अपने शरीर निर्वाह के लिए अल्प प्रमाण मे आहार लेते है।

अधिक खाना शारीरिक, मानसिक एव बौद्धिक स्वास्थ्य के लिए हितकारी नहीं होता है। अधिक खाने से शरीर मे भारीपन, बुद्धि मे ठसता और मन मे तामसभाव, उत्पन्न होता है जिसका प्रभाव इन्द्रियो पर पडता है। परिणामत मनुष्य मे आलस्य और निद्रा उत्पन्न होती है। ये दोनो भाव मनुष्य की सहज एव स्वाभाविक वृत्ति मे बाधक होते है। इससे धर्माचरण तथा अन्य आचार-व्यवहार मे भी व्यवधान उत्पन्न होता है। आत्महित चिन्तन मे लगे हुए व्यक्तियो के लिए सदेव जागरूक बने रहना आवश्यक है ताकि उनके स्वाध्याय, धर्मानुचिन्तन एव धर्माचरण मे व्यवधान उत्पन्न न हो। यह तब ही सम्भव है जब वह अल्पाहारी हो। भूख से कम खाना एक ओर जहा विभिन्न रोगो के आक्रमण से शरीर की रक्षा करता है वहा दूसरी ओर मानसिक भावो को दूषित होने से बचाता है और बौद्धिक विचारो मे विकृति नहीं आने देता। आहार के सम्बन्ध मे एक मूलभूत सामान्य नियम यह है कि "खाना जीने के लिए है, न कि जीना खाने के लिए।" आज स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। हम मे से अधिकाश लोग खाने के लिए जीते है। यही कारण है कि वे जरूरत से अधिक खाते है। ऐसा करके वे अपने स्वास्थ्य के प्रति गैर जिम्मेदार रहते हुए अनेक समस्याए उत्पन्न कर लेते है।

हम जो भी कुछ खाते है वह हमारी पाचन-शक्ति को प्रभावित करता है। उस खाए हुए आहार का परिपाक होने के बाद जब वह आहार रस मे परिवर्तित होता है तो वह रस सम्पूर्ण शरीर मे घूमता हुआ प्रत्येक अग, अवयव, मस्तिष्क आदि के सूक्ष्माशो मे पहुचता है और वे सभी अगावयव उससे प्रभावित होते है। लगातार अधिक खाते रहने से कालान्तर मे पाचकाग्नि मन्द हो जाती है, जिससे अल्प मात्रा मे खाए हुए अन्न को पचाना भी दुष्कर हो जाता है। परिणाम स्वरूप अग्निमाद्य, अरुचि, अजीर्ण, अतिसार आदि बीमारियो का शिकार होना पडता है। यदि लगातार यही स्थिति बनी रहती है तो शरीर के लिए आवश्यक रस-रक्तादि धातुओ का निर्माण प्रभावित होता है और शरीर धीरे-धीरे बलहीन एव निस्तेज होता जाता हैं। अत सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि अग्निबल (पाचन शक्ति) की रक्षा की जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि हित और मित अर्थात् हमारे लिए जो हितकारी है वह उचित परिमाण या मात्रा मे ग्रहण किया जाय। कम खाने वाला व्यक्ति कभी भी उदर सम्बन्धी विकारो-परेशानियो से पीडित नहीं होता और वह स्वस्थ रहता हुआ पूर्ण सुखायु का उपभोग करता है।

प्रस्तुत विशेषांक

जैसा कि प्रकाशकीय मे निवेदन किया गया है कि गतवर्ष प्रकाशित उदर रोग निदान चिकित्साक के प्रथम भाग मे उदर रोग सम्बन्धी सम्पूर्ण मैटर का समावेश सम्भव नहीं हो सका था इसलिये यह निर्णय लिया गया कि इस अविशिष्ट भाग का इसके द्वितीय भाग के रूप मे प्रकाशित कर दिया जावे। इसी निर्णय के फलस्वरूप उदर रोग निदान चिकित्साक का यह द्वितीय भाग पाठको की सेवा मे अर्पित किया जा रहा है। इस विशेषाक को निम्न ६ उपखण्डो मे विभक्त किया गया है-

१ यकृत पित्ताशय एव प्लीहा के रोग उपखण्ड

२ उदर्याकला के रोग उपखण्ड

३ अग्न्याशय के रोग उपखण्ड

४ गुदा के रोग उपखण्ड

५ विविध चिकित्सा-प्रणाली उपखण्ड

६ अनुभव खण्ड

उपरोक्त उपखण्डो के अन्तर्गत उदर रोग निदान चिकित्साक प्रथम भाग का अविशिष्ट सम्पूर्ण मैटर सग्रहित किया गया है। अनुभव खण्ड के अन्तर्गत कुछ विद्वानो के अनुभव प्रकाशित होने से रह गये है जो आगामी माह प्रकाशित 'उदर रोग अनुभव परिशिष्टाक' मे प्रकाशित किये जावेगे।

इस विशेषाक के सम्पादन मे हमे ६ माह का अथक परिश्रम करना पडा है लगभग सभी लेखो की एक-एक लाइन पढनी पडी है तथा लेखो के अनुपयोगी अशो को पृथक् करना पडा है तथा जहा आवश्यक समझा गया है वहा अतिरिक्त मैटर देकर लेख को सम्पूर्णता प्रदान की गयी है। अनुभव खण्ड मे भी अनेक सम्पादकीय टिप्पणियो के माध्यम से अनेक उदर रोगो पर हमने अपने अनुभव प्रस्तुत किये है। विशेषाक की प्रूफ रीडिग इस बार भी समयाभाव वश हम स्वय नहीं कर सके है इसलिये विशेषाक मे अनेक अशुद्धिया रह गयी है जिसका हमे खेद है हम शीघ्र ही एक योग्य आयुर्वेद ज्ञाता प्रूफ रीडर की व्यवस्था कर रहे है और हमे आशा है कि भविष्य मे प्रूफ रीडिग सम्बन्धी अशुद्धियो से सुधानिधि को मुक्ति मिल सकेगी।

इस विशेषाक के सृजन मे जिन लेखको का हमे सहयोग मिला है हम उनके हृदय से आभारी है। विशेषाक मे कई पूर्व प्रकाशित लेखो का सग्रह सुधानिधि के पूर्व प्रकाशित विशेषाको एव अन्य पत्रिकाओ से किया गया है और आयुर्वेद हित मे किये गये इस कार्य को क्षम्य समझते हुये हमने उनके लेखको से पूर्व स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझा है। आशा है सम्बन्धित लेखक इस हेतु हमे क्षमा प्रदान करेगे।

गोपालशरण गर्ग

सम्पादक उदर रोग निदान चिकित्सा (द्वितीय भाग)

एव अनुभवाक



उदर रोग निदान चिकित्सा

द्वितीय भाग एवं अनुभवांक



चिकित्सा खण्ड



यकृत्-पित्ताशय एवं प्लीहा के रोग

DISEASES OF LIVER, GALL BLADDER AND SPLEEN

यकृत्-शोथ कारण एवं निवारण

डा० रामलखन 'आयुर्वेदरत्न' आयु०-बृहस्पति एम०एस०सी०ए०
भारतीय चिकित्सा सदन, चन्दपुरा, लबेदी (इटावा)

।-दान-बहुधा यह व्याधि उष्ण कटिबन्ध प्रदेश मे २० वर्ष से अधिक आयु वाले युवको को होती है अकस्मात् शीत लग जाना, देह उत्तम होने पर पखे से वायु डालना या ज्वरावस्था मे जब प्रतिरोधक शक्ति कम हो, ऐसी अवस्था मे निद्रा आ जाने पर शीतल वायु लगती रहना इत्यादि कारणे से इस रोग की उत्पत्ति हो जाती है। निद्रावस्था मे जब रोगोत्पादक कारणे का प्रतिरोध करने की क्षमता (Ability) का ह्रास होता है। तब इस व्याधि की सम्प्राप्ति हो जाती है। शीत प्रधान देश मे ऐसे समय पर शीत लग जाने से कास, न्यूमोनिया या वृक्क-प्रदाह की उत्पत्ति होती है। परन्तु ग्रीष्म प्रधान देश मे ऐसी अवस्था मे यकृत् प्रदाह या रक्तातिसार हो जाता है।

आशुकारी यकृत् शोथ मे विशेषत यकृत्स्थ पदार्थ आक्रान्त होते है। यदि बाहर की ओर प्रदाह हो तथा विद्रधि रूप धारण कर लेवे, तो पूय विशेषत बाहर की ओर गति करता है। यदि पूय गमन भीतर की ओर हो जाय तो रोग अधिक दुखदायी बन जाता है।

लक्षण-इस रोग के प्रारम्भ मे ऐसा कोई महत्व का लक्षण नहीं मिलता कि जिससे तत्काल रोग का निर्णय हो सके। पेचिस मे अनेक बार यकृद् वृद्धि हो जाती है। एव कास श्वास मे भी यकृत् के भीतर वेदना होना ऐसा देखने मे आता रहता है। सामान्य रूप से अतिशय कम्प, शीत लगना, और व्याकुलता आदि लक्षणो मे इस रोग का अकस्मात् प्रारम्भ हो जाता है। किसी-किसी को पूर्वकाल मे कुछ दिनो तक बेचैनी रहती है। रोग प्रारम्भ होने पर ज्वर आ जाता है। क्षुदानाश, उवाक, वमन, सफेद पीले रग के लेपयुक्त जिह्वा, बद्धकोष्ठ (किसी-किसी बद्धकोष्ठ के बाद अतिसार) मल का रग भस्म के समान हो जाता है कामला रोग के समान त्वचा का रग बन जाना। कामला होने पर नेत्रावरण पर पीलापन आ जाता है यह इस रोग मे नहीं होता। मूत्र मे एल्ब्यूमिन जाना (कामला मे पित्त भी जाता है) यकृत्वृद्धि होने से यकृत् मे वेदना और भारीपन तथा दबाने पर अधिक पीडा होना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते है।

इसके अतिरिक्त दक्षिण स्कन्ध और हस्त मे वेदना होती है यह इस व्याधि का प्रधान लक्षण है। शिर मे भरीपन, निद्रा, तन्द्रा, प्रलाप आदि मस्तिष्क गत लक्षण अपस्थित होते है। यदि रोग भयकर रूप धारण कर लेता है तो रोगी क्षीण और अस्थिपजर सा कृश होकर मृत्यु के मुख मे गिर जाता है। दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेश (Hypochondriac Region) की स्पर्श परीक्षा करने पर पूर्णता का बोध होता है। यकृत् पर दबाने या ठेपन करने पर पीडा होती है। ठेपन करने से समग्र यकृद्वृद्धि हो तो घन ध्वनि अधिक व्यापक होती है। किन्तु सामान्य रूप से यकृत् का केवल दक्षिण खण्ड (Right Lob) एव किसी-किसी बार यकृत् के सीमावद्ध अल्प अश की वृद्धि होती है।

उदर्याकला प्रदाह-यदि उदर्याकला का लघु कोष (Lesser Sec) आक्रान्त हो जाता है तो शूल काटने चुभाने जैसी वेदना होती है। यदि इसके कोष समूह (Lobules) प्रभावित हो जाय तो गम्भीर वेदना का अनुभव होता है करवट बदलने या अग सचालन करने पर वेदना की वृद्धि होना, वाम पार्श्व से शयन करने पर असमर्थता कभी-कभी दाहिने कधे पर तीर मारने सदृश्य शनै -शनै काटने सदृश्य वेदना होना, श्वासोच्छ्वास मे तेजी, दीर्घ श्वास मे वेदना, कुछ अश मे श्वास कृच्छ्रता और दुखदायी शुष्क कास तथा ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते है।

यकृदावरण प्रदाह (Perihepatitis)-यदि यकृत् के कोष समूहो के बाह्य अश के समीप प्रदाह स्थित हो और यकृत् का आच्छादन (Glissons Capsule) अर्थात् उदर्याकला के नीचे और याकृती पित्त नलिका आदि अश पर रहे हुये सयोजक तन्तुओ से बना हुआ आवरण भी साथ-साथ प्रभावित हो जाय तो पार्श्व भाग मे अति प्रवल वेदना होती है। यह विकार सामान्य रूप से यकृत् के आतरिक प्रदेश के प्रदाह (Interstitial hepatitis) सह उत्पन्न होता है इस प्रदाह की उत्पत्ति उपदश के विष प्रकोप

समीप मे रहे हुए फुपफुसावरण के प्रदाह के विस्तार तथा आशुकारी यकृत् प्रदाह से होती है।

यकृत् का बाह्य प्रदेश आक्रान्त होने पर वेदना, पीडनाक्षमता, शुष्क कास, दीर्घ श्वास लेने मे शूल सदृश वेदना आदि होती है। किन्तु यकृत् की वृद्धि आदि प्रारम्भ मे नहीं होती अथवा स्वल्प परिणाम मे होती है।

प्रतिहारिणी शिरा प्रदाह–कभी-कभी यकृत् के भीतर अन्न रस का वहन करने वाली प्रतिहारिणी शिरा (Portal Vain) प्रभावित हो जाती है। इस व्याधि से यकृत् का पूयमय प्रदाह और विद्रधि होते देखा गया है। निकट के किसी स्थान का प्रदाह विस्तृत होने पर यह शिरा प्रभावित हो जाती है। या किसी दुष्ट आहार सेवन से भी इस रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

इस व्याधि के प्रारम्भ मे यकृत् पर भयानक वेदना होती है। फिर मोटापन आ जाता है। प्रदाह मे जब पूय बनना प्रारम्भ होता है तब वेदना और ज्वर की वृद्धि हो जाती है। इस रोग मे कामला भी हो जाता है। इसके साथ अन्त्र मे से रक्तस्राव और उदर्याकला प्रदाह भी हो जाता है यह रोग क्वचित् जल्दी अच्छा हो जाता है। विशेषत पूय होकर विद्रधि बन जाती है।

भेद–यकृत् मे तीव्र या मृदु रूप मे होने वाला शोथ यकृत् शोथ है इसके तीन भेद वर्णित किये गये है।

(१) तीव्र सक्रान्त यकृत् शोथ (Acute Infective Hepatitis)।

(२) तीव्र पीत क्षीणता (Yellow Atrophy)।

(३) वेलस रोग (Wells Disease)।

हम यहा एक-एक अवस्था के कारण लक्षण एव चिकित्सा का अलग-अलग वर्णन कर रहे है।

(१) तीव्र सक्रान्त यकृत् शोथ-पहले इसी अवस्था को कैटरल कामला के नाम से पुकारते थे। यह अवस्था युवाओ की अपेक्षा बच्चो मे अधिक होती है एक आक्रमण से प्राय प्रतिरोध शक्ति आ जाती है। कारणे की दृष्टि से विचार करे तो इस रोग के तीन रूप मिलते हैं।

(अ) प्राथमिक सक्रमण जनित यकृत् शोथ जो वाइरस (Virus) से उत्पन्न होने वाले विष के कारण से होता है। इसका सक्रमण रोगी व्यक्ति की नाक के स्राव से या मलमूत्र से अन्य व्यक्तियो मे वायु द्वारा पहुचता है। इसका चयकाल १७ से ३५ दिन का है।

(ब) होनोलोजियस सीरम कामला यह तब होता है जबकि सीरम मे कामला उत्पादक एजेण्ट पहुच जाये। शरीर मे रक्त देते समय यह स्थिति आ सकती है या खसरा कनफेड या यलो ज्वर के लिये प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न करते समय आ जाती है।

(स) आरसकेनेमिन कामला जो कि औषधि की प्रारम्भिक मात्रा देने के बाद दो सप्ताह तक प्राय नहीं होता। यह सम्भवत रासायनिक रूप का है। यह एजेण्ट पिचकारी के द्वारा दूसरे के शरीर मे पहुचता है इस अवस्था का प्रारम्भ कामला के पूर्वरूपो से होता है निम्न लक्षण प्राय मिलते है।

(१) अरुचि लगातार बनी रहती है। सब ठोस भोजन २-३ दिन तक अरुचि उत्पन्न करते है।

(२) रोगी को प्राय उक्लेश, जी मचलाना बना रहता है परन्तु वमन प्राय नहीं होती।

(३) आलस्य, अनोत्साह, एव शिरदर्द मिलता है।

(४) कभी-कभी हृत्प्रदेश पर भारीपन, दर्द भी होता है।

(५) प्राय मलबन्ध मिलता है।

(६) मन्द ज्वर बना रहता है।

(७) रोग उत्पन्न होने के सातवे आठवे दिन कामला उत्पन्न होता है। इसमे मल श्वेतवर्ण का या फीका पीले रग का होता है। मूत्र मे गहरा पीला रग होता है।

(८) कामला हो जाने पर ताप परिणाम प्राय साधारण हो जाता है और भूख भी प्राय बढने लगती है।

(९) यकृत् प्राय बढा हुआ और सख्त होता है।

(१०) त्वचा पर लाल दाने अथवा चकत्ते निकलते है।

(११) वानडन वर्ग परीक्षा प्रथम तो वाईफैजिक प्रतिक्रिया देती है, पीछे से अप्रत्यक्ष रूप मे अस्त्यात्मक परिणाम उत्पन्न करती है।

(१२) ल्यूकोसाइटोसिस कभी नहीं होता प्राय पोली-मार्क ल्यूकोपीनिया रक्त परीक्षा मे मिलता है। इस रोग की पहिचान यह है कि इसमे यकृत् मे कभी भी दर्द नहीं होता। प्लीहा प्राय बढी रहती है। लक्षणो का भली प्रकार देखकर निदान किया

जा सकता है इस रोग से पीडित रोगी प्राय स्वस्थ हो जाते है। दूसरे आक्रमण का भय बना रहता है रोग साधारणत ६ से ८ सप्ताह मे समाप्त हो जाता है। इसकी चिकित्सा मे रोगी को दो सप्ताह तक बिस्तर पर आराम करना चाहिये और उसे गर्म रखना भी आवश्यक है। आहार मे दुग्ध और कार्बोहाइड्रेट्स देने चाहिए स्नेह तथा विक्षोभक द्रव्य हितकारक नहीं होते। द्रव-पदार्थ अधिक मात्रा मे लेने चाहिये।

निम्न औषधि योग काम मे लिये जाते है-

(१) इन्स्युलिन (Insulin) का इजेक्शन।

(२) सैलाइन मे ५% ग्लूकोज मिलाकर गुदामार्ग से दे।

(३) पारद के योग से आरम्भ मे विरेचन करावे।

(४) बाद मे सैलाइन विरेचन दे।

(५) पूर्ण स्वस्थ होने तक काम पर न जाने दे।

(२) तीव्र पीत क्षीणता-यकृत् की दूसरी रोगावस्था है। इसमे यकृत् के सैल्स बडी मात्रा मे नष्ट हो जाते है। कामला और मस्तिष्क सम्बन्धित लक्षण प्राय उत्पन्न होते है। जो कि घातक सिद्ध होते है। यह रोग मध्यम (उग्र) के बाद प्राय मिलता है। गर्भकाल मे एक्लैम्पिसया के साथ मिलता है। यह रोग ज्वरो मे उपद्रव रूप हो सकता है। क्लोरोफार्म के विष के कारण हो सकता है। सिपलिस के कुछ रोगियो मे मिलता है कुछ अवस्थाओ मे वाइरस (Virus) के सक्रमण का सन्देह होता है। लक्षणो मे सक्रान्त यकृत् शोथ के समान ही लक्षण मिलते है कुछ दिनो या सप्ताहो के बाद तीव्र लक्षण प्रारम्भ हो जाते है।

इस रोग की चिकित्सा बहुत असतोषजनक है। प्रारम्भिक अवस्था मे सक्रान्त यकृत्शोथ की विधि के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। स्वदेक औषधि, दूध का भोजन, सोडाबाईकार्ब और ग्लूकोज को बडी मात्रा मे देते रहना चाहिये। इन्सुलिन को त्वचा मे देना चाहिए। ग्लूकोज को मुख से देना चाहिये। शिरामार्ग से भी लाभ कर सकता है।

३ वील्स रोग (Wells Disease)-इसका आक्रमण सहसा होता है। इसके साथ मे ज्वर भी रहता है। विष के लक्षण होते है बढे हुये रोगियो मे कामला के साथ वृक्क भी आक्रात होते है। इसमे रोग के प्रादुर्भाव का समय ६ से १२ दिन का होता है। इसका प्रारम्भ शीत लगने से होता है। शरीर मे दर्द वमन जिसके पीछे कटिशूल, सधियो मे दर्द, मासपेशियो मे वेदना और अतिशय थकान होती है। गले का सूजना प्राय होता है, रक्त का दबाव कम रहता है, जिह्वा का रग मैला होता है चेहरा सुर्ख और आख का कजेक्टाइवा (श्वेत मण्डल) सूजा होता है। ताप परिणाम प्राय १०२ डिग्री और १०४ डिग्री फा० के बीच मे रहता है। फिर धीरे-धीरे कम होता जाता है। ताप परिणाम को अपनी साधारण अवस्था आने मे ७ से १४ दिन लग जाते है। पचास प्रतिशत तक रोगियो मे कामला ४ से ६ दिन के अन्दर आ जाता है। और बहुत तीव्र होता है।

मल हल्के या श्वेत रग का होता है मूत्र गदला होता है। इसमे पित्त का रग और पित्त के लवण रहते है। एलब्यूमिन और रक्ताणु रहते है। रक्त मे बिल्युरीवीनिया उपस्थित होता है रक्त मे यूरिया की मात्रा १०० सी० सी० मे ६० से ३०० मि० ग्रा० तक पाई जाती है। ल्यूकोसाइटोसिस होता है यह एक क्यूबिक मि०ली० मे १२००० से ३०००० तक होता है। त्वचा मे इतस्तत रक्त का कलाओ से रक्तस्राव प्राय नहीं होता। हर्पोल प्राय होती है। ग्रन्थो मे इस रोग के कारण मे लिखा है कि चूहे इस बीमरी को फैलाते है। इसको उत्पन्न करने वाला जीवाणु लेप्टोस्पायरा ईक्टरो हेमेरेजिया (Leeptospira Ictero Haemorrhagia) है। यह मूत्र से बाहर आता है। जिसके द्वारा पानी दूषित होता है। मनुष्य को इस पानी मे स्नान करने से कटे स्थान से त्वचा के रास्ते यह शरीर मे पहुच जाते है।

चिकित्सा-इस जीवाणु के विपरीत सीरम (Anti leptospinal serum) ६० सी० सी० या अधिक मात्रा मे तुरन्त रोगी को देना चाहिए। डेक्ट्रोव के घोल (५%) मे इन्सुलिन मिलाकर शिरावेध से तुरन्त दे देना विशेष महत्व है। तीन घण्टे के अन्तर से ४०००० इकाई पेनिसिलीन चार दिन तक देनी चाहिए। यह कृमि इस औषधि को सहन नही कर सकता इसलिए जितनी जल्दी हो सके इसको देना चाहिए। बचाव के लिए चूहो को नष्ट करना चाहिए तथा जिन मनुष्यो का धन्धा चूहो के साथ का हो त्वचा के क्षत को या कटाव को बचाना चाहिए।

यकृत् शोथ की चिकित्सा-रोगी की शारीरिक अवस्था और आदाहिक क्रियाधिक्य के अनुसार इस रोग की चिकित्सा करनी चाहिए। इस रोग मे स्थानिक या सर्वांगिक रक्तमोक्षण कराना। स्थानिक रक्तमोक्षण इष्ट हो तो जलौका या कपिंग गिलास को उपयोग मे लाना चाहिए। अथवा अलसी या राई की पुल्टिस बाधे या ब्लिस्टर का प्रयोग करे और पीडा शमनार्थ अफीम

मिश्रित औषधि दे। यदि अतिसार और प्रवाहिका न हो तो रोगी को मृदु विरेचक औषधि देनी चाहिए एव उदर शुद्धि कायम रखने के लिए बार-बार मृदु विरेचक औषधि देते रहना चाहिए। कोष्ठशुद्धि और वेदना कम करने के लिए सुदर्शन चूर्ण के फाण्ट के साथ रेवाचीनी या कुटकी का थोडा चूर्ण देना हितकारक है। सुदर्शन चूर्ण तीव्र प्रकोप और मन्द प्रकोप दोनो मे लाभदायक माना गया है। इस रोग की मुख्य औषधि सूतशेखर रस है। यह औषधि यकृत् प्रदाह के अतिरिक्त आमाशय और आन्त्र मे रहे हुए विष को भी दूर करती है। सूतशेखर को गिलोय सत्व और शहद के साथ दिन मे दो बार देते रहना चाहिए और कोष्ठ शुद्धि रखना चाहिए। यदि विरेचन की तीव्र औषधि देनी हो तो नारायण चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। विरेचन के बाद प्लीहान्तक चूर्ण दिन मे तीन बार १-१ माशा देते रहे। तथा रात्रि को पचसकार या पचसम चूर्ण देते रहना चाहिए। थोडे ही दिनो मे तीव्र और चिरकारी दोनो प्रकार के यकृत् शोथ शमन हो जाते है। इनके अतिरिक्त हरडयुक्त कुमार्यासव भोजन के पश्चात् देते रहना अतिहितकर है। रोग शमन होने पर हृदय पौष्टिक औषधि रूप से ताप्यादि लौह, नवायस लौह, लक्ष्मीविलास रस और शिलाजीत देते रहने से थोडे ही दिनो मे पूर्ण आरोग्य की प्राप्ति हो जाती है। यदि अतिसार हो तो पचामृत पर्पटी, और जीरा चूर्ण शहद के साथ दिन मे तीन समय ८-१० दिन तक देते रहना चाहिए। पचामृत पर्पटी मल का रग सफेद होने पर विशेष गुणकारी है।

यकृत् शोथ मे उपयोगी औषधिया

(१) उदरामृत योग न० १-घी कुवार का रस, मूली का रस, नीबू का रस प्रत्येक २०-२० तोले, अदरक का रस ५ तोले सुहागा का फूला, नौसादर, पाच लवण (सेधव, काला, सोचर, साभर, समुद्र) प्रत्येक २-२ तोले, चित्रकमूल, पीपरामूल, भुनी हींग, सोठ, मिर्च, पीपल, भुना जीरा, अजवायन, लोहभस्म प्रत्येक १-१ तोला ले फिर गुड १५ तोले डाल सबको अमृतवान मे भरकर १५ दिन धूप मे रखे, बाद मे छानकर बोतल मे भरे।

मात्रा-६ माशे से १। तोले तक दिन मे दो बार भोजन के बाद २।। तोले जल मिलाकर पिलावे।

उदरामृत योग न० २-घृतकुमारी रस, नीबूरस, मूली रस प्रत्येक २०-२० तोले अदरक रस ५ तोले, सुहागा, चित्रक की छाल, भुना जीरा, पीपल, अजवायन नौसादर, पीपलामूल, भुनी हींग, सोठ, मिर्च, शुद्ध फौलाद का चूर्ण सबको पीसकर और सबको एक बोतल मे भरकर कार्क लगा ७ दिन धूप मे रखे, पश्चात् छानकर सुरक्षित रखे।

मात्रा-३ माशे से १ तोले तक समान जल मिलाकर भोजन के बाद दिन मे दो बार।

(२) यकृत् नाशक वटी-एलुआ, सोठ, राई, कलमी शोरा छोटी पीपल, चित्रक, सज्जीखार, हरड, सुहागा, नौसादर १-१ तोला पुराना गुड १० तोले। औषधियो को कूट छानकर गुड मिलाकर १-१ माशा की गोलिया बना ले।

❖❖

● सम्पादकीय टिप्पणी-

यकृत् शोथ पर सफल औषधि व्यवस्था पत्र

चिकित्सा मे यकृत् शोथ के रोगी बहुत सख्या मे आते है। बस्तुत यकृत् शोथ कोई रोग नही है अपितु एक लक्षण है जो यकृत् जन्य अनेक रोगो के कारण हो सकता है। अत उन रोगो के निर्मूल होने पर ही यकृत् शोथ मे लाभ होता है। यकृत् शोथ पर निम्न औषधि व्यवस्था से विशेष लाभ देखने को मिला है-

१ **आरोग्यवर्धिनी वटी २ गोली, पुनर्नवादि मण्डूर २ गोली,** सुबह, शाम जल या पुनर्नवाष्टक क्वाथ के साथ सेवन करावे।

२ **यकृत शोथ हर चूर्ण (स्वानुभूत)**-२-२ चम्मच भोजन के उपरान्त जल या कुमारी आसव ४-४ चम्मच के साथ बराबर जल मिलाकर ले।

यकृत् शोथ हर चूर्ण-कुटकी, आमलकी, भृगराज तथा कालमेघ इन चारो का समभाग चूर्ण बना ले। सभी यकृत्-विकारो मे रामबाण औषधि है।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

यकृत्-विद्रधि कारण एवं चिकित्सा-1

वैद्य छगनलाल समदर्शी, आयुर्वेदरत्न, आयुर्विद्याभूषण, आयुर्वेद फिजिशियन एण्ड सर्जन
प्रधान चिकित्सक-समदर्शी मल्टीपर्पज हास्पीटल, रायपुर (झालाबाड) राज०

शरीर के किसी भी बाह्य अग मे एक लघु शोथ या व्रण रोगी को कितना कष्ट देता है, इससे प्राय कोई बिरला व्यक्ति ही अपरिचित हो। परन्तु यदि यह व्रण-शोथ ही कालान्तर मे विद्रधि का रूप ले ले तो रोगी को महाकष्ट सहना पडता है। यही नहीं यदि यह विद्रधि शरीर के किसी आभ्यान्तरिक अग मे उत्पन्न हो जाय तो रोगी को महादारुण कष्ट उठाना पडता है। यह विद्रधि क्या है? इसके बारे मे आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि-

"त्वग्रक्तमासमेदासि सदूष्यास्थिसमाश्रिता।
दोषा शोथ शनैर्घोर जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम्।।

महामूल रुजावन्त वृत्त वाऽप्यथवाऽऽयतम्।
सविद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेय ।।"

अर्थात् अति प्रकुपित दोष एक सीमित स्थान मे त्वचा, रक्त, मास, मेद और अस्थि आदि को दूषित कर शोथ उत्पन्न करते है, जिससे शीघ्र पाक की प्रवृत्ति होने से पूय सञ्चित होता रहता है, जिसके कारण गम्भीरमूल पीडायुक्त, गोल अथवा चौडा शोथ उत्पन्न होता है, उसे विद्रधि कहते है। विद्रधि व्रण शोथ की ही पक्वावस्था हे। अर्थात् शोथ के स्पष्ट परिवर्तनो से युक्त धातुओ से घिरे हुए पूय सग्रह के सीमित स्थान ("A Circumscribed collection of pus surrounded by a zone in which acute inflammatory changes are evidently present") को विद्रधि (Absces) कहते है।

यह विद्रधि बाह्य और आभ्यन्तर भेद से (विद्रधि द्विविधामाहुर्बाह्याभ्यन्तरी तथा -चरक) दो पकार की होती है। त्वचा और उसके समीपवर्ती मास, स्नायु, रक्त आदि धातुए शाखामार्ग है। इनमे वात, पित्त, कफ, त्रिदोष, क्षत तथा रक्त मेद से बाह्य विद्रधिया होती है।[1] तथा मर्म, अस्थि सन्धि और कोष्ठ मे इन्ही उपरोक्त दोष दूष्यो से गुदा, बस्तिमुख, नाभि, कोख, वक्षण प्रदेश, वृक्क प्लीहा, यकृत्, हृदय तथा क्लोम मे अन्तर्विद्रधि होती है।[2] इन सबका वर्णन यहा सम्भव नही है। अत हम अपने मूल प्रस्तावित विषय पर ही विचार करते है-

यकृत् विद्रधि के कारण

गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नेशुष्कससृष्टभोजनात् ।
अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभि ।।

पृथक् सम्भूय वा दोषा कुपितागुल्मरूपिणाम्।
वल्मीकवत्वसमुन्नद्धमन्त कुर्वन्ति विद्रधिम्।।

गरिष्ठ, असात्म्य, विरुद्ध, शुष्क तथा पथ्यापथ्य मिलित भोजन से एव अधिक स्त्री सम्भोग, व्यायाम और अधारणीय वेगो के रोकने से तथा दाहकारण पदार्थों के खाने से अलग-अलग वा मिले हुए कुपित दोष गुल्म (गोला) के स्वरूप की और वल्मीक के समान ऊची उठी हुई यकृत् विद्रधि को पैदा करते है। आन्त्रिक ज्वर (Typhoid), फुफ्फुसपाक (Pneumonia), राजयक्ष्मा (T.B.), पूयमयता (Pyaemia), अमीवाजन्य अतिसार (Amaebic dysentery) इत्यादि के कारण भी कालान्तर मे यकृत् विद्रधि हो जाती है।

यकृत् विद्रधि के लक्षण

आचार्य सुश्रुत ने "श्वासो यकृति तृष्णा (हिक्का ?) च" यह मुख्य लक्षण यकृत् विद्रधि का बतलाया है। अर्थात् यकृत् विद्रधि होने पर श्वास लेने मे कठिनाई होती है और रोगी

---

[1] पृथग्दोषै समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा। -सु० नि० अ० ९

[2] गुदे बस्तिमुखे नाभ्या कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा। वृक्कयो यकृति प्लीहि हृदि वा क्लोम्निवाऽप्यथा।। -सु० नि० अ० ९

बार-बार पानी पीने की इच्छा करता है। (कई स्थानो पर हिक्का (हिचकी) लक्षण का उल्लेख है परन्तु यह लक्षण यकृत् विद्रधि की अन्तिम अवस्था मे जब रोगी मरणासन्न हो गया हो मिलता है) इन लक्षणो के साथ ही वे आगे कहते है कि शेष लक्षण बाह्य विद्रधि के लक्षणो के समान ही जानने चाहिए। अर्थात् वातदोष प्रधान यकृत् विद्रधि मे भारी वेदना (मन्थनवत् पीढा Throbing pain), स्पर्श को सहन न कर सकना (Throbing pain), सुई चुभोने जैसी वेदना या काटने जैसी वेदना का होना जो प्रथम दक्षिण आनुपार्श्विक प्रदेश (Right hypochondric region) मे प्रारम्भ हो जाती है और जिसका प्रचलन कन्धे की ओर होता है। इससे रोगी और चिकित्सक इस भ्रम मे पड जाते है कि मानो रोगी को कोई फुफ्फुस मे रोग हो गया हो, किवा फुफ्फुसपाक हो गया हो। जिसके कारण रोगी को श्वास लेने मे कष्ट अनुभव होता है। रोगी को चक्कर (भ्रम) आते है। विबन्ध होकर अफारा आ जाता है। पित्तदोष प्रधान यकृत् विद्रधि मे ज्वर (Fiver with rigors) जो सन्तत (Continuous) अथवा अन्येद्युष्क (Quatidion) प्रकार का हो सकता है। सन्तत ज्वर होने पर चिकित्सक इस भ्रम मे पड जाता है कि मानो रोगी को आन्त्रिक ज्वर हो गया हो और अन्येद्युष्क ज्वर होने पर, मलेरिया होने का चिकित्सक अनुमान लगा लेते हैं। इसके अतिरिक्त सायकालीन ज्वर होने का लक्षण भी मिलता है। प्रात काल तापमान नार्मल होता है और सायकाल बढते-बढते १०१ या १०२ तक पहुच जाता है। सर्दी लगकर ज्वर चढता है और रात को पसीना देकर ज्वर उतर जाता है। विषम ज्वर के भ्रमवश इसमे क्विनीन का कोई भी योग दिया जाय तो ज्वर नही उतरता है। इस तरह पूर्ण निदान न होने पर यह रोग अपना भीषण रूप लेकर रोगी को काल के गाल मे पहुचा सकता है। ज्वर के साथ ही सर्वाङ्ग दाह, तृष्णा की अधिकता हो जाती है। रोगी को प्रचुर स्वेद आता है। अन्न के लिए अरुचि रहती है। शरीर का भार घटता और अशक्ति बढती जाती है। हलका कामला भी प्रकट हो जाता है। मासक्षय (Emaciation), श्वेतकायाणुमयता (Leucocytosis) जिसके कारण उष्रसिप्रिय की सख्या प्राकृत से अधिक रहती है।) कफदोष प्रधान यकृत् विद्रधि मे कम वेदना एव देर से उभरने वाला और देर से ही पकने वाला शोथ होता है। नाक तथा मुख से पतला, पीला, श्वेत उष्ण या शीतल एव चिकनाहटयुक्त स्राव होता है जिससे ऐसा लगता है कि रोगी को प्रतिश्याय या वातश्लैष्मिक ज्वर हो गया हो।

यकृत् विद्रधि के असाध्य लक्षण

यदि यकृत् विद्रधि का पाक होकर उसका पूय मुख आदि मार्ग से निकलने लगे तब यह असाध्य हो जाती है। क्योकि यह पूय रक्त मे मिलाकर विष का सचार सारे शरीर मे कर देता है, जो शरीर के लिए घातक है। इसके अलावा पूय के कारण शरीर के किसी भी अन्य उदरस्थ अग के विकृत होने का भय रहता है। जब रोगी अफारा, मूत्रावरोध, वमन, हिक्का, प्यास, असह्य वेदना और श्वास कृष्छ्रता की तकलीफ से युक्त होता है तो वह बचाया नही जा सकता है। फेफडे आदि मे यदि पाक का सक्रमण हो जाय तो खासी के साथ पूय आने लगता है तब ऐसी अवस्था मे यह सर्वथा असाध्य रोग हो जाता है।

यकृत् विद्रधि चिकित्सा

प्राच्य-पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रो मे यकृत् विद्रधि हर विभिन्न योग तथा विभिन्न प्रकार की चिकित्सा विधि का वर्णन दिया गया है। परन्तु यहा लेख के विस्तार भय से उन सभी का उल्लेख न कर हम वही अनुभूत आयुर्वेदिक, एलोपैथिक चिकित्सा दे रहे है। जो रोगी के लिए सद्य लाभदायक है।

आयुर्वेद मत से यकृत् विद्रधि की चिकित्सा-

(क) १ ग्रहणी वज्रकपाट (र० र० स०)-मात्रा १ से २ गोली दिन मे ३ बार तक दे। अनुपान-शहद, मट्ठा, इन्द्र जौ और कुटकी का क्वाथ इनमे से किसी एक के साथ रोगी की प्रकृति अनुसार दे।

२ विडङ्गारिष्ट (शा० स०)-१। तोले से २।। तोले तक दिन मे २ बार भोजन के बाद दे।

(ख) सहिजने की छाल के क्वाथ की ७ भावना दी हुई कज्जली २-२ रत्ती को दिन मे २ बार प्रात -साय शहद के साथ देकर फिर सहिजने की छाल का स्वरस २-२ तोले पिलावे। यदि ताजी छाल न मिले तो स्वरस के स्थान पर सहिजने की सूखी छाल का कषाय बनाकर उपयोग मे ले सकते है। हो सके तो सहिजने की छाल मिला उबाला हुआ जल पीने को देना चाहिए। एव रोगी को केवल दूध पर रखना चाहिए। दूध भी

सहिजने की छाल के चूर्ण और ४ गुना पानी मिला क्षीरपाक विधि से पकाकर पिलाना चाहिए।

(ग) सहिजने के समान ही उपरोक्त विधि से वरुना (Crataevonurvla Banch Ham,) के क्वाथ का उपयोग लाभक ी है।

यकृत् विद्रधि की आधुनिक चिकित्सा-

(क) १ इराईथ्रोमाइसिन (Eryhromycin) १०० मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० तक की १-१ गोली प्रति ६-६ घण्टे पर दिन मे ४ बार नित्य दे। बच्चो को इसका सीरप ५ मि० ग्रा० प्रति किलोग्राम भारानुसार दे।

२ ई-माइसिन(E-mycin)-की गोली या सीरप उपरोक्त विधि से ही दे। या

३ एमीक्लीन (Amiclin)-की गोली उपरोक्त विधि से दे। इसकी प्रत्येक टिकिया मे टेट्रासाइक्लीन हाइड्रोक्लोर २५ मि० ग्रा०, क्लोरोक्वीन ८० मि० ग्रा० डाईआयोडोहाइड्रोक्सी क्वीनोलीन २५० मि० ग्रा० होता है।

(ख) १ सरबेक्स (Surbex)-की टिकिया उपरोक्त 'क' भाग की किसी भी औषधि के साथ हर खाना खाने के बाद दे।

२ हिपेटोग्लोबिन (Hepatoglobin)-१ से २ चम्मच दिन मे दो बार खाना खाने के बाद दे।

(ग) विटामिन बी० कम्लेक्स का कोई भी योग गौली कैपसूल या सीरप के रूप मे 'क' भाग की औषधियो के साथ देते रहना चाहिए।



● सम्पादकीय टिप्पणी-

यकृत् विद्रधि पर सफल औषधि व्यवस्था पत्र

यकृत् विद्रधि यकृत् का एक ऐसा विकार है जो बहुत कष्टदायक होता है तथा प्रारम्भिक अवस्था मे उपचार न करने पर असाध्य हो जाता है। हमे अपने चिकित्सा काल मे कई यकृत् विद्रधि के रोगियो का उपचार करने का अवसर मिला है और यह सभी आयुर्वेदिक चिकित्सा से निरोग हो गये। यकृत् विद्रधि मे हम जो औषधि व्यवस्था करते है उसका विवरण पाठको के लाभार्थ यहा प्रस्तुत कर रहे है-

१ **सहजनादि घनसत्व**-१-१ ग्राम सुबह, शाम पुनर्नवाष्ट क्वाथ के साथ सेवन करावे।

२ **आरोग्य वर्धिनी वटी**-२ गो०, **पुनर्नवादि मण्डूर**-२ गो०, **व्रणापहारी वटी**-१ गो० उपरोक्त दवा के १ घन्टा बाद गौमूत्र या जल के साथ।

३ **कुमारी आसव**-४-४ चम्मच भोजन के उपरान्त जल के साथ उपरोक्त औषधि व्यवस्था मे सहजनादि घनसत्व एव व्रणापहारी वटी आपको स्वय बनानी पडेगी।

सहजनादि घनसत्व-सहजन की छाल ३ भाग अपामार्ग २ भाग, रोहितक छाल लेकर घनसत्व बनाले। पाउडर ही सेवन करे या कैपसूल मे भरले।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

यकृत्-विद्रधि कारण एवं चिकित्सा-2

डा० जहानसिह चौहान, आयुर्वेद-बृहस्पति
मु० पो०-ठठिया (फर्रुखाबाद)

परिचय-

इसे अग्रेजी मे ट्रोपिकल एब्सेस या हिपेटिक एमीविएसिस भी कहते है अर्थात् यकृत् मे किसी प्रकार सम्भवत जीवाणुओ के कारण भी विद्रधि पैदा हो जाती है तब उसे इस नाम से सम्बोधित करते है।

सम्पूर्ण यकृत्कोष मे व्यास एव सीमाबद्ध शोथ पूय उत्पत्ति मे परिणत होकर विद्रधि को उत्पन्न करता है। भारतीय उष्णकटिबन्धो मे प्रवाहिका के विष के उपसर्ग से सर्वाधिक यकृत्-विद्रधि की उत्पत्ति दृष्टिगोचर हुई है। विद्रधि के अन्य भी उपसर्ग इसके कारण होते है। यकृत् खण्ड का पूयमय हो जाना प्राय इसमे देखा गया है। इसमे अनियमित ज्वर यकृत् प्रदेश मे दबाने से पीडा की अनुभूति, यकृत् की क्रिया मे विकृति एव पक्वाशय तथा आन्त्र की क्रिया की विकृति प्रभृति लक्षण इसके साथ उत्पन्न होते है। स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे यह रोग अधिक होता है। २०-२४ वर्ष की अवस्था वालो मे विशेष रूप से मिलता है। कभी-कभी यह रोग बालको मे भी पर्याप्त रूप से मिलता है। हमारे देश की अपेक्षा पश्चिमी उन्नत देशो मे यह रोग अधिक होता है।

रोग के कारण-

यकृत्-विद्रधि का प्रधान कारण ८५ प्रतिशत एण्टोमीवा हिस्टोलिटीका अर्थात् धातुनाशी अमीवा ही होता है। पूयजनक गोलाणु एव दण्डाणुओ के कारण भी इस रोग की उत्पत्ति होती है आमातिसार एव यकृत्-विद्रधि का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। अमीविकता (Amoebiasis) का यह अत्यन्त महत्व का साधारण उपद्रव अनुगामी विकार होता है। तीव्र अनुतीव्र, जीर्ण एव गुप्त प्रभृति सब प्रकार की कामरूपता मे भी यह विकार १० दिन से लेकर महीनो अथवा वर्षो के पश्चात् (२० वर्ष तक) उत्पन्न हो जाती है। आधुनिक आमातिसारनाशक औषधो का प्रयोग करने वालो मे इसका परिणाम अत्यधिक मात्रा मे रहता है।

यथोक्त निदाने-

पृथक्सभूय वा दोषा कुपिता गुल्मरूपणीम् ।
वल्मीकवत्समुद्वद्धामन्त कुर्वन्ति विद्रधिम् ।।

गुदे बस्तिमुखे नाभ्या कुक्ष्यो वक्षणयोस्तथा।
वृक्कयो प्लीह्नि यकृति हृदि क्लोम्नि वाप्यथ ।।

यकृत्-विद्रधि अकेली अथवा अधिक सख्या मे उत्पन्न हो सकती है। अमीविक डिसेण्ट्री को छोडकर विद्रधि प्राय बहुत होती है। जबकि विद्रधि मे बडा स्वरूप का मिलना केवल डिसेण्ट्री मे होता है। इस रोग की उत्पत्ति रोग के किसी सक्रमण स्थान से विष के फैलाव से होता है। पित्त के मार्ग मे व्रण आदि के होने पर भी इसकी उत्पत्ति होती है। कोष्ठ मे सूजन अथवा पूयोत्पत्ति विशेषकर उन रोगियो मे जिनमे कि बस्ति भाग के अवयवो मे और एपेण्डी साइटिक मे देर तक पूय रहती है के द्वारा रोग होता है। कभी-कभी गुदा का शस्त्रकर्म भी यकृत-विद्रधि को उत्पन्न कर देता है। इसमे सक्रमण यकृत् सिरा (Portal Vein) मे आता है। पोरटल पाइमिया (Portal Pyaemia) इसमे एपेण्डिक्स अथवा प्रोस्टेट एव मलाशय से उपसर्ग का प्रसरण होता है यह Suppurative Polephlebitis के गौड रूप से उत्पन्न होता है। इसमे विद्रधि Multiple होता है। पूययुक्त कोलेञ्जाइटिस के उपसर्ग पित्त नली के ऊपर बढता है। आघात के द्वारा भी विद्रधि सदैव यकृत् के घाव के उपरान्त गौण रूप से प्रकट होता है।

जो व्यक्ति अमीविक डिसेण्ट्री की चिकित्सा नहीं कराते है अथवा नहीं कराई है साथ ही जो व्यक्ति अत्यधिक मद्य का सेवन करते है उनमे यह रोग अधिक होता पाया गया है। लोगो का विचार है कि स्त्रिया एव बच्चे जो शराब का अत्यधिक प्रयोग

नहीं करते है इसीलिये उनमे यह रोग बहुत ही कम होता है। पश्चिमी उन्नत देशो के स्त्री-पुरुष दोनो ही समान रूप से मद्य का सेवन करते है इसीलिए उन दोनो मे समान रूप से रोग के रोगी पाये जाते है।

सम्प्राप्ति-

अमीवा का उपसर्ग होने पर प्राय डिसेण्ट्री होती है। पर यह हर परिस्थिति मे आवश्यक नहीं है कि प्रवाहिका डिसेण्ट्री उत्पन्न हो ही जावे। कितने ही व्यक्तियो मे कोई लक्षण पैदा नही होते है। यही कारण है कि यकृत्-विद्रधि के कुछ रोगियो मे प्रवाहिका एव अतिसार का पूर्व इतिहास मिलता है और कुछ मे नहीं। जीवाणु के कारण सक्रमित होने से बडी आत की प्राचीर मे व्रण या घाव पैदा हो जाते हैं और उनमे यह जीवाणु और भी अधिक सख्या मे पैदा हो जाते हैं। ये अमीवा जो बृहदन्त्र मे सक्रमण पैदा करता है प्रतिहारिणी (पोर्टल) शिरा की शाखा-प्रशाखाओ के द्वारा अधिक सख्या मे सम्पूर्ण यकृत् मे उपस्थित हो जाते हैं। यही इनका सामान्य मार्ग से भी गमन करते है, वह रास्ता यह है कि कभी-कभी ये बडी आत की दीवालो मे जो व्रण पैदा कर बढते है तो उन्हे पार कर उदर और विशेष-कर पेट की दीवालो तक पहुचते है और वहा से सीधे यकृत् मे पहुच जाते है। पर अधिकाश रूप से यह सामान्य मार्ग से ही पहुचते हैं।

जैसे ही जीवाणु यकृत् मे पहुचते है तो सबसे प्रथम वहा सूजन पैदा होती है। सूजन के कारण यकृत् मे रक्त की अधिकता उन जीवाणुओ के नाश का नैसर्गिक कारण बनता है। पर्याप्त सख्या मे जीवाणुओ की मृत्यु होती है। यदि कोई रोगी यद्यपि है तो उसका यकृत् पूर्व से ही काफी दुर्बल होता है इसीलिए उसमे खून की अधिकता न होने से यह जीवाणु बहुत बडी सख्या मे उत्पन्न होते है। इन जीवाणुओ से विष (Toxin) की उत्पत्ति होती है जिससे यकृत् की धातु का विनाश होता है और यह धातुविनाश ही घाव बनाते हैं। तत्पश्चात् ऐसे अनेको घाव बनते जाते है और आपस मे मिलकर एक बडा घाव का रूप धारण कर लेते है।

यह घाव ७५ प्रतिशत रोगियो मे विशेष रूप से दाहिनी ओर के यकृत् मे होता है जो ऊपरी हिस्से मे अधिक होता है। यह बढा हुआ घाव एक फोडे का जो बढी हुई अवस्था मे नारियल के सदृश्य होता है, आकार ले लेता है। कभी-कभी अनेको छोटी-छोटी विद्रधिया बनती है, जो आपस मे मिल जाती हैं। इनका आकार सुपारी के बराबर होता है।

यह भी देखा गया है कि यकृत् की ऊपरी प्राचीर मे छेद होकर घाव फुफ्फुस तक पहुच जाता है। इस अवस्था मे थूक अथवा कफ के साथ निकलता है। कभी-कभी यह घाव आन्त्र मे फूट जाता है अथवा नाडी व्रण पैदा होकर बाहर आ जाते है। जब रोग अधिक तीव्र स्वरूप का नहीं होता है तब रोग की आरोग्यता शीघ्र होती है। पर जो रोग अधिक दीर्घकालिक हो जाता है तब उस अवस्था मे उसकी दीवाले मोटी, मुलायम एव तन्तुमय हो जाती है। चिकित्सा के द्वारा जब इन जीवाणुओ का विनाश हो जाता है तो घाव और भी घिरकर तन्तुमय हो जाता है। घाव का पूय गाढा एव पीला होता है साथ ही घाव का घेरा सिकुडने लगता है और उस पर चूना (कैल्सियम) आकर जमा हो जाता है जिससे वह पूरी तरह बन्द हो जाते है।

लक्षण-

इस रोग का प्रारम्भ प्राय उग्र रूप से होता है। प्रारम्भ मे यकृत् के स्थान मे भारीपन, सूचीवेधनवत् पीडा शनै -शनै होने लगती है। यकृत् बढा हुआ एव शोथयुक्त प्रतीत होता है। यकृत् स्थान को दबाने पर पीडा की अनुभूति होती है। यकृत् पीडा खासने से अधिक तीव्र हो जाती हे। अनेक रोगियो मे रात्रि के समय आमवात के समान पीडा दक्षिण अशसन्धि मे होने लगती है। जब विद्रधि वाम भाग मे होती है तब पीडा वाम अशसन्धि मे रहती है और दोपहर १२ बजे के समय शीत लगकर ज्वर आता है। सायकाल तक पहुचते-पहुचते शरीर का तापक्रम १०२-१०३ डिग्री तक पहुच जाता है। तापक्रम रात्रि भर रहकर सबेरे जब उतरता है तो रोगी की शारीरिक गर्मी स्वाभाविक से भी कम हो जाती है। जब रोग मे तापक्रम उग्रावस्था (१०३ फा०) पर होता है तब ऐसा प्रतीत होता है कि रोगी को मलेरिया बुखार है। बुखार उतरने के पश्चात् रोगी को पर्याप्त पसीना भी आता है, यहा तक कि रोगी को कपडा बदलने की आवश्यकता तक पड जाती है। रोगी क्रमश दुर्बल होता जाता है और पीली मिट्टी के समान चमडे का रग हो जाता है।

श्वास से दर्द पर प्रभाव पडता है और जब रोगी वाम पार्श्व मे लेटता है तब अधिक बढ जाता है। यकृत् बढ जाता है, यह वृद्धि नीचे की ओर भी हो सकती है परन्तु विशेष रूप से ऊपर

की ओर होती है। यहा तक कि यह वृद्धि कभी-कभी चूचक तक पहुच जाती है। स्पर्श करने पर यकृत् कठिन प्रतीत होता है परन्तु गाठदार नहीं होता। इसमे पीडा कभी मन्द तो कभी तीव्र होती है और कभी जलन की भाति पीडा होती है। यह वेदना पीछे की ओर असफलक के मध्य भाग मे अथवा दक्षिण अश की तरफ फैलती है तथा गम्भीर श्वास लेने, खासने छींकने से प्राय बढती है। वाए (वाम) पार्श्व मे लेटने से पीडा बढती है और दाहिने ओर लेटने से कम होती है। निचली पसलियो के मध्य भाग उभर आते हैं। किसी-किसी समय विद्रधि का उभार साफ प्रकट होता है। जब विद्रधि बायीं ओर होती है तो बढी हुई प्लीहा के समान प्रतीत होती है। पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस रोग मे प्लीहा नहीं बढती है। जब विद्रधि पित्ताशय के निकट होती है तब दाहिनी ओर की रेक्टस पेशी मे कुछ कठोरता आ जाती है। कभी-कभी यकृत् की वृद्धि सम्पूर्ण उदर मे व्याप्त हो जाती है और सम्पूर्ण पेट ही फूला हुआ प्रतीत होता है। जब विद्रधि अधिक बढ जाती है तब हृदय ऊपर की तरफ पार्श्व की ओर हटा हुआ जान पडता है। इस प्रकार हृदय की धडकन अनियमित एव शीघ्र हो जाती है।

रोगी को अन्न के लिए अरुचि रहती है। शरीर का भार घटता जाता है। साथ ही अशक्ति बढती है। हल्का-हल्का कामला भी प्रकट होता है।

खून मे लाल कणिकाओ की वृद्धि न होते हुए भी श्वेत कणिकाये प्राय १५ से ३५ हजार तक बढ जाती है। रक्तक्षय भी कुछ हो जाता है। दीर्घकालिक विद्रधि हो जाने पर रक्तक्षय ध्वसकारी हो जाता है। सामान्य रूप से यकृत् विद्रधि के लक्षण एव उसकी प्रगति अपर मे वर्णन किये हुए स्वरूप की होती है और इसके लिए कई महीने लग जाते है।

किसी-किसी समय यकृत्-विद्रधि होते हुए भी कोई भी लक्षण दृष्टगत नहीं होते, और जब विद्रधि फुफ्फुस अथवा आन्त्र या दूसरे स्थानो मे फूटती है तब उसकी ओर ध्यान जाता है।

कभी-कभी यकृत्-विद्रधि की पूर्व मे उचित चिकित्सा नहीं की जाती तो विद्रधि फैलती जाती है और विष सचार हो जाता है जो शरीर के लिए अत्यन्त घातक हो सकता है। यह किसी भी दूसरे उदरस्थ अग को विकृत कर सकता है।

इस रोग मे उग्र प्रकार बडा मारात्मक होता है इसमे प्राय अतिसार होने लगता है। यकृत् की वृद्धि तीव्रता के साथ होती है, रोगी को तेज असह्यनीय पीडा कष्टदायक होती है, तापक्रम भी तीव्र स्वरूप का रहता है जो भयानक रूप से पसीना देकर उतरता है। सफेद कणिकाओ की वृद्धि सर्वाधिक होती है। इस प्रकार तीव्र सह लक्षणो से युक्त रोगी २०-२५ दिन मे मर जाता है।

निदान (Diagnosis)-

यकृत्-विद्रधि के पूर्वोक्त लक्षणो का ध्यान करके रोगी की परीक्षा करने से रोग का निर्णय किया जाता है। अत चिकित्सक के लिए निदान स्वरूप निम्नलिखित चिन्हो पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

१ रोगी मद्यसेवी तो नहीं है।

२ रोगी को पूर्व मे अतिसार अथवा आमातिसार का रोग हो चुका है अथवा नहीं। चाहे वह अतिसार कितने वर्ष पूर्व क्यो न हुआ हो।

३ बुखार तीसरे पहर बढता है अथवा नही। यदि बढता है तो कितना पसीना आता है।

४ यकृत् मे पीडा, न छूने वाला असह्य दर्द, यकृत् का क्रमश बढते जाना, क्रमिक दुर्बलता, चमडे का पीलापन आदि लक्षणो की उपस्थिति का ज्ञान।

उपर्युक्त लक्षणो के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् निम्न निदानात्मक परीक्षाये करनी चाहिए-

१ **मल परीक्षा**-रोगी के मल की परीक्षा करने पर उसमे अमीवा प्राय नहीं मिलते, लेकिन ५० प्रतिशत रोगियो मे उन जीवाणुओ के कोष्ठ मिलते है। यदि सदिग्ध रोगी मे यह मिले तो रोग का निश्चयात्मक निदान समझना चाहिए।

२ **रक्त परीक्षा**-खून की परीक्षा मे यह देखना चाहिये कि लालकणो की अपेक्षा श्वेत कणिकाओ की सख्या किस मात्रा मे बढी हुई है जैसा कि पूर्व मे बताया गया है कि उनकी मात्रा कहीं अधिक बढ जाती है। यदि लाल कणिकाये ७० प्रतिशत कम हो तो मवाद की सम्भावना कम समझनी चाहिए। ईओसिनोफिल ८ से १० प्रतिशत हो जाते है। इस रोग मे ज्वर, मलेरिया ज्वर की भाति शीत से आता है अत मलेरिया ज्वर का भ्रम हो जाता

है। इसके लिऐ रक्त परीक्षण मे मलेरिया जीवाणु की उपस्थिति देखनी चाहिये। जीवाणु की उपस्थिति न मिलने पर यकृत् विद्रधि रोग का निश्चयात्मक निदान हो जाता है।

३ मवाद परीक्षा-यकृत् स्थान मे सुई की पिचकारी लगाकर उसमे से मवाद निकाल लिया जाता है और उस मवाद (पूय) की परीक्षा की जाती है कि विद्रधि है अथवा नहीं।

४ एक्स-रे X-Ray परीक्षा-यह परीक्षा तभी सम्भव होती है जब कि यकृत्-विद्रधि ऊपरी हिस्से मे होती है। दाहिने खण्ड के ऊपरी तल का और ऊपरी शिखर के हिस्से का उठना तम्बू के समान दिखाई देता है। श्वास के साथ उसका न हिलना यकृत्-विद्रधि का सूचक है।

चुपके शान्त यकृत्-विद्रधि के रोगियो मे पहचान सदैव कठिन होती है डिसेन्ट्री का कोई इतिहास नहीं मिलता है और मल का बार-बार परीक्षण असफल हो जाता है। अमीविक यकृत्-शोथ मे सम्पूर्ण श्वेताणुओं की गणना के अनुपात मे ज्वर अधिक रहता है। अमीविक विद्रधि मे गणना बारह हजार से १६ हजार प्रतिक्यूबिक मिलीमीटर मे रहती है। पोलीमौर्फ ६५-७५ प्रतिशत होते है। जब अन्य कारणो से स्ट्रेप्टोकोकल अथवा स्टैफ्लोकोकल का सक्रमण वृद्धि पर होता है तब श्वेताणु २० हजार से ३० हजार प्रति क्यूबिक मिलीमीटर मे होते है। यह स्थिति रक्त मे पूय रहने से उत्पन्न विद्रधि मे होती है। अनियमित सदिग्ध ज्वर वाले रोगी मे सदैव यकृत् के एमीबिएसिस का सन्देह करना चाहिये।

परिणाम-

विद्वानो का विचार है कि ५ से १० प्रतिशत रोगियो मे रोग का तीव्र आक्रमण होता है। उनमे आमातिसार के साथ-साथ यकृत् की वृद्धि भी तीव्रता के साथ होती है तथा मलेरिया ज्वर की भाति पीडा के साथ उच्च स्वरूप का तापक्रम बढकर पसीना आने के पश्चात् उतर जाता है, श्वेताणुओ की सख्या अधिक हो जाती है। इसमे रोगी ७-२१ दिन मे मर जाता है।

ठीक समय उचित चिकित्सा तथा शल्यकर्म के अभाव मे प्राय रोगी अत्यन्त दुर्बल होकर मर जाता है। उष्ण प्रदेश की विद्रधि को छोडकर मृत्यु सख्या अधिक होती है। बहुत सी विद्रधिया होने पर मृत्यु प्राय ३ सप्ताह मे हो जाती है, ज्वर बढता है और रोगी टाइफाइड की स्थिति मे मर जाता है। जब विद्रधि पेरिटोनियम अथवा अन्त्रप्रणाली मे फटती है तो परिणाम भयानक होता है। अथवा यह ऊपर की ओर फटती है जिसमे धीरे-धीरे रोहण हो जाता है। प्राय विद्रधि विशेष रूप से उष्ण प्रदेश की विद्रधि दक्षिण फेफडे मे अथवा प्लूरा मे फटती है जिससे रोगी को तीव्र खासी आती है और फेफडे के मूल मे ठोसपन के लक्षण मिलते है। थूक मे विद्रधि का अश आने से यह लाल हो जाता है, रोगी या तो स्वास्थ्य लाभ करता है अथवा निरन्तर स्राव होने से थकान के कारण मर जाता है। फुफ्फुस, आमाशय आन्त्र तथा उदर एव छाती की दीवाल मे विद्रधि के विदीर्ण होने से चिकित्सा द्वारा बचने की काफी आशा की जाती है। परन्तु जब हृदयावरणी कला एव उदरच्छदाकला मे फटती है तो इन स्थानो पर शोथ आने से रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त फुफ्फुस विद्रधि न्यूमोनिया न्यूमोथोरेक्स पूयोरस डिसेन्ट्री से सम्बन्धित विदीर्ण होने के कारण उत्पन्न हुए अपद्रवो से भी मृत्यु हो जाती है।

इस रोग मे रोगी की उचित चिकित्सा न करने से ५०-८० प्रतिशत रोगी मर जाते है। आमातिसार एव यकृत्-विद्रधि का घनिष्ट सम्बन्ध मालूम होने से, प्रवाहिका के लिए उत्तम आधुनिक औषधियो के आविष्कार एव यकृत्-विद्रधि मे एमेटीन का प्रयोग, पूय का आचूषण एव शस्त्रकर्म के द्वारा सफलता प्राप्त होने से अब मृत्यु सख्या काफी घट गई है।

उपद्रव रहित यकृत्-विद्रधि प्राय साध्य होती है। अनेक विद्रधियो की उपस्थिति एव प्रवाहिकायुक्त यकृत्-विद्रधि जो अन्य उपद्रवो से भी युक्त होती है। प्राय कष्टसाध्य होती है।

यकृत्-विद्रधि मे चिकित्सा सिद्धान्त-

यकृत्-विद्रधि की चिकित्सा मे निम्नलिखित सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया जाता है-

१ यकृत्-विद्रधि मे केवल लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

२ वेदना एव यत्रण-निवारण करने के लिये स्थानिक उत्ताप का प्रयोग करना चाहिये।

३ वेदना निवारक प्रलेप, उपनाह प्रभृति औषधि की व्यवस्था करे, साथ ही रोगी को पूर्ण विश्राम दे।

४ कोष्ठ की पूर्णतया शुद्धि रखनी चाहिये, इसके लिये लघु विरेचन दे।

५ सर्वांगिक लक्षणो की चिकित्सा के लिए क्विनाइन और धान तथा अम्ल उपयोगी होता है।

६ रोगी के बल के सरक्षार्थ उत्तेजक औषधि एव यथेष्ठ परिणाम मे पुष्टिकारक औषधि दे।

७ चर्बी एव घी रहित भोजन उस अवस्था मे कभी नहीं रोकना चाहिये जबकि उसके खाने से रोगी को कै न आती हो अथवा मितली न आती हो। यदि इस प्रकार के भोजन के सेवन से रोगी को कै आती हो तो इन्हे तत्काल बन्द करा देना चाहिये तथा ग्लूकोजसैलाइन का सूचीवेध शिरामार्ग से लगना चाहिए।

८ एमिनोएसिड की वस्तुये यथा सिस्टीन मीथियोनिन ३-५ ग्राम की मात्रा मे प्रतिदिन खिलाना चाहिये, जिससे आरोग्यता शीघ्र आ जाती है, लेकिन सदैव इसका प्रयोग लाभकर नहीं होता।

९ यकृत्-विद्रधि कृच्छ्रसाध्य व्याधि है। उपेक्षा से प्राय यह असाध्य हो जाती है। पूयभाव उत्पन्न न होने देने की चिकित्सा करनी चाहिये।

१० पूयभाव उत्पन्न हो जाने पर शस्त्र चिकित्सा करनी चाहिये।

११ निदान परिवर्जन विकृति का अपनयन, रोगी के बल की रक्षा आदि इसके प्रतिकार के प्रधान अग है। शेष चिकित्सा व्रणवत् करनी चाहिए।

चिकित्सा–

इस रोग की चिकित्सा मे प्रारम्भिक अवस्था मे इमेटिन १ ग्रेन (६० मिलीग्राम) को त्वचामार्ग से दिया जाता है। यह कार्य ६ दिन निरन्तर किया जाता है। तत्पश्चात् किवनोक्सिल अथवा एव्लोचिन (Avlochin) को ४ ग्रेन (२४० मिलीग्राम) की मात्रा मे दिन मे ३ बार १० दिन तक देते है इससे रोग पूर्णतया ठीक हो जाता है।

क्लोरोक्वीन डाईफास्फेट (Chloroquine Diphasphate) इस रोग की उपद्रव रहित औषधि है। ऐसा विचार किया जाता है कि औषधि आन्त्र मे विलीन होकर यकृत् मे सचित होती है और अपना प्रभाव दिखाती है। इस औषधि के निम्न योग काम मे लिये जाते है-

१ एव्लोक्लोर Avlochlor

२ रिसोचिन Resochin

३ निवाक्विन Nivaquine

इस प्रकार इस रोग की चिकित्सा मे उपर्युक्त सूचीवेध एव इन गोलियो के साथ-साथ भी दिया जाता है इससे रोगी को शीघ्र पर्याप्त लाभ होता है। इस चिकित्सा के पश्चात् आतो को ठीक करने के लिए औषधि दी जाती है।

ओरियोमाइसिन (Aureomycine)-इसे २०० मि० ग्रा० की मात्रा मे दिन मे ३ बार देते है।

इमेटिन हाइड्रोक्लोराइड के सूचीवेध मे प्रयोग के समय रोगी को पूर्ण विश्राम दिया जाता है। इमेटिन पर-आयोडाइड (Emetin Per-Iodide) शुष्क कलेजी का अर्क ३-५ ग्रेन की मात्रा मे प्रतिदिन १० दिन तक दिया जा सकता है। बाजारो मे यह Dride ox Bile के रूप मे मिलता है। एमेटीन विस्मथ आयोडाइड (Emetine Bismuth Iodide) एव ओरेमेटीन (Auremetine) का भी चिकित्सा मे प्रयोग किया जाता है।

विटामिन 'सी' या बी-कम्पलेक्स के सूचीवेध अलग-अलग अथवा एक साथ मिलकर देते है।

टैरामाइसिन का प्रयोग भी कराया जा सकता है। इसमे एण्ट्रोवायोफार्म का प्रयोग भी लाभकारी होता है।

यदि औषधि चिकित्सा से लाभ न हो रहा हो, विद्रधि आकार मे बडी हो तो पूय का निर्हरण करना चाहिये। सिरिज से नीडिल डालकर विद्रधि का पूय खींचा जाता है जिसे आचूषण कहते है। प्रयोग विधि नीचे दी जा रही है।

आचूषण प्रयोग–

परीक्षा के द्वारा जहा पर विद्रधि की प्रतीति हो रही हो, वहा पर बडी सुई सिरिज से वेधकर पूय को चूस ले। यदि परीक्षण मे उभार से पीडनासह स्थान से अथवा तरग प्रतीति से विद्रधि के ठीक स्थान का पता न लगे, तो प्राय यकृत् के दक्षिण खण्ड के ऊपरी एव पीछे के हिस्से मे होने के कारण अग्र कक्षा रेखा की आठवीं या नवीं पर्शुका के मध्य मे वेध करके पूय का आचूषण करे। यदि रोगी भयभीत हो तो आवश्यकतानुसार नोवेकेन का सूचीवेध पूर्व मे दे देना चाहिए। यकृत् मे सुई डालते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सुई ३।। इच से

अधिक गहरी नहीं जानी चाहिए, अन्यथा बडी रक्त वाहिनियो के विधने का भय रहता है। प्राय १-२ बार पूय के आचूषण से काम चल जाता है। आवश्यकतानुसार इस कार्य को ५-६ बार तक किया जा सकता है। आचूषण के पश्चात् एमेटिन को पूर्व मे बताये हुए अनुसार दे। तत्पश्चात् ऐमेटिन विस्मथ आयोडाइड एव याट्रिन का क्रम दे।

एक अन्य उत्तम सफल चिकित्सा का उपक्रम नीचे दिया जा रहा है-

एमेटिन एव आचूषण-

अन्य चिकित्सा क्रमो की अपेक्षा यकृत्-विद्रधि का यह श्रेष्ठतम उपचार है। इस चिकित्सा क्रम मे पहले रोगी को एमेटीन की ३-३ सुइया दी जाती है, इससे यकृत् मे रक्त की अधिकता कम होकर रक्तस्राव की प्रवृत्ति घट जाती है। इसके पश्चात् यकृत् प्रदेश के परीक्षण से जहा पर विद्रधि प्रतीत होती है वहा पर दीर्घ परीक्षा सूची, कैन्यूला, हाइपोडर्मिक पिचकारी एव एस्पिरेटर (आचूषण) द्वारा वेध कर पूय का अस्तित्व प्रतीत कर प्रकाशित पूय होने पर एक वृद्धाकार ट्रोकार-कैन्यूला का व्यवहार किया जाता है। अथवा परीक्षण सूचीछिद्र के अनुसार विद्रधि तक एबसिस से काटकर बाहर कर दिया जाता है और एक लम्बी शलाका उसके अन्दर प्रवेश कर दी जाती है। इस समय रबर की नली (अगुलि के समान मोटी) विद्रधि के अन्दर प्रवेश करदी जाती है और उससे पूय को निकाल लिया जाता है। यदि पूय दुर्गन्धित न हो तो विद्रधि गह्वर को धोने की आवश्यकता नहीं होती। नली को सेफ्टीपिन से अटका दिया जाता है। स्थान को स्टिफिंग प्लास्टर से अवरुद्ध कर दिया जाता है तथा त्वचा के ऊपर के क्षत को सिवाजोल पाउडर से भरकर मरक्यूरोक्रोम का गाज रख दिया जाता है। यदि पूय की अधिक उपस्थिति मिलती है तो गाज के ऊपर मे कार्बोलाइज्ड से एक प्रशस्त बन्धन द्वारा बाधकर रखा जाता है और विद्रधि के बडे आकार के होने पर पहले कई दिनो तक २ बार अथवा १ बार पट्टी बाधी जाती है। विद्रधि गह्वर जहा तक सकुचित होता जाता है वहा तक पूर्वोक्त नली को भलीभाति काट दिया जाता हैं और दूसरे-तीसरे दिन बन्धन बदलते रहते है। इसके पश्चात् और भी सकुचित हो जाता है। स्थूल नली का क्रमश व्यवहार तब तक करते रहते है जब तक कि विद्रधि शुष्क नहीं हो जाती।

प्रोकेन पेनिसिलीन विदक्रिस्टेलाइन जी के ४ लाख का सूचीवेध प्रतिदिन ८-१० दिन तक दिया जाता है। इससे पूय से उत्पन्न होने वाले उपद्रव नहीं होने पाते। ट्रोकार कैन्युला के प्रयोग के समय इसका प्रयोग नितान्त आवश्यक होता है।

भूशिनी विद्रधि-जब यकृत् मे छोटी-छोटी अनेक विद्रधिया होती हैं तब इसे भूशिनी विद्रधि कहते है। यह एक गम्भीर अवस्था है इसमे मृत्यु सख्या भी अधिक होती है। इसकी चिकित्सा नीचे दी जा रही है-

इसमे प्रोकेन पेनिसिलिन विद क्रिस्टेलाइन जी ४ लाख यूनिट दिन मे २ बार अथवा डाइमीन पेनिसिलिन १२ लाख की १ मात्रा प्रतिदिन पहले ३-४ दिन तक देते है। इन दोनो क्रमो के साथ १/२ ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन प्रतिदिन साथ-साथ देते रहते है, इससे पर्याप्त लाभ होता है। आवश्यकतानुसार इनको अधिक समय तक दिया जा सकता है। साथ ही विटामिन सी एव बी का पर्याप्त मात्रा मे सेवन कराया जाता है। शक्ति को कायम रखने के लिये ग्लूकोज सैलाइन ५% के ५०-१०० मि० लि० की मात्रा मे प्रतिदिन १ बार या इससे अधिक बार दिया जाता है। इसके साथ ही साथ मिथियोनिन एव कोली औषधियो का सेवन कराया जाता है।

शक्ति को कायम रखने के लिए कुछ चिकित्साशास्त्र इसुलिन (Insulin) १० यूनिट की मात्रा मे देते है।

विशेष ज्ञातव्य-अनुभवो के द्वारा ऐसा देखा गया है कि एमेटीन के सूचीवेध से २५ प्रतिशत रोगी अच्छे हो जाते है एमेटीन एव आचूषण के सम्मिलित प्रयोग से ३३½ प्रतिशत रोगी अच्छे हो जाते है। अवशिष्ट अर्थात् २५ प्रतिशत रोगी शस्त्र चिकित्सा से आरोग्य होते है। चिकित्सा की दृष्टि से प्रथम २ चिकित्साये विशेष उपयोगी मानी गई है। आत्याधिक एव अत्यावश्यक अवस्था मे ही शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लिया जाता है। यह भी अनुभवो से देखा गया है कि शस्त्र चिकित्सा से २५ प्रतिशत रोगी मर भी जाते है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा-

इसमे पित्तगुल्म की चिकित्सा उपयोगी होती है। अन्त विद्रधि मे उपद्रवो की रक्षा करते हुए दस दिन तक प्रतीक्षा करे। यदि पूय ठीक प्रकार से न बह रहा हो तो सुरा, आसव मैरेय के साथ मीठा सहिंजन सेवन करावे। इसी से यवागू अथवा आहार

बनाकर खिलावे। इसके पीछे तिल्वक घृत या त्रायमाण घृत को सेवन करावे। साथ ही ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे विद्रधि का पाक न हो सके। कज्जली को मधु एव शोभाजन के रस के साथ दे। मधुशिग्रु को पान, भोजन, लेप आदि मे प्रयोग करना चाहिए।

निम्न औषधियो के प्रयोग से यकृत्-विद्रधि मे विशेष लाभ होता है-

१ **वरुणादि क्वाथ**-वरुण की छाल, मौलसिरी की छाल, बेल, अपामार्ग, चित्रक, बडा अग्निमथ, छोटा अग्निमन्थ, सफेद सहिजन, लाल सहिंजन, छोटी कटेरी, पियावास (सफेद फूल वाला), पीले फूल का पियावास, काले फूल का पियावास, मेढासिगी, मरोडफली, चिरायता काकडासिगी, कुदरू, करज एव शतावर।

उपर्युक्त औषधो को समान मात्रा मे लेकर एकत्र करले। इनकी सम्मिलित मात्रा ४८ ग्राम लेकर ३७५ मि० लि० जल मे पकावे, जब ७५ ग्राम के लगभग शेष रह जावे, इसको छानकर हल्का गुनगुना ही क्वाथ पिलावे। कुछ दिन निरन्तर पीते रहने से यकृत्-विद्रधि निश्चय ही नष्ट हो जाती है।

२ **पुनर्नवादि क्वाथ**-पुनर्नवा और वरुण की छाल का क्वाथ विधि से क्वाथ बनाकर पिलावे अथवा सहिंजन की छाल का क्वाथ बनावे, उसमे भुनी हुई हींग उचित मात्रा से मिलाकर प्रात काल पिलावे। इस प्रकार कुछ दिन तक निरन्तर पीते रहने से अन्तर्विद्रधि नष्ट हो जाती है।

३ गुग्गुल एव शिलाजीत का प्रयोग चन्द्रप्रभावटी के रूप मे करते रहने से यकृत्-विद्रधि नष्ट हो जाती है। योग नीचे दिया जा रहा है-

कपूरकचरी, वच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रकमूल छाल, धनिया, बडी हर्रे, बहेडा, आवला, चव्य, वायबिडग, गजपीपल, छोटी पीपल, सोठ, काली मिर्च, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सज्जीखार, यवक्षार, सेधा नमक, सोचर नमक, साभर लवण, छोटी इलायची के बीज, कबावचीनी, गोखरू, श्वेत चन्दन-प्रत्येक ३-३ माशे (३-३ ग्राम), निशोथ, दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी, बडी इलायची, वशलोचन-प्रत्येक १-१ तोला (१२-१२ ग्राम), लोहभस्म २ तोला (२४ ग्राम), मिश्री ४ तोला (४८ ग्राम), शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध गुग्गुल ८-८ तोला (९६-९६ ग्राम) ले। प्रथम गुग्गुल को साफ करके लोहे के इमामदस्ते मे कूटे, जब गुग्गुल नरम हो जावे तक उसमे शिलाजीत और भस्मे तथा अन्य द्रवो का कपडछन चूर्ण मिलाकर क्रमश, ३ दिन तक गिलोय के स्वरस मे मर्दन कर ३-३ रत्ती (३६० मि० ग्रा०) की गोलिया बनाले। -सि० यो० स०

मात्रा एव अनुपान-१-१ गोली सुबह-शाम धारोष्ण दूध, गुडूची क्वाथ, दारुहल्दी का रस, बिल्वपत्र रस, गोखरू क्वाथ अथवा केवल मधु के साथ दे।

४ **योगराज गुग्गुल**-इसका प्रयोग यकृत्-विद्रधि मे पर्याप्त लाभकारी होता है। योग नीचे दिया जा रहा है-

चित्रक, पीपलामूल, अजवायन, कालाजीरा, वायबिडग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सेधा नमक, कूठ रास्ना, गोखरू, धनिया, हर्र, बहेडा, आवला, नागरमोथा, सोठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, खस, यवक्षार, तालीसपत्र, और तेजपात-इन सबका कपडछन किया हुआ चूर्ण १-१ तोला (१२-१२ ग्राम), शुद्ध गूगल-सब दवा के बराबर लेकर, गूगल मे आवश्यकतानुसार थोडा-थोडा घी और थोडा-थोडा उपरोक्त चूर्ण मिलाकर कूटे। जय सम्पूर्ण चूर्ण गूगल मे भली-भाति मिल जावे तो ३-३ रत्ती (३६० मिलीग्राम) की गोलिया बनाकर रखले।

मात्रा एव अनुपान-२ से ६ गोली सुबह शाम गोदुग्ध के साथ दे।

५ **रोगी के अति कृश होने पर**-लौहभस्म २ रत्ती (२४० मिलीग्राम), बगभस्म १ रत्ती (१२० मिलीग्राम), असगन्ध चूर्ण ४ रत्ती (४८० मिलीग्राम)। एक मात्रा।

ऐसी १ मात्रा मक्खन एव मलाई के साथ सुबह शाम दे।

६ **यकृत् के अधिक बढ जाने मे**-रौप्यभस्म आधी रत्ती (६० मिलीग्राम), माण्डूरभस्म १ रत्ती (१२० मिलीग्राम)। एक मात्रा।

ऐसी १ मात्रा सुबह शाम दे।

अनुपान-मधु।

रोगी का आहार प्रारम्भ से सुपाच्य होना चाहिये। दूध उपयुक्त आहार है। शनै -शनै लघु से गुरु आहार पर लावे। मास रस दिया जा सकता है।



यकृत् रोग जनित रक्तस्राव
(Haemorrhage from Gastric Varicose)

डा० जहानसिह चौहान, आयुर्वेद-बृहस्पति
मु० पो०- ठठिया (फर्रुखाबाद)

परिचय-यकृत् रोग जनित रक्तस्राव (Heamorrhape from Gastrice Varicose) कोई स्वतत्र रोग नहीं है, बल्कि यह एक सिरहोसिस ऑफ दी लिवर (यकृत् का सूत्रण रोग) का उपद्रव स्वरूप (Complication) है। इस प्रकार से यह एक लाक्षणिक (Symptomatic) विकार है।

भोजन-प्रणाली (Oesoplaqus) के निचले भाग की शिराये, आमाशय की शिराओ मे सचित हुए रक्त को वापस एजाइगोज वेन्स (Azygosveins) मे पहुचाने लगती है जिससे वे फूलकर मोटी हो जाती है इनको ही गैस्ट्रिक वेरीकोज कहते हैं। इन शिराओ के फट जाने से रक्तस्राव होने लगता है।

इस प्रकार से उपरोक्त वेन्स के फट जाने से समय-समय पर रक्तवमन (Haemorrlage from oesoplaged or gastric varicose) का लक्षण होता रहता है। यह बहुत ही भयकर होता है पर घातक नहीं।

विकृति को उत्पन्न करने वाले सम्भावित कारण-कारणो के सम्बन्ध मे डेविडसन्स ने प्रिसिपल्स एण्ड प्रेक्टिस आफ मेडीसिन नामक पुस्तक मे लिखा है कि-

Gastric variceal Bleding almost always occurs from oesophaqeal varices within 3-5 cm of the oesophago gastric Junction large varices] ghigh portal pressure and liver failure are general factors predispesinq to Bleeding and drugs capable of causing mucosal erosion such as sabicylates and other non-steroidal Anti-inflannatory drugs, canprecipitate Bleeding.

नोट-यह एक भयकर उपद्रव है। ५० प्रतिशत के लगभग रोगियो मे घातक होता है। इस प्रकार का रक्तस्राव बार-बार तभी उत्पन्न होता है जब बचाव चिकित्सा (Preventive treatment) नहीं दी जाती।

लक्षण-यदि कोई रोगी यकृत् सिरोसिस (Hepatic cirrhosis) का मालूम पडे तो यह समझना चाहिए कि जो हीमोरेज हो रहा है वह इसोफेजियल वेरीकोज वेन से आ रहा है। Although patient with cirrhosis of the liver areparticularby likely to suffer also from a gastrice or duodenal ulcer रोगी की प्लीहा छूने मे बढी हुई मिलती है। यदि लिवर फक्सन टेस्ट असमान्य मिले तो रक्तस्राव का कारण सिरोसिस की ओर इगित करता है। प्लीहा और यकृत् दोनो छोटे हो जाते है।

निदान-इसका निदान इसोफेगोस्कोपी Esophagoscopy से होता है। निदान मे वेरियम खिलाकर एक्सरे (Rediology) लेकर किया जाता है।

चिकित्सा-

रोगी की चिकित्सा अस्पताल मे।

* रोगी के सिर को नीचा कर लिया जाता है एव उसे गरम रखा जाता है। उसके रक्तस्राव (B P) और नाडी की जाच की जाती है।

* घबराहट को कम करने के लिए मार्फीन सल्फेट या फीनोवार्वीटोन का इन्जेक्शन।

* रक्तस्राव की स्थिति मे पहले सैलाइन दे और रक्त मिलने पर रक्तदान (Transfusion) देना चाहिए।

* यदि फिर भी मुख से रक्तस्राव हो तो पिट्रेसिन (Pitressin) २० यूनिटस को २०० मि० ली० नार्मल सैलाइन मे मिलाकर बूद-बूद करके शिरा द्वारा (आई० वी०) दे।

* गेस्ट्रिक कलिग (Gastric Colling) से भी लाभ मिलता है।

✱ इन्सेफेलोपैथी (Enceplalopathy) के बचाव हेतु रोगी को मैगनेसियम सल्फेट एव नियोमाइसिन मुख द्वारा दे। अथवा सेगस्टेकेन (Sengstaken) के द्वारा दे।

✱ यकृत् रोग के कारण प्रोथ्रोम्बिन की अल्पता (For the prothrombin deficiency) मे विटामिन के देना आवश्यक।

कामा का उपद्रव होने पर-(If Coma Complication Occurs) आमाशय मे हुए रक्तस्राव को एसपाइरेसन (Aspiration) द्वारा निकाल देना चाहिए और आत मे हुए रक्तस्राव को निकालने के लिए मैगनेसियम सल्फेट मिक्सर ४ ग्राम की मात्रा मे रोगी को वेजोगैस्ट्रिक नली द्वारा देना या पिलाना चाहिए। आत मे विद्यमान रक्त के प्रोटीन मे से वैक्टीरिया जन्य विष की उत्पत्ति रोकने के लिए १ ग्राम नियोमाइसिन प्रति ४-४ घण्टे पर स्टमक टयूब द्वारा देना चाहिए।

चिकित्सा विस्तार से-

वैसोप्रेसिन (Vasopressin)-पोर्टल प्रेशर तथा पोर्टल ब्लड फ्लो को दूर करने के लिये वैसोप्रेसिन २० यूनिट ५ प्रतिशत ग्लूकोज १०० मि० ली० मे मिलाकर १५ मिनट मे आई० वी० दे। आवश्यकता पडने पर ३-४ बार प्रति घण्टे के अन्तराल पर देते रहे। अथवा इण्ट्रावेनस इनफ्यूजन ० ४ यूनिट प्रति मिनट के हिसाब से रक्तस्राव रुकने तक। अथवा २४ घण्टे तक एव बाद को ० २ यूनिटस/ प्रति मिनट अगले २४ घण्टे तक।

सावधान-वैसोप्रेसिन का उपयोग इस्चेमिक हार्टडिजीज के रोगी मे न करे।

टर्लीप्रिसिन (Terlipressin)-इसे उपरोक्त औषधि के एक दिन छोडकर दी जाती है। इससे अधिक लाभ मिलता है। इसकी प्रभावशाली मात्रा २ मि० ग्रा० इण्ट्रावेनसली प्रति ६ घण्टे पर दी जाती है। (२४ घण्टे तक) अथवा रक्तस्राव रुकने तक। तत्पश्चात् १ मि० ग्रा० प्रति ६ घण्टे पर अगले २४ घण्टे तक।

स्थानीय चिकित्सार्थ-तीव्र रक्तस्राव को रोकने के लिये साथ मे स्क्लेरोथेरापी (Sclerotherapy) वैलन टेम्पोनेड एव इसोफेजियल ट्रान्सेक्शन (Ensophageal Transection) इमरजेन्सी पोर्टल सिस्टेमिक सन्ट सर्जरी (Emergency Portal Systenmic shunt Surgery) से ५० प्रतिशत रोगी बचाये जा सकते है।

स्क्लेरोथेरापी (Sclerotherapy)-इण्डोस्कोपी निदान के समय यह एक उपयुक्त प्रारम्भिक चिकित्सा है। इस चिकित्सा से बेरीकोज हीमोरेज के ८० प्रतिशत रोगी ठीक हो जाते है। पुन रक्तस्राव होने की स्थिति मे स्क्लेरोथेरापी के अपेक्षाकृत वैलून टेम्पोनेट रक्तस्राव रोकने के लिए अधिक उपयुक्त रहता है।

वैलून टेम्पोनेड (Balloon Temponade)-जब उपरोक्त उपाय असफल हो जाते है तब वैलून टेम्पोनेड के उपयोग से रक्तस्राव को रोका जाता है।

अर्जेन्ट ओपरेशन फार ब्लीडिग बेरीसिस (Ungent Operation for Beeeding Varices) -जब रक्तस्राव वेसोप्रेसन (Vasopression) अथवा सेन्गस्टकेन टयूब (Senastaken Tube) के द्वारा दूर करने के बाद भी प्रारम्भ हो जाता है तब ओपरेशन की आवश्यकता पडती है।

Such operative intervention no matter the procedure Carries a high mortality (40%) especially in those who have evedence of impairment of liver function or the varices may be directly ligated or Injected, although after Such latter procedures Bleeding may recur

इवेकुएशन आफ ब्लड प्रोम दी एलीमेन्टरी ट्रेक्ट (Evacuation of Blood from the alimentary tract)-जितना शीघ्र हो सके भोजन प्रणाली को रक्त से साफ कर देना चाहिए। अन्यथा प्रोटीन टेक्सिक प्रोडक्टस के शिराओ के द्वारा मस्तिष्क मे जाने से मूर्छा का उपद्रव २४ घण्टे के अदर हो सकता है। सम्पूर्ण Unclotted Blood को आमाशय से एस्पाइरेशन के द्वारा निकाल लेना चाहिए। एव सम्पूर्ण रक्त खाली करने तक Colonic wash outs देना चाहिए।

प्रोपानोलोल (Propanolol)-पोर्टल हाइपरटेन्सन मे पोर्टल वेनस प्रेशर को दूर करने के लिए प्रोपानोलोल ८०-१६० मि० ग्रा०/ नित्य दिया जाता है। इसका उपयोग बार-बार होने वाले रक्तस्राव मे बचाव हेतु (Prevent) किया जाता है।

इसोफेजियल ट्रान्सेक्सन (Oesophageal treansection) इस ओपरेशन का उपयोग उस समय किया

जाता है जब स्क्लेरोथेरापी तथा बैलून टेम्पोनेट क्रियायें रक्तस्राव रोकने मे असफल हो जाती है।

Transection of the varices can be performed relatively easily with a stapling gun through it carries some risk of subsequent eosophageal stenc s

पोर्टल सिस्टेमिक शट सर्जरी (Portal systemic shunt Surgery) स्क्लेरोथेरापी के सफल न होने पर इस सर्जरी का उपयोग किया जाता है।

बचाव हेतु (Prophylayis of initial variccal Bleeding) चिकित्सा-इस हेतु पोर्टल सिस्टेमिक शट, स्क्लेरोथेरापी एव प्रोप्रानोलोल का उपयोग किया जा सकता है।

गैस्ट्रिक वेरीकोज हीमोरेज चिकित्सा एव बचाव साराश मे-

स्थानीय उपाय **(Local measures)**

* स्क्लेरोथेरापी
* वैलून टेम्पोनेड
* ईसोफेजियल ट्रान्सेक्सन

रिडक्शन आफ पोर्टल प्रेशर **(Reduction of portal pressure)**

* वैसोप्रेसिन
* टरलीप्रेसिन

प्रिवेन्शनं आफ रिकरेन्ट ब्लीडिग **(Prevention of reccurent Bleeding)**

* स्क्लेरोथेरापी
* पोर्टल-सिस्टेमिक शट सर्जरी
  - Unselective
  - Salactive
* प्रोप्रानोलोल

करेण्ट मेडिकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेन्ट (मार्कस ए क्रुप एव मिल्टन जे चट्टोन लिखित पुस्तक) मे इसकी चिकित्सा निम्न प्रकार से दी गयी है-

When active variceal Bleeding is erident attempts shoold be made to sebrose the Bleeding varices transendosespically if a physician with skill in the technique is available if this procedure can not be performed by use ofthe quadruple lumen (minnesota) tube unfortunatily there is a high incidence of reccurent variceal bleeding after Balloon tamponade has been discontinued Infiction Sebrotherapy has proved to be quite effective in stopping variceal Bleeding The advantages of this technique are simple city and avoidance of a major surgical procedure in a poor-risk pationt

Repeated injections may be necessary Intravariceal injection selerotherapy will active temporary control of variceal bleeding in about 80% of patients

If Bleeding cannot be controlled by sebrotheraph emergency surgical decompression of portal hypertension may be considered in selected patients morgidity and mortality rates are substantially lower when Surgical shunting procedures are performed electively than when performed on an urgents basis after the patient has been stablized for 3-5 days The Beta Blocker propranolol can be given to lower the portal pressure The dosage is usually 20-40 mg twice daily until the resting pulse rate has decreased by 25%



यकृतार्बुद
(Carcinoma of Liver)

डा० अशोक मिश्र, आयुर्वेदाचार्य
अशोक मैडीकल हाल, घाटा बालाजी (राज०)

जिन स्थानो पर अर्बुद उत्पन्न होता है, उन स्थानो के एम्ब्रोलोजी (Embryology) की दृष्टि से तीन पर्तें होती है-अन्तर, मध्य और बाह्य। इन सधानक धातु भेद से अर्बुदो के मुख्य ३ विभाग हो जाते है। हाइपोब्लास्ट (Hypoblast), मीसोब्लास्ट (Mesoblast) और एपीब्लास्ट (Epiblast।

इनमे मीसोब्लास्ट (Mesoblast) धातु मे से अनेक सौम्य अर्बुद और दुष्टार्बुद (सार्कोमा) की तथा हाइपोब्लास्ट (Hypoblast) और एपीब्लास्ट (Epiblast) धातु मे से कर्कस्फोट की उत्पत्ति होती है।

प्रकार-

(अ) प्राथमिक घातक यकृतार्बुद

केवल शव परीक्षा करने पर गौण प्रकार से इसका प्रभेद हो सकता है। तीव्रतर गति से बढता है। कामला और जलोदर (यकृद्दाली प्रकार के अतिरिक्त प्रकार मे कम सामान्य), ये लक्षण साथ होते है-

(क) कर्कस्फोट (Corcinoma)-ये अनेक प्रकार के है-(१) स्थूल (Massive) एकाकी, (२) ग्रन्थिमय (Nodular) गौण प्रकार के अनुरूप बहुग्रन्थिमय, (३) यकृद्दालीसह कर्कस्फोट (Corcinoma with cirrhosis) सम्भवत कर्कस्फोट का विकास यकृद्दाली के उपद्रव से होता है, जिससे यकृत् के घटको की अस्वभाविक क्षतिपूरक वृद्धि (अत्यधिक पुनर्जनन) कर्कस्फोट मे जाने के लिए होती है।

(ख) दुष्टार्बुद (Sarcoma)-कभी-कभी यह अर्बुद अधिवृक्क तन्तुओ से उत्पन्न वृक्कार्बुद (Hppernephroma) से भी सम्बन्ध रखता है।

(आ) गौणघातक यकृतार्बुद
(Secondary Malignant Tumours)

सामान्यत ४० से ६० वर्ष की आयु वालो का होता है। इनमे निम्नानुसार मुख्य दो प्रकार है-

(१) कर्कस्फोट-सामान्य यकृत् की अतिवृद्धि। सतह पर गाठे, प्राय बीच मे छिद्रयुक्त। कटे हुए भाग मे भूसराभ अथवा रक्तस्रावमय, प्राय विस्तृत।

प्राथमिक प्रकार का स्वभाव, सामान्यत सरल घटको से बना हुआ, अपक्रान्ति सामान्य।

(२) कृष्ण दुष्टार्बुद (Melanotic Sarcoma)-यकृत् की अतिवृद्धि, काली गाठे या व्यापक अन्तर्भरणसह। एक अवयव से दूसरे अवयव मे गमन, सत्वर घातक, कभी-कभी कृष्णमेह (Melanuria)।

प्रकृति निर्देशक लक्षण-

यकृत्-वृद्धि होते रहना, वेदनारहित भारीपन (कतिपय रोगी यकृत्प्रदेश मे वेदना होने को कहते है)।

कृशता कारक-अरुचि, सामान्य आमाशयिक व्यथा।

कामला-६० प्रतिशत मे, रोग दृढ और बर्द्धनशील होने पर।

चिन्ह-

यकृत-बढा हुआ, गाठदार, आकृति विषम, किनारा अनियमित, गाठे प्राय- नाभि सदृश, प्लीहा की वृद्धि नहीं।

जलोदर-६० प्रतिशत रोगियो मे।

नाभि की ओर गाठे और उदर की श्वेत पक्तिया दीर्घा प्रवन्धनीकि वृद्धि, देखने पर उदर स्फीति, शीणदिह।

ज्वर-सामान्यत उपस्थित, लगभग १०० डिग्री।

कभी-कभी प्रतीत होने वाले प्राथमिक अर्बुद के अन्य स्थानो मे दाहिनी ओर उरस्तोय और कास, पैरो पर शोथ, देर से उदर की उत्तान सिराये प्रसारित (नाभिका के चारो ओर नहीं)। इनके अतिरिक्त कितने ही रोगियो मे उदर की मासपेशिया दृढ

हो जाना, मुख, नासिका, योनि, गुदा आदि स्थानो से रक्तस्राव, कृष्ण दुष्टार्बुद मे त्वचा पर काली ग्रन्थिया आदि चिह्न भी उपस्थित।

रोग स्थिति-३ से १२ मास।

निर्णय-(१) रोगवृद्धि के साथ यकृत्वृद्धि तथा गाठे प्राय नाभि के पास।

(२) सत्वर शीर्णता।

(३) कामलावृद्धि।

(४) कामला के साथ जलोदर।

पृथक् करने योग्य रोग-

(१) बढा हुआ यकृद्दाली-इसमे वर्द्धनशील अवस्था अथवा गाठो का अभाव, छोटी-बडी आकृति, कृशता कम तथा मद्यपान के इतिहास की प्राप्ति, प्रतिहारी सिरा का अवरोध स्पष्ट, इसका आक्रमण धीरे-धीरे तथा पीडा विद्यमान।

(२) वसामय तथा मोममय यकृत्-इसमे कामला का अभाव या त्वरित वृद्धि, कृशता कम, मोममय मे गाठो के सदृश गपेटा।

अन्य सस्थिति-

(क) रीडल का खण्ड-पित्ताश्मरी के पूर्ववर्ती।

(ख) कृमिज रसार्बुद-गाठे मृदु, कामला और शीर्णता का अभाव।

चिकित्सा-चिकित्सा का अभाव है, सिर्फ पीडा निवारणार्थ उपचार करना पडता है।

(इ) पित्ताशय का कर्कस्फोट
(Cancer of the Gall Bladder)

पित्ताशय पर प्राय प्राथमिक कर्कस्फोट होता है। यह ५५ से ६५ वर्ष की आयु मे होता है। स्त्रियो मे ज्यादा तथा पुरुषो मे कम पाया जाता है। प्राय ३ १ का अनुपात रहता है। इसका सम्बन्ध पित्ताशयाश्मरी से होता है। प्राय ७५ से ९० प्रतिशत मे पथरी पाई जाती है। पित्ताश्मरी कर्कस्फोट का कारण है, सम्प्राप्ति या परिणाम नहीं।

शारीरिक विकृति-कर्कस्फोट-सरल घटक (Conmnar cells) या गोल (Spheraidal) घटकमय अन्तरभरण हो दीवार मोटी होना या अनुप्रस्थ प्रगति मे रसाकुरिका के समान उत्पत्ति होना कर्कस्फोट विशेषत स्कन्ध भाग मे समग्र भाग या पित्ताशय के कण्ठ पर अति कम।

यकृत्-५० प्रतिशत मे गौणवृद्धि, इतरो मे सामान्यत पित्तसह प्रसारण।

पित्तनलिका-रोगवृद्धि होने पर प्राय प्रभावित, मूलस्थिति प्राय अनिर्णीत।

उदर ग्रन्थिया-प्राय प्रभावित, कभी-कभी अन्यत्र भी गौण अर्बुद।

लक्षण-बडी आयु वाली स्त्रियो को, पित्ताश्मरी के पूर्ववर्ती।

बेचैनी-दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेश मे, गम्भीर वेदना और अकस्मात् प्रचण्ड होना सतह पर पीडनाक्षमता (८वीं पर्शुका की पक्ति मे पीछे)।

कामला-प्राय अभाव।

इतर लक्षण-बजन का ह्रास और अरुचि पित्ताशय पर कठोर व विषम अर्बुद, ५० प्रतिशतो मे यकृत् बढा हुआ बर्द्धनशील लक्षण। यकृत्वृद्धि होने या प्रतिहारिणी सिरा मे ग्रन्थिया होने अथवा पित्तनलिका प्रभावित होने पर कामला।

रोग स्थिति-कामला के पश्चात् ६ मास। रक्त मे पित्त प्रकोप (Cholaemia) से मृत्यु।

उपद्रव-पूयात्मक पित्ताशय प्रदाह, पित्तनलिका प्रदाह, आमाशय के मुद्रिका द्वार आदि से सलग्नता, बृहदन्त्र मे नाडीव्रण आदि। प्रतिहारिणी सिरा पर दबाव आ जाय, तो जलोदर, प्रतिहारी सिरा मे शल्योत्पत्ति।

पित्ताश्मरी से प्रभेदक रोग विनिर्णय-कठिन। इस रोग मे बडी आयु, क्रमश वर्द्धनशील कामला और शीर्णता, पित्ताशय, स्पर्श ग्राह्य और कर्कस्फोट मे प्राय यकृत् पर गौण अर्बुद इन लक्षणो से प्रभेद हो जाता है। फिर भी शस्त्र-चिकित्सा के पहले पित्ताशय का चिरकारी प्रदाह होने पर उसे कठोर और मोटा बनाता है, जिससे प्रमेद निश्चित नहीं हो सकता।

यकृत् प्रभावित होने पर-यकृत् के कर्कस्फोट के लक्षण अविभेद्य। इसी शयशिर के कर्कस्फोट से प्रमेद नहीं होता।

चिकित्सा-यदि प्रथमावस्था मे इस रोग की उत्पत्ति का वोध हो जाए तो रस-रक्तादि सब धातुओ का प्रसादन हो, लीन विष जलता रहे, इस प्रकार का उपचार करना चाहिए।

गन्धक रसायन मजिष्ठादि, तालसिदूर, मजिष्ठादि क्वाथ, सप्तविशति गुग्गुल ताप्यादि लोह योगराज, आदि सब उपकारक औषधिया हैं।

पहले उपदश आदि रोग हो गये हो, तो मुख्य रोग के लीन विष को जलाने वाली औषधि मिला देनी चाहिए।

यदि यकृत् प्रभावित न हुआ हो, तो शस्त्र-चिकित्सा द्वारा पित्ताशय को निकाल डालना चाहिए, मृत्यु प्राय बहुधा रक्तस्राव से होती है।

(ई) पित्तनलिका मे कर्कस्फोट
(Cancer of the Bile-duets)

यह कर्कस्फोट प्राथमिक है। आयु ५५ से ५६ वर्ष, स्त्रियो से पुरुष कुछ अधिक प्रभावित। ३० प्रतिशत रोगियो मे पित्ताश्मरी वर्तमान।

शारीरिक विकृति-

कर्क स्फोट-सामान्यत सरल घटको मे से कभी शोल घटको से मूगफली की अपेक्षा अधिक बडा न होना, विशेषत दीवारो मे अन्तर्भरण मार्ग का आकुचन, फिर पित्ताशय के भीतर या अग्न्याशय मे विस्तार।

पित्तनलिका-कर्कस्फोट वृद्धि होने पर प्रसारित।

पित्ताशय-सर्वदा प्रसारित, यदि पूर्ववर्ति पित्ताशय प्रदाह होकर सलग्नता द्वारा प्रतिबन्ध न हुआ हो तो।

यकृत्-गहरे हरे रग का सर्वदा बढा हुआ नहीं होता। २० प्रतिशत मे गौण अर्बुद। कुछ कम प्रतिशत की पित्तमय रक्त के हो जाने से सत्वर मृत्यु।

लक्षण-गुप्त आक्रमण शीर्णतासह, गम्भीर प्रसेकी कामला के सदृश लक्षण।

कामला-सामान्यत अत्यन्त जल्दी, दृढ-भाव से गहरे रग की वृद्धि, शौच पाण्डु वर्ण।

शीर्णता-वजन का ह्रास, अरुचि।

वेदना-अभाव या मन्द, कभी पित्तलशूल।

पित्ताशय-स्पर्शग्राह्य, सतह चिकनी, प्राथमिक अर्बुद की प्रतीति कभी न होना।

यकृत्-सामान्यत स्पर्शग्राह्य, अर्बुद का प्रसारण, पित्ताशय के कर्क स्फोटसह अभिन्न लक्षण दर्शाता है।

याकृति पित्तनलिका मे कर्क स्फोट-लक्षण उपर्युक्त किन्तु पित्ताशय अप्रसारित।

पित्तकोष नलिका मे अर्बुद-पित्ताशय के कर्कस्फोटक के समान, किन्तु कामला का अभाव।

स्थिति काल-कामला के आक्रमण से ६ मास । पित्तमय रक्त से या पूयात्मक पित्तनलिका प्रदाह से मृत्यु।

उपद्रव-कभी-कभी प्रतिहारिणी सिरा मे शल्य-उत्पत्ति प्रसारित, पित्ताशय का विदारण, अर्बुद मे रक्तस्राव।

पित्ताश्मरी से प्रभेदक लक्षण-(१) आयु भेद (२) गुप्त आक्रमण, (३) क्रमश वर्द्धनशील कामला और शीर्णता तथा (४) बढा हुआ पित्ताशय।

चिकित्सा-शस्त्र-चिकित्सा (Cholecystcenterostomy) द्वारा पित्तशय से अन्त्र मे कृत्रिम मार्ग निकालने पर पित्ताशय और यकृत् को कुछ समय तक शान्ति देता है।



पित्ताशय-शोथ कारण एवं चिकित्सा-1

वैद्य बालकृष्ण गोस्वामी, आयुर्वेदाचार्य (स्वर्णपदक प्राप्त) आयुर्वेद-बृहस्पति
श्री गोस्वामी आयुर्वेद भवन, रतनगढ (राजस्थान)

आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे पित्ताशय का समावेश आठ आशयो मे किया गया है-

"आशयास्तु वाताशय पित्ताशय इति"

-सु० शा० ५/७

डल्हण ने यहा आशय का तात्पर्य अधिष्ठान से लिया है तथा "पित्ताशयादध पक्वाशय" से अध पक्वाशय को पित्ताशय स्वीकार किया है। महर्षि वाग्भट ने आशयो के वर्णन को क्रमिक रूप मे श्लोकबद्ध किया है-

कफामपित्तपक्वाना वायोर्मूत्रस्य च क्रमात् ।
गर्भाशयोऽष्टम स्त्रीणा पित्तपक्वाशयात्तरा ।।

इस प्रकार आमाशय और पक्वाशय के मध्य पित्ताशय का स्थान है। आचार्य चरक ने "तत्रप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्" से आमाशय को ही पित्त का स्थान प्रतिपादित किया है।

पित्त से यहा पाचक पित्त का ग्रहण करना चाहिए। वस्तुत यह पित्त विभिन्न रूपो मे शरीर मे विद्यमान रहता है। हरिवंश पुराण का एक वचन विषय को और भी स्पष्ट कर देता है, यथा-

"कफ वर्गे भवेच्छुक्र पित्तवर्गे च शोणितम्।" उस पाचक पित्त मे मुख्यतया आमाशयिक पित्त (HCL) अग्न्याशयिक पित्त (Pancreatic juice) यथा याकृत्पित्त (Bile) का ग्रहण करना चाहिए। विभिन्न पित्तो के रूप मे शरीरस्थ पाचभौतिक अग्निया पचभूतात्मक आहार से शारीरिक अवयवो का पोषण करती है-

पचभूतात्मके देहे ह्याहार पाचभौतिक ।
विपक्व स्वाग्निभि सम्यक् स्वान् गुणानभिवर्धयेत्।

-सु० सू० ४७

कतिपय विद्वान् पचभूताग्नि व्यापार को स्पष्ट करते हुए यह मत व्यक्त करते है कि साधकपित्त ही आकाशाग्नि है, भ्राजक पित्त वाय्वाग्नि है, अग्न्याशयगत पाचक व आलोचक पित्त ही आग्नेय अग्नि है, उर्ध्वामाशयगत रजकपित्त जलाग्नि है तथा यकृत् से उत्पन्न पित्ताशयगत पित्त ही पार्थिवाग्नि है। पित्ताशय के सन्दर्भ मे अन्यत्र एक स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होता है, यथा-

"पाचक तिलमान स्यात् काठिन्य नास्यदोषता।" यहा पाचक पित्त को तिल के आकार का बताया गया है। तिल के आकार की छोटी तुम्बी के समान यह थैली पित्ताशय (Gall-Bladder) ही है।

त्रिविध रोग मार्गों मे पित्ताशय शोथ कोष्ठानुसारी रोग है। इसमे पित्त अनुबन्ध्य और अन्यदोष अनुबन्ध रूप मे रहते हैं। यह पित्त साम होने से स्थिर, गुरु और बहल गुणयुक्त होता है।

कारण-

पित्ताशय मे शोथोत्पादक विभिन्न कारणो को निम्न तीन रूपो मे समुस्थापित किया जा सकता है-

(१) **पित्त का अतिसचय**-पित्ताशय मे यकृत्पित्त के अतिमात्रा व अधिक समय तक रुके रहने से शोथ उत्पन्न हो जाता है। अग्निस्थान होने से सुश्रुत के मतानुसार पित्ताशय का समावेश कोष्ठ मे होता है-

स्थानान्यामाग्निपक्वाना मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुण्डुक फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ।।

-सु० चि० २/१२

इस कोष्ठाग मे पित्तदोष का आधिक्य विभिन्न कारणो से होता है। चरक के मतानुसार दोष त्वचा व रक्तादि शाखाओं से चलायमान होकर कोष्ठ मे पहुच जाते हैं। दोषवृद्धि व वायु के निग्रह से भी यह स्थिति उत्पन्न होती है-

वृद्ध्या विष्यन्दनात् पाकात् स्रोतोमुखविशोधनात्।
शाखा मुक्त्वा मला कोष्ठ यान्ति वायोश्च निग्रहात् ।।

-च० सू० २८

इसी प्रसग मे यह भी उल्लेखनीय है कि कोष्ठगत पित्त की एक देशीय वृद्धि होती है। पित्त जहा पित्ताशय मे प्रभूत मात्रा मे रहता है, वहा आमाशय मे इसकी अल्पता हो जाती है।

(२) कोलेस्टेरोल की अश्मरी-कोलेस्टेरोल एक वसामय द्रव्य है। इसकी रचना मे मेदोऽम्ल तथा ग्लिसरीन भाग लेते है। कोलेस्टेरोल सभी कोषो मे अल्पप्रमाण मे रहता है। वस्तुत यह धातुपाक से उत्पन्न एक मलद्रव्य है, तथापि कई विषो को कोषो मे प्रविष्ट होने से रोकने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। याकृत् पित्त मे भी यह पाया जाता है। कभी-कभी इसकी वृद्धि होने से पित्ताशय मे अश्मरी बन जाती है। कोलेस्टेरोल के चयापचय मे विकृति होने पर भी पित्ताशय शोथ हो जाता है।

(३) बाह्य सक्रमण-बाह्य रोगाणुओ का स्वतन्त्ररूप से या किसी रोग के माध्यम से पित्ताशय मे पहुचने पर शोथ उत्पन्न हो जाता है। आत्रशोथ, आत्रपुच्छ शोथ (एपेण्डीसाइटिस), तुण्डिकेरी शोथ (टौन्सिलाइटिस), फुफ्फुसावरण शोथ (प्लूरिसी) व दन्तपूय (पायोरिया) रोगो के होने या पित्ताशय के निकटस्थ अवयवो मे सक्रमणजन्य रोग होने पर रक्त के साथ या पित्तवाहिनी द्वारा रोगकारक जीवाणु पित्ताशय मे पहुच जाते है और शोथ उत्पन्न कर देते है। "न्यूमोकोकस'' तथा आत्रस्थ 'बिसिलसकोलाई'' रोगाणु प्रारम्भ मे अनेक दिनो तक बिना लक्षण उत्पन्न किये पित्ताशय मे रह सकते है, तदनन्तर शोथ उत्पन्न करते हैं। वातश्लैष्मिक ज्वर व आत्रिकज्वर होने के उपरान्त भी पित्ताशय शोथ की उत्पत्ति हो सकती है। उपर्युक्त व्याधिया निदानार्थ कर रोगो मे परिगणित होती है।

सम्प्राप्ति-

विभिन्न कारणो से प्रकुपित दोष सम्पूर्ण शरीर मे गमन करते रहते है। पित्ताशय मे स्रोतोवैगुण्य होने पर कुपित पित्त वहा सश्रित हो जाता है। स्थानीय पोष्य या स्थायी धातु का दोषो से सयोग होने पर स्रोतोरोध होकर आमोत्पत्ति होती है। पित्ताशय मे वर्धित सामपित्त विभिन्न लक्षणो की उत्पत्ति करता है। इस रोग की सम्प्राप्ति को निम्न रूप मे परिदर्शित किया जा सकता है-

सम्प्राप्ति घटक

१ उद्भव-आमाशय (अधोभाग)।
२ अधिष्ठान-पित्ताशय।
३ दोष-पाचकपित्त, समानवायु।
४ दूष्य-रस।
५ स्रोतस्-रसवह, अन्नवह।
६ ,स्रोतोदुष्टि प्रकार-सग।
७ अग्नि-पाचकाग्नि (पार्थिवाग्नि)।

पित्ताशय शोथ होने पर श्लैष्मिककला नष्ट हो जाती है उसके स्थान पर सौत्रिक तन्तुओ का निर्माण होता है। पित्ताशय की प्राचीर खर और स्थूल हो जाती है। निकटस्थ आत्रवलयो मे शोथ होने पर विबन्ध व आध्मान हो जाते है। रोग जीर्ण होने पर दक्षिणोदर की दक्षिणा पेशी के स्नायुतन्तु सकुचित हो जाते है और पित्ताशय उदरच्छद से सट जाता है। कदाचित् सचित पित्त के जम जाने से पित्ताश्मरी बन जाती है। यदि पाक एव कोथ की अवस्था उत्पन्न हो जाय तो पित्ताशय के फटने पर विस्तृत उदरावरण शोथ होकर मृत्यु हो सकती है।

लक्षण-

तीव्र एव चिरकारी भेद से पित्ताशय शोथ दो प्रकार का होता है। प्रारम्भ मे पित्ताशय क्षेत्र मे रुक-रुक कर पीडा होती है। यह पीडा दक्षिण स्कध तथा पीठ की ओर गमन करती है। पित्ताशय मे स्पर्शासह्यता होती है। पीडा के निकट की पेशिया कठोर हो जाती है। पेशियो को ढीला करके परिस्पर्शन किया जाय तो बढे पित्ताशय का स्पर्श होगा। इस रोग मे ज्वर, हृल्लास, वमन, आध्मान, दुर्गन्धयुक्त उद्गार, दौर्बल्य, मलावरोध, शिर -शूल व शीतस्वेद आदि लक्षण उपस्थित होते है। तीव्रावस्था मे कमी के साथ ज्वर ३०१ डिग्री से १०३'' फा० तक हो जाता है। कभी-कभी कामला भी हो जाता है।

दीर्घकालानुबन्धी होने पर ज्वर मन्द बना रहता है। भोजन के बाद उदर के ऊपरी भाग मे गौरव एव दबाव मालूम पडता है। प्रात काल हृल्लास, शिरा शूल व मलावरोध रहता है। मध्याह्न समय मे भोजन के बाद थोडा-थोडा मलोत्सर्ग होता है। अधिक भोजन, घृत, तैल, अण्डा आदि का सेवन लक्षणो मे वृद्धि करता है। उद्गार आने से आराम मिलता है तथा वमन से पीडा मे तुरन्त ही लाभ होता है। पेट मे दाह की प्रतीति होती है। चिरकारी व्याधि के सार्वदैहिक लक्षणो मे सक्रमणजन्य सन्धिशोथ, शिराशोथ, पाण्डु, हृत्पेशी दौर्बल्य, हृद्द्रव व

क्षुद्रश्वास का प्रादुर्भाव होता है। क्वचित् पित्ताश्मरी बन जाय तो पित्ताशय शूल के लक्षण समुपस्थित होते है। इस शूल का समय अनिश्चित होता है।

उपद्रव-

रोगाणुओ के तीव्र सक्रमण से शोथ होने पर कई बार पित्ताशय मे विद्रधि (Abscess) बन जाती है। विद्रधि होने पर पित्ताशय उदरच्छद से भली-भाति सलग्न हो जाता है फलत स्थानिक व्रण होकर उदरच्छद मे शोथ का प्रसार होता है। रोगकारक कारणो के दूर होने पर भी बहुधा पित्ताशय अपुष्ट व क्षीण होकर बहुत समय तक अपनी प्राकृतिक कार्यक्षमता को पुन प्राप्त नहीं कर पाता।

भौतिक परीक्षाए-

(१) **स्पर्श**-पित्ताशय प्रदेश मे स्पर्शासह्यता होती है उसके ऊपर की पेशिया कठोर होती है।

(२) **ठेपन**-अधिक बढा हुआ पित्ताशय मन्दध्वनियुक्त होता है।

अन्य परीक्षाए-

(१) **एक्स-रे परीक्षा**-पित्ताशय क्षेत्र मे अल्पपारदर्शकता होती है। बृहदन्त्र का याकृतकोण स्थानच्युत होता है।

(२) **कोलेसिस्टोग्राफी**-पित्ताशय पूर्णरूप से नहीं भरता या भराव अनियमित होता है। अश्मरी की छायाहीनता परिलक्षित हो सकती है।

(३) **ग्रहणी की नलिका परीक्षा**-सक्रमणजन्य शोथ होने पर ग्रहणी मे जीवाणु प्राप्त हो सकते है।

रोग मीमासा-स्थानीय व सार्वदैहिक लक्षणो उपर्युक्त परीक्षाओ तथा पित्ताशय शोथ की स्पर्शगम्यता होने पर सरलता से रोग निर्णय हो जाता है। निरन्तर आध्मान बना रहना इसका विशेष लक्षण है। सन्देह होने पर शल्यकर्म द्वारा पित्ताशय से पित्त निकालकर परीक्षा करनी चाहिये। सापेक्ष निदान की दृष्टि से ग्रहणीव्रण, पित्ताश्मरी वृक्कशोथ, पित्ताशय का जाड्य आन्त्रपुच्छशोथ उरस्तोय अन्तर्पर्शुकीय नाडीशोथ तथा हर्पीस-जोस्टर नामक रोगो से इसका पार्थक्य करना चाहिये।

चिकित्सा-

तीव्रावस्था मे पीडाहर औषधि देकर आतुर को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। पित्ताशय मे पित्त का सचय होने पर 'सचयेऽपहृतादोषा' के अनुसार पित्त का निर्हरण करना चाहिए। शोथप्रकरण मे चरक ने यह मत व्यक्त किया है कि दोषवृद्धि के कारण शोथ हो तो वमन-विरेचन द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये यथा-

'विशोधनैरूल्बण दोष मादित ।'

(च० चि० १२/१७)

प्रारम्भ की तीव्रज्वरावस्था मे सामपित्त का निर्हरण प्राणोपघातक होता है एतावता दोषपाक के उपरान्त 'विरेको पित्तहराणाम् (श्रेष्ठम्) के सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुए कुटकी व निशोथ प्रधान द्रव्य से विरेचन कराना चाहिये।

तीव्रशोथ की ज्वरावस्था मे अमृतासत्व व सुदर्शनचूर्ण का प्रयोग करना चाहिये। स्थानीय स्वेदन से भी लाभ मिलता है। मलावरोध होने पर लवणभास्करचूर्ण व द्राक्षावलेह हितावह है। वमन की प्रवृत्ति होने पर मयूरपिच्छ व चन्दनादिलौह व्यवहृत करना लाभप्रद है। ज्वर मन्द होने पर ताप्यादिलौह का प्रयोग रक्तस्थ विष को मूत्र द्वारा बाहर निकालने मे सक्षम है। सामान्य रूप से निम्नाकित औषधि व्यवस्था आशुलाभकारी है-

(१) प्रात ७ बजे व साय ८ बजे-लोकनाथरस २ रत्ती नवायसलौह २ रत्ती पुनर्नवामण्डूर ३ रत्ती। १ मात्रा।

अनुपान-दशागकषाय १।। तोला।

(२) प्रात ९ बजे व मध्याह्न ३ बजे-स्वर्णसूतशेखर १ रत्ती ताप्यादिलौह २ रत्ती अमृतासत्व ३ रत्ती। १ मात्रा।

अनुपान-कूष्माण्डावलेह १ तोला।

(३) भोजनोत्तर-आरोग्यवर्द्धिनी २ रत्ती यवानीखाडव चूर्ण २ माशा। १ मात्रा।

अनुपान-मकोय अर्क २ तोला।

इसके अतिरिक्त निम्न दो प्रयोग भी पित्ताशयशोथ मे फलप्रद सिद्ध हुए है-

(क) **चूर्ण**-दारुहल्दी हल्दी हरड बहेडा, आमला सौठ मिर्च, पिप्पली विडग नौसादर सौफ व लघुएला का समभाग चूर्ण प्रात साय सेवन करना चाहिए।

-शेषाश पृष्ठ ५७ पर

पित्ताशय शोथ कारण एवं चिकित्सा

डा० प्रेमप्रकाश अवस्थी, बी०ए०एम०एस०
रीडर-ललित हरि राज० आयुर्वेद कालेज, पीलीभीत

परिचय-पित्ताशय (Gall Bladder) यकृत् का एक उपाग है। इस अवस्था मे इस अवयव मे शोथ हो जाता है जिसके फलस्वरूप पित्ताशय के क्षेत्र मे पीडा होती है। साथ ही कुछ अन्य शारीरिक कष्ट भी होते है, जैसे-वमन ज्वर आदि। इस रोग के साथ-साथ प्राय पित्ताशय मे अश्मरी (गाल स्टोन) भी होती है। यह रोग प्राय स्थूल एव चालीस वर्ष से अधिक आयु वाली स्त्रियो मे पाया जाता है।

प्रकार-पित्ताशय शोथ दो प्रकार का होता है-

(अ) तीव्र पित्ताशय शोथ (Acute choleycystitis)

(आ) चिरकालीन पित्ताशय शोथ (Chronic cholecystitis)

(अ) तीव्र पित्ताशय शोथ (Acute cholecystitis)

कारण-

उत्पादक कारण-(१) पित्त (बाइल) का पित्ताशय मे अधिक समय रुका रहना (२) पित्त-मार्ग मे पथरी (स्टोन) या पित्ताशय मे कृमियो का पहुच जाना आदि इसके उत्पादक कारण है।

व्यञ्जक कारण-स्ट्रेप्टोकोकाई, स्टेफिलोकाकाई टायफाइड बैसिलस, कोलाई बैसलिस आदि जीवाणुओ के द्वारा पित्ताशय मे सक्रमण पहुचने पर पित्ताशय शोथ की उत्पत्ति होती है। यह सक्रमण रुधिर एव लसीका वाहिनियो के द्वारा पहुचता है।

प्रकार-यह सक्रमण की गम्भीरता के अनुसार प्रसेकीय (Catarrhal) पूय सचारज (Suppurative), कोथमय (Gangrenous) हो सकता है।

लक्षण-दक्षिण अध पर्शुक प्रदेश (हाइपोकोण्ड्रियम) एव अधिजठर प्रदेश (एपीगैस्ट्रियम) मे पीडा होती है। यह पीडा तीव्र और रुक-रुक कर होती है अथवा मन्द-मन्द बराबर बनी रहती है। यह पीडा दक्षिण स्कन्ध एव पीठ की ओर गमन करती है। पित्ताशय के स्थान पर स्पर्शासह्यता होती है। पीडा के निकट की पेशिया कडी रहती है। यदि पेशियो को ढीला कर परिस्पर्शन किया जाय तो बढे हुए पित्ताशय का स्पर्श होगा। इस रोग मे हृल्लास, वमन, जाडा लगकर ज्वर होना आध्मान आदि लक्षण उपस्थित होते है। कभी-कभी कामला भी हो जाता है। नाडी की गति तीव्र हो जाती है। पित्ताशय शोथ का एक विशिष्ट चिन्ह जो "मर्फी का चिन्ह" कहलाता है उपस्थित होता है।

परीक्षाये-रक्त परीक्षा मे श्वेत कणो की वृद्धि होती है। यह वृद्धि प्रधानतया बहुकारियो (Polymorph leucocytosis) मे होती है। श्वेतकणो की वृद्धि तथा कमी से शोथ की अवस्था का ज्ञान होता है। यह परीक्षा प्रति १२ घण्टे पर करनी चाहिए। लसिका (सीरम) मे पित्तरक्ती (Bilirubin) देखना चाहिए। क्ष-किरण द्वारा बिना रग आदि के दिये उदर की परीक्षा अश्मरी के लिए करनी चाहिए।

नोट-रोग की अत्यन्त तीव्र अवस्था मे यदि पित्ताशय के फटने की सम्भावना हो तथा शल्य-कर्म तत्काल करना आवश्यक हो तब इन परीक्षाओ मे समय नष्ट करना ठीक नहीं है। इस अवस्था मे केवल श्वेतकणो (W B C) की सख्या के लिए रक्त की ही परीक्षा कर लेनी चाहिए।

प्राग्ज्ञान (Prognosis)-पूयभाव न हो, तो यह रोग शीघ्र ठीक हो जाता है। उपेक्षा करने पर यह चिरकारी रूप ग्रहण कर सकता है। यदि पाक (Suppuration) एव कोथ (Gangrene) हो जाता है तो पित्ताशय के फटने पर विस्तृत उदरावरण शोथ होकर मृत्यु हो सकती है।

चिकित्सा-इस अवस्था की चिकित्सा इस बात पर निर्भर करती है कि पित्ताशय फट गया है अथवा शीघ्र ही फटने वाला है या उसके निकट भविष्य मे फटने की सम्भावना है या नही। इन विकृतियो का ज्ञान रोगी की अवस्था नाडी की गति पीडा की स्थिति, उदर की अनम्यता (Rigidity), रोगी का ताप श्वसन की गति, रक्त-परीक्षा मे श्वेत कणो की सख्या आदि से की जा सकती है। पित्ताशय यदि फट गया हो अथवा उसके फटने की सम्भावना हो तब तत्काल शल्य-कर्म करना आवश्यक है

परन्तु यदि रोगी की अवस्था से इन उपद्रवो की सम्भावना प्रतीत न होती हो, तब ३६ घण्टे तक औषधियो द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। औषधियो द्वारा चिकित्सा करते समय रोगी की अवस्था पर निरन्तर ध्यान रखना चाहिए, जिससे आवश्यकता प्रतीत होने र तत्काल शल्य-कर्म किया जा सके। औषधियो द्वारा उपसर्ग की चिकित्सा की जाती है। जलाल्पता होने से बचाया जाता है, रोगी का बल क्षीण नहीं होने दिया जाता तथा लक्षणो की उपयुक्त चिकित्सा की जाती है।

(१) सामान्य चिकित्सा एव रोगी की अवस्था का निरीक्षण-इससे आक्रान्त रोगी की शैया पर रखकर पूर्ण विश्राम देना चाहिए। जब तक मिचली अथवा वमन बन्द न हो, मुख से किसी प्रकार का आहार नहीं देना चाहिए। रोगी के उदर की परीक्षा प्रति दो घण्टे पर करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि उदर की अनम्यता (Rigidity) मे क्या परिवर्तन होता है। शोथ मे कमी होने पर अनम्यता मे भी कमी होती है और शोथ मे वृद्धि होने पर अनम्यता मे भी वृद्धि होती है। रोगी का ताप, नाडी की गति तथा श्वसन की गति (T P R) प्रति २ घण्टे पर देखना चाहिए। इनकी वृद्धि शोथ की द्योतक है। इनमे कमी होना रोगी की अवस्था मे सुधार होने का प्रतीक है।

(२) उपसर्ग की चिकित्सा-प्रतिजीवी (एण्टीवायोटिक्स) योगो का प्रयोग करे, जैसे-डाइक्रिस्टिसिन का सूचीवेध पेशीमार्ग से दे या रिवैरिन का सूचीवेध सिरामार्ग (I V) से दे। यदि वमन न हो, तब टेरामाइसीन या होस्टासाइक्लीन के कैपसूल मुख से भी दे सकते हैं।

(३) जलाल्पता बचाने के लिए तथा रोगी का बल क्षीण न होने के लिए-इसके लिए समबल लवण घोल (Normal Saline) अकेला अथवा ग्लूकोज ५ प्रतिशत के साथ सिरा (I V) मार्ग से ४०-६० बूद प्रति मिनट की गति से देना चाहिए।

(४) लक्षणो की चिकित्सा-पित्ताशय मे पीडा होने पर उस प्रदेश पर तीसी की पुल्टिश अथवा केओलीन (Kaolin) की पुल्टिश बाधना चाहिए। तीव्र शूल को शान्त करने के लिए पैथेडीन अथवा एट्रोपीन का उचित मात्रा मे प्रयोग करना चाहिए। अथवा सोडियम फीनो बार्बीटोन १-२ ग्रेन की मात्रा मे पेशीमार्ग से दे सकते हैं। वमन और आध्मान के लिए नाक से नली डालकर Suction का कर्म करना चाहिए। कब्ज के लिए मैगसल्फ देना चाहिए।

उपरोक्त चिकित्सा से यदि लाभ प्रतीत हो और ३६ घण्टे के अन्दर ताप, नाडी की गति, श्वेत कणो (W B C) की सख्या तथा उदर की अनम्यता (Rigidity) मे यदि कमी होती प्रतीत हो, तब समझना चाहिए, कि शोथ मे कमी हो रही है। इस अवस्था मे रोगी को तब तक विश्राम करना चाहिए, जब तक ताप, नाडी की गति तथा श्वेत कणो की सख्या प्राकृत नहीं हो जाती। इनके प्राकृत होने के दो दिन पश्चात् एण्टीवायोटिक्स औषधिया बन्द कर देनी चाहिए। अब रोगी को शनै -शनै तरल आहार तथा अनार, मोसम्बी, सन्तरा आदि फलो का रस बार्लीवाटर देना चाहिए। इन पदार्थों के पच जाने पर रोगी को पर्याप्त मात्रा मे कार्बोज, साधारण मात्रा मे प्रोटीन तथा अत्यल्प मात्रा मे वसा (Fat) युक्त आहार देना चाहिए। साथ-साथ मल्टीविटामिन्स का भी प्रयोग करना चाहिए। जब रोगी साधारण आहार लेने लगे, रोग की तीव्र अवस्था शान्त हो जाय तथा रोगी स्वस्थ प्रतीत हो, तब क्ष-किरण द्वारा पित्ताश्मरी के लिए विधिवत् परीक्षा (Cholecystography) करनी चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है, कि पित्ताशय शोथ की चिकित्सा अन्ततोगत्वा शल्य-कर्म द्वारा पित्ताशय को निकाल देना (Cholecystectomy) ही है और उपरोक्त औषधियो द्वारा चिकित्सा केवल इसलिए की जाती है कि शल्य-कर्म करने से पूर्व रोगी के स्वास्थ्य मे पर्याप्त सुधार हो सके तथा रोग और शल्य-कर्म सम्बन्धित आवश्यक परीक्षाये की जा सके।

तीव्र पित्ताशय शोथ की शल्य चिकित्सा-पित्ताशय फट जाने पर या निकट भविष्य मे उसके फटने (Perforation) की सम्भावना होने पर, पित्ताशय मे पूय सचय (Empyema) होने पर, कोथ (Gangrene), उदरावरण शोथ (Peritonitis) आदि उपद्रव होने पर ताप तथा नाडी की गति लगातार बढने पर तथा औषधियो द्वारा ३६ घण्टे तक चिकित्सा करने के पश्चात् भी यदि रोगी की अवस्था मे सुधार न हो तथा शोथ मे कमी होती न प्रतीत हो तब तत्काल शल्यकर्म करना चाहिए। रोग की तीव्र अवस्था शान्त हो जाने पर ही शल्य चिकित्सा करना ठीक है। तत्काल शल्यकर्म आवश्यक होने पर रक्तप्रदान की व्यवस्था होनी चाहिये। शल्यकर्म की सम्पूर्ण अवधि पर्यन्त ४० बूद प्रतिमिनट की गति से सिरा मार्ग से प्राय ५०० सी० सी०

रक्त देने की आवश्यकता पडती है। शल्य चिकित्सा के साथ-साथ भी उपसर्ग के लिए पेशीमार्ग से डाइक्रिस्टीसिन का इञ्जेक्शन लगाना चाहिए अथवा रिवेरिन सिरामार्ग से देना चाहिए। जलाल्पता बचाना आवश्यक है। इसके लिए समबल लवणघोल (N Saline) आवश्यकता अनुसार सिरामार्ग से ४० बूद प्रति मिनट की गति से शल्यकर्म के पूर्व तथा पश्चात् देना चाहिये। यदि तत्काल शल्यकर्म आवश्यक न हो तब आवश्यक नैदानकीय परीक्षाओ द्वारा रोगी की वास्तविक स्थिति का पता लगाना चाहिये तथा औषधि व आहार द्वारा रोगी की अवस्था सुधारनी चाहिए जिससे शल्यकर्म का परिणाम उत्तम हो।

इस रोग मे जो शल्यकर्म किया जाता है उसे (Cholecystectomy) कहते है। शल्यकर्म करने से पूर्व विटामिन K देकर (Prothrombin Time) ठीक कर लेना चाहिये तथा यदि रक्ताल्पता हो तो लोह, यकृत् सत्व का प्रयोग करना चाहिए अथवा रक्त प्रदान करना चाहिए।

पित्ताशय निकालते समय सयुक्त पित्तवाहिनी (Common bile duct) की ध्यानपूर्वक परीक्षा करनी चाहिए। कभी-कभी इस नलिका मे अश्मरी रहती है जिसका निकालना आवश्यक है। चिकित्सा की सम्पूर्ण अवधि पर्यन्त कम से कम दिन मे दो बार रक्तदाब (B P) देखना चाहिये इससे रोगी के हृदय की स्थिति, जल की आवश्यकता, सिरामार्ग से लवण घोल (Saline) आदि देने का परिणाम आदि के विषय मे ज्ञान होता है।

(आ) चिरकालीन पित्ताशय शोथ
(Chronic cholecystitis)

परिचय-यह एक सर्वाधिक पाया जाने वाला उदर रोग है। यह प्रारम्भ से ही चिरकालीन हो सकता है या तीव्र पित्ताशय शोथ भी चिरकालीन अवस्था मे परिवर्तित हो सकता है। इस अवस्था मे शोथ के चिरकाल तक रहने से श्लेष्मलकला तथा मासमय स्तर मे फाइब्रोसिस या स्नायु तन्तु वृद्धि की प्रक्रिया हो जाने से पित्ताशय कठोर और कुछ स्थूल हो जाता है। इसके साथ-साथ पित्ताशम मे पथरी भी हो सकती है।

कारण-पित्ताशय मे अश्मरी, कब्ज, उपसर्ग आदि के कारण पित्त के प्रवाह मे रुकावट होने से यह रोग होता है। कोलेस्टेरोल के चयापचय मे गडबड होने पर भी पित्ताशय मे शोथ हो जाता है।

लक्षण (Symptoms)-भोजन के बाद ही पेट मे भारीपन और अफारा शुरू हो जाता है और बराबर बना रहता है। अधिक भोजन, घी तेल, अण्डा आदि का अधिक सेवन लक्षणो को बढाता है। उद्गार आने से आराम मिलता है और वमन से तुरन्त पूर्णत शान्त हो जाता है। आगे की ओर झुकने पर, घुटनो को पेट पर मोडने से तथा कमर का वस्त्र ढीला करने से भी कष्ट मे कमी होती है। सध्या समय जाडा लगता है, कम्प होता है और ज्वर आ जाता है। प्रसेक, वमन, खट्टी डकार आना, गला जलना अतिसार या कब्ज आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते है। इसमे दक्षिण स्कन्ध मे पीडा होती है। इसमे सार्वदैहिक लक्षण चिरकारी सक्रमणजन्य सन्धिशोथ, शिराशोथ, अरक्तता हृदय पेशी का व्यपजनन, धडकन हलके परिश्रम से कष्ट श्वास आदि होते है। मर्फी का चिह्न अस्यात्मक (+) होता है।

शारीरिक परीक्षाए-

(१) **परिस्पर्शन** (Palpation)-पित्ताशय प्रदेश मे स्पर्शासह्यता होती है, उसके ऊपर की पेशिया कडी होती है।

(२) **परिताडन** (Percussion)-अधिक बढा हुआ पित्ताशय मन्दध्वनि युक्त होता है।

अन्य परीक्षाए-

(१) **एक्स-रे परीक्षा**-पित्ताशय प्रदेश मे कुछ अपारदर्शकता होती है। बृहदन्त्र का दाहिना घुमाव अनियमित होता है।

(२) **कोलीसिस्टोग्राफी**-पित्ताशय नहीं भरता अथवा भराव अनियमित होता है। अश्मरी की छाया हीनता दिखाई दे सकती है।

(३) **ग्रहणी मे नली डालकर परीक्षा** (Duodenal Intubation)-सक्रमणजन्य शोथ होने पर ग्रहणी के पदार्थो मे जीवाणु मिल सकते है।

प्राग्ज्ञान (Prognosis)-उचित चिकित्सा न होने पर पित्ताश्मरी पूयोरस तथा पित्ताशय का कैसर हो सकता है।

चिकित्सा-चिरकालीन पित्ताशयशोथ की चिकित्सा मे प्राय अन्त मे शल्यकर्म करना ही पडता है विशेषकर पित्ताशय मे अश्मरी रहने पर अथवा पित्ताशय की प्राचीर मोटी हो जाने पर तथा पित्ताशय ठीक से कार्य न करने पर। यह रोग बिना पित्ताश्मरी के हो तो औषधि-चिकित्सा से ठीक हो सकता है।

अश्मरी भी हो तो केवल औषधियो के प्रयोग से ठीक नहीं होता तथापि यदि रोगी वृद्ध हो, दुर्बल हो अथवा अन्य किसी कारण से जब शल्यकर्म सम्भव न हो तो निम्नलिखित चिकित्सा से कुछ लाभ अवश्य होता है-

(१) **व्यायाम चिकित्सा**-पित्ताशय मे विद्यमान पित्त की स्थिरता (Stasis) को दूर करने के लिए मृदु-व्यायाम तथा पेट सम्बन्धी आसन लाभदायक होते है।

(२) **भोजन चिकित्सा**-बहुधा स्नेहहीन भोजन से पित्ताशय शोथ के रोगी को लाभ प्रतीत होता है अत घी-तेल मे तैयार किये गये भोजनो का परित्याग कराना चाहिये। भोजन स्वल्प मात्रा मे सरलता से पचने वाला तथा नियमित समय पर लेना चाहिए। भोजन से एक आधा घण्टा पहले चौथाई या आधा औस की मात्रा मे जैतून तैल, बादामरोगन आदि दिन मे दो-तीन बार लेने से तो विशेष लाभ होता है। ये पित्ताशयगत पित्त को बाहर निकालने का कार्य करते है। इस रोग मे मद्य तीक्ष्ण मसाले सिरका आदि का परिवर्जन करना चाहिए। भोजन मे बादी चीजे जिनसे वायु बनने की सम्भावना हो प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रारम्भ मे तो इस रोग मे चिकनाई रहित दूध दही अर्थात् मट्ठा अधिक उपयुक्त रहते है। तत्पश्चात् शनै -शनै फलो का रस उबाली हुई तरकारी फल तथा अन्त मे रोटी चावल दे सकते है।

(३) **औषधि चिकित्सा**-दात-कण्ठ आदि मे उपसर्ग रहने पर तथा ज्वर रहने पर प्रतिजीवी औषधिया डाइक्रिस्टीसिन इन्जेक्शन आदि दे। पित्त विरेचक औषधियो का प्रयोग अपेक्षित है। प्रात काल खाली पेट मैगसल्फ (Mag-sulph) १-२ ड्राम तक जल के साथ पीकर रोगी को थोडी देर दाहिने करवट लेटना चाहिये। इससे पित्ताशय सकोच करता है तथा पित्ताशय से पित्त का प्रवाह विशेष रूप मे होने लगता है। पोटाशियम साइट्रेट का प्रयोग भी बाइल का प्रवर्तक है।

पीडा के लिए मार्फिन या पेथीडिन या एट्रोपीन का इन्जेक्शन दिया जाता है। अजीर्ण के लिए अम्लनिरोधी औषधियो (Antacids) का प्रयोग किया जाता है। निद्रा तथा मानसिक विश्राम के लिए ल्यूमीनाल (Luminal) १/२-१ ग्रेन रात्रि मे निद्रा के पूर्व दे सकते है। पित्त को जीवाणु रहित करने के लिए पित्तशोधक (Biliary Antiseptics) औषधिया दी जाती है। सैण्डोज क० की फेलामीन टेबलेट मे (Felamine Tab) पित्तशोधक गुण है। इसकी १ गोली दिन मे तीन बार दी जाती है।

पित्ताशय मे पथरी (Gall Stone) रहने पर पित्ताशय उच्छेदन (Cholecystectomy) करना चाहिए।

पित्ताशय शोथ की आयुर्वेदिक चिकित्सा

"विरेको पित्तहराणाम् श्रेष्ठम्" के सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुए कटुकी तथा अन्य भेदन औषधियो के योग से विरेचन कराना चाहिये।

तीव्र शोथ की ज्वरावस्था मे गुडूची सत्व व सुदर्शन चूर्ण का प्रयोग करना चाहिये। कब्ज होने पर लवणभास्कर चूर्ण हितावह है। वमन की प्रवृत्ति मे मयूर-पिच्छभस्म का प्रयोग करे। गोमूत्र साधित हरीतकी शखवटी काकायन वटी यवक्षार, सूतशेखर रस आरोग्यवर्धिनी वटी, इन औषधियो का यथावश्यक प्रयोग करे। सैन्धव त्रिकुट हींग, कूठ, सब समान लेकर बिजौरे नीबू के रस के द्वारा बनाई गई या चूर्ण को एक माशा की मात्रा मे दिन मे दो बार त्रिफलादि क्वाथ के साथ दे तो पित्ताशय का शोथ शान्त हो जाता है। या हिंग्वादि चूर्ण २ ग्राम प्रतिदिन तीन बार दे तो शूल शान्त हो जाता है। रोहितक तथा पुनर्नवा के गुग्गुल युक्त योग भी लाभप्रद होते है। मूली का प्रयोग स्वरस एव क्षार के रूप मे बहुत अच्छा है। इस रोग मे कटु तिक्त तथा कषाय रस वाली औषधियो का प्रयोग उत्तम है।

पथ्य-सुपाच्य तथा द्रव भोजन, दूध, फल यूष, जौ गेहू का दलिया (यवागू) शाको मे करेला परवल, फलो मे पपीता विशेष हितकर है।

अपथ्य-घी तेल मे बना हुआ भोजन गुरु भोजन पित्तवर्धक पदार्थ, जमीन के अन्दर उत्पन्न होने वाले कद (आलू आदि सब), मद्य, तीक्ष्ण मसाले, सिरका आदि ये सब त्याज्य है।



पित्ताश्मरी कारण एवं चिकित्सा-1

वैद्य सत्यनारायण शर्मा बी० ए० भिषगाचार्य,
चिकित्सा प्रभारी-राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय, खण्डार (सबाई माधौपुर) राज०

पित्ताशय के अन्दर पित्त अधिक देर तक रुका रहे तथा वहा थोडा-२ गाढा होनें से अर्थात् केवल ५-१० गुना से ज्यादा गाढा होने पर जब जीवाणुओ का सक्रमण हो जाये तब पथरी बनने की सभावना हो जाती है। अधिक बैठे रहने से व्यायाम न करने से, स्थूल व्यक्तियो मे तथा स्त्रियो मे गर्भ स्थिति काल मे एव भोजन मे स्निग्ध पदार्थों की बहुलता रहने पर पित्ताशय मे पित्त अधिक रुका रहता है तथा गाढा हो जाता है। यही गाढा पित्त पित्ताशय की श्लैष्मकला के लिए विक्षोमक एव पित्ताशय शोथ का कारण हो जाता है। जिससे पित्ताशय के अन्दर से श्लैष्मस्राव अधिक मात्रा मे निकलने लगता है। इस श्लैष्मस्राव के ल्यूकोसाइटिस फेब्रिन तथा झडे हुए एपीथीलियम के सैलो के साथ मिलने से छोटे-छोटे श्लेष्म कण बन जाते है जो पथरियो के लिए न्यूक्लियस का काम करते है। पित्ताशय मे शोथ हो जिससे उसमे श्लैष्मस्राव की मात्रा अधिक उत्पन्न हो और वह पित्त लवणो को विलीन करले तो भी क्लोस्टेरोल के बैठ जाने से पित्ताश्मरिया बन जाती हैं। इस प्रकार पित्ताश्मरिया यकृत्, पित्ताशय के रुग्ण होने के कारण होती प्रतीत होती है। सम्भवतया रक्त मे क्लोस्टेरोल की अधिकता इस रोग का कारण है और ऐसी अवस्था मे पित्त मे भी उसकी वृद्धि हो सकती है। गर्भिणी मे रक्त के अन्दर क्लोरटेरोल की बृद्धि होना स्वाभाविक है। मधुमेह मे भी इसकी वृद्धि होती है। साथ ही पित्त मे वाइल रूविन की मात्रा अधिक हो अर्थात् शरीर मे रक्तकण अधिक टूट रहे हो तब भी पित्ताश्मरी बन सकती है।

कोलेस्टेरोल, बिलीरूबिन और खटिक मे तीनो अश्मरी के मुख्य घटक है अत आधार पर अश्मरी तीन तरह की होती हैं-

(१) कोलेस्टेरोल अश्मरी-कोलेस्टेरोल एक वसामय द्रव्य है। इसकी रचना मे मेदोऽम्ल तथा ग्लेरीन भाग लेते है। कोलेस्टेरोल सभी कोषो मे अल्प प्रमाण मे रहता है। यह धातुपाक से उत्पन्न एक मल द्रव्य है जो कई विषो को कोषो मे प्रविष्ट होने से रोकने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। याकृत् पित्त मे भी यह पाया जाता है। कोलोरटेरोल की चयापचय मे गडबडी होने से यह पथरी बनती है। अतएव इसे चयापचय जन्य (मेटोबोलिक) अश्मरी कहते है। यह बडी अण्डाकार श्वेत प्राय सख्या मे एक हल्का चमकता हुआ मणिभ होता है। पित्ताशय मे अधिक पित्त कोलेस्टेरोल एव अवरोध रहने से कोलेस्टेरोल अश्मरी बनती है। यह शान्त अश्मरी होती है जिसके कारण कोइ लक्षण दिखाई नहीं पडते है।

(२) रागक (वाइल पिगमेन्ट) अश्मरी-यह सख्या मे एक या अनेक बहुत छोटा भुरभुरा एव बिलीरूबिन से युक्त रहता है। इसमे क्लोस्टेरोल नहीं रहता है। जब ये अनेक एव बहुत छोटे होते है तो पित्त सिकता से बनते है।

(३) मिश्रित अश्मरी-यह क्लोस्टेरोल, बिलीरूबिन और कैल्शियम से बनती है। इसमे ८० प्रतिशत पित्त रहता है। इसका रग पीला व भूरा होता है। एक पथरी रहने पर इसका फलक चमकीला होता है-

लक्षण-

पित्ताश्मरी का निदान बहुत सोच-समझकर करना पडता है क्योकि पहले तो जिस पित्ताश्मरी मे पित्ताश्मरी बनती है वह केवल मात्र ४ इच लम्बा यकृत् के दाये खण्ड के निचले पृष्ठ पर ९वी कोस्टल कार्टिलेज के अगले सिरे पर Mammary Line पर होता है। इस पित्ताशय मे ४५ सी० सी० के लगभग पित्त (वाइल) जमा रहता है। जबकि यकृत् मे प्रतिदिन २००० सी० सी० के लगभग वाइल (पित्त) बनकर हैपेटिक डक्ट के द्वारा बाहर आता है फिर इसके द्वारा पित्ताशय से निकली जाली के मिलने से कोमल वाइल डक्ट (Common Bile Duct) बन जाती है जो यकृत् से अथवा पित्ताशय से आये पित्त को ग्रहण्याशय (duodenum) मे ले जाती है। जब भोजन नही किया जाता है तब पित्त पित्ताशय मे सचित होता रहता है जहा उसका बहुत सा जलाश फिर से शरीर मे विलीन हो जाता है। जिससे वह

५-१० गुना गाढा हो जाता है। यही गाढा पित्त पित्ताश्मरी का रूप लेता है। मोटी व मध्य वय की महिलाये इस रोग से अधिकतर ग्रसित मिलती है। अश्मरी के स्थान और परिस्थिति के अनुसार लक्षण भिन्न-भिन्न मिलते है। जब पित्ताश्मरिया पित्ताशय मे रुकी रहती है तब तक इन्हे शात अश्मरिया (Silent Stones) कहते है। पित्त शूल चिरकारी अश्मरी जन्य पित्ताशय शोथ का प्रमुख लक्षण है। पित्तकोष नलिका या साधारण पित्त नलिका मे अश्मरी अटक जाने पर जो शूल होता है अश्मरी जन्य पित्ताशय शूल का नैदानिक लक्षण है। पित्ताशय शोथ मे प्राय करके आमाशय सम्बन्धी लक्षण अर्थात् अजीर्ण के लक्षण रहते है। इसे पित्ताशय सम्बन्धित अजीर्ण (Gall Bladder dyspepsia) कहते है। कभी-कभी पित्ताशय का कष्ट आमाशय मे प्रक्षिप्त (reflex) हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार भोजन करने के बाद पेट मे भारीपन तथा आध्मान या अफरा के लक्षण हो जाते है। आमाशय प्रदेश मे या इसके दायीं ओर पेट के ऊपर के भाग मे हल्का-२ दर्द बढने लगता है, खट्टी डकार आती है भोजन के बाद जल पित्ताशय मे सकोच कर्म (कन्ट्रेक्शन) होने से पित्त निकलने लगता है तब यह दर्द तथा अन्य लक्षण विशेष होते है। विशेषत अधिक भोजन करने या घी तैल आदि मे पकवान लेने के बाद यह दर्द होता है। यह दर्द उर फलक के दक्षिण भाग मे ९वीं पर्शुका से होते हुए पीठ मे चुभन के समान दर्द उत्पन्न कर दक्षिण स्कन्ध प्रदेश मे गति करता है। यह शूल नीचे की ओर कभी नही जाता है। आक्रमण के समय उदर के ऊपर चतुर्थ भाग मे दबाने से पीडा और मासपेशियो का सकोच मिलता है। जब कोई पित्ताश्मरी पित्ताशय ग्रीवा मे फॅस जाती है तब पित्ताश्मरी शूल के लक्षण उत्पन्न होते है। यदि मार्ग रोध चिरस्थायी हो तो पित्ताशय, श्लैष्मद्रव के भर जाने से फूलकर बडा हो जाता है जिसे Hydrops कहते है।

जब पित्ताश्मरी Common Bile Duct मे प्रवेश करके रुक जाती है तो उस नाली पर इसका दबाब पडने से अश्मरी शूल का दौरा प्रारम्भ होता है जिससे शूल आमाशय प्रदेश मे प्रतीत होता है। जब यह लचकीली नाली फेल जाती है तब शूल का वेग समाप्त हो जाता है इसमे अश्मरी के रुकने से इसके अन्दर श्लैष्मिक शोथ हो जाने के कारण न्यूनाधिक द्रव मे कामला के लक्षण दिखाई देते है। शूल के १-२ दिन बाद कामला प्रकट हो तो इसी का सन्देह करना चाहिए। यह कामला गुप्त या हल्का होता है जो सीरम बिलीरूबिन परीक्षा से पता चलता है। साधारणतया इसमे मूत्र अस्थायी काला दिखाई देता है।

पित्तशूल लक्षण के साथ अवरोधक कामला दिखाई पड सकता है। यह अवरोध प्राय पूर्ण नहीं होता है। करीब एक या दो सप्ताह रहता है। कुछ रोगियो मे पित्त नलिका शोथ और पित्त नलिका याकृतिय शोथ दिखलाई पडता है। इसमे ज्वर जाडा एव यकृत्-वृद्धि मिलती है।

उपद्रव-

जब अश्मरी पित्ताशय मे से निकल कर पित्त स्रोतो से पित्त के साथ बाहर निकलने का प्रयत्न करती है तब उपद्रव प्रारम्भ हो जाते है-

(१) यदि पूयात्मक पित्ताशय शोथ हो तो पित्ताशय फटता है फिर समीपता के कारण उदर्याकला शोथ होता है।

(२) यदि पित्ताशय शोथ चिरकारी हो तो पित्ताशय कोष स्फीत और मोटा होता है। साथ ही पित्ताश्मरी इसका आवरण बनकर बद्ध हो जाती है फिर सतत् पीडा देने लगती है और पित्ताशय मे कैसर हो जाता है। आत्र गति मे प्रतिबन्ध उत्पन्न करता है।

(३) जब पित्ताश्मरी पित्त के साथ सरकने लगती है तो शूल की उत्पत्ति होती है और अश्मरी जब आत्र मे पहुच जाती है तब शूल का शमन होता है।

(४) पित्ताश्मरी बडी होने पर नलिका मे रुक जाती है और वहा शोथ हो जाता है।

(५) पित्ताश्मरी बडी होने पर कभी जब आत्र मे फस जाती है तब आत्रावरोध कर देती है।

(६) अधिक मात्रा मे भोजन लेने या भारी भोजन लेने के कुछ घण्टे बाद या किसी सबारी मे जाने के बाद सायकाल या रात्रि को पित्ताश्मरी का शूल आरम्भ हुआ करता है।

(७) पित्ताश्मरी का शूल चुभने वाला दर्द रुक-रुक कर निरन्तर बना रहता है।

(८) पित्ताश्मरी का दर्द पेट के ऊपर के दाये भाग मे मध्य रेखा के प्रदेश मे होता है तथा इतना तीव्र होता है कि रोगी कष्ट के मारे व्याकुल और बेचैन होकर चीखता है। साथ ही इधर-उधर फिरता है।

(९) पित्ताश्मरी मे दर्द स्कन्धास्थि (स्केप्यूला) के प्रदेश से कन्धे तक जाता प्रतीत होता है। रोगी के चहरे पर पसीना आ जाता है।

(१०) रोगी को तापमान कम हो जाता है कभी-२ शीत व कम्प होता है, नाडी तीव्र तथा निर्बल होती है।

(११) पित्ताश्मरी शूल मे रोगी को कभी-२ वमन होती है जिससे लेसदार पानी या कुछ पित्त आती है तथा वमन होने के बाद दर्द मे कमी आती है।

(१२) यह दर्द बहुत देर तक नहीं रहता-एक दो घटा रहकर जिस प्रकार सहसा प्रारम्भ हुआ उसी प्रकार सहसा शात हो जाता है।

(१३) किसी मे कभी कुछ घण्टो बाद दर्द पुन उठता है अथवा महीनो या वर्षों के बाद भी उठ आता है।

सापेक्ष निदान तालिका

रोग	स्थान एव विस्तार	लक्षण	आयु एव लिग
पित्ताश्मरीजन्य शूल	दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेश मे कन्धे की ओर ऊपर गति करने वाला, सतत् वेग युक्त सहसा	तीव्र कामला, यकृतीय जन्य लक्षण	स्वस्थ, मोटी, बहुप्रसवा, उम्र ४० वर्ष
आन्त्र शूल	नाभि के समीप भयकर शूल दबाने पर कम हो जाने वाला, वेगयुक्त	मलावरोध, अतिसार, वमन	स्त्री, पुरुष दोनो को किसी भी आयु मे हो सकता है।
वृक्क शूल	पार्श्व भाग मे नीचे वृषण या बीज कोष की और नीचे की गति वाला	मूत्र शर्करा, रस युक्त मूत्र, बहुमूत्र या मूत्रकृच्छ्र	प्राय पुरुषो, बच्चो व युवाओ मे
आत्रपुच्छ शूल	मेकबर्नी बिन्दु पर दबाने से अधिक दर्द होता है, रोगी निश्चल पडा रहता है।	वमन, स्थानिक काठिन्य, दबाने पर दर्द, तीव्र ज्वर	किसी भी आयु मे तथा दोनो लिगो मे समान रूप से मिलता है।

उपरोक्त रोगो से सापेक्ष निदान करना परमावश्यक है क्योकि अन्यथा रोग का पता लगना कठिन हो जाता है। इसके बाद लक्षणो से यदि रोग का निदान नहीं हो तो प्रयोगशाला परीक्षण एव क्ष-किरण परीक्षा आवश्यक है।

प्रयोगशाला परीक्षण एवं क्ष-किरण-

मूत्र मे बिलीरूबिन का मिलना साधारण पित्त नलिका अवरोध पर निर्भर करता है। नैदानिक कामला की अनुपस्थिति मे प्राय कुछ घण्टो के लिए बिलीरूबिन मिल सकता है। पित्ताशय के रोग अगर यकृत् की क्षतिग्रस्त करने लगते है तो यूरोविलीनोजन मूत्र मे मिलने लगता है।

तीव्र शूल के आक्रमण होने पर क्ष-किरण एव कोलेसीस्टोग्राफी करवानी चाहिए। इससे अश्मरी एव पित्ताशय की खराबी का पता चल जाता है।

कोलेसीस्टोग्राफी (Chole-cystography)-रात को चिकनाई रहित हल्के खाने के बाद आयोडीन वाला कम्पोण्ड दे दिया जाता है जो पित्त के साथ पित्ताशय मे चला जाता है। इसके देने के १४ घण्टे बाद सबेरे एक्स-रे करने पर पित्ताशय की छाया फिल्म मे आ जाती है। फिर रोगी को खूब पानी पिलाया जाता है या मौसमी का रस, चाय दूध दिया जाता है फिर पेशाब की हाजत होने पर पुन फिल्म ली जाती है। इससे पित्ताशय

शोथ एव पित्ताश्मरी का पता चल जाता है जिससे चिकित्सा मे सुविधा हो जाती है। जब अश्मरी का पूर्णरूपेण निश्चय हो जाये तब चिकित्सा परम आवश्यक है-

चिकित्सा-

पित्ताश्मरी चिकित्सा शल्य तन्त्रीय जितनी अधिक है उतनी काय-चिकित्सात्मक नहीं मानी जाती फिर भी काय-चिकित्सक पित्ताश्मरी मे निम्न चिकित्सा करता है-

(१) तीव्र पैत्तिक शूल की चिकित्सा

(२) पित्ताशय के उपसर्ग की चिकित्सा

(३) अजीर्ण और स्थौल्य की चिकित्सा

(४) पित्तवाहिनी की नान सर्जीकल सफाई

(५) शल्य-चिकित्सा

आयुर्वेदिक चिकित्सा-

(१) तीव्रावस्था मे पीडाहर औषधि देकर रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिए।

(२) पित्ताशय मे पित्त का सचय होने पर पित्त का निर्हरण करना चाहिए।

(३) स्थानीय स्वेदन करना चाहिए। गर्म पानी की थैली से यकृत्-प्रदेश व स्थानीय सेक लाभदायक है।

(४) घी तैल मे तैयार भोजन का परित्याग करे।

औषधिया-

(१) पित्तशूलान्तक वटी, शूलबज्रिणी, कर्पूर रस, अगस्ति-सूतराज, ताम्र भस्म, आरोग्यवर्धनी वटी।

(२) अपामार्ग, सामुद्राद्य चूर्ण, तिल क्षार, कटुका चूर्ण, शिलाजतु, हजरुल यहूद भस्म, नौसादर।

(३) कुमार्यासव, लोहासव, द्राक्षासव २-२ तोला समान जल से देना लाभदायक है।

(४) लवणभास्कर चूर्ण मलावरोध होने पर दे।

(५) कुशादि घृत भी लाभदायक है।

(६) मृदु विरेचन हेतु जैतून का तैल ४-५ तोले दे।

(७) प्याज का रस १ तोला प्रति २ घण्टे पर पिलाने से लाभ होता है।

(८) मेरी दृष्टिसे निम्न औषधिया पित्ताश्मरी मे ज्यादा फायदा करती है-

पित्तशूलातक २ रत्ती, हजरुल यहूद भस्म १।। रत्ती बडी इलायची के बीज चूर्ण ३ रत्ती नौसादर १।। रत्ती ताम्र भस्म १/४ रत्ती अगस्ति सूतराज १/२ रत्ती शूलबज्रिणी १ रत्ती। १×३, द्राक्षावलेह के साथ।

भोजनोत्तर-लोहासव, कुमार्यासव, द्राक्षासव २-२ तोला समान जल से भोजन के आधे घण्टे पर पिलाये।

रात्रि मे-मृदुविरेचन हेतु जैतून का तैल, एरण्ड स्नेह या पचसकार चूर्ण दे।

कुछ चिकित्सको का मत है कि इसमे तत्काल चिकित्सा हेतु आधुनिक औषधियो का प्रयोग भी आवश्यक है-

शूल तीव्र हो तब निम्न औषधिया प्रयुक्त करे-

इजेक्शन-बैरलगन ५ मि० लि० शिरा द्वारा या मासपेशी द्वारा।

इजेक्शन-स्पाज्मिण्डन २ मि० लि० मासपेशीगत।

इजेक्शन-एवौफोर्टिन २ मि० लि० मासपेशीगत।

टि० बेलाडोना-२०-३० बूद पानी मे मिलाकर दे।

पैथीडीन इजेक्शन-१ मि० ली० त्वचा द्वारा

जब पित्ताश्मरी मे सक्रमण हो तब जीवाणु नाशक औषधिया जैसे-

(१) एम्पीसिलिन ५०० एम०जी० शिरागत व मासपेशी द्वारा।

(२) एम्पीसिलिन कैपसूल ५०० एम०जी० मुख द्वारा

(३) इजेक्शन रिवेरिन ५०० मि० ग्रा० शिरा द्वारा

(४) इजेक्शन ट्रेट्रासाइकिलिन २ मि० लि० मासपेशी से

(५) टैरामाइसिन कैपसूल मुख द्वारा

(६) हैक्सामीन टेबलेट ५ मि० ग्रा० दिन मे ३ बार मुख से

यदि रोगी मुख द्वारा औषधि लेने पर वमन करता है तो ग्लूकोज नार्मल सैलाइन द्वारा शिरान्तर्गत चढाई जाती है। इसमे ही लक्षणानुसार शूल व जीवाणु नाशक औषधिया शिरान्तर्गत

दी जाती है। कुछ का मत है कि पित्ताश्मरी के लिए होम्योपैथिक चिकित्सा अधिक ठीक है-

होम्योपैथिक चिकित्सा-

(१) लाइकोपोडियम ३० साप्ताहिक (रात को सोते समय) (हर रविवार)

(२) मेगफोस २००+कल्केरिया कार्ब २००, प्रात साय ७ बजे। ज्यादा दर्द के समय १०-१० मिनट के अन्तर से न० ५ के साथ कोलोसिएन्थिस के साथ एक के बाद एक दी जा सकती है। केवल दर्द रहने तक उसके बाद यथावत्।

(३) मेगेफोस, नेट्रमसल्फ, नेट्रम म्यूरेटिकम तीनो ६×२-२ गोली प्रात ८ बजे, दोपहर १ बजे, साय ६ बजे। ज्यादा दर्द के समय मेगफोस ६ से १५ गोली आधे कप पानी मे घोलकर रखले तथा ३-३ मिनट के अन्तर से दे।

(४) चेलिडोनियम Q, वरवेरिस वल्गेरिस Q, चियोनेन्थिस Q, कार्ड युमस Q, चायना Q, प्रात -साय ९ बजे ५-५ वूद प्रत्येक दिन मे ३ बार ७ दिन तक फिर १०-१० बूद ७ दिन तक देवे।

(५) कोलोसिएन्थिस २००-ज्यादा दर्द रहने पर न० २ के साथ अन्तराल से देने के लिये, बिना दर्द न दे।

उपरोक्त औषधियो का सेवन १ माह तक करे। इसके पश्चात् किसी होम्योपैथिक योग्य चिकित्सक से परामर्श करे तथा चिकित्सक की सलाह से औषधिया सेवन करे।

सावधानिया-

(१) दवाई लेने के आधे घण्टा पहले तथा बाद मे कुछ नहीं खाना चाहिए।

(२) मुह मे किसी प्रकार की खुशबू नहीं हो।

(३) इत्र तथा सुगन्धित बस्तुये सम्पर्क मे नहीं ले।

(४) कच्चे लहसुन व प्याज तथा सब्जी मे हींग खाना मना है। वसा युक्त तली हुई व हरी सब्जी नहीं ले।

(५) क्रीम निकला दूध, मौसमी का रस ले तथा गर्म पानी की बोतल से पेट की सिकाई करे।



पृष्ठ ४८ का शेषाश- (पित्ताशय शोथ कारण एव चिकित्सा का शेषाश)

मात्रा-३-३ माशा।

अनुपान-तक्र या मधु।

(ख) क्वाथ-जवासा, गोक्षुरू, हरीतकी, आरग्वध, मञ्जिष्ठा व पुनर्नवा को समान मात्रा मे मिलाकर क्वाथ करे। कुल २ तोला द्रव्य १ पाव पानी मे उबाले। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर सेवन करना चाहिए। दानो समय इस क्वाथ का सेवन करने पर ५-७ दिन मे लाभ प्राप्त होता है।

आधुनिक मतानुसार भोजन मे शाक, सब्जी एव कार्वोहाइड्रेट का अधिक प्रयोग करे। तीव्रसक्रमण की अवस्था मे प्रतिजीवी (Antibiotics) औषधि का प्रयोग सद्य लाभ करता है। अन्य औषधियो मे सोडियम सैलिसिलेट, हेक्सामीन एव पोटाशियम साइट्रेट का प्रयोग करे। विरेचनार्थ मैगसल्फ का उपयोग किया जाता है। औषधि से लाभ न होने पर पित्ताशय का पूर्णत उच्छेदन (Cholecystectomy) करवाना अधिक उपयुक्त रहता है।

पथ्य-रोग की तीव्रावस्था मे गोदुग्ध व आमलकी मिश्रित मुद्गयूष का सेवन करना चाहिए। सामान्यतया जौ, गेहू, शालि चावल, कच्चीमूली, तोरई, करेला, अजीर, अगूर, मुनक्का, ईक्षुस्वरस, परवल, पालक, तण्डुलीयक, सैधव, हरीतकी, गोमूत्र, कूष्माण्ड, पपीता एव मिश्री हितकर है।

अपथ्य-व्याधित पुरुष हेतु अधिक घी, तैल, मास, सुरा, लालमिर्च, पित्तवर्धक पदार्थ, अम्लपदार्थ, अतिलवण, विदाहि भोजन, उष्ण भोजन, अति भोजन, हींग, उडत, क्षार, गुण, चाय, अग्नि सेवन, धूम्रपान, अतिश्रम, तथा क्रोध वर्ज्य है।



पित्ताश्मरी कारण एवं चिकित्सा-2

वैद्य मौहरसिह आर्य
मु०-मिसरी पो०-चरखी दादरी (हरियाणा)

शरीर मे पत्थर के समान उत्पन्न हुई अप्राकृत रचना को अश्मरी, पथरी, सग, केल्क्यूलस या स्टोन (Calculus or Stone) कहते है। पित्ताश्मरी जो पित्तकोष-पित्त की थैली, गॉल ब्लेडर (Gall Bladder) मे होती है को गॉल स्टोन या कोलीथियासिस (Cholelithiasis) अथवा पित्ताशय की अश्मरी या पित्त की थैली की पथरी कहते है।

प्राचीन आयुर्वेदीय सहिता ग्रन्थो मे बस्ति-मूत्राशय की पथरी का ही वर्णन है। आचार्य चरक ने अश्मरी रोग का वर्णन स्वतन्त्र रोग के रूप मे न करके मूत्रकृच्छ्र के अन्तर्गत किया है। सुश्रुत मे भी बस्ति की अश्मरी का वर्णन है। वृक्काश्मरी तथा गवीनी की पथरी का वर्णन भी नगण्य है। पित्ताश्मरी एव लालाश्मरी का तो उल्लेख ही नहीं है।

कारण-पित्ताशय की पथरी निर्माण करने वाले हेतुओ को निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु पथरी प्राय तभी बनती है, जब पित्ताशय मे पित्त गाढा हो जाए और अधिक समय तक पित्तकोष मे पडा रहे पित्ताशय मे गाठ होने के कारण श्लैष्मिक कला के खण्ड पर पित्त मे से अश्मरी जनक कण पृथक् होकर चिपटे रहते है तो शनै -शनै अश्मरी का रूप धारण कर लेते है। जो लोग अधिक आराम का जीवन व्यतीत करते है, शरीर का शोधन नहीं करते और पथरी को उत्पन्न करने वाला अवश्य आहार-विहार का अति सेवन करते है, उनके आहार मे भूयाति-स्निग्ध पदार्थों की बहुलता रहती है, किसी कारणवश पित्ताशय मे शोथ उत्पन्न हो जाने पर पित्ताशय मे अम्लपित्त रुक जाता है फलत पित्ताश्मरी बन जाती है।

अधिक वसा अथवा अण्डे आदि सेवन से रक्त मे अश्मरी-जनक कण पैतवि अधिक बनते है। ये कण गर्भावस्था मे उपवृक्क तथा डिम्वग्रन्थियो के प्रभाव से ज्यादा बनते है। इसलिए यह रोग स्त्रियो मे अधिक पाया जाता है।

वर्ष १९९३ ई० मे पित्ताश्मरी से पीडित स्त्रिया ६० तथा पुरुष २१ मेरे चिकित्सालय मे चिकित्सार्थ आए। इन मे प्राय मोटी अधेड अथवा प्रौढ आयु की स्त्रिया थीं।

पूर्वरूप-अजीर्ण-पित्ताश्मरी के बनते समय अजीर्ण रहने लगता है। भूख अल्प हो जाती है। रोगी पेट मे गैस की शिकायत करता है। अपचन होता है। पित्ताशय मे मृदुशूल भी यदा-कदा होता रहता है।

लक्षण-जब तक पित्ताशय की अश्मरी पित्तकोष के निम्न भाग मे रहती है तब तक कोई विशेष लक्षण प्रकट नहीं होते परन्तु जब पथरी अपने स्थान से सरक कर पित्तस्रोत मे आकर अटक जाए तो पीडा आरम्भ हो जाती है। पीडा यदा-कदा बहुत चलने के अनन्तर अथवा गरिष्ठ भोजनोपरान्त होने लगती है। यह शूल कुछ देर रहकर नष्ट हो जाता है। पीडा कभी शीघ्र दूर हो जाती है तो कभी देर से पर पुन -पुन होती रहती है। यह पीडा दाहिनी ओर को स्कन्ध तक चलता प्रतीत होता है। पीठ मे भी शूल भासित होता है। शूल का मध्यकाल निश्चित नही कभी एक-दो दिन के पश्चात् ही हो जाता है और कभी बहुत दिनो के बाद होता है। जब पथरी पित्तवाहिनी मे आ जाए और वहा रुक जाए तब असह्य पीडा होती है। पित्ताश्मरी का शूल प्राय रात के समय अकस्मात् आरम्भ होता है। आरम्भ मे पीडा कौडी प्रदेश अथवा पित्ताशय मे प्रतीत होती है। पीछे पीठ की ओर अथवा दाये स्कन्ध की ओर जाती है फिर तो सारे उदर मे ही प्रतीत होती है। यदा-कदा वेदना अकस्मात् आरम्भ न होकर धीरे-धीरे बढती है। यह पीडा इतनी तीव्र होती है कि रोगी को व्याकुल कर देती है। रोगी छटपटाने लगता है। पित्ताशय प्रदेश पर हाथ लगाने से शूल अधिक बढता है। यदि कुछ वमन हो जाए तो शान्ति सी प्रतीत होती है।

प्रत्यात्म लक्षण-पित्ताश्मरी के शूल का अकस्मात् आरम्भ होना और अक्समात् ही लुप्त हो जाना है।

शूल का समय निश्चित नहीं कभी १-२ घण्टे रहता है और कभी ३-३-४-४ दिन अथवा इससे भी अधिक काल तक रह जाता है। पित्ताशय मे एक ही अश्मरी नहीं होती अपितु अनेक अश्मरिया होती है। अत शूल बार-बार होता है।

पित्ताश्मरी के अनन्तर पित्ताशय शोथ हो जाता है। फलत स्थानिक पीडा एव ज्वर भी हो जाता है। पित्तवाहिनी का अवरोध हो जाने पर अवरोधात्मक कामला भी हो जाती है शूलावस्था मे उदर की मासपेशिया दृढ एव तनी हुई होती है। अश्मरी पित्तप्रणाली मे आकर रुक जाए तो पित्ताशय बहुत बढ जाता है। कामला हो जाती है। एव ज्वर हो जाता है।

अश्मरी ज्ञान-पथरी का ज्ञान तभी होता है, जब पित्ताशय शूल के लक्षण प्रगट हो जाए। अकारण ही अकस्मात् शूल का आरम्भ होकर पीठ या दाये कन्धे की ओर जाना और अकस्मात् ही शूल का शमन हो जाना। प्रधान लक्षण है।

सामान्य कोलीसिस्टोग्राफी या अल्ट्रासाउड से ज्ञान होता है।

चिकित्सा सूत्र-

पित्ताश्मरी को लीन करने वाली किसी विशिष्ट औषध का अभी तक आधुनिक विज्ञान पता नहीं लगा सका है। इसकी उत्पत्ति एव वृद्धि को रोकने वाली वस्तु भी ज्ञात नहीं है फिर निदान परिवर्जन कैसा? अत सर्वप्रथम पीडा शान्ति का उपाय करे। एतदर्थ-रस सिन्दूर, ताम्र भस्म, त्रिकुटा चूर्ण का योग मधु के साथ थोडी-२ मात्रा मे दे। अथवा-अगस्ति सूतराजरस ६० मि० ग्राम मे प्रति घण्टे दे। इस की ३-४ मात्राओ से पीडा शान्त हो जाती है। यदि पित्ताशय शोथ भी हो तो योगराज रस दे तथा साथ-२ स्थानिक स्वेद, उपनाह एव मृदुरेचन दे।

चिकित्सा-

आयुर्वेद के उपलब्ध साहित्य मे पित्ताशय की अश्मरी का कोई उल्लेख नहीं होता। अत आयुर्वेदीय साहित्य मे पित्ताश्मरी का उपचार भी नगण्य है। पित्त की थैली की पथरी को लीन करने वाली किसी विशिष्ट औषधि का आधुनिक विज्ञान भी पता नहीं लगा सका है।

पथरी की उत्पत्ति एव वृद्धि को रोकने के लिए अवश्य आहार-विहार का निषेध आवश्यक है। रोग प्रतिकार का सर्वप्रथम क्रियाक्रम है-"सक्षेप्त क्रिया योगो निदान परिवर्जनम्" अत शूल शान्ति के लिए पीडा शमनार्थ-वज्रक्षार २ ग्राम की मात्रा मे अहिफेनासव के साथ १५-१५ मिनट के अन्तर से दे। स्थानीय स्वेद, उपनाह, सेक एव मृदु रेचन देना भी लाभदायंक होता है।

अथवा-वेदनाशामक औषध जिसमे अल्प मात्रा मे अहिफेन हो दे। मृदु रेचनार्थ-त्रिफला क्वाथ मे एरण्ड स्नेह ३० से ६० मि० ली० मिलाकर पिलावे।

यदा-कदा तारपीन तैल के उष्णोपनाह से तथा उष्णोदकावगाह से पीडा शान्त हो जाती है।

कोष्ठ शुद्धि पर विशेष ध्यान दे।

पीडा शमनार्थ-अगस्ति सूतराज राज (यो० र०) ६० मि० ग्राम की मात्रा मे प्रति घण्टे देने से ३-४ मात्रा मे वेदना शात हो जाती है।

सहस्रानुभूत सिद्ध योग-

प्रिय पाठक ! सहस्रो पथरी आक्रन्ताओ की नि शुल्क चिकित्सा की है-अब भी कर रहा हू।

अश्मरी एक शास्त्र साध्य व्याधि है-परन्तु-

पञ्ज पाषण भस्म-हज्रुल यहूद, सग मकनातीस, ६०-६० ग्राम, सगे सरमाही सग राएरव ३६-३६ ग्राम, सग लाजवर्द २४ ग्राम।

पाचो द्रव्यो को कूटकर वस्त्रपूत चूर्ण बना ले। पीछे एक दिन घृतकुमारी के पीले रस मे खरल कर के छोटी-छोटी चक्रिकाये बना ले और धूप मे सुखा ले। फिर हाण्डी मे सम्पुट करके १० किलो कण्डो की आच दे। आग शीतल होने पर टिकियो को निकालकर पीसकर पुन घृतकुमारी पीत स्वरस मे एक दिन घोटकर टिकिया बना धूप मे शुष्क कर पूर्ववत् फूक दे। इसी प्रकार पाच बार फूके। तत्पश्चात् मूली स्वरस मे खरल कर पूर्ववत् हाण्डी मे सम्पुट कर १० किलोग्राम कण्डो की आच दे। इस प्रकार मूली स्वरस मे भी पाच बार फूके कुल दस बार आच दे। फिर पीस कर रख ले।

मात्रा-२५० से ५०० मि० ग्राम तक। प्रति मात्रा मे मूलीक्षार तथा जवाखार ५००-५०० मि० ग्राम के साथ दे दिन मे ३ बार।

अनुपान-गोखरू छोटे, कुलथी २४-२४ ग्राम शरपुखामूल १२ ग्राम, सेधा नमक ६ ग्राम, पत्थर कौडी बूटी ४८ ग्राम ले सबको सवा लीटर पानी मे मन्दी आच पर क्वाथ बनाले। इस क्वाथ के ३ भाग कर ले, प्रति मात्रा एक मात्रा दे।

इससे गुर्दे तथा मसाने की पथरी पहली मात्रा से ही निकलनी आरम्भ हो जाती है।

रात्रि को सोते समय-जैतून का तैल २० मि० ली०, निम्बू का रस ५० मि० लि०, ताजा पानी ५० मि० ली० और बज्रक्षार ५०० मि० ग्राम मिलाकर पिलावे।



पित्ताशय कैंसर
(Cancer of the Gall Bladder)

डा० पी० एस० अंशुमान, आयुर्वेदाचार्य
भावनगर (गुजरात)

परिचय-प्राचीन चिकित्सा साहित्यो मे इस प्रकार की किसी रोग सज्ञा का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु कुछ अपरोक्ष सन्दर्भो से इस रोग के पुरातन अस्तित्व की कल्पना असम्भव नहीं है। आयुर्वेद मे वर्णित ऐसे कई रोग है। जिनमे इसकी उपस्थिति का अनुमान किया जा सकता है। पित्तज उदर रोग एव गुल्म रुद्धपथ कामला तज्जन्य जलोदर या कतिपय आवरण रोग इसी प्रकार के है। आयुर्वेद के सहिता ग्रन्थो मे आशय की गणना के सन्दर्भ मे पित्ताशय को भी स्वीकारा गया है। यद्यपि अवयव ग्रहण विवादास्पद है। अत पित्त एव तत्सम्बन्धित स्रोत तथा उसके आशय एव स्रोतो मूल की कल्पना एव उनके रोगो की परिकल्पना सरलता से की जा सकती है।

चिकित्सा क्षेत्र के नये प्राप्त ज्ञान के सन्दर्भ मे आयुर्वेदीय सन्दर्भो को ध्यान मे रखते हुये पित्ताशय के अन्य रोगो के साथ ही पित्ताशय के कैसर पर भी विचार किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से एक सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कारण-

१ सामान्यतया पित्ताशय कैंसर कम मिलने वाला रोग है। और जो रोगी इसके मिलते हैं वे भी अन्य रोगो से सम्बद्ध पाये जाते है।

२ सामान्य रूप से यह कैसर पित्ताशय शोथ से सम्बन्धित है। ऐसा देखा गया है कि पित्ताशय शोथ से सम्बद्ध इस कैसर के रोगी ४ से १४ प्रतिशत तक हो सकते है।

३ पित्ताशय के रोग प्राय एक दूसरे से सम्बद्ध रहते है। इस दृष्टि से पित्ताशय अश्मरी का अनुबध ७०-८० प्रतिशत रोगियो मे देखा जाता है।

४ यह पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो को अधिक प्रमाण मे होता है। सम्भवत स्त्रियो को स्वभावत [illegible] बहुलता सहज प्रकृति के रूप मे रोग की अनुकूलता प्रदान करती है।

५ अन्य रोगो की तरह ही सहज अनुकूलता भी इसका कारण हो सकता है।

६ पित्ताशय शोथ एव पित्ताशय अश्मरी या शूल के निदान भी इसके कारण है। ऐसा माना जाता है।

७ कैसर सम्बन्धित अनुवाशिकता जनित प्रभाव भी कारण हो सकता है ? फिर भी मूल कारण अज्ञात ही है।

लक्षण-

१ यह जिस प्रकार की विकृति से सम्बद्ध होगा उसके अनुसार लक्षण मिल सकते है यथा-

(अ) पित्ताशय शूल / पित्ताशयगत / क्षेत्रीय प्रसरता लक्षण

(ब) पित्ताशय शोथ-जन्य लक्षण

(स) पित्ताशय अश्मरी-जन्य लक्षण

दक्षिण ऊर्ध्व उदर मे गुरुता एव असुविधा प्राय देखने को मिलती है।

२ अर्बुद स्वरूप प्राप्त करने पर अर्बुद को पित्ताशय क्षेत्र मे स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

यह अर्बुद प्रारम्भ मे वृत्त एव मृदु अति कठिन प्रकार का होता है। जो बाद मे विषम नोड्युल या ग्रन्थिमय हो सकता है।

३ कैसर सरचना की वृद्धि के कारण पित्त के अवरोध के कारण रुद्धपथ कामला उत्पन्न होकर शारणाश्रित कामला के लक्षण करता है।

४ रोग के और भी बढने पर तथा प्रतिहारिणी दबाव बढने पर उदर मे जल सचय पूर्वक जलोदर हो सकता है।

५ कई बार रोग पित्ताशय से पेरीटोनियम मे जाकर [illegible]

६ रोगी को अचानक ही कामला, अतिसार, छर्दि एव यकृत् शोथ (सक्रमण जन्य) हो जाता है।

७ पित्ताशय क्षेत्र मे कठिन नोड्युलर बढने वाली अर्बुद रूप वृद्धि द्वारा इसका अनुमान सरलता से किया जा सकता है।

८ क्ष-किरण परीक्षा द्वारा पित्ताशय शोथ, पित्ताशय भित्ति की स्थूलता, कठिनता एवं अश्मरियो की उपस्थिति, विषम आकृति रूपावृद्धि आदि उपलब्धिया इसके रोग विनिश्चय के लिए उपयोगी है।

९ कभी-कभी पित्ताशय कैंसर के जैसा ही आभास कई अन्य विकृतियो मे भी होता है। यथा-आमाशय-कार्सीनोया, यकृत् कैंसर या हेपेटिक फ्लेक्क्षर ऑफ कोलन इसी प्रकार के भ्रम को उत्पन्न कर सकते है। अत क्ष-किरण आदि द्वारा परीक्षण अनिवार्य हो जाता है। जिससे विभेदकता निश्चित की जा सके।

१० अन्य कैंसरो की तरह ही पित्ताशय कैंसर मे से भी दूषित कैंसर उत्पादक कोष निकलकर अन्यत्र जा -स्थान सश्रित कैंसर कर सकते है।

११ यकृत् एव पित्ताशय के कैंसर समीप एव एक दूसरे से सम्बद्ध होने से एक दूसरे को कैंसर लगा या दे सकते है।

चिकित्सा-

(क) अनागत बाधा प्रतिशोध-

कैंसर (सभी) स्वभावत असाध्य होते है। अत रोग को न होने देना ही सर्वाधिक उचित एव सुरक्षित मार्ग है इसके लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते है।

१ आम या आम के निदानो को छोडा जाये तथा उनसे उत्पन्न रोगो की समयोचित चिकित्सा की जाये।

२ प्रवाहिका जीवाणु सक्रमणो की उचित चिकित्सा करे।

३ पित्ताशय शोथ या पित्ताशय अश्मरी के निदान लागू करे (शोथ एव अश्मरी के निदान त्याग)

४ यकृत् एव पित्ताशय के स्वास्थ्य की रक्षा की जाये अत अग्नि की रक्षा करे।

५ जिन लोगो मे यकृत्-विकार बार-बार होते हो उनमे कुमारी कल्क या पिप्पली कल्क का १-२ वर्ष के अन्तर पर प्रयोग कराया जाये।

(ख) यापन चिकित्सा-

जब पित्ताशय मे अर्बुदरूप ग्रहण कर चुके हो या शस्त्रकर्म सम्भव न हो तो यापन चिकित्सा द्वारा जीवन की रक्षा करनी चाहिये। इसके लिये यथा रोग चिकित्सा उपयोगी होती है। यथा-

१ पित्ताशय शूल मे-शूलवज्रिणी नारिकेल लवण, हिंगुकर्पूर, शखवटी।

२ पित्ताशय शोथ मे-आरोग्यवर्धिनी+पुनर्नवादि क्वाथ

३ पित्ताशय अश्मरी मे-शुद्ध शिलाजीत+ त्रिफला क्वाथ, यवक्षार+वरुणादि गोक्षुरादि क्वाथ आदि।

(ग) कैंसर क्रम मे व्यक्त होने पर समूल। साचूर्ण पित्ताशय निष्कासनार्थ शस्त्रकर्म किया जाता है।

(घ) जहा शस्त्र कर्म सम्भव न हो वहा रोगी के प्राणरक्षार्थ लक्षणानुसारी चिकित्सा करे। यथा-

१ अतिसार-आनन्दभैरव रस, सजीवनी वटी।

छर्दि-छर्दि रिपु, मयूरपिच्छ भस्म (अनुभूत)

२ कामला-कामलाहर रस + वासादि क्वाथ, कटुभी, लौह, पीपल मिश्रण (अनुभूत)

३ जलोदर-जलोदरारि, दशमूल क्वाथ। फल, त्रिफलादि क्वाथ, आरोग्यवर्धिनी पुनर्नवामाण्डूर, चन्द्रप्रभा (अनुभूत)

४ शूल-मृदुस्वरूप-शखवटी, हिंगुकर्पूर तीव्रस्वरूप-कनकासव, सोमकल्पासव, अहिफेनासव, निद्रादेचरस, (अनुभूत)

एक आतुर वृत्त-

अ० क्र० २४३७०

लिग - पु०

वय- ५३

प्रमुख लक्षण-

यह रोगी सर्वांगशोथ एव उदर उत्सेद के साथ अरुचि, अग्निमान्द्य, अविपाक, उत्क्लेश, श्रम अरति आदि लक्षण लेकर चिकित्सार्थ आया था। रोगी को कुछ मास पूर्व रुद्धपथ कामला का इतिवृत्त मिलता था। इस रुग्ण को प्रारम्भ से ही अग्निमन्दता एव पाचन सम्बन्धित शिकायते रहती थीं। रोगी की परीक्षा करने पर स्वल्प प्रमाण यकृत् वृद्धि एव कुछ स्पर्शासहत्वता पाई

गयी क्ष-किरण रिपोर्टानुसार पित्ताशय फूला हुआ बडा पाया गया था। यकृत्-पित्ताशय कैसर की शका व्यक्त की गयी जिसकी बाद मे पुष्टि हुयी।

उदर मे जल सचय पाया गया परिणामत उदर सम्बन्धित अन्यस्थ लक्षण भी देखे गये थे।

चिकित्सा-

इस रोगी को निम्नलिखित औषधि योजना दी गयी।

१ दशमूल क्वाथ २ तोला प्रात -साय।

२ आरोग्यवर्धिनी, पुनर्नवादि मण्डूर, चन्द्रप्रभावटी, १-१ गोली दो बार दूध के साथ।

३ सितोपलादि, यष्टी, चोष वटी, प्रवाल, धात्रीलौह मिश्रण ४ रत्ती मधु से दिया गया।

४ जलोदरारि २ गोली प्रतिदिन दूध से

पथ्य-दुग्धाहार।

परिणाम-१ शोथ-उदर उत्क्लेद मे आशातीत लाभ।

२ क्षुधा वृद्धि-एव अन्य लक्षणोपशय

कुछ सदर्भ तुलनार्थ-

१ xx आशय xx पित्ताशय xx। सु १०५/८

(एव इस पर अत्रिदेव की टिप्पणी)

२ विशोषयेद्व-स्तिगत सशुक्र मूत्र सपित्त पवन कफे वा यदा तदाऽश्मर्युपजायेते तुक्रमेण पित्तेष्विवा रोचनागौ ।।

. च०चि० २६/३५

३ मूत्रयुक्त मुपस्नेहात् प्रविश्य कुरुतेऽश्मरीम्
अप्सुस्वच्छा स्थाश्वपि यथा निषिक्ता सुनवे घटे
कालान्तरेण पक स्याद्श्मरी सभव स्तथा
सह न्त्यापो यथा दिव्या मारुतोऽग्निमच वैद्युत
तद्वलास वस्तिस्थमूष्या सहन्ति सानिल सु० नि० ३/४६

४ च० चि० १६/३३-३५ सु० उ ४० अ० स० नि० १३

५ च० चि० २८/६०

६ असाध्यार्बुद-

सप्रस्नत मर्मणि यच्चजात
स्रोत सुवा यच्च भवेद्चाल्यम्।
यज्जायते ऽन्यत् खलु पूर्वजाते
ज्ञेय तदध्यर्बुदयर्बुदज्ञै ।
यद् द्वन्द्वजात युगपद् क्रमाद्वा
द्विरर्बुदु तच्च भवेत् साध्यम्

सु० नि० ११/१९/२०



यकृत्-विकार नाशक एक अनुभूत योग

घटक-रोहितक घनसत्व, पचकोल घनसत्व, आमलकी रसायन, पलाशक्षार, वज्रक्षार, शरपुखामूल चूर्ण, अर्कमूल चूर्ण, भूनिम्ब घनसत्व, इन्द्रायणमूल घनसत्व, मूलीक्षार, प्रवाल पचामृत, एरड तैल मे भुनी हरड का चूर्ण ५० ग्राम चित्रकमूल चूर्ण सभी ५०-५० ग्राम लेकर भागरा स्वरस के साथ घोटकर ४-४ रत्ती की गोली बनाले।

मात्रा तथा प्रयोग विधि-२-२ गोली सुबह, शाम जल के साथ सेवन करावे।

उपयोग तथा अनुभव-यह योग स्वर्गीय वैद्यराज हर्षुल मिश्र के योग मे किचित् परिर्वत करके बनाया गया है। यह योग यकृत् शोथ, यकृत् विद्रधि, यकृत्दाल्युदर, पित्ताशय शोथ, पित्ताशय अश्मरी मे लाभकर है। पाठक परीक्षा कर सकते है।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

कामला कारण एवं चिकित्सा-1

वैद्य वैणीमाधव अश्विनीकुमार शास्त्री, प्राचार्य एव विभागाध्यक्ष कायचिकित्सा
शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, ग्वालियर

परिचय-रसवह स्रोतस् एव रक्तवह स्रोतस् की व्याधियो के सयुक्त प्रसग मे आयुर्वेदीय प्रमुख सहिता ग्रन्थ चरक सहिता मे कामला का वर्णन है। रसवह स्रोतस् की प्रसिद्ध व्याधि पाण्डु के उपरान्त कामला रोग का वर्णन किया गया है। रोगोत्पत्ति के प्रसग मे स्पष्ट रूप से "पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते'' लिखकर कामला प्रादुर्भाव के लिए रसक्षय की स्थिति को आवश्यक मान्य किया है। रक्त के सगठन मे सौम्य एव आग्नेय भावो का सन्तुलन रहता है। अम्ल और क्षार एव आग्नेय भावो का सन्तुलन रहता है। अम्ल और क्षार की मात्रा निध र्गरित रहती है। इसीलिए रक्त का (Ph value) भी क्रिया-विज्ञान मे अध्ययन का विषय वनता है। रसक्षय की अवस्था मे पित्तल (उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल, कटु) पदार्थों का अति सेवन करने पर रक्तगत अम्लभाव (आग्नेयाश-Acid) की वृद्धि होती है तथा रक्तधातु के सौम्य भाव क्षारीयभाव-कफजाश का क्षय होकर रक्तमिश्रण में व्याप्त धातुकोषा समुदाय का विघटन होता है। इसी पित्तकृत उष्ण-तीक्ष्ण गुणकृत कोषा विघटन को रक्तविनाश या (Hemolysis) कहते हे। पित्तल पदार्थ के सेवन से कोषाविनाशक एव क्षारीयताकी न्यूनता तथा अम्लभाव की वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप कोषागत रञ्जकपित्त दूषित पित्तरूप मे मार्गावरोध एव अतिवृद्धि के कारण रस-रक्त सवहन मे व्याप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप त्वचा, नख, नेत्र, तालु, स्वेद, मूत्र पीत वर्ण के हो जाते है। मल किन्हीं कारणो एव अवस्थाओ के कारण तिलपिष्टनिभ या Clay colour अथवा पीत वर्ण का उत्सर्जित होता है। इसी रोग को कामला या Joundice कहते है। कारण एव विकृतिस्वरूप अथवा सम्प्राप्ति अधिष्ठान के आधार पर इसे कोष्ठाश्रित या शाखाश्रित अथवा Obstructive or Hepetic Joundice कहते है।

कभी-कभी उत्कृष्ट दोषबल के आधार पर उभयाश्रित भी पाया जाता है। महर्षि चरक ने इसीलिए सूत्रस्थान अध्याय १९ के सूत्र ७ मे कहा है, कि "द्वि कामले इति कोष्ठाश्रया शाखाश्रया च'' यहा कोष्ठाश्रित और शाखाश्रित कामला के उल्लेख के साथ च से उभयाश्रित कामला का भी ग्रहण किया गया है। इस रोग का परिचय त्वचादिगत पीत वर्ण को देखकर ही भली प्रकार विदित हो जाता है। तथापि निर्णय हेतु मूत्र मे पित्तरञ्जक उपस्थिति एव रक्तगत बिलीरुवीन की प्राकृत मात्रा से अधिक उपस्थिति से इसका ज्ञान करते है। इसके लिए वान्डेन वर्ग की परीक्षा की जाती है। कामला रोग के परिचयार्थ रक्तवह स्रोतस् के मूल स्थान यकृत् की भी कार्यशीलता परीक्षा Liver function test करते है।

रोग हेतु-आहारगत क्षार, अम्ल, लवण, उष्णगुण पदार्थों का अति सेवन, विरुद्ध भोजन, असात्म्य भोजन, मटर, उडद, चिकनी खली, तैल सेवन, अन्न का विदाह होने पर दिन मे सोना, व्यायाम सेवा, मैथुन, पञ्चकर्म शुद्धि के लिए निर्धारित काल के विपरीत प्रयोग, वेगसधारण, काम, चिन्ता, भय, क्रोध शोक युक्त मन होने पर "रसक्षय'' की स्थिति मे उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल, विदाही, सर गुण प्रधान आहार के निरन्तर सेवन से। प्रतिश्याय की दशा मे अभिष्यन्दिदधि तण्डुल, ठण्डे पेय, आइसक्रीम सेवन, पर्युषित भोजन, फ्रिज्ड आहार, टिण्ड आहार, फफूदयुक्त आहार, दूषित जल के सेवन से रोगोत्पत्ति होती है। महामारी के रूप मे आजकल दूषित जलप्रदाय एव विकृत भोज्य-पदार्थों के कारण बहुधा किसी भी प्रान्त मे पाया जा सकता है। गत वर्ष अप्रैल-मई १९८४ मे गुजरात के कई बडे नगरो मे महामारी के रूप मे कामला रोग का प्रकोप हुआ और मृत्यु सख्या भी बहुत अधिक पाई गई। आधुनिक अनेको औषधियो के दुष्प्रभाव से भी कामला होता है। इनमे प्रमुख एण्टीमलेरियल्स है। शल्य-कर्म के अर्न्तगत भी कामला पाया जाता है। रक्त आद्वान (Blood transfusion) से भी कामला हो जाता है। सामान्यतया असुरक्षित एव पर्युषित भोजन तथा दूषित जल और बर्फ विशेष रूप से कामला उत्पन्न करते पाये गये है।

लक्षण (कोष्ठाश्रित कामला)-पीत नेत्र कभी-कभी अत्यन्त पीले, त्वचा-नख और मुख पर पीतता, मल का वर्ण रक्तयुक्त पीत या पीत, मूत्र पीत या पीतरक्त, मण्डूक के समान

वर्ण अत्यन्त दौर्बल्य युक्त, ज्ञानेन्द्रियो के कर्म सामर्थ्य का अभाव, दाह, अविपाक, अरुचि, अगशैथिल्य, उक्त लक्षण कोष्ठाश्रित तथा कोष्ठशाखाश्रित कामला मे पाये जाते है। च० चि० १६/यकृत् प्लीहावृद्धि एव स्पर्शसह्यता पाई जाती है।

शाखाश्रित कामला-पीत नेत्र, नख, मूत्र, तालु, तथा मल का वर्ण तिल पिष्ट के समान अथवा मटैला हो जाता है। सामान्य लक्षणो मे छींक, कास, ज्वर, अरुचि, उदर गौरव प्रमुख रूप से पाये जाते हैं। यकृत् प्रदेश मे स्पर्शासह्यता तथा प्लीहावृद्धि तथा जुकाम पाया जाता है। आटोप, हृदय गौरव, विष्टभ, पार्श्वरुजा, हिक्का, श्वास, लक्षण भी पूर्वोत्तर प्रीइक्टिरिक स्टेज मे लक्षणो के साथ पाये जाते है।

अरुचि प्रकट रूप मे होती है, वमन की इच्छा होती है, ये दोनो लक्षण आकस्मिक रूप से उपलब्ध होने पर रोग के विशेष परिचायक माने गये है। भोजन की ओर विशेष प्रकार की अनिच्छा होती है तथा भोजन के स्थान की ओर जाना भी अच्छा नहीं लगता। अरुचि इक्टिरसस्टेज आने पर प्राय दूर हो जाती है। धूम्रपान करने वालो मे धूम्रपान के प्रति अनिच्छा देखी गई है। कभी वमन भी हो जाता है। दुर्बलता, गहरे लाल रग का मूत्र, मन्द या मध्यवेग ज्वर प्राय १०० डिग्री से १०२ डिग्री तक होता है। ज्वर कुछ दिन के बाद नहीं रहता कभी-कभी कामला उत्पन्न होने के बाद तक भी रहता है। ज्वर मे कोई एण्टीबायटिक लाभ नहीं करती। कुछ रोगियो मे प्रतिश्याय, आमाशय प्रदेश मे पीडा और स्पर्शासहत्व पाया जाता है। कभी पेट मे तीव्र दर्द इतनी मात्रा मे होता है कि वह शूल या एक्यूट एब्डोमन मान लिया जाता है।

इक्टिरिकस्टेज मे-इसे ७ दिन के बाद पीतनेत्रता रोगी या सम्बन्धियो द्वारा प्रथम वार देखी जाती है। कभी-कभी केवल नेत्रपीतता ही अकेला लक्षण होता है। पीत नेत्रता की परीक्षा चिकित्सा द्वारा काफी समय पूर्व भी नेत्र गोलक की परीक्षा से शान्त की जा सकती है। इस अवस्था मे अरुचि वमन की इच्छा ज्वर शान्त हो जाते हैं। किन्तु कभी-कभी पाये जाते है।

रोगी परीक्षा-नाडी प्राय मन्द ६४ प्रति मिनट तथा यकृत् यह स्पर्शासह्यता युक्त पाया जाता है। यकृत् क्षेत्र का पर्शुकान्तराल भी स्पर्शसह्यता युक्त पाया जाता है। प्राय प्लीहा भी वृद्ध होती है। भारतवर्ष मे कामला के साथ जलोदर की भी अवस्था पाई जाती है। विशेषकर उन रोगियो मे जो पोषक आहार ग्रहण नहीं कर पाते। जलोदर पाण्डु रोगियो मे तथा कामला के द्वितीय आक्रमण मे प्राय उपस्थित पाया जाता है। मूत्र मे पीतवर्ण गहरा कामला की उत्पत्ति से पूर्व प्राय गहरा पीतवर्ण पाया जाता है। मूत्र परीक्षा करने पर पित्तरजक नाइट्रिकएसिड रिगटैस्ट मे पाया जाता है। मल का वर्ण पीत धूसर होता है। रक्त मे ल्यूकोपेनिया तथा ल्यूकोसाइटोसिस पाई जाती है। तथा ई० एस० आर० बढा हुआ प्राप्त होता है। रक्त मे बिलीरुबिन की मात्रा १ मि० ग्रा० से १०-१५ मि० ग्रा० मध्यम दर्जे की अवस्था मे पाई जाती है। घातक प्रकार मे बिलीरुबिन की मात्रा और अधिक पाई जाती है। प्रोथोम्बिन का समय बढ जाता है। Floculation tests उपस्थित होते हैं। एल्फालाइनफोस्फेटेज बढा पाया जाता है। SGOT एव SGPT का स्तर बढ जाता है।

रोग सम्प्राप्ति-रसवहस्रोतस एव रक्तवहस्रोतस की सयुक्त व्याधि होने का कामला रोग मे सम्प्राप्ति घटना निम्नानुसार होती है।

आहार-विहार कृत वैषम्य =कटुक्षराम्ल तीक्ष्णोष्ण सेवा
↓
रसक्षय-स्रोतोदुष्टि
↓
रक्तपोषणाभाव
↓
पित्तल आहार-विहार सेवा - पाण्डुरोगावस्था
↓
पित्तवृद्धिजन्य रक्त-[illegible]
↓
शाखाश्रित कामला ← रक्तक्षयज मलमूत्रपित्तवृद्धि (रजकपित्त-कोष्ठाश्रित अवस्था)




रसवहा-रक्तस्रोतोदुष्टि
↓
रसवहन मे दूषित रजकपित्त
↓
त्वचा, नख, मूत्रादि पीत वर्ण
↓
मल वैवर्ण्य

→ एक स्थानावृद्धि एक स्थानाक्षय, तिलपिष्ट वर्ग
पुरीपता त्वड् नेत्रादि-पीतता
ज्वर, अरुचि, वियमिषा, अयाक, वमिलक्षणानि

कामला मे रसक्षय की अवस्था मे पित्तल पदार्थों के सेवन से पित्त के उष्णतीक्ष्ण गुणो द्वारा रक्त की सौम्य रचनाओ का विघटन किया जाता है परिणामत मल रूप पित्त की वृद्धि होती है। मल रूप पित्त की वृद्धि से रक्तवहस्रोतस् के दोनो मूल यकृत् एव प्लीहा शोययुक्त एव वृद्ध होते है। कभी रसवह एव रक्तवह दोनो ही स्रोतस् दूषित होते हैं अत दोषो के रूप मे प्राणवायु, व्यानवायु, समानवायु, पाचकपित्त एव रजक पित्त तथा साधकपित्त एव अवलम्बक कफ की विकृति से लक्षणोत्पत्ति होती है। शाखाश्रित कामला मे पित्तल हेतु के साथ शीत स्निग्ध श्लेष्मल कारण होने से पित्त-प्रणाली मे अवरोध होकर विमार्ग गमन रूप दुष्टि होती है। परिणामत दोष का एक देश प्रकोप होना मल श्वेत धूसर तथा मूत्र, नेत्र, तालू, त्वचाा, नख पीत होते हैं। दोष दुष्टि के अनुसार लक्षण एक जैसे ही सामान्य होते है। लक्षणो की सख्या एव पीडाकर्तत्व मात्र रक्त धातु के विनाश की मात्रा पर निर्भर करता है। सम्प्राप्ति मे शरीर क्षेत्र एव क्रिया विज्ञान की विकृति की दृष्टि से उल्लिखित दोषो तथा धातुओ मे क्षय या वृद्धि के कारण तथा स्रोतोदुष्टि के कारण निम्न प्रकार लक्षण दोष सम्बन्ध पाया जाता है।

अरुचि-प्राणवायु, समानवायु, पाचकपित्त।

विवामिषा-समानवायु, पाचकपित्त।

वमन-पाचकपित्त।

पीत विण्मूत्रनेत्रा-पाचकपित्त, रजकपित्त, रक्तक्षय।

दौर्बल्य-प्राणवायु, व्यानवायु, रजकपित्त, साधकपित्त, रसक्षय।

ज्वर-पाचकपित्त, समानवायु, रसक्षय।

मूर्च्छा-रक्तक्षय, साधकपित्त, रजकपित्त, अवलम्बक कफ, रसक्षय।

यकृत्वृद्धि-रजकपित्त।

प्लीहावृद्धि-रजकपित्त

कण्डू-पाचकपित्त, व्यानवायु।

रक्तस्राव पुरीषसह-पाचकपित्त, रक्तक्षय।

विकृति विज्ञानीय स्वरूप-कामला रोग मे न केवल यकृत् मे विकार होता है, अपितु सार्वदैहिक विकृति पाई जाती है। आमाशय एव क्षुद्रात्र की श्लैष्मिक कला मे शोथ पाया जाता है। वृक्क की रचना के सूक्ष्माश (Biopsy) परीक्षण मे Tubules aad Glomeruli मे शोथ उत्पन्न होता। रक्तवह सस्थान मे भी विकृति होती है। घातक कामला के रोगियो की मृत्युत्तर रोग-परीक्षा मे तीव्र अग्न्याशय शोथ पाया गया है। यकृत् मे सर्वाधिक गम्भीर विकृति होती है। इसका स्वरूप यकृत् कोषाओ मे कोथ (Necrosis) प्रमुख है। रोगावस्था मे सूची द्वारा ली गई सूक्ष्म-रचना परीक्षा (Biopsy) मे एक साथ यकृत् कोषाओ मे विनाश एव रोहण के चिह्न पाये जाते है। यकृत् कोषाए एकीय रूप मे तथा समूह रूप मे कोषाविनाश कोथ एव रोहण चिह्न प्रकट करती हे। कोषाओ मे प्राय २ प्रकार के परिवर्तन पाये जाते है-(अ) बैल्कर्निका आफसैल्स, (ब) एसिडोफिलिक डिजनेरेशन पित्तनलिका विस्तृत होती है। पित्तनलिकाओ मे पित्त के अवरुद्ध होने से वे बाहर की ओर उभरी हो जाती है, परिणामत गुलाब के फूल जैसी आकृति धारण करती है। इसे रोसेटीफार्मेशन कहा जाता है।

प्रतिहारिणी शिरा क्षेत्र मे चारो ओर वृद्धि हो जाती है। केन्द्रीय शिरा भी एक केन्द्रीय कोषाओ से घिरी हुई दिखाई देती है। रेटीक्यूलम रचना प्राय स्वस्थ पाई जाती है। इसी के कारण रोगमुक्ति शीघ्र होती है। कभी-कभी कोथ की प्रक्रिया से रेटीक्यूलम भी प्रभावित होता है और यकृत् की रचना मे घनता उत्पन्न हो जाती है। इसे कोथ के उत्तरकाल मे उत्पन्न व्रणवस्तु कहते है। अधिक मात्रा मे व्रणवस्तु बन जाने पर कोथ के पश्चात् यकृत् काठिन्य Post Necrotie cirrhosis पाई जाती है।

दाह-पाचकपित्त, व्यानवायु, रसक्षय।

अविपाक-पाचकपित्त, समानवायु।

सदनम्-व्यानुवायु, साधकपित्त, अवलम्बिक, कफ, रसक्षय।

कामला मे उत्पन्न यकृत् एव रक्तवहस्रोतस् तथा पित्तप्रणाली के कार्यो की परीक्षा विभिन्न प्रयोगशालीय जैव रासायनिक एव रासायनिक परीक्षणो से यकृत् द्वारा सम्पादित निम्न धातुपाक सम्बन्धी कार्यों के मूल्याकन हेतु की जाती है। इन्हीं परीक्षणो के आधार पर कामला के भेदो का भी अनुमान किया जा सकता है। यकृत् सम्बन्धी परीक्षाये निम्न है-

(१) बिलीरुबिन विनिमय (पाचन एव शोषण तथा विसर्जन)।

(२) कार्बोहाइड्रेट पाचन एव शोषण।

(३) प्रोटीन पाचन एव शोषण।

(४) वसा पाचन एव शोषण।

(५) यकृत् द्वारा रजन एव विसर्जन सम्बन्धी कार्य।

(६) रक्तगत आग्नेयाश (Enzymes) की मात्रा एव व्यापार।

रोग चिकित्सा के सिद्धान्त-शाखाश्रित कामला मे रूक्ष वेगनिग्रहादि कारणो से कफानुबद्ध वायु द्वारा पित्तमार्गावरोध किया जाता है। अत प्रथम चिकित्सा कफहर, पित्तरेचक होनी चाहिए। इस उद्देश्य के लिए गोमूत्र भावित हरीतकी अथवा पिप्पली चूर्ण का अग्निबलापेक्षी मात्रा मे प्रयोग हितकर है। मार्गावरोध दूर होने पर मल का वर्ण परिवर्तन हो जाता है, तभी पित्त प्रसारक औषधि एव आहार द्रव्यो का प्रयोग करना चाहिए-

(१) मासाहार मे-मयूर, तीतर एव कुक्कुट मास।

(२) शाकाहार मे-रूक्ष, अम्ल, कटुरस प्रधान आहार।

(३) अन्नाहार मे-कुलथी यूप।

(४) शाको मे-शुष्कमूलक।

(७) वेक्षयार एव प्रक्षेप-मातुलुग रस, पिप्पली, क्षौद्र, मरिच, सोठ, वृक्षाम्ल (तितडीक)।

शाखाश्रित कामला-(१) स्निग्ध तीक्ष्ण विरेचन से कोष्ठशुद्धि।

(२) पथ्यान्न सेवा-शालितन्दुल, जौ, गेहू, यूष-कल्पना से सिद्धकर मूग, आडकी, मसूर का प्रयोग करे। जागल पशु-पक्षी मासरस देना चाहिए।

शास्त्रीय चिकित्सा-

(१) आरोग्यवर्धिनी वटी २५० से ५०० मि० ग्रा० तक दिन मे दो बार मधु से दे।

(२) पुनर्नवादि माण्डूर २५० से ५०० मि० ग्रा० तक दिन मे दो बार जल से दे।

(३) स्वर्ण सूतशेखर रस १२५ से २५० मि० ग्रा० तक दिन मे दो बार जल से दे।

(४) पुनर्नवासव २० से ४० मि० लि० तक दिन मे दो बार भोजन के बाद दे।

(५) पुनर्नवाष्टक क्वाथ २० से ४० ग्राम तक दिन मे दो बार निरन्नकोष्ठ दे।

(६) प्राणदा गुटिका ५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक दिन मे दो बार जल से दे।

(७) चन्द्रकला रस २५० मि० ग्रा० दिन मे दो बार मधु से दे।

(८) मौत्तिक कामदुधा १२५ से २५० मि० ग्रा० तक दिन मे दो बार मधु से दे।

(९) शर्बत अनार २० से ४० मि० लि० तक दिन मे दो-तीन बार जल के साथ दे।

(१०) द्राक्षादि क्वाथ २० से ४० ग्राम तक दिन मे दो बार प्रात, साय दे।

(११) द्राक्षावलेह १० से २० ग्राम तक दिन मे दो बार जल से दे।

(१२) नवायस लोह १२५ से २५० मि० ग्रा० तक दिन मे दो बार मधु से दे।

(१३) कुमार्यासव २० से ४० मि० लि० तक दिन मे दो बार भोजनोत्तर दे।

(१४) लोहासव २० से ४० मि० लि० तक दिन मे दो बार भोजनोत्तर दे।

(१५) अमृतारिष्ट २० से ४० मि० लि० तक दिन मे दो बार भोजनोत्तर दे।

(१६) रोहितकारिष्ट २० से ४० मि० लि० तक दिन मे दो बार भोजनोत्तर दे।

साध्यासाध्यता-मुख्यत कामला रोग की साध्यता और असाध्यता रोग के हेतु एवं हेतु बल के प्रभाव से उत्पन्न दोषबल, धातु दुष्टि एव स्रोतस् विकृति की मात्रा पर निर्भर करती है। बल-मास परिक्षीण, शोथयुक्त, पीतदर्शन करने वाले कामला रोगी असाध्य होते है। कोष्ठाश्रित कामला मे मूर्च्छा एव ऊर्ध्वग या अधोग रक्तपित्त भी असाध्यता का सूचक है। कार्श्य, कास, हिक्का एव श्वासोपद्रव तथा मूत्राघात भी असाध्यता का सूचक है। विकृति के बाद यकृत् एव प्लीहा का सामान्य आकार तथा स्वास्थ्य की प्राप्ति होने की अवस्था साध्य होती है। रक्ताणुविनाश की मात्रा एव आशुकारिता ही कामला मे साध्यसाध्यता का निर्णय करने की स्थिति बनाती है।

उपद्रव चिकित्सा-कामला रोग के उपद्रवो की चिकित्सा कामला उत्पादक दोष, दूष्य स्थिति एव सम्मूर्च्छना जनित अवस्था के अनुसार कोयला की दोष-दुष्टि के अनुसार ही की जाती है।

अनुभूत औषधिया-

(१) भृगराज पञ्जाग का घनक्वाथ बनाकर ५ से १० ग्राम की मात्रा मे दिन मे ३ बार मिश्री मिलाकर देने पर शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

(२) मजिष्ठा, सारिवा, त्रिफला, चिरायता, द्राक्षा का हिम बनाकर, शर्करा डालकर देने से लाभ करता है।

चिकित्साकालीन अनुभव-आजकल आयुर्वेदिक चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा मे प्रचलित No fat के व्यवहार से इतने प्रभावित है कि वे शास्त्र मे लिखा हुआ सैद्धान्तिक मार्ग-दर्शन होने पर भी घृत प्रयोग नहीं करते। क्षीर सेवन का निषेध करते है। आयुर्वेदीय दोष-धातु मल विज्ञान के अनुसार घृत अग्निमेधाजनक है किन्तु अग्निबल की सापेक्षता के साथ। शास्त्र मे विरेचनोपम द्रव्यो से सिद्ध तिल्वक घृत के प्रयोग का विधान उल्लिखित है। ऐसे सभी रोगियो मे, जिनमे रक्तवह स्रोतस् मे कार्यघात (Failure) की दशा नहीं पाई गई, उन सभी मे घृत प्रयोग से त्वरित लाभ होता देखा गया है। Modern Physiological Concept के अनुसार भी घृत सेवन करने पर पित्त का विशेष उद्रेचन ग्रहणी मे होता है। इससे रुद्ध पित्त बाहार आकर विरेचन मार्ग से शुद्ध होता है। अत आयुर्वेद चिकित्सको को विरेचन सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिए। मेरी चिकित्सा मे घृत प्रयोग से त्वरित लाभ एव उत्तरकालीन अवस्था मे सन्तोषजनक लाभ देखा गया है।



कामलानाशक अनुभूत योग

घटक-त्रिफला, त्रिकटु ३०-३० ग्राम, चित्रकमूलत्वक्, वायबिडग, नागरमोथा १०-१० ग्राम, कालमेघ चूर्ण, लौहभस्म ४०-४० ग्राम लेकर कालमेघ क्वाथ की ३-४ भावना देकर सुखाले।

मात्रा-२ ग्राम मात्रा मे २ ग्राम ग्लूकोज मिलाकर पानी के साथ दिन मे ३-४ बार सेवन करावे।

उपयोग-कामला मे विशेष उपयोगी योग है। अनेक बार इसकी परीक्षा की जा चुकी है।

सम्पादकीय अनुभव-यह योग प० रघुवीरशरण जी आयुर्वेदाचार्य का है जो धन्वन्तरि पत्रिका के पुराने अक मे छपा था। हमने इस योग मे किचित् परिवर्तन करके निर्माण कराके कई रोगियो पर अनुभव किया तो विशेष लाभदायक पाया। पाठक इसका परीक्षण कर सकते है।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

कामला कारण एवं चिकित्सा-2

डा० बी० एन० गिरि, ए०एम०बी०एस०
मु० पो०-डगरा (गया) बिहार

पर्याय-कामला, कमलबाई, पीलिया, विषज कामला, सक्रामक कामला, कुम्भ कामला, पानकी, कोष्ठाश्रित कामला, शाखाश्रित कामला, पल्लकी और आगल भाषा मे इसे जौन्डिस अथवा एक्यूट इन्फेक्टिव हेपाटाइटिस Acute Infective hepatitis कहते है।

परिचय-यह कामला रोग जनपदोध्वसात्मक रूप धारण कर बहुसख्यक व्यक्तियो को काल के ग्रास मे ले जाने को अग्रसर होता है। इस कामला व्याधि को आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त की दृष्टि से आकलन करे अथवा आधुनिक चिकित्सा के जीवाणु विज्ञान की दृष्टि से आकलन करे, दोनो ही विज्ञान का यह रोग उग्र साघातिक एव मारक सिद्ध हुआ है। यह स्वतत्र रूप मे एक व्यक्ति को भी उत्पन्न होता है और अनेको लोगो को भी सक्रमण रूप मे भी उत्पन्न होता है। गर्मी की अपेक्षा सर्दी के मौसम के दिनो मे यह व्याधि अधिक होते देखी गयी है।

इसमें प्रधान लक्षण वमन पित्तमेह (पीला मूत्र) ज्वर, दौर्बल्यता, धडकन का बढना और नेत्रो मे हरिद्रा (हल्दी) रग के समान पीला दिखाई देता है। त्वक् का पीला होना मूत्र का वर्ण पीला तथा लाल पीला एव काला पीला होता है जो कि कामला की गम्भीर अवस्थाओ की ओर इगित करता है। भारत मे यह रोग कई बार भयानक रूप मे फैल चुका है। यह एक भयानक सक्रामक रोग है। इस रोग का प्रसार और आक्रमण सभी स्थानो और सभी उम्र के स्त्री, पुरुष पर सामान्य रूप मे होता है। किन्तु वच्चो और युवा वर्ग के लोगो मे इस रोग का सक्रमण विशेष रूप मे होते देखा गया है।

कामला के प्रकार-

आधुनिक विज्ञान ने इसके दो भेद किये है।

(१) विषज कामला Spiro chactal jaundice

(२) सक्रामक कामला Acute Infective or Epidemic Jaundice

आयुर्वेद मे भी इसके मुख्यतया दो ही भेद किये गये है।

प्रथम-कोष्ठाश्रित कामला Haemolytic Jaundice

द्वितीय-शाखाश्रित कामला Obstructive Jaundice

कुम्भ कामला, हलीमक आदि भिन्न-भिन्न व्याधिया नहीं है अपितु कामला की विशेष अवस्था को परिचायक हैं।

दोष-पित्त (नानात्मज विकार)

दूष्य-रक्त, मास।

स्रोतस्-रक्तवह स्रोतस्, यकृत्।

अधिष्ठान-कोष्ठ (महास्रोतस्)।

शाखा-रक्तादि धातु त्वचा।

अवयव विकृति-यकृत्

कारण-Aetiology

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान और आयुर्वेदक सहिताओ मे इस रोग के उत्पन्न होने का कई कारणो का उल्लेख मिलता है जिसे क्रमश समावेश कर देना आवश्यक है।

(१) विषज कामला अथवा चक्राण्वीय रक्तस्रावी कामला पाश्चात्य चिकित्सा मे इस रोग के उत्पन्न होने का मुख्य कारण लेप्टो स्पाइरो ईक्ट्रो हेमोरिजिका Lepto spiro ectro hemorrhagica नामक जीवाणु को मानते है। यह जीवाणु चूहो मे पाये जाते है और उसके मल-मूत्र के द्वारा पीने के पानी एव खाने वाली खाद्य-सामग्रियो मे मिल जाते हैं और व्रण तथा खरोचो से भी शरीर मे प्रवेश पाकर रोग उत्पन्न कर देते है। चूहो द्वारा एव उसके मल-मूत्र के द्वारा दूषित जल एव खाद्य-पदार्थ को जब मनुष्य व्यवहार करता है तब विष सक्रमण होकर कामला रोग की उत्पत्ति हो जाती है। तदुपरान्त रोग-ग्रस्त

मनुष्य के मलमूत्र, श्लेष्मा, नासास्राव आदि के द्वारा एक से अनेको मे प्रसार हो जाता है। इसे ही चक्राण्वीय रक्तस्रावी कामला अथवा विषज कामला कहते हैं।

शारीरिक विकृति

विषज कामला से ग्रस्त मनुष्य के सर्वप्रथम उसके रक्त मे जीवाणु प्रवेश कर जाता है और रक्त तथा आमाशय के द्वारा यकृत् मे पहुच कर शोथ उत्पन्न कर देता है एव वृक्क मे भी शोथ हो जाता है। इसके अतिरिक्त आन्त्र की दीवार आमाशय फुफ्फुस मे भी शोथ होकर रक्तस्राव होने लगता है। कभी-कभी तो जब यह जीवाणु मस्तिष्क मे पहुच जाता है तब शीर्षावरण मे शोथ के कारण कई प्रकार के लक्षण उपस्थित हो जाते है। इसके विस्तृत लक्षण का वर्णन लक्षण प्रकरण मे आगे किया जायगा। इसका परिपाक काल प्राय ६ से १२ दिनो का होता है और इसमे तीन अवस्था ये होती है। (१) ज्वर की अवस्था (२) कामला की अवस्था। इसी मे यकृत्, वृक्क विकार होते है। (३) आरोग्य अवस्था।

(२) द्वितीय कारण-सक्रामक कामला

अज्ञात जन्य जीवाणु को मानते है किन्तु अज्ञात जन्य, अन्य जीवाणु किस प्रकार का है और किस प्रकार से कार्य करता है अभी तक इसका पूर्ण रूपेण पता नहीं लगाया जा सका है। यद्यपि सक्रमण होने का मूल कारण एक प्रकार के वायरस टायप के जीवाणु ही होते हैं। बाजार मे मिलने वाली दूषित खाद्य-पदार्थ, दूषित जल के प्रयोग से यह रोग सक्रामक रूप मे फैलता है। इसे तीव्र सक्रामक यकृत् प्रदाह Epidemic jaundice or Acute infective hepatitis भी कहते है। यह जनपदोध्वस रूप मे फैलता है। युद्ध, अत्यधिक वर्षा के कारण गदगी, भुखमरी, गदगी और मक्खियो की अधिकता इत्यादि परिस्थितिया सक्रमण मे सहायक होती है। अत्यधिक मासाहारी, अत्यधिक अम्ल एव पित्तकारक पदार्थ तथा शराबी इस रोग से अधिकतर आक्रान्त होते हैं।

एक अज्ञात विषाणु Virus जो खाद्य-पदार्थों के द्वारा ही विशेषकर प्रसार पाता है। रोग के जीवाणु रोगी के मल-मूत्र, रक्त एव नासास्राव श्लेष्मा के द्वारा निकलते है इन्हीं शारीरिक मलो से निकल कर अनेक लोगो मे सक्रमण करते है। घनी आबादी वाले क्षेत्र एव जहा अधिक जन निवास करते है वहा इस रोग का प्रसार अधिक हुआ करता है। इसे ही सक्रामक कामला कहते है।

शारीरिक विकृति

दूषित जल एव खाद्य-पदार्थों के द्वारा जब इसके जीवाणु बडी आन्त्र मे पहुच जाते है तब विष का प्रसार करते है। यही विष रक्त के द्वारा यकृत् मे पहुच कर यकृत् के प्रत्येक खण्ड मे इसके तन्तुओ का नाश प्रारम्भ कर देते हैं। प्रथम यकृत् के तन्तुओ का नाश होता, पश्चात् सैलो का पित्तवाही नलिकाये फट जाती है और पित्त के थक्के जम जाते है। जब तक वह पित्त थक्का स्वरूप जमा रहता है तब तक कामला बना रहता है। प्राय ७० प्रतिशत रोगियो के यकृत् का स्वभाविक पूर्ण भार के आधे के लगभग यकृत् का भार हो जाता है। मृत्यु की सम्भावना तभी तक रहती है जब तक यकृत् का भार आधे से भी अधिक कम न हो जाय। जो तन्तु नष्ट हो जाते है वे गल जाते है। किन्तु उचित चिकित्सा हुई तो इसका पुनरनिर्माण होने लगता है एव नष्ट हुए तन्तुओ को ठीक कर डालते है। इसका प्रभाव प्लीहा पर भी होता है। वृक्क के विषप्रभाव के कारण प्लीहा मे पित्त का विष प्रवेश कर जाता है और शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसे ही कोलेमिक नेफ्रोसिस Cholenic Nephrasis कहते है।

इसके अतिरिक्त आमाशय आन्त्र, नाक, फेफडा आदि से भी रक्तस्राव होता है। अतएव यकृत् मे पूर्ण रूप से जल सचय नहीं हो पाता जिसके कारण शोथ उत्पन्न होने लगता है। प्रथम कामला उत्पन्न होता है पश्चात् इससे पितमेह (पीलामूत्र) उत्पन्न होता है और यकृत् का सारा कार्य प्राय बन्द सा हो जाता है जो मरात्मक होता है। इसका परिपाक काल ३ से ५ सप्ताह तक का होता है। आयुर्वेदिक सहिताओ मे कामला रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण निम्न प्रकार से बताया गया है।

आयुर्वेदिक कारण-

सहिता ग्रन्थो मे कामला रोग का निदान चिकित्सा पृथक् स्वतत्र रूप मे प्राप्त नहीं होता है। इसका निदान चिकित्सा पाण्डु रोगोत्तर पित्तवर्द्धक पदार्थों के अति सेवन के उपरान्त पाण्डु रोग का उग्र रूप अवस्था विशेष को कामला रोग प्रतिपाद्य किया गया है।

पाण्डु रोगी तु योत्यर्थ पित्तलानो निषेवते।
तस्य पित्तस सृऽमास दग्ध्वा रोगाय कल्पते।। च० चि० अ०१६

आचार्य चरक ने पाण्डु रोगोत्तर कामला रोग के उद्भव वतलाये है। जव पाण्डु रोगी अत्यधिक पित्तवर्द्धक पदार्थों का सेवन करता है अर्थात् आहार-विहार करता है तब उसका पित्त वृद्धि होकर अथवा स्वत पित्त दूषित होकर रक्त मास को दूषित कर देता है अर्थात् जला देता है तब परिणामस्वरूप कामला रोग की उत्पत्ति हो जाती है। हरित सहिताकार ने भी इस बात की पुष्टि की है।

वातेन पित्तेन कफेन चैव त्रिदोष मृद्भक्षणसम्भवेच।
द्वेकामले चैव हलीमकश्च इत्यष्ट धैव खलु पाण्डु रोग ।।

हरित सहिता

इससे स्पष्ट होता है कि पाच प्रकार के पाण्डु रोग के अतिरिक्त पाण्डु रोग के प्रवृद्धावस्था से दो प्रकार के कामला रोग की उत्पति होती है।

कामला रोग की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए अष्टाग हृदयकार ने कहा है-

य पाण्डु रोगी सेवसे पितलाग तस्य कामलाम्।
कोष्ठा शाखाश्रया पित्त दग्ध्वाऽसृऽमासमावहेत्।।

हारिद्र नेत्र मूत्र त्वड् नख वक्त्ररा कृतया।
दाह विपाक तृष्णावान भेका भो दुर्बलेन्द्रिय ।।

अ० हृ० नि० अ० १३

वह पाण्डु रोगी जो मरिच काजी, अम्ल पित्तकारक वस्तुओ का सेवन करता है उसका पित्त प्रकुपित होकर रक्त मास को जला कर कोष्ठ (महास्रोत) एव शाखा त्वचा और रक्तादि धातु मे आश्रित कामला को उत्पन्न करता है। इसमे नेत्र मूत्र त्वचा नख मुख और मल हारिद्र वर्ण के हो जाते है। इसके साथ ही रोगी को दाह अविपाक और तृष्णा रहती तथा शरीर का वर्ण मेढक के समान हो जाता है। पाण्डु रोग के विना भी कामला की उत्पत्ति होती है। भवेत्पित्तोल्वणस्यासौ पाण्डु रोगादृतेऽपि च।

पित्त प्रधान मनुष्य को पित्तकारक वस्तुओ के सेवन से भी कामला रोग की उत्पत्ति स्वतन्त्र रूप मे हो जाती है।

[illegible] पित्त मे कफानुबन्धी वायु से प्रेरित [illegible] मिलता जाता है इस कारण शाखा मे पित्त [illegible] जाता है। चरक संहिताकार ने पित्तावरोधजन्य [illegible] इसी प्रकार किया है।

तिलपिष्टनिभयस्तु वर्च सृजति कामली।
श्लेष्मण रुद्धमार्ग तत्पित कफ हरैर्जयेत्।।

च० चि० अ० १६

कफ के कारण पित्त नलिका के मार्ग मे अवरोध होकर कामला की उत्पत्ति होती है तब इसका रोगी तिल की पिट्ठी के समान मल त्याग करता है। स्वत पित्त मे कोई दोष नही रहता। अतएव कफघ्न द्रव्यो से कफ को निकाल देने पर पित्त अपने मार्ग से आकर मल मे आने लगता है।

अतएव पाण्डु रोग की प्रवृद्धावस्था, जिसके कारण दो प्रकार के कामला, प्रथम कोष्ठाश्रय, द्वितीय शाखा श्रय एव हलीमक रोग की उत्पत्ति होती है। आचार्य सुश्रुत का मत इससे कुछ भिन्न प्रतीत होता है। उन्होने पाण्डु से उत्पन्न कामला रोग के अतिरिक्त स्वतत्र रूप से भी कामला रोग की उत्पत्ति का वर्णन किया है। सुश्रुत टीकाकार आचार्य डल्हण ने शका समाधान करते हुए लिखा है कि यदि पाण्डु रोग का ही एक भेद कामला है तो पाण्डु के वातादि भेद के वर्णन करते हुए स्वतत्र रूप से कामला का वर्णन एव लक्षण लिखने की क्या आवश्यकता थी। अस्तु पृथक् कामला के वर्णन से स्पष्ट है कि पाण्डु के अतिरिक्त कामला रोग स्वतत्र भी उत्पन्न होता है। शार्गंधर ने कामला और कुम्भ कामला दो भेद माने है। किन्तु आचार्य चरक सहिता-कार इसके तीन भेद मानते है। कोष्ठाश्रित कामला शाखाश्रित कामला अभायाश्रित कामला। चरक एव सुश्रुत के टीकाकार चक्रपाणी और डल्हण ने लिखा है कि कुम्भ कामला का अन्तर्भाव कोष्ठाश्रित कामला मे ही हो जाता है। "कुम्भ कोष्ठ तदाश्रया कामला कुम्भ कामला'' कुम्भ कामला के ही पर्याय ग्रन्थान्तर मे पानकी नाम से लिखा गया है। इसी को डल्हण ने पल्लकी की सज्ञा दी है।

सन्तापो भिन्न वर्चस्त्व वहिरन्तश्चपित्तता।
पाण्डुता नेत्र रोगाश्च पानकी लक्षण भवेत्।। गगधर

"इति तु पल्लकी निर्दिस्यते'' डल्हण। कामला एक पित्तज प्रधान व्याधि है और पित्त का निर्माण यकृत् तथा आधुनिक मतानुसार अस्ति मज्जा मे है। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार यकृत् मे किसी प्रकार की विकृति के कारण पित्त नलिका के अवरोध स्वरूप कामला रोग की उत्पत्ति होती है। पित्त का निर्माण अत्यन्त ही निम्न दवाव पर होता है, इसलिए पित्त के

प्रवाह मे किसी प्रकार की थोडी भी बाधा उपस्थित होने पर उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है और आन्त्र अथवा कोष्ठ मे न जाकर पयस्वीनियो द्वारा रक्त मे शोषित हो जाता है जिसके कारण शोषण जन्य कामला की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। भौतिक नियमानुसार पितोत्पत्ति का कार्य नहीं हो पाता। कोषाणुओ को शरीर क्रिया द्वारा आन्त्र मे क्षरण होकर भोजन को पचाने मे सहायक होता है।

अस्तु पित्तकारक पदार्थों के अत्यधिक सेवन के उपरान्त पित्त प्रधान मनुष्य को कामला रोग की उत्पत्ति हाती है। वृद्ध पित्त के कर्म मे कहा गया है-पित्तविण्मूत्र नेत्र त्वकक्षु तृड दाहाल्प निद्रता । अ० हृ० सू०। मल मूत्र नेत्र एव त्वचा मे पीलापन, भूख की कमी, प्यास दाह तथा निद्रा का नाश होना वताया गया है। पित कुपित क्यो होता है इस सम्वन्ध मे आयुर्वेद-शास्त्र मे विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

पित्त कट्वम्ल तीक्षणोष्ण पटु क्रोध विदाहि भी ।
शरन्मध्याह्नरात्र्यर्ध विदाह समायेपु च।।

अ० हृ० नि० अ० १

कटु अम्ल, जम्भीरी निम्बू, आम, करौदा तीक्षण, कटु तैल उष्ण चाय, शराव, नमक आदि अत्यधिक सेवन करना क्रोध करना एव विदाही पदार्थ, मछली कुल्थी इत्यादि से और शरद् काल मध्याह्न, रात्री के मध्य भाग तथा भोजन की विदग्धावस्था मे पित्त कुपित हो जाता है। अतएव पित्त विकृति के कारण ही कामला की उत्पत्ति होती है। पित्त शमनार्थ कामला मे मधुर एव शीतल पदार्थों के सेवन से विशेष लाभ होते देखा गया है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थो के अवलोकन से यह पता चलता है कि पाण्डु रोगी जव अत्यधिक पित्तवर्द्धक पदार्थों का सेवन करता जाता है तब उसे कामला रोग की उत्पत्ति हो जाती है। इसी कारण से ही आयुर्वेदज्ञो ने कामला को पाण्डु रोग के अन्तर्गत एक भेद मानते है। किन्तु कामला एक स्वतत्र व्याधि है जो पित्त-वर्द्धक पदार्थ के सेवन से पित्त विकृति एव यकृत् विकृति के परिणामस्वरूप स्वतत्र रूप मे उत्पन्न होती हैं। पाण्डु की उपेक्षा करने से भी कामला की उत्पत्ति होती है। इसमे सन्देह नहीं है।

इसमे रक्ताणुओ का नाश होने लगता और रक्त मे रहे हुए रक्त रजक की मात्रा मे कमी होकर कामला रोग की उत्पत्ति हो जाती है। कामला का ही एक भेद कुम्भ कामला है। कामला की अच्छी चिकित्सा नहीं होती है अथवा उपेक्षा की जाती है तब शोथ उत्पन्न होकर कुम्भ कामला मे परिवर्तित हो जाता है। आचार्यों ने इसे कष्ठसाध्य माना हे। भारतीय आयुर्वेदज्ञो ने दो प्रकार के कामला का वर्णन किया है। प्रथम कोष्ठाश्रय कामला और दूसरा शाखाश्रय कामला। अच्छी चिकित्सा अथवा उपेक्षा करने के उपरान्त कोष्ठाश्रय कामला कुम्भ कामला मे परिवर्तित हो जाता है। कामला उत्पन्न होने के भी मुख्यत दो ही कारण माने जा सकते हैं। एक वह जो पाण्डु रोगी चिकित्सा न करवाकर उपेक्षा करते हुए पित्तकारक पदार्थों का सेवन करता है उन्हे और दूसरा वह जो अत्यधिक पित्तवर्द्धक वदार्थों का सेवन करता एव वाजारो मे उपलब्ध दूषित सडी-गली पदार्थों का आहार-विहार करता है। इन कारणो से यकृत् मे से निकलने वाली पित्त, पित्तवाहिनी नली के मार्ग मे अवरोध हो जाने पर पित्त रक्त मे मिल जाता है जिसके कारण से कामला रोग की उत्पत्ति हो जाती है। आगल भाषा मे रक्त कणो को आर०बी०सी० कहते है तथा श्वेत कणो को डब्ल्यू० बी० सी० कहते है। लाल कणो मे अत्यधिक मात्रा लौह का होता है जिसके कारण रक्त गहरे लाल रग का होता है। यकृत् एव प्लीहा मे विकृति उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप वहा का रजक पित्त लाल कण नहीं बना पाता जिसके कारण कामला रोग की उत्पत्ति हो जाती है। विकृति विज्ञान एव लक्षणो के विचार से अवरोध जन्य कामला शाखाश्रित तथा विषजन्य अर्थात् जीवाणु सक्रमण जन्य कामला एव रक्त विघटन जन्य कामला को कोष्ठाश्रित कामला कहा जा सकता है।

पाश्चात चिकित्साये कामला उस अवस्था को कहते है जिसमे यकृत् की विकृति के परिणामस्वरूप रक्त मे अधिक मात्रा मे पित्त कण की उपस्थिति के कारण त्वचा नेत्र, पटल मे पित्त वर्णता की उत्पत्ति हो जाती है। अतएव यह रोग पित्ताधिक्य के कारण ही होता है। रक्त मे पित्त कण अथवा पित्त रगाणु बढकर त्वचा नेत्रादि को पीला कर देता है।

"Th calour raives from a light rulphur yellow to a deep orange greenish or Evem dark olinetint according to the concentration of the pigment (Trench Index of differential diagnosis)

इस रोग की सम्प्राप्ति मे आचार्य चरक सहिताकार ने इस प्रकार वर्णन किया है।

समुदीर्ण यथापित्त हृदये समवस्थितम् ।।
वायुना बलिनाक्षिप्त स्रोतोभिदर्शभि सृतम् ।
प्रपन्न केवल देह त्वड् मासान्तर माश्रितम् ।।
प्रदूष्य कफ वाता सृक्त्वड् मासानि करोति तत् ।
वर्णान्करित हारिद्रान्पाण्डुन्बहु विद्यास्त्वचि ।।

-च० चि० अ० १६

हृदय मे स्थित हुआ पित्त जब बलवान वायु द्वारा फेका जाता हुआ दशो स्रोतो अर्थात् धमनियो द्वारा सम्पूर्ण शरीर मे पहुचकर त्वचा मास के बीच में स्थित हो जाता है और कफ वात रक्त त्वचा और मास को दूषित करके त्वचा मे बहुत प्रकार के हरे, हल्दी के समान, गहरा पीला आदि वर्ण को उत्पन्न करता है।

लक्षण-

आधुनिक चिकित्सा एव आयुर्वेदिक चिकित्सा दोनो चिकित्सा पद्धतियो के अनुसार इसमे सामान्य लक्षण दृष्टिगोचर होते है। इस रोग का परिपाक काल एक सप्ताह से पाच सप्ताह तक का होता है। जिसमे दो अवस्थाये विशेष रूप मे पायी जाती है। प्रथम ज्वर की अवस्था और द्वितीय कामला की अवस्था, इसी मे यकृत् विकार, वृक्क-विकार होते है। रोग आरम्भ होते समय प्रथम शिर मे दर्द कपकपी आलस्य अगो का टूटना (अगमर्द) थकावट, ज्वर अवसाद आदि पूर्व लक्षण दिखाई पडते हैं। यह लक्षण लगभग तीन से पाच दिनो तक रहते है, पश्चात् अरुची, स्वाद-हीनता प्यास धडकन शरीर और कटि मे शूल, उदर मे दाह अर्थात् उदर मे आग की तरह जलन बेचैनी, कै यकृत् स्थान मे न छुआ जाने लायक दर्द इत्यादि लक्षण प्रकट होते है। इसके बाद पितमेह (मूत्र मे पीलापन) त्वचा का वर्ण भूरा पीला हो जाता है। यकृत् प्लीहा की वृद्धि होने लगती एव यकृत् मे खराबी उत्पन्न हो जाती है।

श्वेताणु ह्वाइट ब्लड कार्पसल्स डब्ल्यू०बी०सी० कम हो जाती अथवा उचित अनुपात मे रहती है। किन्तु रक्ताणुओ मे रेड ब्लड कार्पसल्स आर०बी०सी० की कमी होने लगती है। मूत्र का रग गहरे हल्दी रग का हो जाता है, नेत्रो मे पीलापन (नेत्र पटल गहरे पीले रग का दिखाई पडता है) नख और मल मे भी थोडा पीलापन अथवा फीकापन मालूम पडता है। मूत्र मे कमी तभी होती है जब वृक्क मे विकृति होती है। मूत्र जाच से पता चलता है कि उसमे सक्षिप्त मवाद कण एव एल्व्यूमिन (रक्तकण) मिलता है। यदि वृक्क-विकार अत्यधिक हुआ तो मूत्र बन्द होकर रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

आयुर्वेदिक सहिताओ मे कामला के लक्षण इस प्रकार बतलाये गये है।

हारिद्रा नेत्र मूत्र त्वड् नख वक्त्ररा कृत्तया।
दाह विपाक तृष्णा वान भेकाभो दुर्वलेन्द्रिय ।।

अ० हृ० नि० १३

हारिद्र नेत्र सभृश हारिद्रत्वड् नखानन ।
रक्त पिताश कृन्मूत्रो भेक वर्णो हतेन्द्रिय ।।

दाह विपाक दौर्वल्य सदना रुची कर्षित ।
कामला बहु पित्तैषा कोष्ठ शाखाश्रया मता ।।

माधव एव च० चि० अ० १६

कामला से ग्रस्त रोगी के नेत्र अत्यन्त पीले हो जाते है तथा त्वचा नख, मुख, मल-मूत्र हल्दी के रग के समान हो जाता है और रक्त पित्त युक्त हो जाता है। मूत्र मे पित्त की मात्रा बढने से मूत्र गहरे पीले रग का हो जाता तथा मल काले अथवा पीले हो जाते हैं। दाह प्यास के साथ अविपाक रहती और शरीर का रग बरसाती मेढक के समान दिखाई पडता है। इन्द्रियो की शक्ति नष्ट हो जाती है उदर मे दाह बना रहता और अन्न का पाचन ठीक प्रकार से नहीं होता है। अगो मे ग्लानी अरुचि आदि लक्षण हो जाते है। पित्त प्रबल हो जाने के कारण रक्त मासादि धातुऐ विकृत हो जाती हैं। इसी कारण से एक को कोष्ठाश्रय और दूसरे को शाखाश्रय कामला कहते है। आधुनिक चिकित्सा ने इसके तीन भेद किये हैं।

(१) यकृत् जन्य अथवा विष सक्रमण जन्य कामला Toxic and Infections or hepetic Jaundice।

(२) रक्त विघटन अथवा रक्तक्षय जन्य कामला Hemolytic Jaundice।

(३) अवरोध जन्य कामला Obstructive Jaundice।

(१) यकृत् जन्य कामला मे यकृत् की कोषाये जब विकृत हो जाती है तब पित्त रजक पदार्थ पित्त वाहिनी की सूक्ष्म नलिकाये मे नहीं पहुच पाती। इस कारण से पित्त यकृत् शिरा के द्वारा

रक्त प्रवाह मे कमला रोगोत्पत्ति का कारण बन जाता है। इन कोषाओ को विकृत करने वाले एक विशेष प्रकार के विष है जो कोषाओ को क्षती पहुचाकर व्याधि उत्पन्न करता है। अतएव इसे विषमयता अथवा औपसर्गिक भी कहते है। इस प्रकार के कामला मे पाण्डु का सम्बन्ध नहीं रहता है। इसी प्रकार के कामला रोगी अधिकतर मिलते है। यह भेद ही सक्रामक कामला है जिसे आगल भाषा मे Epidemic Jaundice कहते है।

(२) रक्त विघटन जन्य कामला-रक्त विघटन जन्य कामला मे अत्यधिक रक्त कणो के विनाश के कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है। अपितु मेही के कामला मे रक्त कण अत्यन्त भजनशील Tragile होते है, इसके टूटने के कारण शौण वर्तुली Haemoglobin से पित्त रक्त Bilinubine भी अधिक मात्रा मे बनता है। रक्त प्रवाह मे इसकी उत्पत्ति से जो कामला होता है उसे शेणित क्षय-जन्य कामला Haemolytic Jaundice कहते है। इसके अतिरिक्त मलेरिया, कालमेह ज्वर, काला ज्वर आदि के जीवाणु विष के कारण लाल कणो के नाश के कारण उत्पन्न कामला को भी शेणित जन्य कामला कहते है। अतएव लाल रक्त कणो R B C के विनाश के कारण एव अपथ्य सेवन के उपरान्त आदि के रक्त कण विनाश के फलस्वरूप कामला की जो उत्पत्ति होती है वह स्वतत्र रूप से न होकर प्रवृद्ध पाण्डु का विशिष्ट रूप ही होता है।

(३) अवरोध जन्य कामला-अवरोध जन्य कामला मे नियमानुसार यकृत् मे निर्मित पित्त का निर्गम पित्त नलिका के द्वारा आन्त्र मे होता है जब किसी कारण से इसमे अवरोध उत्पन्न होने पर पित्त यकृत् मे सग्रह होने लगता है और वही पित्त रक्त वाहिनियो द्वारा पुन शोणित होकर रक्त मे चला जाता है परिणामस्वरूप रक्त मे पिताधिक्य के कारण जितने पारदर्शक स्वरूप अग है जैसे नेत्र नख आदि मे प्रत्यक्ष पीलापन दिखलाई पडता है। अवरोध के कई कारण हो सकते है, जैसे पिताश्मरी पित्त नलिका शोथ, गण्डुपद कृमि अथवा जन्मजात विकृति शल्य-क्रिया के कारण इसमे सकोच होने के उपरान्त भी अवरोध हो सकता है। पित्तवर्द्धक पदार्थो के अत्यधिक सेवन क्षुभित पित्त नलिका शोथ एव किसी प्रकार के अर्बुद होने के कारण, परिणामस्वरूप भी उसके दबाव से पित्त-नलिका का अवरोध होना सम्भव है।

असाध्य लक्षण-आचार्य चरक सहिताकार ने कामला के असाध्य लक्षण इस प्रकार बतलाये है-

सरक्ताक्षि मुखच्छर्दि विणमूत्रो यश्च ताम्यति।
दाहा रुचि तृषानाह तन्द्रा मोह समन्वित ।।
नष्टाग्नि सज्ञ क्षिप्रहि कामला वान विपद्यते ।

चि०चि० अ० १६

जिस कामला रोगी के नेत्र, मुख पुरीष मूत्र का रग लालिमायुक्त हो अथवा रक्त सचय चेहरे और नेत्र का वर्ण लाल हो और कै, मल, मूत्र के साथ रुधिर (रक्त) आता हो, मोह हो जाय, ग्लानी दाह अरुचि, प्यास, अफरा तन्द्रा मूर्च्छा से युक्त हो और अग्नि और चेतना (सज्ञा) नष्ट हो गई हो वह रोगी शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कोष्ठाश्रय कामला कुम्भ कामला के असाध्य लक्षण जब होते है तब वमन, अरुचि, उवकाई ज्वर श्वास कास अनायस श्रम, अतिसार युक्त ऐसे कोष्ठाश्रय कामला के रोगी की मृत्यु अवश्य हो जाती है।

निदान एव परिणाम-

प्रत्यक्ष लक्षणो से इस रोग की पहचान सरल ढग से हो जाती है। बिना किसी रोग के अकस्मात् युवको एव बच्चो मे कामला का लक्षण दिखलाई पडे तो इसी रोग का अनुमान होता है। फिर भी कभी-कभी पीला ज्वर गर्भवती के रोग का भ्रम होने पर रक्त मल मूत्र की जाच करवा लेना अति आवश्यक होता है। अवरोध जन्य कामला मे लाल कणो का नाश होता है। यकृत् की कार्यप्रणाली कम रहती है। बारम्बार होने वाले कामला मे यकृत् के ततुओ का नाश होता है और पित्तवाही नलिकाओ मे पित्त रुक जाता है। प्रसव की अवस्था वाला कामला इसी वर्ग मे होता है। इस रोग से मरने वाले रोगियो मे कामला रोग प्रत्यक्ष पाया गया है। रोग ग्रस्त काल की मध्यावस्था अर्थात् ८ से १५ दिनो के अन्दर रोगी की मृत्यु हो जाया करती है। यह कहना अत्यन्त ही कठिन है कि इस रोग से कितने प्रतिशत रोगियो की मृत्यु होती है।

सापेक्ष निदान

त्वचा नेत्र मूत्रादि वर्णो की साधर्म्यता से कामला एव पित्त जन्य पाण्डु, पानकी पित्त ज्वर हारिद्र ज्वर एव हारिद्र मेह से सापेक्ष निदान कर लेना आवश्यक होता है।

(१) पितजन्य पाण्डु एव कामला-

प्राय सभी आयुर्वेदज्ञो के मत से पितजन्य पाण्डु मे शरीर मूत्र एव मल का वर्ण पीला हो जाता है। जो कामला के हारिद्र

सापेक्ष निदान

कामला	पित्त ज्वर	हारिद्रा सज्ञक सन्निपात	पित्तजन्य पाण्डु	हारिद्र मेह	हीनवात मध्य कफ पित्ताधिक सन्निपात
(१) इसमे नेत्र, त्वचा नख और चेहरे का वर्ण हल्दी के समान पीला हो जाता है। (२) मल और मूत्र लाल और पीला होता है तथा ज्वरा-भाव बना रहता है। (३) शरीर का वर्ण बरसाती मेढक के समान हो जाता है और इन्द्रिया दुर्बल हो जाती है। (४) दाह, खाये हुए अन्न का ठीक ढग से परिपाक न होना, अरुची अग ग्लानी, शिथिलता एव शरीर का क्षीण होना अथवा कृश हो जाता है। (५) अधिकाश रोगियो मे मल का वर्ण श्वेत होता है और नेत्र और मूत्र अत्यन्त पीले होते है।	(१) इसमे सम्पूर्ण शरीर मे एक साथ ही ज्वर हो जाता है और एक साथ बढता है और दाह होता है। (२) नाक मुख, कण्ठ होठ एव तालु पक जाते है (३) प्यास, भ्रम, मद, मूर्च्छा और पित्त की कैं होती है। (४) अतिसार अरुची शरीर शिथिल हो जाता है और पसीना आता है। (५) रोगी प्रलाप करता एव शरीर मे लाल रग के चकत्ते पकट होते है एव अल्प निद्रा होती है। (६) नख, नेत्र, मुह, मल, मूत्र, त्वचा पीले वर्ण हल्दी के समान हो जाते है।	(१) इससे रोगी का शरीर अत्यन्त पीला हो जाता है। (२) नेत्र मल मूत्र अत्यधिक हल्दी रग के समान होते है। अभ्यन्तर दाह एव बाह्य शरीर ठडा होता है।	(१) इसमे रोगी का वर्ण पीले रग का अथवा हरी आभावाला हो जाता है। (२) ज्वर दाह, प्यास, मूर्च्छा तथा मलमूत्र पीले हल्दी के समान हो जाते हैं। (३) स्वेद आता है और अरुची, मल पतला होता है। (४) मुख का स्वाद कटु अथवा तिक्त होता है।	(१) इसमे तीक्ष्ण हल्दी के जल के समान वर्ण वाला तथा कटुरस प्रधान मूत्र त्याग होता है। एव दाह होता है। अर्थात् दाह युक्त मूत्र आता है।	(१) इसमे रोगी के मूत्र हल्दी रग का समान होता है। (२) नेत्र मे पीलापन जलन प्यासभ्रम अरुची आदि लक्षण होते है।

वर्ण से भिन्न है अर्थात् हारिद्र वर्ण गहरा पीला वर्ण होता है। इस प्रकार भिन्न वर्ण पितजन्य पाण्डु से कामला के निदान करने मुख्य हैं।

(२) हारिद्र ज्वर एव कामला-

हारिद्र ज्वर एव पित्त ज्वर मे भी रोगी के त्वचा भेक वर्ण एव मूत्र हारिद्र वर्ण का हो जाता है। जो अधिकाशतया प्राणघातक स्वभाव का होता है। इसी प्रकार हीन वात मध्यकफ पित्ताधिक्य सन्निपात ज्वर मे भी दाह तृष्णा भ्रम अरुचि आदि लक्षणो के साथ-साथ रोगी के नेत्र मूत्र हारिद्र वर्ण का बताया गया है। पित्त जन्य ज्वर मे भी नख नेत्र मुख, त्वचा, मूत्र एव मल का हरित हारिद्र वर्ण देखने को मिलता है। उपर्युक्त ज्वरो से कामला का सापेक्ष निदान करते समय ज्वरोक्त उच्च ज्वर प्राय कामला के रोगी मे नहीं मिलता है। कुछ विशिष्ट ज्वरो मे यकृत् प्लीहा-वृद्धि से द्वितीयक लक्षणो के रूप मे कामला के समान हारिद्र वर्ण उत्पन्न हो सकता है।

(३) हारिद्र मेह एव कामला-

हारिद्र मेह मे अन्य प्रमेह लक्षणो के साथ-साथ रोगी के मूत्र का वर्ण हारिद्र रग का होता है। किन्तु हारिद्रमेह के रोगी के कामला के समान त्वचा नेत्र, नख आदि हारिद्र वर्ण का न होकर मात्र मूत्र का वर्ण ही हारिद्र होता है।

(४) कोष्ठाश्रित कामला एव शाखाश्रित कामला-

कोष्ठाश्रित कामला सामान्यत नहीं मिलता है। शाखाश्रित कामला विशेषकर मिलता है। किन्तु शास्त्रीय आधार पर उक्त दोनो कामला मे भिन्नता करते हुए मूत्र एव मल वर्ण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कोष्ठाश्रित कामला का रोगी रक्त पित्त, वर्ण मलमूत्र त्याग करता है और शाखाश्रित कामला मे रोगी के मल का वर्ण तिल पिष्ट सन्निभ तथा उसका वर्ण गहरे हारिद्रा वर्ण का होता है। इसके अतिरिक्त कोष्ठाश्रित कामला मे अन्न विपाक दाह सदन अरुची एव हतेन्द्रिय आदि लक्षण पाये जाते है। जबकि शाखाश्रित कामला मे अल्पाग्नि उदर मे गुड-गुड शब्द और विष्टम्भ, पार्श्वशूल, हिक्का श्वास एव ज्वरादि लक्षण अवस्थानुसार मिलता है। इस प्रकार चिकित्सा करते समय लक्षणो की साधक्यता से सापेक्ष निदान कर लेना आवश्यक होता है।

चिकित्सा-

कामला को आयुर्वेदज्ञो ने नानात्मज विकारो के रूप मे परिगणना की है। अतएव "विरेचनम् पित्त हराणाम्" सामान्य सिद्धान्तानुसार चिकित्सा की जानी चाहिए। आचार्य चरक सहिताकार ने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय देते हुए कहा है-

तत्र पाण्डु वामयी स्निग्धैस्तीक्ष्णैरुर्ध्वानुलोमिकै ।
सशोध्यो मृदुभिस्तिक्तै कामली तु विरेचनै ।।

च०चि०अ० १६

पाण्डु और कामला की चिकित्सा व्यवस्था करने के पूर्व सर्वप्रथम स्नेहन करके तीक्ष्ण वमन और विरेचन से शरीर शोधन करना चाहिए। इसके लिए पन्च गव्य घृत, महातिक्तघृत अथवा कल्याण घृत स्नेहन के लिए प्रयोग करने का निर्देश दिया गया है-

पन्चगव्य महतिक्त कल्याणकम थापि वा।
स्नेहनार्थ घृत दद्यात्कामला पाण्डु रोगिणे।।

च० चि० अ० १६/४२

शाखाश्रित कामला मे रोगी तिल कल्क के समान मल त्याग करता है क्योकि कफ द्वारा मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसलिए पित्तनाश के लिए कफहर चिकित्सा करना चाहिए। कफनाश होने और मार्ग खुल जाने पर पित्त स्वय अपने मार्ग मे गति करने लगता है जिसके कारण मल का वर्ण स्वभाविक पीला हो जाता है। इसलिए पित्त बहुल मे तिक्त और शीतल, श्लैष्मिक मे कटु रूक्ष एव उष्ण चिकित्सा करनी चाहिए। कामला से पीडित रोगियो को खाने-पीने मे अगूर, आवला के रस का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे करना चाहिए। आचार्य चरक सहिताकार के अनुसार-

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वारसम्।
शीत मधुयुक्त प्रात कामलार्त पिबेन्नरे ।।

च० चि० अ० १६

कामला से पीडित व्यक्ति प्रात काल त्रिफला, गिलोय, निम्ब दारुहल्दी इनमे से किसी एक का रस शीतल ही मधु मिलाकर पीवे। आधुनिक चिकित्सा मे कामला रोग की अभी तक कोई निश्चित रामबाण औषधि नहीं है। आयुर्वेद चिकित्सा मे तो अनेको औषधिया भरी पडी है। अपने चिकित्सा काल मे जिन

योगो का व्यवहार कर सफलता पायी है उन्हीं योगो का यहा पर क्रमश स्थान दिया जायगा। इसमे विशेष कर लौह मिश्रित औषधि का प्रयोग किया जाना चाहिए साथ ही रोगी की कोष्ठ-शुद्धि होती रहे एव रक्त कणो की वृद्धि होती रहे यकृत् का कार्य ठीक ढग से होता रहे, इसके लिए रक्त कण वृद्धिकारक यकृत् प्लीहा पर कार्य करने वाली एव पित्तशामक और मूत्रल औषधियो का प्रयोग हितकर होता है।

अम्लतास की मज्जा के साथ त्रिकुट चूर्ण ३ ग्राम मिलाकर ईख के रस के साथ अथवा आवला स्वरस के अनुपान से कामला ग्रस्त रोगी को पिलाना चाहिए। इससे कामला रोग नष्ट होता है।

फलत्रिकाऽमृता तिक्ता निम्ब कैरात वासकै ।
जयेन्मधुयुक्त क्वाथ कामला पाण्डुता तथा।।

शा० ध०

त्रिफला कुटकी गिलोय निम्ब की छाल चिरायता वासापत्र सभी समान भाग लेकर काढा बनाये और ३० मि० लि० काढा मे १० ग्राम मधु मिलाकर पिलाये। इससे कामला रोग शीघ्र शमन होता है। इसे ही फलत्रिकादि क्वाथ कहते है।

ताप्यादि लौह-

कामला मे ताप्यादि लौह का विशेष महत्व एव आरोग्यकर होता है। ताप्यादि लौह का घटक द्रव्य इस प्रकार है।

हरड, बहेडा, आवला, सौठ, काली मिर्च, पीपल, चित्रकमूल, वायविडग, नागरमोथा प्रत्येक ३०-३० ग्राम, पीपलामूल, चव्य देवदारु, दारु हल्दी, दालचीनी प्रत्येक १२ ग्रा० शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमक्षिक भस्म, रौप्य भस्म, लौह भस्म प्रत्येक १२५ ग्रा० मण्डूर भस्म २५० ग्राम, मिश्री ४०० ग्राम।

निर्माण विधि-

सभी काष्ठ औषधियो का कपडछान चूर्ण बनाले पश्चात् सभी भस्मे मिलाकर खरल मे अच्छी प्रकार से घोटकर रखले तथा मिश्री का कपडछान चूर्ण कर मिलादे। औषधि तैयार है अथवा बने बनाये आयुर्वेदिक फार्मेसियो से लेकर उपयोग मे लावे।

उसके प्रयोग से रक्त कण की वृद्धि होकर रक्त अभिसरण क्रिया की मन्दता से होने वाले रोग निर्मूल होते है। यकृत् प्लीहा शक्तिवर्द्धक पाचक, अग्नि, प्रदीपक गुण होने से यह कामला रोग की सभी अवस्थाओ एव लक्षणो को शीघ्र ठीक करता है। इसके अतिरिक्त वृक्क शोथ, हृदय रोग कामला पाण्डु हलीमक एव आन्त्रो मे रहने वाला पित्त-विकार, वायु-विकार सभी समूल नष्ट हो जाते है। कामला रोग किन्हीं भी कारणो से उत्पन्न हुआ हो उसमे ताप्यादि लौह का अमृत तुल्य कार्य होता है।

मात्रा-१२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० तक दिन मे तीन बार तक मूली स्वरस अथवा गोमूत्र के साथ दिया जाना चाहिए।

भोजनोपरान्त लोहासव, पुनर्नवारिष्ट और रोहितकारिष्ट प्रत्येक समान भाग मिलाकर रखले। २० से २५ मि० लि० औषधि समान भाग जल मिलाकर भोजन के बाद दोनो समय दे। इससे यकृत् प्लीहा और वृक्क का कार्य ठीक ढग से होता है और रक्ताणुओ की वृद्धि होती है तथा शरीर मे बल की वृद्धि होती है। ज्वर भूख न लगना उदर की दाह ठीक होती है और आखो का पीलापन दूर होकर मूत्र त्याग साफ होता है।

आरोग्यवर्द्धनी वटी ५ ग्रा० नवायस लौह ५ ग्रा० दोनो को खरल मे घोट ले २५० मि० ग्रा० की मात्रा मे भागरा स्वरस अथवा मट्ठा के साथ दे। अथवा मूली स्वरस के साथ दे। अथवा तारामण्डूर, पुनर्नवादि मण्डूर कान्त लौह भस्म आरोग्यवर्द्धनी प्रत्येक समान भाग लेकर खरल मे घोट कर रखले और २५० मि० ग्रा० की मात्रा मे मूली स्वरस के साथ दिन मे तीन बार तक दे तथा ऊपर से फलत्रिकादि काढा ३० मि० लि० पिलादे। कामला मे मण्डूरवटक का प्रभाव अच्छे ढग से होता है २५० मि० ग्राम की मात्रा मे मूली पत्र स्वरस के साथ दिन मे तीन बार दे।

कामलाहर रस-

समगुण गधक और पारे की कज्जली नौसादर पुष्प, यवक्षार सोडाबाई कार्ब प्रत्येक १०० ग्रा० त्रिफला चूर्ण २०० ग्रा० को खरल मे अच्छी प्रकार घुटाई कर रखले। मात्रा ४ ग्राम से ६ ग्राम तक दिन मे तीन बार तक मक्खन मिश्रित (छाछ) ताजे मठा के साथ दे। इसके सेवन से नया उत्पन्न कामला ५-६ दिन मे नष्ट हो जाता है। भोजन (पथ्य) मे केवल मठा और चावल का (भात) ही देना चाहिए। फलो मे सन्तरा मौसमी, अनार, अगूर कच्चे नारियल का जल, ईख का रस देना चाहिए।

मूली स्वरस अथवा मूली पत्र स्वरस १० मि० लि० मकोय (काकमाची) स्वरस १० मि० लि० दोनो मिलाकर शाम, सुबह प्रतिदिन दे अथवा ताप्यादि लौह खिलाकर ऊपर से इसे पिलादे। इससे कामला रोग शीघ्र नष्ट होता है। कतिपय आयुर्वेदिक पेटेन्ट औषधिया एव इजेक्शन। लिवर बुन (मार्तण्ड) लिवफिफ्टीटू Liw 52, लिवरजीन लिवोमिन इनमे से किसी एक को १-१ चम्मच दिन मे तीन चार बार तक दे। कामला, यकृत् की कार्य-प्रणाली ठीक से काम न करना यकृत् विकृति, रक्ताल्पता, मन्द ज्वर, यकृत् मे विषजन्य प्रभाव से उत्पन्न परिस्थितिया आदि नष्ट होती है। लौह भस्म सूचीवेध, पुनर्नवादि मण्डूर सूचीवेध इनमे से किसी एक का मासान्तर्गत विधि से सप्ताह मे तीन बार दे। गुडुची सूचीवेध (प्रताप) सप्ताह मे तीन बार दे। इससे पित्त का वेग कम होकर पित्त की वमन को रोकता है और यकृत्-क्रिया मे सुधार होता है। कामला तृष्णा, शिरदर्द ज्वर दाह आदि का नाश होता है।

पथ्य-रोगी की उग्रावस्था मे शय्या पर पूर्ण विश्राम अर्थात् शारीरिक, मानसिक विश्राम कराते हुए ईख का रस, सन्तरा, मौसमी, अगूर, गाय का मठा, दही आदि पर ३ दिन तक उपवास कराये। मूग, अरहर की दाल गेहू की रोटी, लौकी पेठा, ककडी, मूली, खीरा द्राक्षा टमाटर, आवला, परवल, गाजर, सेव, गाय, बकरी की दूध मेनुआ, पपीता, करेला, पालक पोय की साग, मिश्री आदि पथ्य है।

अपथ्य--आम, इमली, करौधा, लाल मिर्च तैल नमक अचार, मलाई, बासी एव गरिष्ठ अन्न, कामवासना, चिन्ता, भय, शोक, मद्यपान, मलमूत्रादि वेगो को रोकना दिन मे सोना, क्रोध करना, पीतकारक पदार्थों का सेवन वर्जित है।

जय आयुर्वेद।



● सम्पादकीय टिप्पणी

कामला में देवदाली नस्य का अप्रतिम प्रभाव

देवदाली के फलो को लेकर उनके ऊपरी छिलको को दूर कर भीतर के जालीदार भाग को १० ग्राम जल मे काच के स्वच्छ पात्र मे सायकाल के समय भिगोकर रात्रिभर ओस मे रख दे। प्रात काल सूर्योदय से पहले पात्र मे ऊपर का निथरा हुआ स्वच्छ जल लेकर नाक मे टपकावे। इसके लिये रोगी के सिर की स्थिति ठीक करले। नाक मे इस तरल के जाते ही रोगी को छींक आने लगती है। छींको के साथ नासिका से पीला दूषित स्राव बहने लगता है, जिससे कामला रोगी के नेत्रो का पीलापन कम होने लगता है। यदि समस्त पीलापन दूर न हो, तो ६-७ दिन पश्चात् पुन यही क्रिया करावे। इस प्रकार ३-४ बार नस्योपचार कराने से पूर्ण लाभ हो जाता है।

कामला रोग के लिये नस्य प्रयोग अप्रतिम है, इससे एलोपैथी मे असाध्य माने जाने वाला सस्पर्शज कामला (Infective Type of Jaundice) भी दूर हो जाता है। किन्तु ध्यान रहे कि रोगी की सहन-शक्ति का विचार कर ही यह प्रयोग कराना उचित है। यह नस्य अधविभेदक (माहग्रेन) मे भी लाभकर है।

(सुधा० प्रयोग सग्रह अक से)

प्लीहावृद्धि कारण एवं लक्षण

आचार्य डा० महेश्वरप्रसाद "प्राणाचार्य"

मगलगढ (समस्तीपुर) बिहार

भोजनोपरान्त तुरन्त यान या वाहन (सवारी) पर आरूढ होकर गति करने, शारीरिक चेष्टाओ को अत्यधिक सञ्चालन करते रहने, शरीर मे सक्षोभ उत्पन्न हो जाने, अत्यधिक मैथुन, अधिक भार वहन करने, बहुत दूर पैदल चलने, वमन अथवा दूसरे किसी भयानक व्याधि यथा विषम ज्वर (मलेरिया), कालाज्वर (कालाजार) आन्त्रिक ज्वर (टायफाइड) आदि दीर्घकाल तक भोगते रहने से (इन व्याधियो मे श्वेत रक्त कणिकाओ की वृद्धि न होकर कमी हो जाती है)। शरीर के अत्यधिक दुबला-पतला हो जाने से अथवा रस धातु के बढ जाने से अत्यधिक वृद्धि प्राप्त श्वेत रक्त कणिकाए उदर के बाम पार्श्व मे स्थित प्लीहा को अपने स्थान से च्युत कराकर बढा देती है, कठोर कर देती है तथा प्लीहा मे दर्द उत्पन्न कर देती हैं। लगभग इसी आशय की उक्ति चरकसहिता मे भी देखने को मिलती है। यथा-

अशितस्याति सक्षोभद्यानयानातिचेष्टिवै ।
अतिव्यवाय भराध्ववमन व्याधि कर्शनै ।।
वामपार्श्वाश्रित प्लीहाच्युत स्थानात् प्रवर्तते ।
शोणित वा रसादिभ्यो विवृद्ध त विवर्धयेत् ।।

-च० स० उदर चि० आ० १३।

इतना ही नहीं दाह उत्पन्न करने वाले एव दही आदि स्रोत का अवरोध करने वाले अभिष्यन्दी द्रव्य के निरन्तर सेवन करने से उस प्राणी या व्यक्ति के रक्त और कफ अत्यधिक दूषित होकर बढते है और बाई ओर स्थिति प्लीहा को भी बढा देते है जिसको प्लीहोदर या प्लीहावृद्धि कहते है। इस व्याधि को सस्कृत मे प्लीहोदर, प्लीहावृद्धि, प्लीहाशोथ यूनानी मे तिल्ली बढना, अग्रेजी मे इन्लार्जमैण्ट ऑफ स्पलीन तथा वेस्टर्न मेडीकल टेकनीकल लैंग्वेज (पाश्चात्य चिकित्सीय तकनीकी भाषा) मे स्पलेनाइटिस और प्लीहा की विशेष वृद्धि को स्पलेनोमेगैली कहते हैं।

इस व्याधि से आक्रान्त असस्था मे रुग्ण व्यक्ति बहुत कष्ट पाता है, बामपार्श्व मे मन्द या असह्य दर्द कभी उदर प्रदेश को दबाने और कभी बिना दबाने पर होता है। मन्द ज्वर रहता है, मन्दाग्नि रहती है, कफ पित्तोदर के सदृश लक्षण के साथ शक्ति क्षीण होकर शरीर का रग पीला पड जाता है। सूक्ष्मता-पूर्वक विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि प्लीहोदर वस्तुत जीर्ण प्लीहावृद्धि है।

इसी तथ्य से प्राय मिलती-जुलती उक्ति सुश्रुत सहिता मे भी उपलब्ध होती है। यथा-

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तो
प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च ।
प्लीहाभिवृद्धि कुरुत प्रवृद्धौ
प्लीहोत्थमेतज्जठर वदन्ति ।।
तद्वामपार्श्वे पविृद्धिमेति
विशेषत सीदति चातुरोऽय ।
मन्दज्वराग्नि कफ पित्त लिगै
रूपद्रुत क्षीण, बलोऽति पाण्डु ।।

-सु० स० नि० स्था०।

इसी उक्ति की सम्पुष्टि 'माधव निदान' ग्रन्थ मे उदर रोग निदान के प्लीहोदर लक्षण प्रकरण द्वारा मान्यवर श्रीयुत् माधवाचार्य ने भी की है। प्लीहावृद्धि मे सौत्रिक तन्तु बहुत बन जाते है।

प्लीहा की आभ्यन्तरिक कला रक्तवाहिनी की केशिकाओ के साथ मिली रहती है जिससे भावावेश, विष्णुपदामृत (प्राणवायु-ऑक्सीजन) की कमी और सावेदनिक सस्थानो को उत्तेजित करने वाले कारणो से प्लीहा के सकुचित होने से बाहर स्रोतो मे चला जाता है। क्योकि इसमे रक्तवाहिनियो के जाल

फैले रहते है। कई व्याधियो मे प्लीहा के आकार मे धीरे-धीरे या अत्यधिक वृद्धि हो जाने पर यह उदर की बायीं ओर फैल जाती है, इतनी कठोर हो जाती है कि ज्ञात होता है कि पत्थर का एक आयताकार टुकडा हो। कभी-कभी आकार मे यह इतनी अधिक वढ जाती है कि यह नीचे जननेन्द्रिय की मूल तथा दाहिनी ओर नाभि को पार कर जाती है परणिामस्वरूप प्राय समस्त उदर ही फूल जाता है। प्लीहा वृद्धि होने पर बायीं ओर इसको सहजता से टटोलकर ज्ञात किया जा सकता है। प्लीहोदर एक दोषज, द्विदोषज एव त्रिदोषज होता है।

प्लीहा शरीर एव क्रिया-

स्वस्थ अवस्था मे प्लीहा लगभग वर्गाकार या औसतन आयताकार एव देह की मध्य रेखा के बायीं ओर उदर प्रदेश मे आमाशय के नीचे एव बायी ओर तथा बाये वृक्क की ऊर्ध्व दिशा की ओर ९वीं से ११ वीं पर्शुकाओ के पीछे छोटे-छोटे केन्द्रो से बनी हुई स्पज के सदृश एव लाली लिये हुये स्थित है। यह एक मृदु स्थिति स्थापक सौत्रिक कला से आच्छादित रहती है। इससे अकुर सदृश प्रवर्द्धन आभ्यन्तर की ओर प्रसारित रहते हैं। इसकी भीतर की कला केशिकाओ के साथ मिली रहती है। स्वस्थावस्था मे प्लीहा लगभग १३ ५ से मी लम्बी, लगभग ७ ५ से० मी० चौडी तथा ३ ५ से० मी० मोटाई की होती है।

प्लीहा के अनेक कार्य है। इसमे रक्तकण सचित रहते है जो आवश्यकता पडने पर रक्त परिवहन मे भेजे जाते है। श्वेत रक्त कणिकाओ का निर्माण होता है, लाल रक्त कणिकाओ के निर्माण मे भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है क्योकि प्लीहा के हटा देने से लाल अस्थिमज्जा बढ जाती है।

आचार्य सुश्रुत ने भी प्राय इसी आशय की बात कही है। यथा-

शोणितस्य स्थान यकृत्प्लीहानौ।

नष्ट-भ्रष्ट लाल रक्त कणिकाओ को जमाकर हीमोग्लोबिन को अलग करना तथा लाल रक्त कणकाओ के विनाश मे भी सहायक होना, इसलिये इसमे लौह और स्नेह का अश विशेष पाया जाता है। इतना ही नहीं प्लीहा नाइट्रोजन युक्त द्रव्यो के सात्मीरण विशेषकर यूरिक एसिड के निर्माण मे योग प्रदान करती है। व्याधि की अवस्था मे इसकी क्रियाये विषम हो जाने से इसकी आकृति अत्यधिक बढ जाती है।

व्याधि के पूर्वरूप एव लक्षण

पूर्वरूप-अत्यधिक दुर्बलता, ग्रीवा पतली हो जाना किन्तु उदर शनै -शनै बढ जाना, शरीर कृश हो जाना, उदर के बाम पार्श्व भाग मे स्पर्श करने पर प्लीहा बढी हुई, स्पर्श मे कठिन वेदना रहित तथा कछुए के सदृश आकार की उठी हुई प्रतीत होती है।

रूप (लक्षण)-शरीर अति कृश होते जाना, भोजन मे अरुचि, भोज्य पदार्थ का यथायोग्य पाचन नहीं होना, मल एव मूत्र त्याग मे अवरोध्र, आखो के समक्ष अन्धेरा छा जाना, प्यास अधिक लगना, अगमर्द (हरारत), वमन, मूर्च्छा, अग-प्रत्यगो मे अवसाद, कास, श्वास, हल्का ज्वर, आनाह (अफारा), जठराग्नि मन्द पड जाना, मुख की विरसता, शक्तिक्षीणता, सधियो मे पीडा, उदर मे वात जनित वेदना, उदर की ऊपरी भाग रक्तवर्ण या विवर्ण तथा उस पर नील, हरित एव हल्दी के सदृश पीले रग की रेखाये, अस्पष्ट शिराये उभरी हुई दृष्टिगोचर होना, रक्त के श्वेत कणिकाओ की अत्यधिक वृद्धि या कभी-कभी किसी रुग्ण व्यक्ति मे रक्त के श्वेत कणिकाओ मे कमी, शरीर पीला हो जाना तथा कफ पित्तोदर के रूप, बढी हुई प्लीहा स्पर्श मे कठिन, दबाने से असह्य दर्द, उभरी हुई आदि लक्षण व्यक्त होते है। यदि प्रारम्भ मे चिकित्सा नहीं करके इसकी उपेक्षा की गई तो यह व्याधि क्रमश कुक्षि, आमाशय (जठर), अग्न्याशय को घेर लेती है तथा उदर प्रदेश मे अत्यधिक वृद्धि उत्पन्न कर देती है।

लगभग इसी आशय के रूप का उल्लेख कुछ चरक सहिता मे और कुछ सुश्रुत सहिता मे प्राप्त होता है-

"दौर्बल्या रोचका विपाकवर्चा मूत्रग्रहतम प्रवेश पिपासागमर्दच्छर्दि मूर्च्छांगसादकासश्वास मृदु ज्वरानाशग्नि नाशकार्श्यास्य वैरस्य पर्वभेद कोष्ठ वात शूलानि, अपि चोदरमरूणवर्ण विवर्ण वा नीलहरित हार्द्रिद्रराजिमद्भवति, एवमेव यकृदपि दक्षिण पार्श्वस्थ कुर्यात् तुल्य हेतु लिगौ-षधत्वात्तस्य प्लीहजठर एवावरोध इति, 'एतत् प्लीहोदरमिति विद्यात्।।"

-चरक सहिता उदर चि० आ० ११

"मन्द ज्वराग्नि कफ पित्त लिगैपद्रुत क्षीणबलोऽति पाण्डु।"

-सुश्रुत नि० स्थान

प्लीहा (SPLEEN)

प्लीहा नीलाभ युक्त लाल रग की प्रणालीविहीन ग्रन्थियो (Ductless glands) मे सबसे बडी सरचना है जो शरीर की मध्यरेखा के बाई ओर आमाशय के नीचे और बाये वृक्क के ऊपरी भाग मे ९वी से ११ वी पर्शुकाओ के पीछे स्थित रहती है। यह १०-१२ से०मी० लम्बी, ७-८ से० मी० चौडी, ४ से० मी० मोटी तथा प्राय १८० ग्राम भार मे होती है। इसमे रक्तवाहिनियो के जाल प्रसारित रहते है तथा इसमे छोटे-छोटे केन्द्र स्थित होते है। सम्पूर्ण प्लीहा उदरावरणकला से आच्छादित रहती है। यह प्लीहा तीन कलाबन्धनियो द्वारा अन्य अवयवो के साथ सम्बन्ध मे आती है और अपने स्थान मे यथोचित रूप से रहती है। प्लीहार्बुद, विषमज्वर, कालाजार मे इसकी वृद्धि को टटोलकर स्पर्श किया जा सकता है जबकि स्वस्थ शरीर मे इसको टटोलकर ढूढना थोडा कठिन होता है।

प्लीहा रक्त के श्वेत एव रक्तकणो का निर्माण करती हे। रक्त को छानकर स्वच्छ भी करती है, नष्ट-भ्रष्ट रक्तकणो को सचित कर हीमोग्लोबिन को अलग करती है, अनावश्यक रक्तकणो को पूर्णतया समाप्त कर देती है। भोजन के पाचन काल मे इसकी वृद्धि होती है, यूरिक एसिड के निर्माण मे सहायता प्रदान करती है, रक्त का सचय करती है। सम्भवत व्याधि उत्पादक जीवाणु-कीटाणुओ से भी शरीर की रक्षा करती हे तथा रक्त का विशिष्ट रूप से निर्माण करती है।

"तस्य प्लीहा कठिनोऽष्ठीलेपादौ वर्धमान कच्छपसस्थान उपलभ्यते स चोपेक्षित क्रमेण कुक्षिं जठरमग्न्याधिष्ठान च परिक्षिपन्नुदरमभिनिर्वर्तयति।''

-च० स० उदर चि० अ० १३

रुग्णालयो के अनेक रोगियो के प्रत्यक्ष परीक्षणो के पश्चात् यह देखा गया है कि हृदय की व्याधियो, मासिक रज स्राव के लोप, मासिकस्राव मे अत्यधिक रक्त आना, अर्श के रक्त का अवरोध, रक्त का प्रदूषित हो जाना आदि कारणो से भी प्लीहावृद्धि परिलक्षित होती है। प्लीहावृद्धि व्याधि मे लाल रक्त कणिकाओ की सख्या इतनी न्यून हो जाया करती है कि समस्त शरीर रक्त शून्य या अरक्त एव पीत वर्ण जैसा दृष्टिगोचर होता है। इस व्याधि के अधिक दिनो तक झेलते रहने पर अरक्तता, श्वेत रक्त कणिकाओ की असम्यक् वृद्धि, सर्वांगशोथ, दातो की जड एव मसूढो मे सूजन, जलने एव रक्तस्राव, श्वास से दुर्गन्ध आना, नेत्रो के नीचे कृष्ण दाग (कलक), अतिसार, आमातिसार, भूख मिट जाना, स्कर्वी, हाथ-पैरो मे शोथ आदि लक्षण व्यक्त होकर अन्ततोगत्वा जलोदर या भयकर सर्वांगशोथ उत्पन्न होकर रोगी मृत्यु का आलिगन करता है।

त्वरित पहचान-भूख कम आना, मुख से दुर्गन्ध, दात की जड एव मसूढो मे सूजन, जलन एव रक्तस्राव मन्दज्वर, अरक्तता, शरीर शून्य हो कान्तिहीन, निस्तेज एव पीला पड जाना तथा उदर प्रदेश मे बायी ओर पार्शुकओ के नीचे आयताकार एक पत्थर के टुकडे सदृश अति कठोर प्रतीत होना (बायी ओर टटोलने से) इसको तुरन्त पहचानने के लक्षण है।

व्याधि विनिश्चयार्थ आधुनिक परीक्षाये एव सापेक्ष निदान-रोगी को निराहार रखे। पश्चात् उसे दाहिनी करवट लिटाकर उदर के बाये पार्श्व मे अन्तिम पर्शुका के नीचे हाथ की अगुलियो से अथवा करतल देकर प्लीहा की परीक्षा करे। प्लीहा की सामान्य वृद्धि मे भी ११वी पर्शुका के नीचे स्पर्शन द्वारा टटोलने से प्लीहा की स्थिति का ज्ञान हो जाता है। जब प्लीहा अत्यधिक बढ जाती है तो वह सामने से एक अर्बुद सदृश दिखाई पडती है जो श्वसन क्रिया के साथ ऊपर-नीचे गति करती है। कभी-कभी यह विषम-ज्वर, आन्त्रिक ज्वर जीवाणु जन्य हृदन्त शोथ, तीव्र राजयक्ष्मा, श्लैष्मिक ज्वर, फुफ्फुस शोथ मसूरिका, रोहिणी, पुनरावर्तक ज्वर, मूषकदश ज्वर, चोट, पूयमयता, अन्त शल्यता, विद्रधि, ताऊन आदि व्याधियो मे वृद्धि प्राप्त कर वह सम्पूर्ण उदर प्रदेश मे फैल जाती है। मूत्र-परीक्षा करने पर यूरोबाइलिन प्रतीत होता है किन्तु फिर रञ्जक द्रव्य नही जाता।

श्वेताणु वृद्धि, जीर्ण ज्वर, उपदश, आतशक, बचपन की अस्थिक्षीणता आदि मे प्लीहा बढकर नीचे जननेन्द्रिय की जड और दाहिनी ओर नाभि होकर यकृत् तक फैल जाती है।

● सपादकीय टिप्पणी-

आयुर्वेद मे यकृत् एव प्लीहा दोनो को रक्ताशय, रजकपित्त एव रक्तवह स्रोतो का मूल कहा गया है। नव्य मतानुसार प्लीहा रजक पित्त का स्थान तो नहीं परन्तु रक्त का आश्रय एव आशय मानी गयी है। प्लीहा मे रक्तकण सचित रहते हैं और रक्त सवहन मे आते हैं। गर्भावस्था मे यकृत् तथा प्लीहा दोनो रक्तकणो की रचना मे भाग लेते है तथा बाद मे यह कार्य रक्तमज्जा के द्वारा सम्पन्न होता है। प्लीहा निर्जीव रक्तकणो के विनाश मे भी सहयोग करती है। प्लीहा अनेक विधि प्रोभूजनो का विश्लेषण कर मूत्राम्ल का निर्माण भी करती है तथा शरीर मे रोग प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न कर सक्रामक व्याधियो से शरीर की रक्षा करती है। इसर तरह आयुर्वेद तथा नव्य विज्ञान दोनो ने प्लीहा को शरीर का एक महत्वपूर्ण अग माना है।

प्लीहावृद्धि के हेतुओ का अवलोकन करे तो भी आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान मे कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता । चरक ने जहा सभी उदर रोगो को हेतु अग्निदोष माना है वहीं सुश्रत ने 'सुदुर्बलाग्ने हिताशनस्य' कहकर उसी का समर्थन किया है। यह अग्निदोष आम के प्रकोप से हो सकता है या विषम ज्वर, कालाजार, पाण्डु, कामला या अन्य जीर्ण एव घातक-विकारो के कारण धातुक्षीण होने से भी हो सकता है, जो सभी उदररोगो का हेतु माना गया है। नव्यविज्ञान मे यकृत् मे रक्त का सचय, रक्त के रोग, उष्णकटिबन्ध के रोग आदि प्लीहावृद्धि के कारण माने जाते है।

आयुर्वेद विद्वानो ने प्रवर्धित प्लीहा को प्लीहोदर के नाम से सम्बोधित किया है। प्लीहोदर या प्लीहावृद्धि के लक्षणो पर विचार करे तो यह स्थानिक और सार्वदैहिक दोनो प्रकार के मिलते है। रोग परिज्ञान की दृष्टि से स्थानिक लक्षणो का विशेष महत्व है। प्रधान रूप से इन्हीं स्थानिक लक्षणो का अवलोकन कर रोग निर्णय किया जाता है, अत इन्हे प्रत्यात्म लक्षण भी कहते है। इन लक्षणो मे-तस्य प्लीहा कठिनोऽष्ठीलेवादौ वर्धमान कच्छपसस्थान उपलभ्यते स चोपेक्षित क्रमेण कुक्षि जठरमऽन्यधिष्ठान च परिक्षियन्तु दरमभिनिवर्तयति। अर्थात् बढी हुई प्लीहा कठिन, वेदना रहित तथा कच्छप के आकर की उठी हुई दिखाई पडती है। सार्वदैहिक लक्षणो मे जीर्णज्वर, धातुक्षय, रक्ताल्पता, अग्निमाद्य आदि लक्षण विशेषतया मिलते है। प्लीहोदर की जीर्ण अवस्था मे उदरावरण मे तरल का सचय होकर जलोदर की स्थिति भी सामान्यत बन जाती है।

चिकित्सा की दृष्टि से प्लीहावृद्धि मे जिन कारणो से उसकी वृद्धि हुई है उन कारणो का पता लगाकर ही उसकी चिकित्सा की जा सकती है। अर्थात् जीर्ण विषमज्वर, कालाज्वर, पाण्डु आदि रोगो के उपद्रव के रूप मे यदि प्लीहावृद्धि हुई है तो इन रोगो के दूर होने पर ही प्लीहावृद्धि का शमन सम्भव हो सकता है। औषधिकल्पो मे क्षार के योग प्लीहावृद्धि मे विशेष रूप से प्रयोग किये जाते है। क्षार अपने क्षरण गुण के कारण बढी हुई प्लीहा के क्षरण मे सहायक होते है। पलाशक्षार, अपामार्गक्षार, स्वर्जिकाक्षार आदि योग चिकित्सको द्वारा प्लीहावृद्धि के रोगियो को बहुतायत से प्रयोग कराये जाते है।

इसके अतिरिक्त आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थो मे अनेक औषधि कल्प दिये गये है। आरोग्यवर्धिनी, पुनर्नवादि मण्डूर, लोकनाथरस, यकृत् प्लीहारि लौह, नवायस लौह, शखद्राव, रोहितकारिष्ट, कुमारी आसव, पुनर्नवाष्टक क्वाथ, इच्छाभेदी रस आदि अनेक प्रयोग प्लीहावृद्धि मे लाभदायक रहते है।

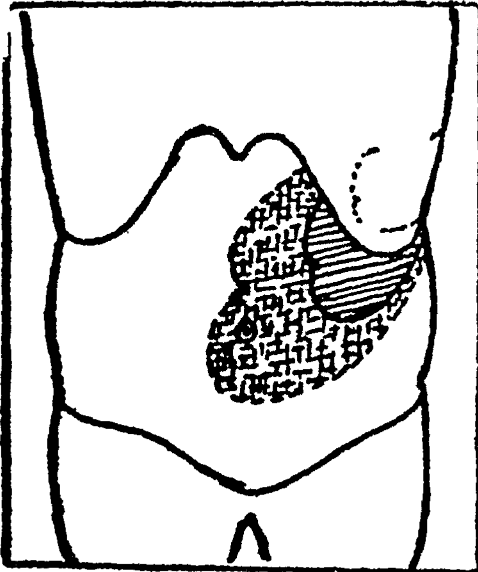
प्रस्तुत लेख मे आचार्य महेश्वरप्रसाद ने प्लीहावृद्धि के सभी पहलुओ पर विस्तार से विचार किया है। जिससे पाठक इस महत्वपूर्ण रोग पर अच्छी जानकारी प्राप्त कर सकेगे। ऐसा हमे विश्वास है।

-गोपालशरण गर्ग

जीर्ण विषम ज्वर, जीर्णकाल ज्वर, प्लैहिक पाण्डु, शिशु का यकृद्दाल्युदर, जीर्ण पूय, वमन, श्वेतकणमयता, फिरग, अस्थिक्षय, प्रतिहारिणी शिरागत रक्त का अवरोध, घातक पाण्डु, राजयक्ष्मा आदि व्याधियो मे जीर्ण एव जटिल प्लीहावृद्धि देखने को मिलती है। प्लीहा की विकृति मे रुग्ण व्यक्ति का उदर वामकुक्षि भाग की ओर बढा दिखाई पडता है। बच्चो मे प्लीहा बढ जाने पर समस्त शरीर एव ग्रीवा कृश और पतली किन्तु उदर बढा और तना हुआ होता है।

सापेक्ष निदान–नीचे "प्लीहोदर", "जलोदर", "मेदोरोग" एव "बद्धगुदोदर" मे सापेक्ष निदान प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्लीहा वृद्धि
(Splenomegaly)



व्याधि की आयुर्वेदीय चिकित्सा

चिकित्सा सूत्र–सर्वप्रथम पञ्चकर्म कराये और विदाही एव क्लेदजनक आहार-विहार का पूर्णरूपेण त्याग कराये। पश्चात् वातादि त्रिदोष सशामक चिकित्सा कराये। पथ्य मे गेहू की रोटी, मूग की दाल, पपीता, करेला की सब्जी तथा कुमार बाली का गोमूत्र सेवन कराये। तेल, मिर्च, खेसाडी की दाल, सफेद चीनी (खाड), चटपटी वस्तुओ तथा दिन मे सोने से परहेज रखे। यथासम्भव एव यथाशक्ति लघन कराये। खूब भूख लगने पर जौ का जल (वार्ली वाटर) देवे। मौसम्बी मुनक्का, मुफत्व अनार, पका पपीता, नारगी, अजीर आदि फलो का प्रयोग भी प्रतिदिन किया जा सकता है। परिचारिकादि पूर्ण स्वच्छ रहे।

चिकित्सा– प्रतिदिन विरेचन कराये। इस कार्य के लिए श्वेत निशोथ, सनाय के पत्ते प्रत्येक ६ ग्राम पीली हरड का छिलका १२ ग्राम। इन सबको जौकुट कर रात मे जल मे भिगो देवे। प्रात इसमे अमलतास का गूदा ४८ ग्राम तथा तुरजबीन, शर्करा और कागजी बादाम ५ दाने की गुद्दी पीस मिलाकर पिला देवे। तत्पश्चात् २-४ दस्त होकर कोष्ठ की शुद्धि हो जाने के बाद निम्नाकित औषधिया दे।

शास्त्रोक्त औषधिया–

(१) यकृत्प्लीहारि लौह–(ग्रन्थ-भैषज्यरत्नावली)-१२० मि० ग्रा० (१ गोली-१ रत्ती) प्रात -साय त्रिफला-क्वाथ १० से १५ मि० लि० के साथ जीर्ण एक दोषज, द्विदोषज एव त्रिदोषज प्लीहोदर मे सेवन कराये। पथ्य मे दीपन औषधि द्रव्यो का मिला हुआ यूष देना आवश्यक है।

प्लीहोदर	जलोदर	मेदोरोग	बद्ध गुदोदर
दर्शन–प्लीहा प्रदेश मे वृद्धि दीख पडती है।	उदर मे अधिक शोथ और परिवृत्त नाभि दृष्टिगोचर होती है।	सम्पूर्ण उदर शिथिल और बडा दीख पडता है।	हृदय और नाभि के मध्य मे वृद्धि दीख पडती है।
स्पर्शन–दाये भाग मे कठिनता अनुभूत होती है।	काठिन्य जल तरग, क्षोभ एव शब्द की प्रतीति।	मृदु भाव (मार्दव) स्पर्श मे प्रतीत होता है।	हृदय और नाभि के मध्य मे स्पर्शासहत्व होता है।
परिताडन–मन्द ध्वनि।	मन्द ध्वनि।	मन्द ध्वनि।	मन्द ध्वनि।
प्रमुख लक्षण–मन्द ज्वर, स्राव, निर्बलता, पीलिया आदि।	विबन्ध, हृद्द्रव, श्वास-कष्ट, शुक्लपुरीष, मूत्र-कृच्छ्रता।	श्वासकष्ट, स्वेद मे दुर्गन्ध, मैथुन करने मे अशक्त होना।	विबन्ध कण्ठ से मल वमन होना, पीडा आदि।

श्रवण-उदर के बाम पार्श्व मे मन्द ध्वनि आयताकार क्षेत्र मे विशेषकर अन्तिम पर्शुका के नीचे से लेकर जननेन्द्रिय मूल तक।	प्राय समस्त उदरप्रदेश मे जलतरग के साथ मन्द-मन्द ध्वनि सुनाई पडना।	सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश मे मन्द ध्वनि।	हृदय और नाभि के बीच ही केवल मन्द ध्वनि सुनाई पडना, कभी-कभी रूक्ष ध्वनि।

नीचे प्लीहा विकृति से उत्पन्न अरक्तता तथा काल ज्वर से उत्पन्न अरक्तता मे अन्तर प्रस्तुत है-

प्लीहा विकृति जन्य अरक्तता	काल ज्वर जन्य अरक्तता
१ इसकी अरक्तता (Spleenic anaemia) लगभग ५ से १० वर्षों तक रहती है।	१ इसकी अरक्तता (Anaemia of Kala-Azar) लगभग २ से ३ वर्षों से विशेष नही रहती।
२ प्लीहा वृद्धि रहती है तथा अरक्तता भी अनेक वर्षों तक रहा करती है।	२ व्याधि ठीक हो जाने पर प्लीहा भी स्वस्थ हो जाती है।
३ प्लीहा विकृति के साथ यकृत् या तो बढता नहीं या अत्यल्प बढता है।	३ यकृत् और प्लीहा दोनो बढ जाते है तथा व्याधि दूर हो जाने पर प्राय यकृत् और प्लीहा दानो ही स्वस्थ हो जाते है।
४ ज्वर नहीं चढता तथा रक्त जाच से उसमे कालाजार के कीटाणु उपस्थित नहीं होते।	४ ज्वर चढता है तथा रक्त जाच से रक्त मे कालाजार के कीटाणु उपस्थित मिलते है।

(२) **प्लीहान्तक लोह वटी**-(ग्रन्थ-र० त० सा० व सि० प्र० स०)-२५० मि० ग्रा० (२ गोली) से ३७५ मि० ग्रा० (३ गोली) निवाये जल के साथ तीन बार प्रतिदिन प्लीहावृद्धि से होने वाले ज्वर एव मलावरोध, वृद्धि प्राप्त प्लीहा, यकृत्वृद्धि, उदरशूल, कामला मे सेवन कराने से प्रभावशाली रूप से लाभ पहुचता है। औषधि सेवन काल मे गुड (शक्कर) भोजन पूर्णरूपेण बर्जित है।

(३) **प्लीहान्तक चूर्ण** (ब्र० स्वा० सदानन्द जी गिरि के योग)-नि० वि०-शुद्ध नौसादर ९६ ग्राम, कालानमक और स्वर्णगैरिक प्रत्येक १२ ग्राम, एकत्र मिलाकर कूट-पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण करे।

सेवन विधि-५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम चूर्ण जल के साथ दिन मे दो बार प्लीहावृद्धि यकृत्वृद्धि, शोथ, मन्दज्वर आदि को दूर करके पाचनशक्ति को बढाता है।

सावधान-इस चूर्ण को खाकर तत्क्षण चूना लगा हुआ पान और तम्बाकू कदापि नहीं खाना चाहिए नहीं तो जीभ पर छाले, घाव, व्रण पैदा हो जायेगे।

(४) **प्लीहान्तक क्षार** (ग्रन्थ-र० त० सा० व सि० प्र० स०)-आधा से एक ग्राम क्षार मधु के साथ दो बार प्रतिदिन चटाये तो प्लीहावृद्धि, वातजगुल्म, जीर्ण-अजीर्ण नष्ट होगा।

(५) **रोहितक लौह** (ग्रन्थ-र० सा० स०)-१ गोली (२५० मि० ग्रा०) से २ गोली (५०० मि० ग्रा०) औषधि शरपुखा मूलत्वक् के काढे १५ से ३० मि० लि० के साथ दो बार प्रतिदिन सेवन कराये तो प्लीहावृद्धि, अग्रमासवृद्धि, यकृत्वृद्धि, शोथ और जीर्ण ज्वर को दूर करता है।

(६) **प्लीहार्णव रस** (ग्रन्थ-र० च०)-१-१ गोली (१२० मि० ग्रा०) निर्गुण्डी के पत्ते के स्वरस, शरपुखा के मूलत्वक् के काढे प्रत्येक १५ मि० लि० तथा मधु २५ मि० लि० के साथ दो बार प्रतिदिन पिलाये तो तीनो प्रकार की प्लीहावृद्धि, ज्वर, अग्निमान्द्य, अधिक प्लीहावृद्धि, प्लीहोदर मे लाभ पहुचायेगा।

(७) **प्लीहोदरारि चूर्ण**-(ग्रन्थ-र० त० सा० व सि० प्र० स०)-चूर्ण २५० मि० ग्रा० (२ रत्ती) से ५०० मि० ग्रा० (४ रत्ती) प्रात जल के साथ दे अथवा १२५ मि० ग्रा० (१ रत्ती)

की मात्रा मे २-३ बार प्रतिदिन देवे तो प्लीहावृद्धि, ज्वर व्याधि एव शोथ, यकृत्वृद्धि को दूर करेगा।

(८) नाराचरस-उदर (ग्रन्थ-र० यो० सा०)-१२० मि० ग्रा० की १ गोली प्रात निवाये जल से (ईषत् उष्ण जल से) प्रतिदिन एक बार देवे तो प्लीहोदर, मलावरोध, नये ज्वर, गुल्म एव अफरा को दूर करता है।

(९) प्लीहारि अर्क (ग्रन्थ-र० त० सा० व सि० प्र० स०)-४ मि० लि० अर्क ईषत् उष्ण जल ६० मि० लि० के साथ प्रात एव रात्रि को दो बार प्रतिदिन पिलाये तो प्लीहावृद्धि, यकृत्वृद्धि, मन्दाग्नि, पाण्डु, कोष्ठबद्धता मे भी लाभ होता है।

(१०) भीमवटी (ग्रन्थ-र० यो० सा०)-२५० मि० ग्रा० (१ गोली) प्रात -साय अदरक के स्वरस के साथ सेवन कराये तो प्लीहावृद्धि, मन्दाग्नि तथा ज्वर मे लाभ होता है।

(११) प्लीहारि वटिका (ग्रन्थ-भै० र०)-२५० मि० ग्रा० (१ गोली) से ५०० मि० ग्रा० (२ गोली) जल के साथ दिन मे २ बार दे तो प्लीहावृद्धि, यकृत्वृद्धि, मन्द ज्वर, गुल्म, अग्निमान्द्य को दूर करता है।

(१२) कासीसाद्य वटी-उदर (ग्रन्थ-र० त० सा० व० सि० प्र० स०)-५०० मि० ग्रा० (२ गोली) से १ ग्रा० (४ गोली) रोहितकारिष्ट १५ मि० लि० या लहसुन स्वरस १० मि० लि० के साथ दो बार प्रतिदिन सेवन कराये तो यकृत्प्लीहावृद्धि दूर होती है।

(१३) अग्निप्रभा वटी (ग्रन्थ-भै० र०)-५०० मि० ग्रा० से १ ग्रा० (४ गोली) प्रात तालमखाने के जल या करेला के पत्ते के स्वरस से सेवन कराये तो यकृत् एव प्लीहा की अति भयकर व्याधि दूर हो जायगी।

(१४) पुनर्नवादि कल्प (ग्रन्थ-र० त० सा० व० सि० प्र० स०)-३ ग्राम उस अवलेह को ३० मि० लि० जल मे मिलाकर ३-४ बार प्रतिदिन पिलाये तो यकृत्प्लीहावृद्धि, शोथ, सर्वांगशोथादि दूर होते है तथा अधिक मूत्र त्याग होता है।

(१५) श्लीपदगजकेशरी (ग्रन्थ-र० यो० सा०)- १ गोली (१२५ मि० ग्रा०) से ३ गोली (३७५ मि० ग्रा०) ईषत् उष्ण जल से दो बार प्रतिदिन सेवन कराये तो समस्त प्रकार की प्लीहावृद्धि तथा समस्त प्रकार की श्लीपद व्याधि सह ज्वर को नष्ट करेगा।

(१६) रोहितारिष्ट (ग्रन्थ-भै० र०)-१५ मि० लि० से ३८ मि० लि० समभाग जल मिलाकर दो बार प्रतिदिन पिलाये तो प्लीहावृद्धि, कामला, उदर व्याधि, गुल्म, शोथ, अरुचि, ग्रहणी, अर्श को दूर करेगा।

(१७) नीबू द्राव (ग्रन्थ-र० त०)-५ से १८ बूद द्राव मिश्री या द्राक्ष शर्करा (ग्लूकोज) मे मिलाकर २-३ बार प्रतिदिन पिलाये तो प्लीहावृद्धि, गुल्म का नाश होता है।

(१८) लघुशखद्राव (ग्रन्थ-र० त० सा० व० सि० प्र० स०)-५ से १० बूद या शखद्राव (ग्रन्थ-उपर्युक्त) १० से ६० बूद द्राव मे ३० मि० लि० से ६० मि० लि० जल मिलाकर दो बार प्रतिदिन पिलाये तो प्लीहादोष, अफारा, गुल्म नाशक है।

प्लीहावृद्धि पंर एक अनुभूत योग

१० ग्राम पापडक्षार (सज्जीक्षर) को वस्त्रपूत छान लें तथा एक नारियल जो जल से भरा हुआ हो उसके मुह को छेदकर उसमे यह पापडक्षार भर दे तथा उसे अच्छी तरह हिलाकर मुह पर डाट लगाकर खुले मे रख दे।

विधि-प्लीहावृद्धि के रोगी को सुबह प्रात जल्दी उठाकर इतना भगावे कि वह हॉफने लगे फिर उसे खडा करके उपरोक्त नारियल के जल को छानकर पिला दे। जब तक श्वास का वेग सामान्य न हो जावे रोगी टहलता रहे। बाद मे वह चाहे जो करे। दिन मे उसी नारियल को टुकडे-टुकडे करके खावे। दिन मे हल्का भोजन ले। इस दवा के सेवन से प्लीहावृद्धि मे लाभ होता है। अधिक बडी हुई तिल्ली पर इसका कई बार सेवन कराना होता है। सामान्य प्लीहावृद्धि पर तो १-२ बार के सेवन से ही लाभ होने लगता है।

(सकलित)

(१९) उदरामृत योग (ग्रन्थ-उपर्युक्त)-६ मि० लि० से १५ मि० लि० इसे ३० मि० लि० जल मे मिलाकर भोजन के बाद २ बार प्रतिदिन पिलाने से प्लीहावृद्धि, यकृत्दोष, पाण्डु, मन्दाग्नि शान्त होती है।

(२०) क्रव्यादि रस (ग्रन्थ-उपर्युक्त)-२५० मि० ग्रा० (२ गोली) से ५०० मि० ग्रा० (४ गोली) तक और सैधवलवण चूर्ण के साथ १-२ बार प्रतिदिन खिलाये तो नवीन प्लीहावृद्धि दूर होगी।

(२१) प्रवालपञ्चामृत रस (ग्रन्थ-औ० गु० ध० शा०)-१२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० रसायन मधु और नीबू के स्वरस के साथ २ बार प्रतिदिन सेवन कराये तो प्लीहोदर, गुल्म, अफारा, मन्दाग्नि, उदर व्याधि नष्ट होती है।

(२२) शूलवज्रिणी वटी (ग्रन्थ-र० च०)-२५० मि० ग्रा० (१ गोली) से १ ग्राम (४ गोली) बकरी के दूध से तीन बार प्रतिदिन सेवन कराये तो यकृत् या प्लीहावृद्धि के साथ पाण्डु व्याधि, कामला मे उत्तम लाभ पहुचता है।

(२३) कुमार्यासव (ग्रन्थ-यो० र०)-१५ से ३० मि० लि० समभाग जल मिलाकर भोजनोपरान्त दो बार प्रतिदिन पिलाये तो प्लीहा, गुल्म, मन्दाग्नि, उदर व्याधि को शान्त करता है।

(२४) पुनर्नवासव (ग्रन्थ-भै० र०)-१५ से ३० मि० लि० समभाग जल मिलाकर भोजनोपरान्त दो बार प्रतिदिन पिलावे तो प्लीहावृद्धि, यकृत्वृद्धि, वातज एव कफज गुल्म का नाश होता है।

(२५) अभयारिष्ट (ग्रन्थ-भै० र०) १५ से ३० मि० लि० समभाग जल मिलाकर भोजनोपरान्त दो बार प्रतिदिन पिलाये तो वद्धकोष्ठता दूर होकर, मल-मूत्र की शुद्धि होकर प्लीहोदर मे उत्तम लाभ पहुचता है। इससे अन्त्र की पुर सरण क्रिया सम्यक् होकर स्थायी कब्ज एव प्लीहावृद्धि नष्ट होती है।

(२६) अश्वकचुकी रस (ग्रन्थ-र० स० सु०)-रुग्ण व्यक्ति की वय के अनुसार १२५ मि० ग्रा० (१ गोली) से ५०० मि० ग्रा० (४ गोली) प्रात जल के साथ निगलवाये। बच्चो को ६२५ मि० ग्रा० (आधी गोली) जल मे घोलकर पिलाये। इससे बच्चो के प्लोहोदर या यकृतोदर मे कफ प्रधान लक्षण होते पर भी उत्तम लाभ पहुचता है। वयस्को के नवीन प्लीहावृद्धि मे गुणकारी और प्रभावशाली है।

इनके अतिरिक्त और भी प्लीहावृद्धि नाशक औषधिया है यथा-

(२७) चित्रकादिलौह।

(२८) प्लीहारिलौह।

(२९) महामृत्युञ्जयलौह।

(३०) रोहितषट्पल घृत।

(३१) कालमेघासव।

(३२) लोहासव आदि भी उत्तम लाभ पहुचाते है।

(३३) षट्पल घृल (ग्रन्थ-बृन्द)-६ ग्राम से १२ ग्राम तक दो बार प्रतिदिन सेवन कराये तो प्लीहावृद्धि, मन्दाग्नि, जीर्ण जवर, विषम ज्वर एव गुल्म को नष्ट करता है।

(३४) बृहत्लोकनाथ रस (ग्रन्थ-भै० र० या० शा० स०) या कलधौत रस का सेवन भी यकृत्प्लीहा व्याधि नाशक है। इसका अनुपान कुमार बाछी का गौमूत्र है।

(३५) शखभस्म (ग्रन्थ-रसतरगिणी)-२५० मि० ग्रा० (२ रत्ती) से ५०० मि० ग्रा० (४ रत्ती) ईषत् उष्ण जल से प्रात -साय सेवन कराये तो यकृत्प्लीहा दोष एव वृद्धि शान्त होती है।

(३६) क्षार चिकित्सा सिद्धान्त-यवक्षार, अर्क लवण, शखनाभि भस्म, शुक्तिभस्म २५० मि० ग्रा० (२ रत्ती) से ५०० मि० ग्रा० (४ रत्ती) या किसी-किसी मे (दुर्बल रोगी मे) १२५ मि० ग्रा० (१ रत्ती) ईषत् उष्णजल से या मधु से प्रात -साय (दिन मे दो बार) दे।

स्वानुभूत प्रयोग-(१) शुण्ठि एव हरे कसीस का वस्त्रपूत चूर्ण प्रत्येक १२५ मि० ग्रा० (१ रत्ती) ले एकत्र मिलाकर ऐसी एक मात्रा अर्क कासनी १५ मि० लि० के साथ (अभाव मे गरम जल के साथ) प्रात -साय सेवन कराये। इसके १ घण्टा बाद कुमार बाछी का गौमूत्र ३० से ६० मि० लि० पिलाये (दिन मे बार-बार) तो प्लीहाशोथ, प्लीहावृद्धि, प्लीहोदर (अतिवृद्धि) मे उत्तम एव प्रभावशाली ढग से कार्य करता है। रोगियो पर प्रत्यक्ष परीक्षण कर मैने पाया है कि यदि रोहितक छाल एव नीम की छाल का काढा १५ से ३० मि० लि० को नरमूत्र (यदि जिस रोगी को औषधि देनी है, उसका ही ताजा मूत्र हो तो और भी उत्तम) ६० मि० लि० के साथ प्रात एव साय को पिलाये तो नवीन ही नहीं वरन् जीर्ण और जटिल प्लीहावृद्धि भी नष्ट होती है तथा भूख खूब लगती है।

(२) शरपुखा मूलत्वक् एव पत्र २५ ग्राम, कल्पनाथ (कालमेघ) पत्र २५ ग्राम तथा रोहितकत्वक् २५ ग्राम। इन्हे एकत्र मिला जौकुट कर इतने जल मे भिगोकर छोड दे जिससे कि समस्त द्रव्य जल मे भली-भाति डूब जाय। अब इनको १२ घण्टे तक फूलने दे और फाण्ट बनते ही निथारकर वस्त्र से छान ले।

सेवन-विधि-उक्त का ३० मि० लि० तथा गौमूत्र (कुमार वाछी का) या स्वय रोगी का मूत्र ६० मि० लि० (ताजा मूत्र) एकत्र मिलाकर प्रात -साय पिलावे। यदि इस औषधि के साथ बृहत् लोकनाथ रस १ से २ गोली (२५० से ५०० मि० ग्रा०) भी प्रात -साय मधु के साथ चटाये तो भयकर प्लीहोदर, पाण्डु, शोथ, गुल्म मन्दाग्नि एव उदर व्याधि मे उत्तम लाभ पहुचता है, कोष्ठ की शुद्धि होती है एव बल बढता है।

(३) घृतकुमारी के स्थलू पत्ते को मध्य से चीरकर उस पर आभ्यन्तरिक अश की ओर सूक्ष्म पिसा हुआ ऊर्ध्वपातित (विशुद्ध) नौसादर कण समसर्वत्र छिडक देवे तथा किसी पोर्सलेन या काच की थाली मे पसारकर सूर्य की प्रतप्त किरणो मे इस प्रकार रख देवे कि उन पर किरण सीधी रेखा मे पडती हो। थोडी देर मे देखेगे कि समस्त नौसादर जलवत् हो जायगा। अब इस द्रव को फिल्टर पेपर या स्वच्छ महीन वस्त्र मे छान लेवे। और ढक्कन युक्त काच की बोतल मे सुरक्षित रख लेवे।

सेवन-विधि-३-५ बूद तरल बताशा या मिश्री चूर्ण या द्राक्षाशर्करा (ग्लूकोज) एक चम्मच पर डालकर प्रात -साय सेवन कराये तो वढी हुई प्लीहा मे चमत्कारकि लाभ दिखलाती है, उदर मे वृद्धि नहीं होने देती, भूख अत्यधिक लगती है, दुर्बलता दूर करती है तथा यकृत्वृद्धि एव अन्य यकृत् व्याधियो मे भी अति लाभप्रद है।

सावधान-औषधि-सेवन-काल मे खेसाडी की दाल, अरबी, उडद की दाल, कचालू, अडा, रामतोरई आदि स्निग्ध, तैलीय, लेसदार एव वात-प्रकोपक द्रव्य पूर्णरूपेण सेवन न करे। पथ्य मे शुष्क और तैल, मिर्च रहित भोजन करे।

(४) सैहुड के दुग्ध, आक का पीला पका पत्ता एव सैधवलवण को एकत्र मिला पकाकर (प्रत्येक समभाग) सुरक्षित रखे। एक ग्राम की मात्रा मे उपर्युक्त को पर्याप्त मधु के साथ सेवन कराये तथा इसके एक घण्टे बाद प्रात -साय शुण्ठि, कालीमिर्च एव छोटी पीपल समभाग ले एकत्र कूटकर कपडछन चूर्ण कर ६ ग्राम की मात्रा मे ३० से ६० मि० लि० कुमार वाछी के गौमूत्र के साथ सेवन कराये तो प्लीहावृद्धि, उदरशूल, मन्दाग्नि, पाण्डु मे उत्तम लाभ पहुचेगा।

(५) कलधौत रस २५० मि० ग्रा० मधु से चटाकर ऊपर से प्रात -साय शरपुखा पत्र १२ ग्राम तया कल्पनाथ १२ ग्राम एकत्र लेकर फाट निर्माणकर २५ मि० लि० की मात्रा मे ले बराबर गौमूत्र मिलाकर पिलाये तो कालज्वर (कालाजार) के कारण उत्पन्न प्लीहावृद्धि मे अत्युत्तम लाभ पहुचाता है। इसके साथ भोजनोपरान्त कालमेघासव १५ से ३० मि० लि० समभाग जल मिलाकर दिन मे दो वार पिलाये तो जादू समान चमत्कारिक लाभ उपलब्ध होता है।

(६) प्लीहोदर व्याधि मे स्नेहन, स्वेदन, विरेचन आस्थापन बस्ति और अनुवासन बस्ति का प्रयोग लाभप्रद है।

(७) प्लीहोदर व्याधि से पीडित व्यक्ति को सर्वप्रथम स्नेहन और स्वेदन करावे। पश्चात् दही से भोजन खिलाकर बाये हाथ की कर्पूरसन्धि (कोहनी) के मध्य की शिरा का वेधन कराये (आद्य प्रचलित एक्यूपचर) और इसमे होकर रक्त बाहर निकलता रहे इस ध्येय से प्लीहा को टटोलकर उसको हल्के हाथो से मलते रहे। यह प्रक्रिया अति गुणकारी प्रमाणित हुई है जिसका उल्लेख भगवान् धन्वन्तरि ने सुश्रुतसहिता मे किया था।

(८) यदि प्लीहोदर व्याधि वातकफोल्वण हो तो मणिबन्ध को अत्यल्प झुकाकर बाये अगूठे को दबाने से जो शिरा स्पष्ट उभरती है उस पर तप्त की हुई लौह शलाका से दग्ध कर देने पर प्लीहावृद्धि चमत्कारिक रूप से दूर हो जाती है।

(९) यदि प्लीहोदर पित्त प्रधान रूप मे हो तो जीवनीय गण से विधि-विधान से सिद्ध किया हुआ घृत (गाय का घी), दूध (गाय या बकरी के गर्म दूध) की बस्ति, रक्तावसेचन, विरेचन रूप सशोधन तथा गाय के गरम दूध को पिलाना आदि कर्म करके लाभ पहुचाना चाहिए। पथ्य मे जैसा कि ऊपर के प्रकरण मे लिखा जा चुका है।

(१०) विषमज्वर के भोगते रहने के बाद प्लीहावृद्धि होने पर विषमज्वर के कीटाणुजन्य विष बिनाशिनी तथा जीर्ण ज्वरहर "सुवर्णमालिनी बसन्त", लघुमालिनीबसन्त' तथा प्लीहावृद्धि को क्षीण करने वाली औषधि "लौहभस्म युक्त"

"प्लीहान्तक वटी", "प्लीहारि लौह" आदि सेवन कराना लाभप्रद है।

(११) सहिंजने के मूलत्वक् को नरमूत्र या कुमार बाछी के गौमूत्र मे सूक्ष्म पीसकर प्लीहा प्रदेश (वृद्धि प्राप्त प्लीहा) पर भली-भाति लेप लगाने से बढी हुई प्लीहा प्राकृतावस्था मे आ जाती है।

हकीमी एव यूनानी चिकित्सा

अरबी मे प्लीहावृद्धि को इज्मुत्तिहाल, वस्मुत्तिहाल, उर्दू मे तिल्ली का वरम या वरवट कहते है।

चिकित्सा (इलाज) के नुस्खे-(१) अब्बल मे[१] कुछ रोज तक गुलबनफ्सा ७ ग्राम, बीज निकली हुई दाख ९ दाने, कासिनी की जड ७ ग्राम, सौफ की जड ७ ग्राम, गावजबान ५ ग्राम, करपस की जड ५ ग्राम, पीला अजीर ३ दाने, मजीठ ५ ग्राम और सूखी मकोय ५ ग्राम। इन्हे इकट्ठे रात मे गरम पानी मे भिगोकर अहले सुबह[२] आफताव[३] निकलने से पहले उसे मल छानकर उसमे खमीरा बनफ्शा ४८ ग्राम मिलाकर पिला देवे। शाम के वक्त सौफ और सूखी मकोय हरेक ५ ग्राम, बीज निकाली हुई दाख ९ दाने, इन सबको अर्क मकोय और अर्क सौफ हरेक ७२ मि० लि० मे पीस छानकर अब इसमे खमीरा बनफ्शा ४८ ग्राम मिलाकर पिलाये तो इससे इज्मुत्तिहाल[४] याने तिल्ली[५] का बढ जाना और तिल्ली के वरम[६] मे मुफीद फायदा[७] करता है।

(२) सुदाब के पत्ते १० ग्राम, उशक ७ ग्राम, बूरए अरमनी ३ ग्राम, खुश्क पोदीना ३ ग्राम। इन सबको असली और बढिया सिरका २४ मि० लि० मे पीस गरमकर प्लीहा की जगह के ऊपर रोज दो बार लेप करे। खाना खाने के बाद सफूफ तिहाल २ ग्राम हरेक बार सुबह-शाम खिलाये अथवा हब्ब अशवार २ ग्राम हरेक बार सुबह-शाम खिलाये। साथ ही जिस्म किबरीत को सिरका मे मिलाकर तिल्ली की जगह के ऊपर लेप रोज २-३ बार करे।

अगर इन नुस्खो से चन्द रोज मे फायदा नहीं हो तो दो सप्ताह बाद तक अहले सवेरे[८] वेखइजखिर ७ ग्राम, सौफ की जड, शुकाई और वादावर्द हरेक ५ ग्राम एक साथ मिलाकर मुजिज[९] की तरह पिलाये। इसके बाद ऊपर की मुजिज मे दस्त कराने के ख्याल से सफेद निशोथ ६ ग्राम, मक्की सनाय के पत्ते ७ ग्राम, पीली हरड का बकला १२ ग्राम मिलाकर रात मे भिगो दे और सबेरे मल-छानकर अमलतास की गुद्दी ६० ग्राम, तुरजबीन ४८ ग्राम, बूरा सुर्ख[१०] ४८ ग्राम और बादाम का मग्ज ५ दाने को शीरा मे मिलाकर पिलाये। अगले रोज ठडाई पिलाये। इसी तरह तीन बार दस्त की दवा देवे। साथ ही गेहू की भुसी, सोया, अगूर की लकडी की राख। इन सबको इकट्ठे बारीक पीसकर अगूरी सिरका मे मिलाकर सुहाता गरम करके तिल्ली की जगह पर मरहम के माफिक रोज २-३ बार (एक बार जरूरत मे सोते समय) लगाये। अगर इससे फायदा नही हो तो अजरूत ६ ग्राम, कतीरा, जराबन्द मदहरज हरेक १२ ग्राम और उशक २४ ग्राम। इन सबको पुराने सिरका मे अच्छी तरह हल करके मोटे कपडे के ऊपर लेप करके तिल्ली की जगह पर चिपका देवे। इसका जितना कपडा उखडता जाए उतना रोज तेज कैंची से काटते जाये।

दस्त कराने के बाद ताकत, खून और कुब्बत बढाने के ख्याल से दबाउल्मिस्क मोतदिल जवाहर वाली ५ ग्राम मे कुर्स कौलोद[११] २५० मि० ग्रा० (१ टिकिया) मिलाकर पहले खिलाकर ऊपर से सौफ, खुश्क मकोय, कासनी के बीज हरेक ५ ग्राम, बीज निकाली हुई दाख ९ दाने। इन सबको अर्क गावजवान और अर्क बिरजासिफ प्रत्येक ७२ मि० लि० मे पीसकर खमीरा बनफ्शा ४८ ग्राम मिलाकर सुबह-शाम पिलाते रहे। दिल्ली के हकीम अजमल खा का इस माने मे नुस्खा था कि पित्तपापडा ७ ग्राम, गुलबनफ्शा, चिरायता हरेक ७ ग्राम, बिरजासिफ, खुश्कमकोय, अफसवीन हरेक ५ ग्राम एक साथ रात मे गरम पानी मे भिगोकर सबेरे मसल छानकर खमीरा बनफ्शा ४८ ग्राम मिलाकर पिलाये। खाना खाने के बाद हल्का गधक का तेजाब २-४ बूद लगभग २०० मि० लि० से २५० मि० लि० जल मे मिलाकर दिन और रात मे पिलाये। इसके साथ ही पीला एलुआ ६ ग्राम, केसरमोगरा २ ग्राम, अगूर की लकडी की राख १२ ग्राम, झाऊ की लकडी की राख १२ ग्राम असली सिरका मे पीसकर सुहाता गरम करके तिल्ली की जगह के ऊपर लेप करे (रोज २-३ बार)।

---

१ सर्वप्रथम, २ प्रात, ३ सूर्य, ४ प्लीहावृद्धि, ५, प्लीहा, ६ प्लीहोदर, ७ अति लाभ, ८ अति प्रात काल, ९ दोष को पचाने वाली औषधि, १० लालशक्कर, ११ लोहभस्म।

हब्ब कमीखून, दबाउलकुर्कुमकबीर, माजूनदबीदु०, दबाउल्मिस्क मोतदिल। इनमे से किसी एक का ५ ग्राम अथवा जवारिस जालीनूस ७ ग्राम को कुर्स फोलाद की १ टिकिया या कुर्स खु[illegible]ल्हदीद २५० मि० ग्रा० के साथ खिलाना भी खून ओर ताकत बढाने मे कामयाबी हासिल कराता है।

(३) चटनी बरायतिहाल ३ ग्राम खाना खाने के बाद दिन और रात मे चटाये। तैयार[12] करने का तरीका[13] ताजा अदरख १५ ग्राम, ताजी मूली ३० ग्राम, अरण्ड खरबूजा ३० ग्राम, पीली अजीर, खुश्क पोदीना, कलौजी, भुना सुहागा, नौसादर जौहर किया राई, कालीमिर्च, सैधानमक और सज्जी हरेक ३ ग्राम, अगूरी सिरका २५० मि० लि०। सभी दवाओ को उपर्युक्त सिरका मे चटनी के माफिक बारीक पीसकर रख लेवे।

(४) हब्बतिहाल-सुबह-शाम इसकी २ गोली ताजे पानी के साथ खिलाये। तैयार करने का तरीका-पीला एलुआ, कलमीशोरा, सुहागा और नौसादर हरेक ६ ग्राम ले इनको इकट्ठे सिरका मे पीसकर चना के बराबर गोलिया बनाकर सुखा लेवे। लाभ-तिल्ली के बढने को दूर करता है।

(५) जाहर नौसादर-बढी हुई तिल्ली को दूर करने और खाना पचाने के लिए इसका १ ग्राम गरम पानी से खाना खाने के बाद दिन और रात मे रोज दो बार खिलाये। तैयार करने का तरीका-नौसादर ठिकडी २४० ग्राम, जवाखार, नमक मनिहारी, नमक लाहौरी, नमक काला हरेक ६० ग्राम। इन्हे बारीक पीसकर कागजी नीबू के रस ४५० मि० लि० मे भली-भाति मिलाकर पोर्सलेन या चीनी मिट्टी के बर्तन मे डालकर सूर्य की धूप मे सुखाये। जब तरल भाग खुश्क हो जाय तो एक मिट्टी की हाडी मे डालकर दूसरी हाडी उसके ऊपर रखकर कपडमिट्टी करके चूल्हे पर चढाकर तेज आच लगावे। जब सत्व उडकर ऊपर की हाडी मे जा चिपकेगा तो उसे निकाल खरोचकर बारीक पीसकर काच की शीशी मे बन्द रखे।

फायदा-तिल्ली या बरम को दूर कर पचाने की ताकत बढाता है।

पथ्य-परहेज-खाना भूख लगने पर दे। चपाती गेहू की रोटी, पोदीना की चटनी, सिरका मे पडा मूली का अचार, उटनी का दूध, मासमक्षी या बकरी का सूखा मास आदि दे।

तेल, घी, दूध, मक्खन, चर्बी, सफेद गाउ से बने पदार्थ, मिठाई, आलू, अरवी, कचालू, उउद की दाल वगैरह से पूरा परहेज रखे।

परमाणुविक चिकित्सा

सर्वप्रथम ब्रह्ममुहूर्त्त मे उत्तम बाल हरीतकी चूर्ण ६ ग्राम फकाकर ऊपर से रुग्ण व्यक्ति के स्वय का मूत्र या कुमार बाछी का ताजा गौमूत्र ४०० मि० लि० पिला देवे। इसके बाद बासी जल (ताम्र पात्र मे ढककर रात मे रखा उषापान) इच्छानुसार पिलावे। एक-दो या तीन घण्टे के बाद चार पतले दस्त होकर कोष्ठो की शुद्धि होगी।

तब शरपुखा मूलत्वक्, शरपुखा पत्र, कल्पनाथ पत्र कुटकी मूल, चिरायता पत्र, नीम की अन्तर्छाल, कटकरजमीगी, रोहितक छाल, मजीठ, द्रोणपुष्पी पत्र प्रत्येक १०० ग्राम लेकर कूटकर चूर्णकर आवला के फाट मे डालकर दृढ हाथो से खूब सूक्ष्म खरल करे। पश्चात् इसमे उपर्युक्त द्रव्यो के क्षार प्रत्येक १० ग्राम, यवक्षार, सत्व नौसादर, सत्व फिटकरी, सत्व कलमीशोरा, सैंधवलवण, त्रिफलाक्षार प्रत्येक ५ ग्राम एकत्र डालकर कुमार बाछी के गौमूत्र २५० मि० लि० की भावना देकर दृढ हाथो से तब तक खरल करते रहे जब तक कि समस्त गोमूत्र शुष्क न हो जाय। पश्चात् इसमे मृतसजीवनीसुरा १२५ मि० लि० मिलाकर पुन दृढ हाथो से तब तक खरल करते रहे जब तक कि मिश्रण समसर्वत्र न हो जाय तथा समस्त तरल अश शुष्क न हो जाय। अब इसे वस्त्र से छानकर काच की शीशी मे बन्द कर सुरक्षित रख ले।

सेवन विधि-५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम औषधि ईषत् उष्ण जल से दिन मे २-३ बार सेवन कराये तो प्लीहावृद्धि के समस्त विकार, प्लीहोदरशूल, मन्दाग्नि मे परमाणु बम की तरह चमत्कारिक एव प्रभावशाली लाभ पहुचाती है। पथ्य मे मकोय पपीता, अगूर, गौमूत्र दे।



---

१२ निर्माण, १३ विधि।

उदर रोग निदान चिकित्सा

द्वितीय भाग एवं अनुभवांक



चिकित्सा खण्ड



उदर्याकला के रोग
DISEASE OF PERITONIUM

उदर्याकला-क्षय कारण एवं चिकित्सा

डा० शिवनारायन मिश्र, आयुर्वेदाचार्य रीडर
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ० प्र०)

परिभाषा-जब 'क्षय रोग' का संक्रमण उदर्याकला एवं कोष्ठ ग्रन्थियों में प्रसरण कर जाता है तो इसे उदर्याकला अथवा 'उदरावरणक्षय' रोग कहते हैं। यह रोग छोटे बालकों एवं नवयुवकों में (दो वर्ष तथा इससे ऊपर के) पाया जाता है।

कारण-इस रोग का प्रधान कारण क्षय जीवाणु (Mycobactetium Tuberculai) होता है। प्रायः फुफ्फुस या फुफ्फुसावरण में से क्षयजीवाणु लसीका वाहिनियों के द्वारा उदर्याकला के पीछे तथा आन्त्रबंधनी ग्रन्थि मीसेन्ट्रिकग्लैण्ड्स में पहुचता है, और वहां से उदर्याकला में प्रसरण कर जाता है। यदि पान किए गये दूध के द्वारा प्रवेश करता है तो आन्त्र में से होकर उदर्याकला में प्रवेश करता है। औरतों में (Fallopian tubes) से भी आ सकता है।

प्राचीनों के अनुसार 'क्षय रोग' के निम्न कारण प्रतिपादित किए गये हैं। आचार्य चरक ने शोष रोग के निदान का उल्लेख करते हुए कहा है कि-

इह खलु चत्वारि शोषस्यायतनानि भवन्ति, तद्यथा-साहसं सन्धारणं क्षयो विषमाशनमिति। -च० नि० ६/३

अर्थात् शोष रोग के यहां पर चार कारण हैं। जैसे-साहस, सन्धारण क्षय और विषम भोजन।

इसका सम्बन्ध कुछ उदर रोगों से भी स्पष्ट दिखायी देता है। अतः उदर रोगों के जो सामान्य कारण हैं, वे भी इसका कारण किसी रूप में अवश्य होते हैं उदर रोगों के कारणों का उल्लेख 'वाग्भट' ने निम्न शब्दों में किया है-

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ।।

-वा० नि० १२/२

अर्थात् शरीर में सम्पूर्ण रोग विशेषतः उदर रोग अग्नि के मन्द होने पर अजीर्ण से, गन्दे अन्न से तथा मल के संचय से उत्पन्न होते हैं।

अन्यत्र गुल्म रोग निदान में आचार्य चरक ने बताया है कि बढ़ा हुआ कफ-कास, श्वास और प्रतिश्याय एवं राजयक्ष्मा को उत्पन्न करता है। यथा-

कास श्वास प्रतिश्यायान् राजयक्ष्माण चाति प्रवृद्ध

-च० नि० ६/११

लक्षण-उदर्याकला क्षय तीन प्रकार का होता है- (१) आर्द्र उदर्याकला क्षय (Ascitic Tuberculous Peritonitis) (२) शुष्क उदर्याकला क्षय (Fibrocaseous adhesive) और (३) सकोष्ठ उदर्याकला क्षय (Loculated type) जो कि उपर्युक्त दोनों का मिश्रित रूप होता है।

१ आर्द्र उदर्याकला क्षय-इसमें रोगी थोड़ी दर्द की शिकायत करता है। आनाहयान्त्रगत लक्षणों का अभाव रहता है। परन्तु जलोदर रहता है। एक नवयुवक में जलोदर सामान्य शोथ के बिना पाया जाये तो वह सामान्यतः क्षयोदर के कारण ही होता है। यदि यह रोग उग्र रूप में हो, तो ज्वर लगातार बना रहता है, अन्यथा यदि मृदु रूप में हो तो ज्वर सायंकाल में ही रहता है। इसके अतिरिक्त पाण्डुता कृशता मलबन्ध और अन्नारुचि भी रहती है।

२ शुष्क उदर्याकला क्षय-शुष्क उदर्याकला क्षय आर्द्र उदर्याकला क्षय की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। आर्द्र उदर्याकला क्षय बाद में शुष्क उदर्याकला क्षय में परिवर्तित हो जाता है। इस रोग में उदर्याकला पर गाढ़ा चिपचिपा स्राव निकल कर स्थान-स्थान पर जम जाता है जिसके स्नायु तन्तु में परिवर्तित होने पर उदर्याकला एवं आन्त्र परस्पर स्थान-स्थान पर जुड़ जाती है। अतिसार अथवा मलबन्ध भी हो सकता है। दर्द तथा स्पर्शासह्यता मुख्य लक्षण हुआ करता है। स्थान-स्थान पर मोटाई एवं गुथे हुए आटे की तरह के टुकड़े स्पर्श द्वारा प्रतीत होते हैं।

३ सकोष्ठ उदर्याकला क्षय–इसमे जगह-जगह पर द्रव की थैलिया बन जाती है। जो किसी स्थान पर स्राव के चारो ओर स्नायु तन्तु के घिर जाने से बन जाती हैं। इसमे क्षय रोग जैसा ज्वर रहा करता है। कभी-कभी ज्वर निरन्तर बने रहने से, मलबन्ध तथा भूख नष्ट हो जाने से इसका सन्देह आन्त्रिक ज्वर से हो सकता है।

उपरोक्त लक्षणो के अतिरिक्त क्षय रोग के अन्य लक्षण भी उपस्थित रहते है। जैसे-कृशता, जवर, क्षुधानाश और पाण्डुता आदि। रोग का प्रारम्भ धीरे-धीरे होता है, यहा तक कि कई महीनो तक चलता रहता है। उदर कुछ वढा हुआ दिखाई देता है।

निदान–इसमे माण्टू टैस्ट पाजीटिव पाया जाता है। जीर्ण रोगियो मे एक्सरेज द्वारा यक्ष्मापुज का चूर्णी-भवन दिखायी पडता है। यदि उदर्याकला मे एकत्रित जल की परीक्षा की जाय तो उसका आपेक्षिक भार १०१५ या अधिक होता है, अल्ब्युमिन ४ प्रतिशत मात्रा मे होता है। इसमे लिम्फोसायट्स भी अधिक पाया जाता है।

चिकित्सा–आर्द्र उदर्याकला क्षय, शुष्क उदर्याकला क्षय की अपेक्षा अधिक सुखसाध्य होता है। रोगी को लगभग तीन मास तक विश्राम, चिकित्सा मे रखते हुए पौष्टिक आहार देना चाहिए। इसके अतिरिक्त विशिष्ट एण्टीवायोटिक तथा कीमोथिरैपी प्रारम्भ कर देनी चाहिए। यदि लैक्टील्स मे रुकावट के साथ-साथ मल मे अधिक फैट जा रहा हो तो आहार मे फैट की मात्रा कम कर देनी चाहिए। इसके साथ ही अन्य लाक्षणिक चिकित्सा आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। जल निकालने एव शल्यकर्म की आवश्यकता आजकल बहुत ही कम पडती है।

प्रतिरोधक चिकित्सा के तौर पर बी०सी०जी० का टीका लगवा देना चाहिए तथा दूध को उबालकर पीना चाहिए।

विशिष्ट एण्टीवायोटिक तथा कीमोथिरैपी–क्षय रोग के लिए विशिष्ट एण्टीवायोक्सि स्ट्रेप्टोमायसिन है। उदर्याकला क्षय मे इसकी मात्रा एक युवक के लिए एक ग्राम प्रतिदिन, मास मे सूचीवेध द्वारा दी जाती है। इसके साथ ही आइसोनिआजिड २०० से ३०० मिलीग्राम की मात्रा मे करीब १।। मास तक दोनो औषधियो को देना चाहिए। इसके पश्चात् रोगी को केवल आइसोनियाजिड और पास की १२ ग्राम की दैनिक मात्रा पर रखना चाहिए। इस प्रकार कुल ६ माह मे रोगी को पर्याप्त लाभ हो जाता है। इसके साथ-साथ जीवनीय B का भी प्रयोग करना चाहिये।

आयुर्वेदीय चिकित्सा–इस रोग की चिकित्सा राजयक्ष्मा के समान ही करनी चाहिए। रोगी का बल एव दोषो की अधिकता का विचार करते हुए यदि आवश्यक एव समुचित प्रतीत हो रहा हो तो स्नेहन एव स्वेदन के पश्चात् स्नेहयुक्त मृदु विरेचन देना चाहिए। परन्तु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि रोगी का बल बिडबल पर ही निर्भर करता है।

योग-(१) स्वर्ण बसन्तमालती १ र०, प्रवालभस्म २ र०, सत् गिलोय ४ र०, सितोपलादि चूर्ण २ मा०।

इस मिश्रण की एक मात्रा शहद से दिन मे तीन बार। या

यदि जलोदर भी हो तो-वारिशोषण रस १/२ र०, पुनर्नवा मण्डूर २ र०, विजय पर्पटी १ र०, हिरण्यगर्भ पोटली १ र०, पिप्पली चूर्ण ४ र०।

इस मिश्रण की दो मात्रा दिन मे तीन बार मधु एव पुनर्नवा स्वरस के साथ दे।

(२) च्यवनप्राश अवलेह १ तो० अथवा द्राक्षावलेह १ तो० दिन मे दो बार दूध के साथ।

(३) यदि अग्नि ठीक हो तो-अमृतप्राश घृत, क्षागलाद्य घृत और क्षीरबला घृत, इनमे से कोई भी १ तो० की मात्रा मे दिन मे दो बार मिश्री एव दुग्ध के साथ दे।



उदर्याकला-शोथ कारण एवं लक्षण

वैद्य (डा०) अशोककुमार गोयल, बी०ए०एम०एस० (आयुर्वेदाचार्य)
मु० पो०-जलेसर (एटा)

उदर्याकला-शोथ एक व्यापक रूप मे मिलने वाला रोग है। सामान्य चिकित्सक को भी इस रोग के रोगी प्राय देखने को मिलते ही रहते है। लोक व्यवहार मे इसको उदर्याकला शोथ, पर्युदर्या शोथ, पर्यावरण शोथ, उदरावृत्ति शोथ, उदरावरण शोथ तथा पेरिटोनाइटिस आदि नामो से जाना जाता है। उदर्याकला मे किसी भी कारण से शोथ का उत्पन्न हो जाना ही उदर्याकला शोथ है।

उदर्याकला-शोथ की आयुर्वेदीय पृष्ठभूमि

आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे-उदर्याकला-शोथ का पृथकत वर्णन नहीं मिलता है। आयुर्वेद वागमय की बृहद्त्रयी तथा लघुतयी को यदि देखा जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रकारो ने उदर्याकला-शोथ का वर्णन पृथक् से न करके उसका वर्णन उदर रोग प्रकरण मे उदर रोगो मे ही इसको सन्निहित मानकर उदर रोगो के रूप मे ही किया है। जहा शास्त्रकारो ने आठ प्रकार के उदर रोगो का वर्णन किया है, वहा उनको पढते समय एक बात स्पष्टत देखने को मिलती है कि-छिद्रोदर, यकृदाल्युदर बद्धोदर तथा जलोदर रोगो मे तो रोग को विशिष्ट आशय या गुहा मे स्थित होना बताया है जबकि वातिक पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सन्निपातिक उदर रोगो मे कोई आशय विशेष या उदरगुहा के किसी अग विशेष मे विकृति होना नहीं लिखा है। बल्कि इन दोषो से उत्पन्न होने वाले उदर रोगो मे-विशेषत दोष प्रकोपक कारण, अजीर्ण, आनाह, विबन्ध, पञ्चकर्म का अयुक्तिक प्रयोग, अन्न का विकृत पाक तथा पोषणभाव, सदृश सामान्य कारणो का उल्लेख मिलता है। लक्षणो का वर्णन भी किसी स्थान विशेष की विकृति को स्पष्ट नहीं करता है। दोषज उदर रोगो का वर्णन करते हुए प्रमुख लक्षण शोथ, उदर पर सिराओ का उभरना, वेदना, विवर्णता (कोथ Gangren का सूचक), गुरुता, मलसग, मशकवत शब्द, शुष्क मास (Adhesive) आदि बताये गये है। यह सब लक्षण भी एक देशीय अथवा विस्तृत उदर्याकला शोथ के लक्षणो से मिलते है।

यहा यह शका का विषय हो सकता है कि यदि प्राचीन आचार्यों को उदर्याकला-शोथ का ज्ञान था तो उन्होने उसका पृथक् से वर्णन क्यो नहीं किया? इसका अर्थ है कि उनको इसका ज्ञान नहीं था। लेकिन मेरी समझ मे ऐसी बात नहीं है। प्राचीन आचार्यों को 'उदर' मे शोथ (पैरीटोनाइटिस) होने का पूरा ज्ञान था। जैसा कि आचार्य चक्रपाणि जी ने लिखा है-

"शोथ भेदत्वादुदरस्य शोथ-
चिकित्सान्तरमुदरचिकित्सतमुच्यते"।

-चक्रपाणि

अर्थात् चक्रपाणि जी के अनुसार 'उदर शोथ का ही एक भेद है। अत शोथ रोग के वर्णन के उपरान्त 'उदर' रोग का वर्णन किया गया है। आचार्य चरक के अनुसार भी 'उदर' वह विकार है जिससे कुक्षि स्थित वायु उदर मे शोथ उत्पन्न कर देती है-

यस्यवात प्रकुपित कुक्षिमाश्रित्यतिष्ठति ।
शोथ सजनयेत्कुक्षाबुदर तस्यजायते ।।

-च० सू० १८

अत स्वाभाविक है कि वायु की प्रधानता जहा होगी वहा रुजा अवश्य ही होगी। यही कारण है कि प्राय सभी उदर रोगो मे दोष भेदानुसार अल्पाधिक पीडा अवश्य होती है। वर्तमान मे भी क्षयज उदर्याकला शोथ मे पीडा कम पायी जाती है जबकि किसी भी एक्यूट पैरीटोनायटिस के रोगी को पीडा से तडफडाते हुए देखा जा सकता है। चूकि शोथ से उदर मे उत्सेध होता है अत आचार्यों ने यकृदाल्युदर जैसे रोगो मे जिनमे कि 'उदर' मे शोथ कभी-कभी ही पाया जाता है, सामान्य अर्थो मे उदर मे उत्सेध करने वाला मानकर जलोदर आदि का वर्णन उदर रोगो के नाम से एक ग्रुप विशेष बना करके किया है। जैसा कि श्री श्रीकण्ठ जी ने-"उत्सेध साधर्म्यात् उदर निदानम्" कह कर इस भवना को और भी स्पष्ट कर दिया है।

अत प्राचीन शास्त्रो मे वर्णित वातोदर से एक्यूट पैरीटोनाइटिस पित्तोदर से सुपरेटिव पैरीटोनाइटिस, कफोदर से ट्यूबर क्यूलर पैरीटोनाइटिस तथा सन्निपातोदर से कैन्सरस पैरीटोनाइटिस का अभिप्राय ग्रहण कर आगे लेख मे इनका यथा स्थान वर्णन करेगे। उदर्याकला शोथ के ज्ञान की उपरोक्त प्राचीनतम् पृष्ठभूमि होते हुए भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इस विषय मे आधुनिक शल्य शास्त्रियो का ज्ञान बहुत बडा-चढा है। आयुर्वेद आयु का शास्त्र है इसमे-"कामये दुखतप्तानाम् प्राणिनामर्तिनाशनम्" की भावना का सर्वथा प्रावल्य है। अत प्राचीन व अर्वाचीन चिकित्सा ग्रन्थो मे जो भी कुछ इस विषय मे उपलब्ध है उसको मानव के कल्याण हेतु हमको निसकोच भाव से स्वीकार कर प्रयोग मे लाना चाहिए।

अति सक्षेप मे उदर्याकला के विषय मे

उदरगुहा के किसी भी अग मे सक्रमण होने पर 'उदर' मे उत्सेध (Pentonium Inflamation) इतना शीघ्र क्यो हो जाता है इस बात को जानने के लिये सर्वप्रथम उदर्याकला की स्थिति के विषय मे अति सक्षेप मे जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। सम्पूर्ण उदरगुहा को उदर्याकला (Pentonium) नामक सीरीयकला (Serous Membrane) चारो ओर से आच्छादित किये रहती है। यह कला सामने, पार्श्व मे तथा पीछे की ओर उदर की दीवरो के भीतरी तल पर छाई रहती है। और वहा से महाप्रांचीरापेशी (डायफ्राम) के अधोपृष्ठ को और नीचे की ओर श्रोणिगुहा को आच्छादित करती हुई गुहा के पश्चिम पृष्ठ पर पहुचकर वहा से फिर सामने आकर प्रत्येक अग को आच्छादित करती है। इस प्रकार से उदर्याकला औदरिक अगो के प्रत्येक पृष्ठ को ढके हुए है। केवल गुर्दो का पिछला तल, मूत्राशय के ऊर्ध्वपृष्ठ का सामने का भाग, यकृत् का ऊर्ध्वगामी तथा बडी आत का पिछला पृष्ठ उदर्याकला से आच्छादित नहीं होते हैं। जबकि अग्न्याशय केवल सामने की ओर से ही उदर्याकला से ढका होता है। इस कला का निचला स्तर अन्तार्कला कोशिकाओ (Endothelial cell) से निर्मित होता है। इस स्तर मे जीवाणुनाशन की विशेष क्षमता होती है। उदर्याकला आशयो के बाह्य पृष्ठो को चिकना रखती है जिससे कि वह आपस मे जुडने न पाये। यह कला विषो व जीवाणुओ का नाश करने मे विशेष सहायक होती है। आत्रबधनी (Mesentery) वपा (Omentum) लघुकोष व बृहत्कोष (Lesser and greater sac) यह सब उदर्याकला के ही अग है ओर स्थान विशेष पर इनके यह विभिन्न नाम हो जाते है। उदर्याकला औदरिक अगो को किस प्रकार से आवृत किये रहती है। उसको चित्र न० १ की सहायता से भली प्रकार से समझा जा सकता है।

उदर्याकला-शोथ के कारण व वैकारिकी

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि औदरिक अगो की विकृति मे उदर्याकला शीघ्र ही क्यो शोथयुक्त हो जाती है। 'उदर' रोग का कारण बताते हुए आर्ष ग्रन्थो मे लिखा है कि-

रोगा सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मल सचयात्।।

-वा० नि० १०

अर्थात् शरीर मे सम्पूर्ण रोग विशेषत 'उदर' रोग अग्नि के मन्द होने पर, अजीर्ण से, गन्दे अन्न से तथा मल के सचय से उत्पन्न होते है। आचार्य चरक ने भी मन्दाग्नि से समग्त दोषो का कुपित होना स्वीकार किया है तन्त्रान्तर मे भी

उदरगुहा मे अगो की स्थिति तथा उदर्याकला की विस्तृति

(१) यकृत् का अनाच्छादित क्षेत्र।
(२) बृहत् कोष
(३) लघु कोष
(४) बृहदन्त्रकला और लघु आन्त्रकला के बीच का अवकाश।
(५) व (६) लघु आन्त्रकला के नीचे का स्थान जो डगलसगुहा से मिला हुआ है।
(७) आमाशय। (८) अनुप्रस्थ बडी आत।
(९) छोटी आत।
(१०) मूत्राशय जिस पर कि आमाशय से नीचे की ओर लटकता हुआ और फिर बडी आत पर लौटकर जाता हुआ वपा है।
(११) गर्भाशय। (१२) मलाशय।

'उदर' रोगो के तीन विशेष कारण बताये है-(१) मन्दाग्नि (२) दोषो (मलो) का सचयाधिक्य (३) पापकर्म इस प्रकार दोषज उदर्याकला शोथ का कारण मन्दाग्नि आदि तथा आगन्तुज या अभिघातज उदर्याकला शोथ का कारण स्पष्टत पापकर्म, व्यभिचार लडाई झगडा आदि बुरे कर्म है।

वस्तुत उदर्याकला-शोथ या 'उदर' रोगो का अग्निमाद्य से सीधा सम्बन्ध है (अहिताशनस्य सशुष्क पूतान्न निषेवणञ्जच-सु० नि०) पञ्चकर्म का असम्यक् प्रयोग ("कर्मविभ्रमात्''-चरक, -"वमनादि नामसम्यक् करणात्''-चक्रपाणि) ग्रहणी आदि कृशता लाने वाली व्याधिया (प्लीहार्शो ग्रहणी रोग कर्षणात्-च० चि० १३) वेग विधारण तथा मल सचय (कोष्ठ बद्धता) के कारण दोष प्रकोप (अति सचित दोषाणाम्-चरक) से उदर्याकला शोथ का सीधा सम्बन्ध है। अति दुखदायी होने के कारण इसी रोग को पूर्वकर्मों का फल भी माना जाता है।

वास्तव मे उपरोक्त सभी कारण मुख्य रूप से स्रोतोरोध करते है जिससे उदर्याकला मे शोथ की उत्पत्ति सम्भव होती है। आर्ष विद्वानो की सूक्ष्मग्राही बुद्धि की उस समय प्रशसा करनी पडती है जब हम देखते है कि आधुनिक विद्वान् भी उदर्याकला शोथ के लगभग यही कारण बताते है। आधुनिको के अनुसार-दोष (विष पदार्थ) तथा जीवाणुओ (Infection) का पैरीटोनियम मे पहुचना ही उसके शोथ का प्रधान कारण है। यह सक्रमण आमाशयिक व्रण का फटना, उण्डुक अपैण्डिक्स की विद्रधि का फटना, अग्न्याशय का तीव्र शोथ उदर पर आघात या शल्यकर्म, गर्भपात, आत्र ज्वर मे व्रण का फटना सदृश कारणो से उदर्याकला मे पहुचकर शोथ पैदा कर सकते है। इसके अतिरिक्त आत्र मे गाठ पड जाना (Volvulus) आत का आत के भीतर प्रविष्ट हो जाना (Intussuception), स्ट्रेप्टोकोकस, स्टैफिलो कोकस, न्यूमोकोकस सदृश जीवाणुओ के कारण तथा मलबद्धता से उत्पन्न दोषमयता सैप्टीसीमिया तथा टाक्सीमिया हो जाने पर भी उदर्याकला मे उपसर्ग हो जाता है। स्त्रियो मे गोनोमेह होने पर सक्रमण का प्रसार जननमार्ग से भी सम्भव है। जब सक्रमण जीर्ण स्वरूप का होता है तो शोथ भी जीर्ण प्रकार की होती है। यह शोथ प्राय यक्ष्माजन्य या कैसरजन्य पायी जाती है। रक्त सवहन के द्वारा दूरस्थ अगो से भी सक्रमण उदर्याकला मे आकर शोथ उत्पन्न करता हुआ देखा गया है।

उदर्याकला मे शोथ होने पर क्या विकृति होती है या रोग सम्प्राप्ति क्या है, इस विषय मे तो प्राचीन व अर्वाचीन दोनो विद्वानो के विचार बिल्कुल एक जैसे है। जिनसे पुन उस बात को बल मिलता है कि प्राचीनो को भी उदर्याकला शोथ के विषय मे पर्याप्त ज्ञान था। इस विषय मे आचार्य चरक ने लिखा है कि-

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषा स्रोतासि सचिता ।
प्राणाग्न्यपानान् सदूष्य जनयन्त्युदरम् नृणाम् ।।

-च० चि० १३

अर्थात् सचित हुए दोष स्वेदवाही तथा जलवाही स्रोतो मे अवरोध उत्पन्न करके प्राणवायु, अपानवायु तथा जठराग्नि को विकृत करके 'उदर' रोग को उत्पन्न करते है। अर्थात् विभिन्न कारणो से उपचित वातादि दोष जब कोष्ठगत होते है तो प्रथम अन्नादि के आदानकर्मा प्राणवायु, पाचनकर्मा अग्नि एव मलविसर्जनकर्मा अपान वायु को दूषित करके आहार के ग्रहण पाचन और मल के उचित विसर्ग मे विकृति उत्पन्न कर ग्रहणी, अर्श, गुल्म आदि अल्पशक्ति वाले रोगो को उत्पन्न करते है। तथा कालान्तर मे लब्धबल होकर अथवा आदि से ही प्रबल होने पर बहुलिगी व कष्टसाध्य उदर विकारो को उत्पन्न करते है। जिन्हे सम्पूर्ण उदर मे व्याप्त होने से उदर रोग कहा जाता है एव हेतु व लक्षणो के अनुसार वातोदर पित्तोदर आदि विभिन्न सज्ञाओ से सम्बोधित किया जाता है। जिनको कि उदर्याकला शोथ के भेद विशेष ही समझना चाहिए। आचार्य सुश्रुत के अनुसार भी-"अनिल-बेगनुन्न ''अर्थात् विशेषत लघु स्रोतो मे आकर उनके मार्गों को अवरूद्ध कर देता है तो "उदर'' रोग होता है। यह प्रक्रिया शास्त्रानुसार निम्न प्रकार सम्पन्न होती है-

उदर के विशेषत त्वक् और मास स्थित (त्वड्मास-सधिगा -वा०) सभी स्वेदवह और अम्बुवह स्रोतो (अम्बुवहे द्वे-सु० शा०, अर्थात् थोरेकिक डक्ट तथा राइट लिम्फैटिक डक्ट) मे शनै -शनै अवरोध उत्पन्न हो जाता है। इससे "उदर'' रोग की उत्पत्ति उसी तरह होती है जिस प्रकार कि मिट्टी के बर्तन मे रखा हुआ घृत पात्र के छोटे-छोटे छिद्रो द्वारा बाहर निकल आता है (उपस्नेहात्-सु०, नवघटादुपस्नेहो यथाऽणुत्तम् स्रोतोभि बहिस्रवन दृश्यते-डल्हण) इस प्रकार स्रोतोरोध के परिणामस्वरूप परिणित आहार (अन्नसार -सु०

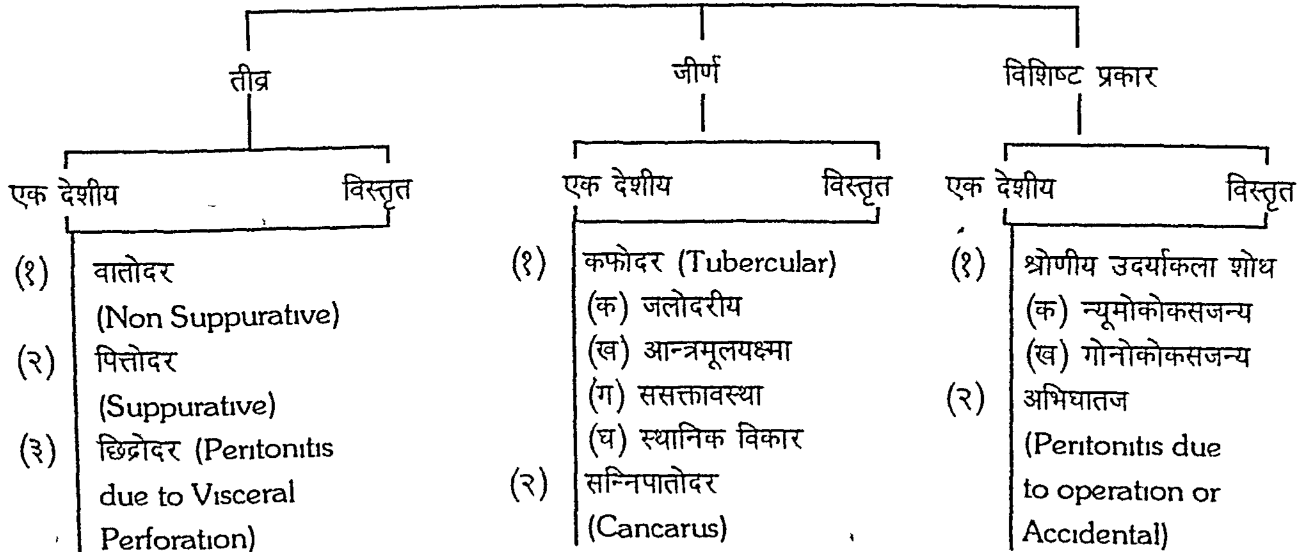
अन्नरस -डल्हण) कोष्ठ की दीवारो से निकल कर "उदर" की दीवारो, मास व त्वचा मे एकत्रित होकर सम्पूर्ण उदरत्वचा को शनै -शनै उन्नत कर देता है। (त्वच समुन्नम्य शनै समन्तात-सु०) चाहे उदर रोग का कोई सा भी भेद क्यो न हो सभी मे इस क्रिया के (Transudation) तीव्र होने पर या उदर रोगो की अन्तिमावस्था मे उदर्याकला के स्तरो मे तरल सचित हो जाता है जो कि जलोदर कहलाता है। (अन्ते सलिल भावम् हि भजन्त उदराणि तु-चरक, अन्ते सलिल सम्भव -वाग्भट)।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्रियो द्वारा पैरीटोनाइटिस की विकृति का वर्णन उपरोक्त शास्त्रीय उल्लेख का एक प्रकार से अनुमोदन ही है। आधुनिको के अनुसार-सशमन द्वारा आक्रान्त होने पर उदर्याकला मे शोथ उत्पन्न हो जाता है। वह मोटी हो जाती है तथा उसकी चमक व स्निग्धता नष्ट हो जाती है। उसके आक्रान्त पृष्ठ से स्राव बनने लगता है जो कि उदरगुहा मे एकत्र होता रहता है। इस स्राव मे फाइब्रिन अधिक होती है जिससे आन्त्र के गुच्छे आपस मे चिपक जाते है (शुष्कमास)। यह स्राव पहले सीरम होता है आगे चलकर पूययुक्त हो जाता है अन्त मे पूय बनने लगती है। जीवाणुओ से विष उत्पन्न होकर सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त हो जाते है और रोगी की दशा शीघ्र ही चिन्ताजनक हो जाती है। रोगी की दशा मे सक्रमण के तीव्र या जीर्ण होने के अनुसार व्यापक अन्तर पाये जाते है। शोथ उत्पन्न होने पर शरीर की रक्षक शक्तिया शीघ्र ही अपना दायित्व निभाती है। उदर्याकला या वपा (मीजेन्ट्री) आक्रान्त भाग को चारो ओर से घेर कर रोग को एक देशीय (Localised) करने का प्रयत्न करती है। वपा या उदर्याकला अन्य अगो से जुडकर सक्रमण को सम्पूर्ण गुहा मे नही फैलने देती है। किन्तु यह स्थिति रोगी की शारीरिक दशा तथा सक्रमण की प्रबलता पर निर्भर होती है।

शोथ के कारण जो विषाक्त स्राव बनता है उसकी विषाक्तता से अगघात होकर आन्त्रगति बन्द हो जाती है। यह प्रकृति द्वारा हमारी रक्षा का दूसरा उपाय है। क्योकि आन्त्र गति के रुक जाने के कारण उदर्याकला को दूसरे अगो से मिलकर जोड बनाने मे सहायता मिलती है। किन्तु इससे आतो मे मल रुक जाता है और सडने लगता है। जिससे आन्त्र भित्तियो का प्रसार होकर रक्त मे विषो का सचार होने लगता है, यह घातक दशा है। जब सक्रमण प्रबल नही होता है तो उससे जीर्ण प्रकार का शोथ होता है। इसमे जोड अधिक बनते है। यह रूप प्राय क्षय या कैसरजन्य होता है। जोडो के बीच मे स्राव जो केवल सीरमयुक्त होता है, एकत्र होकर आवेष्ठित जलोदर (Encysted ascites) को भी उत्पन्न कर सकता है।

उदर्याकला-शोथ के प्रकार

इस प्रकार रोग का उपरोक्त सम्प्राप्ति के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि दोषो, जीवाणुओ व परिस्थितियो के अनुसार उदर्याकला-शोथ कई प्रकार की होती है। जिसको कि निम्न कोष्ठक को देखकर भी प्रकार समझा जा सकता है-



इस प्रकार उपरोक्त चार्ट से स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी प्रकार की उदर्याकला-शोथ एक देशीय भी हो सकती है और विस्तृत भी हो सकती है। तथा एक ही कारण से उत्पन्न हुई शोथ तीव भी हो सकती या जीर्ण भी हो सकती है। या विशिष्ट प्रकार की शोथ मे भी परिणित हो सकती है। अथवा अन्तिमावस्था मे जलोदर मे परिणित होकर असाध्य भी हो सकती है।

उदर्याकला-शोथ के सामान्य लक्षण व पूर्वरूप

शास्त्रो मे "उदर" रोगो के सामान्य लक्षण व पूर्वरूपो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि-

(क) मन्दाग्नि से सम्बन्धित विकार-जैसे भूख न लगना, अन्न का देर से जीर्ण होना, पाक होने पर विदाह होना तथा जीर्ण है या अजीर्ण यह न जान पाना ("जीर्णाजीर्ण न वेत्ति च"-चरक) आदि होते है।

(ख) थोडे से परिश्रम से सास का फूल जाना (अल्पेऽपि व्यायामो श्वासमिच्छति-चरक)।

(ग) थोडा आहार करने पर भी पेट का फूलना (आतन्यते च जठरमपिलघ्वन्न भोजनात्-चरक)।

(घ) बस्ति से सम्बन्धित उदर भाग मे वेदना तथा आध्मान होना (बस्तिसन्धौरुजागाध्मानम्-चरक)।

(ङ) शिराओ के दबने के कारण पैरो पर शोथ होना (शोफश्चपादयो -चरक)।

(च) पेट पर सलवटो का नष्ट होना व शिराओ का उभर आना (राजीजन्य वलीनाश इति लिगम् भविष्यताम्-चरक, राजी व्यक्तता सिरा -चक्रपाणि) आदि पूर्वरूप होते है। इसके अलावा चरक चिकित्सा मे लक्षण बताते हुए आचार्य लिखते है कि-

"कुक्षराध्मानमाटोप शोफ पादकरस्य च।
मन्देऽग्नि श्लक्षणगण्डत्वम् कार्श्यचोदर लक्षणम्।।

-(च० चि०)

अर्थात् अन्न का विस्तृत पाक व मलावरोध होने से आध्मान, समस्त उदर तना हुआ, रक्तावरोध के कारण हाथ-पैरो पर सूजन तथा रक्त की कमी के कारण "उदरी" (उदर्याकलाशोथ वाले) व्यक्ति के कपोल आभा रहित होते है। व्यक्ति कृश होता है तथा तन्द्रा, आलस्य और दाह आदि के लक्षणो से ग्रसित होता है।

आधुनिक मतानुसार भी उदर्याकला शोथ के लक्षण वहुत कुछ प्राचीन वैद्यक मे वर्णित लक्षणो से मेल खाते है। इसके अनुसार उदर्याकला मे तीव्र शोथ का प्रारम्भ प्राय अकस्मात् होता है। रोगी की विशिश्ट आकृति हो जाती है। कपोल श्वेत तथा त्वचा पसीने के कारण ठडी पड जाती है। रोगी पैर मोडकर चित्त लेटता है, रोगी अत्यन्त व्याकुल व कष्टसाध्य प्रतीत होता है। रोगी की मानसिक स्थिति अन्त तक प्राकृत रहती है, पीडा अत्यन्त स्थायी व तीव्र स्वरूप की होती है, आतो मे गति होने से तथा उदर हिलने से पीडा मे वृद्धि होती है। इसलिए रोगी उथले सास (वक्षीय श्वसन Thoracic Respiration) लेता है। उदर प्राचीर लकडी के समान कडा व स्थिर होता है तथा उसको दबाने से पीडा होती है। उदर मे किसी प्रकार का शब्द नहीं होता है। उदर की त्वचा को भी छूने से रोगी को कष्ट होता है (Hyperaesthetic) स्थायी रूप से वमन होता है, नाडी तीव्र तथा कडी होती है। निपात तथा स्तब्धता के कारण ज्वर की अपेक्षा नाडी की गति तीव्र होती है। साधारण जाडा लगकर ज्वर का आरम्भ होता है जो कि प्राय एक समान रहता है। आशय छिद्रण के समय ज्वर प्राकृत से कम हो सकता है। वायु से उदर फूलना, दौर्बल्य, कब्ज तथा भूख का न बनना एव रक्त मे श्वेत कणो की वृद्धि होती है। इस समय हिचकी का प्रारम्भ होना रोग की विशेष गम्भीरता का सूचक है और अन्त मे विषमता के कारण रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

उपरोक्त लक्षणो को उदर्याकला-शोथ के सामान्य लक्षण मानकर वर्णित किया गया है। जबकि वास्तव मे यह लक्षण तीव्र तथा विस्तृत उदर्याकला शोथ के लक्षण है। जब रोगाक्रान्त भाग कम हो या सक्रमण दुर्बल हो और शरीर की जीवन-रक्षक शक्तिया प्रवल हो तो उदर्याकला व्याधि को एक देशीय (Localised) करने मे सफल हो जाती है और यह उपरोक्त लक्षण उस स्थान विशेष पर सीमित हो जाते है तथा सार्वदैहिक लक्षण भी फिर इतनी तीव्रता से प्रगट नही हो पाते। यदि इसी समय उचित चिकित्सा हो जाये तो रोग का वहीं पर शमन हो जाता है। अन्यथा रोग के तीव्र होने पर शल्यकर्म की आवश्यकता हो सकती है अथवा रोगी मृत्यु को प्राप्त हो सकता है। सभी प्रकार की उदर्याकला शोथ मे उपरोक्त के अलावा कुछ विशिष्ट प्रकार के लक्षण हो सकते है। जिनका कि वर्णन पृथक् से उन्ही के नामोल्लेख के साथ करेगे। उपरोक्त लक्षणो को उदर्याकला

शोथ के सामान्य लक्षण ही समझना चाहिए। जो कि सहिता ग्रन्थो मे वर्णित "उदर" रोग के सामान्य लक्षणो से बहुत कुछ मेल खाते है।

उदर्याकला-शोथ का निदान व सापेक्ष निदान

जहा तक रोग के निदान का सवाल है, सो उपरोक्त वर्णित विशिष्ट लक्षणो के आधार पर रोग को पहचान लेना कोई विशेष कठिन नहीं है। यह लक्षण इतने स्पष्ट होते है कि रोग का निदान आसानी से हो जाता है। कुछ विशिष्ट रोगो से सापेक्ष निदान जरूर आवश्यक होता है। वह विभेदक लक्षण निम्न प्रकार से है-

शूल (Colics) तथा तीव्र आन्त्रावरोध (Acute Intestinal obstruction) से सापेक्ष निदान प्राय आवश्यक होता है। शूल रोग मे ज्वर तथा उदर-प्राचीर मे कडापन नही होता है तथा उदर-प्राचीर के दबाने से पीडा मे कमी होती है। आन्त्रमूल (मीजेन्ट्री) मे स्तब्धता नही होती है तथा नाडी प्राकृत रहती है। जबकि आन्त्रावरोध होने पर मल व वायु दोनो का परित्याग नहीं होता है। ज्वर भी प्राय नहीं होता है। उदर मे तीव्र पीडा होना औदरिक कारणो के अतिरिक्त डायफ्रगमेटिक प्लूरिसी, कोरोनरी थ्राम्बोसिस, टेवीस डोरसेलिस तथा वातनाडी-सस्थानो की भी विधिवत् परीक्षा कर लेनी चाहिए। औदरिक महाधमनी (Abdominal Aorta) के फूल जाने (Aneurysm) की सम्भावना का भी ध्यान रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त उण्डुक शोथ मे दक्षिण श्रोणिखात मे मेकवर्नीज पोइन्ट पर विशेष पीडा होती है, अत उससे भी इसका पृथक्करण आसानी से हो जाता है। वैसे उदर्याकलाशोथ की निश्चिति मे-रोगी का आसन, आकृति, उदर-प्राचीर का कडा होना, उदर-प्राचीर के दबाने पर पीडा होना, उदर की त्वचा छूने से रोगी को कष्ट होना, उदरभित्ति का स्थिर व तना होना, उदर का शान्त होना (Silent Abd), वक्षीय श्वसन तथा रक्त-परीक्षा मे श्वेत कणो की वृद्धि, कठिन व तीव्रगामी नाडी आदि लक्षण विशेष महत्व के है। जिन पर स्थिर रहकर रोग का सफलतापूर्वक निदान सम्भव है।

उदर्याकला-शोथ की साध्यासाध्यता तथा प्राज्ञान

उदर्याकला शोथ या सभी प्रकार के उदर रोग स्वभावत शुरूआत से ही कृच्छ्रसाध्य होते है। यथा-

"जन्मनैवोदर सर्व प्राय कृच्छ्न मतम्।" -चरक

फिर भी प्राचीन आचार्यों ने उदर रोगो की साध्या-साध्यता को दो बातो पर आधार मानकर वर्णित किया है-

(१) **दोषानुसार**-त्रिदोषज व छतज को असाध्य बताया गया है तथा वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सन्निपातिक को क्रमश कृच्छ्तर साध्य होना बताया है-

"वातात्पित्तात्कफात्प्लीह सन्निपातात्तथोदकात्।
परस्पर कृच्छ्तरमुदरभिषगादिशेत्।।" -च० चि०

(२) **लक्षणानुसार**-वा० शा० ५ के अनुसार मल-मूत्र का अवरोध होना, शोथ, हिक्का, ज्वर, भ्रम, मूर्च्छा, छर्दि, अतिसार व दुर्बलता से युक्त रोगी एव कुटिलोपस्थ (शोथ से टेढी जननेन्द्रिय) शोथयुक्त नेत्र वाला तथा विरेचन के बाद पुन आध्मान वाला रोगी असाध्य होता है। क्योकि यह लक्षण सभी आत्यायिक (Acute) अवस्था मे ही पाये जाते है।

आधुनिक दृष्ट्या भी उदर्याकला शोथ के रोगी मे यदि उपरोक्त लक्षण दिखायी देने लगे तो वह भी असाध्य ही समझा जाता है। फिर भी सभी प्रकार की तीव्र उदर्याकला शोथ जिसमे कि ज्वर १०० डिग्री फा० तक हो तथा नाडीगति भी १०० बार प्रतिमिनट से ज्यादा न हो तथा उसकी यदि औषधियो द्वारा चिकित्सा सम्भव हो तो वह अल्प कृच्छ्साध्य ही है। इसका यदि एक देशीय प्रकार हो तो भी वह सुसाध्य होता है। यदि शल्यकर्म की आवश्यकता पड जाये तो मृत्युदर मे काफी वृद्धि हो जाती है। जीर्ण प्रकार के उदर्याकला शोथ मे क्षयजन्य अति कृच्छ्र-साध्य तथा कर्कटार्बुदजन्य को असाध्य ही समझना चाहिए। श्रोणीय प्रकार का उदर्याकला शोथ भी बहुत धीरे-धीरे ठीक होता है। साधारणत यदि चिकित्सा हेतु शल्यकर्म की अनिवार्यता न हो, रोगी मे विषाक्तता (Toxaemia)] गेग्रीन, निर्जीवागता, पूयोत्पादन आदि उपद्रव न हो तथा रोग एक देशीय हो, तो उचित चिकित्सा की उपस्थिति मे रोग साध्य है तथा मृत्युदर भी न के बराबर है। यदि उपरोक्त घातक उपद्रव हो तथा साथ मे एडहीजन (ससक्तावस्था) भी हो तथा रोग विस्तृत हो तो शल्यकर्म के भी अच्छे परिणाम नहीं है तथा उस स्थिति मे मृत्युदर भी ४० प्रतिशत से ऊपर ही समझनी चाहिए। फिर भी आधुनिक औषधियो व शल्य प्रक्रिया ने इस रोग के भय से मानव को बहुत कुछ मुक्त कर दिया है।

उदर्याकला शोथ की चिकित्सा

रोगी की चिकित्सा शीघ्रतिशीघ्र प्रारम्भ करनी चाहिए। तीव्र उदर्याकला शोथ के रोगी के लिए तो समय का एक-एक क्षण मूल्यवान् है। यदि रोग को शीघ्र ही सीमित या शमन न किया गया तो रोग के विस्तृत होने पर पछताना पड सकता है। जितनी जल्दी निदान करके चिकित्सा शुरू करदी जाती है, रोगी को रोग से लडने के लिए उतना ही अधिक समय मिल जाता है। सर्वप्रथम चिकित्सक को रोग पहचान लेने के बाद यह निर्णय करना चाहिए कि रोग औषधि साध्य है या शल्यकर्म द्वारा साध्य। यदि रोगी की सामान्य दशा खराब हो, ज्वर तीव्र या बिल्कुल न हो, नाडी की गति १००/मिनट से ज्यादा हो, विभ्रमयता, शोथ, निर्जीवागता तथा पूय उत्पन्न होने के लक्षण पैदा हो गये हो तो बिना देरी किये चिकित्सक को चाहिए कि वह उसे शल्यक्रिया के लिए भेज दे। इस निर्णय के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय चिह्न नाडीगति का तीव्र होना है। यदि नाडी की गति १००/मिनट से अधिक हो तथा रोगी की सामान्य दशा ठीक न हो तो यह स्थिति शल्यकर्म की अनिवार्यता की सूचक है। अत हम यहा चिकित्सा का वर्णन तीन भागो मे बाटकर करेगे-प्रथम आयुर्वेद उपचार तथा अन्त मे शल्य चिकित्सा का सक्षिप्त वर्णन करेगे।

उदर्याकला शोथ की आयुर्वेदीय चिकित्सा

आयुर्वेद मत मे "उदर'' शोथ (या रोग) अग्नि की मन्दता व दोषो की वृद्धि के कारण होती है, अत उसकी चिकित्सा भी शोधन प्रधान तथा अग्नि को बढाने वाले सिद्धान्तो पर आधारित है। "उदर'' रोग मे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, तथा सन्निपातोदर को औषधि साध्य तथा छिद्रोदर को शल्यकर्म साध्य आचार्यो ने बताया है। शल्यकर्म साध्य उदर रोग का निर्णय करना दोष प्रकोप की विविधता के कारण सदा कठिन होता है। ऐसा कोई "स्वर्णसूत्र'' नहीं है जिसके आधार पर यह निर्णय किया जा सके कि यह रोगी शल्य साध्य है।

"There is no rule of thumb by which a "Surgical Abdomen" may be distinguished from a non surgical one " -Illingworth

चरक ने भी उदर रोगो को "रोगसघ'' बताया है तथा वाग्भट के मतानुसार यह दोष सघतज हैं। (सर्वमेदोदर प्रायो दोष सगतज मतम्-अ० हृ० चि० १५) सुश्रुत के अनुसार भी औषधि साध्य "उदर'' रोगो मे वातानुलोमन (उदररेषु प्रशसन्ति बहुशस्त्वनुलोमनम्-सु० चि०) और चरक के मत मे विरेचन द्रव्यो का प्रयोग मुख्य रूप से होता है (सम्भवत्युदरम् तस्मान्नित्यमेव विरेचयेत्-च० चि०)। रोगी के दोष, बल आदि का निर्णय कर दोषनिर्हरण के लिए अनुवासन, विरेचनार्थ माहिषमूत्र, या क्षीरयुक्त एरण्ड स्नेह का नित्य पान १-२ माह तक कराना चाहिए। पिप्पली कल्प कराना अथवा केवल उष्ट्रीक्षीर का प्रयोग कराना चाहिए। (केवल कारभ पय च० चि०) पानादि के लिए मूत्राष्टक का उपयोग श्रेष्ठ होता है। (मूत्राण्यष्टबुदरिणा सेके पाने च योजयेत्-च०) वातिक व कफज उदर रोगो मे चरक ने तक्र को अमृत के समान लाभकारी बताया है। (तक्र वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्पयेत-च० चि०) उदर मे विकार वाले व्यक्ति के लिए अन्न और जल का अधिक उपयोग हानिकर होता है। आध्मान आदि के लिए फलवर्तियो का प्रयोग उत्तम होता है। साधारणत वातोदर मे स्वेदन के बाद स्निग्ध विरेचन, पित्तोदर मे क्षीर, बस्ति और कफोदर मे गोमूत्र, क्षार आदि के द्वारा चिकित्सा की जाती है और सोपद्रव उदर रोग प्रत्यारन्येय होता है। उपरोक्त वर्णन आयुर्वेदीय चिकित्सा के सामान्य सूत्रो के आधार पर है। अब प्रत्येक प्रकार की उदर्याकला शोथ की चिकित्सा का वर्णन नामोल्लेख करके करेगे।

वातोदर (Non Suppurative Peritonitis) की चिकित्सा

रोगी की शमन प्रधान शल्य-चिकित्सा की जाती है। निरुद्ध बस्तियो व अनुवासन बस्तियो या एरण्ड तैल से शोधन करते हुए उसे आर्द्रक स्वरस से मिश्रित दूध या पिप्पली से पकाये दूध पर रखना चाहिए। दशमूल कषाय के साथ गौमूत्र देना भी विशेष लाभकारी है। त्रिफला चूर्ण को गोमूत्र से भी दिया जा सकता है। रोगी को भोजन मे दालो के यूष के साथ चावल का भात देना चाहिए। ऐसे ही एक रोगी की सफल चिकित्सा व्यवस्था निम्न प्रकार से की गयी-

(१) प्रतिदिन रात को २५ मिली० एरण्ड तैल दूध के साथ सोते वक्त।

(२) कुष्ठादि चूर्ण (भा० प्र०) या सामुद्रादि चूर्ण (भै० र०) मे से कोई एक ३-३ माशे गर्म जल के साथ।

(३) भोजन से पूर्व प्रथम ग्रास मे घृत के साथ हिंग्वाष्टक चूर्ण ३-३ माशे।

(४) भोजनोपरान्त पिप्पल्यासव २-२ तोला समान जल से दिया जाय।

यह रोगी १५-२० दिन मे लगभग ठीक हो गया भोजन मे उसे खिचडी तथा तक्र व दूध दिया गया था।

नोट-यहा पर जो उदर्याकला शोथ की आयुर्वेदिक चिकित्सा का वर्णन कर रहे है वह सकलित कर जो आवश्यक मानते है उसे लिख रहे है। विस्तृत क्रियाकर्म व चिकित्सा के लिए पाठको को तत्सम्बन्धी विस्तृत ग्रन्थो का अध्ययन करना चाहिए।

पित्तोदर (Suppurative Peritonitis) की आयु० चिकित्सा

पित्तोदर रोग मे पहले स्नेह बस्ति देकर फिर दूध युक्त बस्ति देकर शोधन करना चाहिए। इसके बाद यदि रोगी निर्बल न हो तो त्रिवृत्त चूर्ण के साथ या आरग्वध या मुनक्के, गुलाब आदि डालकर पकाये दूध के द्वारा उसे विरेचन देना चाहिए या दूध मे एरण्ड तैल डालकर दे। तथा द्राक्षा, पृश्निपर्णी, वला, शतावरी, लाक्षा क्वाथ मिश्रित दूध दे। ठहर-ठहर कर बस्ति द्वारा तथा मृदु विरेयन द्वारा शोधन करना चाहिए। न्यग्रोदाधि वर्ग के वट पीपल आदि के कषाय मे थोडा सा नमक, मधु व घृत मिलाकर उसकी बस्ति देनी चाहिए। पेट पर घृत से बनायी पुल्टिस बाधनी चाहिए तथा पटोल, त्रिफला, कुटकी, इन्द्रायण जड के क्वाथ मे शिलाजीत मिलाकर दे। पित्तोदर के रोगी की निम्न चिकित्सा व्यवस्था भी की जा सकती है-

(१) गोदन्ती भस्म ४ रत्ती, शख भस्म ४ रत्ती, पुनर्नवादि माण्डूर १ माशा।

-१ × ३ मधु से देकर ऊपर से पटोलादि कषाय दे।

(२) शूल की अधिकता मे-(प्रबाल पचामृत १ र० + कहरवा पिष्टी १ र०)-१×२ दिन मे २ बार मधु से।

(३) शर्करा, लाजा, मुलहठी, अनन्तमूल को दूध मे पीसकर लेप करे। -(भै० र० पै० वि० चि०)

(४) त्रिफला गुग्गुल १-१ माशा प्रात -साय दूध के साथ।

(५) हृदय की रक्षा के लिए अकीक पिष्टी, ताम्र भस्म तथा स्रावो को सुखाने के लिए यशद या त्रिवग भस्म का समयानुसार प्रयोग करे। तथा रोगी की पथ्य-व्यवस्था मे दूध, घृत व चावल के भात का प्राधान्य रखे।

कफोदर (Tubercular Peritonitis) की आयु० चिकित्सा

रोग मे पचकोल मिश्रित घृत द्वारा आभ्यन्तर तथा तैल द्वारा बाह्य स्नेहन करवाकर रोगी को स्वेदन कराना चाहिए। तथा पेट पर अलसी, मूली के बीज आदि से बनी स्निग्ध पुल्टिस बाधनी चाहिए। त्रिफला व त्रिवृत्त चूर्ण द्वारा उसे विरेचन कराना चाहिए। विरेचन न दिया जा सकता हो तो त्रिफला कषाय मे लवण, गोमूत्र तथा तैल डालकर उसकी बस्ति देनी चाहिए तथा अनुवासन बस्ति का भी प्रयोग करना चाहिए। रोगी को त्रिकुट चूर्ण या पिप्पली चूर्ण के साथ दूध देना चाहिए। त्रिकुट मिश्रित कुल्थी का रस या गोमूत्रयुक्त दूध अथवा वैसे ही गोमूत्र का पान कराना चाहिए। भैषज्य रत्नावलीकार के अनुसार "विरेचन बस्ति के द्वारा शोधन के बाद त्रिकुट चूर्ण कुल्थी का क्वाथ व दूध मे भोजन पकाना चाहिए तथा गोमूत्र द्वारा सिद्ध किये गये योग जैसे मण्डुरादिक, अरिष्ट (पुनर्नवारिष्ट अभयारिष्ट, कुमारीआसव) तथा अयस्कृति (नवायस लौह, बृ० यकृदरि लौह) आदि कफनाशक औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। अथवा दूध मे एरण्ड तैल को डालकर प्रयोग करने से कफोदर का शमन होता है।''

जैसा कि ऊपर लिख आये है कि कफोदर प्राय यक्ष्मा जन्य भी मिला करता है। अत एक यक्ष्मोदर के रोगी के लिए निम्न प्रकार से चिकित्सा व्यवस्था की जा सकती है।

(१) राजमृगाक रस १ र० + प्रबाल पिष्टी २ र०। -१ मात्रा, ऐसी तीन मात्राये प्रतिदिन मधु से।

(२) बसत मालती रस १ र०, प्रबाल पचामृत रस १ र०। -१ मात्रा, ऐसी दिन मे २ मात्राये मधु से।

(३) पुनर्नवादि माण्डूर ४ र०, नवायस लौह २ र०। -१ मात्रा दिन मे दो बार गोमूत्र या जल से।

(४) पिप्पल्यासव २-२ तोला भोजनोत्तर प्रात -साय समान जल से।

(५) प्रतिदिन रात्रि को एरण्ड तैल २५ मिली० दूध के साथ।

सन्निपातोदर की आयु० चिकित्सा

आधुनिकत सन्निपातोदर (Cancerous Peritonitis) की चिकित्सा निराशाप्रद है। आयुर्वेदानुसार भी यह असाध्य ही है। किन्तु फिर भी निम्न प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिए।

"सन्निपातोदरे कार्य एष एव क्रियाक्रम ।
रोहितकाभयाकल्कम् गोमूत्रेण विभावितम् ।
पीत सर्वोदरप्लीहमेहार्श क्रिमिगुल्मनुत् ।।"

-भै० र० ४०/२६

अर्थात् त्रिदोषज उदररोग मे यथादोषाधिक वात, पित और कफ इन दोषो (तीनो को) नष्ट करने वाली ऊपर कही हुई चिकित्सा करनी चाहिए। और रोहेणा व हरड इनको गोमूत्र मे पीसकर रोगी को पिलाने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, प्रमेह, बवासीर, कृमि और गुल्म रोग नष्ट होते हैं।

छिद्रोदर की आयु० चिकित्सा (Peritonitis due to Perforation)

छिद्रोदर को स्वभावत ही प्राय असाध्य माना गया है यथा-

"प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्र चोदर नृणाम् ।"

लेकिन शस्त्र-चिकित्सा मे प्राय सभी शस्त्र-कर्म साध्य दृष्टि से किये जाते है, अत उक्त निषेध वाक्य मे "प्राय '' शब्द रखा गया है। यदि शल्यकर्म हेतु चिकित्सा के चतुष्पाद पूर्णरूप से उपस्थित हो तो रोगी बच भी-जाता है। इस हेतु सुश्रुतोक्त शल्यकर्म का वर्णन आगे शल्यक्रिया के वर्णन मे करेगे। यहा पर काय-चिकित्सक जो कुछ कर सकता है उसका वर्णन करेगे।

"छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लैष्मोदरवदाचरेत् ।
जात जात जल स्राव्यमेत तद्यपयेद्भिषक् ।।"

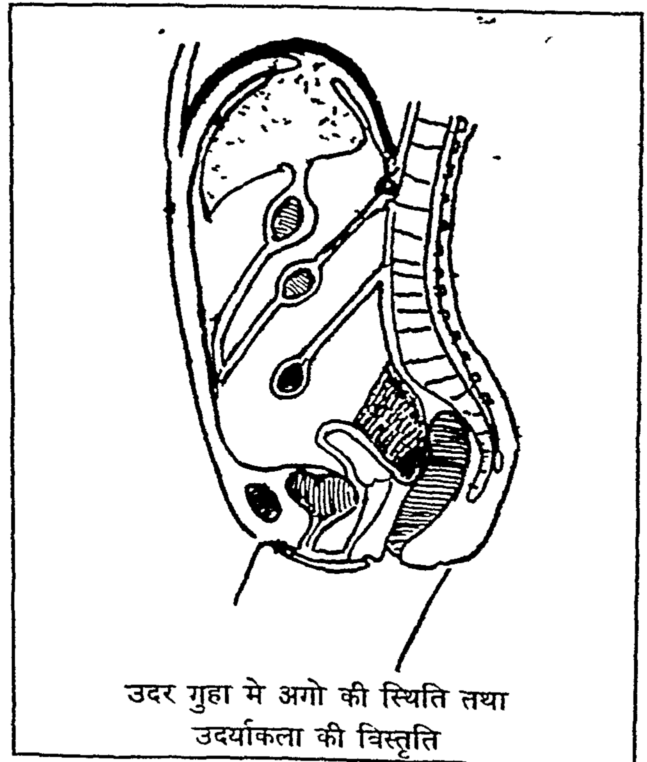
-भै० र० ४०/२९

अर्थात् छिद्रोदर मे स्वेदन कर्म के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण चिकित्सा कफोदर के समान करनी चाहिए।

इस हेतु सुश्रुत के अनुसार वातोदर मे विदारीगन्धादि पित्तोदर मे काकोल्यादि, कफोदर मे पिप्पल्यादिगण की औषधि प्रयोग करनी चाहिए। दूष्योदर के रोगी को दूध विशेषत प्रयोग करे। वैसे भी दूध और तक्र का प्रयोग तो समयानुसार सभी उदर रोगो मे किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हरीतक्यादि क्वाथ, पुनर्नवाष्टक क्वाथ, दशमूल क्वाथ, पुनर्नवादि चूर्ण, पटोलाद्य चूर्ण, नारायण चूर्ण, वर्धमान् पिप्पली कल्प, अष्टमूत्रो का प्रयोग, देवदार्व्यादि क्वाथ, इच्छाभेदी रस, नाराच रस, महावन्हि रस, अभया वटी, वारिशोषण रस, त्रिलोक्यसुन्दरी रस, शोथोदरारि लौह, पिप्पल्याद्य लौह, बिन्दु घृतम्, चित्रक घृत, दशमूल घृत, रसोन तेल, पचकोल घृत, पचकोल चूर्ण, नागरादि घृत, हपुषाद्य चूर्ण, स्नुहीक्षीर घृत, त्रिफला क्वाथ, पिप्पल्यादि लवण, अर्क लवण, क्षार वटिका, हिंगुत्रिगुण तेल, कुमारी आसव, तक्रारिष्ट, अभयारिष्ट, हिंग्वष्टक चूर्ण, पचसम चूर्ण, लवणत्रियादि चूर्ण, तुम्बुर्वादि चूर्ण, चित्रकादि वटी, योगराज, किशोर तथा त्रिफला गुग्गुल का प्रयोग, त्रिफला मोदक, षडबिन्दु घृत, लोहासव, रोहितकारिष्ट व क्षय रोगाध्याय मे वर्णित कुछ प्रधान योग यथा बसन्तमालती रस आदि का प्रयोग उदर रोगो मे परिस्थितियो के अनुरूप करना चाहिए।

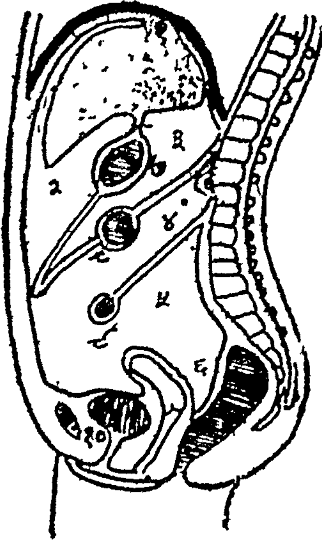
उदर्याकला-शोथ की आधुनिक चिकित्सा

रोगी को फाउलर बैड पर लिटाये। यदि फाउलर बैड न हो तो साधारण शय्या पर ही रोगी की पीठ के नीचे ३-४ तकिये लगाकर उसकी पीठ व शय्या के बीच मे ३०-४० डिगरी का कोण बनादे। रोगी की जघाओ को भी तकिये लगाकर उठा देनी चाहिए। इस प्रकार रोगी ४० डिगरी के लगभग पीछे की ओर को झुका रहना चाहिए। इस स्थिति को निम्न चित्र द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है-



उदर गुहा मे अगो की स्थिति तथा उदर्याकला की विस्तृति

इसके बाद रोगी की आमाशयान्त्र नलिका मे यदि कहीं भी छिद्रण नहीं हुआ है तो मुह के द्वारा दूध, तरल आहार, जल, औषधि द्रव्य आदि दे सकते है। यदि छिद्रण (Perforation) हो गया हो तो केवल बर्फ ही चूसने को दे अन्यथा यह भी न दे। यदि छिद्रण हो गया हो तो रोगी को पीडा से बचाने के लिए मार्फीन विद एट्रोपीन २० मि० ग्रा० इञ्जैक्शन मासान्तर्गत दे। तथा शरीर के विभिन्न मार्गों से (मुह द्वारा नहीं) जल व पोषक तत्व एव औषधिया दे। इस हेतु ग्लूकोज या नारमल सैलाइन मे बी० कम्पलेक्स व विटामिन सी मिलाकर सिरा मार्ग से ड्रिप विधि से पर्याप्त मात्रा मे दे। तथा रोगी को स्तव्धता से बचाने के लिए कोरामीन, वेरीटाल, कार्टीकोस्ट्रोयड आदि का यथाविधि प्रयोग करे। इसके बाद की चिकित्सा निम्न प्रकार से करे-



फाउलर आसन

रोगी को फाउलर आसन मे रखने से पूय आदि नीचे पाउच आफ डगलस मे एकत्रित हो जाती है और ऊर्ध्वभाग विशेषत डायफ्राम का अधोपृष्ठ जहा से लसीका वाहिनियो के कारण जीवाणु व विषो का सचार तीव्र गति से हो सकता है, वह स्राव के सम्पर्क मे आने से बच जाता है।

(१) इञ्जैक्शन वैरालगन २५ मि० लि० का मासान्तर्गत दिन मे २ बार।

(२) इञ्जैक्शन सोडियम पैन्सिलीन ५ लाख का मासान्तर्गत ६-६ घटे से।

(३) इञ्जैक्शन स्ट्रैप्टोमाइसिन १/२ ग्राम मासान्तर्गत १२ घटे मे एक बार।

इसके अतिरिक्त यदि आवश्यकता और महसूस हो या उचित परिणाम सामने न आ रहे हो तो-

(४) इञ्जैक्शन टैरामाइसिन १००-२५० मि० ग्रा० ८-८ घटे से।

यदि स्थिति अति नाजुक हो तो एण्टीवायोटिक्स को शिरान्तर्गत जैसे रिवैरिन (हैक्स्ट) प्रयोग करना चाहिए।

(५) विषाक्तता दूर करने के लिए वेटनासोल, डेकाड्रोन या पेरिस्टोनएन आदि का यथाविधि प्रयोग करे।

उपरोक्त औषधिया रोगी की स्थित के अनुरूप दे। यदि रोग कम हो व मुह से दवा देना सम्भव हो तो जहा तक हो दवा मुख मार्ग से दे। अथवा जैसे-जैसे रोग कम होता जाये, दवा की मात्रा कम करते हुए मुख मार्गीय योगो को शुरू कर देना चाहिए और अन्त मे शनै -शनै औषधियो को बन्द कर देना चाहिए। साथ मे अन्य सहायक द्रव्य ओक्सीफेनबुटाजोन, सल्फाड्रग्स आदि की भी मदद लेनी चाहिए। रोगी को शीघ्र से शीघ्र एण्टीगेस गेन्ग्रीन सीरम का इञ्जैक्शन लगाना भी जहा तक हो, नहीं भूलना चाहिए। यह इञ्जैक्शन एक बार अन्त पेशीय दिया जाता है।

यदि यक्ष्माजन्य उदर्याकला शोथ हो तो रोगी को यक्ष्मा चिकित्सा विशेषत पास, आइसोनाइजाइड, स्ट्रेप्टोमायसिन, थियासीटाजोन, इथेम्ब्युटोल आदि का विशेषत प्रयोग करते हुए उपरोक्त सामान्य चिकित्सा निराशाजनक का जरूरत के अनुसार प्रयोग करे। कैसरजन्य पेरिटोनायटिस की चिकित्सा है किन्तु फिर कोशिकानिरोधी (Cyttoxica) द्रव्य यथा एमीनोप्टरीन सोडियम, मायलेरन, टी० ई० एम०, एसीटायल फिनायल हाइड्रोजीन, रेडियोएक्टिव आयसोटोप, एलावोलिक स्टिमुलेटर यथा-डायनावोल, ओरावोलिन आदि का प्रयोग करना चाहिए। न्यूमोकोकसजन्य उदर्याकला शोथ मे पैन्सिलिन विशेष महत्व की है। इसमे निमोनिया के समान चिकित्सा करे।

गोनोमेहजन्य उदर्याकला शोथ मे उपरोक्त सामान्य चिकित्सा के साथ पैन्सिलिन के दीर्घकालीन योग यथा-पैनिड्योर आदि का प्रयोग विशेष लाभप्रद साबित होता है। यदि अमीबिक उदर्याकला शोथ हो तो अमीबानाशक औषधियो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग करना चाहिए। यदि श्रोणीय उदर्याकला शोथ हो तो इसमे तिजीवी रेवरिन शिरान्तर्गत या इञ्जैक्शन ओमनामायसीन का प्रयोग विशेष लाभकारी होता है, यह स्वानुभव है। उदर्याकला शोथ किसी भी प्रकार का क्यो न हो रोगी की कोष्ठशुद्धि परमावश्यक होती है, इस हेतु एनीमा या केस्टर आयल का मुख से प्रयोग परिस्थितियो के अनुसार करना चाहिए।

उदर्याकला शोथ की शल्यक्रिया द्वारा चिकित्सा

ऑपरेशन की आवश्यकता के विषय मे ऊपर लिख चुके है कि जब विकृति अधिक हो, नाडीगति १००/प्रतिमिनट से ज्यादा हो, औदरिक अगो मे छिद्रण हो गया हो, बाह्य शल्य के प्रवेश से उदर्याकला शोथ का आन्त्रादि मे छिद्रण हो गया हो तो शल्यकर्म अनिवार्य हो जाता है। उदर्याकला शोथ भी एक प्रकार से आभ्यन्तर विद्रधि ही है। जब बाह्य शल्य के प्रवेश के कारण होती है तो बाह्य विद्रधि का रूप ले लेती है। अत इसकी चिकित्सा आभ्यन्तर विद्रधि के सदृश करनी चाहिए और इसमे शस्त्रकर्म भी किया जाता है। प्राचीनो ने शल्यकर्म को ३ भागो मे बाटा है-"त्रिविध कर्म पूर्वकर्म, प्रधानकर्म, पश्चात्कर्मेति"-सु० सू० ५। उदर रोग चिकित्सा मे आचार्य सुश्रुत ने बद्धोदर व छिद्रोदर में विशेषत शल्यक्रिया का वर्णन किया है। वही शल्यक्रिया उदर्याकला शोथ की किसी भी प्रकार की विकृति मे आवश्यक होने पर की जाती है।

आधुनिकत भी उदर्याकला शोथ के शल्यकर्म मे तीन प्रमुख उद्देश्य ही सामने होते है-(१) कारण का हटाना (२) उदर्याकला की स्वच्छता तथा शुद्धि और (३) उदरगुहा का निर्हरण (Drainage)।

(१) कारण को दूर करना-यदि शस्त्रकर्म द्वारा उदर्याकला मे शोथ उत्पन्न करने वाले कारण को दूर कर दिया जाये तो उदर्याकला व वपा प्रबल रक्षक शक्ति से सम्पन्न होने के कारण स्राव व नष्ट हुए ऊतको का शोषण करके अपने शोथ को अपने आप ही कुछ दिनो मे दूर करने मे सफल हो जाती है। जैसे कि उण्डुक शोथ मे उण्डुक को निकाल देने पर शोथ का शमन प्रारम्भ हो जाता है। ऐसा ही पित्ताशय शोथ मे भी होता है। किन्तु जब तक कारण को नहीं हटाया जाता है तब तक रोहण क्रिया प्रारम्भ नहीं होती है।

(२) उदर्याकला तथा उदरगुहा की शुद्धि-कारण को सदा दूर नहीं किया जा सकता है। आन्त्र मे छिद्रण (Perforation) होने पर छिद्र को सींकर बन्द कर दिया जाता है और उस छिद्र से जो अवयव उदरगुहा मे आ जाते है, उनको विसक्रमित गौज के टुकडो की मदद से बाहर निकाला जाता है तथा उदर्याकला को स्वच्छ किया जाता है। मल व मूत्र उदर्याकला के अत्यन्त प्रबल क्षोमक है। अत उनको गुहा मे से दूर करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। उदर्याकला को शोधन मृदुता व सावधानी से करना चाहिए। यह कोमल व मजबूतकला है जो कि गलत ढग से किये कार्य से और अधिक शोथयुक्त हो सकती है। उदरगुहा तथा उदर्याकला की सफाई के बाद उसमे क्रिस्टैसिलीन, सल्फाडायजीन चूर्ण या अन्य कोई प्रतिजीवी पैन्सिलिन आदि छिडक कर उदरगुहा को सीं दिया जाता है।

(३) उदरगुहा या उदर्याकला से स्राव का निर्हरण-के लिए कोई विशेष सन्तोषजनक उपाय नहीं है। फिर भी यदि शल्यकर्म के बाद गुहा मे कुछ स्राव के इकट्ठे होने की सम्भावना हो तो रबड की नलिका का एक सिरा उदरगुहा मे रखकर उदर्याकला को सींवने के बाद उदर को बन्द कर देते है। आवश्यकता समाप्त होने पर नलिका को खींच लेते है और उस अवशिष्ट घाव की चिकित्सा साधारण व्रणवत् करते है।

पाश्चात्य चिकित्सा

शल्यकर्म के बाद भी सावधानी बरती जाती है। लवण विलयन, प्लाज्मोसोल, पेरिस्टोन आदि का शिरामार्ग से प्रयोग करते है। रोगी को फाउलर आसन से रखते है तथा रायल की नली के द्वारा प्रतिघटे पर आमाशय के स्राव का चूषण करते रहते है। पैन्सिलिन, स्ट्रैप्टोमायसिन, सल्फाड्रग्स आदि का प्रयोग तब तक करते रहते है जब तक कि रोगी की अवस्था सन्तोषजनक नही हो जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त लेख को उदर्याकला शोथ के विषय मे जहा तक सम्भव हो सका है सर्वोन्मुखी बनाने की कोशिश की है। किन्तु फिर भी विस्तृत ज्ञान के लिए इस विषय की विशिष्ट पुस्तको का अध्ययन करना चाहिए।



जलोदर कारण एवं चिकित्सा

वैद्य वीरेन्द्रकुमार मिश्र, आयुर्वेदाचार्य
उषा किरण चौथी मजिल
सायन कोलीवाडा, बम्बई-४०००२२

आठ पकार के उदर रोगो मे अन्तिम उदर रोग दकोदर, तोयदोदर या जलोदर रोग को गिना गया है।

निदान-

य स्नेहपीतो प्यनुवामितो वा वान्तो विरक्तो प्यथवा,
पिवेज्जल शीतलमाशु तस्य स्रोतासि दुष्यन्ति हि तद्वहानि,
स्नेहोपलिप्तेष्वथ चापि तेषु दकोदर पूर्ववदभ्युपैति।
(यो० र० उदररोग)

जब कोई व्यक्ति स्नेहपान करके, अनुवासन बस्ति लेकर, वमन या और विरेचन करके अथवा निरूह बस्ति लेकर तुरत शीतल जल का पान करता है, तो उसके जलवाही स्रोत स्नेह से लिप्त होने के कारण पूर्वरोग (सातवा उदररोग-क्षतोदर) के समान लक्षणो वाला जलोदर रोग हो जाता है।

लक्षण-

स्निग्ध महत् सपरिवृत्तनाभि,
भृश्नोन्नत पूर्णमिवाम्बुना च,
यथा द्रति क्षुम्यति कम्पते च,
शब्दायते चापि दकोदर तत् (सु० नि० ७/२३)

अर्थात् नाभि के चारो ओर स्निग्ध, चिकनापन युक्त, नाभि गोलाकर रूप मे ऊपर उठी हुयी होती है। जैसे मशक जलपूर्ण होने पर कम्पन करती है, क्षुभित होती है उसी प्रकार जलोदर मे उदर क्षुभित होता है, जलपूर्ण होने से शब्द करता है।

जलोदर प्राय असाध्य होता है, चिकित्सा करने पर थोडा-बहुत जीवन बढ जाता है।

आयुर्वेद मे जलोदर का मुख्य कारण बस्ति के बाद शीतल जल का पान बताया है, किन्तु आजकल अनुवासन और निरूह का प्रचलन उतना नहीं जितना पहले था। हा एनिमा का चलन आजकल भी खूब है।

वर्तमान मे जलोदर होने का मुख्य कारण दूषित (विषैला) आहार है। मद्यपान और विदाही, क्षारीय या अम्लीय भोजन की अति से उदरकला (Peritoneum) मे क्षत हो जाता है, जो जलोदर का मुख्य कारण बनता है।

जलोदर के कारण निम्न हैं-

१ यकृद्दोदर-चिरकाल तक यकृत् (उदर) रोग से ग्रसित रहने के कारण उसके उपद्रव स्वरूप मे जलोदर की उत्पत्ति होती है। मद्यपान की बढती लत के कारण यकृतद्दोदर और उपद्रव स्वरूप जलोदर की उत्पत्ति आजकल सामान्य रूप से पायी जाती है। यकृद्दोदर मे यकृत् मे शोथ (सक्रमण) हो जाता है। शोथ के कारण यकृत् स्थित शिराओ (Portal Capillaries) मे रक्तभार बढ जाता है, फलस्वरूप उनकी दीवारो मे जलीय अश रिसने लगता है, जो उदर मे एकत्र हो जाता है, और जलोदर की उत्पत्ति का कारण बनता है। इसमे प्लीहा भी सूज जाती है।

२ शोथरोग-शोथ रोग मे जब मूत्र प्रणाली दूषित (सक्रमित) हो जाती है, शरीर मे विष सचार बढ जाता है, सर्वांग मे शोथ हो जाता है। जलोदर सर्वांग शोथ के उपद्रव रूप मे होता है। मूत्रप्रणाली के सक्रमित होने के कारण वृक्को की कार्यक्षमता पर प्रभाव पडता है। मूत्र छनन की प्रक्रिया दूषित हो जाती है। जिससे एल्बुमिन अधिक मात्रा मे मूत्र द्वारा उत्सर्जित होने लगता है, फलस्वरूप शिराओ का रक्तभार गिर जाता है, उनकी कार्यक्षमता कम हो जाती है, जिससे त्वचा के नीचे (Subcutaneous Tissue) स्तर मे जल सग्रहण प्रारम्भ हो जाता है, इसे जलोदर कहते है। इसमे पेट जल से पूर्ण, हाथ-पाव कृश, मूर्छा, अरुचि मलबध और सर्वांग शोथ हो जाता है। मूत्र परीक्षा मे एल्बुमिन बढा हुआ मिलता है।

३ अर्बुद या कैंसर रोग-यकृत्, आमाशय या गुदा मे अर्बुद रोग होने से उसका सक्रमण उदरकला (Peritoneum) तक शीघ्र हो जाता है। सक्रमित उदरकला मे क्षत होने से उसमे जल सभरण होने लगता है। इसे जलोदर कहते है।

इसमे यकृत् शोथयुक्त, कठोर, और दबाने पर पीडा करता है। वमन (रक्तवमन) भी हो सकता है। ज्वर, कामला, और कृशता निरतर बढती जाती है।

जलोदर की रोग परीक्षा-

१ उदर फूला हुआ, चिकना, जलपूर्ण होता है।

२ हिलने-डोलने पर, चलने-फिरने पर कल-कल की आवाज सुनाई देती है।

३ वमन, अरुचि, उत्क्लेश, भ्रम, मूर्छा, ज्वर, कामला आदि लक्षण भी दिखाई देते है।

४ पैरो मे शोथ, ग्रीवा की और उदर की शिराये फूली हुयी दिखाई देती है।

५ श्वातकृच्छ्रता और कास भी हो सकता है।

६ स्त्रियो मे जलोदर की परीक्षा करते समय डिम्ब शोथ से प्रभेद करना चाहिए। डिम्ब ग्रथियो मे शोथ, गाठ, अर्बुद होने पर टकोर की आवाज पार्श्व मे ऊची और नाभि पर मद होती है। जलोदर मे इसके विपरीत नाभि मे ऊची और पार्श्व मे मद होती है।

मूत्राशय शोथ मे सूजन नाभि के नीचे होती है, और जलोदर मे सूजन नाभि के ऊपर होती है।

७ मूत्र मे एल्बुमिन की मात्रा बढी हुयी होती है।

८ रक्त मे कोलेस्ट्रॉल (Cholesterol) बढा हुआ होता है।

९ उदर से निकले जल का आपेक्षिक गुरुत्व १०१२ से अधिक होता है। उसमे प्रोट्रीन की मात्रा भी बढी हुयी मिलती है।

१० मलबध की शिकायत रहती है।

जलोदर की चिकित्सा-

जलोदर मे मूत्रल और रेचक औषधियो के साथ पाचक और वातशामक चिकित्सा धैर्यपूर्वक करने से लाभ होने लगता है।

औषधि व्यवस्था-

१ त्रिवृत चूर्ण, हरीतकी चूर्ण दोनो मिलाकर ६ ग्राम की एक मात्रा सप्ताह मे एक वार दे।

२ कटुकी, हरीतकी, अमलतास का गूदा, पिप्पलीमूल, मुस्ता सब मिलाकर २०-२५ ग्राम का काढा बनाकर नित्य प्रात दे।

३ पुनर्नवामूल और मकोय का काढा ३० मिली नित्य दे।

४ नित्य गोमूत्र ५० मिली और हरीतकी चूर्ण ६ ग्राम मिलाकर दे।

५ इच्छाभेदी रस, नाराच चूर्ण और जलोदरारि का चूर्ण भी यथायोग्य मात्रा मे सेवन करने पर त्वरित लाभ होता है।

६ मूत्रल औषधियो मे गोक्षुर और पुनर्नवा मूल का क्वाथ नित्य दे।

७ कलमी शोरा १ ग्राम और यवक्षार १ ग्राम नित्य सेवन करावे।

शस्त्र चिकित्सा-

वातहर तैल का अभ्यग कराकर वाष्प स्वेदन करावे। स्वेदित पुरुष की नाभि के नीचे रोमराजि से थोडा बचाकर उदर मे चीरा लगाकर दोमुही नलिका द्वारा उदरस्थ जल का निराहरण करावे। एक ही बार मे समस्त जल निकालने का यत्न न करे। इससे मूर्छा, दाह, तृष्णा हो जाती है। अत दस पन्द्रह दिनो का अन्तर देकर थोडा-थोडा जल निकाले। दूषित जल को निकालने के बाद शोधन औषधियो का लेप लगाकर कस कर बाध दे। ताकि पूय न पडे या सक्रमण न होने पाये।

इस विधि को Tapping विधि कहते है। सुश्रुत मे वर्णित यह विधि आजकल भी जलोदर की चिकित्सा मे व्यवहृत होती है।

भोजन व्यवस्था-

१ लघु और पाचक आहार दे।

२ शुद्ध शिलाजीत, पिप्पली का प्रक्षेप देकर चिकनाई रहित दूध २०० मिली एक बार मे दे, पूरे दिन मे दो लीटर तक दुग्धापान करा सकते है।

३ नमक का सेवन एकदम बन्द करा दे।

४ सब्जी, अण्डा और फलो का सेवन प्रतिदिन करावे।

सुश्रुत ने कहा है कि विधिपूर्वक चिकित्सा करने पर एक वर्ष मे जलोदर रोग की निवृत्ति होती है।

उदर रोग निदान चिकित्सा

द्वितीय भाग एवं अनुभवांक



चिकित्सा खण्ड



अग्न्याशय के रोग

DISEASES OF THE PANCREAS

अग्न्याशय शोथ (PANCREATITIS)

डा० जहानसिह चौहान, आयुर्वेद-बृहस्पति
मु० पो०-ठठियार, फर्रुखाबाद

परिचय-अग्न्याशय मे जब विविध कारणो एव सक्रमण आदि से शोथ उत्पन्न हो जाता है। तब उसे अग्न्याशय शोथ (पैन्क्रियाटिटिस-Pancreatitis) की सज्ञा दी जाती है।

Inflammation of the Pancreas is called Pancreatitis

अग्न्याशय शोथ २ प्रकार का हो सकता है-

१ तीव्र अग्न्याशय शोथ (Acute pancreatitis)

२ चिरकारी अग्न्याशय शोथ (Chromic Pancreatitis)

तीव्र अग्न्याशय शोथ
(Acute Pancreatis)

ऐसा अग्न्याशय शोथ जिसमे अचानक अधिजठरीय प्रदेश मे बहुत तेज दर्द उठता है, जिसके साथ उल्टी होती है तथा डकारे आती है तीव्र अग्न्याशय शोथ कहलाता है।

Pancreatitis Charactenzed by sudden and intense pain in the epigastric region with vomiting and Belching

रोग का कारण-तीव्र अग्न्याशय शोथ निम्न कारणो से हो सकता है-

- विलयरी ट्रेक्ट डिजीज (Biliary tract disease)
- मदात्य रोग (Alclodism)
- मेटावोलिक (हाइपर लिपीडेमिया टाइप १, IV and V)
- इण्डोक्राइन (हाइपरपैराथायरोडिज्म)
- सक्रमण (Infection)
- आघात (Trauma) एव कनेक्टिव टिशू डिजीज
- एक्यूट लिवर फेल्योर एव रीनल ट्रान्सप्लैनटेसन।

तीव्र अग्न्याशय शोथ सक्रमण से उत्पन्न हो सकता है, किन्तु अग्न्याशय ऊतक के परिगलन से भी हो जाता है जिसमे प्रारम्भ मे सक्रमण नहीं होता। आघात और पित्तवाहिनियो तथा अग्न्याशय वाहिनियो मे अवरोध तीव्र अग्न्याशय शोथ की प्रवृत्ति उत्पन्न करते है। अग्न्याशय ऊतक मे उपस्थित निष्क्रिय प्रोटीनलायी एजाइम्स सक्रिय होकर ग्रन्थि का स्वपाचन (Autodigestion) प्रारम्भ कर देती है। रोगी प्राय स्थूल, मध्यम आयु का और मद्य का सेवन करने वाला होता है। साथ ही ७०% मे पित्ताशय रोग होता है। सक्रमण ग्रहणी से लसिका वाहिकाओ, रक्त प्रवाह या वाहिनियो द्वारा पहुच सकता है। पैत्तिक तत्र का रोग, और पित्ताश्मरी रोग प्रवृत्ति उत्पादन करते है। समीप के आशय से फैलकर जैसे पैप्सनीव्रण मे रोग अग्न्याशय को ग्रस्त कर सकता है। अग्न्याशय वाहिनियो मे पित्त के प्रत्यावहन के कारण, सक्रमण न होने पर भी अग्न्याशय एजाइमो मे सक्रिय होने से भी तीव्र शोथ उत्पन्न हो सकता है।

कनफेड (मम्पस Mumps) के समान तीव्र सक्रमण के पश्चात् अभिघात। चोट आदि से भी तीव्र अग्न्याशय शोथ हो सकता है।

विकृति (पैथोलॉजी)-अग्न्याशय रस के सक्रिय हो जाने से ग्रन्थि का स्वपचन होता है जिसमे रक्तसचार अधिक होने से रक्तस्राव युक्त निस्सरण बनता है। वहा एक तीव्र शोथ प्रतिक्रिया होती है जो सारी ग्रन्थि को ग्रस्त करती है या ग्रन्थि के शिर, काय (Body) या पुच्छ मे परिमित रहती है। प्रतिक्रिया की सीमा मे भिन्नता पाई जाती है वह परिगलन (Necrosis) या कोथ (Gangrene) तक हो सकती है, अथवा वह मृदु, शोफ और कुछ रक्तस्राव होता है। साथ ही सम्पूर्ण शरीर मे कुटेनियस वसा का परिगलन होने लगता है, विशेषतया उदरभित्तियो मे और आन्त्रयोजनी तथा वया की वसा का।

रोग लक्षण-रोग का आक्रमण तीव्र अधिजठर वेदना से होता है जो एक मध्य आयु वाले व्यक्ति मे बाई ओर फैल जाता है। रोगी को पहले पित्ताशय शोथ के आक्रमण होते रहे है। वमन, रक्तदाब का ह्रास (Low Blood pressure) एव क्षीण नाडी-ये

पात सम्वन्धी लक्षण प्रकट हो जाते है। वमन स्तब्धता, तीव्र वेदना कभी-कभी रक्तवमन और पात (Collapse) आमाशय तथा अग्न्याशय के समीप कुक्षि तत्रिका जालिका (Coeliac plexus) के क्षोभ (Irritation) के परिणाम होते है। हल्की श्यावता, निर्जलीकरण (डिहाइड्रेसन) और नाभि के चारो ओर तथा उदर पार्श्व मे विरजन (Discolouration) दिखायी पडते हैं। ऊर्ध्व उदर मे कठोरता (Rigidity) हो जाती है, किन्तु यकृत् अननुनाद सामान्य रहता है। गुदा परीक्षा पर कुछ नहीं मिलता। हल्की कामला (Jaundice) हो सकती है।

रोग लक्षण विस्तार से-

आक्रमण-रोग का आक्रमण किसी भी समय हो सकता है पर अधिकतर भारी भोजन (Heavy Meal) एव अथवा मद्य (Alcohol) लेने के वाद होता है।

पीडा-(Pain) उदर के ऊपरी भाग मे बडा कष्टदायक तीव्र शूल होता है। यह शूल पीठ या कधे की ओर जाता प्रतीत होता है। अथवा शूल समस्त उदर मे फैल जाता है।

वमन एव उवकाई (Vomiting - retching)-बार-वार आती हैं Depeated and Noisy are a markded feature

कठोरता (Rigidily)-पीडा के समान, धीरे-धीरे वढती है और समस्त शरीर मे फैल जाती है।

सम्वेदनशीलता (Tenderness)-रोगी मे सम्वेदनशीलता Eliciated प्रकार की होती है और इसे पेन्क्रियाज पर गहराई मे अनुभव किया जा सकता है। कभी-कभी लेफ्ट रीनल एन्गिल मे मिलती है।

Tenderness may be eliciated by firm and deep polpation over the Panccreas and occasionally in the left renal angle where the tail of the pancreas in comperatively near the surface

स्तब्धता (Shock)-10% रोगियो मे यह लक्षण देखने को मिलता है। जब यह उत्पन्न होता है तब रोगी को अत्यधिक पसीना आकर स्थिति भयावह हो जाती है, उसकी नाक ठडी हो जाती है और रक्तचाप गिर जाता है। इस समय प्लाज्मा इन्फ्यूजन की आवश्यकता प्रतीत होती है।

पीलिया (Jaundice)-कभी-कभी देखी जा सकती है वह भी रोग प्रारम्भ मे दूसरे दिन।

A tender] p[alpalelemass may appeer in the epigastrium towards the end of the second week

This is a usually a pseudo-cyst If the mass appears later after the third week - it is due to abscess formation

रोग लक्षण साराश मे-

In severe cases (Hemorrhagic type)-

There is a severe pain

Vomiting

Collapse and Shock

On Examination-

There may be fever

Cyamosis

Jaundice or Rarely bluish discolouration of the flanks or abound the umbilicus

Sometimes abdominal rigidily A scites, Dyspnoea ileus or hasal pleural effusion may be seen

Tachycardia and mild systolic hypertension are frequent

The patient may be in shock.

निदान-

रक्त-परीक्षा मे श्वेंत कणो की वृद्धि (Leucocytosis) मिलती है।

मूत्र-परीक्षा मे शर्करा की उपस्थिति मिलती है।

स्टेथिस्कोप-परीक्षा मे आन्त्र की ध्वनि सुनाई नहीं देती।

यदि रोगी को मम्प्स (Mumps) की शिकायत रही है अथवा रोगी अधिक शराब पीने का आदी है तो ऐसी अवस्था मे रोग का संदेह करना चाहिए।

विफुद हृद्लेख (E C G) मे भी परिवर्तन देखने को मिलते है।

याद रहे-तीव्र अग्न्याशय शोथ का उदर के ऊर्ध्व भाग मे वेदना के अन्य कारणो से भिन्न करना आवश्यक है। पैप्सिनी व्रण का बोध कोरोनरी धमनी का अन्तर्रोध (Occlusion) तीव्र पित्ताशयशोथ और तीव्र आन्त्रावरोध ऐसी दशाये है एक्स-रे चित्रण से निर्णय हो सकता है।

इस रोग मे सीरम इमाइलेज एक मुख्य टैस्ट है।

पेन्क्रिएटिक स्टोन्स अथवा सीडेसिस्ट (Seudocyst) की उपस्थिति जानने के लिए अल्ट्रासोनोग्राम एव सी टी (CT) स्केन टैस्ट किये जाते है।

रोग निदान मे कुछ आवश्यक ज्ञातव्य

यदि दर्द रोगी के आगे की ओर झुकने, पेट के बल लेटने तथा सामने की ओर किसी भी प्रकार से उस स्थान को दबाने से कम हो जाता है।

अग्न्याशय शोथ का संदेह होने पर रोगी को अस्पताल भेज देना चाहिए क्योकि अपेन्डिक्स शोथ एव आन्त्रावरोध के लक्षण भी इसी जैसे होते है। अक्सर बडे सर्जन भी इन रोगो के निदान मे धोखा खा जाते है। ऐसे केस देखने मे आये है कि अपेन्डिक्स शोथ के लिए उदर को खोला गया, परन्तु पता चला कि रोगी अग्न्याशय रोग ग्रस्त है।

इसके विपरीत कई बार ऐसा भी देखा गया है कि रोग का आक्रमण अपने आप ही शान्त हो जाता है।

चिकित्सा विधि-

रोगी की चिकित्सा रोग की अवस्थानुसार करनी चाहिए।

इस रोग की चिकित्सा मे आयुर्वेद चिकित्सा से लाभ नही मिलता है। केवल आधुनिक चिकित्सा ही कारगर सिद्ध होती है।

दर्द एव शोथ की चिकित्सा प्राथमिकता के आधार पर करनी चाहिए।

संक्रमण की चिकित्सा का मुख्य आधार मानकर की जानी चाहिए।

तीव्र शूलनाशक औषधिया देकर रोगी को अस्पताल भेज देना ही उत्तम रहता है।

औषधि चिकित्सा से लाभ न मिलने पर ओपरेशन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

एसिड विरोधी औषधियां लाभकर मानी जाती है।

पथ्य एव सहायक चिकित्सा-

शैय्या पर पूर्ण विश्राम।

मुख से आहार तथा जल न दे।

आमाशय मे सचित पदार्थ एव श्लेष्मा को रायल्स-नलिका द्वारा निकालते रहे।

आहार मे चिकनाई की मात्रा कम एव मद्यपान पूर्ण निषेध।

डेक्सट्रोज नार्मल सैलाइन शिरामार्ग से निरन्तर देते रहे।

औषधि चिकित्सा-

वेदना का शमन-पैथीडीन (Pethidine) १०० मि० ग्रा० को २ मि० ली० डिस्टिल्ड वाटर मे घोल कर मासपेशी मे देते है। आवश्यकता पडने पर पुन २-३ घण्टे बाद दोहराते है। साथ ही नाइट्रोग्लिसरीन ०५ मि० ग्रा० की टिकिया जीभ के नीचे रखवाते है। इसे प्रति आधे घण्टे पर देते हैं। यह टिकिया एन्जीसिड (Angisid) के नाम से बाजार मे मिलती है। पीडा स्थल पर सैंक करे। टेवलेट एन्ट्रिनल अथवा टे० प्रोवेन्थीन प्रति ४ घण्टे पर दे।

शूल मे पर्याप्त लाभ न मिलने पर-मार्फीन सल्फेट १५ मि० ग्रा० + एट्रोपीन सल्फेट ० ६ मि० ग्रा० त्वचा के अन्तर्गत (S/c) दे। एव मैगनेशियम ट्राईसिलिकेट। चम्मच (५ मि० ग्रा०) प्रति ३ घटे पर।

अति गम्भीर अवस्था मे-इन्जे० पैथीडीन १०० मि० ग्रा० + इन्जे० एट्रोपीन ० ६ मि०ग्रा० मासपेशीगत प्रति ६ घटे पर दे। नेजोगैस्ट्रिक सक्सन के द्वारा आमाशय से सचित पदार्थ निकाले तथा आक्सीजन सुघाये। लासिक्स २ मि० ली० मासपेशीगत लगाये।

सक्रमण कन्ट्रोल के लिए-एम्पीसिलीन अथवा स्पोरीडेक्स ५०० मि० ग्रा० प्रति ६ घण्टे पर। एव इन्जे० डेकाड्रान १ मि० ली० प्रति ८ घटे पर।

जलाल्पता (डिहाइड्रेशन) के लिए-फ्लूडस+इलेक्ट्रोलाइप्स शिरामार्ग से १-४८-७२ तक। ड्राईप्लाज्मा २०० मि० ली० डिस्टिल्ड वाटर मे मिलाकर ट्रान्सफ्यूजन द्वारा। तत्पश्चात् १ लीटर नार्मल सैलाइन + १० मि० ली० कैल्शियम ग्लूकोनेट।

प्रति लीटर नार्मल सैलाइन के पश्चात्-

५ प्रतिशत डेक्स्ट्रोज ५०० मि० ली० आई० वी० दे। इसके बाद १ लीटर ग्लूकोज नार्मल सैलाइन दे। साथ ही कैल्शियम ग्लूकोनेट १० प्रतिशत १० मि० ली० प्रतिदिन दे।

इन्सुलिन का प्रयोग-ग्लूकोजमेह को रोकने के लिए २० यूनिट प्रतिदिन या इससे अधिक। इसका प्रयोग कुछ समय तक जारी रखना चाहिए।

शेष व्यवस्था-

रोग निरोध के लिए पित्तवाहक पथ के अश्मरी रोग की उपयुक्त और पर्याप्त चिकित्सा करनी चाहिए।

तीव्र अग्न्याशय शोथ के शमन के पश्चात् पित्ताशय रोग की चिकित्सा करनी चाहिए।

The Outline of management is as follows :

Stop all oral feeds and start continuous naso gastric suction

Parenteral Antibiotics e g Gemtamycin, gabriomycin or Chloramplenicol

Inj Pethidine 100 mg or Pentazocaine 40 mg I M

Maintain fluid electrolyte Balance and supply calories parenterally

Supportive therapy watch for complications

(Text Book of Medicine prof Dr G C Mookerjee)

जीर्ण अग्न्याशय शोथ
(Chronic Pancreatitis)

परिचय-अगन्याशय शोथ जिसमे व्रणचिह्न ऊतक बन जाता है जिसके साथ ही अग्न्याशय का कार्य बिगड जाता है।

Pancereatitis charactenzed by the formation of scartissue associated with malfunction

यह एक असाधारण रोग है। यह स्वय इसी रूप मे हो सकता है। अथवा तीव्र अग्न्याशयशोथ के पश्चात् यह रूप ले सकता है।

रोग का कारण-जीर्ण अग्न्याशय शोथ के निम्न सम्भावित कारण हो सकते है।

- सक्रमण (Infection)
- पेप्टिक अल्सर (Pepticulcer)
- अग्न्याशय मे विकृति
- यकृत्शोथ एव अश्मरी
- अनेक बार तीव्र अग्न्याशय शोथ से मुक्त रोगी मे भी जीर्ण रोग की आशका।
- घातक कैसर
- कोलिन्जाइटिस
- ५० से ७० साल की उम्र वालो मे जो मद्यपान के अभ्यस्त है।

पित्ताशय रोग-विशेषकर अश्मरी का प्राय रोग के साथ होना पित्तवाहिनी द्वारा पित्त के प्रत्यावहन (Reguragitation) को रोग का कारण प्रमाणित करता है।

विकृत विज्ञान (पैथोलोजी)-चिरकारी शोथ से अग्न्याशय मे तन्तुमयता और स्थूलता हो जाती है। वाहिकाओ मे अश्मरी अथवा ग्रन्थि का कैल्शीभवन उपस्थित हो सकता है। तीव्र या चिरकारी सक्रमण के आक्रमण होने लगते है। ग्रन्थि के स्रावो की अल्पता से अग्न्याशय अपर्याप्तता हो जाती है जिससे शरीर भार-क्षय, फूला हुआ अतिमलत्याग और ग्लूकोजमेह उत्पन्न होते है।

साधारण परीक्षा से चिर अग्न्याशय शोथ और अग्न्याशय के दुर्दम रोग को भिन्न करना कठिन होता है।

रोग लक्षण-इस रोग मे नाभि के ऊपर पीडा के अनेक आक्रमण थोडे-थोडे समय बाद होते है। पीडा बाहे असफल अथवा कमर की ओर जा सकती है। पीडा के साथ ही रोगी मे सामान्य कामला के भी लक्षण मिलते हैं। कभी-कभी सामान्य पित्तवाहिनी (Common bili duct) मे प्रगतिशील अवरोध हो जाता है। परन्तु पीडा का अभाव रहता है। इस स्थिति मे पित्ताशय (Gall Bladder) एव यकृत् भी बढ जाते है। बाद मे यकृत् के अदर सिरहोसिस भी हो सकता है। उदर के ऊपरी भाग मे भारीपन मिलता है तथा पेट फूल जाता है। वसापुरीष (Steatorrhoea) होता है और रोगी धीरे-धीरे दुर्बल हो जाता है।

याद रहे-मध्य आयु के स्थूल व्यक्ति मे अग्न्याशय अपर्याप्तता और पुन -पुन अधिजठर प्रदेश मे उग्र वेदना के आक्रमण रोग के सामान्य लक्षण है।

शरीर भार का ह्रास, रुद्धपथकामला तथा मधुमेह कुछ समय पश्चात् होते है।

पैप्सिनी व्रण के विरुद्ध वेदना तीव्र और आहार से असवधित होती है।

एक्स-रे चित्र से कुछ रोगियो मे अग्न्याशय मे अश्मरी या कैलसी भवन दीख सकते हैं।

जीर्ण अग्न्याशय शोथ लक्षण साराश मे-

- उदर दबाने पर पीडा

- अधिक मात्रा मे चिकने दस्त।
- आध्मान (Flalulence)
- मल अनियमित, दुर्गन्ध एव वसा युक्त।
- मूत्र मे शर्करा की उपस्थिति।
- मल मे वसा की वृद्धि
- मल मे अपचित आहार के अग।
- इपी गैस्ट्रिक प्रदेश मे बार-बार पीडा के आक्रमण।
- पीडा परि० मे भी इसी क्षेत्र मे प्रवीत।
- कभी-कभी शीत का लगना।
- कामला की उपस्थिति (कभी-कभी)

रोग की पहिचान-

- लेपरोटोमी (Laprotomy) निदान मे सहायक।
- एक्स-रे परीक्षा से भी रोग निदान मे सहायता मिलती है।
- मल मे चिकनाई की अधिकता केमीकल एनालिसिस से।

चिकित्सा सिद्धान्त-

- चिकित्सा कारणो एव लक्षणो के अनुसार।
- साथ मे मधुमेह की समुचित चिकित्सा आवश्यक।
- एण्टीकोलीनीर्जक्स तथा हक्की शामक औषधियो की उचित व्यवस्था
- रक्ताल्पता की स्थिति मे लौह के योग सेवन कराये।
- विटामिन ए, डी तथा ईस्ट भरपूर मात्रा मे।
- आन्त्र की स्वच्छता आवश्यक।
- निदान के लिए शस्त्र-कर्म आवश्यक होता है।

पथ्य चिकित्सा-इस रोग मे कम चिकनाई वाला आहार उपयुक्त रहता है। मद्यपान का पूर्ण निषेध होना चाहिए। रोगी को कार्वोहाइड्रेट तथा कैल्शियम प्रधान आहार की व्यवस्था करनी चाहिए।

औषधि चिकित्सा-प्रथम कारण की चिकित्सा करे। इसके लिए शल्य-चिकित्सा आवश्यक हो सकती है।

इस रोग मे पाचक इन्जाइमो का प्रयोग भरपूर मात्रा मे करना चाहिए।

चिकित्सा मुख्य रूप से वेदना के शमन के लिए की जाती है। जिसके लिए चिरकारी पित्ताशय शोथ और पित्तवाहिनी से अश्मरी को दूर करना होता है।

पीडा के लिए टेवलेट बुस्कोपान (Tab Buscopan) की एक-एक टिकिया दिन मे ३ बार भोजन के बाद दे। एव रोगी की शेष व्यवस्था निम्न प्रकार करे।

लिवर एक्सट्रेक्स २ मि० ली० मासपेशीगत सप्ताह मे ३ बार।

फैरस सल्फेट १८० मि० ग्रा० दिन मे ३ बार भोजन के बाद।

कैल्शियम ग्लूकोनेट १० प्रतिशत- ५-१० मि० ली० सप्ताह मे २ बार शिरामार्ग से अथवा ६०० मि० ग्रा० दिन मे ३ बार मुख द्वारा।

एल्वीजाइम (Alvizyme) १-२ टिकिया दिन मे २ बार।

आन्त्र को स्वच्छ रखने के लिए-

HCL १५ ६० बूद दिन मे ३ बार भोजन के बाद + सोरविटॉल मोनेओलिएट दे।

इस रोग की कोई उपयुक्त औषधि चिकित्सा नही है। अत ऐसे रोगियो को शल्य चिकित्सक से परामर्श करने की सलाह दे देनी चाहिए।

यदि कोई रोगी उदरशूल (इपीगैस्ट्रिक पेन) से पीडित आता है जिसको किसी भी प्रकार की औषधि से लाभ नही होता है और दर्द कमर व पीठ की ओर जाता है तथा अधिक मितली एव वमन हो रहे हो तो ऐसे रोगी को तुरन्त अस्पताल भिजवा देना चाहिए। जिससे अन्य सम्बन्धित रोगो के सदेह को दूर करके अग्न्याशय शूल स्वत भी ठीक हो जाता है।

ऐसा प्राय नये रोग (Acutı pancreatıtıs) मे होता है जब कि पुराना होने पर (In Chromıc pencreatıtıs) दर्द बार-बार उसी स्थान पर होता है। ऐसा रोगी प्राय पुराना शराबी हो सकता है।

(लेखक की पुस्तक आ० एलोपैथिक पेटेन्ट चिकित्सा चार्टस से साभार)



अग्नाशय कैंसर (CANCER OF PANCREAS)

डा० जहानसिह चौहान

परिचय-अग्नाशय का कैसर बहुत कम देखने को मिलता है। यह कैसर समस्त प्रकार के कैसरो मे केवल १ से २ प्रतिशत होता है।

Cancer of the Pancreas occurs in older people of both the Sexes

इसका सक्रमण प्रधानरूप से ३० से ७० वर्ष के बीच की अवस्था वाले व्यक्तियो मे होता है एव स्त्रियो तथा पुरुषो मे समान रूप से होता है। अग्न्याशय का कैसर मुख्य रूप से अग्न्याशय के सिर (Head of the Pancreas) मे अधिक होता है जो कि इसके अन्य भागो से २/३ अधिक होता है।

प्राय जीर्ण अग्न्याशय शोथ (Chromic Pancreatitis) से अक्रान्त व्यक्ति इस कैसर से ग्रस्त होते है। जब यह कैसर प्रसारित होता है तब यह ग्रहणी की मासपेशियो, आमाशय, कोलन आदि पास के अवयवो को भी आक्रान्त कर लेते है। इसके अतिरिक्त इस कैसर से लसिका ग्रन्थिया, रक्त, यकृत् तथा अस्थिया भी विक्षेप रूप से अक्रान्त होती है।

अग्न्याशय कैंसर-यह ७० प्रतिशत शीर्ष भाग मे होता है तथा २५ प्रतिशत इसकी पुच्छ या गात्र मे होता है। इसके शीर्ष भाग मे होने वाले कार्सीनोमा के लक्षण इसके समीप होने वाले या इसकी प्रणाली मे होने वाले अर्बुदो के लक्षणो के समान होते है।

रोग के कारण-

अग्न्याशय कैसर के कारणो का अब तक सही पता नहीं लग सका है। जीर्ण अग्न्याशय शोथ इसका एक कारण अवश्य माना जाता है।

अग्न्याशय कैंसर के लक्षण-

- इसमे उदर मे वेदना, कामला (Jaundice) एव भार मे ह्रास होता है।
- पित्ताशय फूला हुआ रहता है।
- कुछ दिन बाद वेदना बराबर रहने लगती है जो कि पीठ की ओर जाती है।
- अधिजठर मे इसको स्पर्श किया जा सकता है।
- अर्बुद यदि प्रणाली मुख मे हो तो मल मे अदृश्य रक्त की उपस्थिति (Occult Blood) मिलती है। एव ड्यूडेनम की 'C' विस्तृत हो जाती है।
- यदि कैंसर अग्न्याशय की पुच्छ या गात्र मे होता है तो प्रथम केवल उदर के ऊर्ध्व भाग मे मन्द वेदना रहती है, भार मे कमी तथा भूख मारी जाती है। परन्तु कैसर के कुछ दिन बाद बढने पर अधिजठर मे तीव्र वेदना होने लगती है। यह वेदना वाम पृष्ठ की ओर जाती है। वाम अधिजठर मे पिण्ड की प्रतीति होती है।
- टागो की शिराओ मे घनस्र शिराशोथ (Thrambophlbitis) इसका मुख्य लक्षण होता है।

अग्न्याशय की द्वीपिका कोशिका के कैंसर के लक्षण (Sumptoms of isletcell cancer of Pancrease)-

इसके लक्षण इन्सुलिन की अत्यधिक उत्पत्ति के कारण होते है। कम उमर के रोगी जो अल्पग्लूकोणरक्तता से आक्रान्त रहते है, उनमे से अधिकतर रोगी इस कैसर से आक्रान्त रहते है। इसके लक्षणो के अन्तर्गत-

- थकान का अनुभव करना।
- बेचैनी एव कमजोरी।
- ठडे पसीने का निकलना।
- धडकन एव हाथ पैर मे कम्पन्न।
- भय, क्षुधा, तापक्रम की कमी, नाडी की गति मे तीव्रता एव रक्तचाप मे वृद्धि।
- इस अर्बुद के कारण आमाशय मे अम्लस्राव अत्यधिक स्रवित होने लगता है।
- आमाशय मे अनेक व्रण बन जाते हैं।

- रोगी तीव्र अतिसार का होना बताता है। जिससे शरीर मे डिहाइड्रेशन हो जाता है।
- क्ष-किरण चित्रण (X-Ray) से उर्ध्व क्षुद्रान्त्र मे गति के ह्रास होने के चिह्न मिलते है।

नोट-इस प्रकार के कैंसर को अल्फासैल ट्यूमर। जो लिन्जर इलीसन सिण्ड्रोम भी कहते है। यह बहुत छोटे-छोटे अर्बुद हैं जो अग्न्याशय मे पैदा होते है।

चिकित्सा-

१ **अल्प चिकित्सा** (Surgery)

- यदि कैंसर का पता आरम्भ मे ही चला जाता है और कैंसर छोटे आकार मे होता है तो शल्य चिकित्सा से केवल पेन्क्रियेटिक डक्ट को निकाल दिया जाता है।
- यदि कैंसर पास के अवयवो मे प्रसारित हो गया हो तो-

  The Bile duct in the Duodemum or the oluodemum it self Tham Surgery is performed only to remove the obstruction so as to remove Jaundice

२ **रेडिएसन** (Radiation)-शल्य चिकित्सा सम्भव होने पर इस विधि का उपयोग किया जाता है। इसके अर्न्तगत कोवाल्ट-६० (Cobalt-60) का प्रयोग उत्तम रहता है।

३ **कीमोथेरापी** (Chemotherapy)-5 फ्लूरोयूरासिल को अकेले अथवा एड्रियामाइसिन एवं मिटोमाइसिन-सी के साथ सेवन कराया जाता है।

अब शल्य चिकित्सा विस्तार से

यदि अग्न्याशय के शीर्ष मे कैसर अभी छोटा ही हो तो अग्न्याशय एव डेयोडेनम का समूल छेदन कर दे तथा पित्त प्रणाली एव आमाशय का क्षुद्रान्त्र से सम्मिलन (Choledocho jejunostmy & Gastro Jejunostomy) कर दे।

यदि कार्सीनोमा समूल छेदन के योग्य न हो तो पित्त प्रणाली (Bile duct) का क्षुद्रान्त्र से सम्मिलन कर दे। यदि डिपोडेनम मे अवरोध की सम्भावना हो तो आमाशय क्षुद्रान्त्र का भी सम्मिलन कर देना चाहिए।

अग्न्याशय के गात्र एव पुच्छ मे कार्सीनोमा होने पर उसकी भी इस विधि से चिकित्सा करे।

वीटा सैल ट्यूमर की चिकित्सा मे-रोगी की शिरा मे सूचीवेध के द्वारा ग्लूकोज के १० प्रतिशत घोल का आधार करे। एव शल्य चिकित्सा द्वारा अर्बुद का छेदन कर देना चाहिए। शल्य कर्म के समय भी १० प्रतिशत ग्लूकोज घोल I/V देते रहना चाहिए।

अल्फा सैल ट्यूमर की चिकित्सा मे-शल्य चिकित्सा उत्तम। यदि अग्न्याशय के इस अर्बुद का पता चल जाये तो इसका छेदन (Excison) कर दे। यदि इसका पता न चल पाये परन्तु उपरोक्त लक्षण उपस्थित हो तो आशिक आमाशय छेदन एव वेगस तत्रिका का छेदन कर दे।

इस अर्बुद मे अग्न्याशय की पुच्छ एव गात्र का छेदन कर देना चाहिए।

अग्न्याशय कैंसर की आयुर्वेदीय चिकित्सा

आयुर्वेद ग्रन्थो मे अग्न्याशय कैंसर की चिकित्सा उपलब्ध नहीं। गुजरात के वैद्य वापालाल जी ने अग्न्याशय कैंसर के रोगियो मे एक योग शतप्रतिशत पाया है जिसे नीचे दिया जा रहा है-

यह योग गुड आर्द्रक के नाम से जाना जाता है। इस योग का वर्णन चरक सहिता के शोथाधिकार प्रकरण के अन्तर्गत (चरक चि० अ० १७-४४-४५) दिया गया है-

आर्द्रक स्वरस २० ग्राम, गुड २० ग्राम दोनो को मिलकर दिया जाता है। अब प्रतिदिन दोनो की मात्रा २०-२० ग्राम बढाते जाना चाहिए। २४० ग्राम तक दोनो की मात्रा बढाना है। एक माह औषधि सेवन कराई जाती है।

आर्द्रकरस और गुड हज्म हो जाने के बाद दूध, यूस या फलो के स्वरस को आहार के रूप मे देना चाहिए। फलो का रस अधिक लाभकारी रहता है। ४५० एम० एल० आर्द्रक रस+४५० ग्राम गुड एक साथ न पी सके तो ३-४ मात्रा करके थोडी देर के अतर से दिया जा सकता है।

नोट-
- आर्द्रक स्वरस मे पानी बिलकुल न मिलाये।
- गुड शुद्ध तथा देशी हो।
- पीने के लिए गर्म किया हुआ पानी दे।
- रोगी को इस औषधि के प्रारम्भ करने के थोडे ही दिनो मे थोडा-थोडा सुधार दिखायी देने लगता है।



उदर रोग निदान चिकित्सा

द्वितीय भाग एवं अनुभवांक



चिकित्सा खण्ड



गुदा के रोग
DISEASES OF THE RECTUS

अर्श (PILES)

वैद्य गोपीनाथ पारीक "गोपेश", सम्पादक-"गुदरोग चिकित्साक"
पचार (सीकर)

नासा, अक्षि, कर्ण, नाभि एव लिग आदि पर भी अर्श सदृश मासाकुर उत्पन्न होते है, किन्तु अर्शोरोग से गुदा पर होने वाले अर्श का ही बोध होता है। इन्हे गुदज, गुदकील, गुदाकुर, दुर्नाम के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग को मूलरोग भी कहा है-

ग्रन्थिगुल्मयकृदद्भुतवृध्यष्ठीलकोदरबलक्षयशूला ।
तन्निभित्तजनिता यत एते मूलरोग इति त प्रवदन्ति।।

-कल्याणकारक १२/९० ।

अत्यन्त कष्टप्रद एव दुश्चिकित्स्य होने से इसे भी महारोग कहा गया है-

वातव्याधि प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगन्दरम्।
अश्मरी मूढगर्भश्च तथैवोदरमष्टकम् ।।
अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्यतमा गदा ।।

-सुश्रुत सू० ३३/४।

आयुर्वेद मे व्याधियो के नाम एक विशिष्ट प्रकार से और शास्त्रीय आधार पर रखे गये है। भगवान् चरक ने व्याधियो के अपरिसख्येत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है-

त एवापरिसख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि।
रुजावर्णसमुत्थान स्थानसस्थाननामभि ।।
(निदानवेदनावर्णस्थानसस्थाननामभि)
व्यवस्था करण तेषा यथा स्थूलेषु सग्रह ।।

-चरक सू० १८/४२-४३।

अर्शोरोग रुजाप्रधान नाम का उदाहरण है। शत्रुवाचक "अरि" और हिंसार्थक "श्रृ" धातु के योग से अर्श शब्द बना है। जो रोग अरि के समान आतुर को अपार हिंसा या कष्ट प्रदान करे-

"अरिवत् प्राणान् श्रृणाति हिनस्तीत्यर्श इति पृषोदरादिपाठान्निरुक्तिमाहु । -विजयरक्षित।

अरिवत् विशसति इति अर्शांसि।

-अ० स० नि० ७।

अरिवत् प्राणिनो मासकीलका विशसन्ति यत्।
अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधत ।।

-अ० हृ० नि० ७/१।

गुदस्यान्तर्वहिश्चापि प्ररोहन्त्यकुरास्तु ये।
अर्शांसि ते निगद्यन्ते श्रृणन्त्यरिसम यत ।।

-सिद्धान्त निदान ६/४१९।

अर्शोरोग मे तीनो दोष अपने पाचो स्वरूपो एव पाचो स्थानो मे प्रकुपित हो जाते है। गुदा की तीनो वलिया भी इस रोग से आक्रान्त रहती हैं, सुतरा सार्वदैहिक लक्षण प्रकट होते है। एतावता परम दु खदायी अनेक व्याधियो का जनक यह रोग कष्टसाध्य होता है।

भगवान् चरक ने तीन रोगमार्ग कहे हैं-(१) शाखा (बाह्य रोगमार्ग), (२) मर्मास्थि सन्धि (मध्यम रोगमार्ग), (३) कोष्ठ (आभ्यान्तर रोगमार्ग)। कोष्ठ पुनरुच्यते महास्रोत-च० सू० ११/४। अर्शोरोग महास्रोत की व्याधि है। महास्रोत प्राणवहस्रोत का मूल है-प्राणवहाना स्रोतसा हृदय मूल महास्रोतश्च-चरक वि० ५/७। महास्रोत के विभिन्न भागो के रचना विशेष सूचक शब्द निम्नाकित है-

१ आमाशय (Stomach)
२ क्षुद्रान्त्र (Small Intestines)
३ उण्डुक (Caecum)
४ स्थूलान्त्र (Large Intestines)
५ उत्तरगुद (Rectum)
६ अधरगुद (Anus)

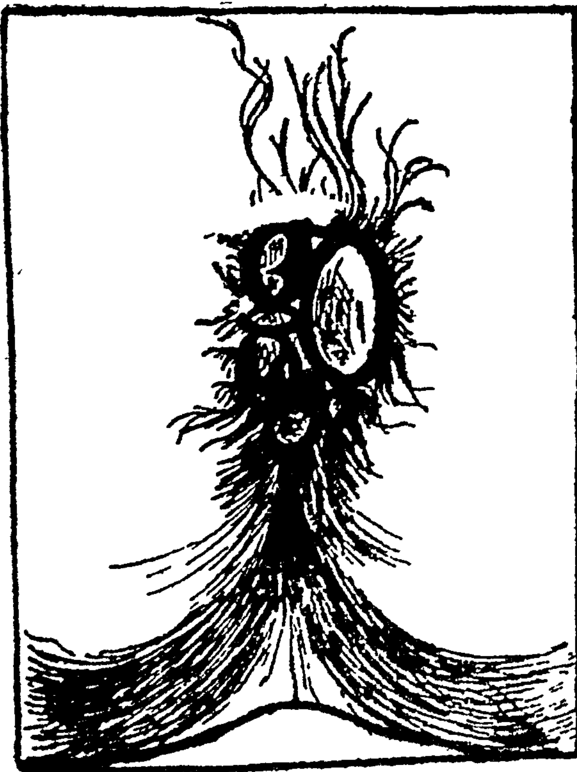
सबसे बाहर गुदौष्ट अर्द्धांगुल क्षेत्र अधरगुद के नाम से जाना जाता है। बृहदन्त्र (स्थूलान्त्र) के अन्तिम साढे चार अगुल

वाला भाग उत्तरगुद कहा जाता है। इसमे ऊपर से नीचे लम्बाई के रूप मे शिरा जाल फैला हुआ है। गुद एव आन्त्र की सभी शिराये मिलकर प्रतिहारिणी महाशिरा बनाती है। इस प्रतिहारिणी शिरा मे रक्ताधिक्य होने से अर्श उत्पन्न होते है। इस उत्तरगुद मे शख के आवर्त के सदृश अर्श की अधिष्ठान रूप तीन वलिया (Mucosal folds of the rectum) होती है।

(१) **प्रवाहिणी**-गुदौष्ठ के ऊपर मल के प्रवाहण (प्रवर्तन) मे भाग लेने वाली वलि को प्रवाहिणी वलि कहा जाता है। यह मल को नीचे ढकेलती है।

(२) **विसर्जनी**-प्रवाहिणी से डेढ अगुल ऊपर विसर्जनी नामक द्वितीय वलि है। यह चौडी होकर मल को बाहर निकालती है। इस प्रकार मल का विसर्जन करने के कारण इसे विसर्जनी कहा गया है।

(३) **सवरणी**-विसर्जनी से डेढ अगुल ऊपर सवरणी नामक तृतीय वलि है। मलप्रवृत्ति के पूर्व स्वय सकुचित रहकर यह मल को नीचे जाने से रोकती है। यह मल द्वार को सकुचित करने एव मल को रोकने के कारण सवरणी कही जाती है।



अर्शांकुर

सुश्रुत सहिता के व्याख्याकार श्री हाराणचन्द्र जी ने कहा है कि वलियो की यह सारी चौडाई का मान इनकी सकुचित अवस्था को समझना चाहिए। कविराज गणनाथ जी ने इन वलियो मे ऊपर प्रवाहिणी को और नीचे सवरणी को माना है।

अर्वाचीन शारीर शास्त्री उत्तरगुद की फूली हुई सिराओ को अर्श कहते है, जो प्रत्यक्ष भी देखा जाता है। प्राचीनो ने इस शिराचक्र को वलियो मे ही गिन लिया है। मधुकोषकार ने त्वचा मास के साथ उनमे स्थित रक्त को भी अर्श का अधिष्ठान कहा है। यह रक्त शिराओ मे स्थित होने से शिराए भी अर्श के अधिष्ठान के रूप मे प्राचीनो के अभिमत से भी स्वीकार की जा सकती हैं।

रोग परीक्षा-

(१) अर्श मे नाडी स्थिर, वक्र, कभी मन्द एव कभी सीधी चलती है। सभी प्रकार के अर्श मे प्राय कोष्ठबद्धता रहती है, अत नाडी भरी हुई चलती है। आम की नाडी भी इसी प्रकार चलती है। शुष्कार्श मे नाडी स्थिर-सी (चञ्चलतारहित) और कठोर (वैद्य की अगुली को ठेलती-सी) चलती है, किन्तु आम की नाडी मे कठोरता का अनुभव नही होता, क्योकि शुष्कार्श मे विबन्ध रहता है, जबकि आम मे क्वचित्। रक्तार्श मे पहले तो शुष्कार्शवत् ही नाडी चलती है, किन्तु जब रक्त निकल जाता है, तो नाडी मन्द चलने लगती है।

(२) रोगी अग्निमाद्य, अतिसार, ग्रहणी, आनाह का इतिहास व्यक्त करता है। अर्शोरोग मे अग्निमाद्य की कारणता प्रमुख है-

अर्शोऽतिसारग्रहणीविकारा
प्रायेण चान्योन्यनिदानभूता।
सन्नेऽनले सन्ति, न सन्ति दीप्ते
रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम्।।

-अ० हृ० चि० ८/१६४।

(३) **यन्त्र द्वारा परीक्षण**-अर्शोयन्त्र का महर्षि सुश्रुत ने नाडीयन्त्रो मे परिगणन किया है। अर्शोयन्त्र गोस्तन के आकार का होता है। यह पुरुषो के लिए चार अगुल लम्बा और पाच अगुल सारी गोलाई के दायरे वाला होता है। स्त्रियो के लिए यह यन्त्र ६ अगुल लम्बा होना चाहिए। इन्हीं अर्शोयन्त्रो के आधार पर पाश्चात्य वैद्यकशास्त्र मे प्राक्टसकोप (Proctoscope)

का वर्णन मिलता है, जो कई आकृतियो के होते है। इनके प्रयोग से आर्शोरोग का निदान (Diagnosis) किया जाता है।

(४) **मल परीक्षा**-अर्शों से रक्तस्राव होने पर मल के ऊपर प्राय चमकदार गहरे लाल वर्ण की रेखा खिच जाती है। यह रक्त की मात्रा रोग की स्थिति के अनुसार न्यूनाधिक हो सकती है।

गुदभ्रश मे रक्तस्राव प्राय मलत्याग के बाद होता है। गुदकर्कटार्बुद मे रक्तस्राव के साथ पूय भी मल के ऊपर पाया जाता है। इसमे रक्त और पूय की मात्रा कभी अधिक एव कभी बन्द हो जाती है। गुदविदार मे अर्श की भाति रक्तस्राव के साथ आघात का भी इतिहास मिलता है। अधोग रक्तपित्त, यकृत्क्षय, श्वेतकणो की अल्पता, स्कर्वी, आन्त्रिक ज्वर, आन्त्रक्षय आदि रोगो मे भी गुदा से रक्तस्राव होता है, किन्तु इनमे इन व्याधियो का इतिहास मिलना आवश्यक है। फिरग, उपदश पूयमेहजन्य गुदशोथ मे भी यदा-कदा मल के साथ श्लेष्मायुक्त रक्तस्राव हो सकता है। रक्तातिसार मे रक्त मल मे मिला हुआ होता है। अत इन सब प्रकारो से अर्शोरोग का सम्यक् निदान कर लेना चाहिए।

अर्शोरोग के सामान्य हेतु-

(१) अव्यायामात्, (२) दिवास्वप्नात्, (३) वेगविधारणात्, (४) सुखशय्यासनात्, (५) मासमघातिसेवनात्, (६) स्नेहातियोगात्, (७) मलसञ्चयात्, (८) हृदयरोगात्, (९) गुदार्बुदात्, (१०) पौरुषग्रन्थिवर्धनात्, (११) अतिविरेचनात्, (१२) असशोधनात्, (१३) अपानवातवर्धनात्, (१४) यकृत् प्लीह्नोश्च वर्धनात्, (१५) अतिव्यवायत्, (१६) यानसङ्क्षोभणात्, (१७) विषमकठिनोत्करासनात्, (१८) लोष्ठचैलादिघट्टनात् (१९) अति शीताम्बुसस्पर्शात्, (२०) निरन्तर प्रवाहणात् (२१) कर्शनात्, (२२) आमगर्भप्रपतनात्, (योगित) (२३) गर्भवृद्धिप्रपीडनात्, (योपिता) (२४) विरूक्षाणाशनात्, (२५) वस्तिकर्मविभ्रात्।

इन कारणो से गुदा की सिराओ की विकृति अर्श को उत्पन्न करती है। ये सिराये उपश्लेष्मलत्वचा के शिथिल तन्तुओ मे रहती है अत सर्वप्रथम इन्हीं पर दबाव पडता है। इन सिराओ को आश्रय देने के लिए इनके चारो ओर कोई कठिन धातु न होने से, अन्य सिराओ की भाति इनमे कपाट न होने से तथा गुदा की लम्बाई मे स्थित रहने से रक्त को रुकने का अधिक अवसर मिलता है सुतरा रक्तप्रवाह मे बाधा उत्पन्न होने से अर्श की उत्पत्ति हो जाती है।

दोष-वात, पित्त, कफ।

दूष्य-रक्त, मास, मेद।

अधिष्ठान-त्वचा।

पूर्वरूप-व्याधि की योग्यता समझने, दोषावस्था का व्याधि सम्बन्ध स्थापित करने, दोषो की व्याधिज्ञान मे सीमारेखा निश्चित करने एव भावी व्याधि के स्वरूप को पूर्व ही समझकर उपक्रम का सुयोग बताने वाला निदान पचक का महत्वपूर्ण घटक पूर्व रूप है।

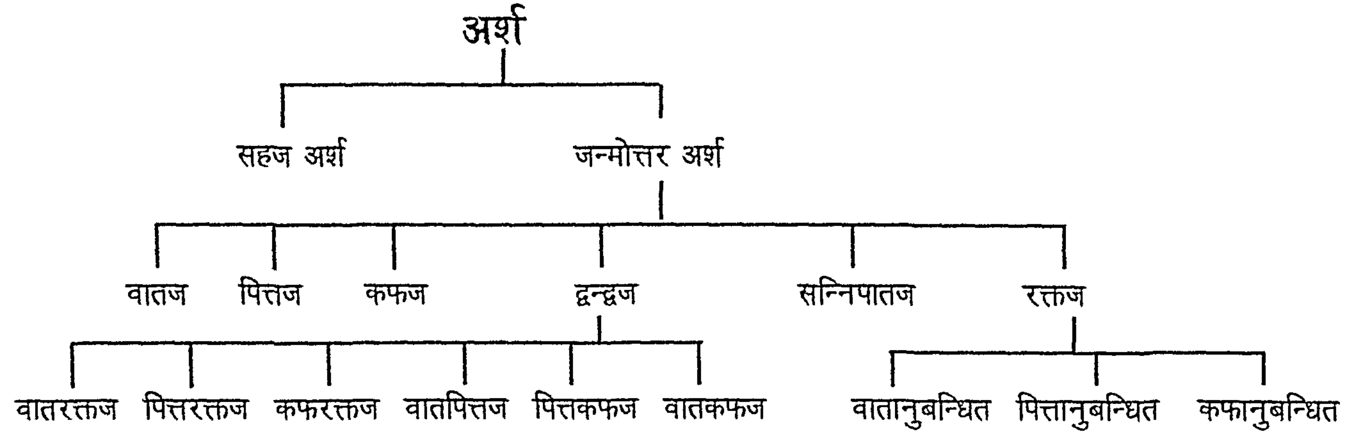
स्थान सश्रयावस्था मे दोष दूष्यो की पारस्परिक सम्मूर्च्छना से एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया की उत्पत्ति होती है जिसकी अभिव्यक्ति जिन विशिष्ट लक्षणो से होती है वे पूर्वरूप की सज्ञा से प्रयुक्त होते है। वे लक्षण हैं-

१ अरुचि, २ अग्निमाद्य, ३ अम्लोद्गार, ४ परिदाह, ५ तृषा, ६ शक्तिसाद (पैरो की शिथिलता), ७ आटोप ८ अन्त्रकूजन, ९ गुदपरिवर्तना (गुदा मे काटने जैसी पीडा), १० विबन्ध, ११ बहुमूत्र, १२, आलस्य, १३ दुर्बलता, १४ भ्रम, १५ तन्द्रा, १६ निद्राधिक्य।

अर्श के भेद-

प्रकृतिसमसमवायारब्ध होने से महर्षि सुश्रुत ने द्वन्द्वज अर्श नहीं माने है। सस्थान सश्रय की दृष्टि से बाह्यार्श (External), आभ्यन्तर अर्श (Internal) ये दो भेद किये जाते है। भगवान्

चरक ने चिकित्सा सुविधानुसार शुष्क एव स्रावी ये दो भेद किये है। वातकफोल्लवण शुष्क तथा पित्तरक्तोल्वण परिस्रावी कहलाते है। शुष्कार्श ही प्राय बाह्य अर्श और स्रावी आभ्यन्तर अर्श होते है। यूनानी मतानुसार शुष्कार्श को रीही (बादी) बवासीर और परिस्रावो को खूनी बवासीर कहा गया है।



सामान्य लक्षण-

१ विबन्ध, २ अजीर्ण, ३ शौच के समय वेदना, ४ रक्तस्राव, ५ गुदकण्डू, ६ शौच के समय अर्श का बाहर निकलना। किसी रोगी को अधिक वेदना एव किसी रोगी को अधिक रक्तस्राव होता है। पूर्वरूप मे कहे गये लक्षण ही अधिक व्यक्त होकर रोगी को व्यथित करते हैं।

१ सहजार्शोरोग-

माता-पिता के उपचार तथा रोगी के पूर्वकृत पापकर्म ही सहजार्श मे कारण बनते है। इनकी उत्पत्ति गर्भावस्था मे ही हो जाती है। अष्टागहृदयकार की भाति आधुनिक चिकित्सा शास्त्र मे भी सहजार्शा का वर्णन नहीं मिलता है। फिरगजन्य अर्श यदि माता-पिता को हो तो सन्तति को हो सकता है। इसमे त्रिदोषज के लक्षण मिलते है-

(१) विकृत शारीर लक्षण (रचनात्मक परिवर्तन)-कृशता, वैवर्ण्य, दुर्बलता आदि।

(२) विक्रिया शारीर लक्षण (कार्यात्मक परिवर्तन)-विबन्ध, गुदशूल, प्रवाहिका, परिकर्तिका, मन्दाग्नि, अम्लोद्गार, कास, श्वास, वमन, अरुचि, प्रतिश्याय आदि।

२ वातज अर्श-

वैसे समस्त अर्श त्रिदोषज होते है किन्तु दोषो की प्रधानता से वातार्श, पित्तार्श आदि व्यपदिष्ट होते है-

कारण-कषाय कटु तिक्त रूक्ष शीत लघु तथा अल्प आहार, तीक्ष्ण मद्य, अति व्यवाय, उपवास, शीत देश, शीत काल, अतिव्यायाम, शोक अधिक वायु का सेवन, अधिक धूप का सेवन आदि।

लक्षण-सिर, पार्श्व कटि, जघा, वक्षण मे शूल, छीक, डकार, विबन्ध, हृदय प्रदेश मे पीडा, अरोचक, कास, श्वास, विषमाग्नि, कर्णनाद, भ्रम, गुल्म, प्लीहा, उदररोग तथा अष्ठीला आदि होते है। त्वचा, नख, मुख नेत्र मल काले पड जाते है। रोगी फेन, पिच्छा, गाठ युक्त अल्प मल त्यागता है। गुदाकुर बिब्बी, खर्जूर, बेर, कपास फल, कदम्बपुष्प सर्षप समान होते है।

३ पित्तज अर्श-

कारण-कटु तिक्त अम्ल लवण तथा उष्ण आहार, अग्नि सेवन, आतप सेवन, क्रोध, मद्यपान, परिनिन्दा, परद्वेष, विदाहीतीक्ष्ण उष्ण अन्नपान।

लक्षण-दाह, पाक, ज्वर, स्वेद, तृष्णा, मूर्च्छा, अरुचि, मोह होते है, त्वचा नख, मुख, दात, मूत्र मल हरे-पीले या हरिद्रावर्ण होते है। गुदाकुर स्रावी पतले, कोमल लटके हुये यव सदृश दुर्गन्धित नीलमुख होते है।

४ कफज अर्श-

कारण-मधुर स्निग्ध, शीत, लवण, अम्ल गुरु पदार्थों का सेवन, अव्यायाम, दिवास्वप्न, एक आसन पर बैठे रहना, पूर्व

दिशा की प्रात सीधी हवा का सेवन, शीत देशनिवास, शीतकाल,. अधिक चिन्तन।

लक्षण-वक्षण प्रदेश मे बद्धता, गुद मूत्राशय नाभि मे वेदना कास, श्वास, हिक्का, प्रसेक, अरुचि, पीनस, मूत्रकृच्छ्र, शीतज्वर, नपुसकता, अग्निमाद्य वमन लक्षण होते है। त्वचा, मुख, नख, दन्त, मल-मूत्र पाण्डुवर्ण व स्निग्ध रहते हैं। मल वसा व कफ जैसा निकलता है। गुदांकुर स्निग्ध, पिच्छिल, भारी, दृढ शोक कण्डू युक्त कटहल की कुठली या गोस्तनतुल्य।

५. रक्तार्श-

कारण-पित्त प्रधान अर्श के ही प्रधान कारण, इसकी उत्पत्ति के कारण होते है।

गर्भवती के गर्भ बढने से यकृत् प्लीहा के बढने से यकृत् की ओर बहने वाली सिराओ पर दबाव से वे फूल जाती हैं। रक्त के दबाव से गुद वेष्टन सिराचक्र की सिराये फट जाती है।

रक्तार्श मे दो प्रकार का अनुबन्ध होता है-वात का और कफ का (पित्त का अनुबन्ध तो रक्तार्श मे सदैव ही रहता है अत इसका पृथक् वर्णन नही किया गया है)।

१ **वातानुबन्धित**-अर्श का कारण रूक्षता होती है।

२ **कफानुबन्धित**-अर्श की उत्पत्ति का कारण गुरु स्निग्धि पदार्थ होते है।

६ द्वन्द्वज अर्श-

कारण-१ वातपित्त के प्रकोपक कारण।

२ वातकफ के प्रकोपक कारण।

३ पित्तकफ के प्रकोपक कारण।

४ वातरक्त के प्रकोपक कारण।

५ पित्तरक्त के प्रकोपक कारण।

६ कफरक्त के प्रकोपक कारण।

लक्षण-रक्तार्श के गुदकील की आकृति वट की जटा के समान तथा वर्ण गुजा या मूगा के समान होता है और पित्त के लक्षण भी मिले हुये रहते है। ये अर्श कडे मल से दबने पर यकायक गरम दूषित रक्त का अत्यधिक स्राव करते हैं। रक्तस्राव से रोगी मेढक के समान पीला हो जाता है तथा रक्तक्षय से उत्पन्न रोगो से पीडित होता है। उसके वर्ण बल, उत्साह और ओज मे न्यूनता आ जाती है तथा इन्द्रिया भलीभाति कार्य नहीं करती।

१ **वातानुबन्धित**-मल श्यामवर्ण का कठिन और रूखा होता है। अपानवात की प्रवृत्ति नहीं होती है। अर्शों से गिरने वाला रक्त अरुणवर्ण का पतला और फेनयुक्त होता है। कमर उरु और गुदा मे शूल होता है। दुर्बलता अधिक होती है। अर्श की उत्पत्ति का कारण रूक्षता होती है।

२ **कफानुबन्धित**-मल ढीला, श्वेत पीतवर्ण का, स्निग्ध भारी एव शीतल होता है। स्रवित रक्त गाढा, तन्तु युक्त, पीत, पिच्छिल होता है। गुदा पिच्छिल पदार्थ से लिप्त और जड होती है।

लक्षण-१ वात पित्त के समन्वित लक्षण।

२ वात कफ के समन्वित लक्षण।

३ पित्त कफ के समन्वित लक्षण।

४ वात रक्त के समन्वित लक्षण।

५ पित्त रक्त के समन्वित लक्षण।

६ कफ रक्त के समन्वित लक्षण।

७ त्रिदोषज अर्श-

कारण-तीनो दोषो के निर्दिष्ट हेतु।

लक्षण-तीनो दोषो के लक्षणो से युक्त।

उपद्रव-१ गुदभ्रंश, २ भगन्दर, ३ उदावर्त (वात-मूत्र-पुरीषाणम्), ४ बद्धगुद, ५ यकृद्वृद्धि, ६ पाण्डु ७ कामला, ८ शोथ (करपादयो), ९ गुदपाक, १० हृत्पार्श्वशूल, ११ अतिसार, १२ तृष्णा, १३ शोषज्वर, १४ वमन, १५ मूर्च्छा, १६ अरुचि, १७ श्वास।

साध्यासाध्यता-

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते।
याप्यन्ते दीप्तकायाग्ने प्रत्याख्येमान्यतोऽन्यथा।।

-चरक चि० १४/३०।

वलि	दोषोल्वणता	साध्यासाध्यता
प्रथम वलि	एकदोषोल्वण	साध्य
,,	द्विदोषोल्वण	कृच्छ्रसाध्य
,,	त्रिदोषोल्वण	याप्य
द्वितीय वलि	एकदोषोल्वण	कृच्छ्रसाध्य
,,	द्विदोषोल्वण	याप्य
,,	त्रिदोषोल्वण	असाध्य
तृतीय वलि	एकदोषोल्वण	याप्य
,,	द्विदोषोल्वण	असाध्य

पूर्वनिर्दिष्ट उपद्रवो से युक्त रोगी भी असाध्य कहा गया है। ये सर्वलक्षण मिलित प्राय असाध्यता के द्योतक है। बद्धगुद, शूल, मूर्च्छा, गुदपाक आदि पृथक्-पृथक् लक्षण भी मृत्यु के कारण बन जाते है। सबसे अधिक घातक स्थित बद्धगुद होने से या गुदपाक के कारण रक्त मे विष प्रविष्ट होने से विषमयता (Toxiemia) या पूयमयता (Pyaemia) से होती है।

वृद्धावस्था मे होने वाले, तृतीयवलि मे उत्पन्न होने वाले, सहज एव त्रिदोषज अर्श भी असाध्य कहे गये है। अर्श के बार-बार फूलने से जब अर्श जीर्णावस्था को प्राप्त हो जाते है, तब अनेक सास्थानिक तथा स्थानिक उपद्रव उत्पन्न होकर रोगी के जीवन को सकट मे डाल देते है।

चिकित्सा-

प्रतिषेधात्मक उपाय-(१) पूर्व मे कहे गये रोग के निदानो का सदैव परिवर्जन करना चाहिए।

(२) व्यायाम, आसान क्रियाओ से इस रोग का प्रादुर्भाव नहीं हो पाता। ये उपयोगी आसन है-मयूरासन, शीर्षासन, मत्स्येन्द्रासन, चतुष्पादासन आदि। पद्मासन लगाकर गुदा को ऊपर खींचना और ढीला करने की क्रिया ५-७ मिनट करने से भी गुदविकार नहीं होते।

(३) गणेश क्रिया-मलत्यागने के पश्चात् अपनी तर्जनी अगुली गुदद्वार मे डालकरचारो ओर घुमाकर मल पोछने की क्रिया को गणेश-क्रिया के नाम से जाना जाता है। यह प्रतिषेधात्मक एव प्रशमनात्क भी उपाय है।

इस क्रिया के पश्चात् काशीसादि तैल (चरक) या बृहत्काशीसादि तैल (भा० प्र०) का प्रयोग करे।

प्रशमनात्मक उपाय-शरीर मे दोषो के वैकृत होने पर शरीर को ही आधार मानकर जिन उपायो की कल्पना की जाती है, वे तीन प्रकार के है-

अन्तरोषधपानानि बहिर्देशे च या क्रिया ।
शस्त्रकर्मविधान च मेषज त्रिविध स्मृतम् ।।

-भेलसहिता विमान ३।

(१) थोडे दिनो तथा कम दोषो वाले अर्श औषधि तथा पथ्य से ठीक हो जाते है।

(२) मृदृ, फैले हुए, जमे हुये, आगे से उठे हुये गुदाकुर क्षार द्वारा ठीक होते है।

(३) मोटे, मजवूत तथा कठिन गुदाकुर अग्निकर्म से शान्त होते है।

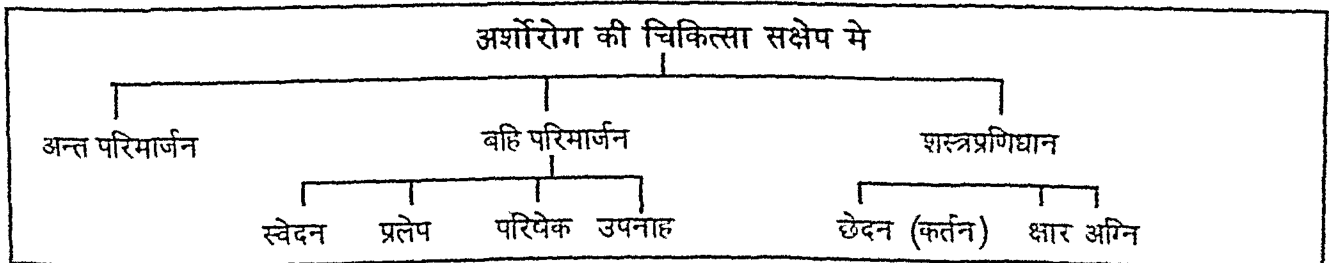
औषधि उपक्रम-

(१) वातज अर्श मे-स्नेहन, स्वेदन, उपनाह आदि लाभप्रद।

(२) पित्तज अर्श मे-रेचन आदि उपयोगी।

(३) कफज अर्श मे-वमन, दीपन, पाचन आदि लाभप्रद।

(४) रक्तार्श मे-रक्तपित्तनाशक उपचार करे। वातानुबन्धी रक्तार्श मे स्निग्धशीत और कफानुबन्धी रक्तार्श मे



रूक्षशीत उपचार लाभप्रद है। यदि पित्त कफ की प्रधानता हो तो वमन-विरेचन करना चाहिए। यदि रोगी दुर्बल होने से शोधन के योग्य नहीं हो या रोग मे कफ अनुबन्ध हो तो लघन भी लाभकारी है। प्रारम्भ मे दूषित रक्त को रोकना नहीं चाहिए। दूषि‌त रक्त के निकल जाने के पश्चात् स्तम्भन करना हितावह है। अग्नि उद्दीप्त करने हेतु दोष-पाचन हेतु एव रक्तस्तम्भन हेतु तिक्तरसात्मक द्रव्यो का प्रयोग गुणकारी है। अत्यधिक रक्तस्राव हो जाने से वायु की वृद्धि होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति मे अभ्यग, पान, अनुवासन के द्वारा स्नेहनो का प्रयोग कर वायु को जीतना चाहिए। वात-कफ के अनुबन्ध से रहित पित्तोल्वण रक्त जो ग्रीष्म काल मे निकल रहा हो, उसका स्तम्भन अनिवार्य है।

(५) द्वन्द्वज अर्श मे-द्वन्द्वज चिकित्सा प्रयुक्त करनी चाहिए।

(६) त्रिदोषज अर्श मे-मिश्र चिकित्सा द्वारा लाभ पहुचाया जा सकता है।

(७) सहज अर्श मे-इसमे भी मिश्र चिकित्सा करनी चाहिए।

सभी प्रकार के अर्शोरोग मे विबन्ध न रहने पाये, यह सदा ध्यान रखना आवश्यक है। क्योकि विबन्ध इस रोग का मुख्य हेतु कहा गया है।

सामान्य क्रिया-

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये।
अनुपानौषधद्रभ्य तत् सेव्य नित्यमर्शसै ।।

-चक्रदत्त ५/२।

(१) अनुलोमन-विबन्ध अर्श का मुख्य कारण बनता है। अत इस हेतु अनुलोमन द्रव्य हितावह है-

कृत्वा पाक मलाना यभ्दित्वा बन्धमधो नयेत्।
तच्चानुलोमन ज्ञेय वथा प्रोक्ता हरीतकी।।

-शा० पू० ख० ४।

इस प्रकार के द्रव्य सामान्य विरेचक होते है। भगवान् चरक ने जिन द्रव्यो को विरेचनोपग कहा है, वे सामान्य विरेचक (Laxatifives) है। अनुलोमन द्रव्य है-द्राक्षा, अञ्जीर, आलुबुखारा, उन्नाव, त्रिफला, पक्व फालसा, त्रायमाण, वाम्तृक बीज, ईसबगोल, एरण्डस्नेह आदि।

(२) दीपनीयम्-पूर्व मे कहा जा चुका है, कि अग्निमाद्य अर्श का प्रमुख कारण है। कायाग्नि सब अग्नियो मे प्रधान है-"अन्नस्य पक्ता सर्वेषा पक्तॄण अधिपो मत''। इस अग्नि के प्राकृत कार्ययुक्त होने पर प्राय धात्वाग्नि भी कार्य मे तत्पर रहते है और इसकी विकृति से अन्य अग्निया मे भी विकृति होती है। इसीलिए "रोगा सर्वेऽपि मन्देग्नौ'' ऐसा आयुर्वेद का मत है।

अग्नि को दीपन करने वाले, भूख लगाने वाले द्रव्य कहलात है-

दीपनमन्तरग्ने सधुक्षणम्, तस्मै हितम् दीपनीयम्।

-योगीन्द्रनाथ।

दीपनीयगण-पिप्पली पिप्पलीमूल चव्य चित्रक श्रृगवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिगुनिर्यास उति दशेमानि दीपनीयानि। चरक सू० ४।

विशेष क्रिया-

शुष्कार्शसा प्रलेपादि क्रिया तीक्ष्णा विधीयते।
स्रविणा रक्तमालोक्य क्रिया कार्यास्रपेत्तिकी।।

प्रलेपादि का वर्णन पृथक् किया गया है। यहा पर रक्तस्राव के चिकित्सा विधान का वर्णन अपेक्षित है। स्रावी अर्शो से निकलने वाले दुष्ट रक्त का स्तम्भन उपयुक्त नहीं है। दूषित रक्त रहने पर बलानुसार शोधन और लघन कराना चाहिये। पित्तजन्य स्रावी अर्श मे पित्त के द्रवगुण के कारण मल द्रवरूप मे ही आता है पुनरपि स्रावी अर्शो मे विरेचन की उपयोगिता है। सुतरा, अमलतास की गूदी या आवला या निशोथ अथवा बडी हरड के शीतल क्वाथ मे शक्कर और मधु मिलाकर प्रात पिलाना चाहिये। रक्तस्राव से वात प्रकुपित होता है अत वात मल के अनुलोमन एव रक्तस्तम्भन हेतु सुनिषण्णक चागेरी घृत (चरक) अतीव लाभप्रद सिद्ध होता है। १० ग्राम घृत कोष्ण अजा दुग्ध मे मिलाकर पिलाया जा सकता है।

दोषपाचन, अग्निवर्धन एव रक्तसतम्भन के लिए तिक्तरस वाले द्रव्य हितकारी है। केवल पित्तानुबन्धित रक्तस्राव को शीतल द्रव्यो से शीघ्र रोकना चाहिये। कफानुबन्धित रक्तस्राव मे कुटजघन वटी का अजादुग्ध से सेवन कराना चाहिये।

नीलोत्पल, मजिष्ठा, मोचरस, चन्दन, तिल और लोध्र के चूर्णो का अजादुग्ध से सेवन किया जा सकता है। इस निमित्त नागकेशर, रसाञ्जन, गिलोयसत्व, स्वर्णगैरिक आदि का भी प्रयोग हितावह है। आहार के रूप मे शालिभात अजादुग्ध के साथ लिया जा सकता है। तण्डुलोदक मे रसाञ्जन, मधु एव सितोपलादि मिलाकर पुन -पुन पान कराना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य उपयुक्त शास्त्रीय प्रयोगो का उपयोग करना चाहिये।

वालातीसारवद्भिन्न वार्चास्यर्शास्युपा चरेत्।
उदावर्त विधानेन गाढविट्कानि चासकृत्।।

अतिसार, ग्रहणी और अर्श को परस्परानुबन्धित किवा अन्योन्यनिदान भूत कहा गया है। यदि अर्शोरोग मे अतिसार हो तो वातातिसार की भाति चिकित्सा करनी चाहिए। आमानुबन्ध की स्थिति मे धन्यपचक क्वाथ की योजना करनी चाहिये। साथ मे रामवाण रस, भ्रष्ट जीरक, भ्रष्ट शतपुष्पा चूर्ण का मधुयुक्त सेवन किया जा सकता है। पश्चात् आनन्दभैरव रस, कनकसुन्दर रस, गगाधर चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण, कुटजत्वक् चूर्ण, कुटजाष्टक क्वाथ आदि प्रयोग लाभप्रद होते है। वातातिसार की भाति इसमे भी मल प्रवृत्ति की सख्या विशेष होती है सुतरा शीघ्र ही स्तम्भन की आवश्यकता होती है। महर्षि सुश्रुत ने किसी भी दोष से उत्पन्न हुये अतिसार की पक्वावस्था मे नागरमोथे के क्वाथ का उल्लेख किया है।

गुडूची, विल्व, अतिविषा और बला का समभाग चूर्ण भी तक्र के अनुपान से लाभप्रद है क्योकि ये पाचो द्रव्य वातशामक तथा साग्राहिक हैं।

मलसचय अर्शोरोग का प्रमुख हेतु है। विबन्ध की स्थिति मे अर्शोरोगी कदापि लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। भगवान् चरक ने सविबन्ध अर्श मे तीव्र रेचक औषधियो की अपेक्षा मृदुरेचक औषधिया बतलाई है-

१ गुड, घृत एव यवक्षार।

२ शुण्ठी, पाठा, गुड, फलाम्ल।

३ दुरालभी, यवानी, शुण्ठी, बिल्व, पाठा।

४ तक्र और लवण सहित यवानी, शुण्ठी, पाठा, गुड, दाडिमस्वरस पक्वाशयगत वायु के उपचारार्थ लवणोत्तर द्रव्यो का महत्व है क्योकि लवण अपनी द्रवता के कारण मल को द्रव बनाकर उसकी शरण शीलता मे वृद्धि करता है साथ मे ही मल और वायु का भी अनुलोमन करता है।

इन्हीं प्रयोगो मे एक प्रयोग है कि "भोजन से पूर्व मदिरा मे सैन्धवलवण डालकर प्रयुक्त करे। यहा पर यह स्मरण रखने की बात है कि मल विबन्ध अपानवायु की एक विकृति है और अपानवायु की विकृति मे औषधि सेवन भोजन से पूर्व होना प्रशस्त है।

चरकोक्त नागरादि घृत, पिप्पल्यादि घृत, चव्यादि घृत, स्थिराद्य घृत, तथा हिग्वष्टक चूर्ण (च० द०), हरीतक्यादि चूर्ण (च० द०), पचसकार चूर्ण (सि० भे० मणि०), दीनदयालु चूर्ण (सि० भै० मणि०), अभयारिष्ट (चरक) आदि प्रयोग लाभप्रद है। निम्नाकित प्रयोग भी हितावह होते हैं-

१ अमलतास क़ी फली का गूदा १ तोला, हरीतकी चूर्ण ६ माशा, बीज निकले हुए मुनक्का १ तोला मिलाकर ४० तोले जल मे क्वाथ करे। ५ तोला जल शेष रहने पर छानकर पिलादे।

२ कालादाना ३० ग्राम, सनामुकी (सनाय) ३० ग्राम के चूर्ण मे १० ग्राम कालानमक पीसकर मिलाले। २-३ ग्राम चूर्ण को प्रयोग मे लावे।

३ सोठ भुनी, सौफ (अधकचरी भुनी) और छोटी हरड के तैल मे तली हुई, तीनो समभाग लेकर कपडछन चूर्ण तैयार करले। ३-६ ग्राम की मात्रा मे सेवन करे।

४ कालेदाने के बीजो को घी मे सेककर मिश्री मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है।

५ सनाय और अजवायन के समभाग चूर्ण मे चतुर्थांश कालानमक मिलाकर भी काम मे लिया जा सकता है।

६ हरीतकी, निशोथ एव यवक्षार का समभाग चूर्ण भी तदर्थकारी है।

७ शतपुष्पा, सनामुकी और द्राक्षा प्रत्येक ६-६ ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर पीने से मलावरोध दूर होकर अर्शोरोग का विनाश होता है।

स्वेदन-कठिन तथा शोथयुक्त अर्श स्वेदनविधि से मृदु हो जाते है-

१ चित्रक, यवक्षार तथा बिल्वमूलत्वक् से सिद्ध तैल का अर्श पर अभ्यग कर, या पिप्पल्यादि तैल (भै० र०) का अभ्यग कर वचा और सोया के कल्क की पोटली बनाकर स्वेदन करे।

२ सहिंजने की छाल या हाऊबेर या खुरासानी अजवायन के कल्क की पोटली से भी स्वेदन करना लाभप्रद है।

३ कुलत्थ एव चावल के आटे से पिण्डस्वेद देना भी लाभदायक है।

४ ईट गरम कर पोटली मे बाधकर स्वेदन करे।

अवगाहन-स्वेदनार्थ अवगाहन की विधि भी काम मे ली जाती है इससे शोथ शूल का शमन हो जाता है।

१ अभ्यग कर बिल्वमूलत्वक् के क्वाथ को कोष्ठक (टब) मे भरकर रोगी को उसमे कुछ समय तक बैठाना चाहिये।

२ अर्क, एरण्डपत्र आदि वातघ्न पत्तो के क्वाथ का अवगाहन।

३ सुखोष्ण गोमूत्र मे अवगाहन।

४ शिग्रु, वरुण, अग्निमन्थ, विल्व के क्वाथ मे अवगाहन।

५ सतुष कच्चे जौ से साधित काजी मे अवगाहन।

६ परिस्रावी अर्शों मे शीतल तैल से अभ्यग कर ईख के स्वरस, शीतल जल या मधुयष्टि वेतस के शीतल हुये क्वाथ मे अवगाहन।

७ पद्माख, चन्दन, कुश, कास, मधुयष्टि का शीतल क्वाथ भी स्रावी अर्शों मे इस निमित्त लाभप्रद है। परिस्रावी अर्श मे अवगाहन से पूर्व चमेली के तैल या चन्दनादि तैल का गुदा पर अभ्यग कर लेना चाहिए।

परिषेचन-परिषेचन से भी स्थानीय सिराओ का सकोच होकर रक्तस्राव बन्द होता है।

१ सुखोष्ण दूध, घृत तथा तैल से परिषेचन (अर्श पर धारा प्रयोग) करे।

२ मधुयष्टि, उदुम्बर, धव, निम्ब, वासामूल, पटोलपत्र, अर्जुन, दुरालभा के क्वाथ को शीतल होने पर प्रयोग करे।

३ घृत, सिता का गुदत्रिक उपस्थ पर लेपन कर शीतल जल का परिषेचन करे।

अन्तर्धारण-१ बर्फ के टुकडे को कपडे मे लपेटकर गुदा के अन्दर रखने से अथवा उदुम्बरसार से तर प्लोत को धारण करने से भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इसका प्रयोग पुन -पुन करना चाहिए।

२ गुड, एव तिक्त घोषा (नेनवा) के फल का गूदा समभाग लेकर पीसकर मोटी वत्ती बनाकर गुदा के अन्दर रखने से शुष्कार्श नष्ट होते है।

घर्षण-१ तिक्त तोरई के चूर्ण को धीरे-धीरे अर्श पर रगडने से शुष्कार्श नष्ट होते है।

गुदप्रक्षालन-१ परिषेक व अवगाहन मे निर्दिष्ट यथावश्यक द्रव्यो से गुदप्रक्षालन करे।

२ स्रावी अर्श मे अजादुग्ध एव शुष्क अर्श मे भगा क्वाथ का प्रयोग लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

उपनाह-शुष्कार्श मे लाभप्रद है।

१ भाग, ककरौधा की पत्ती, महुआ के फूल को पानी में पीसकर टिकिया बनाकर उष्णकर अर्श पर बाधे।

२ चक्रमर्द के बीज पानी मे पीसकर बाधे।

३ घोडे की दुम के बाल और बकरी के दूध को समभाग लेकर बाटकर राधले। फिर इसकी टिकिया बनाकर बाधे।

४ चावल का आटा, हल्दी और घृत समभाग मे लेकर किञ्चित् जल डालकर बाध देवे।

प्रलेप-शूलशमनार्थ एव अर्शांकुरो के शातनार्थ प्रलेप प्रयोग मे लाये जाते है। रक्त रोकने हेतु भी प्रलेप उपयोगी हैं।

१ दन्ती के बीज, मुर्दासग, कपोतविष्ठा एव गुड को पीसकर लेप करे।

२ सेहुड के दूध मे हल्दी के चूर्ण को मिलाकर लेप करे।

३ स्नुही या आक के दूध मे पिष्ट पिप्पली, सैन्धव, कुष्ठ और शिरीष फल के कल्क का लेप करे। दशागलेप भी लाभप्रद है।

४ तुत्थ, कूठ, विजया, काकडासिगी, शोभाञ्जन बीज और बिल्वमूल को सेहुड दुग्ध मे पीसकर लेप करे।

५ नवसादर और प्याज के कल्क का प्रलेप करे।

६ निम्ब और पीपल पत्र के कल्क का प्रलेप करे।

७ रक्तार्श मे शतधौत घृत, मेहदी स्वरस का प्रलेप करे।

८ तिक्तघोषा के मूल के कल्क का लेप भी रक्तरोधक है।

अन्य उपयोगी तैल एव मरहम-

कासीसादि तैल (चरक), बृ० कासीसादि तैल (भा० प्र०), पिप्पल्यादि तैल (भै० र०), क्षार तैल (भै० र०), वेदनान्तक मलहम (र० त०), सिद्ध मलहम (सि० भै० मणि०), अर्शोघ्न गव्यादि मलहम (प्र० र०), सर्जकादि मलहम (रसायनसार) आदि भी यथावश्यक काम मे लिये जा सकते है। (सि० यो० स०), के श्वेत मलहम, गुलाबी मलहम भी प्रयोग मे लाये जा सकते है।

धूपन-१ वानरविष्ठा धूपन।

२ मूली के बीज, गाजर के बीज, साप की केचुली का चूर्ण कर मोम मिलाकर धूपन करे। यह रक्तार्श मे उपयोगी है।

३ राल के चूर्ण को सरसो के तेल के साथ आग पर डालकर धूपन करने से रक्तार्श मे लाभ होता है।

५ कपूर का धूपन भी शूलशामक है।

६ निम्बतैल का अभ्यग कर घतूर पञ्चाग के धूपन से भी अर्श नष्ट होते है।

अर्शोरोग मे लाभप्रद काष्ठ औषधिया-

चरक-कुटज, बिल्व, चित्रक, सोठ, अतीस, हरीतकी, दुरालभा, दारुहरिद्रा, वचा, चव्य।

सुश्रुत-मुष्कक (क्षारवृक्ष), पलाश, धव, चित्रक, मदनफल, कुटज, शीशम, सेहुण्ड, त्रिफला।

वाग्भट-कुटज, मूर्वा, भारगी, कटुका, मरिच, अतीस, थूहर, एला, पाठा, जीरक, श्योनापाठा, मदनफल, अजमोद, सरसो, बच, कालाजीरा, हींग, वायबिडग, अजवायन, पीपल, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोठ।

अन्य-इन्द्र जौ, सूरणकन्द, भल्लातक, मूसली, मूली, विधायरा, कृष्ण तिल, काठगूलर, निम्ब, कत्था, कुकरौदा, कामलता, सजीवन फल, अरिष्टक, नींबू।

औषधि चिकित्सा के गुण-

(१) चिकित्सा विधान सुगम होता है।

(२) व्यापत्तिया अल्प होती है,।

(३) दारुणता नहीं होती है।

(४) प्रभाव और परिणाम मूलगामी होते है।

कतिपय प्रसिद्ध शास्त्रीय योग-

वातकफोल्वण-अर्शकुठार रस (र० चि०), नित्योदित रस (र० चि०), अग्निमुख लौह (र० चि०), भल्लातक लौह (र० चि०), तारा मण्डूर (भा० प्र०), रसपर्पटी (च० द०), अभ्रक भस्म (व० रा०), पुष्पराज भस्म (र० त०), समशर्कर चूर्ण (च० द०), विजय चूर्ण (भै० र०), हिंग्वादि चूर्ण (सु० स०), बाहुशाल गुड (च० द०), सूरण अवलेह (मि० विनोद), कूष्माण्डावलेह (शा० स०), प्राणदा वटी (ब० से०), काकायन वटी (वृ० मा०), चन्द्रप्रभा वटी (र० सा० स०), वृ० सूरण वटक (शा० स०), पिप्पल्यादि घृत (चरक), अभयारिष्ट (चरक), तक्रारिष्ट (चरक), फलारिष्ट (चरक)।

पित्तरक्तोल्वण-कामदुधा रस (र० यो० सा०), बोलबद्ध रस (र० त० सा०), अग्निकुमार रस (व० रा०), वैक्रान्त रस (व० रा०), मण्डूर योग (र० यो० सा०), बोल पर्पटी (सि० भै० म०), प्रवालपिष्टी (र० त०), तृणकान्तमणि पिष्टी (सि० भै० म०), समगादि चूर्ण (च० द०), धुस्तुरादि चूर्ण (भै० र०), कुटजावलेह (च० द०), अभयादि अवलेह (मि० वि०), तिलभल्लातक (सि० भै० म०), अर्शोघ्नी वटी (सि० यो० स०), प्राणदा वटी (ब० से०) चन्द्रप्रभा वटी (र० सा० स०), नागार्जुन योग (च० द०), ह्रीबेरादि घृत (यो० र०), उशीरासव (शा० स०), द्राक्षासव (यो० र०), पत्रागासव (भै० र०)।

अन्य लाभप्रद प्रयोग-

(१) *खादन्हरीतकीपाक कन्दशाक समाहरन्।*
पथ्यामश्नन्गुडैः शाक नाक जयति नाकुरम्।।

-सि० भै० मञ्जूषा २।

(२) *यवानीयुगसौवीरस्फटिका सार्धमाणिका ।*
हरीतकी प्रवालश्च स्याता माषद्वयोन्मितौ।।
धात्रीविभीतकावत्र पुररेकैकमाषकौ।
मौक्तिकान्यर्धमाषाणि पुरं गधाणपट्ककम्।।
सर्व सचूर्ण्य सनीय पटपूतै पुरद्रवै ।
वद्धवा वल्लमिता वच्चो दुर्नाम्नामन्तकारिका।।

-सि० भै० मणि० ४/२४३-२४५।

यवानी पारसीकयवानीति यवानीयुगम्। पुर जलेन सगाल्य द्रव कार्यम्। रोधिराणाम् (अन्तकारिग्र)

-श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी।

(३) *कपित्थविल्वमज्जाश्च शुण्ठीसैन्धवक समम्।*
पिवेत्तक्रेण चार्शासि प्रवाहे ग्रहणीं जयेत्।।

-वसवराजीयम्।

(४) कृष्ण मरिच और विषमुष्टिका का समभाग चूर्ण नित्य प्रात १ रत्ती की मात्रा से आरम्भ करके पादाशिक क्रम से २ विषमुष्टिका बीजो के चूर्ण तक ले जाय। पुन उसी प्रमाण से घटा देना चाहिए। इस क्रम से दो मास तक सेवन करने से अवश्य ही अर्श के मस्से गिर पडते है।

-वृ० नि० रत्नाकर।

(५) शुद्ध भल्लातक, हरीतकी, कृष्ण तिल तीनों को समभाग ले, चूर्ण कर एक-एक या आधे-आधे तोले की वटी बना ले। प्रात -साय सेवन करे। -वैद्य जीवन।

(६) २० मूलिया लेकर उनका श्वेत भाग सब निकाल डाले। मूल की ओर जो हरा-हरा भाग होता है, उसी को चाकू से काटकर गोल-गोल, पतले-पतले टुकडे कर लेवे। फिर उनको कूटकर गोघृत के साथ सात दिन तक खिलाने से अर्श नष्ट हो जाता है। इसके लिए पकी मूली ही ग्रहण करनी चाहिए।

-वैद्यराज श्री शकरदा जी शास्त्री पदे।

सूर्य-किरण चिकित्सा-रक्तार्श मे नीले रग का पानी (सूर्य किरणो से प्रभावित) प्रात -साय २५ मिली लिटर पिलावे एव गुदाकुरो पर नीला प्रकाश डाले। इसी प्रकार शुष्कार्श मे आसमानी रग का पानी काम मे लावे।

पानी बनाने की विधि-जिस रग का पानी बनाना हो, उसी रग की साफ बोतल मे शुद्ध परिस्रुत जल या गगाजल अथवा ताजा हल्का पानी बोतल के चौथाई भाग को छोडकर बोतल मे भर दे और कार्क बन्द कर दे। तेज सूर्य-किरण ताप से पानी कुछ बुदबुदा-सा हो गया हो, तो पानी तैयार है। यह पानी ३६ घण्टा तक काम मे लाया जा सकता है।

क्षार क्रिया-आग्नेय औषधि गुण भूयिष्ठ होने से क्षार कटुक, उष्ण, तीक्ष्ण, पाचन, विलयन, शोधन, रोपण, शोषण, स्तम्भन एव लेखन माना जाता है। शास्त्र मे क्षार के दो भेद निर्दिष्ट है। पानीय क्षार (क्षारोदक) अन्त प्रयोगार्थ काम मे लिया जाता है तथा प्रतिसारणीय क्षार बाह्य आलेपन, प्रक्षालन आदि के रूप मे प्रयुक्त होता है। शल्यतन्त्र मे क्षार चिकित्सा का अत्यन्त महत्व है। छेद्य, भेद्य, लेख्य आदि कर्म अग्नि, जलौका आदि से सम्पादित नहीं हो सकते, सुतरा क्षार चिकित्सा मे क्षार क्रिया का विशेष महत्व है। ये क्षार लेप सूत्ररूपेण या सूचीवेध द्वारा प्रयुक्त किये जाते है। क्षार-अपामार्ग, कदली, चिचा, भल्लातक आदि औषधियो के बनाये जाते हैं।

लेप-(१) आर्सेनिक (सखिया) ५ ग्रेन, भुना तूतिया १ ग्रेन, खडिया मिट्टी ५ ग्रेन। इन सबको बारीक पीसकर रख लो। यदि अधिक तेज दवाई बनानी हो तो दवा समान मात्रा मे लेनी चाहिए। दवा को थोडी-सी मात्रा मे लेकर पानी मे गाढा घोल बनाकर अर्श के मस्सो पर लेप कर देवे। ध्यान रहे मस्सो पर अधिक गाढा लेप न करे। इस तरह अर्श पर सिर्फ तीन दिन लेप करने से ५० वर्ष के मस्से भी मिट जाते है।

-वैद्य श्री कैलाशचन्द्र तिवारी द्वारा
धन्वन्तरि अर्शरोगाक ७६ से।

क्षार-सूत्र-(१) उन्नत अर्शों पर जो रक्तार्श, कफज अर्श हो उन पर क्षार-सूत्र बाध देते हैं। ७ दिन के अन्दर ये गुदा वलि के अर्श कटकर गिर जाते हैं। इसके बाद जात्यादि तैल या पचगुण तैल को अर्शों पर लगाकर नित्यप्रति बन्धन बाधा जाता है। एक चौडे बर्तन मे हल्का गर्म पानी लेकर रोगी को बैठाया जाता है, जिससे सेक होता है।

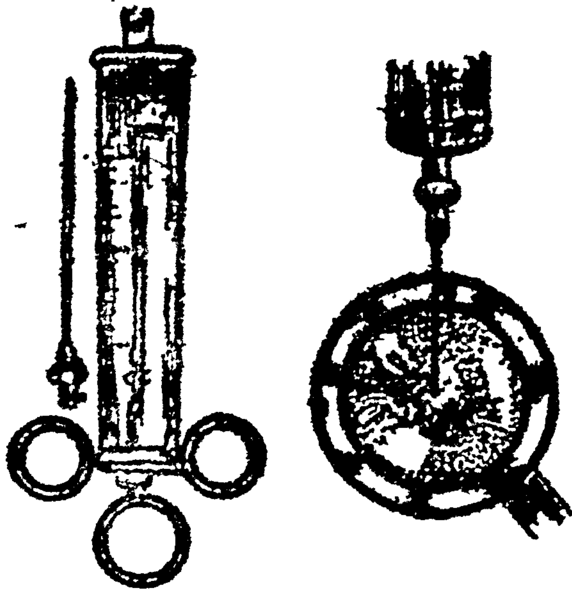
क्षारसूत्र निर्माण विधि-सर्जिकल लिनिन थ्रेड न० २० को लेकर उस पर स्नुही क्षीर लगाते है। इस प्रतिदिन नये दूध को लेकर उसको गॉजपीस द्वारा भिगोकर लगाते रहते है। यह ११ बार किया जाता है। इसके बाद ७ दिन उस थ्रेड पर स्नुही दुग्ध और अपामार्ग क्षार लगाया जाता है। तत्पश्चात् ३ दिन स्नुही दुग्ध और हरिद्रा चूर्ण लगाया जाता है। यदि नित्यप्रति कार्य किया जाय, तो २१ दिन मे क्षार-सूत्र का निर्माण किया जा सकता है। वर्षा ऋतु मे क्षार-सूत्र का निर्माण न किया जाय।

-श्री राजेन्द्रकुमार द्वारा
आयुर्वेद विकास अगस्त ७८ से।

(२) थूहर का दूध २० ग्राम, अर्क दुग्ध २० ग्राम, हल्दी २० ग्राम (या Acriflavin ¼ ग्रेन), नमक १२ ग्राम, नीलाथोथा ६ ग्राम, इन सबको अच्छी तरह से खरल करे। इस द्रव्य मे सूत्र को २१ बार भावित कर काम मे लावे।

-वैद्यराज श्री मोहनलाल जी कोठारी द्वारा
स्वास्थ्य जुलाई ७९ से।

सूचीवेध-पाश्चात्य वैद्यक मे क्षारो का प्रयोग सूचीवेध द्वारा किया जाता है। वे कार्बोलिक एसिड ग्लिसरीन आदि को परिश्रुत जल मे मिलाकर प्रयुक्त करते है। आधुनिक वैद्य भी इस विधि को अपनाने लगे है। टोडा दरीबा (सीकर) के श्री मोहनलाल जी भिषगाचार्य इस विधि से चिकित्सा करते है। आयुर्वेद विकास दिसम्बर ७१ के अक मे श्री जुगलकिशोर जी शाडिल्य ने इनके इस प्रयोग का वर्णन किया है। योग निर्माण पक्रिया इस प्रकार है-



अर्शाकुरो मे सूचीवेधन

४० किलो पानी मे १ किलो सज्जी, १ किलो बिना बुझा चूना मिट्‌टी की नाद या घडे मे डाल दे और ६ या ७ दिन इसे पडा रहने दे। ७ दिन बाद ऊपर का स्वच्छ निर्मल जल लोहे की कडाही मे डालकर जलावे। जब ५ किलो पानी शेष रहे, तब आधा किलो लहसुन का स्वरस डाल दे। अब पुन पानी गर्म करे। जब ३०० ग्राम मात्र शेष रहे, तब उतार ले एव शीतल होने पर त्वचा पर लगाकर देखे। यदि त्वचा जलने लगे, तो क्षार पूर्ण रूप से तैयार हो गया अन्यथा नहीं। उस क्षार मे १६० ग्राम तिली का तेल, १० ग्राम क्षार मे प्रयुक्त करके रख लेवे।

सूचीवेध से अर्श मे कोथ उत्पन्न होकर वे गल जाते है, जिससे व्रण हो जाता है उसका रोपण उपचार करना चाहिए। शूल शमनार्थ भी कोई औषधि प्रयुक्त करना अनिवार्य हो जाता है।

अग्नि-क्रिया-अग्निकर्म चिकित्सा से शिराओ का सकोच हो जाता है, इससे रक्तस्राव नहीं होता। इस कर्म से अर्श समूल नष्ट हो जाते है, उनमे पुन उत्पन्न होने की शक्ति नहीं रहती। अग्निदग्धजात व्रण मे पूयोत्पादन का भय प्राय नही होता। क्षार या शस्त्र से अर्श को छेदन कर देने के पश्चात् भी अर्श के मूल स्थान को स्वर्ण या रजत की अग्नितप्त शलाका से दग्ध कर देने के पश्चात् पुन अर्श उत्पन्न नहीं हो पाते है। अग्निकर्म के पश्चात् शूल शमनार्थ, व्रण रोपणार्थ एव रक्त प्रसादनार्थ मधु एव घृत का अभ्यग तथा यष्टिमधु, शालिमूलादि का प्रलेप करना चाहिए-

सुदग्ध घृतमध्वक्त स्निग्धशीतै प्रदेहयेत्।

-अ० हृ० सू० ३०/४५।

शस्त्र-क्रिया-बलवान् रोगी के अर्श का छेदन किया जाता है। इससे पूर्व अनुवासन बस्ति द्वारा शोधन कर लिया जाता है। गुदाकुरो को घृत व तैल के प्रयोग से स्निग्ध कर अर्शोयन्त्र की सहायता से उन्हे उभारकर रेशम के सूत्र से बाधकर काट दिया जाता है। गुदा मे कुछ दिन जात्यादि तैल का पिचु रखा जाता है।

पाश्चात्य चिकित्सक भी अग को शून्य कर गुदोष्ठ को काट अर्श की गाठे निकाल कर सीवन कर्म कर देते है। किन्तु ये काटे हुए अर्श पुन उत्पन्न हो जाते है।

अर्शोरोग मे पथ्यापथ्य-

शुष्कार्श मे-औषधि की तरह पथ्य भी अर्शोरोग मे जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला तथा वायु, मल का अनुलोमन करने वाला होना चाहिये। इस निमित्त मथित सर्वोत्कृष्ट है। यह शुष्कार्श, परिस्रावी अर्श दोनो मे ही उपयोगी है-

शुष्केषु भल्लातकमग्र्यमुक्त भैषज्यमार्द्रेषु तु वत्सकत्वक्।
सर्वेषु सर्वर्तुषु कालशेय मर्शसु बल्य च मलापह च।।

-अ० हृ० चि० ८/१६२।

जो दही मे जल डाले बिना मथकर बनाया जाता है उसे कालशेय (मथित) कहते है। भगवान् चरक ने भी "तक्राभ्यासो ग्रहणीदोषशोफार्शोघृतव्यापत्प्रशमनानाम्" कहकर प्रशसा की है। मथित, घोल, तक्र, उदस्वित और छच्छिका मे तक्र मध्य की वस्तु है मथित त्रिदोषहर है। एक भाग जल और तीन भाग दही डालकर जो मथा गया हो उसे तक्र कहते है। यह वातश्लेष्मा शामक है।

वातज अर्शों मे स्नेह सहित तथा कफज अर्शों मे स्नेहरहित तक्र लाभप्रद है। कोष्ठबद्धता होने पर तक्र मे अजवायन और विडनमक मिलाकर प्रयुक्त करना चाहिए।

तक्र के पश्चात् सूरण अर्श मे गुणकारी कहा गया है। "सूरणो गुदकीलहा" (सुश्रुत), "विशेषादर्शसा पथ्य" (भा० प्र०) कहकर आचार्यों ने इसकी कार्मुकता प्रकट की है। पुटपक्व सूरण का आहार तथा तक्र का पान करते रहने से शुष्कार्श समूल नष्ट हो जाते है। घी मे सेक मृदु कर भुरते के समान बनाकर उसमे दही मिलाकर सेवन किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त जो शुष्कार्श मे पथ्य हैं, वे द्रव्य है-वास्तूक, तण्डुलीय, मूलकपत्र, लोणी, मकोय, शलगम, कचूर, गाजर, लौकी, परवल, पालक, कच्चा पपीता आदि को तैल, घृत मे भूनकर दही मे मिलाकर धान्यकपत्र, शुण्ठि आदि के साथ प्रयुक्त करे। सैन्धव लवण, रसौत, जीरा, हल्दी, मरिच, धनिया, कैथ, आवला, अजीर, मुनक्का, पपीता, किशमिश, सेव आदि भी पथ्य कहे गये है।

रक्तार्श मे-रक्तार्श मे अजादुग्ध सर्वोत्तम पथ्य है-

भगवान् चरक ने अजादुग्ध का या पञ्चगुण जल घृत गोदुग्ध का रक्तस्राव मे उपयोग करने का विधान बताया है-

मोचरस सिद्ध दुग्ध या मृद्वीकामिश्रित दुग्धपाक भी हितावह है।

कृष्ण तिलो का प्रयोग भी उस व्याधि मे सदैव पथ्य है।

तिक्त रस वाले द्रव्य रक्तस्राव की शान्ति करने मे श्रेष्ठ कहे गये है। इस निमित्त कुटज, रसाजन, ऐलेय, निम्बबीज आदि प्रयोग मे लाये जाते है।

इमली, नागकेशर और कमल डालकर बनायी गई लाजपेया (खील की पेया) रक्तस्रावरोधक है। मसूर, मूग, अरहर, मोठ के सूप, पुराने शलिचावल, साठी चावल की यवागू, गेहू जौ का दलिया लाभप्रद है। वास्तूक, तण्डुलीय, लौकी, पतली मूली, प्याज, कच्चा गूलर, कच्चा केला, परवल, शलजम, अनार, सन्तरा, मोसमी, सिघाडा, कसेरू, पिण्डखजूर, मुनक्का, किशमिश, अनारदाना, आवला और झरबेर आदि पथ्य है।

इनके विपरीत राई, हींग, बैगन, करेला, गुड, लाल हरी मिरच, अचार, सरसो का तैल, लवण आदि अपथ्य है। ये कार्य भी इसमे अपथ्य है-

वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानमुत्कटुकासनम् ।
यथास्व दोषलञ्चान्नमर्शस परिवर्जयेत् ।।

❖❖

अर्श पर एक अनुभूत योग

अशुद्ध मल्ल २० ग्राम, पिसी दाल्हरिद्रा १०० ग्राम, पिसा-रक्तचन्दन ५० ग्राम। इन्हे लेकर अच्छी तरह ग्लिसरीन मे मिला ले और चौडे मुह की शीशी मे रखे। गुदा के भाग को डिटौल जल से साफ कर ले। इस दवा का प्रयोग करने से पूर्व रोगी को तीव्र विरेचन देना चाहिए, ताकि कोष्ठ शुद्ध रहे। कोष्ठ शुद्धि के उपरान्त गुदा को खूब साफ करे और अर्श के चारो ओर शतधौत घी लगाये। अभाव मे शुद्ध घी भी लगा सकते हैं। घी लगाने के बाद मस्से पर ग्लिसरीन युक्त दवा रुई मे थोडी सी लगाकर रख दे और रोगी से लगोट बाध लेने को कहे।

दूसरे दिन गुदा थोडी सी बाहर निकल आयेगी और सूज जायेगी। इस अवस्था मे घबडाये नहीं दवा उपर्युक्त विधि से प्रयोग करे। यह भी अधिकतर देखा गया है कि गुदा मे जलीयाश निकलता है, उसके लिए आप शुद्ध रुई अधिक मात्रा मे रख कर लगोट बाधे और समय-समय पर रुई बदलते रहे। धीरे-धीरे सूजन समाप्त हो जायेगी और गुदा भी स्वय भीतर चली जायेगी तथा आपका अर्श १० दिन मे पूर्णत नष्ट हो जायेगा। यदि रक्तस्राव हो तो दूर्वाद्य घृत प्रयोग स्थानिक करना चाहिए। टट्टी होने के बाद गुदा को डिटौल के पानी से धोये।

-डा० विनोदकुमार त्रिपाठी, राष्ट्रीय आयुर्वेद सस्थान, जयपुर

गुद कैंसर

वैद्य गोपीनाथ पारीक "गोपेश", सम्पादक-"गुदरोग चिकित्सक"

प्रतिवर्ष कैंसर के कारण समस्त ससार मे बीस लाख व्यक्ति मृत्यु पा जाते है तथा पचास लाख से अधिक व्यक्ति प्रतिवर्ष इस रोग से आक्रान्त होते हैं। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष तीस हजार व्यक्ति कैंसर से मृत्यु के ग्रास बन जाते है। कई चिकित्सको के मतानुसार तो इस सख्या से भी अधिक व्यक्ति इस महारोग से मर जाते है। इस सख्या मे अनुदिन वृद्धि होती जा रही है।

स्थान भेद से कैसर कई प्रकार के होते है। यहा पर गुदा मे होने वाले कैसर का वर्णन अभीष्ट है। यह कैसर यद्यपि होता कम है, परन्तु लम्बे समय तक पीडा देने वाला होता है। गुद कर्कटार्वुद मे न्यूनाधिक मलावरोध एव पिच्छिल दुर्गन्धमय स्राव होता है। मलावरोध वात-विकार एव स्राव कफ-विकार है।

डा० भास्कर गोविन्द्र घाणेकर जी ने सुश्रुत सहिता निदान स्थान अध्याय-१ मे कही गई वाताष्ठीला और प्रत्यष्ठीला को उत्तरगुद किवा पौरुषग्रन्थि का कैसर होने के पक्ष मे सम्भावना व्यक्त की है। माधव निदान के विद्योतनी टीकाकार आयुर्वेदाचार्य श्री सुदर्शन शास्त्री ने भी इसी वर्णन के आधार पर लिखा है, कि "कुछ लोग वाताष्ठीला से पौरुषग्रन्थि शोथ मानते है, किन्तु वह ठीक नहीं, क्योकि पौरुषग्रन्थि सर्वदा निश्चल होती है। इसे गुदा के समीप का कोई अर्बुद या अवरुद्ध शुष्क मल ग्रन्थि (Scabula) माना जा सकता है। वस्तुत इसके लिए भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। प्रत्यष्ठीला मल और मूत्र दोनो का अवरोध करती है, अत इसे बस्ति-गुदान्तरालीय अर्बुद (Recto-Vesical Tumour) कहा जा सकता है। वस्तुत वातवैगुण्य के कारण समय-समय पर द्वार का सकोच हो जाता है। इसके निवृत्त हो जाने पर अन्य लक्षण भी निवृत्त हो जाते है, अत अर्बुद मानना ठीक नहीं है।

कैसर विशेषज्ञ डा० रामचन्द्र साहू ने कैसर रोगियो के इतिवृत्त से यह निर्णय लिया है, कि ६० प्रतिशत कैसर का कारण उपदश एव पूयमेह है। सन् १९८० मे कौनहिम ने यह सुझाव दिया कि कैंसर का कारण ऊतको (Tissues) मे भ्रूणावस्था के अवशेषो का रह जाना है। जैसे गुदा मे गुदमार्ग (Anal canal) तथा मलाशय (Rectum) के सम्मिलन स्थान के कैसर इसके उदाहरण समझे जा सकते है।

कैसर अधिकतर बाह्य त्वचा और श्लैष्मिक त्वचा मे प्राय होता है। त्वचा, मास, श्लेष्मल कला, सिरा, स्नायु आदि इसके अधिष्ठान है। गुदा मे प्राय आवरण कला विनाशक कैसर (Epithalioma) होता है।

गुदा मे होने वाले कैसर कई रूपो मे देखे गये है-

(१) बृहदन्त्र के अन्तिम भाग से गुदा तक भीतरी मास का पर्दा मोटा होता जाता है। इसी तरह शनै -शनै मास बढ जाने से गुदा का मुख बन्द हो जाता है।

(२) बृहदन्त्र के अन्तिम भाग पर एक अर्बुद की उत्पत्ति होती है। इस अर्बुद से गुदा पूर्णरूपेण अवरुद्ध हो जाती है।

(३) गुदौष्ठ की अन्त या बहि कला पर छोटे-छोटे मासाकुर उत्पन्न हो जाते है व्रण या विदार से भी कैंसर की उत्पत्ति सम्भव है। इनका आकार गोभी के फूल के सदृश सा होता है। कभी एक ही कैसर श्लेष्मिक ग्रन्थियो मे उत्पन्न होकर रक्तवाहिनियो या लसीकावाहिनियो के द्वारा दूर-दूर की धातुओ मे फैल जाता है। वक्षण की लसग्रन्थियां अधिकतर प्रभावित होती है।

प्रारम्भ मे उदर भारी रहता है। रोगी बार-बार शौच जाता है, विशेषतया प्रात काल। शौच जाने के पश्चात् भी उदर का भारीपन मिटता नहीं है। रोगी समझता है कि उसे अर्श हो गया है और वह विशेष ध्यान नहीं देता है। प्रारम्भ में शौच के समय काटने सदृश पीडा होती है, जो कालान्तर मे सदैव बनी रहती है। मल के साथ पिच्छिल स्राव, रक्त एव वायु निकलते है। कभी-कभी अतिसार या रक्तातिसार भी हो जाया करता है। किसी रोगी के मुख मे भी पाक हो जाता है। शनै -शनै जब कैसर बढता जाता है, तो गुद अवरुद्ध हो जाता है। गुद मे कोथ उत्पन्न होने लगता है। इससे समीपस्थ अन्य अवयव भी आक्रान्त होते हैं। बस्ति आक्रान्त होने से मूत्र का भी अवरोध हो जाया करता

है। कभी मलमूत्र का अवरोध नहीं होता है, तो वेदना स्वल्प हो जाया करती है। स्थानीय पीडा एव कर्कटार्बुदजन्य विष के सर्वांग मे फैल जाने से रोगी क्षीण होता जाता है। रोगी असह्य यन्त्रणा भोगता है और मरण-शरण चाहता है। गुदप्रदेश मे अत्यधिक कण्डू, वेदना एव अनैच्छिक रूप से मलत्याग से रोगी अत्यन्त व्यथित रहता है। समुचित चिकित्सा के अभाव मे रोग बढकर रोगी को १-२ वर्ष मे या इससे कम समय मे मार डालता है। मृत्यु उदरावरण प्रदाह, अत्यधिक रक्तस्राव, अवरोध या कृशता से होती है। अतएव कहा गया है।-

साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेच्च।
सप्रस्रुत मर्मणि यच्च जात, स्रोत तुवा यच्च भवेदचाल्यम्।।

--माधव निदान ३८/२४।

अवस्था भेद से प्रत्येक कैसर के तीन प्रकार होते है। प्रथमावस्था मे आक्रान्त स्थान पर स्वल्प-सा उत्सेध लघु ग्रन्थि एव मन्द वेदना होती है। द्वितीयावस्था मे उक्त उत्सेध लालिमा व शोथयुक्त हो जाता है। लध्वी ग्रन्थि कुछ स्थूल होने लगती है, जिसमे वेदना पूर्वपिक्षया अधिक हो जाती है। तृतीयावस्था भयावह स्थिति को उत्पन्न कर देती है, जो विकृत रूप, असह्य वेदना को प्रकट कर रोगी को मृत्यु के मुख मे पहुचा देती है। इस अवस्था मे बहुत से कष्टप्रद उपद्रव उत्पन्न होते रहते है। उन उपद्रवो मे मुख्य है, जो गुद कर्कदार्बुद मे होते है-

(१) अत्यन्त शोथ, (२) मलावरोध, (३) अपाननिरोध, (४) अत्यधिक पिच्छिलस्राव (गुदमार्ग से), (५) रक्तस्राव (अर्बुद के फूटने पर) (६) अर्बुद का कोथ, (७) तीव्र दुर्गन्ध, (८) अनिद्रा, (९) अरुचि, (१०) क्षुन्नाश, (११) असह्यशूल, (१२) अविमर्गीज्वर, (१३) व्रणस्थान मे कीटोत्पत्ति, (१४) भोजन करने के पश्चात् तत्काल शौच प्रवृत्ति, प्रात पुन -पुन प्रवृत्ति।

लाक्षणिक चिकित्सक इन लक्षणो या उपद्रवो की चिकित्सा करते है। दोषप्रत्यनीक चिकित्सा मे दोष-दूष्यो की विकृति के अनुसार चिकित्सा की योजना की जाती है।

इस रोग की आधुनिक चिकित्सा विधिया तीन प्रचलित है-

१ अगच्छेदन (Annihilation by operation)-शल्य चिकित्सक आपरेशन कर आक्रान्त स्थान के आस-पास के कोषाणुओ को निकाल देते है। अग के साथ पेशियो आदि को निकालकर मल निकालने हेतु दूसरा मार्ग बना दिया जाता है।

२ कोबाल्ट किरण चिकित्सा (Cobalt Therapy)-यह एक प्रकार का विद्युत् स्वेदन है। अधरगुद कैसर मे ऊपरी (Superficial) तथा उत्तरगुद मे गहरी (Deep) किरण चिकित्सा काम मे ली जाती है। उसके लिए एक यन्त्र से शक्तिशाली किरणे डाली जाती है। इस स्वेदन से कैसर कुछ सकुचित हो जाते है।

३ रेडियम चिकित्सा (Radium Therapy)-रेडियम से निकली गामाकिरणो से कैसर की चिकित्सा की जाती है। एक्स-रे चिकित्सा के प्रयोग बढने से यह चिकित्सा कम होने लगी है।

ये तीनो चिकित्सा विधिया महगी होने पर भी सफल सिद्ध नहीं हुई है। छेदन एव दहन से कैंसर कोषो की सख्या स्वल्प हो जाने के कारण रोगी को अधिक समय तक यातना भोगकर काल कवलित होना पडता है। रोग के उन्मूलन हेतु जितना दाहक मे आवश्यक होता है, वह उग्रदाह से उत्पन्न असह्य वेदना के कारण हो नहीं पाता है। कुछ ही दिनो के पश्चात् उसी स्थान पर अधिक उग्र व अत्यन्त पीडा वाला कैसर दिखलाई देने लगता है। अन्त मे वह कैसर फट जाता है। रोगी को पूर्वपिक्षया अधिक वेदना से तडफना पडता है। इसी प्रकार छेदन द्वारा कैसर को निकाल देने के पश्चात् भी मूलकोष के नष्ट न होने से वह पुन प्रकट होकर अधिक कष्टप्रद सिद्ध होता है। रक्तगत उस कैसर का विष समय पाकर पुन कई कैसर उत्पन्न कर देता है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा-सिद्धान्त-

कैसर शरीर मे होने वाला व्यापक रोग है। इसकी चिकित्सा भी व्यापक होनी चाहिए। कैसर बृहणोत्थ व्याधि है, सुतरा इसमे लघन अत्यन्त लाभप्रद है। यद्यपि कैसर की उग्र अवस्था मे यह उपयुक्त नहीं है। आयुर्वेदोक्त पचकर्म कैसर का श्रेष्ठतम उपचार कहा जा सकता है। कैसर प्राय मर्म स्थानो पर ही होता है सुतरा वह शीघ्र असाध्य हो जाता है। मर्म स्थानो पर दहनकर्म एव छेदनक्रिया आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं है अतएव रोगी को लाभ की अपेक्षा इन उपायो से हानि अधिक उठानी पडती है। आयुर्वेदोक्त शोधन-शमन ही इसका शमन करने मे सक्षम है। जितनी शीघ्र आयुर्वेद के इन उपचारो को अपनाया जायेग उतना ही शीघ्र लाभ की सम्भावना की जा सकेगी। दोष,

दूष्य, देश, वय, बल, काल, अग्नि, सत्व, सात्म्य आदि का विचार कर चिकित्सा करने वाला चिकित्सक अपने कर्म मे शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है। कैंसर की प्रथम या द्वितीय अवस्था मे आयुर्वेद के ये प्रयोगरत्न लाभप्रद सिद्ध हो सकते है-

गुद कैंसर मे उपयोगी कुछ आयुर्वेदीय योग-

१ **कैंसरगजकेसरी**-हीराभस्म १ रत्ती, स्वर्ण भस्म १।। माशा, रससिन्दूर (षड्गुणबलि जारित) ३ माशा, रसकर्पूर शोधित ६ माशा, ताम्रभस्म १ तोला, सफेद मरिच १।। तोला, लोग ९ माशा, अभ्रकभस्म सहस्रपुटी ४ रत्ती, पन्नापिष्टी १।। रत्ती। प्रथम रससिन्दूर और रसकर्पूर को खरल मे घोटकर चूर्ण बनाले तत्पश्चात् एक द्रव्य को मिलाते हुये सब द्रव्यो को मिलाकर दिन भर घोटे। दूसरे दिन भेड के दूध की भावना देकर तीन दिन घोटे तथा आधी-आधी रत्ती की गोलिया बनाकर रखले।

मात्रा-एक से दो गोली एक दिन मे २ या ३ बार। खाने से पहले मुह मे घी चुपड लेवे या कैपसूल मे भरकर निगल जाय। इसके ऊपर दूध पी ले।

-स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज।

२ **रत्नभागोत्तर रस**-हीरकभस्म ५ रत्ती, पन्नापिष्टी १० रत्ती, माणिक्य पिष्टी १० रत्ती, पुखराज पिष्टी १० रत्ती, नीलम पिष्टी १० रत्ती, वैदूर्य पिष्टी १० रत्ती, गोमेद पिष्टी १० रत्ती, मुक्ता पिष्टी १० रत्ती, प्रवाल पिष्टी १० रत्ती। इन सबसे आठ गुना अर्थात् ७ तोला ६ रत्ती वैक्रान्त भस्म, ७ तोला ६ रत्ती स्वर्णमाक्षिक भस्म और शुद्ध पारद गन्धक की कज्जली १५ तोला। पहले कज्जली के अतिरक्ति सब भस्मो को मिलाकर घोट लेवे एक लोहे की कडाई मे ५ तोला गाय का घृत डालकर उसमे कज्जली डालकर पिघलावे, जब कज्जली पिघल जाय तब उक्त भस्मो का मिश्रण डालकर हिलाकर निर्माण विधि से पर्पटी बनाले। २४ घण्टे के बाद स्वागशीतल होने पर बाझककोडे के क्वाथ की भावना देवे। सूख जाने पर कमलपुष्प के रस मे दो दिन घोटकर सुरक्षित रख लेवे।

२ रत्ती से प्रारम्भ कर १० रत्ती तक मधु, घृत, दुग्ध या अन्य उपयोगी अनुपान से दे। -रससहिता।

३ **स्वर्णनवरत्नरस**-हीरा भस्म, नीलम भस्म, मुक्ता भस्म, प्रवाल भस्म; पुखराज भस्म, पन्ना भस्म, माणिक्य भस्म, स्वर्ण भस्म, चन्द्रोदय और शुद्ध शिलाजीत सभी द्रव्य बराबर मात्रा मे लेकर खरल मे डालकर भागरा स्वरस की सात भावना देकर सुखाले। २ रत्ती की मात्रा से योग्य अनुपान के साथ दे।

-स्वास्थ्य जन० ७८।

४ **कैंसर विध्वसक रस**-सर्वेश्वर पर्पटी (र० र० स०) ६ ग्राम, वर्किया हरताल ६ ग्राम, अभ्रक भस्म सहस्रपुटी ६ ग्राम, स्वर्ण भस्म विशेष ६ ग्राम, मुक्तापिष्टी ६ ग्राम, हीराभस्म २५० मि० ग्राम, पन्नापिष्टी ३ ग्राम और अमृता सत्व ६० ग्राम। सबको एकत्र कर सहिंजने की छाल के रस की सात भावना देकर खरल करके २-२ रत्ती की गोलिया बनाले। दिन मे दो बार प्रात -साय १-१ गोली शहद के साथ देकर २ तोला सहिजने की छाल का रस पिलाना चाहिए।

-डा० श्री रामचन्द्र साहू (स्वास्थ्य अनुभवाक ७३)।

५ प्रारम्भिक अवस्था मे यह क्वाथ भी लाभप्रद होता है-रक्तरोहितक, काचनार, पुनर्नवा, तुलसीपत्र, शिग्रु, अश्वत्थ, अमृता, शरपुखा, वरुण, अजमोद, हरिद्रा के क्वाथ मे १ माशा बोल तथा १ माशा शिलाजीत मिलाकर सुबह-शाम पीने से कैंसर मे रोकथाम होती है।

उदय कैंसर आयुर्वेदिक हास्पिटल के सस्थापक वैद्यराज श्री रामसिह गोहिल का यह प्रयोग है। जिसके उपयोग से वे स्वय इस दारुण रोग से मुक्त हुये थे। उसका उपयोग उन्होने २ माह तक किया था।

६ वैद्य श्री सुखरामदास जी ओझा ने वरुणादि क्वाथ क साथ करजादि घृत का प्रयोग कर कई कैंसर के रोगियो को लाभान्वित किया था।

इण्डियन कैंसर रिसर्च इन्स्टीट्यूट बम्बई के डाइरेक्टर डा० श्री बी० आर० खनोलकर ने भी करज के बीजो का अक निकालकर उसके कैंसर नाशक प्रभाव का अध्ययन किया है।

इन योगो के अतिरिक्त सर्वेश्वर पर्पटी (र०र०स०), चन्द्रप्रभावटी (शा० स०), बज्र रस (र०र०स०), पुनर्नवा मण्डूर (च० स०), काचनार गुग्गुल (भै० र०), त्रिफला गुग्गुल (भै० र०), पचतिक्तघृत गुग्गुल (भै० र०), योगोत्तमा वटी (ग० नि०), हेमाद्रि रस (रस कामधेनु), आरोग्यवर्द्धनी वटी (र०र०स०), शिवा गुटिका (च० द०), गन्धक कल्प (र० त०), खदिरारिष्ट

(भै० र०), अभयारिष्ट (च० स०), पुनर्नवासव (भै० र०), सारिवाद्यासव (भै० र०), आदि शास्त्रीय प्रयोगो को यथावश्यक काम मे लिया जा सकता है।

सामान्य औषधि-व्यवस्था-

सामान्यतया यह व्यवस्था उपयुक्त है-

(१) प्रात -साय-सिद्ध मकरध्वज २५० मि० ग्रा०, वैक्रान्त भस्म २५० मि० ग्रा०, रजत भस्म २५० मि० ग्रा०, ताम्र भस्म १२५ मि० ग्रा०। १ -२ मात्रा मधु से।

अनुपान-पचतिक्तघृत गुग्गुल १० ग्राम।

(२) **द्वितीयावस्था मे**-नृपतिबल्लभ रस २५० मि० ग्रा०, विजय पर्पटी २५० मि० ग्रा०, हीरक भस्म (रस-सिन्दूरयुक्त १२५ मि० ग्रा० योगेन्द्र रस १२५ मि० ग्रा०। १-२ मात्रा मधु से।

अनुपान-प्रात अमृत भल्लातक अवलेह ५ ग्राम, साय पचतिक्तघृत गुग्गुल १० ग्राम।

भोजनोत्तर-खदिरारिष्ट २० मि० ली०, सारस्वतारिष्ट २० मि० लि०। १ -२ मात्रा समान जल मिलाकर।

(३) **विबन्ध की अवस्था मे**-रुक्मीश रस २५० मि० ग्रा०, आरग्वध चूर्ण २ ग्राम, हरीतकी चूर्ण (रोहिणी) २ ग्राम। १-२ मात्रा निम्बपत्र स्वरस से।

(४) **क्षुन्नाश की अवस्था मे**-बज्र रस २५० मि० ग्रा०, गन्धक रसायन २५० मि० ग्रा०, सर्वतोभद्र रस ५०० मि० ग्रा०, मरिच चूर्ण २५० मि० ग्रा०। मधु ३ ग्राम। १-२ मात्रा पान मे रखकर चर्वण करे।

(५) **शूलशमनार्थ**-ताम्रपर्पटी २५० मि० ग्रा० सर्पगन्धा चूर्ण ५०० मि० ग्रा०, अफीम ६० मि० ग्रा०। १-२ मात्रा मधु से।

(६) **कोथ की अवस्था मे**-प्रात -साय सोमनाथी ताम्र भस्म ६० मि० ग्रा०, उदरभास्कर रस १२५ मि० ग्रा०, रस माणिक्य २५० मि० ग्रा०, गलत्कुष्ठारि रस २५० मि० ग्रा०, गिलोय सत्व ५०० मि० ग्रा०। १-२ मात्रा मधुयुक्त मजिष्ठादि क्वाथ से।

मध्याह्न एव रात्रि मे-निम्बादि चूर्ण ५ ग्राम श्वेत पुनर्नवा स्वरस से।

इनके अतिरिक्त बाह्य प्रयोग भी काम मे लावे।

बाह्य प्रयोग-

(१) निम्ब, त्रिफला, दारुहरिद्रा, निर्गुण्डी, शोभाजन कुल द्रव्य ५० ग्राम लेकर क्वाथ कर ५०० मि० ग्रा० तुत्थ भस्म एव मधु ५ ग्राम मिलाकर गुदा-प्रक्षालन करे।

(२) स्वर्णक्षीरी के स्वरस मे चतुर्थांश पीली सरसो का तैल मिलाकर पाकविधि से पाक कर छान रख ले। रुई से दिन मे २-३ बार लगावे।

(३) शरपुखा मूल को मधुयष्टि क्वाथ मे पीसकर उसके कल्क का लेप करे। लेप के पूर्व जलौका द्वारा रक्त मोक्षण करना अधिक लाभदायक है।

(४) योगराज गुग्गुल का लेप भी कैसर की ग्रन्थि पर किया जा सकता है।

(५) गुग्गुल २५ ग्राम, मकोय १० ग्राम, अमलतास का गूदा १० ग्राम, अफीम ६ रत्ती, सोठ १० ग्राम, बिडग १० ग्राम, बारहसिंघा घिसा हुआ २ ग्राम को गोमूत्र मे पीसकर लेप करे।

पथ्य-गोधूम, गोदुग्ध, मुद्गयूष, अगूर, केला, कालीद्राक्षा, मूगफली, पुराना गोघृत, मधु, नीबू, तक्र, रसोन, पालक, परवल, करेला, शोभाञ्जन, आमलकी, गाजर, आर्द्रक, ककोडा, निम्ब के कोमल पत्र, गुडूची पत्र।

अपथ्य-महिषी दुग्ध, मद्य, मास, चाय, कॉफी, सरसो का तैल, गुड, तम्बाकू, शर्करा, मिर्च, तीक्ष्ण मसाले, चावल, सिघाडा, तली चीजे, लवण, वनस्पति घृत।



गुदभ्रंश (PROLAPSE OF ANI)

वैद्य बल्देवप्रसाद एच० पनारा, अहमदाबाद

परिचय-गुदभ्रश छोटे बच्चो व युवको मे पाया जाता है। जिस रोग मे व्यक्ति का मल विसर्जन, अगगुदा अन्दर से उलट कर बाहर आ जाती है। जिसकी वजह से गुद स्थान मे काफी पीडा महसूस होती है। छोटे बच्चो को हुआ हो, तो वे सतत् रोते रहते है। जिससे मा-बाप भी काफी परेशान व चिन्तित रहते हैं। यह स्पष्टत वातदोष प्रकोप है।

पर्याय नाम-गुदा का उलटकर बाहर आने को आयुर्वेद मे-गुदभ्रश, हिन्दी मे-काच निकलना, अग्रेजी मे-Prolapse of Ani or Rectum और गुजराती मे-आमल निकलना कहते हैं। कुछ वैद्य इसे गुद नि सरण भी कहते है।

प्रकार-गुदभ्रश के दो प्रकार है- (१) गुदा की शुरूआत की श्लैष्मिक कला का १-२ इच का हिस्सा उलट-पलट होकर गुदछिद्र से बाहर आना। जिसे अग्रेजी मे Prolapse of Any (प्रोलेप्स आफ एनी) कहते है। (२) बडी आत का गुदावर्ती बहुत बडा हिस्सा, जो ३ इच से करीब ६ इच लम्बा हो सकता है-वह अन्दर से उलट कर गुद छिद्र से बाहर निकल आता है। इसे अग्रेती मे Prolapse of Rectum (प्रोलेप्स आफ रेक्टम) कहते है। प्राय प्रथम प्रकार का गुदभ्रश युवा व्यक्तियो को ही होता है। जबकि दूसरे प्रकार का गुदभ्रश प्राय छोटे बच्चो को ज्यादातर होता है। हालाकि कभी-कभी प्रथम प्रकार का गुदभ्रश भी बच्चो को हो सकता है।

रोग के कारण-यह रोग स्पष्टत वातदोष का बडी आत मे हुए प्रकोप से होता है। वातदोष अतिसार व प्रवाहिका के पीछे प्राय गुदभ्रश व गुदनि सरण होता है। बार-बार अतिसार होने से, बार-बार शौच जाते समय काखने (प्रवाहण-जोर करने) से, व्यक्ति की शारीर प्रकृति वात-दोषप्रधान होने से, सनिरुद्ध गुद (गुद-मार्ग अति सकीर्ण) होने से, कृमिदोष, प्रवाहिका, अर्श-मस्सा, भगन्दर व बडी कास (हूपिंग कफ-कुक्कुर कास) होने से भी गुदभ्रश होता है। इसके अलावा अति कठिन आसन (जैसे काष्ठ या पत्थर का आसन) पर अधिक बैठने से, साइकिल अधिक चलाने से, भारी बोझ उठाने से, लकडी की कुर्सी (Chair) पर अधिक बैठने के अभयास से भी बडो को गुदभ्रश हो सकता है।

औरतो को इस दर्द से बराबर मिलता हुआ व ऐसे ही वातदोष प्रकोप से योनिभ्रश होता है। योनिभ्रश मे उपरोक्त कारणो के अलावा बार-बार गर्भपात-गर्भस्राव, अधिक समय तक ऋतुस्राव होना, मासिकस्राव व प्रसूति के समय अधिक परिश्रम करने से योनिभ्रश होता है।

रोग की सम्प्राप्ति-गुदावर्ती स्थूलान्त्र (Large Intestine) मे किसी भी बजह से वातदोष प्रकुपित होने से गुदा के अन्दर रही हुई श्लेष्मकला उलट कर गुदछिद्र से बाहर आ जाती है। गुदा का बाहर निकला हुआ अश भीतरी बन्धनो (छोटी कण्डराओ) से अलग हो जाता है, जिससे गुद का मासल अश उसकी त्रिवल्ली से भिन्न हो जाता है। कई बार इस अग की कमजोरी ही कारण बनती है। गुद की सबसे बाहर की सवर्तक वल्ली ढीली-कमजोर हो जाने से गुदद्वार फिर से बराबर बन्द हो नही सकता है। इसलिए वल्ली का ऊपरी मासल-आत्र बाहर निकल आता है। बार-बार अतिसार होने से गुदमास शुष्क, सकुचित व ढीला हो जाता है। इसलिए वह अपना कार्य बराबर नहीं कर सकता। इस स्थान का वायु प्रकुपित होता है। जिससे गुदभ्रश पैदा होता है।

नोट-कृश-दुर्बल बच्चो को व बडो को गुदभ्रश अधिक होने की सम्भावना है। कई बार बाहर से स्वस्थ-बलवान् दीखने वाले बच्चो को भी यह दर्द होता है। कई बार गुदभ्रश अतिसार के बाद मे, तो कई बार उससे पूर्व मे भी होता है। गुदभ्रश स्वतन्त्र रोग भी है और परतन्त्र भी है। यह रोग नया हो, जो जल्दी काबू मे आता है। लेकिन पुराना रोग मुश्किल से मिटता है।

व्याधि की चिकित्सा-

बाह्य चिकित्सा-(१) कच्ची फिटकरी या मायाफल चूर्ण को गरम पानी मे उबाल ले। शीतल करके उस जल से बाहर निकली हुई आत को धोये।

(२) माजूफल, फिटकरी, कत्था व त्रिफला चूर्ण का क्वाथ बनाकर उससे नि सृत आत को बार-बार धोये या उस चूर्ण को आत पर छिडके।

(३) जामुन, बहेडा, पीपल, बढ आदि बडे पेडो के पत्ते एकत्र कर उनका काढा बनाकर बाहर आई आत को इस काढे से बार-बार धोये।

इन उपायो के बाद-(१) एरण्ड तैल १०० ग्राम को कटोरी मे गरम करके उतार ले, फिर उसमे ३ गाम कपूर चूर्ण मिला ले। तत्पश्चात् सुहाते उष्ण तैल से निसृत गुदान्त्र को अन्दर बैठा दे। गुदा का पूरा हिस्सा अन्दर चले जाने पर गोफनी-बन्ध का पट्टा या फिर लगोट लगा दे।

(२) गुदभ्रश की सबसे अच्छी, सफल व शर्तिया औषधि है- मूषक तैल। यह छछूदर की चर्बी को तैल मे उबाल कर बनाया जाता है। गुदभ्रश या योनिभ्रश दोनो मे यह तैल भ्रष्ट अग पर लगाकर, उक्त अग को धीरे से अन्दर बिठा देने से काफी अच्छा लाभ मिलता है। फिर उस पर कसकर लगोट पहना दे। कई फार्मेसी यह दवा बनाती है।

(३) मूषक तैल न मिले, तो चूहे की या फिर छछूदर की या गाय की चर्बी प्राप्त कर भ्रष्ट अग पर लगाये।

(४) वह भी न मिल सके, तो चूहे या छछूदर के मास को पानी मे उबाल कर मास को वस्त्र की पोटली मे रखकर उससे आत पर सेक करे।

(५) फिटकरी, माजूफल, जामुन की गुठली व त्रिफला चूर्ण का काढा बनाकर उसके सुहाते (उष्ण) जल से भ्रष्ट आत पर धाराभिषेक करे। या फिर उसकी गुदा मे पिचकारी दे।

(६) पुराने चमडे को जलाकर भस्म बनावे। उसे एरण्ड तैल मे मिलाकर मलहम सा बना गुदभ्रश पर दिन मे ३-४ बार लगाये, फिर आत्त को अन्दर बिठा दे।

(७) काच पर चव्यादि घृत लगावे या फिर नारायण तैल जरा गरम करके लगावे। इन उपायो से आत मे सकोचन पैदा होगा, उसे बल मिलेगा और वह अन्दर चली जायेगी।

खाने की औषधि (आभयान्तर चिकित्सा)-गुदभ्रश मे स्नेहन, वातशामक, कफ-बलवर्धक, पौष्टिक चिकित्सा करने का सिद्धान्त है।

(१) कमल के दो पत्रो को सुखाकर चूर्ण बनाले, फिर उसमे समान भाग शक्कर मिला ले। बच्चो को १ से २ ग्राम, बडो को ३ से ५ ग्राम दवा दूध या जल से दे।

(२) यदि विबन्ध-कब्ज हो, तो एरण्ड तैल या ईसवगोल दूध से दे। या फिर गिरमाला (आरग्वध-अमलतास) का गूदा बच्चो को दे। स्नेह द्रव्य से रेचन उत्तम होता है।

(३) यदि अतिसार के कारण गुदभ्रश हो तो बाल चार्तुभद्र चूर्ण (बच्चो को), (बडो को) बिल्वादि चूर्ण, कुटजारिष्ट, कुटजघन वटी, महागन्धक रस, रसपर्पटी मे से योग्य औषधि दे।

(४) यदि रुग्ण पौष्टिक आहार न मिलने से दुर्बल हो तो उसे शक्तिवर्धक, खुराक घी, दूध, मक्खन, शहद, फल आदि के साथ-साथ बच्चो के लिए-बालार्क रस, अरविन्दासव+अश्वगन्धारिष्ट, च्यवनप्राश और बडो के लिए-अश्वगन्धारिष्ट+बलारिष्ट, दशमूलारिष्ट, च्यवनप्राश अश्वगन्धा+ शतावरी+वाकेरी+मूसली+ पीपली मूल का चूण दूध से दे। साथ-साथ शरीर पर हर रोज तैल की मालिश करे। घी का हलुआ, केले आदि खाये। सूखी मेवा खाये, खोपरा खाये।

(५) यदि मल अधिक चिकना व कठिन हो, साथ मे कब्जियत भी हो तो शिवाक्षार पाचन चूर्ण, पचसकार चूण, दीनदयाल चूर्ण या एलीयक चूर्ण गरम जल से विरेचनार्थ दे।

(६) यदि गुदभ्रश के कारण अश्मरी (पथरी) हो, तो रुग्ण को श्वेत पर्पटी या सूरोखार या हजरल यहूद २-३ रत्ती की मात्रा से दिन मे ३ बार गोक्षुरादि क्वाथ या गूगल मे पानी के साथ दे।

(७) यदि रुग्ण की गुदा का मुख अति सकीर्ण-छोटा होने से गुदभ्रश हो, तो पलटी हुई गुद पर हर रोज घड़ियाल (मगर) की या फिर सूअर की चर्बी लगाये। वह न मिले तो एरण्ड तैल या वैसलीन सादा लगावे। फिर गुदा के नाप की एक काष्ठ नली तैलयुत् कर अन्दर कुछ घण्टे रखने का अभ्यास करे। सप्ताह-सप्ताह पर उस गुद-नली का कद १-२ दोरा इस तरह बढाते जाये। जिससे रुग्ण को अधिक तकलीफ न हो। इस तरह क्रमिक अभ्यास से सकीर्ण गुद-छिद्र को युक्ति से चौडा किया जाता है।

(८) हरे रग की काच की एक शीशी मे एरण्ड तैल भरकर उसे ४-५ दिन तक धूप मे रखे। बाद मे उस तैल को भ्रष्ट गुद पर हर रोज लगावे। हरे रग की काच की अन्य बडी बोतलो मे पानी भर कर १ दिन उसे धूप मे छोडकर उसे दूसरे दिन पीने का अभयास करे।

नोट-रुग्ण को अपने पाव पर बैठाकर मलत्याग न करने की और सोकर, पैर लम्बे कर सोते-सोते मल-त्याग करने की सलाह दे। भ्रष्ट गुदा किसी तरह पुन अन्दर प्रविष्ट न हो जाय तो रुग्ण को अस्पताल मे भर्ती करा दे।



भगन्दर (FISTULA IN ANO)

वैद्य मौहरसिह आर्य
मु० पो०-मिसरी (भिवानी) हरियाणा

भगन्दर शब्द की निरुक्ति-

भग परिसमन्ताच्च गुद वस्ति तथैव च।
भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्जेयो भगन्दर ।।

भगन्दर रोग भग, योनि, गुदा और वस्ति, मूत्राशय के चारो ओर के स्थान मे दारुण-छिद्र करके भग के समान आकृति वाला व्रण उत्पन्न होता है। अत उस रोग को भगन्दर कहते है।

पर्याय-स० भगन्दर, अग्रेजी-(Fistula-in-ano) अरबी-नवासीर। नवासीर बहुवचन है "नासूर'' का और नासूर कहते हैं नाडीव्रण'' को। भगन्दर भी नाडीव्रण का एक प्रकार है। नाडीव्रण शरीर के किसी भी भाग मे नलिका के समान पूय का लम्बा मार्ग होता है, किन्तु भगन्दर केवल गुदा के समीपस्थ क्षेत्र मे होने वाली भिन्न हुई पिडिका होती है।

परिभाषा-ते तु भगगुदवस्तिप्रदेशदारणाच्च भगन्दरा उत्युच्यन्ते, अपक्वा पिडका, पक्वास्तु भगन्दरा -सु० नि० ४। भग, गुद तथा वस्ति प्रदेश को दारुण करने के कारण इन्हे भगन्दर कहते हैं। उक्त स्थानो की अपक्वावस्था को पिडका और पक्वावस्था को भगन्दर कहते है।

विमर्श-गुद के विकार को गुदन्दर कहना चाहिए, किन्तु कहा है भगन्दर, क्यो ? इसका उत्तर इन्दु लिखते है-विशेषेण भगस्य दरणदन्यमापि भगवद्दारणाच्च भगन्दर इत्यव्याख्या न गुदन्दरो न वस्तिन्दर इति। इसकी आकृति पककर फूटने पर भग जैसी बन जाती है।

भगन्दर स्थान-"गुदस्य द्वयङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वत पिडकाऽऽर्तिकृत''- गुदा के चारो ओर दो अगुल के क्षेत्र मे भगन्दर होता है।

भगन्दर के भेद-वात-पित्त-श्लेष्म-सन्निपातगन्तु-निमित्ता शतपोनकोष्ट्रग्रीव परिस्राविशम्बूकावर्तोन्मार्गिणो यथासख्य पञ्च भगन्दरा भवन्ति-सु० नि० ४।

वात, पित्त, कफ, सन्निपात तथा आगन्तुक कारणो के क्रमश -(१) शतपोनक (वातज), (२) उष्ट्रग्रीव (पित्तज), (३) परिस्रादि (कफज), (४) शम्बूक (सन्निपातिक), (५) उन्मार्गी (आगन्तुज) ऐसे पाच भगन्दर होते है।

विमर्श-अष्टाग सग्रह मे-"दोषै पृथक् द्वये सर्वेरागन्तु सोऽष्टम स्मृत''-अ० स० उ० ३३। वाग्भट ने परिक्षेपी (वातपित्तज), ऋजु (वातकफज), अर्शोभगन्दर (कफपित्तज) ये तीन द्वन्द्वज भगन्दर अधिक लिखे है।

पाश्चात्य मतेन भेद-शल्यशास्त्र मे भगन्दर के तीन भेद किये गये है-

(१) द्विमुखी या पूर्ण (Complete)-इसका एक मुख मलाशय मे तथा दूसरा गुदौष्ठ के पास बाहर त्वचा पर होता है।

(२) अन्तर्मुखी या अर्वाचीन (Blind Internal or Incomplete Fistula)-इसमे एक ही मुख होता है, जो मलाशय मे खुलता है।

(३) बहिर्मुखी या पराचीन (Blind Internal or Incomplete Fistula)-इसका मुख बाहर त्वचा पर होता है।

सुश्रुत ने भी चिकित्सा स्थान मे चिकित्सा की दृष्टि से दो भेद किये है। यथा-"भगन्दर समीक्ष्य पराचीन नर्वाचीन वा'' अर्थात् भगन्दर को पराचीन (बहिर्मुख) अथवा अर्वाचीन (अन्तर्मुख है, पहचान करे। इस प्रकार दो भेद होते है।

भगन्दर तथा पिडिका मे भेद-अपक्वा पिडका पक्वास्तु भगन्दरा (सु०) अपक्व पिटिकामाहु पाकप्राप्त भगन्दरम्। जब तक भगन्दर अपक्व होते है, तब तक पिडका-पिटिका-फुसी कहलाते है, पक कर फूटने पर भगन्दर कहे जाते है।

भगन्दर के सामान्य कारण-हाथी एव घोडा आदि की पीठ पर सवारी करना, कठिन तथा विषम आसन पर बैठना, उकडू बैठना, अर्श के हेतुओ का सेवन करना, अन्यान्य अपथ्यो का

सेवन करना, पाप-कर्म के फलस्वरूप गुदा के समीप के एक से दो अगुल के प्रदेश मे प्राय पिडिका उत्पन्न हो जाती है। पीछे वहा के रक्त तथा मास को दूषित करके अन्तर्मुख (भीतर की ओर मुख वाला), बहिर्मुख (बाहर की ओर मुख वाला) या उभयोमुख (दोनो ओर भीतर एव बाहर मुख वाला) जो व्रण होता है, उसको भगन्दर कहते है। बस्ति तथा मूत्राशय के समीप होने के कारण उसमे से स्राव होता रहता है। यदि आरम्भ मे उसकी चिकित्सा न की जाये, तो गुदा-बस्ति आदि स्थानो को विदीर्ण करता है। जिनसे अधोवात, मूत्र, मल तथा वीर्य बाहर आते है।

भगन्दरोत्पादक पिडका-जो पिडका गहरे मूल वाली, उठाव वाली, वेदनायुक्त, भीषण प्रकोप करने वाली हो, वह भगन्दर रोग उत्पन्न करने वाली होती है और इसके विपरीत जो पिडका होती है, वह "पिटिका" ही कहलाती है।

विमर्श-गुद प्रदेश मे होने वाली सभी पिडका भगन्दर उत्पन्न करने वाली नहीं होतीं। जिन पिटिकाओ का मूल गहरा होता है, जिनमे तीव्र वेदना होती है, वह वेदना मूल भाग मे भीतर की ओर गमन करती प्रतीत होती है। ऐसी पिडका ही भगन्दरी पिटिका होती है।

भगन्दर के पूर्वरूप-तेषा तु पूर्वरूपाणि कटिकपालवेदना कण्डूर्दाह शोकश्च गुदस्य भवति-सुश्रुत। इनके पूर्वरूप मे कमर का दर्द तथा गुदा मे कण्डू, दाह और शोथ होता है।

विमर्श-भगन्दरी पिडका के मूल गूढ-गहरे होते है। यदि यह पिडका गुद के पिछले भाग कटि की ओर उठती है, तो कमर की अस्थियो मे पीडा होती है। शोथ गुद के भीतर तथा बाहर भी हो सकता है। जहा पिडका उत्पन्न होती है, वह स्थान शोथयुक्त हो जाता है। दाह और कण्डू भी शोथ स्थान पर पाया जाता है। अपक्व पिडका मे दाह अधिक होता है। ऐसा अनुभव होता है, मानो उस स्थान पर अगारा रखा हुआ है। पिडका फूटने पर दाह शान्त हो जाता है। वेदना शमन हो जाती है। पिडका का मुह-छिद्र बन्द हो जाने पर पुन वेदना होने लगती है।

भगन्दर-कृमेस्तृष्णादिक्षण्नव्यवाय-
प्रवाहणत्युत्कटुकाश्वपृष्ठै।
गुदस्यपार्श्वे पिडका भृणार्ति
पक्वप्रभिन्नातु भगन्दर स्यात्।।
-च० चि० १२।

कारण-कृमि, तिनका आदि चुभना तथा मैथुन, प्रवाहण (मल-विसर्जन के समय कुन्यन करना), उकुडू बैठना, घोडे की पीठ पर सवारी इनके अति सेवन से।

लक्षण-गुद के पार्श्व मे अत्यन्त वेदना वाली पिडका होती है, जो पककर फूटने पर भगन्दर कहाता है।

(१) शतपोनक (वातज) भगन्दर-अपथ्य (वातकारक आहार-बिहार) के सेवन से वात प्रकुपित, सन्निवृत्त-निरुद्धगति तथा स्थिर होकर गुदा के समीप एक-दो अगुल चारो ओर के प्रदेश मे मास तथा रक्त को दूषित करके श्याव या अरुण वर्ण की पिडका उत्पन्न करता है। उस पिडका मे तोद आदि वात वेदनाए होती है। इस अवस्था मे उसका उपचार न करने पर वह फुसी पक जाती है, व्रण हो जाता है। मूत्राशय के समीप होने से व्रण प्रक्लिन्न (गीला) होकर छलनी जैसे अनेक छिद्रो से व्याप्त होता है। उन छिद्रो से निरन्तर झागदार अतिस्राव होता है। व्रण मे ताडन, भेदन, छेदन और सूचीवेधन की सी वेदना होती है। गुद प्रदेश विदीर्ण होता है। चिकित्सा की उपेक्षा करने पर व्रण के छिद्रो से वायु, मूत्र, मल और शुक्र आने लगता है। इस भगन्दर को शतपोनक कहते है।

विमर्श-चरक के अतिरक्त वाग्भट तथा माधव ने सुश्रुतानुसार ही शतपोनक का वर्णन किया है। शतपोनक भगन्दर मे अनेक नाडी-व्रणो की उत्पत्ति हो जाती है। पूय चारो ओर की शाखाओ मे फैलकर अनेक छिद्र कर देती है। पाश्चात्य विद्वान् इसे मल्टीपुल फिस्चूली (Multiple Fistulae) कहते है।

(२) उष्ट्रग्रीव (पैत्तिक) भगन्दर-पित्तप्रकोपक हेतुओ के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर वायु से अध -प्रेरित होकर पूर्व की भाति स्थिर होकर गुद के समीप के एक-दो अगुल प्रदेश मे स्थानसश्रय कर काले वर्ण की, पतली, उठी हुई ऊट की ग्रीवा के आकार की फुसी उत्पन्न करता है। उस पिडका मे चोषादि पैत्तिक वेदनाए होती है। प्रतिकार न करने पर व्रण मे अग्नि से जलाने तथा क्षार लगाने का सा दाह होता है। उससे दुर्गन्धित तथा उष्ण स्राव निकलता है। उपेक्षा करने पर व्रण से वात, मूत्र, मल तथा शुक्र का स्राव होता है। इस भगन्दर को उष्ट्रग्रीव कहते है।

विमर्श-इस पिडका की आकृति ऊट की गर्दन के सदृश होती है।

वृद्ध वाग्भट ने "ज्वरधूमायनान्विता" ज्वर तथा भीतर धुआ उठता हो, ऐसा भासता है, विशेष लक्षण लिखे है। उष्ट्रग्रीव भगन्दर पैत्तिक होने के कारण शीघ्र पकने वाली होती है।

(३) **परिस्रावी (श्लैष्मिक) भगन्दर**-कफ-प्रकोपक हेतुओ के सेवन से प्रकुपित तथा वायु से नीचे की ओर प्रेरित हुआ कफ गुदा के चारो ओर एक या दो अगुल पर स्थित होकर किञ्चित् श्वेत वर्ण की स्थिर, कण्डूयुक्त पिडका उत्पन्न करता है। वह पिडका कण्डू तथा अन्य कफजन्य वेदनाए उत्पन्न करती है। उसकी चिकित्सा न करने से पक जाती है। फूटने पर उत्पन्न हुआ व्रण कठिन, शोथयुक्त होता है। उसमे खुजली आती है। उससे निरन्तर पिच्छिल-स्राव होता है। उपेक्षा करने पर उस व्रण से वात, मूत्र, मल तथा वीर्य आने लगता है। इस भगन्दर को परिस्रावी कहते है।

विमर्श-वृद्ध वाग्भट ने "स्थिरा स्निग्धा महामूला पाण्डु कण्डुमती कफात्" स्थिर, स्निग्ध, मूल मे गहरी, पाण्डु तथा कण्डूयुक्त पिडका कफज भगन्दर मे उत्पन्न होती है, लिखा है। इसमे गाढा स्राव निरन्तर निकलता रहता है। इसमे पीडा मन्द होती है।

(४) **शम्बूकावर्त (सन्निपातिक) भगन्दर**-प्रकुपित वात कुपित पित्त तथा कफ को साथ लेकर नीचे आकर, गुदा के समीपस्थ एक-दो अगुल क्षेत्र मे स्थिर हो पाव के अगूठे के अग्रभाग के प्रमाण की सब दोषो के लक्षणो से युक्त पिडका उत्पन्न करती है। पिडिका तोद, दाह, कण्डू आदि बेदनाए उत्पन्न करती है। उपेक्षा करने से पक जाती है और फूटकर व्रण बन जाता है। व्रण से नाना-प्रकार का स्राव निकलता है। उसमे पूर्ण नदी मे उत्पन्न होने वाले भवर के समान तथा शम्बूक के आवर्त के सदृश विशेष प्रकार की वेदनाए उठती है। इस भगन्दर को शम्बूकावर्त कहते है।

विमर्श-अष्टाग सग्रह मे "शूलारोचक तृड्दाह ज्वरच्छर्दिरुपद्रुता" लक्षण विशेष लिखे है। माधव ने इसकी आकृति "गोस्तनोपमा" गाय के थन के समान लिखी है।

सान्निपातिक भगन्दर मे सब दोषो के लक्षण पिडकाओ के वर्ण, वेदना तथा स्राव पाये जाते है। शम्बूक के शरीर पर आर्तव-भवर-चक्र से होते है। शम्बूकावर्त भगन्दर की नालिया भी भवर की भाति टेढी-मेढी होती है। घुमावदार नालिया होती है। इस भगन्दर मे नाडीव्रण एक ही होता है। आधुनिक शल्यविद् इनको होर्स शू फिश्चुला (Horse Shoe Fistula) कहते है।

(५) उन्मार्गी (आगन्तुज) भगन्दर-मासलोलुप मनुष्य जब अज्ञान से अन्न के साथ अस्थि का टुकडा खा लेता है, तब गाढे मल के साथ मिला हुआ वह हड्डी का टुकडा अपान-वायु से गुदा की ओर प्रेरित होकर जब टेढा आता है, तब गुदा मे व्रण उत्पन्न कर देता है। उस क्षत मे कोथ पैदा होता है। जैसे जलार्द्र भूमि मे कृमि उत्पन्न होते है, उसी प्रकार रक्ताव्याप्त मासकोथ मे कृमि पैदा होते है। वे कृमि गुदा को खाते हुए गुदा के पार्श्व से विदीर्ण करते है। उस कृमि कृत मार्ग से वात, मूत्र, पुरीष तथा वीर्य बाहर आते है। इस भगन्दर को उन्मार्गी (क्षतज) कहते है।

विमर्श-अस्थि शल्य के अतिरिक्त भी जब कोई इसी प्रकार की वस्तु गुदा मे पहुच कर क्षत उत्पन्न कर देती है, तो उन्मार्गी भगन्दर उत्पन्न हो जाता है। कृमि तो उपेक्षा करने पर अन्य भगन्दरो मे भी उत्पन्न हो सकते है।

(१) परिक्षेपी (वातपित्तज) भगन्दर-

वातपित्तात् परिक्षेपी परिक्षिप्य गुद गति ।
जायते परितस्तत्र प्राकार परिखेव च।।

वात-पित्त से दुर्ग के चारो ओर जैसे खाई होती है, उसी प्रकार गुदा के चारो ओर नाडी-व्रण होता है। उसको परिक्षेपी भगन्दर कहते है।

विमर्श-वातपित्त से जो पिडका होती है, वह श्याव तथा ताम्र वर्ण की होती है। वह दाह और भयकर पीडा करने वाली होती है।

(२) ऋजु (वातकफज) भगन्दर-

ऋजुर्वातकफदृज्व्या गुदो गत्वाऽत्र दीर्यते।

-अ० हृ० उ० २८।

वातकफ से उत्पन्न ऋजु सरल गति वाले व्रण से गुदा विदीर्ण होती है।

विमर्श-वृद्ध माधव ने कहा है-

पाण्डुरा किञ्चिदाश्याव कृच्छ्रपाका कफानिलात्।

वातकफज भगन्दर पिडका पीताम, किञ्चित् श्याव वर्ण तथा कष्ट से पकने वाली होती है।

(३) अर्शो भगन्दर (कफपित्तज)-

कफपित्तेतु पूर्वोत्थ दुर्नामाश्रित्स कुप्यत ।
अर्शोमूले तत शोथ कण्डूदाहादिमान् भवेत्।।

स शीघ्र पक्वाभिन्नोऽस्य क्लेदयन्मूलमर्शस ।
स्रवत्यजस्र गतिभिरयमर्शो भगन्दर ।।

जब वात तथा पित्त पूर्वोत्पन्न अर्श मे आश्रय करके प्रकुपित होते है तब अर्श के मूल मे कण्डू, दाह, कटि-वेदनायुक्त शोथ उत्पन्न होता है। वह शोथ पककर फूटने पर अर्श के मूल मे क्लेद उत्पन्न करके निरन्तर पूय को स्रवित करता है। उसको अर्शो भगन्दर कहते है।

भगन्दर पिडका तथा अन्य पिडका मे अन्तर

उत्पद्यतेऽल्परुकशोफात् क्षिप्र चाप्युपशाम्यति ।
पाखन्तदेशे पिडका सा ज्ञेयाऽन्या भगन्दरात् ।।

भगन्देरतर पिडका–गुद के अन्तिम प्रदेश मे अल्प पीडा तथा शोथ से युक्त जो पिडका उत्पन्न होती है और शीघ्र शान्त भी हो जाती है, उसे भगन्दर से अन्य प्रकार की फुसी समझनी चाहिए।

पायो स्याद् द्वयङ्गुलेदेशे गूढमूलासरुग्ज्वरा ।
भगन्दरीति विज्ञेय पिडकाऽतोविपर्ययात् ।।

भगन्दर पिडका–जो गुदा से दो अगुल दूरी पर हो, गहरे मूलयुक्त, पीडा तथा ज्वरयुक्त, वह उपर्युक्त पिडका के लक्षणो से विपरीत होने के कारण भगन्दर पिडका समझनी चाहिए।

साध्यासाध्य विवेक

घोरा साधयितु दुखा सर्व एव भगन्दरा ।
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थ क्षतजश्च विशेषत ।।

सभी भगन्दर दुख देने वाले तथा कष्ट से साध्य होते है। उनमे भी त्रिदोषज तथा क्षतज (आगन्तुज) विशेष रूप से असाध्य होते है।

षट्कृच्छ्रसाधनास्तेषा निचय क्षतजौ त्यजेत् ।
प्रवाहिर्णी बलीं प्राप्त सेवर्नी वा समाश्रितम् ।।

–वाग्भट।

आठ प्रकार के भगन्दरो मे तीन एक-दोषज तथा तीन द्वन्द्वज ये छ भगन्दर कृच्छ्रसाध्य है। सान्निपातिक और क्षतज (आगन्तुज) भगन्दर असाध्य है। प्रवाहिणी गुदवली तक पहुचा हुआ या सेवनी मे प्राप्त भगन्दर असाध्य है।

वातमूत्रपुरीषाणि कृमिय शुक्रमेव च ।
भगन्दरात् स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ।।

–सुश्रुत।

जिन भगन्दरो से वात, मूत्र, पुरीष, कृमि तथा शुक्र का स्राव होने लगता है, वे रोगी के प्राणो का नाश कर देते हैं।

विमर्श–सभी भगन्दर कृच्छ्रसाध्य क्यो होते हैं ?

भगन्दरो का उत्पत्ति स्थान अशुद्ध होने के कारण सक्रमण पुन-पुन हो जाता है। भगन्दर पिडका का मूल गूढ होता है, जो नाडी मार्गों के सौत्रिक तन्तुओ मे व्याप्त होता है। विकृत स्थान को पूर्ण विश्राम नहीं मिलता।

भगन्दर चिकित्सा सिद्धान्त

(१) भगन्दर पिडका को पकने से पूर्व ही चिकित्सा आरम्भ कर समाप्त करने का प्रयत्न करे।

(२) ऐसी औषधियो का प्रयोग करे, कि भगन्दरी पिडका मे पाकारम्भ न होने पावे। एतदर्थ-कोष्ठशुद्धि, रक्तमोक्षण, शीतल सेचन एव लेपन आदि के प्रयोगो से उपचार करे।

(३) पाकारम्भ होने पर प्रथम स्नेहन एव अवगाह स्वेदन करे।

(४) भगन्दर व नाडीव्रण मे पहले एषणी (Probe) द्वारा व्रण का अन्वेषण करे कि कहा तक गमन है। फिर उसका शस्त्र द्वारा विदारण कर व्रणवत् चिकित्सा करे।

(५) विबन्ध न होने दे। यदि विबन्ध हो जाए, तो तीव्र रेचन न दे।

(६) यह शस्त्रकर्म साध्य रोग है। रोगी को चेतावनी देकर चिकित्सारम्भ करे।

(७) नाडीव्रण साध्य या कष्टसाध्य होने पर औषधियो से सिद्ध हो जाता है।

भगन्दर की चिकित्सा–

१ भगन्दरी पिडका साम हो, पाकारम्भ न हुआ हो ऐसी अवस्था मे बैठाने का प्रयत्न करे।

(१) दशाग लेप-(शा० स०) शिरिषकी छाल, मुलहठी, तगर, लाल चन्दन, बडी इलायची, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ तथा सुगन्धवाला प्रत्येक समभाग लेकर वस्त्रपूत चूर्ण करे। पीछे इसका उपनाह करे। दशाग लेप १ भाग, गोघृत १ भाग मधु १ भाग, अलसी चूर्ण ५ भाग लेकर थोडा जल मिलाकर मन्द आच पर पकाकर कपडे के ऊपर बिछाकर थोडा गरम रहते

हुए पिडिका पर बाध दे। तीन-तीन घण्टे पर बदल-बदलकर इसे बाधते रहे। इससे प्रारम्भ मे प्रयोग करने से फोडा बैठ जाता है। पर यदि पकना आरम्भ हो गया हो तब बाधने से फोडा फूट जाता है। फूटने पर भी २-३ दिन तक इसे बाधता रहे ताकि सम्यक् पककर सारी पूय निकल जाए।

(२) अध पुष्पादि लेप-अधाहूलीमूल तथा शहतूत पत्र के कोष्ण कल्क का उपनाह दशाग लेपवत् करे।

(३) शुण्ठि, गुडूची, पुनर्नवा, वटपत्र, पुरानी ईंट पानी मे देर तक पडी हुई, इन सबको समभाग लेकर वस्त्रपूत चूर्ण कर कल्क बनाकर, कोष्णकल्क का उपनाह भगन्दर पिडका पर बाधने से पिडका वहीं बैठ जाती है।

(४) अहिफेन, एलुआ, मुनक्का ६-६ ग्राम ले, जल के सयोग से कल्क बना, कोष्ण कर भगन्दर पिडका पर बाधने से गाठ बैठ जाया करती है।

(५) पुनर्नवा, शुण्ठि, गुडूची, यष्टिका, बदरपत्र समभाग ले, कोष्णकल्क बनाकर बाधे।

(६) पाकारम्भ से पूर्व ही रक्तमोक्षण-श्रृग अलाबू जोक आदि के द्वारा कराने से पिडका शान्त होती है।

२ **पाकारम्भ होने पर**-पिडका को शीघ्र पकाकर फोडने का प्रयत्न करे। एतदर्थ-

(१) दशागलेप का उपनाह पूर्वोक्त विधि से बाधे।

(२) **निम्बपत्रादि उपनाह** (सि० यो० स०)-नीम की ताजी पत्ती, हल्दी, घी, शहद, तिल और जौ का आटा इनको यथावश्यक ले, जल मे पीसकर, मन्द अग्नि पर पकाकर, कपडे पर बिछा, ऊपर से दूसरा कपडा रखकर भगन्दरी पिडका (या व्रण शोथ) पर बाध दे। २-२ घण्टे से बदलकर दूसरी पुल्टिस बाधे इससे पाक आरम्भ न हुआ हो तो शोथ बैठ जाता है और पाक प्रारम्भ हुआ हो तो जल्दी पककर फूट जाता है।

(३) शण के बीज, मूली के बीज, सहिजन के बीज, तिल, सर्षप, अलसी, जौ का आटा समभाग ले कल्क बनाकर, कोष्ण का बाधने से भगन्दरी पिडका शीघ्र पक जाती है।

३ **भेदन कर्म**-पकी पिडका जिसमे पूय उत्पन्न हो गई हो, फूटी न हो, ऐसी भगन्दरी पिडका को शीघ्र फोडने का उपाय करे। एतदर्थ-शल्यकर्म ही श्रेष्ठ है।

वृद्ध, बालक, दुर्बल डरपोक तथा स्त्रियो के लिए शल्यकर्म न कर औषधियो द्वारा पिडका को फोडना चाहिए।

(१) **क्षारादि उपनाह** (र० त० सा०)-साभर नमक ३ ग्राम, लोटिया सज्जी ३ ग्राम, हल्दी १ ग्राम, घी ६ ग्राम, अलसी चूर्ण या बाजरे का आटा २४ ग्राम ले। सबको मिला जल डालकर पतला करे। फिर मन्दाग्नि पर पकाकर कपडे पर फैलाकर उपनाह बना, पके फोडे पर सहन हो सके उतना गरम बाध देने से पिडका शीघ्र फूट जाती है।

(२) करञ्जवा, भल्लातक, जयपाल मज्जा, चित्रमूलत्वक्, कबूतर की बीठ, गिद्ध की बीठ समभग ले पानी मे पीस कोष्ण गाढा लेप करने से शीघ्र फोडा फूट जाता है।

(३) हाथी दात को जल मे घिसकर लेप करने से फोडा फूट जाता है।

(४) *विरेचन चैषणपाटन च*
विशुद्ध मार्गस्य च तैलदाह ।
स्यात् क्षारसूत्रेण सुधावितेनच्छि-
न्नस्य साक्ष्म व्रणवच्चिकित्सा ।।

भगन्दर रोग मे सर्वप्रथम विरेचन करावे। विरेचनान्तर एषणी द्वारा उसकी गति का पता लगावे। गत का ठीक-ठीक ज्ञान कर पास (चीरा लगाना) करना चाहिए। जब उचित शोधन औषधि के प्रयोग से व्रण का मार्ग शुद्ध हो जाये तो तप्त तैल द्वारा व्रण मे दाह क्रिया करे। अथवा भगन्दर के पक जाने पर क्षारसूत्र बाधकर उसका भेदन करे। भेदन हो जाने पर व्रणवत् शोधन तथा रोपण क्रिया करे।

विमर्श-भगन्दर मलाशय का रोग होने से मल का शोधन करना परमावश्यक है। मलाशय शुद्ध हो जाने पर एषण क्रिया द्वारा व्रण की गति का ज्ञान ठीक-ठीक हो जाता है। एषणी (Director) द्वारा एषण कर व्रण मार्ग मे पूय आदि की रुकावट हो, तो उसे दूर किया जा सकता है। जब एषणी (शलाका) व्रण की गति का ज्ञान हो जाय तब शल्यकर्म करे। पाटन (चीरा लगाना) कर चुके तब व्रण का शोधन करे। पाटित स्थल मे तैल मे सिक्त स्वच्छ वस्त्र खण्ड (Gauze) भिगोकर रखे। एतदर्थ अनन्तगुण तैल का प्रयोग करे। व्रण शोधनोपरान्त तप्त तैल से दाह करे ताकि विकृत धातुए दग्ध हो जाने से व्रण की रोपण क्रिया मे बाधा उपस्थित न हो सके। यदि शस्त्रक्रिया से

रोगी भय करे तो क्षार का प्रयोग करे। किन्तु क्षार का प्रयोग अधिक दिनो तक किया जाता है। जिससे रोगी को अधिक कष्ट होता है। अत शस्त्र (Bistoury) से पाटन करना (चीरना) ही श्रेष्ठ है। पाटन या क्षारकर्म के अनन्तर रोपण क्रिया करे।

जो भगन्दर बाह्यान्तर्मुख होते है, वहा क्षारसूत्र का प्रयोग किया जाता है।

क्षारसूत्र विधान-एक पतली रेशम की डोरी ले। इस डोरी को हल्दी तथा सेहुड के दुग्ध मे लिप्त करे, फिर डोरी को सुखाले। इस प्रकार सात बार सेहुड दुग्ध मे मिश्रित हरिद्रा चूर्ण मे लिप्त करे। तत्पश्चात् सुखाकर रखले।

क्षारसूत्र प्रयोग विधान-एषणी सदृश रजत की एक मोटी एव सीधी सुई बनावे, इसके एक ओर छिद्र हो, दूसरा शिरा कुण्ठित (बिना धार का, तीक्ष्ण न) हो। इस सूचिका को उबाल कर शुद्ध करले। फिर स्वच्छ रुई से पोछ ले। सूची के छिद्र मे क्षारसूत्र गाथ (पिरो) दे। गुदस्थल को स्वच्छ करे। फिर सुई को भगन्दर के छिद्र मे प्रविष्ट करे। यह ध्यान रहे सुई का क्षारसूत्र वाला शिरा भगन्दर छिद्र मे प्रविष्ट करे। दूसरे हाथ की तर्जनी अगुली गुदा मे डालकर, सुई के छिद्र मे प्रविष्ट करे। दूसरे हाथ की तर्जनी अगुली गुदा मे डालकर, सुई के छिद्र से क्षारसूत्र को निकाल ले। सूत्र को पकडकर रखले और सुई को धीरे-धीरे जैसे प्रवेश की वैसे ही निकाल ले। अब क्षारसूत्र के दोनो शिरे बाध दे। दो तीन दिन मे भगन्दरी व्रण का मार्ग खुल जायेगा। पीछे शोधन व रोपण तैल अथवा मलहम की बर्त्ति को व्रण मार्ग मे प्रविष्ट करे। प्रतिदिन बर्ति को बदलते रहे।

यदि भगन्दर एक मुख वाला हो, तो उसके सूक्ष्म मुख को एषण के आकार की लेखन बर्त्ति से या शस्त्र से चौडा करके पिचकारी द्वारा औषधि तैल प्रविष्ट करे।

विमर्श-भगन्दरवत् नाडी व्रण की चिकित्सा की जा सकती है। नाडी व्रण भी द्विमुख अथवा एक मुख वाला होता है। नाडी व्रण के सूक्ष्म मुख को शस्त्र या क्षारसूत्र से चौडा किया जा सकता है।

५ जब भगन्दरी पिडका फूटकर व्रण का रूप धारण कर लेती है तब-व्रण का शोधन करे। व्रण को स्वच्छ रखने के लिए औषधि कषाय से धोवे। एतदर्थ-

(१) **व्रण कुठार मिश्रण**-वाष्पोदक (उडाया हुआ पानी) ७२० मि० लि० को एक बोतल मे भरकर उसमे ७५० मि० ग्रा० उत्तम कर्पूर डालकर, सुदृढ डाट लगाकर लकडी के तख्ते पर एक सप्ताह तक खुले स्थान मे रखदे। ताकि दिन मे कडी धूप और रात्रि मे चन्द्रमा का प्रकाश उस पर पडता रहे। कर्पूर गल जाता है। यदि कुछ कण रह जाए तो कोई हानि नहीं। बाद मे पिसी हुई फिटकरी १५० ग्राम और उत्तम नीलाथोथा जो श्वेत न हुआ हो ३० ग्राम उपरोक्त कर्पूरोदक मे डालकर २४ घण्टे तक रखे। फिर अच्छे शुद्ध वस्त्र से छानकर दूसरी बोतल मे भरले। इससे व्रण को स्वच्छ करे। लेखनक्रिया के लिए इसका फोहा (Gauze) व्रण मे रखे।

वाष्प जल ६६० मि० लि० मे व्रणकुठार मिश्रण ६० मि० लि० मिला, हिलाकर रखले। इससे व्रणो को साफ करे। नासूर, भगन्दर मे स्वच्छ वस्त्र खण्ड भिगोकर रखने से भी लाभ होता है।

(२) **त्रिफला कषाय**-त्रिफला के क्वाथ से भगन्दर के व्रणो को प्रतिदिन धोना चाहिए।

३ कृष्णतिल, मालकागनी, कूठ, कलिहारी, सोयाबीज, निशोथ, दन्ती समभाग के यवखण्ड का यथाविधि क्वाथ बनावे। इस क्वाथ से भगन्दर के व्रणो को धोवे।

६ प्रलेप-व्रण स्वच्छ होने के पश्चात् लेपो का प्रयोग करे-

(१) **विडालास्थि प्रलेप**-त्रिफला के क्वाथ मे बिल्ली की हड्डी को घिसकर लेप लगाने से भगन्दर तथा दुष्ट व्रण शीघ्र नष्ट होते है।

(२) **रसाञ्जनादि लेप**-रसौत, हरिद्रा, दारुहरिद्रा मजीठ, निम्बपत्र, त्रिवृतमूल, तेजबल, दन्तीमूल समभाग मे ले कूट-पीस, वस्त्रपूत कर पानी के साथ पत्थर पर रगडकर लेप करने से भगन्दर तथा नाडीव्रण ठीक हो जाते है।

(३) **खरसूकादि लेप**-गधे के रक्त मे अर्जुन की छाल का चूर्ण मिलाकर कोष्ण लेप करने से भगन्दर नष्ट हो जाता है।

(४) **स्नुह्यादि बर्ति**-सेहुड का दूध, आक का दूध तथा दारुहरिद्रा समानभाग लेकर खरल मे तब तक घोटे जब तक कि बर्ति बनाने योग्य हो जाए। फिर बर्ति बनाकर सुखाले। फिर भगन्दर-नाडीव्रण को गति (मार्ग दिशा) का ज्ञान करके भगन्दर

के मुख द्वारा वर्ति को प्रविष्ट कर देवे। इस बर्ति को धारण करने से भगन्दर की सब शाखाए नष्ट हो जाती है।

(५) **तिलादि लेप**-तिल, हरड, लोध, निम्बपत्र, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, वचा, लोध तथा रसोईघर का धुआ समान प्रमाण मे मिला पीसकर लेप लगाने से भगन्दर, नाडीव्रण, उपदश तथा दुष्टव्रण मे शोधन एव रोपण करता है।

७ मलहम-नासूर तथा भगन्दर मे मलहमो का उपयोग भी उपयुक्त रहता है-

(१) **भगन्दर नाशक मलहम**-रसकपूर, सिन्दूर, सेलखडी, मुर्दासग, सफेदा, श्वेत कत्था, कर्पूर, चिकनी सुपारी की राख, प्रत्येक १० ग्राम, सत्यानाशी के बीज ८० ग्राम ले। सबको कूट-पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण करले। फिर शतधौत गोघृत चारगुने मे मिलाकर मलहम वनाले। इसके लगाने से नूतन भगन्दर, कण्ठमाला, उपदश, नासूर, गम्भीर व्रण, अर्श, पामा, फोडा, दाद दूर होते हैं।

जव भगन्दर मे गुदा की वाह्य त्वचा और भीतर की रक्तवाहिनी मे सीमित विकृति हो या मास तक विकृति प्रविष्ट हो गई हो, तब इस मलहम के उपयोग से लाभ पहुच जाता है।

चिकित्सा विधान

(१) **स्थानीय चिकित्सा**- व्रण की स्वच्छता अत्यावश्यक है। अत व्रणकुठार मिश्रण अथवा त्रिफला कषाय से व्रण को साफ करे।

(२) व्रण के छिद्र (नाडी व्रण) मे पिचकारी द्वारा तैल प्रविष्ट करे।

विधि-नाडीव्रण या भगन्दरी पिडका को एषणी द्वारा एषण करे, व्रण के भीतर पूय आदि की रुकावटो को दूर करे। व्रण को दबाकर पीव निकाल दे। रोगी को चित्त लिटावे। फिर सिरिज मे औषधि भरकर व्रण मे पहुचावे। स्मरण रहे-सिरिज की सुई (Needle) का अग्रभाग कुण्ठित हो-तीक्ष्ण न हो, एषणी सदृश हो। पिचकारी की सुई या नलिका को नाडीव्रण या भगन्दर पिडका के छिद्र मे अन्त तक प्रविष्ट कर धीरे-धीरे पिस्टन को दबाते हुए पिचकारी वापस खीचे। इस प्रकार नाडीव्रण मे औषधि प्रविष्ट करे।

नाडीव्रण मे वर्ति का प्रवेश-यदि व्रण की नाली पर्याप्त चौडी हो, तो उसमे तैल या औषधि मे कपडे की वर्ति तर कर प्रविष्ट करदे। प्रतिदिन नवीन वर्ति प्रवेश करे। बाह्याभ्यन्तर भगन्दर मे भी वर्त्ति तथा पिचकारी का उपयोग करे।

शस्त्रसाध्य भगन्दर-यदि भगन्दर या नाडीव्रण इतनी गहराई तक पहुच गये हो कि उनके छिद्र से वात मल-मूत्र तथा वीर्य निकलता हो, तो ऐसे भगन्दर या नाडीव्रण की चिकित्सा शस्त्रकर्म द्वारा करे। भगन्दर शस्त्रसाध्य व्याधि है।

अन्त प्रयोज्य भेषज-नाडीव्रणान्तक सत्व कवच मे रखकर प्रात काल दे।

भगन्दर रसायन कवच ताजे पानी के साथ सायकाल इन दोनो के सेवन मात्र से एक सप्ताह मे ही नाडी व्रण तथा भगन्दर समूल नष्ट हो जाते है। पुराने बढे हुए रोगो मे एक सप्ताह सेवन करावे।

पथ्य-गोघृत खूब दे।

अपथ्य-तैल, गुड खटाई न दे। लवण तो बिलकुल ही न दे।

बाह्य प्रयोज्य भेषज-अनन्तगुण तैल पिचकारी द्वारा नाडीव्रण मे भरे।'

इस तैल का पिचु (Gauze) व्रण मे भरे तथा ऊपर लगावे यह तैल शोधन तथा रोपण करता है। विशेष अनुभूत है।

शतपोनक भगन्दर मे-सैकडो छिद्र होते है। अत क्षार अथवा शस्त्रकर्म से उन छिद्रो को एक-एक करके नष्ट करने का प्रयत्न करे। अथवा एषणी से एषण कर व्रणो को स्वच्छ कर पुन पिचकारी द्वारा तैल प्रविष्ट करे। तैल प्रत्येक छिद्र मे अन्त तक पहुचावे। अग्निकर्म करके भी शतपोनक का उपचार कर सकते है। अग्निकर्म से नाडीव्रण का स्रावमार्ग बन्द कर देना चाहिए। इसी प्रकार परिस्रावी भगन्दर मे स्राव मार्गों को शस्त्र से काटकर (या अग्नि से रोध करे) फिर अनन्तगुण तैल से गुदक्षेत्र का सेक करे। अथवा अणुतैल का प्रयोग करे।

यह स्मरण रहे-शस्त्रकर्म, दाहकर्म, अथवा क्षार कर्म करने से पूर्व रोगी की कोष्ठशुद्धि अवश्य कर ले। मलावरोध भी न रहना चाहिए।

भगन्दर व्रण, नाडीव्रण मे पिचकारी द्वारा अथवा वर्ति द्वारा औषधि प्रविष्ट करे।

(२) अस्थि मलहर-बिल्ली के पाव तथा कुत्ते के पाव की हड्डी ५०-५० ग्राम ले, यवखण्ड कर एक मिट्टी के पात्र मे सम्पुट कर जलाकर कोयला कर ले। फिर राख के समभाग बजन मे शतधौत गोघृत मिला मलहर बना ले।

उपयोग-भगन्दर, नासूर तथा भयकर व्रण मे इस मलहर को भर देने से लाभ होता है। इस अस्थि भस्म को त्रिफला क्वाथ अथवा निम्बपत्र के क्वाथ मे खरल करके लगा सकते है।

विशेष-केवल विलाव या कुत्ता या ऊट अथवा मनुष्य की अस्थि त्रिफला क्वाथ या निम्ब क्वाथ मे घिसकर लगाने से भी भगन्दर, नासूर दूर हो जाते है।

(३) तिल तैल २५० मि० लि० कडाही मे डाल आग पर रखकर इसमे एक छिपकली डाल जला ले। फिर इसमे गाय के खुर की राख १२ ग्राम तथा पुराने चमडे की राख १२ ग्राम मिलाकर घोट ले। इसको नासूर मे भरने तथा लगाने से थोडे ही दिनो मे नाडीव्रण नष्ट हो जाता है।

(४) साप की कैचुली को जलाकर राख कर ले। फिर इस राख को बरगद के दूध मे मिलाकर स्वच्छ वस्त्रखण्ड पर लेप करके नासूर पर रखे। पाच दिन तक एक ही फोहा (Gauze) रखा रहने दे, पाचवे दिन पुन बदल दे। इस प्रकार २-३ बार लगाने से नाडीव्रण नष्ट हो जाता है।

सिद्ध योग सग्रह-

(१) हरताल तबकी १० ग्राम, श्वेतमल्ल १० ग्राम, रसकर्पूर १० ग्राम ले, तीनो को खरल मे डालकर इतनी घुटाई करे कि एकजीव हो जाये। फिर वस्त्र मे पोटली बाध ले। तत्पश्वात् फिटकरी चर्णू १५ ग्राम एक सरवा मे बिछाकर ऊपर पोटली रखे और पोटली के ऊपर फिटकरी का चूर्ण ७५ ग्राम डाल पोटली को भली प्रकार बन्द कर दे। पश्चात् कोयलो की तीव्र अग्नि मे दो घण्टे तक पकावे। स्वाग-शीतल होने पर फिटकरी को हटाकर पोटली को निकाल ले और खरल मे डाल ३ दिन तक खरल करे।

मात्रा व अनुपान-२ से ४ चावल तक मधु से।

उपयोग-भगन्दर, नाडीव्रण, कुष्ठ तथा फिरग रोग नाशक है।

(२) **भगन्दरहर रसायन**-उत्तम हरताल पत्रक २५ ग्राम, काले सर्प की कैचुली १२ ग्राम, उत्तम पुष्ट भल्लातक २१ नग ले। हरताल तथा कैंचुली को सूक्ष्म पीसकर वस्त्रपूत कर ले। फिर भिलावो को कूट-पीसकर उक्त चर्णू मे डाल खरल कर एकरस कर ले। तत्पश्चात् सेहुड दुग्ध के साथ ३ दिन खरल करे। फिर छाया मे सुखा ले। पश्चात् एक मृत्तिका शराव मे डाल, ऊपर से समान मुख वाला शराव रख दोनो की सन्धि सम्पुट कर सत्वपातन कर ले। मन्दाग्नि से १२ घण्टे मे सत्व उडकर ऊपर वाले शराव पा लग जायेगा। यह धूसर वर्ण का होगा। यदि कमी रह जाये तो सत्व तथा नीचे रहे द्रव्य को पुन सेहुड क्षीर मे खरल करके दुबारा सत्व उडा ले।

मात्रा-२ से ४ चावल तक कवच मे भरकर या घृत मे लपेटकर दे।

उपयोग-एक सप्ताह सेवन से ही नाडीव्रण तथा भगन्दर समूल नष्ट हो जाते है। पुराने बढे हुए रोग मे एक सप्ताह और सेवन करा दे।

इसके सेवन-काल मे गोघृत खूब दे। लवण, अम्ल, तैल तथा गुड न दे।

(३) **रविताण्डव रस**-शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, दोनो की कज्जली कर घृतकुमारी के रस मे तीन दिन तक घोटे, फिर कल्क बना ले। कज्जली के समभाग ताम्र के सूक्ष्म शुद्ध पत्रो पर उस कल्क से लेप कर दे। अब उन्हे एक हाडी के भीतर रखकर एक छोटे सरवा से ढक देवे तथा सन्धि बन्द कर दे। हाडी के शेष भाग को राख से भर देवे। फिर चूल्हे पर रखकर दो प्रहर तक तीव्र अग्नि से पाक करे। स्वागशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण करे। पश्चात् जम्बीरी नीबू के रस मे खरल कर सम्पुट मे बन्द कर पुट देवे। इसी प्रकार जम्बीरी के रस मे खरल कर सात पुट दे, फिर चूर्ण कर रख ले।

मात्रा व अनुपान-६० मि० ग्रा० घृत+मधु से दे।

सहपान-मूसली चूर्ण+लवण काजी मे मिला पीवे।

पथ्य मे मधुर भोजन दे। दिन मे न सोवे, मैथुन त्याग दे। शीतल आहार न करे। यह भगन्दर को नष्ट करता है।

(४) **भगन्दरहर रस**-शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग की कज्जली बनावे। फिर कज्जली के समभाग ताम्र तथा लोह भस्म मिलावे (३ भाग ताम्र भस्म तथा ३ भाग लोह भस्म

मिलावे)। पश्चात् ३ दिन घृतकुमारी स्वरस मे घोट, गोला वनाकर एक हाडी मे रख ऊपर एक छोटा सरवा रख सन्धि वन्द करें। फिर हाडी को उपलो की राख से भर दो प्रहर तक पाक करे। पश्चात् निकाल ले और नीबू के रस से घोट-घोट कर सात बार पुट दे तथा पीसकर रखे।

मात्रा व अनुपान-६० से १२० मि० ग्रा० तक घी तथा मधु के साथ लेने से भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है।

(५) **नवकार्षिक गुग्गुल**-हरड, बहेडा, आवला तीनो १०-१० ग्राम, शुद्ध गुग्गुल ५० ग्राम, छोटी पीपल १० ग्राम ले। इन सबको कूटकर घृत के साथ मर्दित कर १-१ ग्राम की गुटिकाए वना सुखा ले।

मात्रा-१-१ गुटिका प्रात , सायकाल दे।

उपयोग-यह शोथ, गुल्म, अर्श तथा भगन्दरनाशन मे श्रेष्ठ है।

तैल योग-

(१) **अनन्तगुण तैल**-निम्ब अन्तरत्वक् या छाया शुष्क पत्र, निर्गुण्डी (सम्भालू) वीज या पत्र दोनो १५०-१५० ग्राम, हरड दल, वहेडा दल, आवला दल प्रत्येक ५०-५० ग्राम, जल ३।। लिटर ले। सब द्रव्यो को यवखण्ड कर यथाविधि क्वाथ करे। फिर इस क्वाथ मे १ लिटर शुद्ध तिल तैल मिला आसन्न पाक करे। पश्चात् इस तैल मे निम्न द्रव्य मिलाकर रख ले-

राल, मोम देशी, गुग्गुल, गन्धाबिरोजा, शिलारस, कपूर देशी प्रत्येक ५०-५० ग्राम, कार्बोलिक एसिड २५ ग्राम। अथवा-

क्वाथ का चतुर्थांश जल अवशेष रहते उतार कर छान ले। फिर इस क्वाथ मे तिल तैल तथा राल से शिलारस तक के द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करे। जब तैल सिद्ध हो जाए, तब उतार कर छान ले। पश्चात् कार्बोलिक एसिड तथा कपूर (दोनो को पहले एक शीशी मे डालकर रख दे-तरल बन जाने पर) छाने हुए तैल मे मिला दे।

भगन्दर तथा नाडीव्रण मे इसको पिचकारी द्वारा प्रविष्ट करे अथवा तैल की वर्ति का प्रयोग करे।

(२) **स्नुह्यादि तैल**-मुठियासीज की श्वेत गुद्दी ५० ग्राम, शुद्ध सरसो का तैल २०० मि० लि० ले। यथा विधि तैल सिद्ध करे। इस तैल को पिचकारी द्वारा भगन्दर तथा नासूर मे भीतर तक पहुचावे। नाडीव्रण तथा भगन्दर नाशन मे श्रेष्ठ है।

(३) **चित्रकाद्य तैल**-चित्रक छाल, निशोथ, पाढल, मदार, कठूमर, थूहर, श्वेत कन्नेर, बच, कलिहारी, हरताल, सज्जीखार, मालकागनी प्रत्येक १२०-१२० ग्राम ले और जल के साथ पीसकर कल्क बनावे। तिल तैल ४८० मि० लि०, जल २।। लिटर ले।

यथाविधि तैल सिद्ध करे। इस तैल को भगन्दर तथा नाडीव्रण पर लगावे। यह व्रण-रोपण है।



भगन्दर नाशक क्षार सूत्र

स्नुही दुग्ध १० ग्राम, अर्क दुग्ध १० ग्राम, हरिद्रा चूर्ण ३ ग्राम, सौवर्चल ६ ग्राम, तुत्थ कच्चा ३ ग्राम।

विधि-इन सबको पीसकर ऐसा पक्का सूत्र जो न बहुत स्थूल हो, न सूक्ष्म, इसकी छोटी-छोटी गुच्छिया बनाकर ऊपर की औषधियो मे डालकर सुखाले। सूखने पर इन गुच्छियो को स्वच्छ शीशी मे भर ले।

प्रयोग विधि तथा उपयोग-आवश्यकतानुसार इस क्षारसूत्र को व्रण मुख मे भर दे और एषणी से शनै -शनै चलाता हुआ व्रण के भीतरी आशय तक सूत्र को पहुचा देना चाहिए। पश्चात् व्रण-मुख पर रुई रखकर बाध दे। एक बार का प्रविष्ट सूत्र १२ घण्टे तक व्रण मे रखने के पश्चात् उसे निकालकर नया सूत्र प्रविष्ट करना चाहिए। इसके प्रयोग से पूय प्रथमत अधिक निकलती है और पश्चात् कम हो जाती है। पूवपिक्ष इसके वर्ण आदि मे भी भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। ७-१५ दिन तक क्षार सूत्र का प्रयोग कराना चाहिए। यदि इससे लाभ न हो तो बिलयन को ड्रापर आदि की सहायता से व्रण के भीतर पहुँचाना चाहिए।

-सुधा० प्रयोग सग्रह अक से।

गुद-विदार (ANAL FISSURE)

डा० [illegible] शर्मा, ए०बी०एम०एस०, डी०ए०वाई०एम०, पी-एच० डी०एफ०आई०ए०पी०,
[illegible]पक-शल्य-शालाक्य विभाग, चिकित्सा-विज्ञान-संस्थान, बी० एच० यू०, वाराणसी

[illegible] जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह गुद-प्रदेश में होने वाला एक रोग है, जिसमें [illegible] अथवा विदार (व्रण) की [illegible] होना अनिवार्य है। इसलिए इसे 'गुद-विदार' अथवा "[illegible]" भी कहते हैं। परन्तु प्राचीन संहिता ग्रन्थों में इस [illegible] के [illegible] भी रोग का उल्लेख नहीं मिलता। इसका यह [illegible] नहीं कि प्राचीनकाल में यह रोग नहीं पाया जाता था। यह [illegible] है, कि [illegible] में रोग आधुनिक सभ्यता की देन है, परन्तु [illegible] निश्चित रूप से उन रोगों में नहीं आता। [illegible] (Anal Fissure) अथवा "[illegible]" (Fissure-in-ano) शब्दों का अनुवाद है, [illegible] युग में [illegible] ने इस रोग के पर्याय रूप [illegible] है। परन्तु प्राचीन संहिता ग्रन्थों में जो [illegible] "[illegible]" है, जिसकी [illegible] ने "[illegible] पीड़ा" अथवा [illegible] स्पष्ट किया है।

[illegible] सुश्रुत [illegible] काश्यप [illegible] परन्तु प्राय सभी ने इसे मुख्य [illegible] चिकित्सको [illegible] है। [illegible] भी इसी प्रकार है। [illegible]

[illegible]

'परिकर्तिका'' रोग उत्पन्न होता है। उसी प्रकार गले में भी वमन के उपद्रव स्वरूप इस रोग का प्रादुर्भाव माना गया है तथा इसे भी "परिकर्तिका'' शब्द से ही सम्बोधित किया है। आधुनिक शास्त्र में इस अवस्था को "मैलरी वाइस सिण्ड्रोम'' (Mallory weiss syndrome) के नाम से पुकारा जाता है। परिकर्तिका शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य उल्हण ने-"परि सर्वतोभावेन कृन्ततीव छिनन्तीव वेदना'' इस प्रकार विश्लेषण कर इस रोग-के लक्षणों की ओर संकेत किया है। आचार्य जेज्जट ने भी-'विशिष्ट देश व्यवस्थित वात वेदना परिकृन्ततीव गुदम्'' कह कर इस रोग का स्थान गुद-प्रदेश निर्धारित कर दिया है। अतएव आजकल "गुदचीर'' नाम से जानी जाने वाली व्याधि का यदि शास्त्रीय विवेचन करना हो, तो उसे "परिकर्तिका'' नाम से खोजना होगा।

निदान एवं सम्प्राप्ति-इस रोग के निदान तथा सम्प्राप्ति के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट वर्णन शास्त्रों में नहीं मिलता। परन्तु गुद-प्रदेश में होने के कारण उसमें वात-दुष्टि की प्रधानता को सभी ने स्वीकार किया है, जैसा कि उपरोक्त आचार्य जेज्जट के मत से स्पष्ट है। वैसे इतनी तीव्र वेदना बिना वात के सम्भव नहीं है। आचार्य वाग्भट ने वातोपसृष्ट पुरीष के लक्षण बताते हुए 'परिकर्तिका'' का उल्लेख किया है-

अल्पाल्पं शब्द शूलाढ्य विबद्धमुपवेश्यते।
रूक्ष सफेनमच्छं च ग्रथित वा मुहुर्मुहुः ।।
तथा [illegible] परिकर्तिकम्।
[illegible] रोमा विनिर्दिशेत्।।

--अ० ह० नि० ८/५-७।

[illegible] संहिता में भी इस सम्बन्ध में परिकर्तिका का उल्लेख है। [illegible] है कि यदि वातप्रकृति का रोगी, [illegible] करता है तो उसे परिकर्तिका [illegible]

होने की सम्भावना रहती है। आचार्य कश्यप ने इसे स्पष्टत विरेचन अथवा अतिसार के परिणामस्वरूप होने वाली व्याधियो मे माना है, जिसमे वातदुष्टि प्रधान है-

अनि विस्र सनाद् गुदभ्रशानिलप्रकोप सज्ञानाश परिकर्तिका । -का० सि० ३।

सुश्रुत सहिता मे भी उसे वमन तथा विरेचन के व्यापद् स्वरूप होने वाली १५ व्याधियो मे से एक माना है-

वैद्यातुर निमित्त वमन विरेचन च पश्चदशधा व्यापछते। सामान्वमुभयो सावशेषौषधत्व, जीर्णौषधत्व, हीन दोषपहृतत्व, वातशूलम् अयोगो, अतियोगो, जीवादान, आध्मान, परिकर्तिका, परिस्राज , प्रवाहिका, हृदयोपसरण, विबन्ध, अगग्रह इति।

-सु० चि० ३४/३।

इन सव उद्धरणो से यह स्पष्ट होता है, गुदचीर अथवा परिकर्तिका के उत्पादक हेतुओ मे वातप्रकोपक आहार-विहार ही प्रधान हैं। इनसे उत्पन्न वात-दूषित रूक्ष मल जब हठात् गुदवलियो से होता हुआ गुदमार्ग से बाहर निकलता है, तो वह गुदौष्ठ को विदीर्ण कर देता है। इसी अवस्था को "गुदचीर" कहते है।

आधुनिक शल्य-शास्त्र के अनुसार भी इस रोग की सम्प्राप्ति लगभग इसी प्रकार है। जव कठिन मल को प्रवाहण द्वारा बलपूर्वक बाहर निकाला जाता है, तो उससे गुद-प्राचीर (Rectal wall) मे क्षत उत्पन्न हो जाता है। इसे ही "फिशर-इन-एनो" अथवा "एनल फिशर" की सज्ञा दी जाती है। गुदमार्ग की कार्य-प्रणाली को यदि ध्यान मे रखा जाय, तो ज्ञात होगा कि मलत्याग करते समय बृहदन्त्र मे शक्तिशाली सकोच (Mass Peristalsis) उत्पन्न होते है, जिनसे मल की गति आगे बढती है। ये सकोच कभी-कभी अत्यन्त वेगवान् होते हैं। इस समय प्राकृतिक नियमानुसार गुदौष्ठ पर स्थित सवरणी वली (External Sphincter) का विस्फारित होना आवश्यक है, जिससे मल बाहर निकल सके। यदि किसी कारणवश यह वली विस्फारित न हो सकी, तो ऊपर से वेगपूर्वक आता हुआ मल गुदौष्ठ अथवा मलद्वार को विदीर्ण कर देता है। अतीसार अथवा विरेचन मे यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है, क्योकि उसमे भी आन्त्र सकोच शक्तिशाली होते है। पुनश्च गुदमार्ग का स्थान-स्थान पर वक्र (Curved) होना भी इस रोग की उत्पत्ति मे कारण माना जाता है, क्योकि एनल फिशर प्राय पिछले भाग मे ही अधिक पाया जाता है। अतएव इस रोग की उत्पत्ति मे गुदमार्ग की सरचना तथा कार्यप्रणाली दोनो का ही समान रूप से योगदान है। इसके अतिरिक्त बाहर से होने वाले क्षत जैसे बस्ति नेत्र (Enema nozzle) द्वारा उत्पन्न व्रण का भी समावेश आधुनिक शास्त्र मे किया गया है।

आयुर्वेद-शास्त्र मे भी इसे (१) व्याधि निमित्तज तथा (२) वैद्य निमित्तज भेद से दो प्रकार का माना है। व्याधि निमित्तज परकर्तिका अन्य व्याधियो के उपद्रव स्वरूप होती है। इन व्याधियो मे अतिसार प्रमुख है तथा इसे सभी विद्वानो ने स्वीकार किया है। आचार्य चरक ने इसे वातज अतिसार का उपद्रव माना है-"पक्व वा विबद्धमल्पाल्प सशब्द सशूलफेन पिच्छा परिकर्तिकम्।" ज्वर मे भी उपद्रव स्वरूप परिकर्तिका का होना माना गया है। जिसका उल्लेख चरक सहिता मे ज्वर की चिकित्सा के समय किया गया है-

पिबेत्सबिल्वा पेया वा ज्वरे सपरिकर्तिके।
बला वृक्षाम्ल कोलाम्ल कलशी धावनी श्रृताम्।।

--च० चि० ३/१८६।

आचार्य कश्यप ने गर्भिणी स्त्री मे गर्भ के उपद्रव स्वरूप परिकर्तिका का होना स्वीकार किया है-

गर्भिण्या वातिकी यस्या जायते परिकर्तिका।

-का० सि० १०/१०१।

इस प्रकार व्याधि निमित्तज परिकर्तिका मुख्य रूप से अतीसार, ज्वर एव गर्भ के उपद्रव के रूप मे उत्पन्न होती है।

वैद्य निमित्तज परिकर्तिका अकुशल तथा अयोग्य वैद्य द्वारा प्रयुक्त चिकित्सा-कर्म के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है। इनमे विरेचन-कर्म प्रमुख है। आचार्य सुश्रुत ने इस रोग का वर्ण "विरेचन व्यापद" नामक अध्याय मे ही किया है। चरक ने भी तीव्र विरेचन औषधि के कारण परिकर्तिका की उत्पत्ति मानी है-

स्निग्धेन गुरुकोष्ठेन सामे बलवदौषधम्।
क्षामेण मृदुकोष्ठेन श्रान्तेनाल्पबलेन वा।।
पीत गत्वा गुद साममाशु दोष निरस्य च।
तीव्र शूला सपिच्छास्रा करोति परिकर्तिकाम्।।

-च० सि० ६/६१-६२।

इसके अतिरिक्त त्रुटिपूर्ण बस्तिकर्म से भी यह रोग उत्पन्न होता है। सुश्रुत सहिता मे बस्ति व्यापद् के रूप मे भी इसका वर्णन किया गया है। अतिस्थूल अथवा कर्कश बस्ति नेत्त (Enema Nozzle) द्वारा उत्पन्न क्षत भी परिकर्तिका होता है-

अतिस्थूले कर्कशे च नेत्रेऽन्निमति घर्षणात्।
गुदे भवेत् क्षत रुक् च साधन तस्य पूर्ववत्।।

-सु० चि० ३६/६।

अन्य प्रकार के आघात द्वारा भी इस रोग की उत्पत्ति सम्भव है।

लक्षण-ऊपर दिये गये उद्धरणो मे इस रोग के दो प्रमुख लक्षणो का उल्लेख आता है- (१) तीव्र शूल तथा (२) रक्तमिश्रित पिच्छास्राव। वस्तुत शूल होना इस रोग का सर्वप्रमुख लक्षण है। इतनी तीव्र वेदना किसी अन्य रोग मे नहीं होती। अर्श गुदभ्रश तथा भगन्दर आदि गुदप्रदेश मे होने वाले बडे-बडे रोग अपेक्षाकृत वेदना रहित होते है। परन्तु गुदचीर वेदना की दृष्टि से इनमे सर्वोपरि है, यद्यपि देखने मे यह रोग सबसे छोटा मालूम होता है। यह वेदना मलत्याग के समय उत्पन्न होती है तथा उसके बाद भी ३० मिनट से २ घण्टे तक रोगी को बेचैन किये रहती है। जब तक वेदना शान्त नहीं हो जाती, रोगी किसी काम मे मन नहीं लगा सकता।

आधुनिक शल्यशास्त्र के ग्रन्थो मे इस रोग के सद्य निदान हेतु केवल दो ही लक्षणो का उल्लेख मिलता है- एक तो मलत्याग के पश्चात् तीव्र शूल का होना तथा दूसरे कठिन मल (Hard faecal column) के पार्श्व मे रक्त की धारी का विद्यमान् होना। ये दो लक्षण इस रोग के अविभाज्य अग (Cotch points) हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य कई लक्षणो का उल्लेख आयुर्वेद ग्रन्थो मे मिलता है यथा-गुद, नाभि, मेढ्र एव बस्तिशिर प्रदेशो मे दाह एव कर्तनवत् पीडा, अपान वायु का रुक जाना, उदर मे वायु द्वारा आध्मान तथा भोजन मे अरुचि इत्यादि-

तत्र गुदनाभिमेढ्रबस्तिशिर सु सदाह परिकर्तन अनिलसगो वायुविष्टम्भो भक्तारुचिश्च भवति।

-सु० चि० ३४/१६।

यदि शोफ की अधिकता हो, तो कभी-कभी ज्वर भी हो सकता है तथा यदि वेदना अधिक हो, तो वातसग के साथ-साथ विड्सग भी होना स्वाभाविक है। रोगी बेचैन रहता है, किसी काम मे मन नहीं लगता, बैठने लेटने अथवा चलने मे किसी प्रकार भी आराम नहीं मिलता, मुख पर वेदना के लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होते है। सक्षेप मे यही कहा जा सकता है, कि गुदचीर का रोगी दूर से ही पहिचाना जा सकता है। वह एक करवट होकर बैठता है, ताकि मलद्वार पर भार न पडे। इस रोग का निदान अत्यन्त ही सरल है।

परीक्षा विधि-जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस रोग का निदान करने मे अनुभवी चिकित्सक कभी गलती नहीं कर सकता। रोग का इतिवृत्त तथा रोगी का बाह्य निरीक्षण ही सही निदान के लिए पर्याप्त है। अतएव किसी विशेष नैदानिकीय परीक्षण की आवश्यकता इस रोग मे नहीं है। फिर भी प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा रोग का निश्चयात्मक निदान किया जा सकता है। प्रयत्न करने पर गुदौष्ठ पर स्थित व्रण स्पष्ट दिखाई देता है, परन्तु इसके लिए अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। अन्यथा रोगी असह्य वेदना के कारण असहयोग कर सकता है, अथवा कभी-कभी मूर्च्छित भी हो जाता है।

परीक्षा के लिए रोगी को सर्वप्रथम उत्तान लिटाकर तथा उसके पैरो को मोडकर "लीथोटोमी आसन" (Lithotomy position) मे स्थिर कर लेना चाहिए। यह आसन आजकल



उलब्ध "लीथोटोमी टेबुल" (Lithotomy table) पर आसानी से किया जा सकता है। यदि यह टेबुल उपलब्ध न हो, तो किसी साधारण तख्त पर ही रोगी को उत्तान लिटाकर उसके पैरो को पेट के ऊपर मोड देना चाहिए तथा घुटनो को कुहनी के साथ बाध देना चाहिए। सुश्रुत ने इसी आसन का प्रयोग किया है। इससे गुदमार्ग ढीला होकर स्पष्ट दीखने लगता है तथा रोगी

को दर्द भी नहीं होता। वैद्य को रोगी के पैरो की तरफ एक स्टूल पर सुखपूर्वक बैठकर परीक्षा करनी चाहिए। स्टूल इतना ही ऊचा होना चाहिए, जिससे परीक्षा करने वाले चिकित्सक के नेत्रों की ऊचाई लेटे हुए रोगी के मलद्वार के बराबर हो। अब रोगी से बात करते हुए उसका ध्यान बटाना चाहिए तथा साथ ही दोनो हाथो के अगुष्ठ से मलद्वार को धीरे-धीरे खोलने का प्रयत्न करना चाहिए। इस रोग मे पीडा के कारण मलद्वार एकदम बन्द रहता है। अतएव रोगी को सान्त्वना देते हुए बिना अधिक जोर लगाये मलद्वार को खोलना चाहिये। गुदचीर अन्दर गुदमार्ग मे न होकर बाहर ही गुदौष्ठ पर स्थित होता है तथा सावधानीपूर्वक थोडा-सा मलद्वार खोलते ही देखा जा सकता है। इसमे गुदौष्ठ के ऊपर का चर्म क्षत हो जाता है, जिससे कभी-कभी रक्त के भी कुछ बिन्दु आ सकते हैं। वैसे यह क्षत मलद्वार मे कहीं भी हो सकता है, परन्तु इसका सामान्य स्थान गुदौष्ठ के पिछले भाग मे ही होता है। आगे की ओर गुदचीर बहुत कम देखा जाता है। फिर भी सम्पूर्ण मलद्वार की अच्छी तरह परीक्षा करनी चाहिए। कभी-कभी एक से अधिक व्रण भी एक साथ हो सकते है। गुदमार्ग मे अगुली प्रवेश करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इससे रोगी को असह्य वेदना होती है तथा वह मूर्च्छित भी हो सकता है। केवल दर्शन मात्र से ही रोग का निदान किया जा सकता है।

यदि रोग अधिक पुराना हो, तो कभी-कभी गुदचीर के मूल मे चर्म बढकर बाहर की ओर लटक आता है। इसे चर्मकील (Sentinal skin tag अथवा Sentinal piles) कहते है। यह बाहर से ही दिखाई देता है तथा इसकी उपस्थिति से गुदचीर की स्थिति का निर्धारण आसानी से किया जा सकता है। कभी-कभी यह चर्मकील शोफ के कारण फूलकर बडा हो जाता है और इसमे घोर वेदना होती है। ऐसी अवस्था मे स्थानीय स्वेदन करने के बाद ही परीक्षा कार्य बढाना चाहिए। यह चर्मकील प्राय शोफयुक्त बाह्यार्श (Inflamed external piles) के समान ही लगता है, परन्तु इसके मूल मे गुदचीर का होना इसे अर्श से पृथक् करता है।

चिकित्सा सिद्धान्त–इस रोग के निदान, सम्प्राप्ति एव लक्षणो को ध्यान मे रखते हुए निम्नलिखित चिकित्सा-सूत्र अपनाया जाना चाहिए–

(१) जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, व्रण ही इस रोग का मूल स्वरूप है। अतएव सर्वप्रथम व्रणशोधन एंव रोपण का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए औषध सिद्ध घृत, तेल अथवा मलहम का प्रयोग शास्त्र-विहित है।

(२) इस रोग के मूल मे अतिसार, प्रवाहिका आदि कोई कारण यदि स्पष्ट परिलक्षित होता हो, तो उसकी समुचित चिकित्सा करनी चाहिए।

(३) मल यदि कठिन आता हो, तो उसे ढीला करने के लिए मृदु विरेचन देना चाहिए। कठिन मलत्याग करने मे रोगी को अपार कष्ट होता है। अतएव विरेचन का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य करना चाहिए।

(४) वात-प्रकोप ही इस रोग के लक्षणो का मूल कारण है। अतएव वात शान्ति के लिए 'अनुवासन बस्ति' देने से सद्य लाभ होता है। बस्ति के लिए नारायण तेल, पचगुण तेल, यष्टिमधु तेल अथवा किसी अन्य वातनाशक तेल का प्रयोग किया जा सकता है।

(५) स्थानीय स्वेद देने से भी वात का शमन होने के कारण तुरन्त लाभ होता है। यह कार्य नाडी स्वेद, वाष्प स्वेद (स्थाली स्वेद) अथवा उष्णोदक अवगाह (Hot water sitz bath) द्वारा सम्पादित किया जा सकता है।

(६) रोगी की जठराग्नि को दीप्त रखना भी इस रोग मे अत्यावश्यक है, क्योकि प्राय मन्दाग्नि के कारण ही अपानवायु विकृत होकर रोग उत्पन्न करता है। इसके लिए भोजन के पूर्व अथवा पश्चात् समुचित आसव, अरिष्ट, चूर्ण अथवा अन्य योगो की व्यवस्था करनी चाहिए।

(७) व्रणशोफ को कम करने के लिए गुग्गुल के योगो का प्रयोग अत्यन्त ही हितकर है।

(८) यदि चर्मकील हो गया हो, तथा उसमे शोफ भी हो, तो सर्वप्रथम उसे अग्निकर्म अथवा शस्त्रकर्म द्वारा निकाल देना चाहिए। बिना चर्मकील (Sentinal tag) के निकाले गुदचीर का व्रण ठीक नही हो सकता।

इन सब बातो को ध्यान मे रखकर तथा रोगी के बलाबल, देश काल एव प्रकृति को देखते हुए समुचित औषधि-व्यवस्था

करनी चाहिए।। रोगी को साधारण एव पौष्टिक आहार देना चाहिए, जो कि सुपाच्य भी हो। मिर्च-मसालो का प्रयोग एव तले हुए गरिष्ट पदार्थों का उपयोग सर्वथा वर्जित है।

आधुनिक चिकित्सा सिद्धान्त-फिशर-इन-एनो की कोई बहुत सफल चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र मे नही है। व्रण ही इस रोग का मूल स्वरूप होने के कारण इसका समावेश शल्य-शास्त्र के अन्तर्गत किया गया है। आधुनिक शल्य-शास्त्र मे इस रोग की चिकित्सा के लिए जो भी उपचार समय-समय पर किये जाते है उनका क्रमश उल्लेख नीचे दिया गया है-

१ आधुनिक मतानुसार एनल फिशर मे रोगाणुओ की उपस्थिति तथा उससे उत्पन्न होने वाला व्रण शोफ ही मुख्य रूप से व्रणरोपण मे बाधक होते है। अतएव रोगाणुनाशक औषधि (एण्टीवायोटिक्स) तथा व्रणशोफ नाशक द्रव्यो (एण्टी इन्फ्लेमेटरी) का प्रयोग इस रोग की चिकित्सा मे युक्तरूप से किया जाता है। परन्तु यहा पर यह ध्यान रखना चाहिए कि ये औषधिया इस चिकित्सा मे केवल सीमित अश मे ही सहायक हो सकती है, क्योकि गुदमार्ग एक ऐसा स्थान है जिसे किसी भी औषधि द्वारा रोगाणुयुक्त नहीं किया जा सकता। यहा उत्पन्न प्रत्येक व्रण रोगाणुओ की उपस्थिति मे ही भरता है। इसलिए इन औषधियो का विशेष महत्व इस रोग की चिकित्सा मे नहीं है। हा, व्रण को स्वच्छ अवश्य रखना चाहिए।

२ स्थानीय प्रयोग के लिए भी कई मलहम जैसे "प्रॉक्टोसैडिल" (Proctosedyl), "प्रॉक्टोक्विनौल" (Proctoquinol) "एन्यूसौल" (Anusol) इत्यादि उपलब्ध रहते है जिनमे रोगाणु नाशक द्रव्य (एण्टीसेप्टिक्स) तथा शोथहर द्रव्य के रूप मे कोई कार्टिकीस्टिरॉयड रहते है। इन औषधियो को लगाने पर कुछ समय के लिए अवश्य ही रोगी को लाभ होगा। परन्तु इनका निरन्तर प्रयोग आगे चलकर घातक सिद्ध होता है क्योकि कॉर्टिसोन से शोथ भले ही कम हो, व्रणरोपण मे अवश्य ही बाधा पहुचती है। अतएव ये द्रव्य भी इस रोग की सही चिकित्सा नही है।

३ यदि रोगी वेदना से छटपटा रहा हो तो वहा पर सज्ञानाशक मलहम जैसे "जाइलोकेन ऑइण्मेण्ट" ५ प्रतिशत लगाने का विधान बताया जाता है। इससे वेदना मे तुरन्त लाभ होता है। परन्तु यह औषधि तथा इस प्रकार की कोई भी औषधि व्रणरोपण मे बाधक होती है। अतएव इससे भी उस रोग मे लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। कुल मिलाकर, आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र मे केवल लक्षणो को शान्त करने के लिए औषधिया है, रोग निवारण के लिए नहीं।

४ कुछ शल्यविदो का मत है कि उस रोग मे वेदना का मुख्य कारण बाह्यवलि का सकोच ही है। अत यदि इसका बलपूर्वक विस्फार कर दिया जाए तो यह रोग ठीक हो सकता है। इसी उद्देश्य को लेकर रोगी को सम्मूर्च्छित कर दोनो हाथो की तर्जनी से मल द्वार को बलपूर्वक विस्फारित कर दिया जाता है। इससे रोगी की वेदना शान्त हो जाती है तथा व्रण भी उचित उपचार पाकर धीरे-धीरे भर जाता है। अतएव यह चिकित्सा विधि शल्य जगत् मे अत्यन्त लोकप्रिय है। परन्तु इससे होने वाले उपद्रवो पर भी दृष्टिपात करना चाहिए। बाह्यवली की सकोचनशीलता समाप्त होने पर वह मल को रोकने मे असमर्थ हो जाती है। परिणामस्वरूप रोगी को जब भी शौच की अनुभूति होती है, वह तुरन्त शौचालय की ओर दौडता है, अन्यथा कपडे खराब हो सकते है। यह बडी विषम स्थिति है। यदि वली को कम विस्फारित किया जाए तो वह पुन सकोचनशील होकर गुदचीर को उत्पन्न करती है। अतएव, इस चिकित्सा से लाभ भले ही हो, हानि भी कम नहीं है।

५ यदि यह रोग चिरकारी हो जाय तो इसके आस-पास का भाग फाइब्रोसिस हो जाने के कारण कठिन हो जाता है। जिससे व्रणरोपण नही हो पाता। ऐसी स्थिति मे गुदचीर का छेदन (fissurectomy) किया जाता है। इससे कठिन भाग निकल जाने से व्रण साफ हो जाता है, तथा उसमे रोपण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। छेदन के बाद व्रणवर्त्म का सींवन भी किया जा सकता है। इससे कभी-कभी आशानुरूप लाभ होता है। परन्तु इसकी सफलता केवल ५० प्रतिशत रोगियो तक ही सीमित है क्योकि छेदन के बाद भी व्रण बना ही रहता है। और उसके भरने मे समय लगता है। अतएव गुदचीर के लक्षण भी विद्यमान रहते है। एक बार व्रण भरने के बाद भी रोग पुन -पुन होता रहता है।

इन सब बातो को देखते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक विज्ञान द्वारा भी गुदचीर की सफल चिकित्सा सन्दिग्ध है। शल्य द्वारा भी केवल ५० प्रतिशत रोगियो मे ही लाभ पहुचाया जा सकता है। हा आत्ययिक अवस्था मे लक्षणो

को शान्त करने के लिए यदा-कदा एलोपैथिक औषधियो का सहारा लिया जा सकता है। परन्तु इन औषधियो का निरन्तर प्रयोग प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

अनुभूत चिकित्सा-गुदचीर के ऊपर लेखक ने विस्तृत अनुसन्धान कार्य किया है। अनेक औषधियो का परीक्षण किया गया है तथा भविष्य मे यह रोग न हो इस बात पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। यहा यह बतला देना उचित है कि एक बार गुदचीर होने पर उसकी पुनरावृत्ति होती रहती है। अतएव रोगी को उसके सम्बन्ध मे सदैव सतर्क रहना चाहिए तथा हमेशा पथ्यापथ्य का विचार करना चाहिए। अतिसार अथवा प्रवाहिका होने पर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार विबन्ध होने पर यदा-कदा नियमपूर्वक मृदु विरेचन लेते रहना चाहिए। गुदचीर होने पर निम्नलिखित चिकित्सा-विधि का प्रयोग करने पर दो-तीन दिन मे ही रोगी को लाक्षणिक शान्ति मिलती है तथा यथाशीघ्र व्रणरोपण होकर इस रोग से मुक्ति मिल जाती है।

(१) तैलबस्ति-वात प्रकोप को शान्त करने के लिए रोगी को वातहर तैल बस्ति देने से सद्य लाभ होता है। इस कार्य के लिए रोगी को चित्त लिटाकर किसी औषध सिद्ध वातहर तैल की कम से कम ५ मिलीलीटर की मात्रा गुदमार्ग से प्रविष्ट करानी चाहिए। यह कार्य दिन मे दो बार शौच जाने के आधा घण्टा पूर्व अवश्य करना चाहिए। तैल लगाने के लिए किसी समुचित ड्रॉपर का प्रयोग किया जा सकता है, अथवा इन्जेक्शन सिरिन्ज के अग्रभाग मे सूची के स्थान पर ३-४ इच लम्बी रबर की नली लगा देने से बस्ति का कार्य आसानी से किया जा सकता है। रबर कैथेटर का अग्रभाग काटकर लगा देने से यह सयत्र सर्वोत्तम कार्य करता है क्योकि कैथेटर आगे से गोल होने के कारण आसानी से मल द्वार मे प्रविष्ट किया जा सकता है। इस यन्त्र से रोगी स्वय तैल बस्ति ले सकता है। बस्ति के लिए जिन सिद्ध तैलो को सर्वाधिक प्रभावकारी पाया गया है उनके क्रमश नाम हैं-

(१) पीलू तैल, (२) मधुयष्टि तैल, (३) अणुतैल, (४) नारायण तैल।

इनमे से अणुतैल एव नारायण तैल शास्त्रीय योग है। मधुयष्टि तैल यष्टीमधु का क्वाथ बनाकर तैल पाक विधि से सिद्ध किया जा सकता है। इसी प्रकार पीलू की हरी पत्तियो को पीसकर पीलूतैल सिद्ध कर सकते है।

(२) उष्णोदक अवगाह-यह स्वेदन कर्म की एक विधि है। रोगी को प्रात-साय शौच से आने के बाद सुखोष्ण जल मे बिठाना चाहिये। बैठने के लिए उचित आकार का प्लास्टिक का टब अथवा गमला सबसे अच्छा पात्र है। यह आसानी से उपलब्ध भी हो सकता है तथा ताप निरोधक होने के कारण स्वय गर्म नहीं होता। कभी-कभी जल मे डिटॉल (Dettol) के कुछ बिन्दु डाल लेना उचित है, परन्तु इसका अधिक एव निरन्तर प्रयोग हानिकारक है। उष्णोदक मे बैठकर बाह्य वली को धीरे-धीरे शिथिल करना चाहिए तथा अगुलियो से व्रण को सहलाना चाहिए। इससे लगा हुआ मल का अश बाहर आ जाता है एव व्रण शुद्ध हो जाता है।

(३) जाती घृत-यह व्रण रोपण के लिए सर्वोत्तम औषधि है। उष्णोदक अवगाह के बाद साफ कपडे से मलद्वार को सुखाकर अगुली से इसका स्थानीय प्रयोग करना चाहिए। व्रण के स्थान पर इसकी अधिक मात्रा लगानी चाहिए तथा चारो ओर भी कुछ घृत लगा देना चाहिए। जिससे मलद्वार रूक्ष न हो। रूक्षता होने पर गुदचीर होने की सम्भावना अधिक रहती है। अतएव मुक्त रूप से जाती घृत का प्रयोग करना चाहिए। घृत निर्माण के लिए जाती (यूथिका, जूही-Jasminum auriculatum) की हरी पत्तियो को पीसकर स्नेहपाक विधि से घृत सिद्ध कर लेना चाहिए। पुराण घृत होने पर सर्वोत्तम है। चिकित्सक को यथा सम्भव स्वय ही तैल तथा घृत का पाक करना चाहिए। परिस्थितिवश यदि इसकी सुविधा न हो, तो शास्त्रोक्त "जात्यादि घृत" का प्रयोग किया जा सकता है। इसका प्रयोग भी दिन मे कम से कम २ बार करना आवश्यक है। यदि बीच मे मलत्याग की आवश्यकता हो, तो अधिक बार भी घृत लगाया जा सकता है।

(४) अभयारिष्ट तथा गुग्गुल्वासव-ये दोनो ही प्रसिद्ध शास्त्रीय योग है। इनमे से अभयारिष्ट का वर्णन भैषज्य रत्नावली के अर्शोऽधिकार तथा गुग्गुल्वासव का उल्लेख आचार्य सोढल कृत गदनिग्रह के आसवाऽधिकार मे किया गया है। ये दोनो औषधिया गुदचीर मे परम लाभकारी सिद्ध हुई है। दोनो को ४-४ चम्मच मिलाकर समभाग जल के साथ दिन मे २ बार भोजनोपरान्त लेना चाहिए। इससे भूख बढती है

पाचन-क्रिया ठीक होती है तथा मल की शुद्धि होती है। अग्नि प्रदीप्त रहने से सभी गुद रोगो मे लाभ होता है। साथ ही गुग्गुल्वासव व्रणशोफ को भी दूर करता है। गुग्गुल्वासव न मिलने पर बिडगासव का प्रयोग भी किया जा सकता है। इन औषधियो का निरन्तर प्रयोग कोई हानि नही करता। इसके विपरीत पाचन-सस्थान ठीक रहने से रोगी स्वस्थ रहता है तथा अनेक रोगो से मुक्त होकर प्रसन्नता का अनुभव करता है।

(५) शिग्रु गुग्गुल-यह परीक्षित योग है। इससे व्रणशोफ मे शीघ्र ही लाभ होता है। शिग्रु (सहिंजन) की छाल से क्वाथ बनाकर उसमे शुद्ध गुग्गुल पका लेने से यह योग तैयार हो जाता है। इसकी १-१ ग्राम की गोली बनाकर रख लेनी चाहिए। रोगी को १ से २ गोली तक दिन मे २ बार दी जा सकती है। अनुपान के रूप मे शिग्रु पत्र स्वरस सर्वोत्तम है। अन्यथा जल से भी औषधि ली जा सकती है। गोलियो को चबाकर खाना चाहिए।

(६) षट्सकार चूर्ण-यह सुख-विरेचन है। अधिकाश रोगियो को अभयारिष्ट से ही इच्छित विरेचन हो जाता है। परन्तु क्रूर कोष्ठ के रोगियो को अतिरिक्त विरेचन की आवश्यकता पडती है। इसके लिए षट्सकार चूर्ण अथवा पचसकार चूर्ण ५ ग्राम की मात्रा मे लेना चाहिए। रात्रि को भोजन से पूर्व उष्णोदक के साथ लेना सर्वोत्तम है। इसे आवश्यकतानुसा सप्ताह मे २-३ बार तक ले सकते है। गुदचीर के रोगी को कठिन मल होने से परम कष्ट होता है। साथ ही व्रण भी सही भरता है। अतएव समय-समय पर उचित विरेचन का सेवन करना आवश्यक है। जिन रोगियो मे गुदचीर का कारण अतिसार होता है, उनमे भी आगे चलकर विबन्ध की आवृत्ति पाई जाती है। इसलिए मल ढीला करने के लिए यह औषधि सर्वोत्तम है।

इस चिकित्सा-विधि से लगभग ५०० रोगियो की चिकित्सा की जा चुकी है तथा सभी मे लाभ पाया गया है। ९० प्रतिशत रोगियो मे ४ दिन के भीतर ही वेदना शान्त हो जाती है, शौच मे कष्ट नहीं होता। केवल १० प्रतिशत रोगी ऐसे है, जिनमे कष्ट निवारण के लिए ४ दिन से अधिक समय लगता है। परन्तु किसी भी रोगी मे यह चिकित्सा असफल नही हुई। व्रणरोपण मे २ से ३ सप्ताह का समय लगता है। किसी-किसी रोगी मे प्रवाहिका (Amoebic dysentry) रहने पर उसकी चिकित्सा भी साथ मे चलाने की आवश्यकता होती है, अन्यथा इच्छित लाभ नहीं होता। पुनरोद्भव की प्रवृत्ति इस रोग मे सर्वाधिक है। उसके निवारण के लिए यह चिकित्सा-क्रम पूर्णतया रोगमुक्त होने के बाद भी कम से कम तीन मास तक करते रहना चाहिए। तदुपरान्त अभयारिष्ट का सेवन एक वर्ष तक करने मे पुनरोद्भव की आशका नहीं रहती।

पथ्यापथ्य-पाचन-सस्थान से सम्बन्धित होने के कारण इस रोग मे पथ्यापथ्य का विशेष महत्व है। रोगी को चिकित्सा समाप्त होने के बाद भी आजीवन पथ्यापथ्य का विचार करना होता है। सामान्यत हल्का एव सुपाच्य भोजन इसके लिए पथ्य है तथा गरिष्ट भोजन कुपथ्य है। चिकित्सा के समय रोगी को जो निर्देश दिये जाते है, वे इस प्रकार है-

(१) भोजन मे तीक्ष्ण मिर्च-मसालो का प्रयोग बिलकुल बर्जित है।

(२) मुख्य भोजन के साथ, दही का प्रयोग हितकर है।

(३) दैनिक भोजन मे दाल, रोटी चावल तथा सब्जी की साधारण व्यवस्था करनी चाहिए।

(४) हरी पत्तियो का साग (पालक, बथुआ इत्यादि) बनाकर लेने से पाचन-सस्थान ठीक रहता है।

(५) पूडी-कचौडी तथा अन्य तले हुए पदार्थ नहीं लेने चाहिए।

(६) घी, तेल का प्रयोग सीमित मात्रा मे ही किया जा सकता है। इनका बचाना लाभप्रद है।

(७) अमरूद, सेव, खूब पका हुआ केला, अनार तथा आम जैसे फल भोजन के बाद लिए जा सकते है।

(८) आलू, अरबी जैसी कन्द वाली सब्जियो का प्रयोग बर्जित है।

(९) रात्रि मे नियमित रूप से मुनक्का डालकर दूध का सेवन करना चाहिए।

(१०) आमिष भोजियो के लिए बिना मसाला डाले चर्बीरहित मास (Minced mild) दिया जा सकता है। मत्स्य सेवन कर सकते है। भुना हुआ मास (Roasted Meat) अधिक उपयुक्त है। उबाला हुआ अण्डा भी लिया जा सकता है, परन्तु एक से अधिक नहीं। शेष सभी सामान्यतया मिलने वाले सामिष खाद्य-पदार्थ हानिकारक है।



उदररोग निदान चिकित्सा

द्वितीय भाग एवं अनुभवांक



विभिन्न चिकित्सा प्रणाली खण्ड



उदर रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

वैद्य मुरलीधर उपाध्याय, आयुर्वेद रत्न एन० डी० एम० डी० (एक्यू०)
'मुरलीधाम' २ ब १९, चौपासनी हाउसिग बोर्ड, जोधपुर

उदर रोगो का प्रचलन आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रचुर मात्रा मे बदला जा रहा है लेकिन उदर रोगो की चिकित्सा का ज्ञान आधुनिक चिकित्सको के पास न तो पहले ही था न ही अब है। यही कारण है कि वैद्यो और प्राकृतिक चिकित्सो की चिकित्सा को निरर्थक कहने वाले आधुनिक चिकित्सक भी उदर रोगो के सम्बन्ध मे वैद्यो और प्राकृतिक चिकित्सको का लोहा मानते है। यदि यह कहा जाय कि उदर रोगो की सफल चिकित्सा के कारण आज के प्राकृतिक चिकित्सको एव आयुर्वेद चिकित्सको का समाज मे जो सम्मान है तो अत्युक्ति न होगी।

उदर रोगो की सख्या सैकडो मे की जा सकती है लेकिन इस लेख मे आज के प्रचलित उदर रोगो की सक्षेप मे अनुभूत प्राकृतिक चिकित्सा देना ही मेरा मुख्य उद्देश्य है।

(१) अग्निमान्ध

शरीर की पाचकाग्नि के मन्द पड जाने को अग्निमान्ध रोग कहते है। शुरू से यह रोग अपानवायु, अधोवायु के प्रकोप से आरम्भ होता है। बाद मे पेट भारी होने लगता है, समय पर भूख नहीं लगती, पाखाने की शिकायत रहने लगती है, खट्टी डकारे आती है, मुह मे पानी भर आता है तथा तबियत गिरी-गिरी सी रहने लगती है।

इस रोग मे शक्ति अनुसार कुछ दिनो तक उपवास करना जरूरी है, साथ ही सुबह-शाम गुनगुने पानी का एनीमा लेकर पेट साफ भी करना चाहिए। उसके बाद रोग जाने तक सादे सात्विक भोजन पर रहना चाहिये औा भूख से कम खाना चाहिये। दिन मे कई बार कागजी नीबू का रस मिला जल थोडी-थोडी मात्रा मे पीना चाहिए।

दिन मे दो बार, जब पेट खाली हो, गरम पानी से भिगोए और निचोडे तौलिये से पेट को पन्द्रह-बीस मिनट तक सेकना फायदेमन्द है। इस प्रयोग के बीच-बीच मे तीन-चार मिनट के अन्तर से गरम पानी से भीगे तौलिये को हटाकर ठडे पानी से भीगा तौलिया एक मिनट तक रखते जाना चाहिए। इससे प्रभाव अच्छा पडता है।

प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम कोई न कोई करना चाहिए। या रोज तीन-चार किलोमीटर तक सुबह तेजी के साथ घूमना चाहिए।

सप्ताह मे एक दिन एप्सम साल्ट बाथ लेना चाहिए। रातभर के लिए पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी या कमर पर भीगी पट्टी लगानी चाहिए। आवश्यकता होने पर सबल रोगी को समूचे शरीर की गीली चादर की लपेट, बाष्प स्नान या आतप स्नान भी करना चाहिए।

उदर और मेहन स्नान, विशेषकर गरम और ठडा उदर स्नान इस रोग से बडा उपयोगी होता है। पाच मिनट तक गरम पानी मे उदर स्नान करने के बाद तीन मिनट तक ठडे पानी मे वही स्नान लेना चाहिए।

नीली बोतल के सूर्य तप्त-जल की चार खुराक आधी-आधी छटाक की रोज पीनी चाहिए।

(२) कब्ज

आतो से मल बिल्कुल न निकले, कम निकले, मुश्किल से निकले अथवा बधा हुआ न निकले तो जान लेना चाहिये कि व्यक्ति कब्ज रोग से पीडित है। आतो मे सोखने वाली असख्य ग्रन्थिया होती है जो खाये हुए खाद्य-पदार्थों के उपयोगी रस को भी चूसती हैं और कब्ज की हालत मे आतो मे स्थित मल के जहरीले रस को भी। जब ये ग्रन्थिया मल के जहरीले रस को चूसकर रक्त के माध्यम से सारे-शरीर मे फैला देती हैं तो शरीर मे लगभग सभी रोगो के उत्पन्न होने की आशका हो जाती है।

दो-एक दिनो के मामूली कब्ज मे और कुछ न खाकर केवल-चोकरदार आटे की मोटी रोटी खूब चबा-चबाकर कुछ

दिनो तक खाने से आशातीत लाभ होता है। यदि मोटी रोटी न खाई जा सके तो उसके साथ बिना मिर्च मसाले की उबली शाक-सब्जी खाई जा सकती है। भोजन करते वक्त पानी न पीकर उसके दो घटे बाद पीना चाहिये। रोज कोई हल्का व्यायाम अवश्य करना चाहिए।

पुराने कब्ज को दूर करने के लिए पहले तीन दिन का उपवास या रसाहार करे, फिर तीन दिन तक फलाहार और बाद मे तीन दिन तक फल और दूध या फल और मट्ठे पर रहे। उसके बाद एक सप्ताह तक एक समय रोटी-सब्जी और एक समय केवल फल खाकर रहें। फिर धीरे-धीरे सादे सात्विक भोजन पर आ जाये।

उपवास, रसाहार और फलाहार के दिनो मे हर रोज गुनगुजे पानी का एनीमा लेकर पेट जरूर साफ कर लेना चाहिये। उपवास या रसाहार के बाद पहले एक सप्ताह तक सुबह-शाम उदर स्नान, फिर एक समय उदर स्नान और दूसरे समय मेहन स्नान लेना चाहिये। ये स्नान सात से दस मिनट तक होने चाहिये। रात भर के लिए पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाई जा सकती है।

प्रात काल खुली हवा मे तीन-चार किलोमीटर तेजी के साथ टहलना चाहिये तथा रोज कोई व्यायाम करना चाहिए। शौच के लिए सुबह-शाम दो वक्त अवश्य जाना चाहिये-चाहे शौच हो या न हो, पर शौच के समय भूल से भी अनावश्यक जोर नहीं लगाना चाहिये।

(३) पेचिश

पेचिश का एकमात्र कारण कब्ज है। इस रोग का रोगी खाते-पीते हुए भी दुबला-पतला रहता है। उसकी पाचन-शक्ति दिनोदिन कमजोर होती जाती है, खुराक घटती जाती है और कमजोरी बढती जाती है। पेचिश का रोग धीरे-धीरे वर्षों मे पैदा होता है। इसमे बार-बार शौच जाना पडता है, शौच के साथ आव गिरती है। आव के साथ कभी-कभी खून भी गिरता है और पेट मे ऐठन होती है।

नई पेचिश चार से सात दिनो का उपवास करने, गरम पानी पीने, तत्पश्चात् कुछ दिनो तक सब्जियो के सूप पर रहने, रात भर के लिए पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाने तथा सुबह-शाम मेहन या उदर स्नान लेने से ही ठीक हो जाती है। परन्तु पुरानी पेचिश के हो जाने से साल नही तो कई महीने अवश्य लग जाते है।

पुरानी पेचिश का भी वही उपचार है जो नई पेचिश का। पर पुरानी पेचिश मे रोज गुनगुने पानी का एनीमा भी जरूर लेना चाहिए। पेडू पर सुबह-शाम गीली मिट्टी की पट्टी आधे घटे के लिए रखनी चाहिए। जब कभी मरोड पैदा हो, मिट्टी की यह पट्टी लगाई जा सकती है। इस रोग मे साधारण भोजन शुरू करने पर भुना आलू, भुना हुआ कच्चा केला, खूब पका केला दही के साथ, पका या भुना कच्चा बेल तथा मट्ठा बडे लाभप्रद सिद्ध होते है। मसाले और नमक का सेवन तो इस रोग के उपचार के समय बिल्कुल ही बन्द रखना चाहिये।

पेचिश के रोगी को विश्राम की बडी आवश्यकता होती है रोग शुरू होते ही खुली साफ हवा मे रहना आरम्भ कर देना चाहिए और नित्य कोई न कोई हल्का व्यायाम भी अवश्य करना चाहिए।

इस रोग के आरम्भ मे यदि कुछ दिनो तक चार आना भर ईसबगोल की भुसी को चौबीस घटे तक पानी मे भिगोकर रात को सोते वक्त गरम पानी के साथ खा लिया जाए तो रोग जल्दी दूर हो जाता है।

(४) अतिसार और संग्रहणी

अतिसार को दस्त की बीमारी भी कहते है। सग्रहणी दस्त का उग्र और पुराना रूप होता है और रोगी को बहुत तग करता है। अतिसार और सग्रहणी-दोनो खान-पान की गडबडी से होते है और उसी गडबडी से पुराने और भयकर बनते है। इन रोगो मे जो भी खाया जाता है, पचता नहीं और बार-बार पतले दस्त आते है, जिनमे कभी-कभी असह्य-बदबू होती है। रोगी का श्वास भी बदबूदार होता है, साथ ही पेट मे दर्द और कभी-कभी मतली और कै की भी शिकायत होती है, सिर दर्द और थोडा ज्वर भी प्राय हो जाया करता है।

मामूली दस्त तो पूरे पेट के ऊपर या केवल तलपेट यानी पेडू पर आधी इच मोटी गीली मिट्टी की पट्टी दो-तीन बार लगाने और उसे दो-दो घटे के अन्तर से बदलते रहने से ही ठीक हो जाता है, परन्तु पुराने दस्तो की बीमारी जाने मे थोडा समय लगता है।

पुराने दस्तो की बीमारी मे जब तक दस्त आने बद न हो जाये, *अन्न भोजन त्यागकर केवल गाय के ताजे मट्टे का सेवन* करना चाहिए। रोज ाव-पाव भर मट्टा आठ बार पीना चाहिये। कुछ दिनो बाद मट्ठे के साथ सुबह, शाम, दोपहर तीन बार थोडी किशमिश भी लेनी शुरू कर देनी चाहिए भूख बढने पर किशमिश की मात्रा आवश्यकता अनुसार दी जा सकती है। दस्तो का जोर कम हो जाने पर सुबह और शाम मट्ठा और किशमिश तथा दोपहर में दलिया और उबली सब्जिया लेनी चाहिये। पत्तीदार सब्जियो से कुछ दिनो तक परहेज रखे।

पेट यदि गरम हो तो एक-एक घटा बाद गीली मिट्टी की पट्टी देते रहना चाहिए और यदि गरम न हो तो पेट पर पन्द्रह-बीस मिनट तक भाप देने के बाद दो घटे के लिए मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए और तीन-तीन घटे बाद इस क्रिया को दोहराते रहना चाहिये। पेट मे दर्द हो तो पहले उस पर पन्द्रह-बीस मिनट तक गरम-ठडी सेक देनी चाहिए-तत्पश्चात् उपर्युक्त प्रयोग करना चाहिये। गुनगुने पानी का एनीमा जरूरत होने पर जरूर कराना चाहिये।

उपर्युक्त उपचार करने के बाद भी दस्त बन्द नहीं हो तो पैरो का गरम स्नान देकर भी शरीर से पसीना निकालना चाहिए।

आसमानी रग की बोतल के सूर्यतप्त जल की छ खुराके आधी-आधी छटाक की रोज पीनी चाहिए।

(५) अर्श यानी बवासीर

बवासीर भयानक कोष्ठबद्धता का अन्तिम परिणाम होता है। यह रोग जब शुरू होता है तो गुदाद्वार की भीतरी और बाहरी नसो मे खुजली और जलन मालूम होती है। जलन कभी भीतरी नस मे होती है, कभी बाहरी और कभी बाहरी तथा भीतरी दोनो नसो मे। जिस जगह जलन और खुजली होती है वहा बिना मुह के फोडे की सी छोटी-छोटी गाठे निकली होती है जिसको बवासीर के मस्से कहते है। ये थोडे दिनो मे काफी बडे हो जाते है। मस्से जब फट जाते है और इनसे रक्त निकलने लगता है तो बवासीर खूनी कहलाती है। रक्तहीन बवासीर को बादी बवासीर कहते है।

बवासीर के मस्से इस बात को प्रकट करते है कि शरीर विजातीय द्रव्य से लदा हुआ है, रक्त दूषित हो गया है तथा कोष्ठ मे मल पुराना पड चुका है। इस तरह बवासीर का मूल कारण कब्ज के कारणो से भी गहरा होता है। बवासीर के कारणों मे से कब्ज होना सिर्फ एक कारण है, क्योकि कब्ज के हर रोगी को बवासीर नहीं होती, परन्तु बवासीर के हर रोगी को कब्ज होना जरूरी है। बवासीर के अन्य कारणो मे जिगर की खराबी, उदर-विकार तथा किसी प्रकार का रक्त-विकार आदि हो सकते है।

बवासीर के रोगी को आरम्भ मे ऐसे खाद्य-पदार्थ लेने चाहिए जिनसे कब्ज तो दूर हो ही, साथ मे मल भी इतना मुलायम बने कि वह बिना तकलीफ दिए गुदामार्ग से बाहर हो जाये। आहार मे यथासम्भव सलाद, रसदार फल, या उसका रस, या तरकारी या उसके सूप की अधिकता हो जिससे ऊपर से पानी मिलाने या पीने की आवश्यकता न हो। इस प्रकार का आहार कुछ दिनो तक चलाते रहने से रोग उत्पन्न होने वाली स्थिति बहुत कुछ दूर हो जायेगी और यदि रोग आरम्भिक अवस्था मे होगा तो वह ठीक भी हो जायेगा।

पुराने बवासीर मे कब्ज को मिटाने और शरीर के विकार को दूर करने के लिए तीन से पाच दिनो का उपवास दोनो वक्त एनीमा के साथ आवश्यक है। उपवास के बाद कुछ दिनो तक फलाहार करना चाहिये। उसके बाद एक समय रोटी सब्जी और दूसरे समय फलाहार करना चाहिये।

प्रतिदिन सुबह शाम पन्द्रह से तीस मिनट तक मस्सो पर भाप देने के बाद कटि-स्नान लेना चाहिये और रातभर के लिए पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी भी रखनी चाहिये।

रात को सोते वक्त आधा पाव पानी का एनीमा नीबू के रस का लेकर रातभर उसे आतो मे रोक रखना चाहिये। ऐसा करने से इस रोग मे बडा लाभ होता है।

(६) उदरशूल

उदरशूल अनेक कारणो से होता है। जैसे पाकस्थली मे किसी उत्तेजक पदार्थ के पहुचने, आतो मे वायु भर जाने से, पाकस्थली, यकृत् तथा आते आदि जिस वेष्टन मे वेष्टित होती है, उस वेष्टन की भीतरी झिल्ली मे जलन और प्रदाह होने से, पेट मे बहुत दिनो तक विकार एकत्र रहने से तथा पाकस्थली या आतो आदि मे सूजन व घाव जैसे क्षत होने से। परन्तु दर्द चाहे जिस कारण से हो, दर्द का आरम्भ होते ही आराम होने

तक सिवा नीवू का रस मिला हुआ जल पीने के और कुछ भी नहीं खाना-पीना चाहिए। उसके बाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर आना चाहिए।

उपचार के लिए गुनगुने पानी का एनीमा दिन मे दो बार चार-पाच दिनो तक देना चाहिये और दर्द के स्थान पर पन्द्रह-वीस मिनट तक गरम ठडी सेक देने के बाद दिन मे दो बार पेडू पर गीली मिट्‌टी की पट्‌टी लगानी चाहिए। साथ ही कुछ दिनो तक आवश्यकतानुसार रातभर के लिए कमर पर गीली पट्‌टी लगानी चाहिये तथा रात को सोने से पहले १०-१५ मिनट तक कटि-स्नान लेना चाहिए। बस इतने से उपचार से ही कठिन से कठिन उदरशूल भी शान्त हो जायेगा।

मामूली उदरशूल तो भोजन त्यागकर केवल २-३ गिलास सहने लायक गरम पानी मे कागजी नीबू का रस निचोडकर पीने से ही चला जाता है। यदि पेट के दर्द को किसी तरह से आराम न होता हो तो गरम पानी से भरे टब मे कुछ देर तक बैठने से लाभ होता है।

(७) आन्त्रपुच्छ प्रदाह

आन्त्रपुच्छ प्रदाह को अग्रेजी मे अपेडिसाइटिस कहते है। पेडू के निचले भाग मे छोटी आत जहा बडी आत से मिलती है उसके निचले हिस्से मे आन्त्रपुच्छ की स्थिति होती है। इसको उपान्त्र भी कहते है। इसकी लम्बाई ३ से ९ इच तक और मोटाई चौथाई इच के लगभग होती है। आत की इस पूछ मे जब किसी कारण से दर्द, सूजन या जलन उत्पन्न हो जाती है तो उसे ही आत्रपुच्छ प्रदाह कहते है।

इस रोग का प्रधान कारण कब्ज है। कब्ज के कारण जब तलपेट मे एकत्र विजातीय द्रव्य आगे बढकर आत्रपुच्छ को प्रभावित करता है तो उसमे सूजन और जलन पैदा हो जाती है। पेडू मे दर्द होने लगता है और पेडू की दाहिनी ओर का निचला भाग कडा होकर उभर आता है जिसको दबाने से पेडू का दर्द बढ जाता है। दर्द के साथ ही ठड मालूम होती है। उसके बाद ज्वर चढता है। जो ९९ से १०२ डिग्री और कभी-कभी १०५ डिग्री तक पहुच जाता है। जोरो की मतली होती है और कभी-कभी कै भी हो जाती है।

इस रोग का दौरा पडता है। दौरा पडने पर थोडे-थोडे गरम पानी का एनीमा दो-तीन बार देकर आतो के मल को साफ कर देना चाहिए। थोडा पानी इसलिए कि अधिक पानी का एनीमा देने से आत्रपुच्छ पर अनावश्यक एव अधिक दबाव पड जाने के कारण दर्द मे वृद्धि हो सकती है। बाद मे भी जब तक हालत पूरे तौर से सुधर न जाये दिन मे दो बार एनीमा जरूर लेते रहना चाहिए। पानी भी नहीं पीना चाहिए। अधिक प्यास लगने पर चम्मच से थोडा-थोडा पानी कई बार मे दिया जा सकता है।

दिन मे तीन बार दर्द की जगह आधे-आधे घटे तक गरम और ठडी सेक देनी चाहिए इससे दर्द मे कमी होगी। रोगी के पैरो को गरम पानी से भरी बोतलो द्वारा बराबर गरम रखना चाहिये और उसके सिर को दिन मे तीन बार धोने के बाद तीनो बार गीले तौलिए से उसके समूचे शरीर को पोछ देना चाहिए।

दर्द की जगह गर्म और ठडी सेक देने के बाद दिन मे कई बार गीली मिट्‌टी की पट्‌टी बाधनी चाहिए। पट्‌टी के सूखने से पहले ही उसे बदल देना चाहिए। मिट्‌टी की पट्‌टी काफी बडी और आध इच मोटी होनी चाहिये। सुबह को कटि-स्नान और शाम को मेहन स्नान दस-दस मिनट तक लेना भी इस रोग मे लाभदायक होता है।

रोग का जोर कम होने के एक सप्ताह तक कोई ठोस चीज पेट मे नही डालनी चाहिए। अपितु फलो के रस, खीरा, ककडी का रस अथवा उबली तरकारी के सूप पर रहना चाहिए। उसके बाद नाश्ते मे ताजे फल और दूध, दोपहर को कच्ची तरकारियो का सलाद साथ मे किशमिश या उबली तरकारी तथा शाम को दो पक्की तरकारिया और नारियल या बादाम ले। उसके बाद धीरे-धीरे साधारण सादे भोजन पर आवे।

(८) पित्ताशय की पथरी

प्राकृतिक आहार-बिहार मे चिकनाई वाले पदार्थ की अतिशयता, औषधियो का अधिक सेवन अथवा मेहनत तथा व्यायाम के अभाव के कारण जब शरीर अस्वस्थ होने लगता है तो सबसे पहले यकृत् अस्वस्थ होता है। पचाने के काम मे यकृत् का बडा सहयोग रहता है। नतीजा यह होता है कि रोगी यकृत् मे तैयार हुआ पित्त-विकार युक्त हो जाता है और वह यकृत् के दाहिने भाग मे नीचे स्थित पित्ताशय मे पहुचकर सूजन और प्रदाह उत्पन्न करता है, जिसके फलस्वरूप पित्ताशय की श्लेष्मिक कला के रुग्ण होने पर उसमे स्थित दूषित पित्त और

कफ वायु द्वारा सूखकर पत्थर की तरह कठोर हो जाते है। इसे ही पथरी रोग कहते है। छोटी से छोटी पथरी सरसो के दाने के बराबर होती है और बडी से बडी अण्डे के बराबर। एक के बजाय कई पथरिया भी पित्ताशय मे बन सकती हैं।

जब पित्ताशय की पथरी का रोग हो जाता है तो स्वास्थ्य बिगड जाता है। पहले दाहिनी तरफ पसलियो के नीचे नाभी तक मीठा-मीठा दर्द या बोझ सा मालूम होता है, साथ ही कब्ज, भूख न लगना, भोजन मे अरुचि पीलिया रोग तथा जाडा बुखार आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते है। जब कभी पथरी पित्ताशय से बाहर निकलने की कोशिश करती है तो यकृत् के स्थान पर यानी दाहिनी पसली के नीचे और कभी दाहिने कधे तक यकायक असह्य वेदना होने लगती है। शरीर ठड से कापने लगता है और कभी-कभी तेज ज्वर चढ जाता है। ठडा पसीना आने लगता है तथा मतली और कै भी होने लगती है। इसे ही रोग का दौरा कहते है।

जब रोग का दौरा पडे और वेदना होने लगे तो रोगी को तुरत गरम पानी से भरे हौज या टब मे बैठाना या लेटा देना चाहिए। हौज या टब का पानी रोगी को सहने लायक होना चाहिए। जिस कमरे मे रोगी को रखा जाय उसमे वायु के प्रवेश का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए और रोगी के सिर पर उस वक्त ठडे पानी से भीगा तौलिया रखना नहीं भूलना चाहिये। रोगी को कम से कम आध घटे तक गरम पानी मे बैठाना चाहिये। यदि रोगी को हृदय, यकृत् या धमनी का भी रोग हो या वह वृद्ध और अत्यन्त निर्बल हो तो उसे उपर्युक्त उपचार न देकर केवल पीडा के स्थान पर गरम पानी से भिगोकर तौलिये से सेकना चाहिये और गुनगुने पानी का एनीमा देना चाहिए।

स्थायी लाभ के लिए रोगी की क्षमता के अनुसार दो से चार दिनो का उपवास करना चाहिए। उसके बाद तीन दिन तक फलाहार। प्रात काल पहले गरम पानी से १५ मिनट फिर ठडे पानी से १० मिनट का कटि-स्नान करना चाहिए। और सायकाल को यकृत् और पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी आध घटे तक लगानी चाहिये भोजन मे सुबह दिन मे भाजी, सलाद उबली तरकारिया और मठा ले शाम को ताजे फल, किशमिश, मूग की अकुरी लेवे। यह भोजन सूर्यास्त से पहले लेना चाहिये। रात को सोने से पहले कमर की गीली लपेट लेकर रातभर उसे रहने दे।

(९) जिगर के रोग

भूख खुलकर लगे, भोजन का पाचन ठीक-ठाक हो तथा शरीर का रक्त शुद्ध बने इसके लिए जरूरी है कि हमारा जिगर अपना काम स्वाभाविक ढग से करता रहे, जिससे शरीर मे पित्त की उत्पत्ति उचित मात्रा मे होती रहे। पर जिस व्यक्ति का जिगर सुस्त अथवा रोगी हो जाता है वह जानता ही नहीं कि भूख क्या चीज है। ऐसे व्यक्ति को कब्ज की शिकायत हमेशा बनी रहती है। उसके शरीर का रक्त विजातीय द्रव्य के भार से ज्यादा होता है और वह वास्तविक उम्र से अधिक उम्र का लगता है।

जिगर के रोगो मे जिगर का सूज जाना, पीलिया रोग, मधुमेह तथा समस्त शरीर की कमजोरी मुख्य है। इस रोग के उपचार के लिए पहले तीन दिनो का उपवास सुबह-शाम एनीमा लेकर करना चाहिये। एनीमा के पानी मे चौथाई कागजी नीबू का रस अवश्य निचोड देना चाहिये। और यदि मल आतो में कडा पड गया हो तो एनीमा के पानी को गुनगुना गर्म कर लेना चाहिये।

उपवास के बाद जब तक कब्ज पूरी तौर से दूर न हो जाए, पेडू पर गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी आध घटे तक रोज रखने के बाद भी उपर्युक्त विधि से एनीमा अवश्य लेते रहना चाहिये।

जिगर के रोगियो के लिए कागजी नीबू का रस बडा लाभकारी सिद्ध होता है। अत दिन मे कई बार ताजे ठडे या गरम पानी मे एक-एक कागजी नीबू का रस निचोडकर पीना चाहिये।

उपवास के बाद जिगर के रोगी को तीन दिन तक केवल फलो के रस पर रहना चाहिये या उबली साग-सब्जियो के सूप पर। उसके बाद एक सप्ताह तक केवल मौसम के फल खाकर रहना चाहिये। उसके बाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर आना चाहिये। फिर भी भोजन मे ताजे फल, सलाद उबली साग-सब्जी या दही, शहद आदि पौष्टिक तथा क्षार वाले खाद्य-पदार्थों को अधिक मात्रा मे शामिल करना चाहिए और अन्न को कम मात्रा मे।

कभी-कभी यकृत् के स्थान पर हल्की मालिश करनी चाहिये। उस पर गरम और ठडी सेक देनी चाहिये या थोडी देर वाष्प स्नान देकर उस जगह पच्चीस-तीस मिनट के लिए गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी लगानी चाहिये।



उदर रोगों की वायोकैमिक चिकित्सा

डा० सियाराम सक्सैना 'प्रवर'
३ग/१६ हाउसिग बोर्ड, शास्त्रीनगर, जयपुर (राज०)

इस लेख मे प्रयुक्त औषधो के साकेतिक सक्षिप्त नाम-

कैल्केरिया फ्लोर - क फल	काली सल्फ - का स
कैल्केरिया फॉस ७ क फ	मैग फॉस - म फ
कैल्केरिया सल्फ - क स	नैट्रम म्यूर - न म
कैरम फॉस - क फ	नैट्रम फॉस - न फ
कालीम्यूर - का म	नैट्रम सल्फ - न स
काली फॉस - का फ	सिलिशिया - सि

औषध चयन प्रक्रियाए तीन है-

१ **विधिवत् (विधि)**-जब एक रोग के लिए एकाधिक औषधे निर्दिष्ट हो, तो उनमे से किसी एक का चयन जैव रसायनी पद्धति से करे।

२ **मिलाकर (मिलित)**-निर्दिष्ट औषधो को समान मात्रा मे मिलाकर फिर उस विचूर्ण को ५-५ ग्रेन की मात्रा मे दे।

३ **पर्यायक्रम से (प क्र)**-एक औषध के कुछ अन्तराल के बाद दूसरी औषध देना। यह अन्तराल कुछ मिनटो, घटो का या एक दिन का हो सकता है।

३०, ६० शक्तियो की औषधे एक दिन मे प्राय एक बार दी जाती है। २०० शक्ति की औषध एक सप्ताह मे एक बार। कुछ भी निर्देश न हो, तो मिलित दे।

(क) अन्न-नलिका (भोजन-प्रणाली, ईसोफैगस) के रोग-

१ निगरण काठिन्य (डिसफेजिया)-

औषधे- क फ, क स, का म, न म, म फ, न फ, सि- विधिवत्

यदि द्रव-पदार्थ निगलने मे कठिनाई हो-सि, म फ (मिलित)

यदि ठोस पदार्थ निगलने मे कठिनाई हो-सि, न फ (मिलित)

यदि द्रव या ठोस किसी को भी निगलना कठिन हो- का म

ठोस पदार्थ एक स्थान पर जाकर फिर तीव्रता से बाहर आते हो- न म

भोजन निगलने मे दर्द हो-क फ, फ फ, न म, का म, सि- विधिवत् या मिलित।

ऐसा लगे कि भोजन नाक से बाहर निकल जायगा-सि

भोजन गले मे रह जाता हो- का म

भोजन को पानी पीकर निगलना पडता हो - न म

निगलने मे ऐसा तेज दर्द मानो भोजन किसी व्रण को रगडता हुआ गले मे उतर रहा है- न म

यदि निगलने मे कठिनाई अन्न-नलिका के पक्षाघात के कारण हो-सि

पक्षाघात के कारण निगलना असभव हो गया हो- नम

२ भोजन प्रणाली सकोच (ईसोफैजियल स्पैज्म)-

सकुचन - न म

अति सकुचन, ऐठन - न म

अवरोध (चोकिग) - न म

यदि सकुचन के कारण निर्बलता या घबराहट होती हो-का फ भी साथ मे दे।

३ भोजन-प्रणाली का जीर्ण शोथ (क्रॉनिक ईसोफैजाइटिस)-

सामान्यत - क फ

जीर्ण शोथ हठी - न म, सि (मिलित)

शोथ की प्रथमावस्था- फ फा

शोथ की द्वितीयावस्था-

जब गिल्टियो मे भी शोथ हो गया हो- का म

गले का सकुचन दर्द सहित - म फ

४ भोजन प्रणाली मे थैली बनना (हाइपो फैरिंजियल डाइवर्टिक्युलम)

गले मे डले (लम्प) की-सी प्रतीति, जो द्रव को निगलते समय औ~ बढती हो-न फ

इसकी जीर्ण अवस्था - क फ्ल १२ ×

यदि थैली बन गयी हो (एक्सरे से ज्ञात हुआ हो तथा भोजन गले मे देर तक रुक कर फिर बाहर आता हो- का म

५ भोजन-प्रणाली के कैसर (कार्सिनोमा ऑफ ईसोफैगस)-

अर्बुद अवस्था - क फ्ल

व्रण हो गया हो - क फ, का म, न स (मिलित)

व्रण मे पूय पड गया हो - क स १२×

कोथ (गैग्रीन) की स्थिति - का फ ६×

(ख) आमाशय (स्टमक) के रोग-

१ अरोचक (एनोरैक्सिया)-

मुख्य औषध - न म

अपच के कारण - क फ ६×

बद्धकोष्ठता के कारण - का म, न स (प० क्र०)

उदर मे वायु (गैस) के कारण- क फ ६× प्रति दो घटे पर या १२× प्रति चार घटे पर।

जीर्ण रोग हो, या वृद्धो को हो - क फ १२×

अत्यल्प खाते ही तृप्ति होने लगे - सि

यकृद् दोष से, जब जीभ सफेद हो - का म ३×, ६×

रोटी से अरुचि - न म।

पूर्णत अरुचि - क फ ।

मानसिक अवसाद के समय अरुचि - क फ।

२ अग्निमान्द्य (डिसपेप्सिया)-

मुख्य औषध - क फ ६×, १२×

पाचन-शक्ति मन्द होने से - का फ

जीभ पर सफेदी, पेट फूलता हो - का म

पित्त दोष से - न स

जब पेट मे गुड-गुड ध्वनि होती हो - न स

कृमिज अग्निमन्दता - न फ

भोजन पचने मे देर लगती हो - न म

केवल सादा भोजन पचता हो - न स

वमन होता हो, गर्म भोजन से घृणा हो - सि

जीर्ण अग्निमान्द्य - क फ १२×, न फ १२×- मिलित।

प्रात -साय भोजन से एक घटा पूर्व

अम्लपित्त (एसिडिटी) के साथ - न फ ६×

शराबी का अग्निमान्द्य - न स

बिना पचे भोजन का वमन - फ फा ३×

छाती मे जलन, अम्लीय तरल का पेट से मुख मे आना (वाटर ब्राश, पायरोसिस)-न म

३ अजीर्ण (इनडायजेशन)-

औषधे- १ क स, फ फ, न म - मिलित ।

२ क फ ६×, का म ६× - मिलित।

भोजन पचता न हो, अम्लता हो, थोडा-सा भोजन या ठडा पानी लेने से आमाशय मे दर्द होता हो-क फ

आमाशय-रस की कमी को दूर करने के लिए- क फ

तीव्र अजीर्ण शारीरिक या मानसिक थकान से- क फ

जीर्ण रोग - न म ३०×

पेट मे गैस बहुत बनता हो - क फ ।

जब शरीर बहुत गर्म हो, उस दशा मे ठडा पानी पी लेने से अजीर्ण - क फ

अम्लमय (एसिडिटी के कारण) अजीर्ण- न फ, सि० - मिलित।

चिकनाई की अधिकता से, जीभ सफेद भूरी - का म

मानो आमाशय पर पत्थर रखा हुआ हो, अथवा वह ठसा हुआ लगे- का स

मथर ज्वर के बाद अजीर्ण - न फ

भोजन आत्मसात् (एसिमिलेशन) नहीं होता हो - क फ १× उष्ण जल मे भोजन के आधा घटे बाद।

दीर्घ स्थायी अजीर्ण - सि

४ आमाशय शोथ (गैस्ट्राइटिस)-

मुख्य औषधे - क फ (निम्नशक्ति), का म, का स।

तीव्र आमाशय शोथ - का फ।

जीर्ण रोग - क फ, का स।

आ० शोथ प्रथमावस्था - फ फ।

आ० शोथ द्वितीयावस्था - का म।

अनपचे भोजन का वमन, शूल मे गर्म सेक आदि से लाभ, ठडे से शूल मे वृद्धि - फ फ।

आमाशय फैल गया हो, उसमे तीव्रशूल (गैस्ट्रैल्जिया) - क फ।

शारीरिक स्नायविक निर्बलता बढ रही हो, जीभ सूखे- का फ।

आमाशय की श्लेष्मावस्था - सि ।

जब मल के साथ श्लेष्मा बहुत निकले - क स।

रोग निवृत्ति के बाद स्वास्थ्य-वर्धनार्थ, रोग दुबारा न हो इसके लिए - क फ।

५ आमाशय-विस्तृति (डायलेशन ऑफ स्टमक)-

विस्तृति - न स

वृद्धि - क फ, का फ १२×, म फ।

कठोरता - का स।

साथ मे हृदय के कार्य मे बाधा - म फ ।

६ आमाशय-व्रण (गैस्ट्रिक अल्सर) -

मुख्य औषध - न फ

अन्य औषधे - क फ, क स, न स, न फ, का फ, सि-विधिवत्, या छहो मिलित।

व्रण - न फ, का फ १२× -(प० क्र०)

आमाशय-प्रदाह - क फ, का म।

आमाशय मे जलन - का स, क स।

७ (क) आमाशय-शूल (गैस्ट्रैल्जिया)-

शूल - फ फ ।

शूल भीतर तक - का स।

ऐठन वाला शूल - म फ

आमाशय मे मरोड - क फ, म फ ७× - ३०×, न म, सि- मिलित।

डकार से भी वेदना का शमन न होता हो - म फ ।

(ख) आमाशय शूल, भोजन पूर्व (अन्न द्रवज शूल)-

औषधे - क फ, क स, फ फ, का म, का फ, का स, म फ, न म, न स, सि०।

मुख्य और पूर्ण औषध- म फ -गर्म जल मे बार-बार दे।

अम्लपित्त के लक्षण भी हो तो - क फ।

अम्लता के कारण शूल - न फ ।

जीर्ण अन्नद्रवज शूल- फ फ, न फ मिलित

मलबद्धता हो तो - का म ३×

मल त्याग से पूर्व तीव्र उदरशूल - फ फ।

वमन भी होती हो तो - सि०।

कृमिज हो तो - न फ।

(ग) आमाशय शूल भोजन के पश्चात् (परिणाम शूल)-

औषधे - फ फ, न स, क फ, न फ - विधिवत्।

मुख्य औषध-क फ।

अन्य औषधे- क स, नम, का म, का फ, का स। विधिवत्।

तीव्र काटता जैसा शूल - म फ।

यदि मैगफास से लाभ न हो तो का स दे। उससे शीघ्र लाभ होगा।

(घ) ऊर्ध्व पाकाशय प्रदेश (अधिजठर, एपिगैस्ट्रियम) का शूल-

सामान्यत - न म ।

तीव्र काटता जैसा शूल, कभी-कभी पीठ और पेट की ओर बढता हुआ - म फ।

सतत् शूल - का फ।

अति तीव्र शूल - फ फ ६× या ३०× अकेला, या म फ के पर्याय क्रम से।

शूल भोजन के तुरन्त बाद - न म ।

शूल भोजन के कुछ देर बाद - क फ।

अधिजठर मे भारीपन - सि।

अधिजठर मे सकुचन प्रतीत होता हो- न म।

जठर-निर्गम (पायलोरस) का सिकुडना-सि।

जठर-निर्गम (पायलोरस) का कठोर होना - सि।

जठर-निर्गम (पायलोरस) का शिथिल होना - फ फ।

(ङ) निम्न पाकाशय-प्रदेश (अधोजठर, हाइपोगैस्ट्रियम) का शूल-

भोजन के बाद - क फ।

सतत् शूल - का फ।

अधिजठर की तन्त्रिकार्त्ति (न्यूरैल्जिया)- म फ १२×

अन्य औषधे - न म, फ फ, सि।

८ अम्लपित्त (एसिडिटी)-

मुख्य औषध - न फ।

भोजनोपरान्त छाती मे जलन-न म, न स, म फ, सि०-विधिवत्।

वक्ष-जलन और आध्मान - क फ।

पित्ताधिक्य - न स।

पित्त वमन और विष्टभ - न स, का म- मिलित।

९ आध्मान (पिट फूलना, वातोदर, ठिम्पेनाइटिस)-

कब्ज से आमाशय स्फीत - म फ ।

अधिक आध्मान - क फ १× गर्म जल से भोजन के आधा घटे बाद।

उदावर्त्त (गैस होना)-१ क फ।

या २ क फ, म फ, न स-मिलित।

१० हिचकी (हिक्का, हिक्कफ)-

यदि रोगी को किसी प्रकार छींके दिलवा दी जाये, तो हिचकी ठीक हो जाती है। इससे ठीक न हो तो निम्नलिखित उपचार करे।

औषधे-म फ, क फ, न म।

किसी भी कारण से हिचकी - म फ- गर्म जल से थोडी-थोडी देर मे।

दु साध्य हिचकी - क स को छोड कर शेष ग्यारह औषधे मिलाकर ५-५ मिनट पर दे।

११ वमन (वोमिटिग)-

औषधे- क फ, क स, फ फ, का फ, का स, न म, न म, न फ, सि०।

अजीर्ण से वमन - सि।

तीव्र उदरशूल के साथ- न स, म फ-मिलित।

खट्टा क फ, जी मिचलाना भी - का फ।

आमाशय मे सूजन और दर्द भी - फ फ।

साथ मे चक्कर - न स। मुख प्रसेक (पायरोसिस) के साथ-सि।

पेट मे वायु के दवाब से वमन- न फ।

कृमिज वमन - न फ ६×।

प्रात ४ बजे वमन - क फ।

मध्याह्व पूर्व वमन - न म।

तीसरे पहर वमन - सि।

शाम को वमन - न स।

रात मे वमन - क स, न म, सि - मिलित।

मध्य रात्रि के पश्चात्- न म।

सारे दिन-रात वमन - सि।

सिर-दर्द के कारण वमन- क स, का स, न स-विधिवत्।

गर्भिणी वमन, मुख्य औषध - का फ।

अन्य औषधे-फ फा, न म, न फ, न स, सि-विधिवत्

बच्चो का वमन-दतोद्गम के समय - क फ।

बच्चो का वमन-दतोद्गम के समय-क फ।

बच्चो का वमन-दतोद्गम रुका हो तब- क फ।

रक्त का वमन- फ फ, का म, सि०-मिलित।

१२ डकार (बेल्चिग)

पाकाशय शूल सहित - म फ ।

अम्ल-उद्गिरण सहित-न फ, न स, क फ, का फ, का स, सि- विधिवत्।

डकार मे भोजन का स्वाद आता हो - फ फ।

डकार के साथ हृदय की विकलता - का फ।

डकार कडवी हृदय की विकलता - का फ।

डकार खट्टी हृदय की विकलता- न फ, न स, का फ, सि- विधिवत्।

डकार स्वादहीन, जलनकारी - म फ।

डकार गैस की, जलनकारी - का फ।

१३ उदावर्त्त (पिट मे गैस)

मुख्य औषध-क फ।

यकृत् कार्य शिथिलता के कारण - का म।

सामान्यत - क फ, म फ, न स-मिलित।

१४ जमुहाई (जृम्भा, यॉनिग)

मुख्य औषध - न म।

अन्य औषधे-१ सि, म फ, क फ, का फ - विधिवत्।

२ न म, म फ, क फ, का फ, सि - पाचो मिलित।

१५ भूख की कमी (लॉस ऑफ एपीटाइट)-

किसी भी रोग के कारण - का फ।

उदर-कृमि के कारण - न स।

अजीर्ण के कारण - क फ।

जब बिना भूख लगे ही पेट भरा लगे और तृप्ति प्रतीत हो- न म।

भूख का लोप - १ का फ।

२ का फ, फ फ, न फ, न स, न म, का म-छहो मिलित।

भूख बिलकुल नहीं, साथ मे रक्ताल्पता और निर्बलता होती जाना-का फ ६×, क फ ६× - प० क्र०

भूख बढाने के लिए- का फ, क फ, न फ, फ फ-चारो मिलित प्रतिदिन तीन-चार बार।

१६ भूख की अधिकता (वोरेशस एपीटाइट, बुलिमिया)-

१ का फ, न म, सि -विधिवत् या तीनो मिलित। या

२ का फ, न फ - प क्र।

अति तीव्र भूख - का फ, क फ, क स, न म, सि - पाचो मिलित।

भीषण भूख (भस्मक) का फ ६×, क फ ३०×, न फ ३०× - तीनो मिलित।

मधुमेह या उदर-कृमि के कारण - न फ २× या ३×

मानस रोगो मे - का फ

जब पानी पीते ही भूख भाग जाय-का फ।

१७ प्यास (तृषा, थर्स्ट) की कमी या अधिकता-

तीव्र प्यास जलन के साथ-न म, क स, का स-विधिवत् या मिलित।

तीव्र प्यास, पित्तवमन कभी-कभी-फ फ न म।

तीव्र प्यास, सध्या समय - न स।

तीव्र प्यास, सायकाल मे वृद्धि-फ फ।

प्यास मे ठडे जल की इच्छा- १ फ फ, का फ-मिलित

या २ न फ, का फ - प क्र

प्यास हीनता - का स।

१८ आमाशय-कैंसर (कार्सीनोमा ऑफ स्टमक)

औषधे-क फ, क स, क फ्लो, का फ, म फ, सि ।

मुख्य औषध - म फ।

असह्य शूल दाह के साथ, वमन, हिचकी - म फ।

कठोर शोथ - क फ्लो ३×

घाव को भरने के लिए - का स (इससे घाव छोटा होता हुआ समाप्त हो जाता है)।

शारीरिक दौर्बल्य बढते जाना-का फ।

कैसर के दुष्प्रभाव शरीर मे अन्यत्र भी-क स, का स, न म, सि -चारो मिलित

ग- आंतों के रोग (डिजीजेज ऑफ इटेस्टाइन्स)

१ आन्त्र-अवरोध (इटेस्टाइनल ऑब्सट्रक्शन)-

प्रथमावस्था से ही दे-

बार-बार - म फ।

कभी-कभी - क फ, न म। मिलित

बीच-बीच मे शक्ति हेतु - का फ, क फ। मिलित।

२ आन्त्रान्त प्रवेश (इट ससेप्शन ऑफ इटेस्टाइन)

हर्नियावत् चिकित्सा करे तथा-गर्म जल मे सि० म फ, का फ, न, म, फ फ दे। मिलित।

यह प्राय शल्यसाध्य रोग है। फिर भी कुछ लक्षणो के तात्कालिक उपचार इस प्रकार करे-

तीव्र शूल और वमन मे राहत के लिए-

फ फ ६, का म ६, मिलित।

उष्ण जल मे आधा-आधा घटे पर।

उडुक प्रदेश मे शूल-न स।

३ आन्त्र भ्रमि (वॉल्व्यूलस)-

(निचले उदर के एक भाग की मरोड, जिससे उदर के बीच का रिक्त स्थान अवरुद्ध हो जाता है)

मुख्य औषध - सि

मरोड या ऐठन, सुई चुभने-जैसा तीव्र शूल - क फ।

दबाने वाला या दबाव वाला दर्द - न म।

उदरवायु से दर्द और मरोड - न स।

यदि आत फैली या फूली सी-प्रतीत हो और छूने मे लगे मानो चोट लगी हुई है- नस ।

आत मे शूल - म फ, न फ, न स, सि -विधिवत्।

कतरने - जैसा शूल - म फ।

प्रसव का-सा शूल - न म।

जलन होती हो - न म, न स, सि-मिलित।

स्थान गर्म लगे - न स ६x

[illegible] ललाट मे दर्द बाद मे अतिसार हो-न स।

उदर फूलता और मृदु हो - क फ, का म।

[illegible] - न फ।

४. आन्त्र-प्रदाह (गैस्ट्रो एन्ट्राइटिस)-

[illegible] पूर्ववत् की जाय। आगे भी देखिये-आन्त्रशोथ [illegible]।

या क फ, फ फ, का फ, म फ, का म, न म, न स- सातो मिलित।

आन्त्र-प्रदाह (जलन) फ फ, का फ-मिलित।

अन्त्रान्त्र प्रदेह (टिफलाइटिस)-क फ, का फ,-मिलित

५ आन्त्रशोथ (कॉलाइटिस)-

(बडी आत मे सूजन के कारण तीव्र उदर शूल) इसके रूप है-

१ आन्त्र की श्लेष्मावस्था (एटेरिक कैटाई)

२ आन्त्र की जीर्ण श्लेष्मावस्था (क्रानिक इटेस्टाइनल कैटार्ह),

३ ग्रहणी की श्लेष्मावस्था (ड्योडीनल कैटार्ह),

४ आन्त्र-प्रदाह (एटेराइटिस)

५ सार्बुद आन्त्र-प्रदाह (फ्लैग मोनस एटेराइटिस),

६ शोषमय आन्त्र प्रदाह (क्रूपस एटेराइटिस)

७ श्लेष्मल बृहदन्त्र शोथ (म्यूकस कौलाइटिस),

८ उण्डुक पुच्छ प्रदाह (अपेडिसाइटिस),

९ गुद शोथ (प्रौक्टाइटिस)।

इन सबकी प्रमुख औषधि है-कालीम्यूर ,(का म)

(क) आन्त्र श्लेष्मावस्था-

सामान्यत - क फ, न स मिलित-का म - प क्र

प्रथवावस्था, यदि जीफ सफेद हो - क फ , का म- प क्र ।

यदि जीभ स्वच्छ हो - फ फ, न म-प क्र ।

यदि ज्वर हो - फ फ, का स - मिलित।

जीर्ण रोग - न म, का म - प क्र

(ख) आत्र की जीर्ण श्लेष्मावस्था -

क फ, का म मिलित - न म प क्र

(ग) ग्रहणी की श्लेष्मावस्था-

क स, का म - प क्र

ज्वर - फ फा।

शूल - म फ २x

(घ) आन्त्र-प्रदाह -

प्रथमावस्था - क फ का फ।

द्वितीया वस्था - का म।

शूल निवारणार्थ - म फा २×

(ङ) सार्बुद आन्त्रप्रदाह -

का म क फ्ल - प क्र।

ज्वर- फ फ, का फ-मिलित।

रक्त सकुलता - न म।

(च) शोपमय आन्त्र प्रदाह- का म, क फ-मिलित। इन्हीं का एर्नीमा भी दे।

पनला मल-न स १२×, ३०× ।

(छ) श्लेष्ममल वृहदन्त्र शोथ-

फ फ। इसके साथ लक्षणानुसार दे-न फ या का म।

प्रमुख औषध- न म।

सामान्यत - का म, का स, म फ - तीनो ३× मिलित।

शूल रात मे वढता हो तो इस उपर्युक्त मे सि १२× भी मिला दे।

६ व्रणात्क वृहदन्त्र शोथ (अल्सरेटिव कॉलाइटिस)-

आतो का घाव- क स।

केवल रक्त निकलना - का फ।

मल के साथ रक्त-पूय निकलना १ क स।

या २ फ फ, का फ, म फ मिलित-का म, क स मिलित- प क्र।

वहुत दर्द - म फ।

ज्वर - फ फ।

साथ मे वमन भी - म फ।

मध्यान्त्र का कच्चापन - न फ।

-का आशिक पक्षाघात - का फ।

-की ग्रथिया वढी हुई- क फ।

७ आन्त्र (उडुक) पुच्छ शोथ (अपेडिसाइटिस)-

औषधे-क फ ६× - ३०×, क फ ६× -३०×,

क स, फ फ १२×, का म ६×, म फ ३०×,

न म ६०×, न स ६×, सि -विधिवत्।

प्रथमावस्था (ज्वर)- फ फ। सामान्यत न स।

द्वितीयावस्था -'का म - पूय नहीं वनने देता, जिससे रोग शीघ्र ठीक हो जाता है।

पूय बन गया हो तो - क स , सि- प क्र।

शूल - क स, न स।

आन्त्र पुच्छ छूने मे असह्य - न फ।

शूल, जलन, हिचकी - म फ।

जीर्ण रोग-जलन कडी गाठ, व्रण - सि ।

८ अतिसार (डायरिया)-

औषधे-क फ, कस, फ फ, का फ, म फ १२×,

न म, न फ, न स, सि - विधिवत्।

मुख्य औषध-क फ। किसी भी औषध के साथ वीच-बीच मे कफ ६× १२× देते रहे, तो नये ऊतक वन जाते है। और चिकित्सा शीघ्र हो जाती है।

अतिसार मे सर्वप्रथम काफी मात्रा मे गर्म पानी की बस्ति दे।

तीव्र अतिसार-क फ, फ फ, का फ, न फ, न स, सि-मिलित।

तीव्रता से मल निकले, उसमे आव अधिक हो, यकृत् दोष हो - न स ।

जव वायु के साथ मल निकले - न म।

जल नमी या वर्षा वाले मौसम मे हो-न स।

ज्वर निमोनिया के साथ अतिसार - फ फ।

जीभ पर गाढी सफेदी हो - क स।

भूरा-सा मल, रक्त मिश्रित-क फ ६×, १२×

यदि सवेरे बढे - न म, न स, सि-मिलित।

९ प्रवाहिका (बिसिलरी डिसेंट्री)-

प्रवाहिका और आमातिसार दोनो की औषधे- क फ, का म, म फ, फ फ, का फ, न म, न स-विधिवत्।

प्रवाहिका-

मुख्य औषध - म फ - किसी भी दवा के साथ पर्यायक्रम से दे। जीर्ण रोग मे उच्च शक्ति का दे।

क फ १२×, फ फ १२×, का म ३×, का फ ३×, म फ ३×, न फ ३×, न स ३×-मिलित।

रुधिर मिला, श्वेत रग का मल, कष्ट के साथ, पेट मे अफारा- का फ, म फ।

गहरा कत्थई म ल- का फ।

रक्त अधिक निकले तो-का म, क फ, न फ-मिलित।

१० आमातिसार (अमीबिक डिसेंट्री)-

मुख्य औषध-क स ३×

क, फ्, का स, न फ तीनो ३×, सि १२×-मिलित-प क्र क स ३× ।

तीव्र मरोड, लसदार आव, हर समय शौच जाने की इच्छा-फ फ, म फ-मिलित।

पीले दस्त आव मिले, हर समय दर्द-म फ, का म-मिलित।

आव रक्त मिश्रित, मरोड सहित पतले दस्त-क फ, म फ,-मिलित

११ विसूचिका (कॉलेरा, हैजा)-

मुख्य औषधे - क फ १२×, का फ ६×, म फ ६×

परिषेधक औषध- न स १२× । इससे रक्त मे अतिरिक्त बढा हुआ जल निकल जाता है।

रोग आरभ होते ही -फ फ ६×, का फ ६×- मिलित।

रोग को दो घटे हो गये हो-क फ, का फ, म फ-मिलित, प० क्र० से न म। प्रति पाच मिनट पर। सादा गर्म पानी खूब पिलाते रहे। बडी मात्रा मे गर्म जल का एनीमा (बस्ति) भी लगाए।

छह घटे हो गये हो-का फ-शीघ्र लाभकारी

रामबाण है। शुस्लर के अनुसार न स।

शरीर मे जल को नियमित करने के लिए-न म।

रक्त मूत्र विषाक्तता रोकने के लिए आरभ से ही दे-न फ - एक दो मात्राए।

रक्तमूत्र विषाक्तता से सिर मे रक्त सचय-न फ, फ फ-मिलित दोनो ६×।

ओषजन की पूर्ति के लिए-क फ, का स, न स-मिलित।

शक्तिपात (कोलैप्स)-शरीर अतिशीतल, ठडा, पसीना, नीला चेहरा, नाडी अति मद-क फ, न फ, का फ-मिलित।

अत्यधिक प्यास- न म।

अत्यधिक अतिसार वमन- का फ, म फ, फ फ-मिलित।

हाथ-पैर मे ऐठन - म फ। बाद मे का फ भी मिलाये।

पलाप और तन्द्रा, पुकारने पर भी उत्तर नहीं- न म।

मल और वमन मे रक्त- फ फ, का फ मिलित, प क्र न फ।

मूत्र बन्द- न फ १-२ मात्राए।

रोग की पूर्णत विवृद्ध अवस्था - का फ १२×, म फ १२× मिलित।

शिशु विसूचिका-

इसके अन्तर्गत बच्चो की आत्रामाशय श्लेष्मावस्था आत्रामाशय शूल, शेषात्रशूल और ग्रीष्म कालीन व्याधिया आती है इन सबके लिए- क फ, फ फ, न म, सि-मिलित।

मुख्य औषध- फ फ १२×, ३०× ।

१२ सग्रहणी (स्प्रू)-

औषधे-कफ ६०×, १००×, का म १२×, और नस १२×, ३०×।

मुख्य औषध - फ फ।

उपचार विधि-प्रात क स २००× दे, दोपहर से रात्रि तक तीन बार न म ३०× दे।

यकृत् दोष हो तो-का म साथ मे दे।

रक्ताल्पता ज्वर हो तो- क फ।

मल दुर्गन्धित, काले-पीले रग का - का स।

वृद्ध जनो को - न स।

बेचैनी, घबराहट- का फ।

१३ आत्रशूल (कॉलिक पेन)-

आमाशय शूल भी साथ मे-म फ। इससे कम न हो तो का स दे।

अडियल शूल - म फ २×

ठडा पानी पीने से शूल आतो तक बढ जाय, सिर दर्द तथा अतिसार भी हो- क फ।

अतिसार के साथ आत्रशूल, जब हाथ पीले और नख नीले पड जाये-सि

१४ आन्त्र-कृमि (वर्म्स)-

कृमि लैक्टिक एसिड पर पलते है, इसे नष्ट करने के लिए न फ दे।

सूत्र कृमि (थ्रेड वर्म्स, ऑक्स्यूरिस वर्मीक्युलेरिस-)- फ फ ६×, १२×, न फ ३×, ६× का म, सि -मिलित।

छोटे सूत्र-कृमि- का म या न म- प० क्र० न फ।

लम्बे सूत्र-कृमि, बडे कृमि-न फ ३× प्रतिदिन दो बार।

आंत्र कृमि-क फ, फ फ, न फ,- तीनो ६×।

अंकुशमुख कृमि (हुकवर्म्स)- न म, न स दैनिक प० क्र० से।

व्हिप वर्म्स, टाइक्युरिस ट्राइच्युरा-न फ, का म, सि० मिलित।

उदर कृमि (मॉ वर्म्स)-सि।

सूची मुख कृमि (पिन वर्म्स)-क फ, न फ ३×, सि० मिलित।

गोल कृमि (राउड वर्म्स) - न म, सि।

फीता कृमि (टेप वर्म्स, टीनिया वर्म्स)- न म, न फ १×, २× या ३×, सि मिलित। लम्बे समय तक दे।

कृमि रोग मे नमक या न फ के घोल की वस्ति भी दे।

बच्चे दात किटकिटाते हो, गुदा मे खुजली हो-क फ्ल।

१५ अपान वायु (फ्लैटुलेसी)-

अपान वायु विकृति- नम ।

-बहुत निकलती हो- न स।

-रुकी हुई को निकालने के लिए- क फ।

-दाष, दुर्गंधित- का फ।

- अति दुर्गंधित - सि।

- मे गधक सी गध तलपेट तना हुआ, ठडा- का स।

-आत्रशूल के साथ- म फ १२×-६०×, न स १२× मिलित।

-बद्धकोष्ठ के साथ-सि।

-हृदय-दुर्बलता के साथ- का फ।

-अजीर्ण के साथ-क फ ६×, १२×।

-यकृत् सुस्त - का म ६×, न स ६×।

-पेट मे गडगड -म फ, न स मिलित।

-अत्यधिक, पेट मे एकत्र - क फ ६ रामबाण

-आवाज करती हुई - क फ ६×, साथ मे का फ २×, ६×। काली फास से अपान के सभी लक्षणो मे सुधार होता है।

१६ मलबन्ध (विष्टभ, कोष्ठबद्धता, कब्ज, कौंस्टीपेशन)-

-यकृत् के ठीक से कार्य न करने पर - का म।

-आतो की दुर्बलता से, छाती मे जलन हो- न म।

मल मे सूखापन- न म।

मल सफेद या काला, कभी-कभी रक्तमिश्रित - का फ।

सतत् कब्ज - का स।

पुराने कब्ज को समूल नष्ट करने हेतु- का म २००×, न म ६०× से २००×-एक-एक दिन के पर्याय क्रम से।

१७ आम एवम् आम पाचन-

मुख्य औषध- का म

शरीर मे आम वृद्धि के कारण भूख की कमी, जिह्वा भूरी-सफेद, मदाग्नि, अपच, उदर मे भारीपन, मुख मे पानी इकट्ठा होना, कभी-कभी बलगमी कै होना, पित्त की कमी, यकृत् की मन्दता, मल मिट्टी की तरह का या सफेद लसलसा, पेचिश होती रहना- का म।

हरा लसलसा अपच का मल - क फ।

१८ (क) आन्त्रवृद्धि (इटेस्टाइनल हर्निया)-

औषधे- क फ्ल ६×, क फ १२×, फ फ १२× सि ६०×।

आन्त्र का बहि सरण - न म।

शोथ, शूल दाह हो - फ फ ।

शूल निरन्तर - सि।

शिथिल भागो को सकुचित करने, तथा सयोजक ततुओ और मासपेशियो के लचीलेपन की वृद्धि के लिए- क फ्ल।

श्वेत (अल्ब्युमिन) उत्पन्न करके उसके द्वारा फटे भाग को भरने के लिए - क फ।

मासपेशियो को पुष्ट, दृढ करने के लिए- फ फ।

(ख) वक्षण आन्त्रवृद्धि इनग्वीनल हर्निया)-

-क फ, न म, सि - मिलित।

-दर्द तथा शोथ युक्त (इनकारसिरेटेड एड इनफ्लेम्ड)- फ फ, सि। मिलित।

आत का आगे उठना (प्रोट्रूजन)-न म, सि , क फ्ल १२× मिलित प्रतिदिन दो बार। बाहर भी लगाए।

(ग) औदरिक आन्त्रवृद्धि (एब्डोमिनल हर्निया)-

मुख्य औषध-क फ।

दुबलो को - क फ।

तगडो को - फ फ।

१९ शेषान्त्र (इलियम) के रोग-

हलका दर्द - न स ६×।

शूल - न म।

शूल पेट तक जाता हो - का स।

२० नाभि (निवल) का रोग-

स॰॰ना - क फ, न म।

पकना - न स, सि विधिवत्।

२१ उण्डुक (अन्धान्त्र, सीकम) के रोग-

प्रथमावस्था (तीव्र ज्वर, शूल, नाडी गति तीव्र)- फ फ, दर्द के स्थान पर लगाए भी।

द्वितीयावस्था (शोथ कठोरता, स्पर्श असह्यता, स्राव)- का म ६×, प क्र से फ फ १२×। इन दोनो का एनीमा भी दे।

उडुक प्रदेश मे शूल- न स।

-तीव्रशूल वमन - फ फ ६× , का म ६× आधा-आधा घटे पर।

अन्धनाल शोथ (टिफलाइटिस)-फ फ १२×, का म १२×, का स, सि । मिलित।

तीव्र अन्धनाल शोथ (तीव्र ज्वर, अति तीव्रशूल, वमन, नाडी १०२)-फ फ, का म ६×। शोथ कम करने के लिए प क्र से न स दे।

-पूय भवन रोकने के लिए- का म, क स-प क्र से ।

-पूयावस्था-क स १२×, सि २००× - प क्र से।

पर्यन्धनाल शोथ (पिरिटिफ्लाइटिस)-फ फा, का म-मिलित।

रोग के बाद यदि उण्डुक कठोर हो - क फ्ल ३×

२२ मध्यान्त्र ग्रथिक्षय (टिबीज मेसेटेरिका)-

प्रमुख औगध - क फ।

फ फ, म फ- विधिवत्।

आत्रक्षय- क फ।

२३ आन्त्रार्बुद (कार्सीनोमा ऑफ इटेस्टाइन्स)-

मुख्य औषध-कालीम्यूर ।

अर्बुद अवस्था - क फ्ल, का फ। मिलित ।

व्रणावस्था- क स।

पूय को समाप्त करने हेतु- सि।

तीव्रशूल- का फ, म फ, फ फ - मिलित।

(घ) यकृत् प्लीहा, पित्ताशय के तथा अन्य उदररोग-

सभी यकृत्-रोगो मे सामान्यत न स ७×,-प क्र से क स ६×

१ यकृद्वृद्धि (एनलार्जमेट ऑफ लिवर)-

औषधे- फ फ, का स, न म।

यदि साथ मे मधुमेह या बहुमूत्र हो, पित्ताधिक्य हो- न फ ६× यकृत् मे रक्त सग्रह, पित्ताधिक्य के कारण अधिक शूल, अत्यधिक रक्त सग्रह से यकृत् कठोर- (१) न स।

(२) फ फ १२×, का म, न स ३×।

जीर्ण रक्त सचय - का म, क फ्ल, न स - विधिवत्।

बालयकृद् दोष-का म १२×, फ फ १२×- मिलित।

- शक्ति के लिए- क फ - प्रतिदिन प्रात ।

२ यकृत-शोथ (हिपेटाइटिस)-

औषधे-फ फ १२×, ३०×, का म ६×, का फ, न म, न स, सि। -विधिवत्।

सभी दशाओ मे न स दे-अन्य औषधो के साथ, या प क्र से।

मुख्य औषध-न स ६×।

तीव्रशूल - न म ।

प्रथमावस्था - फ फ ६×

रोग की तीव्रता - का म (या न स) - प क्र से फ फ + न स (या का म)

यकृत् पत्थरवत् कठोर - क फ्ल।

यकृत् काठिन्य (स्क्लेरॉसिस) न फ ३×।

यकृत् मे रक्त सकुलता - फ फ।

ज्वर मे रक्त सकुलता - फ फ।

यकृत् प्रदेश को छूने मे दर्द - न फ ३× या कम शक्ति।

यकृत्-अपविन्यास (डिरेजमेट ऑफ लिवर)- का म ६×

यकृत् की मेद-अवस्था (फैटी डिजनरेशन ऑफ लिवर)- का स।

हेपेटाइटिस- बी- मे लक्षणानुसार अन्य औषधो के साथ का फ ३× देते रहे।

३ यकृत्-विद्रधि (एब्सेस ऑफ लिवर)-

म फ और न स - प क्र से दो-दो घटे पर एक सप्ताह तक। फिर दोनो की एक-एक मात्रा प्रतिदिन।

यकृत् वहुत कठोर हो- क फ्ल।

विद्रधि कठोर हो - सि।

यकृत् मे फोडा, शूल, शारीरिक दौर्बल्य- क स।

-से पूय निकलता हो - क स।

-व्रणशूल फडकता हुआ - सि १२×।

-ज्वर - फ फ १२×।

४ यकृद् दाल्युदर (सिरोसिस ऑफ लिवर)

औषधे-क फ्ल, का म, न फ। लक्षणानुसार।

मुख्य औषध - न फ । बीच-बीच मे क फ दे।

-यदि मदिरापान से हुआ हो- न म, प क्र से का म।

यकृत्-प्लीहा मे रक्त सचय-फ फ, न फ मिलित।

-रक्तसचय, पित्ताधिक्य, शूल अधिक-न स।

-शूल - क फ, न म। मिलित।

-तीक्ष्णशूल- क फ्ल १२×, न म ३०×।

-तीक्ष्ण चुभती वेदना - न स।

यकृद् दोप से तीव्र शूल- का म ६×, - १२×, न स ६× - १२×, न फ - मिलित।

५ यकृद् रोगज रक्तस्राव (हिमरेज फॉम गैस्टिक बेरिकोज)-

विवृद्ध यकृत्-प्लीहा से - न म, क फ, का म, का फ -मिलित।

चोट, दबाव के कारण यकृत्-प्लीहा से रक्तस्राव- न स २ -२ गोली, प्रति घटे।

रक्त-नलिकाओ का टूटना रोकने के लिए- क फ। पेशियो, रक्त नलिकाओ का लचीलापन बढाने, तथा रक्तस्राव रोकने के लिए- क फ्ल।

६ यकृत्-प्रदाह (कजेशन इन लिवर)-

रक्ताधिक्य- क फ १२×, न स ३×, का म / मिलित।

पित्ताधिक्य- न स ३×।

प्रदाह - न स ३×।

यकृत्-प्रदेश वेदनायुक्त - क स।

यकृत् छूने मे असह्य - न स।

यकृत् प्रदेश मे तीक्ष्ण वेदना - न स।

७ यकृत् कैंसर (कार्सीनोमा ऑफ लिवर)-

मुख्य औषध - कालीम्यूर ।

अर्बुद अवस्था - क फ्ल, प० क्र० से सि ३०×।

कठोर शोथ- क फ्ल।

असह्य शूल, दाह, वमन, हिचकी-म फ, प क्र न स।

व्रणावस्था - का स ।

दुर्बलता और बेचैनी - का फ।

यकृत् की अलस क्रिया - का म।

यकृत् सम्पूर्णत निष्क्रिय (टॉरपिडिटी ऑफ लिवर)-का म।

८ पित्ताशय-शोथ (कोले सिस्टाइटिस)-

पित्ताशय का अपविन्यास (डिरेजमेट)-

फ फा, का फ, न फ-मिलित।

सघटित (इम्पैक्टेड) पित्ताशय-न स ५० एम ।

शूलफूट पडना - न स।

९ पित्ताश्मरी (गॉल स्टोन)-

मुख्य औषध - क फ ३०×

पित्ताश्मरी का तीव्र शूल-म फ ३×, गर्मजल से हर पन्द्रह मिनट मे।

अति तीव्रशूल - म फ ३× के प क्र मे न स ३×।

पथरी बनना रोकने के लिए- क फ।

पित्ताश्मरी जन्य आक्षेप- म फ।

पित्ताशय मे जलन-का म, न फ - मिलित।

पित्ताश्मरी दूर करने के लिए-क फ ३०×।

रोग दूर हो जाने के बाद भी कुछ समय तक लेते रहे। पथरी फिर नही होगी।

१० प्लीहावृद्धि (एनलार्जमेट ऑफस्प्लीन)-

सामान्यत क फ, न म, सि-मिलित।

प्लीहा की कठोर वृद्धि- क फ, न म २००×, न स २× या ३× मिलित।

अधि॰ वृद्धि - का म ३×।

अत्यधिक वृद्धि - क फ्ल ६×, १२×, काम ३× मिलित।

इन्हे वैसलीन मे मिलाकर प्लीहा प्रदेश पर लगाए भी।

प्लीहा शोथ (स्प्लेनाइटिस)-

क फ १२×, का म १२×, न स ३×, न म ३०× मिलित।

प्लीहा मे शोथ हो तथा पूय उत्पन्न होने की आशका हो- सि

प्लीहा मे शोथमय श्वेत रक्तता - का फ।

ज्वरावस्था- फ फ।

जीर्ण प्लीहा दोष - का फ।

प्लीहा मे वेदना - का फ।

-तीव्रशूल सज्वर - फ फ १२×।

प्लीहा सिकुड जाय तो - न म।

११ कामला (जौण्डिस)

मुख्य औषध - का म १२×

पित्त-स्राव नियमित करने के लिए - न स ६× प क्र का म १२×।

कामला आमाशय प्रदाह के पश्चात् हुआ हो- का स ६×

कोष्ठबद्धता, मुख मे कडवापन - का म १२×

साथ मे तन्द्रा हो - न म ६×

मूत्र मे श्वेत तलछट हो - का म १२×

अम्लपित्तीय शूल, कडवा वमन - न स ६×

साथ मे पानी जैसे पतले दस्त - न म ३०×

अतिसार हो गया हो न फ १×, २×,

यकृत् क्रिया मन्द, यकृत् मे भारीपन, दाहिने कन्धे के नीचे दर्द, सफेद जीभ, सफेद-पीला कठोर मल का म ३× प क्र से न स ६× कभी-कभी का स, क स मिलित।

यकृत् का अपक्षय (ट्रॉफी)

यकृत् मृदु-ऊतक का तीव्र शोथ (पेरेकिमेटस हेपेटाइटिस) घातक कामला, नवजात शिशु का कामला (इक्टेटस न्यूनेटोरियम) आदि- न म, न स (मिलित)।

१२ मध्यपटल (डायफॉम) के रोग-

झुकने पर मरोड, ऐठन- न म।

-का शूल - न म।

का पक्षाघात - सि।

१३ ग्रहणी (ड्योडीनम) के रोग-

-का शोथ (ड्योडीनाइटिस) - न स।

- का शोथ के साथ कामला- का स।

- का स्राव - का म, न स (मिलित)

१४ अधोजठर (हाइपोगैस्ट्रियम) के रोग-

-सिकुडन, ऐठन - न म

फैलाव - न म, न स, सि - मिलित।

तनाव - न म

शूल- क फ, का फ, न म, न फ, सि - मिलित।

(ड) उदर्याकला (पेरिटोनियम) के रोग

१ उदर्याकला शोथ (पेरिटोनाइटिस)-

औषधो - फ फ १२×, का म ६×, का फ ६×, का स ६×, १२× उदर्याकला, पेट, तलपेट, अन्धनाल, पर्यन्धनाल मे शोथ- फ फा, का म, का फ, सि - विधिवत्।

ज्वर, वमन, अतिसार भी हो तो - फ फ।

तीव्र शोथ - फ फ।

यदि शोथ कठोर हो क फ।

द्वितीयावस्था मे - का म, का स मिलित, प क्र से फ फ।

जीर्ण उदर्याकला शोथ - का म।

'' साथ मे पित्ताधिक्य - न स।

'' '' शीतलता- फ फ।

'' '' अतिसार - न स।

'' '' रात्रिस्वेद - सि

२ उदर्याकला क्षय (ट्यूबरक्युलेसिस ऑफ, पेरिटोनियम)

चिकित्सा उदर्याकला शोथवत् करे।

औषधे - क फ ३×, का म ३×, म फ ३×, ६×, न फ ३०× न स १२×, सि ३०×, २००×।

तीव्रावस्था - फ फ।

दोष निर्हरण के लिए - न फ, प क्र से म फ।

दर्द वन्द करने के लिए- म फ।

ज्वर, रक्तस्राव - फ फ, प क्र से न म/जल्दी-जल्दी दे।

नये रक्तकण उत्पन्न करने के लिए - क फ।

अनिद्रा - का फ।

मध्यान्त्र ग्रथिया (मिसेटेरिक ग्लैण्ड्स) विकृत्- क फ।

क्षय निवारण, तथा बारबार मल प्रवृत्ति को रोकन के लिए- न स।

३ जलोदर (असाइटिस)-

मुख्य औषधे - न म, क फ, सि - विधिवत् या मिलित।

सामान्यत - न स।

शोथ मात्र हो, पानी नहीं भरा हो या कम भरा हो-न स, न म-विधिवत्।

-हृद्रोग जन्य - का म, क फ्ल - विधिवत् या मिलित।

-यकृत् हृदय, वृक्क, गठिया मे से किसी के दोष से हो- का म, का फ। मिलित।

(च) अग्न्याशय (पैंक्रियास) के रोग-

१ अग्न्याशय शोथ (पैंक्रियाटाइटिस)

मुख्य औषध - का फ, क फ - प क्र

अग्न्याशय के सभी रोगो पर - क फ।

शोथ- द्वितीयावस्था - का म।

अग्न्याशय से रसस्राव - न म।

जीर्ण अग्न्याशय शोथ - क फ्ल १२×।

यदि पूय बनने की शका हो - सि।

मूत्रधारा शिथिल - का फ।

अग्न्याशय-वृद्धि, मूत्ररोध भी हो- म फ, क फ्ल १२×।

२ अग्न्याशय का कैंसर (कार्सीनोमा ऑफ द पैंक्रियास)-

यदि ट्यूमर का सन्देह हो - का फ, म फ।

प्रथमावस्था- - क फ्ल, सि, फ फ- मिलित । बीच-बीच मे क फ देते रहे।

तीव्रशूल - का फ, फफ, म फ - मिलित।

तीव्रशूल के साथ स्राव भी होता हो - का स।

अग्न्याशय - व्रण (एब्सेस) - क स।

- मे पूय जनन, प्रदाह - सि।

(छ) गुदा (रैक्टम) के रोग-

१ अर्श (पाइल्स, बवासीर)-

बातार्श - टीस, चुभन - न म

- तीव्र शूल - का फ, सि - मिलित।

-असह्य वेदना - म फ २×। इसी से मस्सो को तर भी रखे।

-मस्से मिटाने के लिए - क फ्ल, का म, फ फ- मिलित।

रक्तार्श-क फ्ल, का म, फ फ- मिलित।

रक्तार्श वातार्श दोनो एक साथ-न म, का म - मिलित।

जलन भी हो-क फ भी मिलाए।

२ भगन्दर (फिश्च्यूला एट एनो)-

जब गाठ हो-क स, क फ्ल, का फ, क फ, न स- पाचो मिलित।

जब शोथ और शूल हो- का म, का स, मफ तीनो मिमिल जब व्रण हो-क फ्ल देकर व्रण-शुद्धि करे, फिर सि देकर व्रण भरे।

३ गुदभ्रश प्रोलैप्सस एनो)

औषधे- क स, का फ, न म, फ फ- विधिवत्।

क फ्ल ६×, १२× , क स, फ फ १२×, का फ, न म, न स, सि- मिलित।

क फ्ल ६×, फ फ ३× प क्र । इनके घोल का लेप भी करे।

बच्चो को - फ फ ६×

दस्त के समय गुदभ्रश - फ फ।

४ गुदशोथ (प्रोक्टाइटिस)-

गुदा और बृहदन्त्र का शोथ । यह प्राय व्रणात्मक आन्त्र शोथ के कारण होने वाला, या उसका एक प्रकार है। का म, का फ, म फ - मिलित।

दुर्गन्धित पूयावस्था - का फ, न फ, सि - मिलित।

५ गुद-विदार (फिशर एटएनो)

मुख्य औषध - क फ्ल।

न म, क फ्ल, क् फ, सि - लक्षणानुसार या मिलित।

६ गुद-[illegible] (प्रोक्टैल्जिया)-

सामान्यत न म।

शूल तीखा फडकता - क फ।

शूल फैला हुआ - क फ, न म - मिलित।

शूल चुभता, घुमडता - न म, सि।

७ गुद - कैंसर (कार्सीनोमा ऑफ द रैक्टम)-

मुख्य औषधे - क फ्ल ६× १२×, ३०×, क फ १२×, क स १२×।

अर्बुद अवस्था - क फ्ल, का म - प क्र

अर्बुद तन्तुमय - क फ्ल, क स - प क्र

गुदश्लेष्मार्बुद (गुद-पॉलिपि)- क फ ३०×, २००× क स, न म, सि - मिलित।

- '' - यदि मृदु हो - का स

८ गुद पक्षाघात (पैरेलिसिस ऑफ रैक्टम)-

सामान्यत - का फ, न म, सि - मिलित ।

मुख्य औषध - का फ ३०×, ६०×, २००×

उपचारार्थ - फ फ ३०×, का फ १२×, म फ १२×, ३०×, ६०× न म ६०×, २००×-विधिवत्।

फ फ - अच्छा शमनकारी है। ज्वर, रक्तस्राव पर। रक्तस्राव रोकने के लिए फ फ - प क - न म।

का फ - अनिद्रा, श्वास कृच्छता ।

म फ - न फ - प क्र । शूल आदि मे अधिक लाभ।

सि - व्रणरोपण आदि।



निराम अतिसार पर सफल प्रयोग

निराम अतिसार के रोगियो को टिचर औपिआई कैम्फर की उचित मात्रा शीतल जल मे मिलाकर देने से २ दिन मे रोग शान्त हो जाता है। इस प्रवाही औषधि को विभिन्न नामो से सभी कैमिस्ट बेचते है। यथा टि० गओवी० को०, केम्फ्रेटेड ओपि आइ तथा टिचर कैम्फर कम्पाउण्ड आदि। चिकित्सक बन्धु यह न समझे, कि यह एलौपैथिक मेडिसन है। वैज्ञानिक विधि से निर्मित अहिफेन और कर्पूर का मिश्रण है। अतिसार शामक शत प्रतिशत सफल एव हानि रहित योग है। कोमल प्रकृति के रोगियो, शिशुओ तथा गर्भवती महिलाओ आदि को भी दे सकते है।

मात्रा-वयस्को को १० से ३० बून्द तक २५, मि० ली० जल मे मिलाकर प्रति चार घटे पश्चात् दिन मे ३ या चार बार पिलावे। बच्चो को उनकी आयु के अनुसार दे।

पथ्य-प्रात काल ताजा दही सेधा नमक और भूना हुआ जीरा डालकर दे। दोपहर को छिलके दार मूग की दाल की खिचडी (सोठ या अदरख युक्त) दही की लस्सी के साथ खिलावे। साय को साबूदाने की खीर देनी चाहिए। दो या तीन दिन के बाद उपरोक्त औषधि के स्थान पर कोई भी दीपन, पाचन (एकक द्रव्य) दिया जाय। मै अपने रोगियो को शोधी हुई हरड चूसने के लिये दिया करता हूँ।

—डा० धर्मसिह आर्य आयु० रत्न बी/४, इन्दिरापार्क, नई दिल्ली

विभिन्न उदर विकारों की एक्यूप्रेशर चिकित्सा-

डा० जगदीशचन्द्र पाण्डेय, पटना
B.U.M.S. (Raj. Univ.) D.A.T. (Patna)

"पहला सुख निरोगी काया"-हम सब सुखी, निरोगी, सम्पन्न रहना चाहते है। आपके पास अथाह धन दौलत है मोटर कार, बगले, बाडा है मगर आप बीमार है तो मेरे ख्याल से आप सबसे बडे गरीब हैं। लानत है उस माया पर जो हमे स्वास्थ्य प्रदान नहीं कर सकती।

मानव शरीर एक दोष रहित ऐसा उपकरण है जिसकी सभी क्रियाये स्वत ही बिना रुके ताजिन्दगी चलती रहती है। अगर किसी कारणवश इसमे कहीं कोई गडबड हो जाती है तो इसका भी इलाज शरीर खुद करने मे सक्षम है बशर्ते कि हम उसकी मदद करे। गलत रहन-सहन और गलत आहार-व्यवहार की बजह से हमने अपने शरीर को बीमारी का घर बना लिया है। शरीर मे विषैले तत्वो का समावेश होने पर वह जहा इकट्ठा होता है उस अग विशेष के नाम से मर्ज का नामकरण करने लगते है। सबसे मजे की बात तो यह है कि इसका कारण जीवाणु और विषाणु (Bactiria and Virus) को मानने लगे है। प्रकृति अपने आप इस विष को बाहर फैकने लगती है फलस्वरूप बुखार, दर्द, पेचिश, उल्टी, फोडे-फुन्सी, इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। मगर अफसोस इसकी मदद करने की बजाय हम दवाओ से उन लक्षणो को ही मिटा देते है। ठीक वैसे-

"बॉबी कूटे बाबॅरा सर्प न मारया जाई
मूर्ख बॉबी न डसे सर्प सबहुन को खाई"

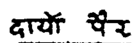
यानी हम अपने आप को बहुत बडा तीसमारखा समझने लगते है। किसी समझदार शख्स का कौल है कि- "Remove th cause of the trouble disease will be removed by it self" यानी मर्ज के मूल कारण का इलाज करो मर्ज स्वत ही खत्म हो जायेगा और प्राप्त होगा हमे आरोग्य।

आज से लगभग ३००० वर्ष पूर्व एक इलाज का सार्वसुलभ तरीका प्रचलित था, जो समय के साथ-साथ हमारे रीत-रिवाज मे इस कदर समा गया कि जाने अन्जाने मे हमे इसका फायदा मिलता रहता है और प्राप्त होता है 'आरोग्य'। उस समय इसका जो भी नाम रहा हो मगर आज इसे "एक्यूप्रेशर" के नाम से जाना जाता है। एक्यू का अर्थ है "तीक्ष्ण" व प्रेशर का अर्थ है "दबाब" यानी शरीर पर निश्चित दाब बिन्दु पर दाब देकर चिकित्सा करने को "एक्यूप्रेशर कहते हैं। हमारी हथेली एव पगथली मे स्नायुतत्र (Neruous System) के सिरे आये हुऐ है जिन्हे Nerue Ending कहते हैं, अगर हमारा कोई अग कार्य न कर रहा हो तो उस सिरे पर "Crystals" जमा हो जाते है, जिससे प्राण ऊर्जा या जैव ऊर्जा (Bioenergy) के बहने मे रुकावट हो जाती है। हमारा कार्य केवल इतना ही है कि इन Crystal को उचित दाब देकर इन्हे घोल देवे आगे का कार्य शरीर को पता है कि क्या और कैसे करना है।

योगा मे जो भी आसन व्यायाम है, हमारे जेवर धारण करने के जो स्थान है एव घर मे काम करने के जो तरीके है-मसलन चक्की चलाना, मसाला पीसना, कुँए से पानी निकालना, बेलन चलाना, सर पर मटकी रखना, कपडे धोना आदि सभी मे एक्यूप्रेशर समाया हुआ है। हमारे हिन्दू भाइयो का तिलक लगाना दण्डवत् प्रणाम करना, कान मे जनेऊ रखना, बहिनो का माग मे सिन्धूर भरना, टीका लगाना हो या मुसलमान भाइयो का बजू करना, नमाज पढना हो क्या ये एक्यूप्रेशर नहीं है। इनको करने से स्वर्ग प्राप्त होता है या नहीं यह नहीं पता हा इतना अटल सत्य है कि अगर हम इन बुजुर्गों के बनाये नियमो पर अमल करे तो हमे आरोग्य की प्राप्ती होगी जब तक जीयेगे शान से जीयेगे। आज हम इनको अधविश्वास मानने लगे हैं, बहिने आभूषण पहनने मे शर्म महसूस करती है तो क्या वे देहात की नारियो की अपेक्षा ज्यादा मर्ज मे मुब्तला नहीं है ? उत्तर स्पष्ट है कि जैसे-जैसे हम अपनी सभ्यता को त्याग कर पश्चिमी मुल्को की ओर भाग रहे है, उनकी नकल कर रहे है वैसे-वैसे हम

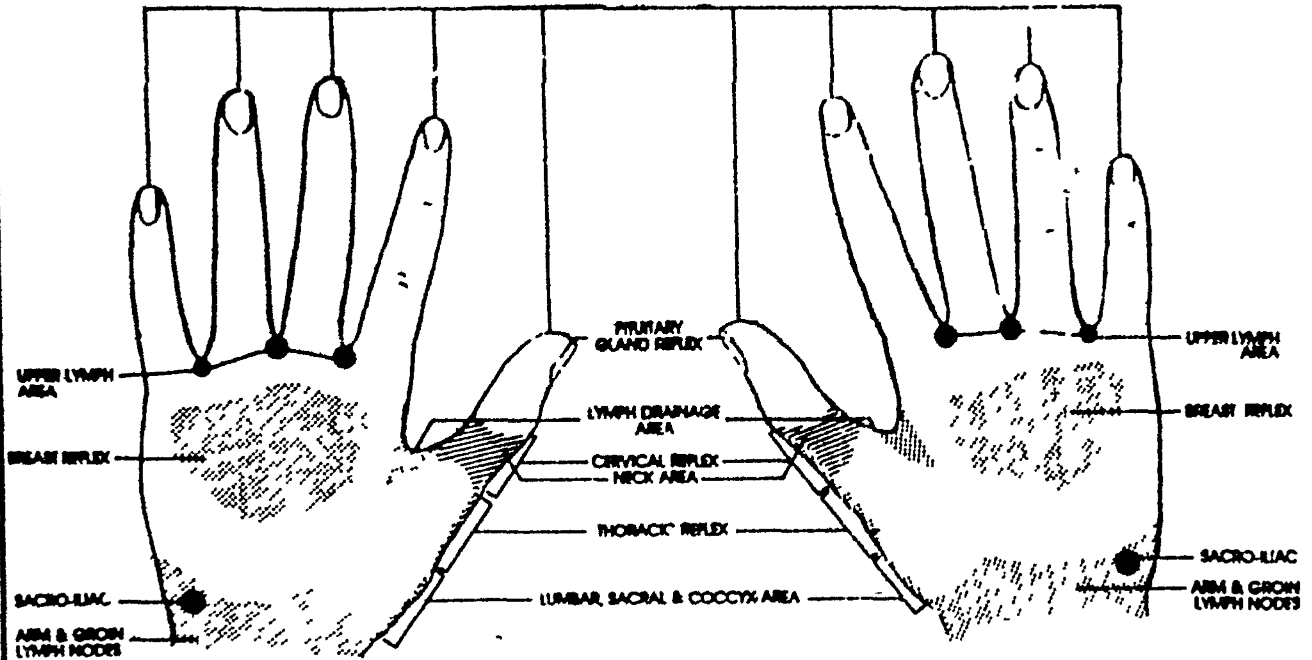
एक्युप्रेशर द्वारा उपचार दाब बिंदु केन्द्र

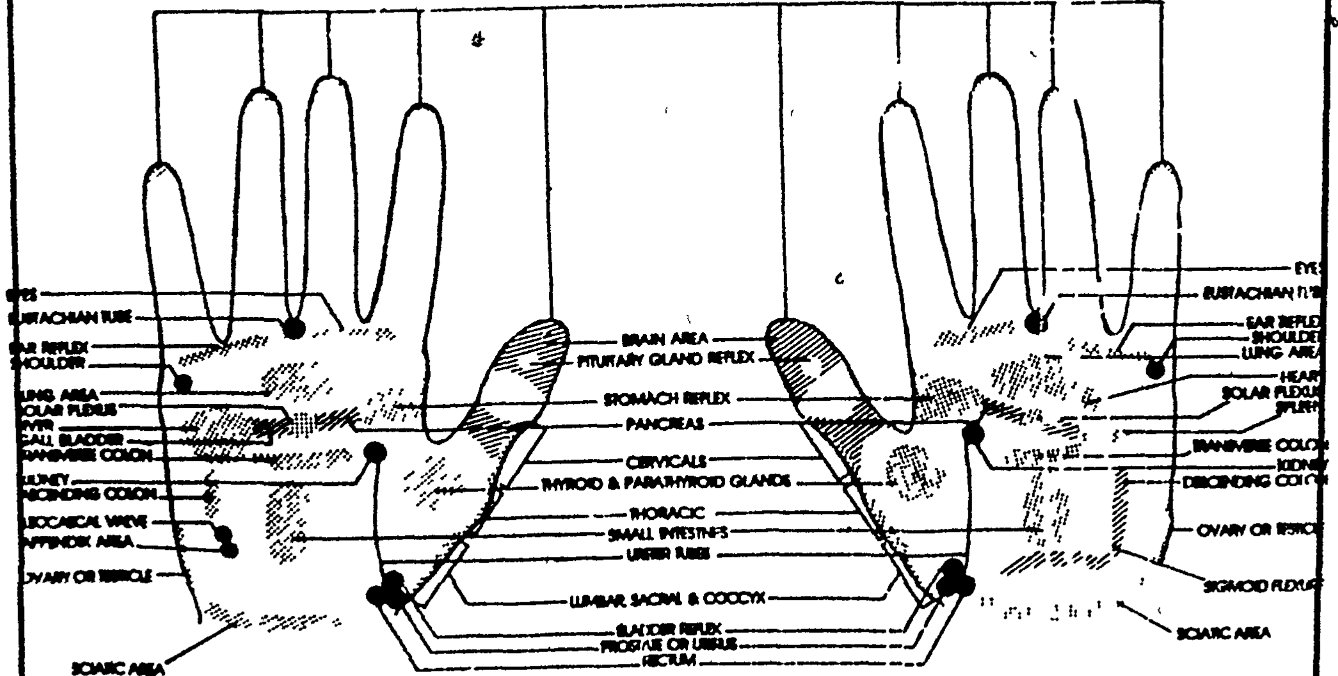
(शिर, हृदय तथा तिल्ली के प्रतिबिम्ब केन्द्रों के अतिरिक्त दोनों पैरों में समान)



बायाँ पैर

नोट - उपचार हेतु रोग सम्बन्धित बिन्दु पर लगभग 20 सैकण्ड तक अंगुठे द्वारा सहन हो सके जितना दबाव दें।


PITUITARY GLAND REFLEX
UPPER LYMPH AREA
BREAST REFLEX
LYMPH DRAINAGE AREA
CERVICAL REFLEX
NECK AREA
THORACIC REFLEX
SACRO-ILIAC
LUMBAR, SACRAL & COCCYX AREA
ARM & GROIN LYMPH NODES


SINUS REFLEXES
EYES
EUSTACHIAN TUBE
EAR REFLEX
SHOULDER
LUNG AREA
SOLAR PLEXUS
TRANSVERSE COLON
KIDNEY
ASCENDING COLON
APPENDIX AREA
OVARY OR TESTICLE
SCIATIC AREA
BRAIN AREA
PITUITARY GLAND REFLEX
STOMACH REFLEX
PANCREAS
CERVICALS
THYROID & PARATHYROID GLANDS
THORACIC
SMALL INTESTINES
LUMBAR SACRAL & COCCYX
BLADDER REFLEX
RECTUM
SIGMOID FLEXURE

हथेलियो मे दाब बिन्दु

रोगग्रस्त होते जा रहे है। आज इस दोमुही तलवार से हम अपना भी अहित करते है और दूसरो का भी इसके चटोरेपन का आलम ये है कि हम ये भी भूल गये कि जो भी हम खाते हैं, वह मैदे मे जाता है जिसकी भी एक सीमा निश्चित है जो मिला डाल दिया अन्दर यानी ठीक वैसे जैसे सारा कूडा-कडकट इकट्ठा किया और नगर निगम के कचरा पात्र मे डाल दिया। फलस्वरूप हम उदर रोगो से सदा पीडित रहते हैं। "आज हम खाने के लिये जीते है जबकि हमे जिन्दा रहने के लिये खाना चाहिये'' कहते हैं एक महापुरुष। इसी वजह से लगभग ७० प्रतिशत जनता उदर रोगो से ग्रस्त है। यू तो इस विषय पर लिखा जाये उतना कम है। यहा पर मैं केवल उदर रोगो के पाचन-तन्त्र पर ही चर्चा करूगा।

हमारी हथेली एव पगथली मे लगभग ७,२०० स्नायु तन्त्र के सिरे (Nerve Endings) आये हुये हैं, जिनमे ३६१ दाव विन्दु प्रमुख है। अगर जिस्म के किसी उजू (Organ) मे कोई तकलीफ होगी तो उससे सम्बन्धित सिरे मे दर्द पाया जायेगा, जिससे चिकित्सक रोगी से बिना पूछे रोग का निदान कर सकता है और इलाज कर सकता है। इलाज की विधि भी आसन है, अपने हाथ के अगूठे से निश्चित किये दाव बिन्दु पर उचित दाब देकर चिकित्सक चिकित्सा करता है। इसके लिये कोई खास औजार की भी आवश्यकता नहीं पडती। है ना यह कमाल की चिकित्सा "चीन के प्रमुख शोधक डा० चु लियेन के अनुसार यदि कोई अवयव ठीक से कार्य न कर रहा हो तब उसे अल्पकालीन, सौम्य उत्तेजना (Short and weak stimulation) देनी चाहिये। किन्तु जब दर्द का शमन करना हो तो शक्तिशाली दबाव देवें।

रोजाना दिया जाने वाला एक्यूप्रेशर उपचार कुल कितने समय तक देना चाहिए-

नवजात शिशु के लिये	-	१/२ से १ मिनट
३ - ६ माह के बालक के लिये	-	१ से ४ मिनट
६ - १२ माह के बालक के लिये	-	१ से ५ मिनट
१ - ३ वर्ष के बालक के लिये	-	३ से ७ मिनट
३ - १२ वर्ष के बालक के लिए	-	५ से १० मिनट
बडी उम्र के लोगो के लिये	-	५ से १५ या २० मिनट

नाम मर्ज	दाव विन्दु (Reflex Points)
१ पेट दर्द, वजऊमैदा (Gastralgia)	आत, पेट, पित्ताशय, पेनक्रियाज
२ कुरहे मैदा (Gastric ulcer)	डायाफ्राम, आमाशय, अन्ननली।
३ बदहजमी, अजीर्ण (Indigestion)	यकृत्, पित्ताशय, डायाफ्राम एडरीनल रीढ का निचला हिस्सा, इल्योसीकल वाल्व
४ Colitis	कोलोन, यकृत्, एडरीनल, रीढ का निचला हिस्सा, डायाफ्राम, पित्ताशय।
५ रिहाई दर्द, वायु विकार (Flatulance)	आत, पेट, पित्ताशय, पेनक्रियाज।
६ आत्रपुच्छ शोथ (Appendicitis)	इल्योसीकल वाल्व व डायाफ्राम।
७ इसहाल (Diarrhoea)	चढती आत, आडीकोलोन, डायाफ्राम, यकृत् एडरीनल।
८ बवासीर, मस्से	एडी का पिछला हिस्सा, डायाफ्राम, एडरीनल, गुदाद्वार, सिगमोइड, रीढ का निचला भाग।
९ हर्निया	ग्रोइन प्रदेश, कोलोन, एडरीनल, डायाफ्राम, पेय
१० कब्ज (Constipation)	यकृत्, पित्ताशय, डायाफ्राम, एडरीनल, रीढ का निचला हिस्सा, सिगमोइड, इल्यो सीकल वाल्व।
११ हिसाते मिराटा (Gall Stone)	थायरोइड, पित्ताशय, यकृत्।
१२ शराबखोरी (Alcohalism)	यकृत्, पेनक्रियाज, डायाफ्राम, एडरीनल।
१३ यरकान पीलिया (Jaundice)	यकृत्, पित्ताशय, तिल्ली, इल्योसीकल वाल्व।
१४ जयाबीतीस (Diabates)	पेनक्रियाज, यकृत्, पित्ताशय और सभी ग्रथिया।
१५ Chirrosis of the liner	यकृत्, पित्ताशय, सभी ग्रथीया पेनक्रियाज, तिल्ली, इल्योसीकल वाल्व।
१६ हुम्मा से तेफूदिया (Enteric fever)	यकृत्, आत, मैदा, गुर्दा।



उदर-विकारों की योग चिकित्सा एवं उपयोगी आसन-1

डा० आनन्दप्रकाश अचल, बी०ए०एम०एस०, वाई० टी० सी०
योगायुर्वेद शोध-सस्थान, धर्म सभा रोड, रमना, गया-८२३००१

योग-चिकित्सा एक अत्यधिक समुन्नत एव बहुआयामी चिकित्सा प्रणाली है। यह व्याधियो का निराकरण न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व मे आये शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक एव आध्यात्मिक असन्तुलन को दूर कर उसकी व्याधि के उत्पत्ति-स्रोत को समूल नष्ट कर देती है।

योग के अनुसार इस सम्पूर्ण मानव-जीवन का अस्तित्व पचकोषो मे समाहित है। इस दृष्टिकोण से उदर-विकारो का समावेश स्वत ही पच-कोषो मे हो जाता है। पहला कोष पृथ्वी, जल, तेज, वायु एव आकाश से निर्मित यह पचभौतिक शरीर है, जो माता-पिता द्वारा पचाये गये भोजन के सार भाग से उत्पन्न होता है। इसे 'अन्नमय कोष' की सज्ञा दी गयी है। इसका गर्भ मे तथा गर्भ के बाहर भी पोषण अन्न रस द्वारा ही होता है। शारीरिक विकृतिया एव व्याधिया मुख्यत अन्नमय कोष से सम्बधित होती है। उदर-विकारो का एक मुख्य उत्पत्ति स्थल यह अन्नमय कोष है। इस कोष मे जठराग्नि दौर्बल्य के फलस्वरूप जब दोष अपना आश्रय-स्थल उदर-गुहा को बना लेते हैं तो भिन्न-भिन्न प्रकार के उदर-विकारो की उत्पत्ति होने लगती है। इसके निवारणार्थ उदर-विकारो के अनुरूप आसनो और क्रियाओ की व्यवस्था की जाती है। आसनो मे विभिन्न स्थितियो मे शरीर को मोडकर एक निश्चित आकृति प्रदान की जाती है। शरीर के एक निश्चित स्थिति मे मुडने से जो सुखमय दबाव पडता है, उससे सम्पूर्ण तत्रिका तत्र उत्तेजित होकर स्वाभाविक रूप से कार्य करने लगता है। पाचन-तत्र की ग्रथिया एव पाचन-तत्र की ग्रथियो को उत्तेजित करने वाली अन्य ग्रथिया इस दबाव से अपनी वास्तविक स्थिति मे आकर सुचारु रूप से कार्य करना आरम्भ कर देती है, फलत जठराग्नि- दौर्बल्यता दूर हो जाती है, इसकी विषमता समाप्त हो जाती है, रोगी के उदर-विकारो का धीरे-धीरे शमन होने लगता है। आसनो द्वारा जठराग्नि की विषमता तो निश्चित रूप से दूर होती ही है और विषमता को प्राप्त वात-पित्त-कफ दोषो की साम्यावस्था भी प्राप्त होती है। परन्तु यह क्रिया जब दोषो की विषमता अत्याधिक हो तो अपेक्षाकृत धीमी गति से होती है। जठराग्नि भी प्रदीप्त रहे और दोषो की विषमता का भी शीघ्रता से निवारण हो इसके लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाओ की व्यवस्था की जाती है। यौगिक क्रियाऐ एक प्रकार की शरीर-शोधन व्यवस्थाये है जिनके द्वारा प्रवर्द्ध दोषो का निराकरण किया जाता है। उदर-विकारो मे मुख्य रूप से अग्निसार क्रिया, धौति-क्रिया एव बस्ति क्रिया का व्यवहार किया जाता है। अग्निसार क्रिया मे श्वास को बाहर निकालकर उदर की मासपेशियो को आगे-पीछे किया जाता है। इससे बढे हुये कफ का शमन होता है एव उदर-विकारो मे लाभ होता है। घेरण्ड-सहिता मे वर्णित है-

अग्निसारमयो धौतिर्योगिनायोगसिद्धदा।
उदरामयज व्यक्त्वा जठराग्नि बिवर्धयेत्।।

अर्थात् अग्निसार द्वारा सभी उदर-विकारो का नाश होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

इसी प्रकार धौति क्रिया मे मुख मार्ग से तथा बस्ति क्रिया मे गुदा मार्ग से दोषो का निर्हरण कर शरीर का शोधन किया जाता है। ये दोनो क्रियाये उदर-विकारो मे अत्यधिक लाभदायक है। स्वामी स्वात्माराम का वर्णित यह कथन स्वय ही उदर-विकारो मे इन क्रियाओ की महत्ता सिद्ध करता है-

'गुल्मप्लीहोदर चापि वातपित्तकफोद्भवा।
बस्तिकर्म प्रभावेन क्षीयते सकलामया।।
धात्वि द्रियात करणप्रसाद दधाच्च काति वहन प्रदीप्तिम।
अशेषदोषोपचय निहन्यादम्यस्यमान जल बस्ति नर्म।।

-हठयोग प्रदीपिका-२/२७-२८

अर्थात् बस्ति कर्म के प्रभाव से गुल्म, प्लीहोदर एव वात, पित कफ से उत्पन्न सभी रोग क्षीण जो जाते है। बस्ति कर्म करने से धातु, इन्द्रिय एव करण को हर्ष की प्राप्ति होती है। शरीर मे कान्ति एव उदर मे अग्नि प्रदीप्त होती है। अशेष दोषो का ् ्चय भी इसके द्वारा नष्ट हो जाता है।

उदर-विकारो के परिपेक्ष्य मे हम अपना ध्यान इस पचभौतिक शरीर जिसे अन्नमय कोष कहा जाता है, से भी सूक्ष्म स्तर पर ले जाते है। उदर-विकारो के फलस्वरूप हमारे श्वास के प्रवाह मे हमारे प्राण शक्ति के प्रवाह मे व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। यह मानव अस्तित्व का दूसरा कोष 'प्राणमय कोष' है। पाचो वायुओ का समावेश 'प्राणमय कोष' मे हो जाता है। इसी कारण उदर-विकारो मे प्राण, अपान, समान आदि वायुओ का प्रकुपित स्वरूप देखने को मिलता है। प्राण शक्ति के प्रवाह को सन्तुलित करने के लिए एव प्रकुपित वायुओ की उनके पूर्व रूप मे लाने के लिये श्वसन क्रियाओ और प्राणायाम का व्यवहार किया जाता है।

जब हमारा शरीर व्याधिग्रस्त हो, प्राणशक्ति का प्रवाह असतुलित हो तो निश्चय ही हमारा मन भी सतुलित नहीं रह पायेगा, और बुद्धि भी सुचारु रूप से काम नहीं कर पायेगी। ठीक यही क्रम उलटे चक्र मे भी चल सकता है। मानसिक असतुलन भी उदर-विकारो को जन्म दे सकता है।

योग चिकित्सा एक पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली है, इसीलिए योग मे मानव अस्तित्व का तीसरा और प्राणमय कोष से भी सूक्ष्म कोष 'मनोमय कोष' माना गया है। चौथा और मनोमय कोष से भी अधिक सूक्ष्म विज्ञानमय कोष है। मानसिक विकृतियो का सम्बध मुख्यत इन्हीं दोनो कोषो से रहता है। उदर-विकारो का एक प्रमुख कारण मानसिक असतुलन है। आज की अत्याधिक व्यस्त एव तनावमय जीवन पद्धति के कारण हमारे अचेतन मन मे दमित अतृप्त इच्छाये जब किसी भी रूप मे प्रकट नहीं हो पाती है तो विविध व्याधियो का रूप धारण कर अभिव्यक्त होती है। और उदर-विकार तो इनकी अभिव्यक्ति के सर्वाधिक सरलतम साधन है। मनोमय और विज्ञानमय कोष मे उत्पन्न इस असन्तुलन को दूर करने के लिये योग-चिकित्सा मे धारणा, ध्यान, ओकार-साधना आदि उच्चतर मानसिक-साधनो का अभ्यास किया जाता है।

उदर-विकारो मे उपयोगी आसन

उदर-विकारो के निराकरण के लिये योगासन अत्यधिक प्रभावी साधन है। ये आसन खाली पेट और जहा तक सम्भव हो प्रात काल ही करने चाहिए। उदर-विकारो के अनेक रूप हो सकते है और इनके लिये व्याधि के अनुरूप अलग-अलग आसनो की व्यवस्था की जाती है। फिर भी सर्वसाधारण को ध्यान मे रखते हुये उदर-विकारो के निराकरण हेतु कुछ प्रभावी आसनो का वर्णन किया जा रहा है। परन्तु इन आसनो को करने के पूर्व आप अपने योग-चिकित्सक की सलाह अवश्य ले ले अन्यथा लाभ के स्थान पर कभी-कभी हानि की भी सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ आप उदर-विकार के निराकरण हेतु मयूरासन कर रहे है, साथ ही आपको उच्च-रक्तचाप भी है तो यह आसन आपके लिए निषिद्ध है, क्योकि यह आपके रक्तचाप को बढा देगा।

१ पादहस्तासन- खडे होकर दोनो पावो को एक सीध मे रखते हुये दोनो हाथो को ऊपर उठाकर मेरुदण्ड को तानिये। धीर-धीरे मेरुमूल के पास से शरीर को मोडते हुये नीचे झुकिये और दोनो हाथो को दोनो पावो के बगल मे रखिये। ललाट प्रदेश को घुटनो पर लगाइये। यह पादहस्तासन-है।

लाभ-कोष्ठबद्धता को समाप्त करता है। मोटापा घटाता है। कमर को पतली एव लचीली बनाता है। उदर सम्बन्धी अनेक विकारो मे सहायक है। आमाशयिक रस के निष्काशन को उत्तेजित कर अजीर्ण, अपचन को दूर करता है। यकृत् के कार्य को सम्यक् बनाता है।

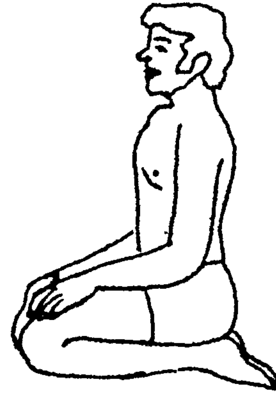
सीमा-पीठ के रोग से पीडित व्यक्तियो को यह आसन नहीं करना चाहिए।

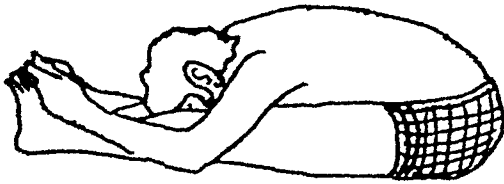
२ वज्रासन-बैठकर दोनो पावो को घुटने पर से मोड कर एडियो को नितम्ब के नीचे दबाकर बैठिये। ध्यान रखिये आपके दोनो घुटने आपस मे मिले रहे, रीढ सीधी रहे।

लाभ-बज्रासन से शरीर के उदरीय और श्रोणीय भाग मे रक्त का प्रवाह बढ जाता है। फलस्वरूप भोजन के सम्यक् पाचन मे अत्याधिक सहायता मिलती है। मात्र इस आसन को भोजन के बाद सम्यक् पाचन हेतु पाच मिनट तक करना चाहिए।

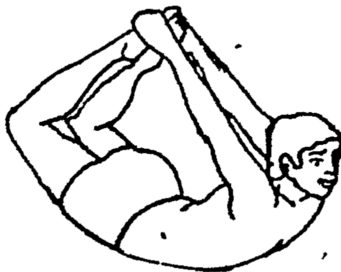
३ पश्चिमोत्तानासन-बैठकर दोनो पावो को दण्ड के समान धरती पर आपस मे सटाकर फैला ले। धीरे-धीरे झुकते हुये दोनो हाथो से पैरो के अगूठो को पकडिये और ललाट प्रदेश को घुटनो पर लगाइये। यह पश्चिमोत्तानासन है।

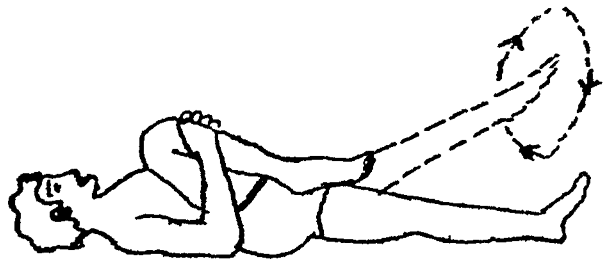

पादहस्तासन


वज्रासन


पश्चिमोत्तानासन


अर्द्धमत्स्येन्द्रासन


धनुरासन


पवनमुक्तासन भाग-1

उदर विकारों में उपयोगी योगासन

लाभ-उदरीय मासपेशियो को उत्तेजित करता है। अग्नयाशय, आमाशय और आतो की क्रिया को सुधारता है। पाचक-अग्नि को सक्रिय बनाता है। यह आसन अजीर्ण, कोष्ठबद्धता एव अन्य उदरगत व्याधियो मे अत्याधिक लाभकारी है।

सीमा-ग्रीवा-अपकशेरूकता, उच्चरक्तचाप, साइटिका, दीर्घकालीन सधिशूल एव पीठ दर्द के रोगियो को यह आसन नहीं करना चाहिये।

४ अर्द्धमत्स्येन्द्रासन-बैठकर दाये पाव को घुटने के पास से मोडकर एडी को मूलाधार के पास रखिये। बाये पाव के पजे को दाई जाघ की बगल मे घुटने के पास रखिये। दाए हाथ को बाये घुटने के बाहर से लाकर बाये पाव के अगूठे को पकडिये। इसके बाद बाये हाथ को पीठ के पीछे लेजाकर दाई जघा पर रखियो। बाई-ओर गर्दन मोडकर पीछे देखिये। (यह प्रक्रम दूसरी ओर से भी दोहराइये)

लाभ- यह आसन यकृत् प्लीहा, अग्नयाशय, और आतो को सबल बनाता है। उनके कार्यों को सुधारता है। कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, मधुमेह, वृक्को की विकृति, बढे हुये अथवा सकुचित यकृत् एव प्लीहा, उदर-विकारो आदि व्याधियो के निराकरण मे अत्यधिक प्रभावशाली है। यह मेदस्विता को दूर करने तथा उदरगत वायु के निष्कासन मे भी सहायक है।

५ धनुरासन-पेंट के बल लेट कर दोनो हाथो और पैरो को शरीर के समानान्तर एक सीध मे रखिये। अब दोनो हाथो और दोनो पावो को खींचकर शरीर को धनुष के आकार मे मोडिये।

लाभ-जठर-आन्त्रीय व्याधियो के निराकरण मे अत्याधिक सहायक है। जठराग्नि को प्रदीप्त कर पाचन को सम्यक् बनाता है। कोष्ठबद्धता, मदाग्नि, अजीर्ण, यकृत्-विकार, उदरगत विकृत वात के निराकरण मे अत्याधिक सहायक है।

सीमा-हर्निया, पेप्टिक अल्सर, एव आतो की गभीर व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति इस आसन को न करे।

६ पवन मुक्तासन-(क) पवन मुक्तासन भाग-१ -स्थिति चित लेट जाइये। ऐडिया आपस मे मिली रहे तथा बाहे सिर से ऊपर तनी रहे।

१ दाये पाव को सीधे रखते हुये धरती से ४५ डिग्री के कोण पर उठाइये।

२ दाये पाव को फर्श से समकोण बनाते हुये उठाइये। आपका पैर धरती से ९०° के कोण पर होगा।

३ दाये पाव को मोडिये और घुटने को वक्षस्थल से लगाइये। हाथो की उगलियो को आपस मे मिलाकर पाव को दबाकर पकडिये।

४ ठुड्डी को जानु पर लगाइये। बाए पाव को छ बार वामावर्त और ६ बार दक्षिणावर्त दिशा मे घुमाइये।

५ स्थिति मे वापस लौट आइये।

(यही प्रक्रम बाए पाव से भी दोहराइये।)

लाभ-उदरगत वायु के निष्काशन मे अत्यधिक प्रभावशाली आसन है। कोष्ठबद्धता समाप्त करता है। पाचन-शक्ति बढाता है। इसके अभ्यास से आमाशय एव आतो की सम्यक् मालिश होती है। आते शक्तिशाली हो जाती है।

सीमा-हर्निया एव पेप्टिक अल्सर के रोगी इसे न करे।

(ख) पवन मुक्तासन भाग-२

स्थिति मे आ जाइये।

१ दोनो पावो को ४५° के कोण पर लाइये।

२ पावो को धरती से ९०° के कोण पर लाइये।

३ घुटनो को मोडिये और हाथो की उगलियो को आपस मे मिलाकर घुटनो को वक्ष से कस कर दबाइये।

४ शरीर को बारी-बारी से दायीं और बायीं ओर मोडिये। ध्यान रखिये कि आप इतना झुके कि आपकी कोहनी धरती पर बिछी दरी को छुये। दोनो ओर छ-छ बार मुडिये।

५ अब इसी स्थिति मे शरीर को छ-छ बार आगे-पीछे झुलाइये।

लाभ-इसके अभ्यास से पीठ, कमर, कूल्हे एव नितम्बो की सम्यक् मालिश होती है। इसके अन्य लाभ पवन मुक्तासन भाग-१ के समान ही है, पर उससे कुछ कम है।

सीमा-मेरुदण्ड सम्बधी किसी भी व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति उच्चरक्तचाप के रोगी इसे न करे।

इन आसनो के अतिरिक्त त्रिकोणासन, परिवृत त्रिकोणासन, सुप्तबज्रासन, उष्ट्रासन, भुजगासन, शलभासन, मयूरासन हसासन, नौकासन, सर्वांगासन, हलासन आदि आसन भी उदर-विकारो मे प्रभावी पाये गये है। आप इनका अभ्यास अपने योग-चिकित्सक की सलाह के अनुसार कर सकते है।



उदर-विकारों की योग चिकित्सा एवं उपयोगी आसन-2

डा० यशवन्त चौहान, प्रवक्ता मौलिक सिद्धान्त एव सहिता विभाग
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००२

आयुर्वेद वाड्मय मे, जिन रोगो मे सामान्य रूप से उदर की वृद्धि होती है उसे 'उदर रोग' से सक्षित किया गया है। उदर शब्द को पिचण्ड, कुक्षा, जठर, उदर एव तुन्द आदि नामो से जाना जाता है। महाप्राचीरा पेशी के अधोभाग से बस्ति पर्यन्त का भाग उदर है। इसके अन्तर्गत महास्रोत के आमाशय, पच्यमानाशय, ग्रहणी क्षुद्रान्त्र, बृहदान्त्र आदि अग आते है। इन सभी अगो मे किसी प्रकार की विकृति विभिन्न उदर-विकारो का कारण हो सकती है। वास्तव मे जठराग्नि व्यापार की विकृति उदर-विकारो का मूल कारण है। अन्नवह स्रोत और पुरीष-वह स्रोत की विकृति को भी उदर-विकारो के अतर्गत गिना जाता है। व्यावहारिक भाषा मे उदर-विकार पेट की गडबडी से लिया जाता है। इसके अतर्गत निम्नलिखित व्याधियो का समावेश किया जा सकता है। यथा-अजीर्ण, अग्निमाद्य, आनाह, अरोचक, उदावर्त, ग्रहणी, प्रवाहिका गुल्म (इरिटेबुल बावेल सिन्ड्रोम, स्प्रू सिन्ड्रोम आदि आधुनिक व्याधि) इत्यादि। इन व्याधियो की सम्प्राप्ति पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अग्नि की विकृति ही इन व्याधियो का मूल है।

आज आधुनिकता से आक्रान्त मनुष्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है। निरतर व्यस्तता एव भागदौड बढती जा रही है। एक नियमित चर्या का पालन, एक स्वप्न सा प्रतीत होता है। आहार-विहार का व्यक्तिक्रम अग्नि व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। आयुर्वेद मे अग्नि व्यापार को सुचारु रूप से चलते रहने के लिए नियमित दिनचर्या, अष्ठविध आहार विधि विशेषायतन, एव सद्वृत्त आदि के पालन का निर्देश है। इनके अपालन से, मानव मात्र का अग्नि व्यापार बाधित होकर विभिन्न उदर-विकारो की सृष्टि करता है।

आधुनिक विज्ञान द्वारा निर्दिष्ट चिकित्सा उदर-विकारो पर पूर्ण रूपेण विजय पाने मे सक्षम नही है। आयुर्वेद [illegible] ही इनकी सफल चिकित्सा उपस्थित करता है। परन्तु निरतर दिनचर्या मे उपस्थित बाधाए इन रोगो का पुनरावर्त्तन करती है। अतएव यह समय की माग है कि चिकित्सा समुदाय एक ऐसी चिकित्सा-पद्धति को प्रस्तुत करे जो सरल हो एव उदर-विकारो को समूल नष्ट करने मे सक्षम हो। विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियो पर दृष्टिपात करने पर यह दृष्टिगोचर होता है कि योग एव योगासानो का अभ्यास उदर-विकारो की चिकित्सा के साथ-साथ उनका निरतर अभ्यास उदर-विकारो के प्रतिषेध मे भी सक्षम है।

योग भारत की सास्कृतिक धरोहर है। दुख के समूल नाश एव मोक्ष-प्राप्ति हेतु प्राचीनो ने इस दिशा मे चितन करना प्रारम्भ किया था। वैदिक काल से लेकर आज तक यह विद्या समृद्ध होती चली आई है। आज अद्रव्यभूत चिकित्सा के सदर्भ मे, यह विद्या समस्त चिकित्सा-जगत् का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर चुकी है। विभिन्न व्याधियो की सफल चिकित्सा ने इसकी उपादेयता को सिद्ध कर दिया है।

पतञ्जलि योग के प्रणेता माने गए है, उन्होने योग के आठ अगो का वर्णन किया है-यथा-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारण-ध्यान एव समाधि। यम के अतर्गत-सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह आते है। नियम मे शौच सतोष तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को गिना गया है। हठयोग प्रदीपिका ने शौच के अतर्गत षड्कर्म-धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाती का उल्लेख किया है। उपर्युक्त आठो अगो एव उनके उपागो का अलग-अलग प्रभाव है। आज-कल विभिन्न व्याधियो के चिकित्सार्थ प्रयोग के लिए कैवल्यधाम लोनोवाला, केन्द्र के स्वामी कुवलयानन्द का योगदान सराहनीय है। चिकित्सा विज्ञान सस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व निदेशक स्व० प्रो० उडूपा एवं वर्तमान

काय-चिकित्सा विभागाध्यक्ष प्रो० रामहर्षसिह ने भी अपने अनुसधानो द्वारा योग चिकित्सा को समृद्ध किया है। प्रो० सिह अभी भी इस दिशा मे कार्यरत है।

उदर-विकारो मे विभिन्न योगिक क्रियाओ को लाभप्रद पाया गया है। आसनो का निरतर अभ्यास उदर-विकारो को दूर करने मे सर्वाधिक सक्षम है। इस सदर्भ मे उदर-विकारो मे लाभप्रद कुछ सरल आसनो की सूची प्रस्तुत की जा रही है। (विस्तार भय से इनकी विधिया नहीं दी गई हैं पाठक सदर्भ ग्रथो का अवलोकन करे)

	आसन		रोगो का नाम जिसमे लाभ होता है
१	पादागुष्ठ नासाग्र स्पर्शासन	-	कमर एव घुटने का दर्द कोष्ठबद्धता, उदर का बढना
२	पश्चिमोत्तानासन	-	कोष्ठबद्धता, कमर दर्द, उदर का बढना, पाचन-शक्ति बढाता है।
३	जानु शिरासन	-	सर्व प्रकार के उदर रोग
४	उत्तान पादासन	-	कमर, रीढ एव पेट के रोग
५	पवन मुक्तासन	-	उदरावर्त्त, शौचशुद्धि, वायु को बाहर निकालता है।
६	सर्वांगासन	-	रक्त दुष्टि, अग्निमाद्य, उदर-विकार
७	हलासन	-	यकृत्, प्लीहा, अजीर्ण रोग, अत्र को बलवान करता है एव जठराग्नि को बढाता है।
८	मयूरासन	-	गुल्म, कोष्ठबद्धता, अग्निमाद्य
९	भुजगासन	-	कटि दोष, उदर-विकार
१०	धनुरासन	-	कोष्ठबद्धता, अग्निमाद्य
११	कुक्कुटासन	-	अग्निमाद्य, आलस्य
१२	कूर्मासन	-	अत्र-विकार, अग्निमाद्य, शौच शुद्धि
१३	शलभासन	-	आतो को मजबूत करता है।
१४	शवासन	-	सभी प्रकार के उदर-विकार जिसमे मानस दोष भी कुपित हो (इरिटेबुल बावल सिन्ड्रोम, पेप्टिक अल्सर आदि।)

उपर्युक्त आसनो का अभ्यास विशेषज्ञो की देखरेख मे करना चाहिए। आसनो के अक्रमबद्ध एव गलत अभ्यास से हानि की भी सम्भावना बनती है।

सदर्भ ग्रथ-

१ आसन-स्वामी कुवल्यानन्द - कैवल्यधाम लोनोवाला सप्तम सस्करण-१९८२
२ पातजल योग प्रदीप-श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ-गीता प्रेस, गोरखपुर स० २०४३
३ कलेक्टेड पेपर्स आन योग- कैवल्यधाम, लोनोवाला, प्रथम सस्करण १९७५
४ हठ योग प्रदीपिका - एड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर १९७२
५ घेरण्ड सहिता - सिरिश चन्द्र वसु, थियोसाफिकल पब्लिसिग हाउस लिमिटेउ ६८, ग्रेट रसेल स्ट्रीट लडन-तृतीय सस्करण-१९७६
६ योग सूत्र - बगाली बाबा मोतीलाल बनारसीदास
७ चरक सहिता - चौखम्बा ओरियन्टालिया-वाराणसी



उदर रोगों की आधुनिक चिकित्सा एंव पेटेन्ट योग

डॉ० हरेन्द्रकुमार प्रवीण, आर०सी०एम०एस०, एम०आई०एम०एस०, ई०एम०,पी०
प्रवीण चिकित्सासेवाश्रम, पो०-पचहरवा, वाया-मेजरगज, जिला-मीनामढी (विहार)

गतवर्ष के विशेषाक मे मेरा हृदय रोग नाशक प्रमुख पेटेन्ट एलोपैथिक औषधिया लेख प्रकाशित हुआ था, जिसे पढकर सहस्रो पाठको से मुझे साधुवाद प्राप्त हुआ। सम्पादक महोदय जी के आदेश पर उसी श्रृखला मे उदर रोगो पर प्रमुख पेटेण्ट एलोपैथिक औषधियो का वर्णन इस लेख मे किया जा रहा है। इस लेख मे भी वे ही औषधि योग दिए जा रहे है, जो सर्व सुलभ है, जिनकी विशेष प्रशसा हुई है।

अजीर्ण या अग्निमाद्य
(Indigetion)

(१) यूनीइन्जाइम टेवलेट (Unienzyme tab) इसे प्रमुख दवा निर्माता यूनीकेम द्वारा टेबलेट के रूप मे निर्माण किया जाता है।

गुण-इस दवा का व्यवहार, अजीर्ण या अग्निमाद्य, पक्वाशय तथा आन्त्र का अफारा, पाकस्थली प्रदाह, रक्तातिसार, भूख की कमी, भोजन के बाद पेट का भारी लगना, डकारे आना, पेट का दर्द (पेप्टिक अल्सर नहीं) तथा पेट के अधिक फूलने तथा साथ ही दिल की धडकन दूर करने को सफलता से प्रयोग किया जाता है।

समानता-फेयरडाल (FDC) क० का मोलजाइम, विकोन फार्मा के नोभोजाइम, "कैमोफार्मा" के डाइजेस्टोन फोर्ट, वायोलोजिक इवैन्स के वेस्टोजाइम टेव०, एलेम्बिक के एल्वीजाइम पेप्सिनोजाइम, ब्रिटिश फार्मा के इन्जोविट ये सभी उपरोक्त दवा के ही गुण रखती हैं।

(२) टाका कम्बेक्स कैपशिल्स (Taka Combex Kapseals)-यह सुप्रसिद्ध दवा निर्माता पार्क डेविस द्वारा कैपसूल के रूप में तैयार किया गया है।

गुण-विटामिन वी कम्पलेक्स की कमी से होने वाले रोग की रोक-थाम एव चिकित्सा के लिए, अजीर्ण या अग्निमाद्य, भूख की कमी के लिये यह दवा व्यवहृत होती है।

मात्रा एव व्यवहार-विधि-इसका १-१ कैपसूल X३ वार प्रतिदिन भोजन के साथ या तुरन्त बाद मे पानी के साथ दिया जाता है।

(३) एसीडोल पेप्सिन (Acidol Pepsin)-इसे टेवलेट के रूप मे ख्याति प्राप्त दवा निर्माता बेयर ने तैयार किया है।

रोग प्रति निर्देश-पाचन-क्रिया की गडबडी निस्सार पाचक रस की कमी तथा क्षुधा अभाव के लिए यह बहुत ही प्रशसनीय औषधि है।

व्यवहार-विधि-मुख द्वारा।

मात्रा-वयस्क २-४ टेवलेट, बच्चा १-२ टेवलेट, शिशु आधा टेबलेट।

वयस्क एव बडी उम्र के बच्चो को आधे से एक गिलास पानी मे घोलकर भोजन के साथ या प्रत्येक भोजन के वाद लेने की अनुमति देनी चाहिए।

(४) फेस्टल ड्रेगी (Festal Dragees)-यह प्रतिष्ठित दवाओ के निर्माता हैक्स्ट द्वारा कैपसूल के आकार की ड्रेगीज के रूप मे तैयार किये जाते है। यह पाचन-क्रिया को ठीक करने की एक सफल शक्तिशाली दिव्यौषधि है।

गुण-यह प्रत्येक प्रकार की पाचन-क्रियाओ की गडबडी तथा क्लोम रस की अपर्याप्तता तथा उससे उत्पन्न अजीर्ण, गलत ढग से चवाने के कारण अजीर्ण, चर्वी (चिकनाई) की चीजे अधिक खाने से होने वाले अजीर्ण एव अतिसार, पेट मे तैयार हो रहे गैस को रोकने मे तथा पास (PAS) की चिकित्सा के बाद होने वाले उदर-विकार में बडी उपयोगी दवा है।

मात्रा-१-२ ड्रेगीज ३ वार भोजन के साथ या भोजनोपरान्त मुख मे रखकर चूसने की सलाह दे।

(५) डिस्पेप्टल (Dispeptal)-यह ड्रैगीज के रूप मे अजीर्ण की एक नई दवा है, जिसका निर्माण बोहरिगर नोल कम्पनी के द्वारा होता है।

रोग प्रति निर्देश-यह प्रत्येक प्रकार की पाचन-क्रियाओ से सम्बन्धित रोगो यथा सभी प्रकार के अजीर्ण तथा अग्निमाद्य, अफारा, अजीर्ण द्वारा उत्पन्न अतिसार, पेट मे गैस बनना, किसी भी प्रकार की डकारे आने को दूर करने के लिए विश्वसनीय दवा है।

मात्रा-१ से २ ड्रेगी खाना खाने के बाद ३ बार।

(६) **बिस्मोजाइम पेय** (Bismozme Syrup)-पेय के रूप मे इस दवा का निर्माण ईस्टर्न, ड्रग क० द्वारा होता है।

गुण-अजीर्ण, अतिसार, अम्लपित्त, हृदय की जलन, पेट फूलना, वमनेच्छा, वमन, पाकस्थली प्रदाह, जठरान्त्र प्रदाह एव उदर के दूसरे औपसर्जिक लक्षणो को दूर करके पेट की पाचन-क्रियाओ को ठीक करने मे अद्वितीय दवा है।

मात्रा-(Dose)-आधा-एक चम्मच दवा खालिश या पानी मे घोलकर २ या ३ बार प्रतिदिन भोजनोपरान्त देना श्रेयस्कर है।

समानता-पैनेसिया लेवो के पेप्टिनजाइम, मेन्डिन फार्मा वर्क्स के एक्ट्रीनजाइम पेय, भारत इम्युनिटी क० के विनोजाइम इत्यादि।

डिजीटोन (Dizytone)-भारतवर्ष के विख्यात दवा निर्माता यूनीकेम द्वारा पेय के रूप मे निर्मित होता है। पहले के यूनीजाइम का नाम बदल दिया गया है। डिजीटोन नया नाम है।

गुण-अजीर्ण तथा अग्निमाद्य, हृदय की जलन, गर्मी के मौसम का अतिसार, भूख की कमी, रोग से मुक्ति के पश्चात् धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ करता है तथा शरीर मे शक्ति प्रदान करता है।

मात्रा एव व्यवहार-विधि-पुडिया की दवा को शीशी मे घोलने के बाद १-२ चम्मच भोजन के बाद २-३ बार तक देना चाहिए। बच्चो को आवश्यकतानुसार आधा या एक चम्मच उनकी आयु को देखते हुए देना चाहिए।

टी० सी० एफ० (T C F) क० का डिजीप्लेक्स (Digeplex Syrup) इसी के समान है परन्तु उसके साथ डायस्टेज पुडिया की वजाय टेबलेट के रूप मे होता है जो स्ट्रिप पैकिग मे होता है।

समकक्ष-ईस्ट इण्डिया क० का वीटाजाइम, इण्डियन हैल्थ रिसर्च क० का जाइमोटोन, पार्क डेविज का टाका कम्प्लेक्स इलिक्सर, क्रोप्रान केमिकल का ओरिजाइम वायोलोजिकल इवैन्स का बेस्टोजाइम पेय, इपका लेवो० का इन्जाइमेक्स, विलीन फार्मा का नोमोजाइम, एरिस्टो फार्मा का एरिस्टोजाइम इत्यादि।

इस रोग मे इन्जेक्शन के लिए पाठकवृन्द "हृदयरोगनाशक प्रमुख पेटेण्ट एलोपैथिक औषधिया'' नामक लेख मे वर्णित बेरिन (Berin inj), वीप्लेक्स फोर्ट विद वी १२, यूबीसीड तथा बिजेक्टल टी इत्यादि देखे। इनके अलावा इस रोग मे लिवर एक्सट्रेट के भी इन्जेक्शन यथा लिवर एक्स्ट्रेट फोर्ट, लिवर एक्स्ट्रेट विद फोलिक एसिड, होल लीवर एक्स्ट्रेट विद विटामिन बी कम्पप्लेक्स सभी टी०सी०एफ० क० के या मर्क शार्प क० का इलोवन, वायोलौजिकल इवैन्स का हिपाटेक्स तथा नियोहिपाटेक्स बगाल इम्युनिटी का नियोप्रोलेक्स, सिपला क० का हिपाफोलिन जी० डी० ए० केमिकल का हिपानिया फोर्ट भी अपश्यकतानुसार दिये जाते है। यूनीकेम का यूनीफेटन+एफ १२ तथा टाटा फाइजन का इमफेरन+एफ१२ जिसमे ५० मि० ली० आइरन डेक्स्ट्रान के अलावा फोलिक एसिड एव विटामिन बी१२ मिला होता है, भी आश्चर्यजनक लाभ दिखलाता है।

अम्लपित्त
(Hyper acidity)

इस रोग के लिए आने वाले प्रमुख एलोपैथिक पेटेण्ट औषधियो के वर्णन दिये जा रहे है। जिनकी चिकित्सा-जगत् मे विशेष प्रशसा की गई है तथा सभी जगहो पर उपलब्ध होते है।

(१) पेपुलामीन (Pepulamine tab)-एलोपैथिक दवाओ के निर्माता डोल्फीन क० ने इस टेबलेट का निर्माण करके चिकित्सा जगत् मे विशेष योगदान दिया है। अमेरिका के डॉक्टरो ने इस दवा के लिए कम्पनी की भूरि-भूरि प्रशसा की है।

गुण-अम्लाधिक्य, छोटी आत का व्रण एव प्रपाचीय व्रण के लिये विशेष लाभदायक है।

मात्रा-२ टेबलेट प्रत्येक भोजन के १ घटा पहले एव २ टेबलेट रात को सोते समय।

रोग निर्देश-इस दवा का व्यवहार अम्लन्यूनता एव अम्लाभाव मे नहीं करे।

(२) **सिण्ट्रोजेल**-एलोपैथिक औषधियो के सुप्रसिद्ध निर्माता रोशे क० द्वारा इसका निर्माण होता है।

रोग निर्देश-जठरान्त्र की गडबडिया जैसे अम्लाधिक्य या अम्लपित्त, पेट का फूलना, हृदय की जलन, अन्त्र एव प्रपाचीय व्रण, आमाशयिक शूल, पाकस्थली शोथ, खान-पान की गडबडी से उत्पन्न अग्निमाद्य इत्यादि के लिये यह एक उत्तम कोटि की दवा है।

मात्रा एव व्यवहार विधि-१-२ टेबलेट आवश्यकतानुसार दुहराया जा सकता है। इस टेबलेट को मुह मे रखकर चबाया, चूसा जा सकता है। या एक ग्लास पानी मे घोलकर पीया जा सकता है।

(३) **एल्युड्रॉक्स एम एच** (Aludrox MH)-यह जॉन वाइथ क० का टेबलेट तथा जेल (Gel) पेय के रूप मे आता है।

रोग निर्देश-प्रपाचीय व्रण, अम्लपित्त तथा औषधियो के व्यवहार से पेट की गडबडी जो हो जाती है, उसे दूर करने के लिये चिकित्सा-जगत् की सुप्रसिद्ध पेटेण्ट औषधि है। यह इन कष्टो मे पेट के दर्द को भी दूर करती है।

मात्रा-१-२ टेबलेट ३ या ४ बार प्रतिदिन या १०-२० मि० ली० ×३ या ४ बार प्रतिदन भोजन के १-२ घण्टा के बाद।

(४) **एण्टीसीडाल टेब०** (Anticidal Tabs)-यह वाण्डर लि० क० का बनाया हुआ सबसे अधिक डाक्टरो द्वारा व्यवहार कराया जाने वाला प्रमुख पेटेण्ट औषधियो की श्रेणी मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने वाला है।

गुण-दर्द एव ऐठन शूल के साथ अम्लपित्त, प्रपाचीय व्रण के लिए आशुगुणकारी है। इसकी विशेषता है कि यह जठरान्त्र सम्बन्धी दूसरे प्रकार के दर्द एव ऐठन मे भी विशेष हितकारी है। यह दर्द को शमन करती है। इसलिए यह अधिकाधिक चिकित्सको द्वारा नुस्खित किया जाता है।

मात्रा-१-२ टेबलेट भोजन के आधा घण्टा, एक घण्टा के बाद मे। यदि गम्भीर दर्द हो तो भोजन के बीच मे एण्टीसीडाल को दुहराया जा सकता है।

इस टेबलेट को चबाकर खाना मना है, बल्कि चूस कर या आधे ग्लास पानी मे घोलकर पीने की सलाह दे।

(५) **अल्काजाइम** (Alkazyme)-यह पाउडर के रूप मे बी०आई० क० द्वारा तैयार किया जाता है।

रोग निर्देश-अम्लपित्त, प्रपाचीय व्रण इत्यादि।

मात्रा-(पूरे) चाय के चम्मच से १-२ चम्मच पानी मे मिलाकर २ बार भोजन के बाद।

(६) **सिलोमैग टेबलेट** (Silomag tabs)-इसका निर्माण एलेम्बिक केमिकल्स वर्क्स क० द्वारा होता है।

रोग निर्देश-अम्लाधिक्य, प्रपाचीन व्रण, आम्लिक अग्निमाद्य, हृदय की जलन, पेट का फूलना, भोजन से पहले या भोजन से बाद का दर्द इत्यादि इस दवा के सेवन से दूर किये जाते है।

मात्रा-१-२ टेबलेट चबाकर, पानी मे घोलकर या डाक्टर की रायानुसार।

इसके अलावा आत्रवृद्धि के लिए जिन दवाओ का वर्णन किया गया है, वे भी इस रोग मे लाभकारी सिद्ध हुई है।

इसके अतिरिक्त विस्मोजाइम ईस्टर्न ड्रग क० का यूपेन्टीन रैप्टाकोस क० का भी सेवनीय है।

इस रोग के लिए अन्य पेटेण्ट औषधियो का वर्णन आमाशय शोथ तथा प्रपाचीय व्रण मे भी देखे।

आमाशय-शोथ
(Gastritis)

विभिन्न प्रमुख कम्पनियो के पेटेण्ट योग जो इस रोग को दूर करते है, यहा दिये जा रहे है-

(१) **लिनोपोन**-लेवोरेटरीज माइफर एस० ए० जिनेवा के सौजन्य से भारत मे अतुल ड्रग हाउस बम्बई, द्वारा यह टेबलेट तथा स्वादिष्ट पेय के रूप मे तैयार किया गया है।

रोग निर्देश-पाकाशय का अम्लपित्ताधिक्य, पेट मे जलन, अग्निमाद्य, तीव्र एव पुराना आमाशय शोथ, शूल तथा गर्भावस्था मे पेशियो का सिकुड जाना आदि मे स्थायी लाभ के लिए इसका व्यवहार करना चाहिए।

मात्रा-२-३ टेबलेट या २-३ चाय चम्मच भर लिक्विड थोडे से पानी के साथ प्रत्येक भोजन के १५ मिनट बाद या

आर्गेनन क० की, थायरेनोन की ० ५ mg की एक टिकिया आवश्कतानुसार १-३ बार दे।

बरोज वेल्कम क० का ही-

मेथिड्रीन (Methedrine)-इस औषधि की प्रत्येक टिकिया मे ५ मि० ग्रा० मिथीलएम्फेटामीन और १५ मि० लि० के इञ्जेक्शन मे ३० मि० ग्रा० मिथीलएम्फेटामीन होता है।

रोग निर्देशन-यह स्थूलता की एक उत्तम औषधि है। आमाशयिक प्रसार मे भी सेवनीय है। थकान उदासीनता और अतिनिद्रालुता इत्यादि मे यह औषधि प्रमस्तिष्कीय उत्तेजक का कार्य करती है। निद्रालु औषधियो के अत्यधिक प्रयोग से जो विषैला प्रभाव पडता है, वह इस औषधि के इञ्जेक्शन द्वारा दूर हो जाता है।

मात्रा-साधारणत इस औषधि की एक से चार तक टिकिया आवश्यकतानुसार प्रयोग की जाती है। इञ्जेक्शन के रूप मे १५ मि० ग्रा० से ३० मि० ग्रा० तक पतिदिन इस औषधि का पेश्याभ्यन्तर या शिराभ्यन्तर इञ्जेक्शन लगाया जा सकता है।

परन्तु इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि इस औषधि को केवल दिन मे ही प्रयोग किया जाय ताकि निद्रानाश की शिकायत पैदा न हो।

प्रपाचीय व्रण
(Peptic Ulcer)

कुछ प्रमुख औषधियो की झलकिया-

(१) **रोबुडेन** (Robuden)-यह एक बिल्कुल ही नई दवा है, जो दो प्रकार के इञ्जेक्शनो एव टेबलेट् के रूप मे ओरिएन्ट फार्मा क० द्वारा तैयार की गयी है।

रोग निर्देशन-पेप्टिक अल्सर, आमाशय का व्रण एव आतो का व्रण, छोटी अतडी के मध्यमाश का गौण व्रण तथा आमाशय-शोथ (Gastritis) एव छोटी अतडी के प्रथम भाग के प्रदाह की चिकित्सा के लिए सर्वोत्तम औषधि मानी गयी है।

मात्रा एव व्यवहार-विधि-रोबुडेन प्रो यू भेन्टर या रोबुडेन प्रो यू डूयोड के इञ्जेक्शन मासपेशी मे दिए जाते है। पहले और दूसरे दिन क्रमश ० ३ मि० लि० एव ० ५ मि० लि० का इञ्जेक्शन मासपेशी मे इनके प्रभाव तथा पार्श्व प्रभाव या सहनशीलता को देखने के लिए दिया जाता है। इसके बाद इस रोग की चिकित्सा के लिए १-२ मि० लि० प्रतिदिन या प्रत्येक दूसरे दिन दे। साधारणतया १२-१६ इञ्जेक्शन पर्याप्त होते है। प्रतिरोधात्मक मे २४ इञ्जेक्शनो तक।

टेबलेट-१ टेबलेट ३ बार प्रतिदिन भोजन से पूर्व।

(२) **एन्ट्रेनिल एव एन्ट्रेनिल डुप्लेक्स तथा एन्ट्रेनिल ड्रॉप**-इसका निर्माण सीवा क० द्वारा होता है।

रोग निर्देशन-जठरान्त्र सम्बन्धी शूल, पेण्टीक तथा आतो के व्रण के शूल के लिये विशेष हितकारी है। अत्यधिक वृद्ध आमाशय शोथ, उदरशूल, आन्त्रगत रक्तस्राव, वृक्क एव पित्ताशय की ऐठन, शूल, शिशुओ की कै तथा अतिसार, हृदय का दर्द, पाकाशय के मध्य भाग की ऐठन के साथ कब्जियत तथा P A S द्वारा चिकित्सा काल मे वमनेच्छा तथा वमन को दूर करने के लिए यह आशुगुणकारी है।

रोग प्रति निदेशन-सब्जमोतिया (ग्लोकोमा), पाकाशय के मध्यभाग का अवरोध तथा पौरुषग्रन्थि के अत्यधिक वृद्धि मे इस औषधि का व्यवहार वर्जित है।

मात्रा-५ मि० ग्रा० टेबलेट तथा ड्राप्स १-२-५ मि ग्रा टेबलेट या १५-३० बूद दवा चार बार प्रतिदिन। पैप्टिक अल्सर के मरीजो को भोजन से आधा घण्टा पहले तथा अन्तिम खुराक सोने से पूर्व लेने की सलाह दे। इसकी मात्रा आवश्यकतानुसार बढाई जा सकती है।

एन्ट्रेनिल ड्रॉप्स उन बच्चो एव शिशुओ मे सेवनीय है जो उदरशूल, पाकाशय के मध्यभाग का शूल शिशुओ को कै तथा अतिसार इत्यादि से पीडित हैं। यह सम्बन्धित रोगो की दूसरी दवाओ के साथ भी दिए जा सकते है।

शिशुओ एव बच्चो की मात्रा-

१ वर्ष से नीचे के शिशुओ मे-१-२ बूद, १-३ बार प्रतिदिन।

१-२ वर्ष तक-४ बूद, १-३ बार प्रतिदिन।

२-६ वर्ष तक-५-८ बूद, १-३ बार प्रतिदिन।

६-१२ वर्ष तक-८-१५ बूद १-३ बार प्रति दिन।

(३) **मैग्मासिल** (Magmasil)-प्रसिद्ध पेय विस्मोजाइम के निर्माता ईस्टर्न ड्रग क० ही इसे टेबलेट के रूप मे तैयार करती है।

रोग निर्देशन-अम्लपित्त, आमाशय शोथ, प्रपाचीय व्रण, जीर्ण आमाशयिक अन्त्र प्रदाह एव अन्त्रशोथ मे विशेष गुणकारी सिद्ध हुआ है।

मात्रा-१-२ टेबलेट २-४ बार।

( ) *अमिनोजाइम (Aminozyme Liquid)*-पेय के रूप मे इसका निर्माण स्टैडमेड (Stadmed) क० द्वारा किया जाता है।

रोगाधिकार-इस पेय का सेवन आन्त्रिक ज्वर एव दूसरे सक्रामक रोगो से उत्पन्न प्रोटीन की कमी एव उससे उत्पन्न रोगो मे प्रपाचीय व्रण सक्रमणयुक्त यकृत् प्रदाह, लिवर सिरहोसिस, अजीर्ण या अग्निमाद्य, रक्त की कमी एव ऑपरेशन से पूर्व या बाद की तेयारी मे, किया जाता है।

मात्रा-१० से २० मि० ली० (२-४ पूरा चाय चम्मच) पानी के साथ दो बार प्रतिदिन या चिकित्सक की राय से, बच्चो को-वयानुसार।

(५) एल्युसिनोल टेबलेट (Alucinol tab)-फ्रैन्को इण्डियन फार्मा क० द्वारा निर्मित।

रोग निर्देशन-अम्लाधिक्य, आमाशय शोथ, प्रपाचीय व्रण, आम्लिक अग्निमाद्य तथा पैरो का तनाव या सिकुडना-गर्भवती स्त्रियो मे दिया जाने वाला एक प्रमुख पेटेण्ट एलोपैथिक है।

मात्रा-२-२ टिकिया एक दिन की मात्रा।

(६) डाइजिन जेल एव डाइजिन टेबलेट (Digene Gel & Digene tabs)-सुप्रसिद्ध औषधि बूट्स क० ने इसे पेय तथा टेबलेट के रूप मे तैयार किया है।

रोग निर्देशन-प्रपाचीय व्रणो, अन्ननली प्रदाह, हायटस हार्निया, गर्भवतियो का हृदय-जलन, शराब के पीने एव भावनात्क तनाव जो अम्लाधिक्य स्थिति मे होते है, को दूर करती है। यह पेट फूलने मेभी उपयोगी है।

मात्रा-डायजिन जेल-१-२ चम्मच प्रत्येक ४ घण्टे पर एव सोते समय।

टेबलेट-१-२ टेबलेट ४ घण्टे पर एव रात्रि को सोते समय।

इनके अतिरिक्त इस रोग मे सेवनार्थ अन्य दवाओ के पूर्ण विवरण के लिए "अम्लपित्त", "आमाशय शोथ" एव "आन्त्रवृद्धि" इत्यादि भी देखे।

आमाशय कैंसर
(Stomach Cancer)

इस रोग के लिए अभी तक वैज्ञानिको ने कोई भी सफल दवा की खोज नही की है। इसलिये प्राय इसके लिए पेटेण्ट योगो की कमी ही है। इसकी सफल चिकित्सा ऑपरेशन द्वारा ही पूर्ण गैस्ट्रेक्टोमी या आशिक ऑपरेशन ही है। रेडियम शॉक भी दिए जाते है।

इस रोग मे विटामिन "ए" एव "डी" के योगो का व्यवहार कराया जाता हे जिससे बीमारी की सम्पूर्ण स्थिति मे सुधार या विकास होता है। ऐसे कुछ योग है-

(१) एरोविट (Arovit)-यह विटामिन "ए" है जो सुप्रसिद्ध औषधि निर्माता रोशे (Roche) द्वारा ड्राप्स, ड्रेगी (टेबलेट) तथा इन्जैक्शन के रूप मे तैयार किये जाते है।

रोग निर्देशन-पुरुष नपुसकता, प्रत्येक प्रकार के अर्बुद मे जनरल स्थिति को उन्नत करने के लिए, मासिक के पूर्व दर्द, योनि और गुदा की खुजली, प्रत्येक प्रकार के सक्रमण मे, नाक का सडना या गलना, अतिवृद्धि नासाप्रदाह, असहिष्णुता, आख को ढकने वाली झिल्ली का प्रदाह, कौर्नियल अल्सर, ऐक्नि वल्गैरिस इत्यादि के लिए व्यवहृत होने वाला पेटेण्ट योग है।

मात्रा-साधारण एव हल्के रोग मे -८-१५ बूद या १-२ टेबलेट २ बार घातक या गम्भीर रोगो मे-१५ बूद या २ टेबलेट २ बार चबाकर प्रतिदिन एव १-२ ऐम्पुल इञ्जेक्शन गहरे मासपेशी मे सप्ताह मे एक बार।

अर्बुद एव कैंसर मे-दूसरी दवाओ के साथ-१० बूद X ३ बार प्रतिदिन एव "रिडौक्सीन क्विकस्लोव" २-३ टेबलेट प्रतिदिन या १-२ ऐम्पुल "एरोविट" मासपेशी मे एव ४ एम्पुल "रिडोक्सोन" ५०० मि० ग्रा० शिरामार्ग द्वारा १ बार या सप्ताह मे अनेको बार।

इसके इञ्जेक्शन को गहरे नितम्ब मे देना चाहिए।

डुफार इन्टरफ्रान का एरैचिटोल इसी के समान गुणकारी है।

(२) रिडॉक्सोन रोशे (Redoxon Roche)-यह भी इञ्जैक्शन एव कई प्रकार के टेबलेट के रूप मे रोशे क० द्वारा तैयार किया जाता है।

रोग निर्देशन-"विटामिन सी'' की कमी तथा इससे उत्पन्न हुए रोगो मे, सक्रामक रोगो मे, सग्रहणी, गर्भवतियो के रोगो मे, स्तन्य काल मे, मसूढो से रक्त आना (Scurvy), दूसरे प्रकार के रक्तस्राव रोगो मे, देर से स्वास्थ्य लाभ करने मे।

एक प्रकार का टौनिक जो अर्बुद के जनरल कडीशन को उन्नत करती है।

मात्रा-१-२ टेवलेट (०-२ ग्राम), गम्भीर रोगो मे १-२ या अधिक क्विकस्लोव टेवलेट (५०० मि० ग्रा०) प्रतिदिन।

इञ्जैक्शन-हल्के रोगो मे १-२ ऐम्पुल (०-१ ग्राम) मासपेशी मे या शिरामार्ग द्वारा प्रतिदिन। घातक स्थिति मे-१-२ ऐम्पुल (०-५ ग्राम) मासपेशी मे या शिरामार्ग द्वारा या सप्ताह मे अनेको वार।

समानता-सेलिन (Celin)-ग्लैक्सो।

२ उदर्याकला के रोग-

उदर्याकला शोथ
(Peritonitis)

उन पेटेण्ट औषधियो का वर्ण दिया जा रहा है, जो इस रोग को दूर करने मे सफल सिद्ध हुए है।

(१) लिन्कोसिन कैपसूल (Lincocin Capsules)-यह कार्टर वालैस के द्वारा तैयार किया गया, कैपसूल है। यह सीरप तथा इञ्क्शन के रूप मे भी प्राप्य है।

रोग निर्देशन-दूसरे प्रकार के भूतघ्न (एन्टीवायोटिक) जैसे-पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन, इरथ्रोमाइसीन इत्यादि का व्यवहार जिन रोगो को दूर करने के लिए किया जाता है, इसका व्यवहार भी उन्हीं रोगो जैसे-नासागुहा शोथ, कण्ठ या गलकोष प्रदाह, तालुमूल ग्रन्थिशोथ (Tonsillitis) कान बहना, स्तन-प्रदाह, स्वर नली प्रदाह, वायुनली प्रदाह, वायु प्रणाली शोथ, फुफ्फुस प्रदाह, पूयात्मक फुफ्फुसावरण प्रदाह, पृष्ठार्बुद, अधस्त्वक् शोथ, हृदय अन्तरावरण प्रदाह, तीव्र एव पुराना अस्थिमज्जा शोथ, विषैला गर्भपात, सूतिका पूयदोष, शल्यकर्म सक्रमण, उदर्याकला शोथ, रक्तविषाक्तता इत्यादि पर किया जाता है।

इसके सीरप के प्रति ५ मि० ली० एव इञ्जेक्शन के २ मि० ली० के वायल मे क्रमश २५० मि० ग्रा० तथा ६०० मि० ग्रा० लिन्कोमाइसीन हाइड्रोक्लोराइड मोनोक्साइड होता है।

मात्रा	मुखद्वारा	मासपेशी मे	सिरामार्ग द्वारा
वयस्क, हल्की-हल्की रोगस्थिति मे	१ कैप० (५०० मि० ग्रा०) ३ बार	६०० मि० ग्रा० (२ मि० ली०) प्रत्येक २४ घण्टे पर	६०० मि० ग्रा० (२ मि० ली०) प्रत्येक ८-१२ घण्टे पर, २५० सी० सी० या अधिक
गम्भीर रोगो मे	१ कैप० (५०० मि० ग्रा०) ४ बार	६०० मि० ग्रा० (२ मि० ली०) प्रत्येक १२ घण्टे पर	ग्लूकोज या सेलाइन मे मिलाकर
वच्चो को हल्के रोगो मे	३० मि० ग्रा०/कि० ग्रा०/दिन मे ३-४ बराबर खुराको मे बाटकर	१० मि० ग्रा०/कि० ग्रा० प्रत्येक २४ घण्टे पर	१०-२० मि०ग्रा० / कि० ग्रा० प्रतिदिन २-३ खुराको मे बाटकर ८-१२ घण्टे के अन्तर पर उपरोक्त विधि से
गम्भीर स्थिति मे	६० मि० ग्रा० प्रति कि० ग्रा०/दिन यानी एक दिन की मात्रा ३-४ बराबर मात्रा मे बाटकर	१० मि० ग्रा०/कि० ग्रा० प्रत्येक १२ घण्टे पर	

इस रोग मे यदि एन्टीवायोटिक एव सल्फा ड्रग्स के व्यवहार से प्रदाह मे कमी आती नहीं मालूम पडे तो इसे शल्य चिकित्सा के लिए भेजना चाहिए।

इस रोग मे 'हृदय रो० ना० ए० पे० औ०'' लेख मे वर्णित सभी एन्टीवायोटिक्स एव सल्फाड्रग्स तथा एम्बीस्ट्रीन-एस (आन्त्रक्षय देखे), क्राइस्टापेल, स्ट्रेप्टोपेनिसिलीन-डाइक्रिस्टीसीन

एस, बेटनेसोल एव बेटनेसोल इञ्जेक्शन दिए जा सकते है। अत इन पेटेण्ट दवाओ का पूर्ण विवरण पाठको को मेरे दोनो लेखो मे देखना चाहिए।

जलोदर
(Ascities)

इस रोग के लिए प्रमुख पेटेण्ट एलोपैथिक औषधिया व्यवहृत होती है। असली "चिकित्सा'' के लिए कारणो को दूर करने की चिकित्सा करनी चाहिए।

इस रोग मे इसीडेक्स टेब०, नेबीड्रेक्स, मिल्लीकोर्टिन टेबलेट सिवा क० का, नियोनेक्लेक्स टेब० ग्लैक्सो का, नेफ्रिल फाइजर क० का, डायामोक्स टेब० लीडरले क० का, मरक्लोरन टेब० पार्क डेविस क० का, कैल्शियम डायुरेटीन टेब० नोल क० का, नेप्टाल टेब० तथा इञ्जै० एम० बी० क० का, डाई-एडेमिल साराभाई (स्क्यूब) क० का, नेफ्रोलन एम० बी० क० का इत्यादि इस रोग के लिये पेटेण्ट अद्वितीय औषधिया है। लैक्सिस इस रोग की अचूक दवा है।

पुनर्नोल टेबलेट (Punarnol tabs)-यह पेटेण्ट, आयुर्वेदिक, इञ्जैक्शन एव एलोपैथिक दवाओ के सुप्रसिद्ध निर्माता मार्तण्ड फार्मास्युटिकल्स बडौत की पेटेण्ट औषधि है।

गुण-यह पारद रहित मूत्रल योग है जो काफी दिनो तक प्रयोग मे लाया जा सकता है। यह सर्वांग शोथ एव जलोदर नाशक है।

उदर्याकला क्षय
(Peritonium Tuberculosis)

इस रोग के लिए पाठको को आन्त्र के रोग "आन्त्र क्षय'' देखने का कष्ट करे। क्योकि इस रोग के लिए भी वही दवाये इस्तेमाल की जाती है जो "आन्त्रक्षय'' के लिए है। अन्य पेटेण्ट औषधिया हृदय फुफ्फुस रोगोपखण्ड मे देखे। "यक्ष्मा'' की दवाए भी इन दोनो के लिए दी जाती है। हमने विषय को, लेख के विस्तृत होने के भय से विस्तार नही किया है, अत अब बाठको से क्षमा चाहता हू।

३ यकृत् प्लीहा के रोग-

यकृद्दाल्यौदर
(Cirrhosis of liver)

यकृत् की इस जटिल और प्रमुख बीमारी को दूर करने वाली प्रमुख पेटेण्ट दवाओ के नाम एव उनके विवरण दिये जा रहे है-

(१) रिपासोन (Ripason)-यह टेबलेट तथा इञ्जेक्शन दोनो रूपो मे प्राप्त है। यह टी० टी० कृष्णामाचारी एण्ड क० के सौजन्य से ओरियण्ट फार्मा द्वारा तैयार किया जाता है।

गुण-यकृद्दाल्युदर जिसके साथ जलोदर नहीं हो तथा जलोदर के साथ-साथ सिरहोसिस ऑफ लीवर, पुराना यकृत् शोथ, यकृत् शोथ मे तीव्रता के बाद, पित्त की नली की बीमारी मे यकृत् फटना, यकृत वृद्धि, कामला एव यकृत् शोथ के बाद देर से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने मे यह अद्वितीय दवा है। इस दवा से मूत्र भी खुलासा आता है तथा यकृत् की क्रिया को बढाकर भूख तथा शरीर का बजन भी बढाता है।

मात्रा एव सेवन-विधि-टेबलेट-१-२ टेबलेट ×३ बार प्रतिदिन ३-४ सप्ताह तक।

इञ्जेक्शन चिकित्सा-सर्वप्रथम सहनशीलता की जाच के लिये पहले दो इञ्जेक्शन १ मि० ली० की मात्रा मे गहरे नितम्ब प्रदेश मे देना चाहिए। तत्पचात् यदि कोई कुप्रभाव नजर नहीं आवे तब २-४ मि० ली० मासपेशी मे शिरामार्ग द्वारा धीरे-धीरे बिना कोई घोलक मिलाये ही देना चाहिए।

यदि टेबलेट तथा इञ्जेक्शन दोनो एक साथ दिये जाये तो बिना कोई पाश्र्व प्रभाव के अच्छा फल प्राप्त होता है।

(२) मिक कैपसूल (Mic capsul)-इस सुप्रसिद्ध दवा को एलेम्बिक (Alembic) क० ने तैयार किया है।

गुण-यकृत् की गडबडी जैसे-सिरहोसिस ऑफ लीवर, हड्डियो का मुर्दा हो जाना, यकृत् शोथ धमनी जठरता इत्यादि मे यह अपूर्व गुणकारी सिद्ध हुआ है।

मात्रा एव व्यवहार-विधि-१ से २ कैपसूल ×३ बार प्रतिदिन चिकित्सकीय परामर्शानुसार।

(३) नियो-मेथिडीन (Neo-Methidin)-यह नियो-मेथिडीन सीरप, इञ्जेक्शन के लिये ऐम्पुल्स (Ampoules) एव नियो-मेथिडीन फोर्ट (Forte) एम्पुल तथा टेबलेट के रूप मे नियो फार्मा (Neo pharma) द्वारा तैयार किया जाता है।

गुण-यकृत् अस्थियो का मुर्दा हो जाना, मेदस्वी यकृत् के छानने की क्रिया का रुक जाना, सिरहोसिस ऑफ लीवर

सक्रामक यकृत् शोथ, यकृत् वृद्धि, कामला, जहरीला यकृत् क्षत, वडी आत के कुछ हिस्सो के घाव युक्त प्रदाह मे यह दवा अपूर्व गुणकारी सिद्ध हुई है।

मात्रा एव सेवन-विधि-नियोमेथिडीन सीरप २-चम्मच दवा दिन मे दो वार तथा बच्चो को आवश्यकतानुसार उनकी उम्र को ध्यान मे रखते हुए पानी या किसी दूसरे पेय पदार्थ के साथ मिलाकर देना चाहिए।

नियोमेथिडीन ऐम्पुल्स-एक ऐम्पुल्स धीरे-धीरे शिरामार्ग द्वारा देना चाहिए। इसे ग्लूकोज के साथ या बूदपात की विधि द्वारा भी दे सकते है।

नियोमेथिडीन फोर्ट ऐम्पुल्स-२-३ ऐम्पुल्स प्रतिदिन मासपेशीगत दिया जाता है। बच्चो के लिए उनकी उम्र को ध्यान मे रखकर मात्रा निर्धारित करनी चाहिए।

यदि शिरामार्ग द्वारा देने की आवश्यकता आ जाये तो इसे २०-२४ एम०एल० ग्लूकोज के साथ मिलाकर देना चाहिए।

नियोमेथिडीन टेवलेट-२-४ टेबलेट ३ से ४ बार प्रतिदिन या चिकित्सक के आदेशानुसार। बच्चो को उनकी उम्र के अनुसार ही देना चाहिए।

"वाइथ" क० का मियोनाइन (Meonine) टेबलेट इसी के समान है।

सावधानी-घातक यकृत् विस्फोट मे मुख द्वारा अधिक मात्रा मे इसे नहीं देना चाहिए।

(४) डेल्फिकोल (Delphicol)-इसे सीरप के रूप मे सुप्रसिद्ध दवा निर्माता लीडरले ने तैयार किया है।

रोग निर्देश-यह यकृत् के विभिन्न विकारो मे यथा-सिरहोसिस, यकृत् वृद्धि तथा उन यकृत् रोगो मे जहा यकृत् के कोषो मे बसा (Cat) अस्वाभाविक परिणाम मे बढ जाती है, मे आश्चर्यजनक लाभ दिखलाता है।

मात्रा-३ चम्मच ×३ बार भोजनोपरान्त।

पूर्व सावधानी-इसके सेवन से एलर्जिक रियेक्शन हो सकते है, जो ध्यान रखने की बात है।

इसके अलावा इस रोग मे सीवा (Ciba) क० का ऐसीड्रेक्स टेबलेट, नेबीड्रेक्स, मिल्लीकोर्टिन, ग्लैक्सो क० का बेटनेलन, बेटनेसोल डूफार इण्टरफ्रान क० का बिकोफ्राल पूर्ण प्रशसित दवा है, जिसका पूर्ण विवरण आप हृदयरोग नाशक प्रमुख पेटेण्ट एलोपैथि औषधिया लेख मे देख सकते है।

इसके अतिरिक्त इस रोग मे अमिनोजाइम पेय, सौरवीलीन पेय, टोनोलीवर इत्यादि भी सेवनीय है। इस रोग के लिये अन्य दवाओ का वर्णन इस लेख मे भी अन्यत्र देखे।

यकृत् विद्रधि
(Liver abscess)

इस विकार को दूर करने वाली कुछ प्रमुख दवाए ये है।

(१) रिसोट्रेन कम्पोजिटम टेबलेट (Tesotren compositum tablets)-इस दवा का निर्माण बेयर क० ने किया है।

रोग निर्देश-यह तीव्र तथा पुराने अमीबिक अतिसार, सिस्ट पैसर्स के साथ बिना अतिसार के आतो का अमीवियासिस, रक्तयुक्त यकृत् प्रदाह, यकृत् विद्रधि, पल्मोनरी अमिवियासिस आदि के लिये व्यवहृत होने वाली यह सर्वोत्तम दवा है।

मात्रा-

आयु वर्ग	**A** साधारण स्थिति मे	**B** घातक स्थिति मे
वयस्क एव १५ वर्ष से ऊपर के बच्चो मे लिये	१ टेबलेट ×३ बार	२ टेबलेट ×३ बार
१०-१५ वर्ष के बच्चो के लिये	१ टेबलेट ×२ बार	२ टेबलेट ×२ बार
५-१० वर्ष के बच्चो के लिए	१/२ टेबलेट ×२ बार	१ टेबलेट ×३ बार
२-५ वर्ष के बच्चो के लिये	१/२ टेबलेट ×२ बार	१ टेबलेट ×२ बार

साधारण स्थिति मे टेबुल A की मात्रा ६ दिनो तक एव घातक स्थिमि मे टेबुल B की मात्रा अधिक से अधिक ४ दिनो तक देकर टेबुल B की मात्रा को आधा करके ६ दिनो तक देनी चाहिए।

इ॰ यक्ष्मा, घातक हृदय अपर्याप्तता तथा आयोडीन असहनशील के मरीजो को नहीं देना चाहिए।

नोट-इस टेबलेट को हल्के भोजन या नाश्ते के पश्चात् ही लेना चाहिए, खाली पेट मे कदापि नहीं।

(२) डिहाइड्रोएमेटिन (Dehydroemetine)-यह इञ्जेक्शन एव टेबलेट के रूप मे रोशे कम्पनी का बना आता है। टेबलेट का निर्माण कम्पनी ने तुरत ही करना शुरू किया है।

रोग निर्देश-प्रत्येक प्रकार के नये, तीव्र तथा पुराने रक्तयुक्त आन्त्र-प्रदाह, पेचिश, हिप्टीक अमीवियासिस, यकृत् विद्रधि, यकृत् तथा फेफडे की श्लैष्मिक झिल्ली का स्राव इत्यादि के लिए इस दवा का व्यवहार आधुनिक चिकित्सको द्वारा सफलतापूर्वक कराया जाता है।

मात्रा एव व्यवहार-विधि-साधारण स्थिति मे १-२ टेबलेट ३ बार तक दी जाती है। रोग के प्रथम चरण मे सिर्फ १-१ टेबलेट ३ बार देना ही पर्याप्त होता है।

(३) रिसोचीन (Risochin)-बेयर (Bayer) कम्पनी द्वारा निर्मित यह बाजारो मे टेबलेट एव इञ्जेक्शन के रूप मे प्राप्य है।

रोग निर्देश-मलेरिया की रोकथाम एव चिकित्सा के लिये आन्त्र के अमिवियासिस, यकृत् विद्रधि तथा फेफडे एव यकृत् की श्लैष्मिक झिल्ली का स्राव, लिचेन प्लैनस, पुराना ल्यूपस एरिथिमेटोसिस, ऐक्ने रोजेसिया, सन्धिशोथ पुराना तथा रक्तयुक्त यकृत् प्रदाह (घातक)।

मात्रा एव सेवन-विधि-

टेबलेट-१ टेबलेट ×३ या २ बार प्रतिदिन १-३ माह तक। बडे बच्चे को १/२ से २/३ भाग तथा उससे छोटे बच्चे को १/४-१/३ भाग वयस्क की खुराक को बाटकर दे।

समानता-सिपला (Cipla) क० का सिपलाक्वीन टेबलेट तथा इञ्जेक्शन, एम० बी० (M & B) क० का नीवाक्वीन खाने की टिकिया एव सूचीवेध के रूप मे, इम्पेरियल केमीकल इण्डस्ट्रीज क० का एव्लोक्लोर टेब० एव इञ्जेक्शन के रूप मे।

यकृत्-वृद्धि
(Liver enlargment)

इस रोग को दूर करने के लिए आधुनिक चिकित्सा मे जो प्रमुख दवाए है यहा हम उन्हीं का जिक्र कर रहे है।

(१) सायोमेथियोनिन टेबलेट (Siomethoionine tab)-इस दवा का निर्माण एल्वर्ट डेविड लि० क० द्वारा टेब० के रूप मे किया जाता है।

गुण-यकृत् अपर्याप्तता एव उनके विकार जैसे-यकृत् का बढना, यकृत् का सिरहोसिस, बहुव्यापी यकृत् शोथ, मेदी यकृत्, यकृत् का पीलापन लिये तीव्र क्षीणता, इत्यादि के लिये यह एक अच्छी दवा है।

मात्रा-२-४ टेब०×२ बार भोजन या नाश्ता के उपरान्त।

(२) लिव्यूल्स विद फोलिक एसिड एव बी १२ (Livules whith Folic Acid & B_{12} Capsuls)-इसे प्रसिद्ध दवा कम्पनी एलेम्बिक (Alembie) ने कैपसूल के रूप मे तैयार किया है।

मात्रा-१ से २ कैपसूल ×३ बार भोजन के बाद। आवश्यकतानुसार चिकित्सक के परामर्शानुसार इसकी मात्रा को बढाया जा सकता है।

(३) लिवरजिन (Livergen Elixir)-यह पेय के रूप मे स्टैण्डर्ड फार्मा क० द्वारा निर्मित है।

गुणाधिकार-यकृत् के विकार जैसे वृद्धि, रक्ताधिक्य यकृत्, अजीर्ण, पित्त प्रकोप स्वाभाविक कब्जियत तथा अफारा (Flatulent) इत्यादि के लिये सुप्रसिद्ध दवा है।

मात्रा-१-३ चम्मच दवा ×३ बार भोजन के बाद। बच्चो को उनकी आयु के अनुसार।

(४) लिवोजिन (Livogin Elixir)-स्वादिष्ट एव सुगन्धित पेय (Syrup) के रूप मे यह बी० डी० एच० (B D H) के द्वारा तैयार किया जाता है।

गुण-यकृत् के विकारो को ठीक करके यह शरीर मे स्फूर्ति, ताकत, रक्त पैदा करता है। पुरानी बीमारियो से ग्रस्त होने के

बाद शरीर को जल्द से जल्द स्वास्थ्य लाभ पहुचाने मे अग्रसर है।

मात्रा-एक से दो चम्मच ×२-३ बार खाना खाने के बाद दे।

(५) सायोमेथिओनिन फोर्ट (Siomethionine Forte)-इसका निर्माण भी एल्बर्ट डेविड (Albert David) क० द्वारा ही सीरप के रूप मे होता है।

गुणाधिकार-यकृत् का बढना, शिशुओ के यकृत् रोग, सिरहोसिस ऑफ लीवर, सक्रामक एव जहरीला यकृत् शोथ, यकृत् क्षीणता, बार्बीट्युरेट एव सल्फोनामाइड एव सखिया के अधिक मात्रा के दुष्प्रयोग स्वरूप दुष्परिणामो, मदात्यय, जलने मे एव रक्ताभाव, गर्भावस्था की रक्त विषाक्तता इत्यादि मे प्रयोग करने योग्य यह एक सफल एलोपैथिक पेटेण्ट औषधि है।

(६) नियो हिपाटक्स (Neo Hepatex Inj)-सुप्रसिद्ध औषधि निर्माता बायोलोजिकल इवैन्स क० द्वारा तैयार किया गया इञ्जेक्शन है।

गुणाधिकार-विभिन्न प्रकार के रक्ताभाव तथा यकृत् के विकारो यकृत् का बढना, सिरहोसिस इत्यादि के लिए प्रशसित है।

मात्रा-२ एम० एल० एक दिन बीच देकर २ सप्ताह तक। बाद मे २ एम० एल० सप्ताह मे २ बार ४ सप्ताह तक फिर सप्ताह मे एक बार २ एम० एल० २ महीनो तक मासापेशी मे या शिरामार्ग द्वारा दे सकते है।

यकृत्-शोथ
(Hepatitis)

इस रोग के लिए कुछ प्रमुख कम्पनियो के दवाओ की विस्तृत जानकारी दी जा रही है-

(१) लिट्रिसोन टेबलेट (Litrison Tabs)-इसके निर्माणकर्त्ता है सुप्रसिद्ध औषधि निर्माता-रोशे जो इसे टेबलेट के रूप मे तैयार करते है।

गुणाधिकार-यकृत् के नए तथा पुराने रोगो जैसे-यकृत् का बढना, कामला, यकृत्-विकार, जो जटिल उपसर्ग के अनेको प्रकार के सक्रमणो के साथ हो जैसे-अमिवियासिस, कालाजार, मलेरिया, सिफलिस, श्वेतातिसार-सग्रहणी तथा आन्त्रिक ज्वर इत्यादि, मदात्यय से तथा क्लोरप्रोमाजिन, स्वर्ण लवण, पारा इत्यादि के दुष्प्रयोग से उत्पन्न यकृत् रोगो, गर्भावस्था की रक्त विषाक्तता के लिए यह विशेष उपयोगी है।

मात्रा-२-३ सुगर कोटिड टेबलेट ×३ बार प्रतिदिन नाश्ता या भोजन के समय।

(२) स्टोवर्सोल टेबलेट (Stovarsol tab)-इसका निर्माण सुप्रसिद्ध दवा निर्माता एम० बी० क० द्वारा होता है। इस दवा का व्यवहार यकृत्-शोथ, अमिवियासिस, लिचेन प्लैनस, तथा बढे हुए इसोनोफीलिया के लिए किया जाता है।

मात्रा एव व्यवहार विधि-इस टेबलेट को मुख द्वारा सेवन कराया जाता है। वयस्को के लिए इसकी औसत मात्रा-१ टेबलेट रात को एव १ टेबलेट सुबह नाश्ता या भोजन के बाद पानी के साथ निगल जाना चाहिए। या पानी मे घोलकर पी लेना चाहिए। यह चिकित्सा सात-दस दिनो तक चलानी चाहिए।

पार्श्व प्रभाव (Side effects)-इसके सेवन-काल मे सिर दर्द अरुणिमा (Erythema) व अतिसार भी उत्पन्न हो सकते है।

(३) कौम्पेबा टेबलेट (Compeba tab)-यह इण्डियन ड्रग्स एन्ड फार्मा, लेवो० कम्पनी द्वारा तैयार की जाती है।

गुणाधिकार-यह यकृत् विद्रधि, अमीविक पेचिश, पुराना अमीविक यकृत्शोथ, आतो के अमिबियासिस, गियाराडिपसिस, मसूढे का घावयुक्त सक्रमण तथा ट्राइकोमोनस बैजाहइनैलिस इन्फेक्शन्स जैसे श्वेत प्रदर, प्रमेह इत्यादि, ट्राइकोमोनियासिस तथा सिमटमलेस सिस्ट पैपर्स मे बहुत ही फायदेमन्द दवा है।

यकृत् के रोगो के लिए मात्रा-२ टेबलेट×३ बार प्रतिदिन वयस्को के लिए। ६-१० वर्ष के बच्चो को-१ टेबलेट ×३ बार प्रतिदिन ३-६ वर्ष के बच्चो के लिए-आधा टेबलेट ×४ बार प्रतिदिन तथा १-३ वर्ष के बच्चो को आधा टेबलेट ×३ बार प्रतिदन। यह चिकित्सा ५-१० दिन तक के लिए पर्याप्त होती है।

पार्श्व प्रभाव-इसके पार्श्व प्रभाव कभी-कभी साधारणतया हल्के रूप मे उत्पन्न हो सकते है, इनमे मुख्य है-मुह का स्वाद बिगड जाना, वमनेच्छा, जठरान्त्र की हल्की सी गडबडी, सिरदर्द, कै, चमडे की खराश, हल्के रक्त की कमी।

रक्त की कमी वाले को तथा गर्भ के पहले तीन महीनो मे पूर्ण सावधानी के साथ देनी चाहिए।

समानता-एम० बी० क० का फ्लेजिल, खण्डेलवाल लेवो क० का एमीवन, एरिस्टोफार्मा का एरिस्टोजिल, यूफार्मा लेवो० क० का एलर्जिल लेवो० का मेट्रोन तथा मेट्रोन फोर्ट टेबलेट।

र॰ प के लिए मात्रा-३ चम्मच ×३ बार वयस्को के लिए ५-१० दिन तक बच्चो को-

१ वर्ष-आधा चम्मच × दो बार।

१-४ वर्ष - १ चम्मच × दो बार।

४-८ वर्ष-१ चम्मच × तीन बार।

८-१२ वर्ष-२ चम्मच × २ बार।

(४) मेथियोजोल (Methozol Syrup)-सीरप (पेय) के रूप मे इसको यूनीवर्सल ड्रग हाउस (U D H) कम्पनी ने तैयार किया है।

गुणाधिकार-प्रत्येक प्रकार के श्लैष्मिककला प्रदाह एव रक्ताधिक्यजन्य यकृत् एव पित्तकोष की गडबडी स्वाभाविक कब्जियत, भूख की कमी, अजीर्ण तथा अग्निमाद्य, यकृत्-शोथ, पेट फूलना, सिरहोसिस ऑफ लीवर, पित्त प्रकोप, शिशुओ की यकृत्-क्रिया की गडबडी, जहा यकृत् अपना काम ठीक नहीं कर रहा है, मे यह बहुत ही लाभदायक औषधि है।

मात्रा-

वयस्क-५-१५ मि० लि० (१-३ चम्मच) थोडे से पानी मे घोलकर ×२ बार प्रतिदिन भोजन से पहले। बच्चो को २०-५० बूद दवा पानी के साथ २ बार। शिशुओ को १०-२० बूद दवा पानी या दूध के साथ प्रतिदिन २ बार या चिकित्सक के परामर्शनुसार।

इसके अलावा प्रदाह या सूजन दूर करने के लिए एन्टीवायोटिक्स (Antibiotics) दवाओ का भी प्रयोग नितान्त आवश्यक है। इसके लिए, टेट्रासाइक्लीन, टेरामाइसीन, लीडरमाइसीन, सुवामाइसीन, एम्पीसीलिन-एल्वरसीलीन (Albercillin), ऐम्पीसिन, डौक्सीसाइक्लीन रैपीडौक्सीन, विवोसाइक्लीन (Vivocycline), इराथ्रोमाइसीन अल्थ्रोसीन, थ्रोमाइसीन, इटरोसीन, रोभामाइसीन कैप० तथा लिन्कोसीन आदि का प्रयोग करना चाहिए।

प्लीहा, तिल्ली वृद्धि
(Spleen enlargment)

कुछ प्रमुख दवाओ के विवरण जो विशेष प्रशसनीय हैं, दिये जा रहे है।

(१) क्वीनो-प्लाजमोल स्ट्रौंग (Quino-Plasmol Strong)-इसका निर्माण लिक्विड (पेय) के रूप मे यूनीवर्सल ड्रग हाउस (U D H) के द्वारा होता है।

गुणाधिकार-मलेरिया की सभी अवस्थाओ मे (तीव्र तथा जीर्ण) विशेषकर जीर्ण पुनरावर्तक एव प्लीहावृद्धि तथा यकृत्-वृद्धि एव रक्ताभाव को दूर करने के लिये यह विशेष प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है।

मात्रा-वयस्क की १० मि० ली० (२ चम्मच) पानी के साथ २ या ३ बार, एक दिन की खुराक भोजन के बाद।

विराम के लिए-५-१० मि० ली० (१-२ चम्मच) पानी के साथ भोजन के बाद × दो बार पूरा ठीक होने तक दे।

१२ वर्ष से नीचे के बच्चो को वयस्क की एक चौथाई से आधी मात्रा तक दे।

(२) माल्ट-ईस्टन (Malt-Easton)-सुविख्यात औषधि निर्माता बगाल इम्युनिटी-बी०आई० ने इसे पेय के रूप मे तैयार किया है।

रोग निर्देश (Indication)-मलेरिया, इन्फ्लूएन्जा, स्नायुओ की कमजोरी के बाद देर से स्वास्थ्य लाभ करने तथा प्लीहा एव यकृत् बढने मे देने योग्य उच्च श्रेणी का टॉनिक है।

मात्रा-आधा से १ टेबल चम्मच भर (६।। मि० ली०-१५ मि० ली०) थोडे से पानी मे घोलकर भोजन के बाद ×३ बार प्रतिदिन।

(३) पाइरेक्स (Pyrex Liquid)-बगाल केमिकल वर्क्स (Bengal cemical words) द्वारा निर्मित पेय है।

गुणाधिकार-मलेरिया तथा प्लीहा-वृद्धि मे उपयोगी है।

मात्रा-१० मि० ली० (२ चम्मच) पानी के साथ × ३ बार प्रतिदिन कुछ खाने के बाद देना चाहिए। बच्चो को उनकी वयानुसार।

(४) क्विनो हेमोजिन (Qwino Haemogen)-इसका निर्माण भी पेय के रूप मे बगाल इम्युनिटी (B I) द्वारा होता है।

गुण-मलेरिया एव उससे उत्पन्न प्लीहा-वृद्धि के लिये परम गुणकारी है।

मात्रा-१०-१५ मि० ली० पानी या अन्य किसी पेय के साथ घोलकर ३ बार, ३-६ दिनो तक दे। अवस्थानुसार इसका सेवन-काल बढाया भी जा सकता है और रोग के समूल नष्ट होने तक दिया जा सकता है। बच्चो को न० १ मे वर्णित मात्रानुसार ही दे।

पित्ताशय शोथ (Cholecystitis)

प्रस्तुत रोग के निराकरण के लिए जिन मुख्य कम्पनियो की दवाओ की आधुनिक चिकित्सा के धुरन्धर विद्वानो ने सराहना की है, उनकी प्रशसा की है। उन्हीं दवाओ का जिक्र हम आगे कर रहे है।

(१) कौम्बीजाइम (Combizym tab.)-इस टेबलेट का निर्माण निओ फार्मा (Neo pharma) क० द्वारा किया जाता है।

रोग निर्देश (Indication)-यह आशिक गैस्ट्रेक्टोमी या गैस्ट्रो-जेज्युनोसटोमी के ऑपरेशन के बाद, सभी प्रकार के अजीर्ण या अग्निमाद्य, जठरान्त्र शोथ, बच्चो के अतीसार मे, अधिक खाने की आदत, यकृत्-शोथ एव पित्ताशय-शोथ इत्यादि के लिये व्यवहृत होने वाला एक सफल एलोपैथिक पेटेण्ट दवा है।

मात्रा-वयस्क एव बच्चे को १-२ टेबलेट प्रतिदिन भोजन के साथ चूसना है। इसकी मात्रा आवश्यकतानुसार बढा भी सकते है।

समानता-बोहरिगर नोल क० का डिस्पेप्टल इसी के समान है।

(२) फेलामिन टेबलेट (Felamin tabs)-अपूर्व प्रसिद्धि प्राप्त दवा निर्माता सैण्डोज क० ने इसे शुगर कोटिड टेबलेट का रूप दिया है।

गुणाधिकार-पित्त की गडबडी के कारण पाचन-क्रिया की खराबी जैसे-भूख न लगना, डकारे आना, अफारा, गर्भावस्था मे यकृत्-पित्त की गडबडी। आन्त्रिक ज्वर, पेचिश, शैत्य एव सक्रामक पाण्डु रोग, पित्ताशय-शोथ तथा ब्रोमिथोल, शराब एव क्लोरप्रोमाजिन के सेवन से हुये पाण्डु रोग के लिये शीघ्र लाभकारी टेबलेट है।

मात्रा-१-३ टेबलेट ३ बार प्रतिदिन नाश्ता या भोजन के बाद ३-४ सप्ताह तक दे। एक महीने तक दवा बन्द कर, फिर दुबारा इतने ही दिनो तक सेवन कराया जा सकता है।

(३) हिपासल्फोल टेबलेट (Hepasulfol tabs)-यकृत् एव पित्ताशय की क्रिया को नियमित रूप से ठीक करने वाली इस टेबलेट का निर्माण, फ्रैन्को-इण्डियन फार्मा ने किया है।

गुण-यह यकृत् एव पित्ताशय की बहुव्यापक क्रियाओ को उन्नत करता है। यकृत् की विक्रियाओ-अजीर्ण, भूख का न लगना तथा कब्जियत।

यकृत्-प्रदाह के बाद यकृत् को अपने सही स्थान एव सही अवस्था मे लाने के लिये।

पित्ताशय शोथ (Cholecystitis)-मूत्र ग्रन्थि (किडनी) की पथरी के साथ एव बिना पथरी के (Lithiasic & non-lithiasic) तथा मूत्र मे शकर आना (Diabetes Mellitus) मे सेवनीय यह एक गुणकारी पेटेण्ट औषधि है।

मात्रा एव सेवन-विधि-४-६ टेबलेट प्रतिदिन, २ टेबलेट एक साथ प्रत्येक भोजन के १५ मिनट पहले। बच्चो को वयानुसार।

(४) डिहाइड्रोकोलिन (Dehydrocholin tab & Injection)-इञ्जेक्शन एव टेबलेट के रूप मे इसका निर्माण बगाल इम्युनिटी (B I) क० ने किया है।

गुणाधिकार-यकृत् एव पित्ताशय के विकार, पित्ताशय के शोथ एव पित्ताश्मरी के लिये सुप्रसिद्ध दवा है।

मात्रा-१-३ टेबलेट ×३ बार प्रतिदिन भोजन के बाद।

इञ्जेक्शन-५ मि० लि० से १० मि० ली० आवश्यकतानुसार शिरामार्ग द्वारा या मासपेशी द्वारा प्रतिदिन या एक दिन बीच देकर।

इसके अलावा इस रोग मे एण्टीबायोटिक्स कैपसूल तथा इञ्जेक्शन एव टेबलेट जिनका विवरण आगे किया जा चुका है, आवश्यकतानुसार देना चाहिए।

पित्ताश्मारी
(Gall Stone)

यो तो यह सर्जीकल रोग है, यानी शल्यतन्त्र द्वारा ही ठीक किया जाता है, फिर भी इनमे सेवनीय कुछ दवाओ की जानकारी दे रहे है।

(१) **बाइकोलेटस टेब०**-यह मार्टीन हैरिस क० द्वारा तैयार किया गया टेबलेट है।

गुण-इसके सेवन से पित्ताशय की सफाई तथा स्थौल्य चिकित्सा सम्पन्न की जाती है। इससे पित्त का स्राव होकर अवरोध घटने लगता है। इससे यह पित्ताश्मरी (Gall Stone) मे सेवनीय है तथा यह कब्जियत (Constipation) की परम विश्वसनीय दवा है।

मात्रा-१-२ टेबलेट × दिन मे २ या ३ बार।

(२) **डेसीकोल कैपसूल** (Desicol Capsule)-इस कैपसूल का निर्माण पार्क डेविस (Parke Davis) क० द्वारा होता है।

गुणाधिकार-विभिन्न कारणो से उत्पन्न हुए नए तथा पुराने पित्तकोष के रोग जैसे-पित्ताश्मरी, पित्ताशय-शोथ। यह पित्त की गति को उत्तेजित करती है साथ ही भूख की कमी, अजीर्ण, आतो की पचन एव कब्जियत के लिए सराहनीय दवा के रूप मे प्रसिद्ध है।

मात्रा-२ कैपसूल या अधिक, भोजन के बाद दे।

(३) **लिवोटोन** (Livotone Liquid)-तरल पेय के रूप मे इसे ईस्ट इन्डिया फार्मा० वर्क्स (Ease India Pharma Works) द्वारा तैयार किया जाता है।

गुणाधिकार-यकृत् की अपर्याप्तता, कामला, यकृत्-शोथ, क्षुधाभाव, पुराना कब्जियत, शिशुओ, बच्चो का लीवर, पित्तकोष की बीमारिया जैसे-पित्ताश्मरी एव पित्ताशय शोथ, बवासीर।

मात्रा-वयस्क ५-१० मि० ली०।

वच्चे-१-२ मि० ली० २ बार भोजन के बाद।

आन्त्र के रोग-

अतिसार (Diarrhoea)

इन सर्व विदित रोगनाशक कुछ महत्त्वपूर्ण एलोपैथिक पेटेण्ट दवाओ का जिक्र हम यहा कर रहे हैं, आशा है पाठको को मान्य होगा।

(१) **टायफोस्ट्रेप** (Typhostrep)-स्टैण्डर्ड फार्मास्युटिकल्स क० द्वारा यह २५० मि० ग्रा० के कैपसूल एव ड्राई सीरप के रूप मे तैयार किया जाता है।

रोग निर्देश (Indication)-अतिसार के जैसा आतो के सक्रमण, तीव्र एव पुराने एलीमेण्टरी (अन्नवाहक) ट्रैक्ट इन्फेक्शन, शिजेला के सक्रमण से उत्पन्न आमातिसार, क्षतयुक्त बृहदन्त्र प्रदाह, अमीविक डिसेन्ट्री मे दूसरे अमीवानाशक दवाओ के साथ पेट तथा गुदा के ऑपरेशन के पूर्व एव पश्चात्, पाखाना के बेक्टेरिया को काबू मे लाने के लिए, किसी भी काल से उत्पन्न अतिसार मे तथा आन्त्र-प्रदाह मे सफलता प्राप्त करने के लिए विश्वासपूर्वक सेवन कराया जा सकता है।

मात्रा-अतिसार के लिए, वयस्क-१-२ कैपसूल प्रत्येक ६-६ घण्टा पर। यह मात्रा ३-४ दिनो तक दी जा सकती है। या १२-१६ मि० ली० सस्पैन्शन ४ बार दे।

बच्चो को-४-८ मि० ली० तथा शिशुओ को ४ मि० ली० इस मात्रा को ६-६ घण्टा पर दुहराते रहे।

सावधानी-इसके सेवन से रक्ताभाव, वमनेच्छा, वमन, मुहपाक इत्यादि हो सकते है।

समानता-पार्क डेविस-क्लौरोस्ट्रेप, डेज-इन्टेरोस्ट्रेप, बोहरिगर नोल-स्ट्रेप्टोपाराक्सीन, यूफामी-लिमोस्ट्रेप कैप० तथा सस्पेशन तथा ब्रिटिश फार्मा० लेवो० बीपीस्ट्रेप कैप० सस्पेशन इत्यादि ये सभी उपरोक्त दवा के ही गुण रखते है।

रैली-फाइजन क० के रेओफीन कैपसूल उपरोक्त दवा के गुण से कुछ विशेष गुण रखते है जैसे-यह उपरोक्त लिखे गये रोगो मे जोरो का दर्द-खिचाव सा दर्द (Spasm) तथा ऐठन के दर्द को दूर करते है। ऐसा इसलिए होता है कि इसके घटक मे उनके घटक के अलावा प्रौपैन्थिलीन ब्रोमाइड मिला होता है।

(२) **सारिल टेबलेट** (Saril tabs)-यह टी० सी० एफ० (T C F) क० द्वारा तैयार किया जाता है।

गुणाधिकार-अतिसार, डिसेन्ट्री-अमीविक या वेसिलिरी, अन्तडी के ऑपरेशन के पूर्व एव पश्चात् तथा क्षतयुक्त बृहदन्त्र शोथ (Ulcerative Colitis) मे सेवनीय यह बहुत ही गुणकारी औषध है।

मात्रा-१-२ टेबलेट ३-४ बार, बच्चो को वयानुसार।

(३) डार्जीन कम नियोमाइसीन (Darzin C Neomycin)-टेबलेट तथा पाउडर के स्वरूप मे इसको केमो फार्मा लेवो० ने तैयार किया है।

गुण-सभी प्रकार के अतिसार एव वेसीलरी डिसेन्ट्री के लिए परम उपयोगी है।

मात्रा-टेबलेट वयस्क -२ टेबलेट ३ बार। बच्चा-१ टेवलेट २ बार।

(४) इन्ट्रोजाइम (Entrozyme Plain tabs)-यह स्टैंडमेड कम्पनी द्वारा तैयार की गई है।

गुण-अतिसार तीव्र एव पुराना, आमातिसार एव रक्तातिसार, गर्मी का अतिसार, बृहदन्त्र-शोथ, सग्रहणी (Sprue), अजीर्ण (Indigetion) एव आतो के अमीवियासिस के लिए यह आजकल हजारो-लाखो डाक्टरो द्वारा व्यवहृत कराया जाता है।

मात्रा-वयस्क १-२ टेबलेट २ बार प्रतिदिन पुराने रोग को दमनार्थ एव तीव्र रोग के लिए २ टेबलेट ३ बार भोजन के बाद १० दिनो तक दे। इस चिकित्सा को बीच मे ८ दिन तक बन्द रखने के बाद दुबारा शुरू किया जा सकता है। बच्चो को उनकी अवस्थानुसार दे।

(५) इन्टेस्टोपान टेब०, फोर्ट कैप० एव सस्पेन्शन (Intestopan tab, forte caps, Suspension)-यह तीन रूपो मे सैन्डोज कम्पनी द्वारा तैयार किया जाता है।

गुणाधिकार-अतिसार एव पेचिश, तीव्र या पुराना अमीविक डिसेन्ट्री, बेसिलरी डिसेन्ट्री, गायार डियासिस सक्रामक अतिसार, अन्त्र-प्रदाह एव जठरान्त्र-प्रदाह, बृहदन्त्र-प्रदाह इत्यादि के लिए मशहूर दवा है।

मात्रा-सामान्यतया-

वयस्क-२-४ टेबलेट ३ बार, बच्चे-१-३ टेबलेट ३ बार वयनानुसार।

तीव्र रोग मे-

वयस्क-४ टेबलेट ३ बार, बच्चे २-३ टेबलेट ३ बार चिकित्सक के आदेशानुसार।

कैपसूल की मात्रा-

तीव्र अतिसार मे २ कैपसूल ३ बार चिकित्सकीय जिम्मेदारी पर, फिर १ कैपसूल ३ बार।

सस्पेशन की मात्रा-२-३ चाय के चम्मच भर ३ बार बच्चो के आयु के अनुसार या डॉक्टर की जिम्मेबारी पर।

(६) ग्वानीमाइसीन सस्पेशन फोर्ट (Guanimycin Suspension Forte-इसे तरल पेय के रूप मे ग्लैक्सो (Galaxo) क० ने तैयार किया है।

गुणाधिकार-जठरान्त्र सक्रमण, बेसीलरी डिसेन्ट्री, जठरान्त्र प्रदाह, बच्चो का जठरान्त्र प्रदाह तथा अतिसार के लिए सर्वोपयोगी है।

मात्रा-शिशु-५ मि० ली० (१ चाय चम्मच के बराबर) प्रत्येक ४ घण्टे पर।

बच्चा-१०-१५ मि० लि० (२-३ चाय चम्मच) प्रत्येक ४-६ घण्टे पर दे।

समानता-डेज (Dey's) का स्ट्रेप्टोग्वीन सस्पेशन, जेओफेरी मैनर्स क० का रेनोकैव इसी के समान गुणकारी है।

(७) फ्यूरोक्सोन (Furoxone tabs & Suspension)-टेबलेट तथा पेय के रूप मे इस सफल पेटेण्ट महौषधि का निर्माण स्मिथ क्लीन ऐण्ड फ्रैन्को (S K.F) क० द्वारा किया जाता है।

रोग निर्देश (Indication)-बैक्टेरियल अन्त्र-प्रदाह, बेसिलरी डिसेन्ट्री एव असक्रामक अतिसार तथा इसके अलावा आन्त्रिक ज्वर जो साल्मोनेला टाईफाई या पाराटाइफाई ए द्वारा उत्पन्न हुए हो मे बडा अच्छा प्रभाव डालती है, साथ ही आधुनिक चिकित्सको को एक विश्वसनीय दवा के रूप मे मान्य है।

मात्रा-वयस्क-१०० मि० ग्रा० की टेबलेट ४ बार, ५ वर्ष से ऊपर के बच्चो को १/४ (चौथाई) टेबलेट ४ बार।

वयस्क-३ चम्मच (१५ मि० लि०) ४ बार प्रतिदिन, ५ वर्ष से ऊपर के बच्चो को १-१।। चम्मच ४ बार प्रतिदिन देना चाहिए।

(८) **पेक्टोकैब सस्पेशन** (Pectokab Suspension)-तरल पेय के रूप मे इसका निर्माण पाठको के पूर्व परिचित कम्पनी केमोफार्मा जो डार्जीन कम नियोमाइसीन बनाते है, के निर्माणशाला द्वारा ही होता है।

गुणाधिकार-प्रत्येक प्रकार का अतिसार, अजीर्ण, क्षतयुक्त आन्त्रप्रदाह, शिशुओ का अतिसार एव जठरान्त्र प्रदाह-तीव्र या पुराने को दूर करने के लिए व्यवहार मे लाया जाता है।

मात्रा-वयस्क-१-२ चाय चम्मच भर ३ बार या डॉक्टर के परामर्श से।

बच्चो को-आधी चम्मच ३ बार।

शिशु को-वयानुसार।

समानता-केओपेक्ट (Caopect)-कोप्रान तथा लिनोपैक (Linopac) ओरिएन्ट फार्मा के समान गुणकारी है।

(९) **मैक्साफॉर्म टेबलेट** (Mexaform tab)-सुप्रसिद्ध दवा निर्माता सीबा (Siba) कम्पनी ने इसका निर्माण किया है।

गुण-यह टेबलेट अन्त्रप्रदाह, बृहदन्त्र-प्रदाह, अतीसार, कब्जियत, तथा पेट का फूलना तथा डिसेन्ट्री के लिए परम उपयोगी दवा है।

पार्श्व प्रभाव-इसके प्रयोग से कभी-कभी वमनेच्छा, सिर-दर्द तथा घुमेर उत्पन्न हो सकते है।

सावधानी-यकृत् या वृक्क के खराबी वाले मरीजो को इसका सेवन निषेध है।

मात्रा-वयस्क-अनुपातिक मात्रा १ टेबलेट ३ बार प्रतिदिन है। गम्भीर रोगो मे २ टेबलेट तीन बार प्रतिदिन पहले कुछ दिन तक देनी चाहिए। रोकथाम के लिए-१-२ टेबलेट प्रतिदिन व्यवहार करने की सलाह दे।

बच्चो को जिनकी उम्र स्कूल जाने की हो-१ टेबलेट १-३ बार प्रतिदिन तथा रोकथाम के लिए एक टेबलेट प्रतिदिन।

मलावरोध
(Constipation)

यह एक ऐसा रोग है, जिसके रोगी नित्य दिन चिकित्सको के सामने आते रहते हैं। इसके लिए प्रमुख कम्पनियो की दवाओ का पूर्ण विवरण दिया जा रहा है।

(१) **सिनैड** (Sinad tab)-मुख्य औषध निर्माता सिपला (Cipla) द्वारा यह टेबलेट तैयार किया जाता है।

गुणाधिकार-यह एक दस्तावर गुण रखने वाली औषधि है। यह बच्चो, तरुणो, बूढे, सगर्भा, बच्चा जनने के बाद कब्ज एव शय्याशायी (bed ridden) रोगियो की कब्जियत को सुरक्षापूर्वक दूर करने के लिए व्यवहृत होती है। इसका सेवन उच्चरक्तदाब एव हृदय के मरीजो के कब्जियत के साथ-साथ ऑपरेशन के बाद के कब्जियत दूर करने के लिए किया जाता है।

मात्रा-बच्चो को (१-१२ वर्ष तक)-आधा टेबलेट रात को सोते समय शुरू करे। इसकी मात्रा यदि आवश्यकता जान पडे ते १-२ टेबलेट तक कर सकते है।

समानता-इसी योग द्वारा ग्लैक्सो क० ने ग्लैक्सीना टेबलेट का निर्माण किया है, अत यह भी यही गुण रखती है।

(२) **लैक्सिनडन** (Laxindon tabs)-इसे इन्डोफार्मा (Indo-Pharma) द्वारा तैयार किया जाता हैं।

रोग निर्देशन-कब्जियत।

मात्रा-वयस्क २-३ टेबलेट रात को सोते समय या चिकित्सक के आदेशानुसार।

(३) **जुलैक्स** (Julax tabs)-सुप्रसिद्ध कम्पनी टेडिंगटन, कैमिकल फैक्टरी (T C F) द्वारा निर्मित यह टेबलेट बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुयी है।

गुण-स्वाभाविक (आदतन) कब्जियत, गर्भावस्था तथा स्तन्य काल (बच्चा जनने के बाद स्तन पिलाने के समय मे) कब्जियत, पेट की 'क्ष' किरण परीक्षा के लिए, एक महत्वपूर्ण औषधि के रूप मे ख्यातिप्राप्त है।

मात्रा-वयस्क १ से २ टेबलेट रात को सोते समय अथवा चिकित्सक की राय से। बच्चो को वयस्क की आधी मात्रा दे।

सावधानी-एन्टासीड औषधियो के साथ इसका प्रयोग कदापि न करे।

(५) **पुरसेनिड-इन** (Pursennid-In tabs)-सैन्डोज क० द्वारा किए गए इस टेबलेट मे सनाय का सारत्व होता है। इसका व्यवहार प्रत्येक प्रकार की कब्जियत-गर्भवती की कब्जियत बच्चो की कब्जियत, वयस्को तथा स्तन्यकाल की कब्जियत, स्वाभाविक कब्जियत एव देर से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त

करते हुए मरीजो के मलावरोध को दूर करती है। यह आतो की गति को सामान्य करके पाखाने को खुलासा और ठीक लाती है।

मात्रा-बच्चो को (१-१२ वर्ष) के लिए १ टेबलेट पर्याप्त होती है। वयस्क-२ टेबलेट विछावन पर जाने से पहले। चिकित्सक के मत से मरीज की हालत को देखते हुए इसकी मात्रा बढाई जा सकती है।

रोग प्रति निर्देशन (Contratindications)-आन्त्र रक्तस्राव (Intestinal haemorrhage) एव क्षतयुक्त आन्त्रशोथ मे इस दवा का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

(६) **क्रीमाफीन** (Cremaffin Liquid)-बूट्स क० द्वारा निर्मित पेय आजकल चिकित्सको द्वारा नित्य प्रति व्यवहार कराया जाता है।

गुणाधिकार-यह आतो की गति को सामान्य करके प्रत्येक प्रकार की कब्जियत को दूर करती है। पेट फूलने मे भी उपयोगी है।

मात्रा-वयस्क एव बच्चा जिसकी उम्र १२ वर्ष से अधिक हो-१/२-१ टे[illegible] चम्मच।

बच्चा [illegible] से [illegible]-१-२ चाय चम्मच।

बच्चा-१ ८ ५ वर्ष-१/२-१ चाय चम्मच।

(७) **आई-सो-जेल** (I-so-gel)-यह ग्लैक्सो कम्पनी द्वारा उत्पादित है।

रोग निर्देशन (Indication)-यह बच्चो, बडो और विशेष रूप से गर्भावस्था मे कब्ज, बवासीर का कब्ज, अतीसार एव तीव्र तथा पुराने पेचिश की उत्तम दवा है।

मात्रा एव सेवन विधि-बच्चो को १ चाय चम्मच (२-३ ग्रा०) एक बार।

वयस्क-२ चाय चम्मच (४-६ ग्रा०) एक बार या सुबह एव शाम को भोजन के समय दुहरावे।

इसे आधे ग्लास पानी, दूध या फलो के रस मे घोल कर देना चाहिए।

(८) **बी० आई० अगर आयल** (B I Agar Oil)-बी० आई० (B I & Bengal Imunity) द्वारा यह पेय के रूप मे तैयार किया गया है।

रोग निर्देश (indication)-कब्जियत।

मात्रा-१-२ चाय चम्मच २ बार।

आन्त्रावरोध
(Intestinal obstruction)

इसकी एकमात्र सफल चिकित्सा सर्जरी द्वारा की जा सकती है। इस रोग मे मुख द्वारा औषध या कोई अन्य चीज देना घातक स्थिति पैदा कर देती है। फिर भी इञ्जैक्शनो एव एनीमा द्वारा लाक्षणिक चिकित्सा की जाती है। जलीयाश की कमी के लिए सैलाइन बोतल या प्लाज्मा इत्यादि दिए जा सकते है। किन्तु सच तो यह है कि इस रोग का निदान होते ही मरीज को किसी अच्छे अस्पताल या योग्य सर्जन के पास भेज देना चाहिए। इस रोग के लिए एक पेटेन्ट एनीमा आता है, जिसका वर्णन हम किए देते है।

(१) **प्रोक्टो-क्लिस** एनीमा (Procto-Clyss Enemas)-यह अतुल ड्रग हाउस (Atul drug house) क० द्वारा तैयारशुदा एनीमा है।

रोग निर्देशन-कब्जियत, आन्त्रावरोध, मेरुदण्ड क्षत, मधुमेह जन्य सन्यास, बृहदन्त्र-शोथ, आक्षेप, शल्यतत्र, रेक्टोस्कोपी, अवरोध, हृदय अपर्याप्तता तथा बच्चा जनने के समय के मलावरोध के लिए तैयार एनीमा होता है।

व्यवहार-विधि-गुदा द्वारा एनीमा देने से भला कौन चिकित्सक परिचित न होगा। एनीमा देने के की भाति ही इसकी व्यवहार-विधि है।

आन्त्रपुच्छ-शोथ
(Apendicitis)

यह रोग भी सर्जिकल उपचार द्वारा सिद्ध होने वाला एक दुष्ट रोग है। यो तो इसका निदान होते ही मरीज को तुरन्त ही ऑपरेशन करने की सलाह देनी चाहिए। क्योकि देर होने से एपेन्डिक्स के फटने का डर बना रहता है। फिर भी इस रोग की चिकित्सा लक्षण के मुताबिक तथा शक्तिशाली भूतघ्न दवाओ एव इञ्जेक्शनो द्वारा की जाती है। किन्तु यह चिकित्सा शुरू मे करने पर भी सफलीभूत हो सकती है। मैने भी कई रोगियो की चिकित्सा औषधियो द्वारा करके सफलता हासिल की है। एन्टीवायोटिक्स दवाओ का पूर्ण विवरण मैने पहले दे रखा

है अत इतना ही कहना अधिक होगा कि उनमे से किसी का भी व्यवहार, रोग की गम्भीरता को ध्यान मे रखते हुए, मात्रानुसार किया जा सकता है।

आन्त्रशोथ
(Colitis)

सर्व सुलभ कुछ ऐसे पेटेन्ट योगो का विवरण दे रहे है, जिसे आधुनिक चिकित्सा के चिकित्सक वर्गो ने भूरि-भूरि प्रशसा करके सफल पेटेन्ट औषधि के खिताब दे रखे है।

(१) **इन्टोबेक्स टेबलेट** (Entobex tabs)-इस टेबलेट का निर्माण सीवा क० ने किया है।

गुणाधिकार-अमीविक एव बेसिलरी प्रवाहिका, लैम्इलियासिस, ट्राइकोमोनियासिस एव क्षययुक्त आन्त्रशोथ के लिए एक सफल पेटेन्ट औषधि की जगह व्यवहार होता है।

मात्रा-वयस्को को २ टेबलेट ३ बार प्रतिदिन नाश्ता के बाद १० दिनो तक, बाद मे यदि जरूरत महसूस हो तो दूसरा कोर्स एक सप्ताह या १० दिनो के बाद से शुरू किया जा सकता है। बच्चो को वयानुसार, बहुत छोटे बच्चो को इस दवा का सेवन *नहीं करावे। यही बेहतर है।*

नोट-यकृत्-विद्रधि मे भी बहुत लाभदायक है।

(२) **इण्टेसेप** (Entesep tabs)-इस दवा का निर्माण डूफार इण्टरफ्रान क० ने किया है।

रोग निर्देश (Indication)-इस दवा का व्यवहार अतिसारो, प्रवाहिको, अमीवियासिस, गार्डियासिस, आत्रशोथ एव गर्मी के अतिसार मे सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

मात्रा-२ टेब० ३-४ बार वयस्को के लिए। बच्चो को उनकी वयानुसार।

(३) **सैलाजोपाइरीन** (Salazopyrin)-यह दवा कार्टर-वालैस (Carter-Wallace) क० द्वारा पेटेण्ट किया गया है।

गुणाधिकार-आत्रशोथ एव सव्रण आत्रशोथ के लिये परम गुणकारी सिद्ध हुआ है।

मात्रा-रोग की गम्भीरता एव रोगी की औषधि की सहनशीलता को देखते हुये इसकी मात्रा निर्धारित करनी चाहिए। इसकी अधिकतम मात्रा ३ सप्ताह तक २-४ टेब० (१-२ ग्राम) ४-६ बार प्रतिदिन तक दी जा सकती है। ३ सप्ताह तक की चिकित्सा के बाद ३-४ टेब० प्रतिदिन रोग की अवस्था को देखते हुये तीन से छ महीने तक व्यवहार करायी जा सकती है।

रोग प्रति निर्देश (Contra-indication)-जो *सल्फोनामाइड या सैलीसिलेटस को बर्दास्त नहीं कर सकते,* एलर्जी वाले मरीजो मे तथा गर्भावस्था एव स्तैन्यकाल मे इसका व्यवहार नहीं करना चाहिए।

(४) **सायोसक्सीडीन सस्पेशन** (Siosuccidine suspension)-यह पेय के रूप मे एलवर्ट डेविड क० का बना आता है।

गुण-बेसिलरी प्रवाहिका, शिशुओ का अतिसार, गर्मी का अतिसार, आत्रशोथ, पारा डिसेण्ट्री, कोलोनिक सर्जरी से पहले एव बाद मे तथा कई अन्य प्रकारो के अतिसारो मे शीघ्र लाभकारी औषधि है।

मात्रा-वयस्क को-४-६ चाय चम्मच ४ बार दे।

बच्चो को-१-३ चाय चम्मच ४

शिशु को-१/२-१ चाय चम्मच ६ बार दे।

तुरन्त उत्पन्न हुये (नवजात शिशु) को-१/४-१/२ चम्मच ६ बार दे।

समानता-मर्क शार्प क० का क्रीमोसक्सीडीन इसी के समान है।

(५) **इण्टेरो-वायोफॉर्म** (*Entero-vioform tabs*) सीवा कम्पनी द्वारा इस उत्पादित टेब० मे ०.२५ ग्राम क्वीनिओडोक्लोर होता है। इस प्रमुख दवा का व्यवहार असक्रामक अतिसारो की गडबडी, गर्मी के दस्त, आन्त्रशोथ एव सह-अतिसार तथा वैसिलरी तथा अमीविक प्रवाहिका को दूर करने के लिए किया जाता है।

मात्रा-वयस्क (Adults)-१ टेबलेट ३ बार प्रतिदिन।

रोकथाम के लिए-१-२ टेब० प्रतिदिन।

शिशु-१/४ टेब० ३ बार प्रदिदिन।

छोटा बच्चा--१/२ टेब० ३ बार प्रतिदिन।

स्कूली छात्रो के उम्र के बच्चो को-१ टेब० ३ बार प्रतिदिन।

इस रोग के लिए इसका चिकित्सा काल ६-१० दिनो का है। बीच मे एक सप्ताह तक दवा बन्द करने के बाद पुन दुबारा कोर्स दिया जा सकता है।

इन दवाओ के अलावा इस रोग मे क्लोरामाइसिटीन कैपसूल, मिक्साफार्म टेब० सीवा क० का बेटनेलन ग्लैक्सो क० का, इण्टेस्टोपान सैण्डोज का, ग्वानीमाइसीन सस्पेशन फोर्ट ग्लैक्सो का, इण्टेरिण्डन टेब० इण्डो फार्मा क० का, डिसेनक्लोर सुहृद गायनी क० का, टाइफोस्ट्रेप स्टेण्डर्ड क० का तथा डिहाइड्रोएमेटीन इत्यादि भी इस रोग की लिए उपयोगी दवाए है। कोमाइसीन एस टेब० तथा सीरप ग्लैक्सो तथा क्राइस भी सेवनीय है।

उदर शूल
(Colic Pain)

कुछ ऐसी प्रमुख पेटेण्ट औषधियो का उल्लेख कर रहे है, जो सभी जगह आसानी से मिल जाती है तथा इस रोग से या इसके कष्ट से लोगो को छुटकारा दिलाती है।

(१) न्यूरो-ट्रासेण्टीन (Neuro-Trasention tabs)-मशहूर कम्पनी सीवा द्वारा इस टेब० को पेटेण्ट किया है।

रोग निर्देशन-जठरान्त्र सम्बन्धी, पैत्तिक सम्बन्धी एव जनन-मूत्र सम्बन्धी के अकडन-खिचाव-ऐठन-दर्द को दूर करती है एव जहा शामक दवाओ की जरूरत हो वहा व्यवहार करायी जाती है, जैसे-कष्टार्तव इत्यादि।

मात्रा-१ से २ टेब० २ से ३ बार प्रतिदिन।

(२) बारालान (Baralgan)-टेबलेट, ड्राप्स एव इन्जेक्शन के रूप मे यह सुप्रसिद्ध औषधि निर्माता हैक्स्ट (Hoechst) क० की सुप्रसिद्ध दवा है।

रोग निर्देश-मासपेशियो का दर्द, विशेषतया वृक्क एव पित्ताशय शूल तथा जाठरान्त्र के ऐठनयुक्त दर्द एव दर्दयुक्त कष्टार्त्तव मे तुरन्त लाभदायक सिद्ध हुयी है।

मात्रा टेबलेट-१ से २ टेब० ३ बार।

ड्राप्स-शिशु एव छोटे बच्चो को ३-९ बूद ५-६ बार प्रतिदिन।

बडे बच्चे को १०-१७ बूद दवा ३-५ बार प्रतिदिन।

इञ्जेक्शन-गम्भीर शूल को दूर करने के लिए ५ मि० ली० शिरा द्वारा धीरे-धीरे दे। आवश्यकता जान पडने पर इस क्रिया को ६-८ घण्टे के बाद दुबारा दुहरा सकते है। मासपेशी मे २-३ मि० ली० २-३ बार तक दिया जा सकता है।

सावधानी-इसके प्रयोग से एलर्जिक प्रतिक्रिया भी हो सकती है।

(३) बारडेज (Bardase tab & Liquid)-पार्क डेविस कम्पनी द्वारा गोली तथा पेय के रूप मे तैयार किया जाता है।

रोग निर्देश-मासपेशियो का दर्द उदरशूल के साथ या बिना उदरशूल के पेप्टिक अल्सर, सव्रण आत्र-शोथ, जनन मूत्र सम्बन्धी गडबडिया (Disturbences), कष्टार्त्तव एव पेट के पाचन सम्बन्धी एव शूल सम्बन्धी गडबडी के लिये विशेष प्रसशा प्राप्त है।

मात्रा-१ गोली या १ चाय चम्मच (५ मि० ली०) ३ बार प्रतिदिन।

सावधानी-बार्वीच्युरेट असह्य एव सब्जमोतिया रोग से ग्रसित मरीजो को यह नहीं दे।

(४) स्पासमिण्डन टेब० (Spasmindon tabs)-यह इण्डो फार्मा क० की पेटेण्ट गोली है। यह गोली तथा इञ्क्शन दोनो रूपो मे आता है।

गुणाधिकार-प्रत्येक प्रकार की ऐठन एव शूल जैसे-उदरशूल, व्रण पित्ताशयशूल, वृक्कशूल, कष्टार्त्तव इत्यादि।

मात्रा-१ गोली २ या ३ वार वयस्को के लिए, वच्चो को वयानुसार।

इञ्जेक्शन-१-२ मि० ली० माशपेशी मे। इसे ४-६ घण्टे के बाद दुहरा सकते है।

(५) वेलाडिनल-इन एव वेलाडिनल-इन रिटार्ड (Belladenal-in Belladenal-in Retard)-इसका निर्माण टेवलेट के रूप मे सैन्डोज कम्पनी ने किया है।

रोग निर्देशन (Indication)-प्रपाचीय वर्ण, जठारान्त्र शूल, पित्तशूल एव वृक्कशूल, ऐठन युक्त कब्जियत, इत्यादि मे शीघ्र असर करने वाली दवा है।

मात्रा-साधारणतया-१ बेलाइनल इन टेबलेट-३ बार प्रतिदिन, अन्तिम टेबलेट बिछावन पर जाने से पहले यानी सोने से पहले लेनी चाहिए। या १ रिटार्ड टेबलेट सुबह एव रात को देनी चाहिए। बच्चो को वयस्को की चौथाई-आधी मात्रा दे।

इसके अलावा इस रोग मे ऐवाफोर्टन खडेलवाल क० का, व्युस्कोपान कम्पोजिटम जर्मन रिमेडीज क० का, बेलर्गल इन तथा बेलर्गल इन रिटार्ड सेन्डोज क० का भी, बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

आन्त्रगत रक्तस्राव (Intestinal Haemorrhage)

इस रोग के लिए रक्त को जमाने यानी बहने से रोकने के लिए जो पेटेन्ट टेबलेट, पेय तथा इञ्जेक्शन श्रेष्ठ कम्पनियो के आते है, यहा हम उन्हीं मे से कुछ प्रमुख औषधियो का वर्णन कर रहे है।

(१) क्लाउडेन (Clauden)-यह ल्युपोल्ड क० के सौजन्य से नियोफार्मा क० द्वारा तैयार किया जाता है। यह टेबलेट तथा इञ्जेक्शन दोनो रूप मे प्राप्य है।

निम्नलिखित अगो से रक्तस्राव-फेफडा (Lungs), पेट (Stomach) आत्रगत रक्तस्राव मूत्र ग्रन्थि (Kidney) का रक्तस्राव, मूत्राशय (Bladder) का रक्तस्राव।

अज्ञात रक्तस्राव (Occult bleeding) आदि की रोकथाम के लिए इसका व्यवहार आश्चर्यजनक फल दिखलाता है।

मात्रा एव सेवन विधि-टेबलेल -१-२ टेबलेट ३-४ प्रतिदिन भोजन के समय।

इञ्जेक्शन-जरूरत के मुताबिक १०-२० मि० ली० शिरामार्ग द्वारा दे सकते है।

(२) सिन्केविट (Synkavit)-उच्चकोटि के दवा निर्माता रोशे क० ने इस नाम से विटामिन 'के' का इञ्जे० एव टेबलेट तैयार किया है।

रोग निर्देशन-मात्रा एव व्यवहार विधि-शल्यकर्म के पूर्व या पश्चात् रक्तस्राव की रोकथाम या चिकित्सा के लिए ३ टेबलेट या ३ ऐम्पुल्स चर्मान्तर्गत, मासपेशी मे या शिरामार्ग द्वारा प्रतिदिन २-८ दिन तक शल्यकर्म के पूर्व या ८-१० दिन तक शल्यकर्मादि के पश्चात्।

(३) केपिलीन (Kapilin)-ग्लैक्सो के सौजन्य से एलेनब्युरीज (Alendurys) क० द्वारा टेबलेट तथा इञ्जेक्शन के रूप मे निर्मित, यह औषधि, जितना ही प्रभावशाली गुण रखती है, उतनी ही कम कीमत मे मिल जाती है।

गुण-यह रक्त को जमाने की शक्ति रखता है फलत प्रत्येक प्रकार के बहते हुए रक्त को रोकता है। इसके अलावा यह अवरोधक कामला, सव्रण आत्रशोथ, यक्ष्मा मे मुह से खून आना, सग्रहणी एव जुडपित्ती मे विशेष लाभदायक है।

मात्रा-एव सेवन विधि-वयस्क-१-२ टेबलेट या १ मि० लि० चर्मगत, मासगत या शिरा द्वारा। वच्चो को आयु के अनुसार। इसकी मात्रा बढाई भी जा सकती है।

(४) आयोजोल लिक्विड (Ayazol Liquid)-पेय के रूप मे १० मि० लि० के ऐम्पुल मे तथा ६० मि० लि० की बोतल मे यह प्राप्य है, जिसका निर्माण यूनीवर्सल ड्रग हाउस ने किया है।

गुण-प्रत्येक प्रकार के रक्तस्राव, बवासीर का रक्तस्राव, रक्तातिसार, रक्तवमन, थूक मे खून आना तथा अत्यधिक रज स्राव इत्यादि मे शीघ्र लाभकारी है।

मात्रा-ऐम्पुल्स तथा सीरप-गम्भीर रोगो मे १ ऐम्पुल या १० मि० लि० (२ चाय चम्मच) प्रत्येक आधा या एक घण्टा पर तथा हल्के रोग मे एक ऐम्पुल २ या ३ बार या १० मि० लि० (पूरा २ चाय चम्मच) २ या ३ बार दे।

आन्त्रवृद्धि (Hernia)

इसकी सफल चिकित्सा औषधियो द्वारा नहीं की जा सकती है। यह भी सर्जिकल व्याधि है जो शल्यकर्म (ऑपरेशन) कराने से ही ठीक की जा सकती है। कुछ लोग हर्निया बेल्ट का इस्तेमाल करते है।

इस रोग को दूर करने के लिए जिन प्रमुख पेटेन्ट औषधियो का व्यवहार होता है, उन्हीं का विवरण दिया जा रहा है।

आन्त्रक्षय (Intestinal Tuberculosis)

(१) एम्बास्ट्रीन-एस (Ambistryn-S)-यह साराभाई केमिकल्स द्वारा ० ७५ ग्राम एव १ ग्राम के वायल पैको मे

इञ्जैक्शन के लिए सूखे पाउडर के रूप मे तैयार किया जाता है।

रोग निर्देशन–सभी तरह के यक्ष्मा सक्रमण या तपैदिक, उग्र मिलीयरी ट्युवरकुलोसिस और फेफडो का क्षय औदरिक यक्ष्मा (आतो, ग्रन्थियो या उदर्याकला का क्षय रोग), ट्युवरकुलस मेर्निजाइटिस हड्डियो, जोडो और लसीका ग्रन्थियो का यक्ष्मा, सक्रमण और नाडी व्रण (Sinus), त्वगीय क्षय, नासूर और भगन्दर, लैरिंग्डस, ट्रेकिया, ब्रौकाई और श्वसन पथ का यक्ष्मा, एम्पाइमा और प्लुरिसी, परिपोषण सस्थान का यक्ष्मा जिसमें आत्रशोथ और यक्ष्मा उदर्याकला शोथ भी सम्मिलित है।

मात्रा–क्षय के लिए ० ७५ ग्राम से १ ग्राम तक प्रतिदिन। १ ग्राम मे इसे अधिकतम रूप मे प्राय ४२ दिन देना अनिवार्य है। परन्तु आवश्यकता पडने पर चिकित्सा अवधि ४२ दिन के बदले मे ६०, ९०, १०० या १२० दिन या १ वर्ष तक भी चालू रखी जा सकती है। इसे मासपेशी मे ही देना चाहिए।

समानता–ग्लैक्सो क० का कोमाइसीन-एस, ड्यूमेक्स क० का स्ट्रैप्टोनेक्स, मर्क शार्प क० का मरस्ट्रेप।

(२) **आसोनेक्स, आइसोनेक्स फोर्ट** (Isonex, Isonex Forte Tabs) गोली के रूप मे यह ड्युमेक्स फार्मा, द्वारा तैयार किया जाता है।

गुण–इस दवा को स्ट्रेप्टोमाइसीन के साथ देने से क्षय मे बहुत लाभ होता है। यह दवा न केवल क्षय रोग के कीटाणुओ को बढने से रोकती है, बल्कि उनको मार देने का भी प्रभाव रखती है।

मात्रा–वयस्को मे व्यावहारिक मात्रा १५०-३०० मि० ग्रा० प्रतिदिन २ से ३ खुराको मे बाटकर दे। इसके फोर्ट की एक गोली एक ही बार मे या २-३ भाग मे बाटकर लेनी चाहिए।

(३) **आइनापास** (Inapas)-इसका निर्माण गोली तथा ग्रैन्युल्स (दानेदार चूर्ण) के रूप मे नियोफार्मा कम्पनी ने किया है।

मात्रा एव सेवन विधि–इसकी व्यवहारिक मात्रा, १२ गोली को ३-४ मात्राओ मे या ३ मेजर ग्रैन्युल्स कई खुराको मे बाटकर, प्रतिदिन देने की है।

(४) **रिफाकैप्स कैपसूल** (Fifacaps Capsul)-यह एक नई एव सबसे शक्तिशाली तथा सबसे कीमती यक्ष्मा नाशक दवा (Anti T B Drug) है, जिसे कैपसूल के रूप मे रिनो केमिकल्स फार्मा० ऐन्ड कॉस्मेटिक्स क० ने कैपसूल के रूप मे तैयार किया है।

गुणाधिकार–यह सभी प्रकार के क्षय (T B) की सर्वोत्तम एव शक्तिशाली पेटेन्ट भूतघ्न (Antibiotic) दवा है।

मात्रा–वयस्को के प्रतिदिन की मात्रा एक ही खुराक मे ४५० मि० ग्रा० है, जिनका शारीरिक बजन ५० कि० ग्रा० से नीचे हो। ५० कि० ग्रा० से ऊपर बजन वाले रोगियो की अधिकतम मात्रा ६०० मि० ग्रा० एक ही बार प्रतिदिन की है। शरीर के बजन के अनुसार इसकी मात्रा ८-१२ एम०जी० प्रति किलो ग्रा० से निर्धारित करनी चाहिए। १२ वर्ष तक के बच्चो की १०-१५ मि० ग्रा० प्रति० कि० ग्रा० से एक ही खुराक की मात्रा दे।

(५) **विटाजाइड-१०० गो०** (Vitazide-tabs-)-इसका निर्माण थेराप्युटिक फार्मा० द्वारा होता है।

गुण–प्रत्येक प्रकार के क्षय रोगो की चिकित्सा एव रोकथाम के लिए व्यहृत होने वाली पेटेन्ट औषधि, यह अनेकानेक चिकित्सको द्वारा व्यवहार करायी जाती है। इसमे विटामिन मिले है। इसलिए यह शरीर को शक्ति भी प्रदान करती है।

मात्रा–२-३ गो० प्रतिदिन चिकित्सक की राय से, बच्चो को उनके शारीरिक बजन एव वयानुसार दे।

अर्श, बवासीर

इस रोग मे व्यवहार किये जाने वाली कुछ पेटेण्ट औषधियो का विस्तृत वर्णन दिया जा रहा हे।

(१) **लैक्सिकोन सीरप** (Laxicon syrup)-इसका निर्माण पेय रूप मे स्टैडमेड (Stadmed) क० ने किया है।

गुणाधिकार–यह अर्श, भगन्दर, गर्भावस्था की कब्जियत मे मल को नरम एव ढीला करने वाली दवा है। यह आदतन कब्जियत, शिशुओ, बूढो एव बच्चा पैदा करने वाली औरतो की कब्जियत मे भी प्रशसित है।

इसे पेट दर्द तथा आन्त्रावरोध की स्थिति मे नही देनी चाहिए।

मात्रा–२-४ चाय चम्मच २-३ बार दूध या फलो के रस के साथ भी दे सकते है। यह वयस्को की मात्रा है। शिशुओ एव

बच्चो को-१/४-१/२ चाय चम्मच १ या २ बार दूध या फलो के रस के साथ भी दे सकते है। इमसञ्ज क० के लुब्रीकोल (Lubricol) के समान।

(२) डाक्सीडन ड्रेगी (Doxidan dragee)-इसके सुप्रसिद्ध औषधि निर्माता हैक्स्ट (Hoechst) है।

गुणाधिकार-अर्श की कब्जियत तथा सभी प्रकार के एव सभी आयु के लोगो की कब्जियत मे प्रशसनीय है। बिना किसी हानि के इसका प्रयोग गर्भावस्था और शल्य कर्मादि पश्चात् कब्जियत या शैय्याशायी रोगियो की कब्जियत मे भी व्यवहार कराया जा सकता है।

मात्रा-वयस्क एव १२ वर्ष से ऊपर के बच्चो को १-२ ड्रेगीज सोते वक्त २-३ रोज तक या अन्तडियो के सामान्य होने तक। ६-१२ वर्ष के बीच के बच्चो को १ ड्रेगी रात को सोते समय।

(३) प्रोक्टोसोन ओइण्टमेण्ट (Proctosone ointment)- मरहम के रूप मे इसे ईस्ट इण्डिया फार्मा वर्क्स ने तैयार किया है।

गुणाधिकार-तीव्र शोथयुक्त अर्श, भगन्दर, गम्भीर दर्द और ऐठन के साथ के लिये यह एक पेटेण्ट औषधि (मरहम) के रूप मे प्रसिद्ध है।

व्यवहार-विधि-अर्श पर ३ वार या अधिक, प्रतिदिन मरहम लगवावे।

(४) प्रिपरेशन एच (Prepration H)-यह जयोफरी मैनर्स क० के द्वारा मरहम के रूप मे तैयार किया गया है।

रोग निर्देशन-बवासीर के लिये नई चमत्कृत पेटेण्ट औषधि है जो बवासीर की खुजली एव दर्द को भी ठीक करता है एव मस्से को भी गलाता है।

मात्रा एव व्यवहार-विधि-आवश्यकतानुसार २-३ वार बवासीर पर एप्लीकेटर या उगली से ही लगाया जाता है।



उदर रोगों में उपयोगी द्रव्य

डा० गुरुप्रसाद शर्मा, ए०एम०एस०, डी० ए० वाई० एम०, पी-एच० डी०
रीडर एव अध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

उदर रोग मुख्यत औदरिक अगो का विकार है, जो मन्दाग्नि[1] वाले मनुष्य के अहितकर आहार सेवन करने से अथवा स्नेहन स्वेदन तथा वमनादि पच-कर्मों के मिथ्या आचरण करने से बढे हुए दोष स्वेदवह और अम्बुवह स्रोतसों मे प्राप्त होकर अवरोध उत्पन्न कर देता है और उदर रोग उत्पन्न होता है।[2]

इस रोग मे जठराग्नि व्यापार असम्यक् होने से धात्वाग्नि व्यापार भी उचित नहीं हो पाता तथा उसके परिणाम-स्वरूप शारीरिक धातुओ का निर्माण भी यथोचित रूप से नहीं होता, जिससे शरीर क्षीण होने लगता है और उदर बडा हो जाता है।

उपर्युक्त विकृति को ध्यान मे रखते हुए उदर रोग मे उपयोगी द्रव्यो को निम्नाकित वर्गों मे स्थापित कर सकते है।

उपयोगी द्रव्य

१ स्नेहन २ स्वेदन ३ विरेचन ४ वस्ति ५ वल्य।

१ स्नेहन-वायु दोष की मुख्य रूप से वृद्धि होने के कारण इसकी चिकित्सा मे स्नेहन द्रव्यो का सर्वोपरि महत्व है।[3]

स्नेहन द्रव्य द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल मृदु, शीतल और मन्द गुण युक्त होते हैं।[4] इससे वायु का अनुलोमन, अग्निदीप्त, पुरीषस्निग्ध मृदु तथा अग स्निग्ध-मृदु होते है।[5] इसका प्रयोग वात-विकारो मे किया जाता है तथा सशोधन के पाक्कर्म मे इसका सर्वत्र विधान है, क्योकि यह वात एव विवन्ध का नाशक है। इसके अतिरिक्त जो द्रव्य स्नेहन द्रव्यो की शक्ति को बढाते और उनके सहायक रूप मे प्रयुक्त होते है।, उन्हे स्नेहोपग कहते है। चरक सहिता षड्विरेचनशताश्रितीय-मध्याय मे पठित स्नेहोपग वर्ग मे निम्नाकित दस द्रव्यो की गणना की गई है। यथा-द्रक्षा, मधुक, मधुपर्णी, मेदा विदारी, काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, जीवन्ती और शालपर्णी।[6] ये द्रव्य प्राय गुण मे गुरु स्निग्ध मृदु, रस मधुर विपाक-मधुर एव शीत-वीर्य युक्त है, मधुपर्णी (गुडूची) और शालपर्णी रस मे तिक्त-कषाय तथा उष्ण-वीर्य है।

इससे स्पष्ट है कि स्निग्ध मधुर एव उष्ण-वीर्य से वायु का, मधुर तिक्त एव शीत से पित्त का तथा तिक्त, कषाय एव उष्ण से कफ का शमन होता है। अत ये त्रिदोष-शामक है। यह निर्देश मात्र है, क्योकि ऐसे द्रव्यो की सूची लम्बी है।

२ स्वेदन-स्वेद की प्रवृत्ति कराने वाले द्रव्यो को स्वेदन द्रव्य कहते है। पाचभौतिक दृष्टि से स्वेद जलीय एव आग्नेय होते है। जलीय द्रव्य स्वेद की मात्रा को बढाकर उसके निर्हरण मे सहायक होते है और आग्नेय द्रव्य उष्णता और तीक्ष्णता से त्वचा मे स्थिति धमनियो तथा स्वेदवाही ग्रन्थियो को उत्तेजित करते हैं, जिससे स्वेद अधिक मात्रा मे बाहर निकलता है।[7]

---

१ रोगा सर्वे मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च । -अ० ह० ३।१२

२ रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषा स्रोतासि सचिता ।
प्राणान्नयपानान सन्दूष्य जनयन्त्युर नृणाम्।। -च० ६।१३

३ स्नेहन स्नेह विष्यन्द मार्दवम्। -च० मू० २२

४ द्रव सूक्ष्म सर स्निग्ध पिच्छिल गुरु शीतलम्।
प्रायोमन्द मृदु च यद् द्रव्य तत् स्नेहन् स्मृतम्।।-च० सू० २२

५ वातानुलोम्य दीप्तोऽग्निवर्च स्निग्धमसहतम्।
मार्दव स्निग्धता चागे स्निग्धानामुपजायते।। -च० सू० १३

६ मृद्वीका मधुक मधुपर्णी मेदा
विदारी काकोली क्षीरकाकोली।
जीवक जीवन्ती शालपर्ण्य इति
दशेमानि स्नेहोपगानि भवन्ति।। -च० सू० ४

७ च० सू० २२

चरक संहिता सूत्र स्थान अध्याय चार मे वर्णित स्वेदोपग वर्ग मे निम्नांकित दस द्रव्य है। यथा-

शोभाञ्जन, एरण्ड, अर्क, पुनर्नवा (श्वेत रक्त) यव तिल, कुलत्थ, माष, बदर ।[१] ये द्रव्य प्राय गुण मे लघु स्निग्ध रस मे मधुर, तिक्त, कषाय विपाक मधुर एव उष्ण वीर्य युक्त हैं, जो स्निग्ध मधुर एव उष्ण से वायु का मधुर तिक्त से पित्त का तथा तिक्त कषाय एव उष्ण से कफ का शमन करते है, अत ये भी त्रिदोषहर है। पुनर्नवा शोथहर भी है।

३ विरेचन-विरेचक द्रव्य अधोमार्ग से मलो को बाहर निकालते है। पाचभौतिक दृष्टि से ये पार्थिवाप्य होता है, पृथ्वी और जल महाभूत गुरु होते हे और गुरुत्व के कारण अधोगामी स्वभाव के होते है।, अत नीचे की ओर से दोषो को बाहर निकालते है।[२] महर्षि चरक ने श्रेष्ठ विरेचन के लिए कहा है कि जिससे पुरीष पित्त कफ और वायु इस क्रम से दोषो का निर्हरण हो, स्रोतो की शुद्धि हो जाय, किन्तु कोई उपद्रव न हो,[३] अग्निप्रदीप्त हो तथा शरीर मे शक्ति, लघुता और प्रसन्नता का अनुभव हो, वह सर्वोत्तम विरेचन है। चरक ने विरेचन द्रव्य के तीन भेद किये है।-

१ सुख विरेचन-यथा-त्रिवृत्[४], यह गुण मे रुक्ष लघु, तीक्ष्ण रस मे तिक्त-कटु, विपाक-कटु और उष्ण वीर्य युक्त है, अत यह कफ-पित्त सशोधन है।

२ मृदु विरेचन-यथा-आरग्वध[५] (अमलतास) यह गुण मे गुरु, मृदु स्निग्ध, रस मधुर, विपाक मधुर तथा शीत-वीर्य है, अत ये वात-पित्त शामक तथा कोष्ठगत पित्त कफ का सशोधन है।

३ तीक्ष्ण विरेचन-यथा-स्नुहीक्षीत्[६] यह लघु तीक्ष्ण रस एव विपाक मे कटु तथा उष्ण-वीर्य युक्त है। इसके अतिरिक्त यह कफवातहर एव शोथहर भी है तथा तीक्ष्ण विरेचन द्रव्यो मे सर्वोत्तम है। इसके अतिरिक्त सप्तला, दन्ती द्रवन्ती त्रिफला आदि द्रव्यो का प्रयोग भी निहित है। विरेचन के लिए कुछ योग भी प्रचलित हैं, यथा-इच्छाभेदीरस आरोग्यवर्धनी आदि।

४ बस्ति-यह वह प्रक्रिया है, जिसमे प्राय गुदा-मार्ग से औषधि-सिद्ध क्वाथ, स्नेह, क्षीर मास-रस और रक्तादि-द्रव्यो को पक्वाशय मे प्रविष्ट कराया जाता है। उदर रोग मे रोगी के बलानुसार स्नेहन-स्वेदन के बाद स्निग्ध विरेचन (एरण्ड तैल) का प्रयोग करना श्रेयस्कर है। आहार के लिए मण्डपेया एव गोदुग्ध देने के बाद तीक्ष्ण विरेचन युक्त द्रव्यो से सिद्ध दशमूल क्वाथ से आस्थापनाबस्ति अथवा अम्ल-रस युक्त वात-नाशक द्रव्यो से सिद्ध क्वाथ तथा एरण्ड तैल से अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना सर्वोत्तम है। दशमूल शोथहर, आमपाचन एव त्रिदोषघ्न है। इसके अतिरिक्त जीवनीय गण, विदारीगन्धादिगण एव न्यग्रोधादि गण के द्रव्यो से सिद्ध घृत का प्रयोग भी लाभकर होता है।

५ बल्य-उदर रोगो मे दौर्बल्य एव धातुक्षय होने पर बल्य औषधियो का विधान किया जाता है-ये द्रव्य ऐसे होने चाहिए, जो विरेचन के कारण हृदय दौर्बल्य न होने दे और शरीर मे धातुओ की वृद्धि मे सहायक हो।[७]

यथा-स्वर्णपर्पटी, हृदयार्णव, हृदयचिन्तामणि प्रभाकरवटी, शिलाजत्वादि लौह, पुनर्नवा मण्डूर का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त आसव अरिष्ट का प्रयोग भी किया जाता है, जो दीपन पाचन गुणयुक्त है। यथा-अभयारिष्ट कुमार्यासव रोहितकारिष्ट आदि इन औषधियो का यकृत् प्लीहा-विकार जन्य, हृदय-विकार जन्य राजयक्ष्मा एव वृक्क-विकार जन्य उदर-रोगो मे विशेष रूप से व्यवहार किया जाता है, जो धातुओ को बढाते है तथा ओज की भी वृद्धि करते है और रोग-निवारण करने के साथ-साथ बलवर्धक है।[८]

---

१ शोभाञ्जनैकैरण्डार्कवृष्चीरपुनर्नवा यव तिलि कुलत्थ माष बदराणीति दशेमानि स्वेदोपगानि भवन्ति। -च० सू० ४

२ विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूमिष्ठानि, पृथिव्यापोगुर्व्य ता गुरुत्वादधो गच्छन्ति तस्मोद्विरेचन गधोगुणभूयिष्ठमनुमात्। -सु० सू० ४१

३ स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ लघुत्वमूर्त्रोग्निरनामयत्वम्। प्राप्तिक्य विट्पित्त कफानिलाना सम्यग्विरिक्तस्य भवेत क्रमेण। -च० सि० १

४ त्रिवृत् मुखविरेचनानाम्। -च०सू० २५

५ चतुरगुलो मृदु विरेचनानाम्। -च० सू० २५

६ स्नुक्पयस्तीक्ष्ण विरेचनानाम्। -च० सू० २५

७ आचार्य प्रियव्रत शर्मा (द्रव्यगुण विज्ञान भाग १ पृष्ठ ३०७)

८ आचार्य प्रियव्रत शर्मा (द्रव्यगुण विज्ञान भाग १ पृष्ठ ३०७)

आहार-द्रव्य

आहार द्रव्यो से प्रधानतया शरीर के रस आदि धातुओ का पोषण होता है। इनको निम्नाकित वर्गों मे विभाजित किया जाता है। यथा-

१ शूकधान्य-रक्तशालि, यव।

२ शमी धान्य-मुग्द, कलत्थ।

३ मास-जागल पशु-पक्षियो का मास रस।

४ शाक-वास्तूक, शालिञ्च, पटोल, कारवेल्लक आदि।

५ फल-नारग, दाडिम, अगूर।

६ हरित-नींबू।

७ मद्य-सुरा, द्राक्षारिष्ट, द्राक्षासव, रोहितकारिष्ट

८ जल-दिव्यजल, नारिकेल जल।

९ कृतान्न-विलेपी, मण्ड, पेया।

१० आहास्योनी-हिंगु।

११ गोरस-गोदुग्ध, ऊटनी दुग्ध।

साराश-स्वदेह तथा अम्बुवह स्रोतसो के अवरोध से जठराग्नि एव धात्वाग्नि-इन दोनो के सन्दर्भ मे उदर रोग का विचार किया गया। इसका सम्बन्ध मुख्यत जठराग्नि के द्वारा ही होता है। आहार द्रव्यो मे जठराग्नि व्यापार तथा धात्वाग्नि व्यापार विशेष रूप से लक्षित होते है। औषध-द्रव्य धात्वाग्नियो मे सहायक मात्र होते है। इस प्रकार रसप्रधान आहार द्रव्यम् वीर्य प्रधानम् औषध द्रव्यम् मे सगत हो जाता है। उदर रोग मे उपयोगी द्रव्यो के सम्बन्ध मे अध्ययन किये गये। इनसे उपर्युक्त औषध एव आहार द्रव्यो के उदर रोग हर कर्म तथा प्रयोग की सम्पुष्टि हुई।



रक्तातिसार पर एक सफल औषधि व्यवस्था पत्र

इस रोग मे आने वाले रक्त की भली प्रकार परीक्षण कर लेनी चाहिए। एक एण्डोस्कोपी एव सिगमेटोस्कोपी कराये हुए व्यक्ति की आन्त्र जगह-जगह से विदीर्ण पाई गई जिससे रक्त लगभग दो वर्ष से मल के साथ आ रहा था। एलोपैथी मे सर्जरी द्वारा आन्त्र को तीन स्थानो से काटकर जोड देने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं बताये जाने पर रोगी आया जो शल्य-क्रिया नहीं कराना चाहता था। रोगी अत्यन्त दुर्बल हो गया था अवस्था २४ वर्ष की थी।

औषध प्रयोग-

१ वत्सकादि क्वाथ २० ग्राम, अनार के छिलके २० ग्राम, १×२ दिन मे दो बार क्वाथ बनाकर।

२ आवला हरा ४ नग, वासापत्र ५० ग्राम, अनार १ नग, स्वरस निकालकर दिन मे एक बार दिया जाता रहा।

३ मुस्तकारिष्ट २/२ चम्मच भोजनोत्तर-समभाग पानी मिलाकर।

४ आमलकी चूर्ण २ ग्राम, मोचरस ५०० मि० ग्रा०, नागकेशर चूर्ण-१ ग्राम, प्रवाल पिष्टी २५० मि० ग्राम, मुक्ता-शुक्ति २५० मि० ग्राम १×२ दिन मे दो बार ताजा पानी से।

विशेष-अतिसार एव रक्त प्रवाहित होने से रोगी का भार बहुत कम हो गया था। दूध पचता नहीं था, तथापि दूध देना आवश्यक समझा अत १०० ग्राम दूध मे ४ चम्मच धान की खील मिलाकर काढा होने पर खाने को दिया गया।

पथ्य-चावल, दही, खिचडी, अनार, मौसमी का रस दिया जाता रहा।

रोगी के पूर्ण स्वस्थ होने मे ८ माह लगे अब स्वस्थ है। केवल मुस्तकारिष्ट एक समय ले रहा है। फलो का प्रयोग विशेष कर रहा है। सभी प्रकार का भोजन सामान्य मात्रा मे लेने लगा है।

-वैद्य ताराचद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, ११ फ लाजपतनगर, नई दिल्ली

उदर रोग एवं ज्योतिष

आचार्य ज्योतिर्विद् निर्विकार गुप्त, ३६०/१०, सुन्दरविलास, अजमेर

आयुर्वेद, एलोपेथी, यूनानी, होमियोपैथी, वायोकैमिक आदि अन्य पाकृतिक चिकित्साओ के समान ज्योतिष द्वारा समस्त रोगो के निराकरण एव उनके उपचार की व्यवस्था भी हमारी सस्कृति का एक अग है। आयुर्वेद एव ज्योतिष का तो पारस्परिक इतना गहरा सम्बन्ध है कि उसे अन्योन्य आश्रित कहा जा सकता है। सूर्य-चन्द्रमा की ज्योति से सम्बन्धित पादप-औषधियो के उन्मूलन की व्यवस्था वेद-उपवेद सभी वर्णन करते है। तदुपरान्त उपचार व्यवस्था मे यथाशक्य, दिन, बार, तिथि, नक्षत्र आदि की अपेक्षा रखते हुए द्विघटिका आदि शुभ मुहूर्त मे उसका समारम्भ करने का प्रावधान है। भारतीय सस्कृति के मनीषि इन सब बातो के मर्म समझकर आदेश-उपदेश देते आये है। पाश्चात्य सस्कृति के पोषक ऐलोपैथी आदि अन्य प्रणालियो के चिकित्सक जो इन बारीकियो और गम्भीर दर्शन से अनभिज्ञ है वे उनकी उपेक्षा करते है। हमारे यहा तो सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहो के अनुकूल योग न मिले तो हमारे ऋषि-मुनियो ने सूर्य-चन्द्र द्वारा ईडा, पिंगला, सुषुम्ना नाडियो के सयोग से ही प्रत्येक मानव के शरीर मे एक सहज व्यवस्था बतादी है, क्योकि प्रतिकूल अवसरो मे खगोल अन्तरिक्ष के सूर्य चन्द्रादिक ग्रहो की स्थितिया तो बदली नहीं जा सकतीं किन्तु सामान्य योग अभ्यासी चिकित्सक अपनी अथवा आवश्यकतानुसार रोगी की इन नाडियो के स्वर-प्रवाह को बदलकर अनुकूलता प्राप्त कर उपचार औषधि सेवन आदि की परमोपयोगी व्यवस्था दे सकता है। इन प्रवाह अनुकूलता प्राप्ति मे कुछ मिनट ही लगते है। अत मेरा तो अपने आयुर्वेद के सभी प्रबुद्ध चिकित्सक बन्धुओ से अनुरोध है कि वे स्वर-साधना का अभ्यास कर इसके चमत्कार भी देखे और जगत का कल्याण करने मे विशिष्ट सहयोग प्रदान करे।

प्राणायामादि की सिद्धि द्वारा गम्भीर मनन, चिन्तन, दर्शन की उपलब्धि हमारे ऋषि-मुनियो की अनुपम देन है, पाचभौतिक शरीर को उन्ही बाह्य पचतत्वो से समीकरण करना, भौतिक जगत पर आध्यात्मिक ढग से नियन्त्रण करना, शरीर केन्द्रो का ब्रह्माण्ड के तत्वो, पिण्डो, नक्षत्रो से आकर्षण आदि के द्वारा आत्मसात् करना, मनन निदिध्यासन से सयोग कर उसी गम्भीर उपलब्धियो की प्राप्ति करना, उनके जीवन का परमोच्चध्येय रहा है। इन्हीं परिस्थितियो मे अन्य ग्रहो का प्रभाव पृथ्वी के जीवतन्तु प्राणधारियो पर कितना, कैसा, कब पडेगा। इसका अन्वेषण, खोज परम्परागत करते हुए उन्होने कुछ विधान स्थिर किये। वे हमारे जीवन मे कितने उपयोगी सिद्ध हो रहे है, इसका निरन्तर विकास करना मानव समाज का अपना कर्तव्य है। इसी आधार पर नैतिक-अनैतिक दोनो प्रकार के प्रयोग इसी परम्परा मे सिद्ध किये गये है। इन सबको हम ज्योतिष-शास्त्र के अन्तर्गत ही लावेगे। इस प्रकार यदि बहुमूल्य पत्थरो-रत्नो से उपकारी औषधियो का निर्माण भस्म एव पिष्टियो के रूप मे हुआ तो यह भी हमारे ऋषि-मुनियो की कृपा का प्रसाद है। इसी समाकलन के अन्तर्गत विशिष्ट ग्रह-नक्षत्र बेला मे, इन ग्रहो से उनकी सम्यक् ज्योति आकर्षित करके इन रत्नो मे प्रवेश कराके मानव के समस्त शारीरिक-मानसिक रोगो को ही नही मन-आत्मा की पतितावस्थादि क्लोशो को शमन कर इस जीवन का परमोच्च उद्देश्य पूर्ति हेतु मे प्रयत्नशील हू। इस पर पृथक् ग्रन्थ रचना का प्रमुख भाग लिखा जा चुका है।

ग्रहो के आधार पर उदर रोगो की रत्नो से निर्मित पिष्टियो एव भस्मो का विधान हमारे आयुर्वेद ग्रन्थो मे पाया जाता है उसे भी मै यहा नीचे दे रहा हू। यद्यपि इन रत्नो से विभिन्न प्रकार के रोग शमन किये जाते है, किन्तु यहा अभिप्राय केवल उदर-विकारो से ही है, अत उनका दिग्दर्शन कराना अभीष्ट है। ग्रहो के आधार पर रत्नो की व्यवस्था निम्न प्रकार है-महादशा, अन्तर्दशा आदि के समय इन रत्नो से निर्मित भस्मो-पिष्टियो का प्रयोग हितकारी होगा। सूर्य का प्रतीक रत्न माणक, चन्द्रमा का मोती, मगल का प्रवाल मूगा, बुध का पन्ना, गुरु का पुखराज, शुक्र का हीरा, शनि का नीलम, राहु का गोमेद एव केतु का लहसनिया।

सभी रत्नो की पिष्टिया एव भस्मे बनाई जाती है। भस्मो से पिष्टिया अति मृदु एव गुणकारी होती है। हृदय रोग, जीर्ण

रोग आदि मे पिष्टिया विशेष हितकारी मानी जाती है। भस्म मे रत्न के वीर्य-तेज से शरीरकोष नष्ट हो जाते हैं। अवस्था भेद से उनकी उग्रता नाडी-सस्थान एव केन्द्रो के लिए हानिकारक है।

सूर्य-माणक शीत वीर्य, दीपन वृष्य, वात-कफ नष्ट करने वाला एव सूर्य ग्रह पीडा से उत्पन्न रोगो का नाश करता है।

चन्द्रमा-मुक्ताभस्म-पिष्टी कफ, पित्त, क्षय, अग्निमाद्य, वातरोगादि दूर कर शरीर पुष्ट करती है। यथा-

मगल-प्रवालपिष्टी-भस्म उत्तम दीपन होने से रस की श्रेष्ठ उत्पत्ति, आमाशय के शूल आदि नष्ट करती है।

बुध-पन्नापिष्टी-भस्म अग्नि प्रदीप्त करके ओज की वृद्धि करती है। आमाशय एव हृदय की निर्बलता को दूर करती है।

गुरु-पुखराज पिष्टी-भस्म मन्दग्नि को दूर करके अग्नि को प्रदीप्त करती है।

शुक्र-हीरा पिष्टी-भस्म तीनो दोषो की शामक बनकर समग्र रोग नाशकर्ता होती है।

शनि-नीलम की पिष्टी-भस्म बल्य, पाचक एव त्रिदोष नाशक होती है।

राहु-गोमेद मणि की पिष्टी-भस्म दीपन, पाचन, मुख मण्डल पर ओज लाने वाली होती है।

केतु-वैद्डूर्य-लहसनिया की भस्म एव पिष्टी अग्नि को प्रदीप्त करके आयु बढाने वाली होती है।

इन सब ग्रहो के ज्योतिष विधि-विधान की रूपरेखा के अनुरूप रत्नो से निर्मित औषधि विवेचन के उपरान्त यह मान लेना चाहिए कि कुण्डली के आधार से फलित का सही एव पूर्ण ज्ञान और निदान कर देना सहज काम नहीं है। शुभ ग्रह सदैव शुभ फलदायी होगे यह सर्वथा भ्रमपूर्ण है। इसी प्रकार मैने यद्यपि बार-बार शनि, राहु, सूर्य को बुरा-दोषी ठहराया है। रोग निदान मे इनका प्रभाव ऐसा ही होता है किन्तु सासारिक अन्य क्षेत्रो मे सूर्य सम्मान प्रतिष्ठा देने वाला, शनि उच्च स्थिति प्रदान करने वाला विशेषत राज सम्मान दाता एव वही शनि द्वादश भवन मे वर्ष मे स्थित होकर हर्णदायक, परिवार मे विवाह-उल्लास जैसे प्रोग्राम बना देने वाला हो जाता है। इसी प्रकार राहु की स्थिति है। पचम क्षेत्र मे स्थित राहु धर्म क्षेत्र पर पूर्ण दृष्टि डालकर धर्म-यश की प्रवृत्ति-बुद्धि-दाता बन जाता है। क्योकि राहु का गुण प्रभाव त्याग का होता है, अत वह सासारिक विषय-भोगो से पृथक् रखकर विशिष्ट गम्भीर मनन, चिन्तनशील बना देता है। सासारिक चतुराई की बुद्धि पर परदा डाल देता है, फिर चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो, सामाजिक हो फिर भी भरण-पोषण निमित्त अर्द्धांगी केतु प्रभाव से अर्थ सचय होता ही है। इसी प्रकार गुरु की स्थिति है, स्थान हानिकारी जीव जिस घर मे बैठता है उस घर की हानि करता है, शुभ ग्रह होने पर भी। सामान्यत वह सर्वत्र शुभ फल प्रदाता बनना चाहिए किन्तु उसके दो स्वरूप है-सासारिक एव आध्यात्मिक। गुरु का काम छल छिद्र प्रवचना आदि से अपने शिष्य को मुक्त करना है, उपरामता देता है किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र की उन्नति करता है। स्त्री क्षेत्र मे बैठकर द्विभार्या योग बना दे, स्त्री से तीन, छ अक के व्यवहार रखे, स्त्री विषय-भोगो से तृप्ति नहीं मिल पाती, स्त्री वियोग करादे किन्तु फिर भी आयु की वृद्धि करता है, बुद्धि का विवेकशील, गाभीर्य चिन्तन करने वाला दार्शनिक, देवतुल्य बना देता है, उसके तर्क के समक्ष नत-मस्तक होना पडता है, स्वभाव मे गुरुता प्राप्त होती है, धैर्य एव क्षमाशील बना देता है। अत आध्यात्मिक क्षेत्र मे उसका वर्चस्व होता है तो सासारिक क्षेत्र मे वह उतना अधिकार नहीं पा सकता। सामाजिक क्षेत्र मे उसे सम्मान, प्रतिष्ठा, गौरव प्राप्त हो जाते है, चेहरे पर व्यक्तित्व दे जाता है। इस प्रकार गुरु से दोनो प्रकार के फल प्रतिपादित होते है। इधर सूर्य उग्र ग्रह है, अग्नि उसका प्रतीक है किन्तु चतुर्थ, अष्टम एव द्वावश भवनो मे पहुचकर अपनी नैसर्गिता खोकर जल का स्वरूप धारण कर लेता है। इस प्रकार हमने देखा कि एक ही शुभ या अशुभ ग्रह भिन्न-भिन्न क्षेत्रो एव परिस्थितियो मे अनुकूलता-प्रतिकूलता दोनो प्रदान करता है। ग्रह के साथ क्षेत्रीय सम्बन्धो के साथ अनेक अन्य प्रकार है, जिन सबके आधारो का मध्य दृष्टि रखकर ही फलित हेतु कुछ कहना उचित होगा।

अब मै यहा सक्षेप मे ज्योतिष आधार पर यह विवेचन करने का प्रयत्न करूगा कि आयुर्वेद के अनुसार आमाशय मे भोजन पहुचने पर जो कुछ प्रतिक्रिया होती है उसमे ग्रहो के आधार पर ज्योतिष की कितनी सामञ्जस्यता एव सार्थकता सिद्ध होती है। आयुर्वेद का सिद्धान्त है-

रसाद् रक्त ततो मास, मासाद् मेदा जायते।
मेदयोऽस्थि ततो मज्जा तत्र शुक्र सम्भव ।।

अर्थात् आमाशय मे पहुचकर भोजन परिवर्तन का नियम यह है कि रस, रक्त, मास, मेदा, अस्थि, मज्जा और अन्त मे शुक्र की उत्पत्ति। आशय यह है कि एक के पश्चात् दूसरी धातु बनती है और रस की अन्तिम प्रक्रिया शुक्र वीर्य मे जाकर होर्ा है। इन सप्त धातुओ के कारक ग्रह इस प्रकार है अर्थात् रस का चन्द्रमा, रक्त का मगल, मास का सूर्य, मेदा का बुध, अस्थि का शनि, मज्जा का गुरु एव शुक्र वीर्य का शुक्र स्वय।

जिस प्रकार आयुर्वेद मे रस की धातुओ का मूलाधार मानकर उसकी सर्वोच्च सत्ता मानी गई है अर्थात् रस विकृति से सभी धातुओं पर कुप्रभाव बन जावेगा, इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र मे चन्द्रमा की स्थिति है। जातक की जन्म कुण्डली के साथ चन्द्र कुण्डली के निर्माण की यही महत्ता है, उसी के आधार पर महादशा अन्तर्दशाओ के अनुभाग विभाग किये जाते है। चन्द्रमा की छठे, आठवे, बारहवे घरो की स्थिति, यदि किसी अन्य ग्रह की सहायता हो तो प्राणी की राम नाम सत्य कर देती है। पूरा ग्रन्थो के फलित आधार भी चन्द्र लग्न के आधार पर कहे गये है। कहा तक इसकी महत्ता बताई जाय-सक्षेप मे इतना पर्याप्त है कि जीवन के सस्कार उसी ग्रह के आधार पर गूथे जाते है, दैनिक सचरण से मानव का भविष्य भी मालूम हो जाता है।

उदर रोग निदान-हर मानव की कुण्डली मे रोग का स्वामी पृथक् होता है। रोगेश के आधार पर पृथक् रोग इस मानव पर अपना प्रभव दिखायेगे। यहा पञ्चम भवन एव पञ्चमेश की स्थिति, पञ्चमेश का बलाबल, अन्य ग्रहो की इस क्षेत्र पर दृष्टियो अथवा पञ्चमेश का अशगत बल, क्षेत्र बल, दृष्टि बल, शत्रु मित्र पक्षीय बल सभी पक्षो से विचारणीय रहता है, जिससे स्पष्ट होता है कि मानव के उदर की स्थिति क्या है ? रोगेश व लग्नेश तथा लग्न का बलाबल तारतम्य भी इसी पर्यविक्षण मे ध्यान रखा जावेगा। इस प्रकार उदर रोग की सम्भावना हेतु इन तीन स्थानो और उनके अधिपतियो का विचार आवश्यक है। यदि ज्योतिर्विद और भी गम्भीर चिन्तन करना चाहे जैसा कि प्राय हमारा आधार रहता है, चन्द्र कुण्डली एव सूर्य कुण्डली भी बनाकर उसके लग्नो, लाग्नेशो, उन पर तथा पचम स्थानो की गम्भीरताओ का ज्ञान कर लेना चाहिए, क्योकि आमाशय रोगो मे चन्द्रमा रस और सूर्य जाठराग्नि की स्थिति का द्योतक होता है। हर व्यक्ति आज चालू काम करने पर तुला है, वह तो अपने कर्त्तव्य से च्युत है ही अन्यथा यह भी सम्भव है कि इन बारीकियो का गम्भीर दर्शन परम्परागत ग्रन्थो मे अभाव होने से वह भी क्या विचार करे, यह तो सब अनुसन्धान एव अनुभवो पर आश्रित है। ये अनुभव भी यदि पराशक्ति से पाप्त हुए हो तब तो सही होते ही है। क्योकि अथाह समुद्र से एक बारगी कितने रत्न निकाले जा सकेगे।

इसके उपरान्त विकास और प्रवृत्ति ज्ञान प्राप्त करने हेतु महादशा, अन्तर्दशा एव प्रत्यन्तर दशाओ की स्थिति भी विचारणीय है। नियमानुसार महादशा का अधिपति अपना प्रभाव उस समय खो बैठता है जब अन्तर प्रयन्तर दशानाथ यदि मित्र क्षेत्री बन जाते है। इस स्थिति को समझने के लिये कालेज के आचार्य (प्रिंसिपल), विभाग अध्यक्ष एव प्रवक्ता का उदाहरण समीचीन होगा। आचार्य के निर्देशन मे सम्पूर्ण शिक्षा-सस्थान का सचालन होता है किन्तु विभागीय अध्यक्ष अपने विभाग का पूर्ण उत्तरदायी होता है। अत प्रवक्ता लैक्चरर अपने विभागीय अध्यक्ष के साथ अपनी सामञ्जस्यता के कारण दोनो ही अपने कार्यक्षेत्र मे पठन-पाठन हेतु आचार्य की बिना परवाह किये अपना कार्य दक्षतापूर्ण चला लेते है ठीक इसी प्रकार अन्तर-प्रयन्तर के ग्रह अपनी स्थितिवश बलाबल के आधार पर प्राणी के सुख-दु ख मे प्रभावी बन जाते है। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है उसमे दृष्टिबल पक्षबल आदि की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अनेक बार ग्रह स्पष्ट के आधार पर भाव परिवर्तन हो जाते है, ग्रह अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाते है तब उनके फलाफल मे भी अन्तर हो जाते है। बडा कठिन विषय है फलित विषय गणित पर अधिकार सम्भव है फलित पर नहीं।

अन्त मे प्रवृत्ति का स्वरूप जानने के लिये जन्म इष्टकाल जन्म के सूर्यांश से वर्ष की स्थिति जानी है। वर्ष कुण्डली बनने पर उसमे मुन्था स्थिति निर्णीत हाने पर निर्दिष्ट वर्ष मे मानव के उदर की पीडा की स्थिति सामान्य बनेगी अथवा भयकर रूप ग्रहण करेगी अर्थात् शरीर पर जाठराग्नि का पभाव सामान्य रहेगा, मन्दाग्नि बनेगी, वात-विकार गैस बनेगी, यकृत् प्लीहा पाचन-शक्ति के कुप्रभावो की सम्भावना होगी आदि बाते वर्ष कुण्डली के सहयोग से बहु विधि प्रगट की जाती है। वर्ष मे इनका प्रभाव किस निश्चित मास मे होगा उसके लिये भी पृथक् मास कुण्डली निर्माण करनी चाहिए। वर्ष कुण्डली की गणना से मास निर्धारित करना यथेष्ट नही माना जा सकता-जैसा कि प्राय

ज्योतिषी जन्म कुण्डली की मात्र से वर्ष एव मास एव ग्रह सचरण विधि से अधिक से अधिक जानकारी की चेष्टा करते है। यह विधि अपर्याप्त है, भ्रममूलक बनते हैं। मास कुण्डली बनने पर होशशास्त्र के अनुसार किन दिनो मे, तारीखो मे, किस समय मे उदर रोग का आक्रमण होगा-प्रभाव होगा और कब मुक्ति मिलेगी जानकारी सम्भव है। रोगी के अजीर्ण होने की सामान्य स्थिति होगी अथवा अति उपचार हेतु रोग के सहयोगी वैद्य, डाक्टरो से परामर्श एव औषधि से काम वन जायेगा या अस्पताल मे भरती होना होगा और अस्पताल से कब मुक्ति मिल पायेगी। इस प्रकार की सम्पूर्ण जानकारी ज्योतिर्विद की पहुच पर आश्रित है इसके साथ ही जन्म कुण्डली का पूर्ण परिवेश सही बनाने पर आधारित है।

जैसा मैने ऊपर सकेत दिया उदर-विकार हेतु पचम घर की स्थिति का अवगाहन किया जाय और यदि साथ ही चतुर्थ एव दशम स्थान भी प्रभावित हो उन पर क्रूर ग्रह की दृष्टि द्वारा वलावल से क्षर्रित हो तो हृदय रोग, वक्ष रोग रोगो की उत्पत्ति मे वे ही उदर-रोग मे सहायक ग्रह एव स्थान बन जाते है। क्योकि प्राय रोग निदान से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आमाशय पाचन-क्रिया विगडने पर वात-विकार ही हृदय स्थल पर आघात अथवा पीडादायी बन जाते है। इस पीडा से भयाक्रान्त हो उदर-विकार के स्थान मे हृदय रोग की त्रासदायक मनोव्यथा सताने लगती है। ऐसे समय चिकित्सक को मूलत उदर-विकार का उपचार करना आवश्यक है न कि सीधे ही हृदय रोग शमन का। इस सामान्य मूल का परिणाम यह होता है कि क्लान्त रोगी के मन मानस पर गम्भीर चिन्ता से वास्तविक हृदय रोग की उत्पत्ति कर देता है, अत मेरी सम्मति मे चिकित्सक को ज्योतिर्विद होना उपचार क्रिया के लिये सहायक होता है। इस मध्यकालीन परिस्थिति मे पचमेश आदि पर मगल भी कारणभूत बन रहा हो और उसमे शनि का प्रभाव पड रहा हो तो अवरोधक तत्व के कारण रक्त मे अवरोध या वसाकॉलेस्टेरोल की सम्भावना प्रगट करती है जिसकी जानकारी खून की जाच बडे अस्पतालो मे होती है और विशिष्ट प्राइवेट लेवोरेटरीज मे भी, जहा पैसा देकर जाच कराले।

इसी प्रकार जन्म कुण्डली एव वर्ष कुण्डली की सामञ्जस्यता से उदर-विकार, उदर रोगो के प्रमाण मिल रहे हो, तृतीयेश, अष्टमेश ओर मारकेश की स्थिति ठीक न हो तो पाचन-क्रिया दोष से यकृत्-प्लीहा आदि दोषो की सम्भावना बढ जाती है, इन विकारो का गम्भीर परिणाम तब और हो जाता है जब दशानाथो के साथ वर्ष स्वामी एव उसमे समन्वयकारी योग अवसर प्राप्त हो जाय। ऐसे अवसर पर ज्योतिर्विद का भी कर्त्तव्य है कि समुचित उपचार की सहमति प्रभावशली ढग से दे दे। हमारी मान्यता तो यह भी है कि ग्रहो के आधार पर निदान हो और ग्रहो के आधार पर ही उदर रोगो की ही नहीं समस्त रोगो की चिकित्सा हो। इस विषय पर हमने १९७८ जनवरी मे अजमेर से प्रकाशित 'स्वास्थ्य' मासिक के विशेषाक मे अपना अनुभव सिद्ध लेख प्रकाशित किया था। हमने यहा चिकित्सको से भी प्रार्थना की है कि वे इस पद्धति को अपना कर क्लिष्ट एव पुराने रोगियो की चिकित्सा मे सहायक बन सकते है, और यश के भागी बन सकते है, यदि उन्हे इस कार्य मे हमारी सहायता अपेक्षित हो तो ले सकते है।

आमाशय के विशेष रोग-यो तो पाचन-क्रिया दोष से अजीर्ण, ज्वर, जुकाम, मुखपाक, विसूचिका, हैजा, वमन, हिक्का-हिचकी, श्वास-कास, क्षय, उदरशूल, कृमि, यकृत्-प्लीहा, वृक्क, पाडु-कामला आदि विभिन्न रोगो की उत्पत्ति होती है। सामान्य रूप से ज्योतिष निदान व्यवस्था मे उदर-विकार भी समाविष्ट हो जाते हैं, किन्तु यहा हम हार्निया, प्लीहा एव पेट के घाव का ज्योतिष आधार पर विवेचन करेगे क्योकि ये दुरूह रोग विशेष रूप से प्रचलित है-इनका सक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

हार्निया-आतो का अपने स्थान से भ्रष्ट होना कहलाता है। स्थान भ्रष्ट करने वाले ग्रहो मे सूर्य, शनि, राहु प्रमुख माने जाते है। जब पचम भाव एव पचमेश पर स्थान भ्रष्ट कर्त्ता इन ग्रहो का पूर्ण प्रभाव हो तो इस रोग की उत्पत्ति कही जावेगी। इनके सहयोग कर्त्ता दृष्टा आदि ग्रहो की स्थिति पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके है।

पेट मे घाव-पाचवे घर की निर्बल स्थिति होना आवश्यक है ही, इस पर दुष्ट ग्रहो का सहयोग एव दृष्टि आवश्यक होती है। मगल की पचमेश पर पूर्ण दृष्टि भी आवश्यक है। यदि पाचवे घर का स्वामी अच्छे घर मे हुआ तब तो रोगी उपचार से बच जाता है और यदि वह छठे, आठवे एव मारक स्थानो दूसरे, सातवे भवन मे हुआ या मारकेशो की कोप दृष्टि हुई और दशाओ, वर्ष का भी कुप्रभाव हुआ तो देह-त्याग की सम्भावना हो जाती है विशेषत जबकि आयु भी निस्शेष हो रही हो।

प्लीहा-यदि लग्न मे शनि की स्थिति हो, चन्द्रमा लग्नेश सप्तमेश होकर पापग्रहो से दृष्ट हो जाय तो प्राणी प्लीहा रोगी बन जाता है।

रोग उत्पत्ति कब-जैसी कि मेरी अपनी धारणा है कि जन्म-कुण्डली का विकास हमे महादशा की अन्तर्दशा के योग्य काल प्रदर्शित करता है। अत उदर-विकार से जातक रोगी कब बनेगा, कब उसमे वृद्धि होगी और कब नीरोगिता प्राप्त करेगा, इन सबकी जानकारी हमे इन दशाओ से प्राप्त होगी। इन रोगो की अति अभिवृद्धि से मृत्यु तुल्य कष्ट होगा अन्यथा मरण ही हो जावेगा। इस पर सकेत देना इन दशाओ का ही काम है। मरण हेतु सहयोग देने वाले सूर्य चन्द्र को छोड अन्य ग्रह होते है। इसका नैसर्गिक कारण यह है कि चन्द्र मन का प्रतीक है, मन के मरने की स्थिति नैराश्य जीवन है, उपरामता है और कभी मन की उपरामता सहज समाधि से भी हो जाती है जिसे निर्विकल्प समाधि के नाम से पुकारा जाता है और सूर्य तो स्वय प्राण का प्रतीक है, यद्यपि शनि सूर्य का भक्षक बन जाता है। किन्तु प्राण अधिपति होने से वह अपनी दशा महादशा मे मारक नहीं बन सकता, यह तथ्य हमारे गम्भीर चिन्तन की उपलब्धि है- सूर्य उत्ताप, अतिक्षरण की सम्भावना प्रस्तुत कर सकेगा किन्तु वह अपनी दसा सम्प्राप्ति मे विनाश नहीं करेगा। वैसे वह मेष राशि मे अर्थात् वैशाख मे उच्च स्थिति का होता है तब मधु मास फाल्गुनान्त एव चैत्र सम्पूर्ण के उपरान्त दोष को शमन करने की स्थिति मे होता है। भयकर ताप गर्मी वैशाख मे नहीं पडती। इसी प्रकार गुरु का विवेचन यह है कि शुभ ग्रह होते हुये स्थान हानि को मूल प्रवृत्ति के कारण पचम भवन को विकारी बनाकर महादशा, अन्तर्दशाओ, अन्य सहयोग पाकर वह आमाशय के रोगो की उत्पत्ति मे सहयोग करेगा। मद्यप्रतापी ग्रह शीघ्र रोगदाता और शीघ्रनाशक तथा मन्दाग्नि के ग्रह मन्दगति से रोग उत्पत्ति और मन्दगति से नाश करेगा।



जीर्ण प्रवाहिका पर एक अनुभूत प्रयोग

जीर्ण प्रवाहिका हर चूर्ण-ईसबगोल १०० ग्राम, सौफ कच्ची ५० ग्राम, सौफ भुनी हुई ५० ग्राम, बेलगिरी १०० ग्राम, इन्द्रयव (कुटज बीज) २५ ग्राम, अतिबिषा (अतीस) १२ ग्राम, सोठ २५ ग्राम, कुडा की छाल ५० ग्राम, धायपुष्प २५ ग्राम, धनिया १२ ग्राम, मिश्री २५ ग्राम, अथवा अपनी इच्छानुसार मिश्री के बदले काला नमक ५० ग्राम।

निर्माण विधि-सौफ को भून ले जलने न पाये एव मिश्री का अलग चूर्ण बनाकर रखले तथा ईसबगोल को छोडकर सभी द्रव्यो का महीन चूर्ण कपडछान कर रखले और सभी द्रव्यो को एक साथ मिलाकर चौडे मुह वाली शीशी मे सुरक्षित रखे।

अनुपान एव मात्रा-१२ ग्राम से १५ ग्राम तक शीतल जल के साथ दिन-रात मे दो से तीन बार तक।

रोग निर्देश-यह विशेषकर जीर्ण आमातिसार (Amaebic Dysentry) के लिए रामबाण एव आशुगुणकारी औषधि है। रक्तातीसार, अतिसार (Bacillary Dysentry) पाचन की शैथिल्यता, आध्मान, मरोड पेट मे ऐठन होना, उदरवायु (वायु सचय के कारण पेट मे गुड-गुडाहट होना) अरुचि, अग्निमान्द्य आदि मे अत्यन्त ही आशु गुणकारी है।

-डा० वी० एन० गिरि

उदर-विकारों का मनोदैहिक पक्ष एवं मानसिक उपचार

डॉ० अयोध्याप्रसाद अचल एम०ए०, पी०-एच०डी०, आयुर्वेद बृहस्पति,
योगायुर्वेद शोध-सस्थान, धर्मसभा रोड, रमना, गया-८२३००१

मनोदैहिक का सीधा-सा अर्थ है मन और देह से समान रूप से या साथ-साथ सम्बन्धित। इस प्रत्यय के अन्तर्गत आने वाले रोगो के निदान मे मनोवैज्ञानिक और दैहिक कारक साथ-साथ पाए जाते है। इनमे मानसिक तनाव और शारीरिक लक्षणो की उत्पत्ति या उनमे घटा-बढी मे स्पष्ट ही सहसम्बन्ध देखने को मिलता है। मानसिक तनाव न केवल रोग को उत्प्रेरित करता है प्रत्युत् जब-जब और जैसे-जैसे उसमे घटा-बढी होती है उसी के अनुरूप रोग के लक्षणो और उसकी गम्भीरता मे भी घटा-बढी देखी जाती है।

मानसिक तनाव या द्वन्द प्राणी के शरीर के किस अग या सस्थान के विकारो के लक्षणो के रूप मे अभिव्यक्त होगे यह बहुत हद तक निम्न कारको पर निर्भर करता है-

१ जो अग सरचनात्मक दृष्टि से कमजोर हो।

२ जिस अग मे उस रोग की पूर्वप्रवृत्ति पाई जाए या जो पहले भी उस रोग से आक्रान्त हो चुका हो।

३ जिसका रोगी के लिए कोई प्रतीकात्मक महत्व हो।

४ घटना मनोवैज्ञानिक अनुकूलन या अनुबन्धन (कन्डीशनिग) मात्र हो।

आधुनिक चिकित्साशास्त्र और मनश्चिकित्साशास्त्र मे किए गए अध्ययनो के क्रम मे प्राणी के जठरान्त्रिय तन्त्र को अचेतन मन की ग्रन्थियो और तज्जन्य दुश्चिन्ता के लक्षणो की अभिव्यक्ति के लिए सबसे अधिक सुग्राह्य पाया गया है। दिन प्रति-दिन के जीवन मे भी मनोविकारो का इन पर सीधा प्रभाव देखने को मिलता है। शोक और चिन्ता मे भूख मर जाती है। भय मे पाचन-क्रिया मन्द हो जाती है। अत्यधिक भयभीत होने पर पाखाना निकल जाता है। वीभत्स दृश्य देखकर म्चिली आने लगती है।

पाचन और परित्यागन या बहिष्करण की क्रियाए स्वत सचालित तन्त्रिका-तन्त्र से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती है। अत कोई भी परिस्थिति या मनस्थिति जो स्वत सचालित तन्त्रिका-तन्त्र को गम्भीर रूप मे प्रभावित करती है जठरान्त्रिय-तन्त्र को भी आक्रान्त कर उसमे विकारो को उत्पन्न कर सकती है, बशर्ते ऊपर बतलाई गई तन्त्र को रोग के प्रति सुग्राह्य बनाने वाली चार परिस्थितियो मे से पहले से कोई वर्तमान हो।

उदर का मनोविकारो से गहरा सम्बन्ध है। यह स्वत सचालित तन्त्रिका-तन्त्र के ऐसे तन्तुओ से सम्भरित रहता है जो मस्तिष्क और आतो या अन्तरागो के बीच विनिमय का काम करते है। इनके माध्यम से ही अचेतन मन की शक्तिया, उपयुक्त अनुकूल न पाकर, उदर तथा आतो के ऊतको को प्रभावित करती है।

अपनी दिन-प्रतिदिन की बोलचाल मे भी हम अनेक ऐसे मुहावरो का प्रयोग करते है जो मनोभावो के जठरान्त्रिय-तन्त्र के साथ सम्बन्धो को व्यक्त करते है-यथा क्रोध पीना, गम खाना, पेट मे बात न पचना, पेट की बात निकालना, पेट का हलका होना (ओछी प्रकृति), पेट फूलना, पेट मे खलबली मचना (चिन्ता या घबडाहट होना) आदि।

आधुनिक मनोविज्ञान के एक सुप्रसिद्ध सम्प्रदाय मनोविश्लेषणात्मक मनोविज्ञान ने जठरान्त्रिय-तन्त्र को प्राणी के मनोलैगिक विकास (साइकोसेक्सुअल-डवलप्मेन्ट) से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध माना है। उनके अनुसार मनोलैगिक विकास के अनुक्रम मे उत्पन्न होने वाली गडबडिया जठरान्त्रिय तन्त्र मे अनेकानेक प्रकार की स्थायी विकृतियो को जन्म देने का कारण बन जाती है। वे पाचन के विकारो, अरुचि, क्षुधानाश

मिचली, दानवी भूख, पेट-गैस आदि को मनोलैगिक विकास की मौखिक अवस्था (ओरल फेज) से सम्बद्ध मानते है। अतिसार, मलावरोध, आन्त्रशोथ आदि को गुदा-अवस्था (ऐनल फेज) मे उत्पन्न गडबडियो का प्रतिफल मानते है। इस सम्बन्ध मे उनके द्वारा प्रस्तुत तर्क अकाट्य भले न हो पर दमदार जरूर है। उन्हीं धारणाओ के आधार पर विकसित मनोविश्लेषणात्मक मनश्चिकित्सा (साइकोएनालिटिकल साइकोथिरैपी) से अनेक रोगी लाभन्वित भी हुए है।

प्रायोगिक अध्ययनो के आधार पर जठरान्त्रिय तन्त्र के निम्न रोगो मे मनोदैहिक पक्ष की प्रधानता के सकेत मिले है-१ अरुचि या क्षुधानाश २ दानवी भूख ३ पेट-गैस ४ आमाशयिक-व्रण तथा ५ बृहदान्त्र शोथ। हमे इस तथ्य को कभी भी नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए। कि ये रोग शुद्ध शारीरिक कारणो की उपज या अन्य शारीरिक रोगो के उपद्रवस्वरूप भी प्रकट हो सकते है। पर प्रस्तुत सदर्भ मे हम इनके उसी स्वरूप की सक्षेप मे चर्चा करेगे जिनमे मनोदेहिक पक्ष की प्रधानता पाई जाती है।

अरुचि या क्षुधानाश

व्यवहारिक जीवन मे हम देखते है कि मानसिक द्वन्द, चिन्ता, अवसाद, अपराध-भावना, शोक भीति, आशका आदि से ग्रस्त लोगो की भूख मर जाती है। उनमे भोजन के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। यदि किसी प्राणी के जीवन मे उक्त परिस्थितिया अधिक दिनो तक बनी रहती है तो वह जीर्ण एव गम्भीर स्वरूप के क्षुधानाश का शिकार हो जाता है। यदि समय रहते ऐसे रोगी का समुचित उपचार न किया जाए तो भुखमरी तथा सक्रमण से उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

विक्षिप्तिज क्षुधानाश (एनोरेक्सिया नरवसा)-कुछ किशोरो मे विशेष रूप से १२ से २१ वर्ष की अवस्था के बीच विक्षिप्तिज क्षुधानाश के लक्षण देखने को मिलते है। लडकिया इससे विशेष रूप से आक्रान्त होती है। इससे पीडित किशोर की भूख मन्द हो जाती है। भार धीरे-धीरे कम होने लगता है पर जाच करने पर उनमे कोई भी शारीरिक विकृति नजर नहीं आती। किशोरियो मे उक्त लक्षणो के साथ-साथ मासिक की गडबडी हृदमन्दता, निम्न चयापचय गति तथा मलावरोध आदि के भी लक्षण पाए जाते है। कभी-कभी ऐसे रोगियो मे क्षीणता एव कृशता के बावजूद ऐसी शक्ति, स्फूर्ति एव कार्यक्षमता देखने को मिलती है जिसकी सामान्यतया उनसे आशा नहीं की जा सकती।

विक्षिप्तिज क्षुधानाश की उत्पत्ति प्राय बाल्यावस्था मे किसी मानसिक समस्या के साथ होती है। अभिभावक अपनी नासमझी एव हठवादिता से भोजन सम्बन्धी समस्याओ का ठीक से न निपटाते हुए परिस्थिति को और भी जटिल बना देते है। ऐसे बच्चो के इतिवृत्त मे प्राय अति सरक्षण या माता द्वारा अस्वीकृति का इतिहास मिलता है। भोजन से इन्कार अभिभावको के प्रति विद्वेष अथवा अपने या दूसरो के प्रति आक्रामकता का प्रदर्शन भी हो सकता है।

अति बुबुक्षा या दानवी भूख

अति बुबुक्षा से पीडित व्यक्ति कितना ही खाए उसकी तृप्ति नहीं होती। उसका भार दिन पति दिन बढता जाता है। अति बुबुक्षा को मनोविज्ञान ने एक प्रतिस्थापित या स्थानापन्न प्रतिक्रिया के रूप मे देखा जाता है। ऐसे व्यक्तियो का इतिवृत्त देखने पर उनमे प्यार का अभाव, असुरक्षा, मानसिक तनाव तथा अवसाद आदि के लक्षण देखने को मिल सकते हैं। वे अपनी अतृप्त इच्छाओ की पूर्ति अति भोजन द्वारा करते है। मेदस्विता से पीडित कुछ व्यक्तियो मे मनश्चिकित्सा के दौरान उनके भार मे कमी आते देखी गई है।

स्त्रियो मे यह पतिक्रिया कभी-कभी पुरुषो या विवाह के प्रति विरोध प्रकट करने के रूप मे भी देखी जाती है। कुछ सन्तानहीन तथा गर्भवती स्त्रियो मे भी अति भोजन की प्रवृति देखी जाती है।

मनोविश्लेषणात्क मनोविज्ञान के अनुसार मनोलैगिक विकास की मौखिक अवस्था मे उत्पन्न अव्यवस्थाए-अतृप्तिया भी आगे चल चलकर अतिभोजन की प्रवृत्ति को जन्म देती है।

कभी-कभी यह अर्जित प्रतिक्रिया के रूप मे देखी जाती है। कुछ माताए लाड प्यार मे ज्यादा खिला-खिलाकर बच्चे की आदत बिगाड देती है जिससे वह पेटू हो जाता है। कुछ दूसरो को ज्यादा खाते देखकर भी ज्यादा खाने लगते हे।

अध्ययनो द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि अति भोजनजन्य मेदस्विता मे मनोवैज्ञानिक कारक अथवा मनोविकार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

पेट-गैस या गैस्ट्राइटिस

पेट गैस क लक्षणो का मय, क्रोध, द्वेष ईर्ष्या आत्मग्लानि, अपराध भावना, चिन्ता आदि से गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। इस रोग के मुख्य लक्षण है-अजीर्ण, आध्मान, अत्यम्लता, मिचली, डकार, मलावरोध आदि।

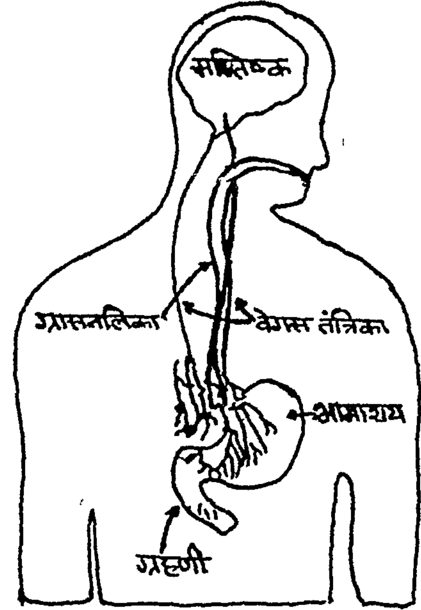
कुछ रोगियो मे जब-जब वे तनावग्रस्त होते है। उनके लक्षणो मे वृद्धि हो जाती है। स्वत सचालित तन्त्रिका-तन्त्र की आपात्कालीन परिस्थितिया सवेदनशील जठरान्त्रिय-तन्त्र को तत्काल अपनी चपेट मे ले लेती है। फलत पाचन की क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। अम्लता एव क्षारता का सतुलन बिगड जाता है। स्वत सचालित पेशियो की क्रियाए बाधित होने लगती है।

किसी-किसी रोगी मे यह एक अर्जित प्रतिक्रिया भी हो सकती है। वह तनावग्रस्तता का सामना जठरान्त्रिय लक्षणो द्वारा करना सीख लेता है। उदाहरणार्थ यदि बच्चे की परिवरिश ऐसे परिवार मे होती है जिसमे उसकी माता या पिता स्वय तनाव का सामना जठरान्त्रिय लक्षणो द्वारा करता है और बच्चा उस हालत मे उसकी विशेष सेवा-सुश्रुषा होते हुए देखता है तो वह स्वय भी अभिभावको का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए ऐसा करना सीख सकता है। यह प्रतिक्रिया उसमे अनुकूलित प्रतिक्रिया (कन्डीशन्ड रेस्पान्स) का रूप धारण कर लेती है।

पेप्टिक अल्सर या जठर-व्रण

जठर व्रण साधारणतया आमाशय अथवा छोटी आन्त्र के ऊपरी भाग की श्लैष्मिक कला मे खुले व्रणो के रूप मे उत्पन्न होते है। ये सवेगात्मक और आगिक कारको की मिली-जुली क्रिया का प्रतिफल होते है। इन्हे भी आधुनिक सभ्यता की देन माना जाता है। नगरो मे रहने वाले ७ से १० प्रतिशत तक लोग इनकी शिकार होते है।

उदरीय रोगो मे मनोदैहिक दृष्टि से पेप्टिक अल्सरो का ही सबसे अधिक अध्ययन किया गया है। प्राप्त तथ्यो के आधार पर ऐसा माना जाता है कि लगातार बना रहने वाला सवेगात्मक तनाव और तज्जन्य स्वय सचालित तन्त्रिकातन्त्र की सक्रियता सीधे वेगस-तन्त्रिका को प्रभावित करती है। वेगस तन्त्रिका ही आमाशयिक पाचक रसो के स्राव और उदरीय पेशियो की लयबद्ध गतियो को नियन्त्रित करती है। वेगस तन्त्रिका की क्रिया मे उत्पन्न विकृति पाचक रसो के स्राव और उदरीय पेशीय-गतियो मे भी गडवडी पैदा कर देती है। इस प्रकार हम देखते है कि



प्राणी के जीवन मे उत्पन्न सवेगात्मक सघष एव तज्जन्य तनाव और चिन्ता सीधे जठरान्त्रिय तन्त्र की क्रियाओ को प्रभावित करते है। अत्यधिक मात्रा मे स्रवित अम्लतायुक्त पाचक रस (विशेष रूप से हाइड्रोक्लोरिक एसिड) आमाशय अथवा ग्रहणी की दीवारो की आन्तरिक झिल्ली को खा जाते है। प्रभावित स्थानो पर ज्वालामुखी के मुख की आकृति के व्रण बन जाते है। जब अम्लतायुक्त पाचक रसो का सतत् स्राव इन्हे मरने नहीं देता तो ये जीर्ण होकर और भी उग्र रूप धारण कर लेते है। इस सदर्भ मे किए गए वैज्ञानिक पर्यविक्षणो एव प्रयोगो से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि तनावपूर्ण परिस्थितियो के अन्तर्गत उत्पन्न सवेगात्मक परिवर्तन गैस्ट्रिक अल्सर के लक्षणो को न केवल प्रेरित बल्कि उद्दीप्त भी करते है। इस सदर्भ मे किए गये मात्र दो अध्ययनो का नीचे अति सक्षेप मे उल्लेख किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध मे सर्वप्रथम महत्वपूर्ण अध्ययन ब्यूमाउण्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है। एलेक्सिस सेन्ट मार्टिन नामक एक व्यक्ति के उदर मे गोली लगने से छेद हो गया था जिसने नाडीव्रण या विवर का रूप धारण कर लिया था। ब्यूमाउण्ट ने मार्टिन को भिन्न-भिन्न परिस्थितियो एव सवेगात्मक अवस्थाओ मे भोजन खिलाकर उसके उदरीय विवर के माध्यम

से ही उसकी पाचन-क्रियाओ का अध्ययन कर उनका विस्तृत व्यौरा प्रस्तुत किया है।

पचास के दशक मे ऊल्फ तथा ऊल्फ नामक विद्वानो ने टाम नामक एक व्यक्ति पर जिसके पेट मे नाडीव्रण था इसी प्रकार के अनेक अध्ययन किए। एक मौके पर प्रायोजित प्रयोग के एक ा के रूप मे ही उस पर किसी काम के लिए अपने नियोजक से आवश्यकता से कहीं अधिक चार्ज करने का जबर्दस्त आरोप लगाया गया। उसने इसका प्रतिरोध तो किया पर एक वेतनभोगी कर्मचारी होने के नाते अपने आक्रोश को बाह्य व्यवहार के द्वारा प्रकट न कर सका। वह अन्दर ही अन्दर घुट के रह गया। इस सवेगात्मक अवस्था मे देखा गया कि उसकी उदरीय कला अधिक रक्ताभरण के कारण लाल हो गई। पाचक रस अत्यधिक मात्रा मे और अति अम्लता से युक्त होकर स्रवित होने लगे। उसकी उदरीय कला का जब एक सीसे की छड से स्पर्श किया गया तो वह भगुर सी प्रतीत हुई और स्पर्श किए गए स्थान से रक्त रिसने लगा।

बृहदान्त्र-शोथ (कोलाइटिस)

बृहदान्त्रशोथ अनेक लक्षणो के रूप मे व्यक्त हो सकता है-यथा अतिसार, प्रवाहिका मलावरोध, उदरशूल, रक्तस्राव आदि। इसके दो मुख्य भेद माने गए हैं-श्लेष्मल बृहदान्त्रशोथ (म्युकस कोलाइटिस) तथा व्रणीय बृदान्त्रशोथ (अलसरेटिव कोलाइटिस)। श्लेष्मल का प्रधान लक्षण मल के साथ श्लेष्मा का आना है। व्रणीय मे आन्त्र की श्लेष्मल कला मे उत्पन्न भगुरता के कारण उसमे व्रण उत्पन्न हो जाते है। जिनसे रक्त रिसने लगता है। फलत मल के साथ रक्त भी आने लगता है।

बृहदान्त्र मे सवेगात्मक तनावो के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनो का अध्ययन भी बृहदान्त्रछेदन तथा उण्डुकछेदन की अवस्था मे करके देखा गया है। इन अध्ययनो मे पाया गया कि कतिपय सवेगात्मक परिस्थितियो के अन्तर्गत न केवल बृहदान्त्र की वाहिकामयता मे स्पष्ट परिवर्तन लक्षित होते है। प्रत्युत् लाइसोजाइम के स्राव मे भी अव्यवथा उत्पन्न हो जाती है। प्रयोगो की एक श्रृखला मे पाया गया कि सवेगात्मक अवस्थाओ के उत्पन्न होने पर प्रयोज्यो मे बृहदान्त्र की गतिशीलता रक्तारता तथा लाइसोजाइम के स्राव मे वृद्धि हो गई। लाइसोजाइम बृहदान्त्र की श्लेष्मल कला के सुरक्षात्मक स्तर का अपहरण कर उसे अन्य अनिष्टकर कारको-यथा सक्रमण आदि के प्रति सुग्राह्य बना देता है। कुछ विशेषज्ञो के अनुसार सवेमात्मक तनावो के फलस्वरूप उत्पन्न बृहदान्त्र की पेशियो मे दीर्घस्थायी उद्वेष्टन उसकी श्लैष्मिक कला मे अरक्तता की स्थिति उत्पन्न कर देते है। पेशीय तनाव के शिथिल होने पर उपकला का परिगलन रक्तस्राव को जन्म देता है।

बृहदान्त्रशोथ के रोगियो के मनोवैज्ञानिक पक्ष के अध्ययन मे यह भी पाया गया कि यद्यपि इनमे सामान्य से अधिक बौद्धिक क्षमता पाई जाती है पर ये सवेगात्मक परिस्थितियो का कुशलतापूर्वक सामना करने मे असमर्थ होते है। जटिल परिस्थिति के उत्पन्न होने पर ये अवसादग्रस्त तथा आक्रोशयुक्त हो जाते हैं। साथ ही पेट मे गडबडी पैदा हो जाती है। इनमे से कुछ आत्मशक्ति तथा बिना-व्याधि-व्याधिचिन्ता से ग्रस्त भी पाए जाते है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उदर रोगो की चिकित्सा मे सफलता के लिए रोगियो के शारीरिक के साथ-साथ मानसिक तथा सवेगात्मक पक्ष पर भी ध्यान देना आवश्यक है।



उदर रोग निदान चिकित्सा

द्वितीय भाग एवं अनुभवांक



अनुभव खण्ड



अजीर्ण एवं उसका सफल उपचार

वैद्य प० मोतीलाल शर्मा 'पाराशर' एम० ए० आयुर्वेद-रत्न
गायत्री चिकित्सालय, पिपलिया स्टेशन, मदसौर (म० प्र०)

परिचय-भक्ष्य, भोज्य, लेह और चोष्य चतुर्विध आहार का सम्यक् तथा नहीं पच पाना ही अजीर्ण है। समस्त व्याधियो का जनक अजीर्ण को कहा गया है। यथा-

न जीर्यते सुखान्न विकारान्न कुरुतेऽपि च।
तदजीर्णमिति प्राहुस्तमन्मूला विविधाराजा ।।

अर्थात् खाया-पिया न पचना मलशुद्धि न होना, मलावरोध होना, आदि को अजीर्ण मे ही समाविष्ट किया गया है। क्योकि जब तक मलाशय मे से सचित मल का निकास पूर्ण रूपेण नहीं होगा, पुन वास्तविक भूख लगना असम्भव हे। अत भोजन का सम्यक् पाचन और मलनिष्कासन, दोनो क्रियाए यदि सम होती रहती है तो शरीर और मन स्वाभाविक ही स्वस्थ बने रहते है। मलाशय मे मल सचित होने या अवरुद्ध होने, सूखने या सड़ने से कृमियो की उत्पति स्वाभाविक ही होती हे ऐसा आयुर्वेद का मत है देखिए-

'सर्वेऽपि रोगा जायन्ते मलाशये मल सञ्चयात्।

अतएव नियमित सम्यक् मल शुद्धि होने से अजीर्णादि होने का प्रश्न ही नहीं उठता?

मात्रायाऽप्यमवहृत पथ्यचान्न न जीर्यते।
चिन्ताशोकभय क्रोध दु खशय्या प्रजागरै ।।

लक्षण-मूर्च्छा, अटपटा शब्दोच्चारण, जी मिचलाना, वमनेच्छा, खट्टी डकारे आना, पेट चढना, पेडू, कुक्षि आदि मे भारीपन, अपानवायु का अवरोध, मुख से थूक व पानी आना, विस्वाद, अरुचि, भ्रम तथा खाने-पीने के प्रति अनिच्छा होना आदि होने से चरकाचार्य का मत है कि जब अजीर्ण हो जाय तो रात या सध्या का भोजन नहीं करना चाहिए, प्रात भी कम भोजन या जब तक पूर्व भोजन पचकर मल-क्रिया सन्तोषजनक नहीं हो जाय एव खुलकर खाने की इच्छा जाग्रत न हो, तब तक अगला भोजन वर्जित करके उपवास या लघन करना अति उत्तम है।

प्राग्भुक्ते त्वयि वित्तेन्नो द्विरन्न न समाचरेत्।
पूर्वभुक्ते विदग्धेऽग्ने भुजानोहन्ति पाकम्।।

अर्थात् पूर्वकृत आहार पूरी तरह पचने पर ही अगला भोजन करना चाहिए। रस शेष रह जाय या अर्धपाक की स्थिति मे जठराग्नि विकृति हो जाती है।

चिकित्सा-भारी व गरिष्ठ पदार्थो का सर्वथा त्याग करना उष्ण पान, लघन, उपवास करते हुए जब खुलकर पर्याप्त भूख लगे तभी अत्यल्प भोजन और वह भी द्रव, पेय जूस वाला या हल्का खिचडी वा दलिया बनाकर सेवन करना चाहिए। उससे दुगुना जल पीकर समाग्नि की सहायता करनी चाहिए। गाय या बकरी का दूध या पथ्य भोजन यवागू आदि लाभकारी होता है। उससे अजीर्ण नष्ट होकर, स्वस्थ उद्गार आते है व तीव्र भूख लगती है, ऐसी दशा मे-

तत्राल्पे लघन पथ्य मध्ये लघनम् पाचनम्।
प्रभूते शोधन तद्धिमूलदुन्मूल्येन्मूलान।।अ० हृ०।

अर्थात् अल्प दोषो मे लघन हितकारी, मध्य दोषो मे लघन और पाचन औषधिया और यदि दोष अति विवृद्धमान हो तो

सशोधन विरेचनादि के द्वारा मलो को मलाशय से निकालने का उपक्रम करना चाहिए।

प्रात उष काल मे उठकर ५-६ कुल्ले करके ढककर रखा ताम्र-पात्र का जल पीना चाहिए। जिससे समस्त विष एव मलदोष मलद्वारा निकल जाते हैं।

हरड और सोठ का चूर्ण कालानमक डालकर लेने से पेट अजीर्ण से मुक्त हो जाता है। पेट पर राई हींग या त्रिकुट सेधानमक और हींग जल मे पीसकर उदर पर लेप लगाने से और पश्चात् आराम से सोये रहने से अजीर्ण नष्ट हो जाता है। यदि उदरशूल होता हो तो हिंग्वाष्टक चूर्ण की फकी लगाने से तुरन्त लाभ होता है। सामान्य नियम तो यह है कि जिस वस्तु से अजीर्ण हुआ है, उसी को जलाकर राख बनाकर मधु से चटाने से तथा अजीर्ण रोगी के पेट पर राई हींग आदि का पानी के साथ लेप करके आराम से शयन कराना चाहिए। ऐसा करने से १-२ घटे मे अजीर्ण से छुटकारा मिल जाता है।

तक्र के साथ हरड और गुड मिलाकर पीने से अजीर्ण शान्त हो जाता है। धनिया और सोठ का क्वाथ बनाकर पीने से अजीर्ण शात हो जाता हे। फिर भी यदि कफ-दोष बलवान् हो तो वमन द्वारा पित्त-दोष बलवान् हो तो विरेचन द्वारा दोषो को जीतना चाहिए।

आमाजीर्ण की चिकित्सा-वमनेच्छा, शरीर गौख, उद्गार, मुख नेत्र पर मन्द शोथ तथा हृदय मे भारीपन होने पर एकमात्र चिकित्सा लघन है। विदग्धाजीर्ण मे (पित्तज) वक्ष मे दाह, खट्टी डकारे, कटु स्वाद, हस्तपाददाह, प्यास, प्रस्वेद, भ्रम, उदर मे जलन, आदि होते है, अतएव वमन विरेचन कराके दोषो का शमन करना चाहिए।

विष्टब्धाजीर्ण (वातिक) मे-यह विषमाग्नि के कारण होता है। वातदोष प्रधान रहता है। मुख का स्वाद बिगड जाता है। पेट फूल जाता है, उदरशूल, मलावरोध, अपानवायु अवरोध, अकडन, पीडाधिक्य होता है। इसमे प्रस्वेद लाना चाहिए। तथा शरीर मे लघुता लाने का उपाय करना चाहिए।

रसशेषाजीर्ण मे-इसमे आहार का अर्धांश पाचन होता है, जी मिचलाना, अप्रसन्नता, भूख होने पर भी खाने की अनिच्छा होना और अरुचि आदि लक्षण होते है। अतएव पानी मे नीबू निचोडकर पिलाकर सुखा देना चाहिए। तुरन्त २-४ घण्टे मे अजीर्ण की शाति हो जायगी। खाने-पीने पर सयम रखना चाहिए। आहार सयम अनिवार्य है।

अजीर्ण नाशक औषधिया-सशोधनोपरान्त सौफ, इमली, आवला हरड, सैधानमक, अजवायन, चित्रक, अद्रक, दालचीनी, जीरा श्वेत व काला, लौग, काली मिर्च, अनार, सोठ, आदि का स्वतन्त्र या मिश्रित प्रयोग नीबू के रस के साथ प्रयोग कराने से शीघ्र लाभ होता है।

अग्निकुमार रस, अग्नितुण्डी वटी, क्रव्यादरस, गधक वटी आदि अजीर्ण मे प्रशस्त है। अजीर्णकण्टक रस तो अजीर्ण की अत्युत्तमौषधि है। गन्धकवटी, शखवटी, लशुनादिवटी, महाशखवटी, लवणभास्कर, हिंग्वाष्टक, अनारदाना चूर्ण, अभयारिष्ट, कुमार्यासव, पिपल्यासव, जीरकाद्यरिष्ट और द्राक्षासव आदि।

सामान्य अजीर्ण मे-सौठ, मिर्च, पीपल, इलायची, सौफ, सैधानमक का चूर्ण बना पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए। लवणभास्कर, हिंग्वाष्टक शिवाक्षार पाचन चूर्ण, रामबाण रस आदि का जल से प्रयोग करना चाहिए।

आमाजीर्ण मे-पचसकार, इच्छाभेदी, नारायण चूर्ण, लघुनाराच आदि आमपाचक औषधियो का प्रयोग लाभकारी होता है।

विदग्धा जीर्ण मे-पचसकारचूर्ण, शखवटी, प्रवालभस्म मुक्ता भस्म, अग्निप्रदीपक गुटिका, आरोग्यवर्धिनी त्रिफला चूर्ण, ईसबगोल का सत्व, स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, दूध मे मुनक्का का प्रयोग रात को सोते समय करना चाहिए। इनसे अजीर्ण मे आशु लाभ होता है।

विदग्धाजीर्ण मे ही-अग्निकुमार रस, वडवानलचूर्ण, शखद्राव, मुनक्का, सैधानमक, कालानमक लगाकर प्रयोग करना चाहिए, वराटिका भस्म, हिंग्वाष्टक चूर्ण, शिवाक्षार पाचन, नीबू व अद्रक रस के साथ या अनार के रस के साथ देना चाहिए। द्राक्षारिष्ट, अग्नितुण्डी वटी, अजमोदादि चूर्ण, अभयारिष्ट और कुमार्यासव आदि भी लाभकारी हैं।

रसशेषाजीर्ण मे-लवणभास्कर चूर्ण को तक्र के साथ देना चाहिए। अनारदाना चूर्ण हिंग्वाष्टक चूर्ण अग्नितुण्डी वटी, गधक वटी आदि देना चाहिए।

अजीर्ण नाशक आयुर्वेदिक पेटेण्ट औषधिया-

१ विषतिन्दुकवटी (झण्डू) १-४ पिल्स दिन मे २ बार दूध से दे।

२ सूक्तिन टेबलेट (एलार्सिन) २-२ टिकिया दिन मे ३ वा भोजनोपरान्त दे।

३ गैसेक्स टेबलेट (हिमालय) २-३ टिकिया दिन मे ३-४ बार दे।

४ पाचण टिकिया (झण्डू) २-४ टिकिया दिन मे ३-४ बार दे।

५ शमशायनी पिल्स न० ३ (इथिक्स) ५-१० गोलिया दिन मे ३-४ बार जल से दे।

६ गैसोन टेबलेट (मे० इथि०) १-२ टिकिया दिन मे ४-५ बार दे।

पथ्यापथ्य-प्रथम कफाधिक्य हो तो वमन, पित्ताधिक्य हो तो मृदुविरेचन और वाताधिक्य हो तो प्रस्वेद निकालकर औषधि प्रयोग करावे। गेहू, जौ, चना की रोटी, मूग, अरहर की दाल, भुने चावलो का भात, सहिजन, नरम मूली, करेला, बैगन, मैथी, आलू आदि का शाक, पोदीना, अद्रक, नीबू, लहसुन, आवला की चटनी, सैधानमक कटुपदार्थ, तैल घी, मट्ठा मक्खन दही, शहद, गरमपानी, अग्नि प्रदीप्तक पदार्थ हींग लशुन की छौक, धनिया, जीरा, कालीमिर्च आदि पथ्य है। तीक्षण विरेचन जागरण, मलमूत्रादि वेगो का अवरोध, फस्द खुलाना, मलावरोध पदार्थ खाना, खीर, दाल, चिरौजी, अशुद्ध जल, अध्यशन, छुहारा, कैथा, पना, स्नेह पदार्थ, जामुन, मिष्ठान, चावल आदि अहितकारी है।



● सम्पादकीय टिप्पणी-

अजीर्ण नाशक जम्भीरी द्राव तथा मेरा अनुभव

योग-जम्भीरी नीबू का रस २ किलो ५०० ग्राम, हीग भुनी २० ग्राम, अजवायन ५० ग्राम, सोठ ५० ग्राम, पीपर छोटी ५० ग्राम, काली मरिच ५० ग्राम, सैन्धव लवण २५० ग्राम, वायबिडग ५० ग्राम, लौग ५० ग्राम, कलमी शोरा ५० ग्राम, हरड छोटी ५० ग्राम, राई १०० ग्राम।

विधि-सभी द्रव्यो को दरदरा करके एक काच की शीशी मे जम्भीरी नीबू का स्वरस डालकर उसमे मिलाकर कार्क लगाकर १ माह के लिये रख दे। बाद मे छानकर दूसरी बोतल मे भरकर रख ले।

मात्रा तथा उपयोग-५-१० मि० लि० तक भोजनोपरान्त बराबर जल मिलाकर लेने से अजीर्ण, बदहजमी मे लाभ करता है।

अनुभव-इस योग का निर्माण हमारे धर्मार्थ औषधालय मे हमारे बाबा नारायनदास जी के समय से होता है। कई प्रकार के उदर रोगो मे मैने इस योग का अनुभव किया है। जिन रोगियो को मन्दाग्नि की शिकायत हो जाती है तथा भोजन मे रुचि समाप्त हो जाती है उन्हे ४-४ चम्मच भोजन के १ घन्टा पूर्व बराबर जल मिलाकर कुछ दिन देने से विशेष लाभ देखने को मिलता है। अधिक खाने के बाद पेट फूलने की शिकायत हो तो ८-१० चम्मच जल मे मिलाकर देने से चमत्कारिक रूप से वायु निस्सारण कराकर लाभ करता है। वैद्य लोग इस योग को बनाकर अपने चिकित्सालय मे रोगियो को लाभ पहुचा सकते है। ध्यान रहे अम्लपित्त के रोगियो को इसका प्रयोग कदापि न करावे।

-गोपालशरण गर्ग

आनाह और उसकी सफल चिकित्सा

डा० कृष्णाकुमारी शर्मा, बी०ए०एम०एस०
पीलीभीत (उ० प्र०)

चिकित्सा-सूत्र-आयुर्वेद ग्रन्थो मे उदावर्त के चिकित्सा-सूत्र को ही आनाह का चिकित्सा-सूत्र (सिद्धान्त) के रूप मे स्वीकार करते हुए आनाह की चिकित्सा करने का विधान बताया है-"उदावर्त्तक्रियाऽऽनाहे सामे लघन पाचनम्।''

-चिकित्सादर्श।

साधारणतया आनाह रोग मे उदावर्त के समान ही चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु आमजन्य आनाह रोग मे प्रथम दोषशमनार्थ लघन कराकर फिर पाचन-चिकित्सा करनी चाहिए। चरम चिकित्सा स्थान अध्याय २६ मे आनाह रोग के चिकित्सा-सूत्र के विषय मे वर्णित है, कि "आनाहमामप्रभव जयेत्तु प्राच्छर्दतैर्लंघनपाचनैश्च'' अर्थात् आमदोषजन्य आनाह रोग को वमन, लघन और पाचन के द्वारा जीतना चाहिए। अत उदावर्त की जो चिकित्सा की गयी है, वही चिकित्सा आनाह रोग की भी करे। अर्थात् स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहबस्ति, गुदवर्ति, अनुलोमन, अन्न सेवन तथा वात, मूत्र, पुरीष निरोधज उदावर्त की चकित्सा निमित्त कही गयी औषधियो का प्रयोग इसमे भी करना चाहिए। आमज आनाह मे विशेषत वमन, लघन और पाचन कराना आवश्यक होता है।

तात्कालिक चिकित्सा मे औषधि-व्यवस्था-

(१) क्रव्यादि रस १२५ मि० ग्रा०, शख भस्म १२५ मि० ग्रा०, शूलबज्रिणी वटी १२५ मि० ग्रा०, महाशूल रस १२५ मि० ग्रा०।-१ मात्रा × ऐसी ३ मात्रा।

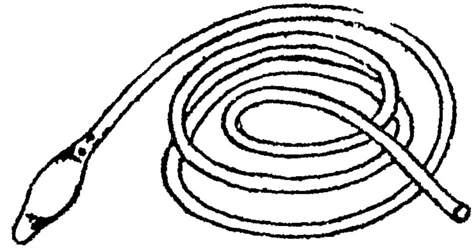
(२) हिंग्वाष्टक चूर्ण २ ग्राम घृत मे मिलाकर भोजन से पूर्व दे।

(३) कुमारी आसव १५ मि० लि० समान जल मिलाकर भोजन से उपरान्त दे।

(४) चित्रकादि वटी २-४ गोली दिन मे चूसने को दे।

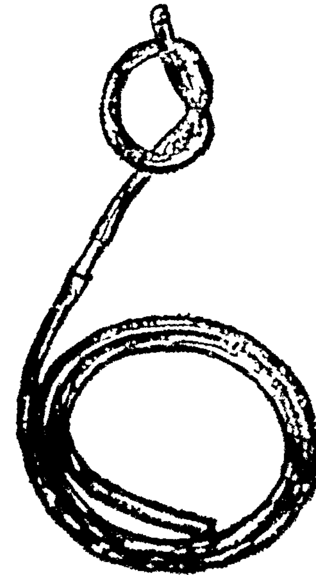
-उ० रो० चि०।

आध्मान की शान्ति के लिए नासामार्ग से रायल्स ट्यूब डालकर प्रचूषण करने से पर्याप्त लाभ होता है। गुदामार्ग से



(रायल्स ट्यूब)

आध्मान नलिका (Flatus tube) का प्रवेश कराकर उदर के ऊपर तारपीन का स्वेदन करने से वायु के निर्हरण मे पर्याप्त सुविधा होती है। -काय चि०।



(फ्लेट्स ट्यूब)

चिकित्सा (शास्त्रीय)-

विभिन्न आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे आनाह की चिकित्सा निम्न प्रकार वर्णित है-

(१) शार्गधर सहिता मे आनाह रोग मे निरूह बस्ति का प्रयोग बताया है।

(२) उसी सहिता मे "चागेरी घृत" का प्रयोग आनाह रोग मे स्वीकार किया है।

(३) अकेले पचकोल को भी आनाह मे शार्गधर उपयोगी मानते है।

(४) सुश्रुत ने तो आनाह के मुख्य हेतु अन्त्रावरोध को दूर करनेके लिए वर्तियो का प्रयोग ही नहीं लिखा, बल्कि उन वर्तियो के चूर्ण को गुदा को स्विन्न करते हुए नाडी-यन्त्र द्वारा प्रधमन की भी योजना स्वीकार की है।

फ्लेट्स ट्यूब की जो कल्पना आज के डाक्टर करने है, उसे सुश्रुत हजारो वर्ष पूर्व प्रयोग मे लाये थे। निरूह बस्ति और अनुवासन बस्ति का प्रयोग आनाह मे सुश्रुत ने स्वीकार किया है। निरूह बस्तियो को आधा भाग मूत्र तथा शहद वमन, विरेचन द्रव्यो के क्वाथ मे डालकर चढाने का विधान है। इन्हीं द्रव्यो से सिद्ध तैल की अनुवासन बस्ति देने के लिए उन्होने लिखा है। -उदर रोग चि०।

(५) हिंग्वादि चूर्ण १-२ ग्राम की मात्रा मे गर्म जल के साथ सेवन करने से आनाह रोग नष्ट होता है। -भै० र०।

(६) बचादि चूर्ण १-२ ग्राम गर्म जल के साथ सेवन करने से बहुत जल्द आनाह नष्ट होता है। - भै० र०।

(७) त्रिवृदादि चूर्ण १-२ ग्राम की मात्रा मे सेवन करने से आनाह नष्ट होता है। -भै० र०।

(८) स्नुही-मूल चूर्ण १-२ ग्राम की मात्रा मे सेवन करने से आनाह मे लाभ होता है। -भै० र०।

(९) पचसकार चूर्ण को खाद्य और पेय पदार्थों के साथ मिलाकर सेवन करने से आनाह रोग शीघ्र नष्ट होता है।

-भै० र०

(१०) त्रिकट्वादि वर्ति को घृत मे आलुप्त (भिगो) कर धीरे-धीरे गुदा मे रख देनी चाहिए। यह वर्ति आनाह को विनष्ट करती है। -भै० र०।

(११) नाराच-नाराच रस को जल के साथ पीसकर नाभि के ऊपर प्रलेप करने से अथवा नस्य मात्र लेने से सुखपूर्वक रुके हुए मल-मूत्रादिक की प्रवृत्ति हो जाती है। - भै० र०।

(१२) रसोन प्रयोग-प्रात काल भूख लगने पर लहसुन के ६ ग्राम रस को १० ग्राम मद्य मे मिलाकर पीने से रोग नष्ट होता है, पाचकाग्नि प्रदीप्त होती हे। -भै० र०।

(१३) राजरेचन चूर्ण ६ ग्राम से १० ग्राम तक भोजन के कम से कम १।। घण्टे बाद रात को सोते समय या प्रात खिलावे। -चिकित्सादर्श।

(१४) आनाहभेदिका वटी-१ गोली गोमूत्र से सेवन करे। -चिकित्सादर्श।

(१५) आनाहभेदिका लवण-३ ग्राम की मात्रा मे उष्णोदक की मात्रा के साथ खिलावे तथा अन्नपान, शाक आदि मे भी नमक के वजाय इसी नमक को खिलावे। -चिकित्सादर्श।

(१६) नागदमन के १० ग्राम स्वरस मे हरीतकी १ नग, हींग भुनी ३ रत्ती का चूर्ण मिला तथा इस सब मे शहद मिलाकर पीने से आध्मान मे लाभ होता है।

-बनौ० विशे० भाग ३, प्रयोग स० अक।

(१७) बच का चूर्ण ४-८ रत्ती मे समभाग सौफ का चूर्ण मिलाकर घृत तथा शक्कर के साथ सेवन करने से दस्त होकर उदर का अध्मान दूर हो जाता है। अथवा इसके १-२ रत्ती चूर्ण मे काला नमक ४ रत्ती मिलाकर सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। -बनौ० विशे० भाग-४।

(१८) अग्नितुण्डी वटी (शा० स०)-२-२ गोली दिन मे २-३ बार भोजन के बाद जल से देवे। -प्रयोग सग्रह अक।

(१९) गन्धक वटी (र० रा० सु०)-२-२ गोली दिन मे २-३ बार उष्ण जल से सेवन करे। -प्रयोग सग्रह अक।

(२०) रसोनादि वटी (वै०जी०)-२-२ गोली दिन मे २-३ बार उष्ण जल से देवे। -प्रयोग सग्रह अक।

(२१) शख वटी (र० च०)-२-२ गोली दिन मे २-३ बार उष्ण जल से देवे। -प्रयोग सग्रह अक।

(२२) काकायन वटी (शा० स०)-२-२ गोली दिन मे २ बार उष्ण जल से देवे। -प्रयोग सग्रह अक।

(२३) हिंग्वष्टक चूर्ण (च० द०)-१।। से ३ ग्राम तक भोजनोत्तर उष्ण जल से सेवन करावे। -प्रयोग सग्रह अक।

(२४) नारायण चूर्ण (शा० स०)-दिन मे १-२ बार उष्ण जल से सेवन करे।

(२५) पचसम चूर्ण (शा० स०)-१-५ ग्राम प्रात जल से सेवन करे।

(२६) पथ्यादि चूर्ण (यो० र०)-१-५ ग्राम जल से सेवन करे।

(२७) कुमार्यासव (भै० र०)-१५-२५ मि० लि० भोजनोत्तर समान जल मिलाकर सेवन करे।

(२८) द्राक्षासव (भै० र०)-१५-२५ मि० लि० भोजनोत्तर समान जल मिलाकर सेवन करे।

(२९) अभयारिष्ट (चरक)-१५-२५ मि० लि० भोजनोत्तर समान जल मिलाकर सेवन करे।

(३०) नाराच घृत (यो० र०)-५-१० ग्राम की मात्रा मे दिन मे १-२ बार उष्ण दुग्ध के साथ सेवन करे।-प्रयोग सग्रह अक।

(३१) दारुषटकादि लेप (सुश्रुत)-यथेष्ट यथासमय काजी से पीसकर कवोष्ण लेप करे।

(३२) सूतशेखर रस (यो० र०) १२५ से २५० मि० ग्रा० दिन मे २ बार गुलकन्द के साथ सेवन करे।

-प्रयोग सग्रह अक।

(३३) अग्निकुमार रस (यो० र०)-१२५-२५० मि० ग्रा० दिन मे २ बार आद्रक स्वरस से सेवन करे।-प्रयोग सग्रह अक।

(३४) लौह भस्म (र० त०)-१२५ मि० ग्रा० दिन मे २ बार त्रिफला क्वाथ से देवे।

(३५) शख भस्म (र० त०)-१२५ मि० ग्राम दिन मे २ बार चित्रकमूल व उष्ण जल से सेवन करे।

(३६) अमरबेल या आकाशबेल के बीजो को उबाल कर पेट पर बाधने से डकारे, अधोवायु आदि दूर होकर पेट की पीडा दूर हो जाती है। इस प्रकार पेट पर बाधने से नीचे से अधोवायु छूटने लगती है और डकारे आकर आध्मान तथा अफारा ठीक हो जाता है। -प्रयोग सग्रह अक।

आनाहनाशक कुछ परीक्षित योग-

(१) **हर्षुल निर्दोषदर वटी**-नित्य नये ताजे गोमूत्र मे १० दिन तक भिगोयी गयी बालहरड का शुष्क चूर्ण १०० गाम, टकण भस्म ५० ग्राम, सनाय का चूर्ण ५० ग्राम, बज्रक्षार ५० ग्राम, पलाशक्षार ५० ग्राम, पिप्पली चूर्ण ५० ग्राम, बिडग चूर्ण ५० ग्राम, सर्जिकाक्षार चूर्ण ५० ग्राम, काचनार त्वक् घनसार ५० ग्राम, प्रवाल पचामृत ५० ग्राम, नृसार २५ ग्राम। समस्त औषधियो को भागरे के रस मे घोटकर ४-४ रत्ती की गोलिया बना ले।

मात्रा-१ गोली से २ गोली तक दे।

अनुपान-आध्मान और आनाह मे गरम जल से भोजन के बाद तथा कोष्ठबद्धता और गुल्म मे गोघृत युक्त सुखोष्ण २० ग्राम त्रिफला क्वाथ के साथ देनी चाहिए। इस विधि से देने पर उदर दोषरहित हो जाता है। आध्मान, आनाह एव गुल्म भी मिट जाते हैं। -प० हर्षुल मिश्र "प्रवीण", रायपुर।

(२) **आध्मानहर चूर्ण**-हरड छोटी १०० ग्राम, चित्रक की छाल, अजमोद, अजवायन, सेधा नमक प्रत्येक ४०-४० ग्राम, काच नमक, पीपल, समुद्र नमक, विड्नमक, काला नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार, स्याह जीरा, सुहागा का फूला, हींग का फूला प्रत्येक २०-२० ग्राम ले।

प्रथम काष्ठौषधियो को कूट-पीसकर छान ले। फिर शख भस्म १० ग्राम, हींग का फूला २० ग्राम लेकर खूब महीन पीस उक्त चूर्ण मे थोडा-थोडा मिलाकर शीशी मे भर ले। ३-५ ग्राम उष्ण जल से भोजन के पश्चात् लेने से आध्मान मे विशेष लाभ होता है। मलावरोध, उदरशूल, अग्निमाद्यादि मे भी लाभकर है।

-वैद्य मदनकुमार काला द्वारा,
गुप्तसिद्ध प्रयोगाक द्वितीय भाग से।

(३) **दीपन-पाचन-चूर्ण**-सैधानमक, काला नमक, साभर नमक प्रत्येक ८०-८० ग्राम, विड् लवण ४० ग्राम। सबको कूट-कपडछन चूर्ण करे। फिर कालीमिरच, पीपल दोनो २०-२० ग्राम, डासरिया (गिर्रसमाक), अकरकरा, अम्लवेत तीनो ८०-८० ग्राम, धनिया, दालचीनी, चित्रक-मूल, कैथ चारो ४०-४० ग्राम, अनारदाना ३०० ग्राम लेकर चूर्ण कर ले। फिर इमलीसत्व (टारटेरिक एसिड) ४० ग्राम मे १० ग्राम जल मिलाकर घोटे। तत्पश्चात् इसमे उपरोक्त दोनो प्रकार के चूर्ण मिला लेवे। अच्छी तरह खुश्क हो जाने पर १६० ग्राम, काला जीरा, सफेद जीरा दोनो ८०-८० ग्राम, सोठ का चूर्ण २० ग्राम डालकर खरल करे।

१/२ ग्राम से १ ग्राम तक भोजनोपरान्त या अफारा होने पर देने से वायु का अनुलोमन होता है, अत्यन्त ही दीपन-पाचन है। -रसतन्त्रसार से।

(४) भल्लातकादि क्षार-भिलावा, सोठ काली-मरिच, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, सैधा नमक, काला नमक तथा विड् लवण इन १० औषधियो को ३२०-३२० ग्राम मिलाकर एक हाडी मे भर ले और ढक्कन से ढक मुखमुद्रा करके गजपुट अग्नि से [illegible] देवे। स्वागशीतल होने पर काली भस्म को निकाल ले और [illegible] बोतल मे भर लेवे।

८ रत्ती से १।। ग्राम तक दिन मे २ बार घी के साथ पिलावे या भोजन के साथ मिलाकर खिलावे।

यह अत्यन्त वातानुलोमन करने वाली औषधि है। इस हेतु से यह उदावर्त, अफारा तथा वातज गुल्म रोगो मे व्यवहार होती है। -रसतन्त्रसार से।

(५) आध्मानहर क्वाथ-एरण्डमूल की छाल ६ ग्राम, अमलतास का गूदा ३ ग्राम, हींग २ रत्ती, पचकोल ५ ग्राम, काला नमक १ ग्राम, सज्जी १ ग्राम, कचलाना १ ग्राम लेकर २०० ग्राम जल मे औटावे। जब ५० ग्राम शेष रह जाय, तब छानकर रोगी को पिलादे। इसके सेवन से रुका दस्त साफ हो जाता है, अपानवायु निकलने लगती है तथा आध्मान दूर हो जाता है।

-वैद्य बाकेलाल जी गुप्त द्वारा,
प्रयोग मणिमालाक से।

(६) दशमूल एरण्ड योग-बेल की छाल, सोना-पाठे की छाल, जम्भीरी की छाल, गनियार की छाल, शाल-पर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू (दशमूल के दस द्रव्य) सभी १०-१० ग्राम ले और इसकी ५ मात्रा बना ले। १ मात्रा को जौकुट करके काढा बना छान ले, बाद मे उसमे २० ग्राम एरण्ड तैल, १ रत्ती भुनी हींग तथा ४ ग्राम काला नमक डालकर अफारा या आध्मान से दु खी रोगी को गर्म-गर्म पिला दे, तो शीघ्र आध्मान दूर होकर उदर की शुद्धि होती है। जीर्ण उदरवायु के रोगियो को जिन्हे साथ मे मलावरोध भी रहता हो बहुत उपयोगी योग है। -रसायनसार द्वितीय भाग से।

(७) उदावर्तहर गुटिका (गैसहर वटी)-लवणभास्कर चूर्ण ४०० ग्राम, हिंग्वष्टक चूर्ण ४०० ग्राम, एरण्ड तैल से शुद्ध किया हुआ कुचला, सुहागे का फूला, नौसादर सभी २५-२५ ग्राम, पिपरमैट ६ ग्राम तथा बीज निकाला हुआ साफ मुनक्का ४०० ग्राम ले। पहले चूर्णो को अच्छी तरह कूट-कपडछन करे, फिर कुचले का चूर्ण करे। मुनक्का को अच्छी तरह पीसकर कल्क बना लेवे तथा अन्य सभी वस्तुये मिला चूर्ण कर ले। फिर सबको मिला खरल कर १-१ रत्ती की गोली बना अमृतवान मे भर ले।

१-२ गोली आवश्यकतानुसार दिन मे ३-४ बार जल के साथ देवे। यह उदावर्तहर वटी आमाशय तथा अन्त्र मे सचित वायु को दूर करने के लिये बहुत उत्तम है। जीर्ण गैस के रोगी कुछ दिनो तक इसके सेवन से अवश्य ठीक हो जाते है।

-रसतन्त्रसार से।



● सम्पादकीय टिप्पणी-

आध्मान नाशक अनुभूत योग हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण

योग-भुनी हींग २० ग्राम, वच ४० ग्राम, कूठ ६० ग्राम, काला नमक ८० ग्राम, वायबिडग १०० ग्राम सभी को लेकर कपडछन चूर्ण बना ले।

मात्रा तथा उपयोग-२-३ ग्राम जल के साथ लेने से आनाह, आध्मान, गुल्म मे लाभकारी है।

अनुभव-वायुविकार (गैस) से पीडित रोगियो के लिये यह रामबाण योग है। पेट साफ करता है और यदि पेट मे कृमि हो तो कुछ दिनो के सेवन के बाद कृमि पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। चिकित्सक आध्मान के लिये इस शास्त्रीय योग का विश्वास के साथ प्रयोग कर सकते है।

-गोपालशरण गर्ग

आमाशय-आन्त्रशोथ की सफल चिकित्सा

डा० जहानसिह चौहान, आयुर्वेद वाचस्पति
मु० पो०-ठठिया (फर्रुखाबाद)

आयुर्वेदिक सहिता ग्रन्थो मे आमाशय-आन्त्रशोथ के नाम से किसी भी व्याधि का वर्णन नहीं मिलता है। 'माधवाकार' ने ग्रन्थ माधव निदान मे ज्वर और अतिसार का अलग-अलग वर्णन किया है। केवल चक्रपाणि ने अपने ग्रन्थ चक्रदन्त मे ज्वरातिसार चिकित्सा नामक शीर्षक से ज्वर की चिकित्सा और अतिसार की चिकित्सा से भिन्न वर्णन किया है। फिर भी चिकित्सको के अनुभव के आधार पर-

सामान्य चिकित्सा इस प्रकार से-

- रोग के लक्षण मृदु होने पर घर पर ही पूर्ण विश्राम एव शरीर को गरम कपडे से ढके रहना ।
- पर्याप्त मात्रा के स्वच्छ तरल द्रव।
- तीव्र आक्रमण होने पर निपात एव जल की कमी को दूर करने की दृष्टि से रोगी को चिकित्सालय मे भेज दे।
- रासायनिक द्रव्यो एव जहरीले कुकुरमुत्ता जैसी चीजे खाने से उत्पन्न विषक्तता मे आमाशय प्रक्षालन एव उपयुक्त एण्टीडोट की उचित व्यवस्था करे।
- सभी अवस्थाओ मे रोगी को कोष्ण लवण जल पीने को।
- आरभ्भ मे भोजन न देकर केवल फलरस एव चाय दे। सुधार हो जाने पर धीरे-धीरे अर्धतरल एव बाद को लघु आहार।
- शुण्ठी, नीलकमल, धनिया, प्रश्नपर्णी, बलामल, बेलफल मज्जा से सिद्ध पेया दे।

कुछ चिकित्सको द्वारा निर्देशित अनुभूत व्यवस्थापत्र-

● सिद्ध प्राणेश्वर रस	३०० मि०ग्रा०	ऐसी १ मात्रा प्रति २-३ घण्टे पर दिन मे ४ बार शर्बत अनार अथवा मधु के साथ।
आनन्द भैरव रस	२०० मि०ग्रा०	
शख भस्म	२०० मि०ग्रा०	

- चित्रकादि वटी १-३ वटिका (वटी) थोडी-थोडी देर बाद चूसने को।
- मुस्तकादिकषाय (च०द०)६० मि०ली० (१२-१२ चम्मच) प्रति ३ घण्टे पर दिन मे तीन बार दे।
- कर्पूर वटी- १-३ गोली प्रारभ्भ से।
- निपात (Collapse) की अवस्था मे- 'मृगमदासव' १० बूँद पानी के साथ।

आमाशय आन्त्रशोथ के अन्य उपयुक्त दवाये-

कनकसुन्दर रस, गगन सुन्दर रस, मृत सजीवनी रस, सिद्ध प्राणेश्वर रस, कनक प्रभावटी, कुटजघन वटी, कलिगादि गुटिका, ब्यौसादि चूर्ण, बृहत् कुटजावलेह, पचमूलादि क्वाथ, उशीरादि क्वाथ आदि।

ज्वरातिसार के दो सिद्ध औषधि योग-

- इन्द्र जौ, देवदारु, कुटकी, गजपीपल और गोखरू।
- छोटी पीपल, धनिया, बेलगिरी, पाठा और अजवाइन।

● यह दोनो योग क्वाथ अथवा चूर्ण के रूप मे देने से आशुफलकारी हैं।

●● बार-बार दस्त, पेट मे दर्द एव ज्वर की स्थिति मे-

- कलिगादि गुटिका १-१ ग्राम, बेलगिरी के पानी के साथ प्रात -साय सेवन करावे। उसके १ घण्टे के अन्तर पर प्रात -साय बेलगिरी का मुरब्बा सेवन करावे। भेजन के पश्चात् दोनो समय कुटजारिष्ट समान भाग पानी मिलाकर दे। रात्रि शयन के समय हरीतकी खण्ड दूध के साथ दे।
- अभयनर्सिंग रस १२० मि० ग्रा० भुने जीरे का चूर्ण २४० मि० ग्रा०, शहद १ ग्राम मे मिलाकर। रात को सोते समय कुटजावलेह २ ग्राम की मात्रा मे ठडे दूध के साथ।

- पतले दस्तो के प्रवल वेग मे-कर्पूर रस, ६० मि० ग्रा०, प्रवाल पचामृत १२० मि० ग्रा० मिलाकर शहद के साथ प्रात -साय सेवन करावे।
- अधिक आवश्यक होने पर विशेष परिस्थितियो मे स्वल्प मात्रा (५ से १० बूद तक) अहिफेनासव १-२ चम्मच पानी के साथ दिया जा सकता है।

कुछ पेटेन्ट योगो का योगदान भी आशुकारी-

- इण्ट्रोल टेबलेट (मार्तण्ड फार्मास्युटिकल्स)-१ गोली प्रति ३ घण्टे के अन्तर पर।
- अतिसारनाशक वटी (राजवैद्य शीतलाप्रसाद एण्ड सन्स दिल्ली)-निर्माता के निर्देश पत्रानुसार।
- एण्टी डीसेण्ट्रोल (ऊँझा फार्मेसी)-निर्माता के निर्देशपत्रानुसार।
- दीपन टेबलेट (चरक फार्मास्युटिकल्स)-२-२ गोली दिन मे ३ बार। बालको को १-१ गोली दिन मे ३ बार।

  सेवन विधि-पानी अथवा जूस के साथ।

भोजन व्यवस्था-(Dite Management)

- रोगी को प्रारम्भ मे सादा जल अथवा कच्चे नारियल का पानी पिलावे।
- सुधार होने पर शीघ्र हजम होने वाले कार्बोहाइड्रेट युक्त पदार्थ द्रव रूप मे जैसे-बोर्ल का पानी, अरारोट का पानी और ग्लूकोज का शर्बत। इलेक्ट्राल आदि।
- २-३ दिन बाद पतली खिचडी।

आमाशय-आन्त्रशोथ से बचने के उपाय-

- अधिकतर असाढ से भादो तक के महीनो मे सडक के किनारे के भीड-भाड एव धूल भरे स्थानो पर लस्सी, मिल्क केक, आदि ठडे पेय न पिये।
- चाट, पकौडी एव काटकर रक्खे हुए फल बाजार मे सेवन न करे।
- गन्दे होटलो एव रेस्टोरेण्टो मे भोजन न करे।
- कम पका मास एव मछली की पकौडिया न खाये।

नोट-●● यह सारगर्भित लेख पाठको के लाभार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि वह आमाशय-आन्त्रशोथ की सही समय पर उपयुक्त चिकित्सा कर सके। विशेष अध्ययन के लिये लेखक की एलोपैथिक डायग्नोसिस एण्ड ट्रीलेण्ट, एलो० पेटेन्ट चिकित्सा चार्टस तथा आयुर्वेद की पेटेन्ट औषधिया नामक पुस्तको का अवलोकन करना चाहिए।



● सम्पादकीय टिप्पणी-

आमाशय आंत्रशोथ (गैस्ट्रोएन्ट्राइटिस) नाशक सफल औषधि व्यवस्था

आमाशय आत्रशोथ के रोगियो को निम्न उपचार विशेष लाभदायक पाया गया है। चिकित्सक इस व्यवस्था से रोगियो को लाभान्वित कर सकते है-

सजीवनी वटी ४ रत्ती, अजीर्ण कटक रस ३ रत्ती तथा प्रवाल पचामृत २ रत्ती मिलाकर १ मात्रा बना ले। ऐसी १-१ मात्रा प्रति ४ घटे से सौफ १ ग्राम, भुना जीरा १/२ ग्राम तथा लोग १ नग जल के साथ पीसकर इस मिश्रण के साथ देने ने त्वरित लाभ होता है। यह व्यवस्था आयुर्वेद के प्रसिद्ध चिकित्सक श्री वैणीमाधव शास्त्री ग्वालियर की है जिसकी हमने कई बार परीक्षा कर उपयोगी पाया है। विशूचिका मे भी यह लाभकर व्यवस्था है।

-गोपालशरण गर्ग

आमाशय शोथ-एक संक्षिप्त चिकित्सा विवरण

वै० प्रो० पी० एस० अंशुमान्, एच०पी०ए० प्रोफेसर एव विभागाध्यक्ष भौ० सि०
शेठ जी० प्र० सरकारी आयुर्वेद कालेज, भावनगर (गुज०)

परिचय–प्राचीन चिकित्सा ग्रथो मे इस रोग सज्ञा का प्रयोग नहीं किया गया है। परन्तु आमाशय सम्वद्ध अनेक रोगो का वर्णन विभिन्न रोगो के नाम से किया गया है। आम प्रदोष, तत्सम्वद्ध अग्निमाद्य-अजीर्ण, विसूचिका एव अलसक के अतिरिक्त अम्लपित्त आदि अनेक ऐसे रोग है कि जो आमाशय की विभिन्न विकृतियो से सम्बधित है।

सुविधा के लिये यहा आज प्रचलित गेस्ट्राइटिस-आमाशय प्रदाह या शोथ शीर्षक से वर्णित रोग का ही उपभोग किया गया है। आधुनिक चिकित्सा साहित्य मे आमाशय शोथ को विकृति एव चिकित्सा सुविधा की दृष्टि से कई रूप से वर्गीकृत किया जाता रहा है।

ईरोसिव एव नोन ईरोसिव गेस्ट्राइटिस के अतिरिक्त एक्यूट केटेहेरल गेस्ट्राइटिस तथा क्रोनिक केटेहेरल गेस्ट्राइटिस प्रकार भी वर्णित मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट प्रकार के आमाशय शोथ भी देखने मे आते हैं यथा-रिफलेक्स गेस्ट्राइटिस क्रोहन्स रोग (Crohnis Disease) जन्य का शोथ ईसोस्नोफीलिक ग्रेस्ट्राइटिस, हाइपरट्रोपिक गेस्ट्राइटिस आदि।

क्षोभक आहार, उष्ण तीक्ष्ण, द्रव्य, मद्यादि का सेवन, क्षोभक औषध (केफीन, एस्पीरीन सेलिसिलेटस, सल्फाड्रग्स, एमिनोफाइलीन, फि० वुटाजोन, कोर्टिको-रिस्टरोएडस आदि) वैक्टीरिया युक्त आहार, एच पाइलोरी एव स्पाइरल आगेडिज्म आदि की उपस्थिति, कतिपय ज्वर, मानसिक तनाव कारक क्रोध चिन्ता आदि मानसिक भाव विविध प्रकार के आमाशय शोथ मे कारण बना करते है।

आमाशय शोथ मे मुख्य रूप से आमाशय-कला शोथ युक्त होकर समान फूली हुई एव रक्त से भर जाती है। श्लेष्मा वृद्धि होती है। पित्ताग्नि न्यून हो जाती है। कई बार आमाशय स्थित ग्रथिया भी प्रभावित होती है। उपेक्षा करने पर व्रणशोथ तथा व्रणोत्पत्ति हो सकती है।

अरुचि, हृल्लास, वमन-जो आहार एव अम्ल-तिक्त दुर्गंधित श्लेष्मा युक्त द्रव के रूप मे वर्णित होता है। अन्न नली मे दाह, आमाशय प्रदेश मे दाह एव शूल एव स्पर्शसह्यता होती है। तृषा, मद, शीत स्वेद, नाडी क्षीणता ऊष्मा न्यूनता आदि अनुसर्गिक लक्षण भी मिलते है। शिर शूल, इन्द्रिय शैथिल्यता, दौर्बल्य, शैथिल्य, वैवर्ण्य, भ्रम और कभी-कभी ज्वर भी मिल सकता है। यह लक्षण प्राय जीर्ण अवस्था मे विशेष रूप से मिलते है। देर तक चलने पर कृश्यता भी मिलती हैं।

व्रणशोफ एव व्रणोत्पत्ति होने पर शूल प्रमुख लक्षण होकर अलग व्याधिरूप ले सकता है।

चिकित्सा–

सामान्यत कारणानुसार चिकित्सा की जाती है। निदान परिवर्जन विशेष महत्वपूर्ण है। अम्लपित्त शामक चिकित्सा उपयोगी सिद्ध होती है। सक्रमण मे कृमिघ्न उपचार किये जाते हैं। कई बार हिस्टामिनव्लोकर्स भी प्रयुक्त किये जाते है। विशेषत रिफलेक्स आमाशय शोथ मे विटामिन बी१२ उपयोग मे लिया जाता है।

आयुर्वेद मे इस प्रकार के रोग मे यथा रोग या लक्षणानुसारी चिकित्सा के अतिरिक्त दोषानुसारी, अग्निदीपन, अनुलोमन, पाचन, छर्दिघ्न एव अम्लपित्तघ्न चिकित्सा का आश्रय लिया जाता है। पिप्पल्यादि क्वाथ, अमृतार्णव एव त्रिपुरसुन्दर रस आदि कल्प प्रयुक्त किये जाते है। सुपाच्य पोषक आहार दिया जाना चाहिए।

पर्याप्त एव साधन

यहा जिन आतुरो की चिकित्सा का विवरण दिया जा रहा है वे स्थानिक आयुर्वेद कालेज सलग्न श्रीमती तापीवाई

आयुर्वेदिक होस्पीटल, भावनगर के ओ०पी०डी० विभाग मे चिकित्सार्थ आये रुग्ण थे। चिकित्सा के लिये ऐसे आये रुग्णो के वय एव लिग समूह निम्नानुसार थे-

क्र०	वय समूह वर्ष	पुरुष	स्त्री	कुल
१	१५ से २० वर्ष	१	१	२
२	२१ से ३० ''	४	४	८
३	३१ से ४० ''	५	७	१२
४	४१ से ५० ''	२	२	४
५	५१ से ६० ''	३	४	७
	कुल	१५	१८	३३

इन रुग्णो का रोग विनिश्चय इतिवृत्त, रोगी परीक्षा एव अन्य परीक्षाओ के आधार पर किया गया था।

इन रुग्णो मे से उरदाह ५ मे उदरदाह १० मे, उदररुक १५ मे, उद्गारबाहुल्य २७ मे अजीर्ण/उत्क्लेश २०/३ मे, शिर शूल ३ मे विवध ६ मे पाया गया था।

अनुबध समय की दृष्टि से सभी रोगी ३ से ४ मास तक के समय से दोष से पीडित थे।

इनमे से जनवरी से मार्च मे ३, अप्रैल से जून मे १२, जुलाई से सितम्बर मे ६, अक्टूबर से दिसम्बर मे १२ रोगी चिकित्सार्थ आये थे।

चिकित्सा चर्चा-

इन रुग्णो को निम्नलिखित औषध योजना पर रखा गया था।

१ अम्लादिक्वाथ २ तो० प्रात १ बार

२ तारामण्डूर, लीलाविलास १-१ गो० २ बार जल से

३ कामदुधा, प्रवाल, सूतशेखर, धात्रीलोह मण्डूर २-२ र० मिश्रण २ बार मधु से

४ शखवटी २ गो० भोजनोपरान्त

(शूल होने पर शूलबज्रिणी १ गो० नारिकेल लवण ४ (प्रति मात्रा जल से)

५ हरडेटिकडी १-२ गो० आवश्यकता अनुसार रात्रि मे।

सभी को मिरची, तैल बद कर उबले शाक, मूग की दाल रोटी पर रखा गया। अजीर्ण लगने पर मुद्गयूष एव भात दिया गया, १ मास तक चिकित्सा चालू रखी गई।

परिणाम-

उपरोक्त चिकित्सा से निम्नलिखित लाभ देखा गया।

१ सभी रोगियो मे लक्षण शमन पाया गया।

२ उद्गार बाहुल्य, एव शूल शमन हुआ

३ अजीर्ण मे अल्प लाभ मिला

४ समग्रत स्वास्थ्य मे सुधार पाया गया।

सदर्भाधार-

१ च० चि० २/२, का खि० १६/१८

२ *आमाशये निमित्तैस्तु बहुभिर्विविधा गदा*
नानारूपसमोयेता जायन्ते बहुशो नृणाम्।
सामान्यतो लक्ष्य तेषा बद्धैर्वल परिक्षय
प्रायेणोत्क्लेशवमने दौर्बल्य सदन भ्रम ।
वैवर्ण्य कृशता दाहो ज्वर शूलमथारुचि
शैथिल्य चेन्द्रियाणा स्यद्धोरा मूर्च्छाऽपि विश्चिता
आमाशयोत्थरोगेषु हेतुदोषानुसारेत
अग्नेर्दीप्तिर्विधातव्या पाचन चानुलोमनम्।

३ सेविल्स मेडीसिन

४ *हृन्नाभिपार्श्वोदररुक्तृष्णोद्गार विसूचिका*
कासकण्ठास्य शोषश्च श्वासश्चामाशय स्थिते।

च० चि० २८/४६

समानेनावृत्ते प्राणे ग्रहणीपार्श्वहृ द्रदा
शूल आमाशय तत्र दीपन सर्पिरिष्यते।

च० च० २८/२०२

'शूल' के स्थान पर 'शून' पाठान्तर भी मिलता है। (ग)



अम्लपित्त और उसका अनुभूत उपचार

डा० हरजिदरमीतसिह एम० डी०
राबिया आयु० सैन्टर, ८ डोगर बस्ती, फरीदकोट (पजाब)

आधुनिक युग मे खाने-पीने की अनियमत्ता, तेज मिर्च मसाले, ज्यादा चाय या काफी और तनाव भरी परिस्थितियो मे जीने के कारण मनुष्य जल्दी ही अम्लपित्त का शिकार हो जाता है। पढे-लिखे लोगो मे तो ९० प्रतिशत से ज्यादा लोग इस रोग से पीडित है।

आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली मे इस रोग मे जेलोसिल और ऐटी ऐसिड सीरपो का उपयोग किया जाता है। इनको उपयोग करने से घटा दो घटा फर्क पडता है। फिर पहिले वाली हालत हो जाती है। पढे-लिखे परिवारो और नौकरीपेशा लोगो की जेब मे और कुछ हो या ना जेलोसिल जरूर होती है।

पसेरी पसेरी जेलोसिल और लीटरो के हिसाब से ऐटी ऐसिड सीरप पी चुके सैकडो लोगो की ऐसिडिटी इस अविपत्तिकर चूर्ण, कामदुघा रस और सूतशेखर रस से हटाने का अनुभव हुआ है।

आयुर्वेद मे Acidity को अम्लपित्त कहा जाता है। इस रोग मे छाती मे जलन होती है। रोग अधिक बढने पर उबाक और वमन भी होती रहती है। वमन खट्टी और जलती हुई होती है। वमन होने पर कण्ठ मे दाह होता है और नेत्रो मे जल आ जाता है।

अम्लपित्त के रोगी को अक्सर शिरदर्द की शिकायत बनी रहती है। भोजन कर लेने पर थोडे ही समय बाद उदर मे भारीपन आ जाता है। रोग जीर्ण हो जाने पर सुबह-सुबह ही खट्टी डकारे आती है और वमन भी होती है। ऐसे रोगियो पर यह अविपत्तिकर चूर्ण अमृत समान काम करता है। सुबह खाली पेट ही इस चूर्ण का आधा चम्मच नारियल के जल के साथ लेने से कुछ दिनो मे अम्लपित्त ठीक हो जाता है।

पजाब मे खाने-पीने मे तेज मिर्च मसालो का काफी उपयोग होता है और दूसरी रहती कमी पढे लिखे वर्ग मे रोजाना शराब की आदत ने पूरी कर दी है। इस कारण पजाब मे यह अम्लपित्त रोग साधारण बात समझी जाती है। पजाब मे ज्यादातर लोग इसका इलाज तभी करवाते है जब यह Peptic Ulcer मे बदल जाता है या अम्लपित्त के कारण पैदा होने वाले दूसरे रोग बुरी तरह लपेट मे ले लेते है।

अम्लपित्त मे पाचक रसो मे खट्टापन ज्यादा हो जाता है। इस खट्टेपन से खाया हुआ भोजन मेदे मे जाकर खमीरे हुए आटे की तरह हो जाता है। जिस कारण जलन होने लग जाती है जो कि भोजन के पचन होने तक होती रहती है। इस रोग से पीडित लोगो के शिर मे भारीपन रहता है। मुह से बदबू आती है। टट्टी और मूत्र भी गर्म-गर्म आता है। अक्सर रोगी को कब्ज की शिकायत रहती है।

पाचक रसो मे पैदा हुए इस खट्टेपन से बाकी की रस धातुऐ भी दूषित हो जाती है। अम्लपित्त के रोगी ही मुख्य रूप मे वीर्य के शुक्राणुओ की कमी के शिकार पाये जाते है। शीघ्र पतन का शिकार भी अक्सर यही रोगी होते है। Peptic Ulcer से पीडित रोगी पहिले अम्लपित्त के ही शिकार होते है। खाने-पीने मे बदपरहेजी और सही इलाज की कमी के कारण यह अम्लपित्त रोग Peptic Ulcer मे बदल जाता है। अम्लपित्त के रोगियो को पूरी सख्ती से तेज मिर्च मसाले शराब और दूसरे चटपटे पदार्थों के सेवन करने पर काबू पाना जरूरी होता है-नहीं तो निश्चित बीमारी का कारण बन जाता है।

अम्लपित्त के कारण ४० पित्तविकारो की उत्पत्ति होती है।

१ सर्वांग मे तीव्रदाह, स्वेद और अरति होना

२ किसी एक स्थान मे दाह

३ सर्वांग मे तीव्र सताप

४ नेत्र आदि इन्द्रियो मे जलन और हृदय मे धकधक

५ शिर, कण्ठ आदि से धुआ सा उठना
६ अन्तर्दाह और हृदयशूल सह खट्टी डकारे आना
७ हस्तपाद आदि मे विविध प्रकार का दाह
८ किसी अवयव विशेष का दाह
९ कोष्ठ आदि स्थानो मे दाह
१० शारीरिक उत्ताप की वृद्धि होना
११ अधिक पसीना आना
१२ किसी विशेष अवयव मे प्रस्वेद की वृद्धि
१३ किसी विशेष प्रकार की गध का आना
१४ किसी अवयव मे टूटने के समान पीडा होना
१५ रक्त का काला, दुर्गन्धमय और पतला होना
१६ मास का काला, शिथिल और दुर्गन्धमय होना
१७ बाह्यचर्म मे जलन
१८ मास मे जलन
१९ बाहर की त्वचा का फटना
२० चमडी का फटना
२१ रक्त के कोष्ठ (चक्त्ते) उठना
२२ रक्तपित्त व्याधि
२३ शरीर पर लाल मण्डल बनना
२४ देह का रग हरा-पीला हो जाना
२५ हल्दी के समान रग होना
२६ मुह पर नीले दाग
२७ कक्षस्थान मे मास का विदारण (काख बिलाई)
२८ कामला
२९ मुह का कडवा रहना
३० मुह से दुर्गन्ध आना
३१ प्यास का बढ जाना
३२ भोजन अधिक करने पर तृप्ति ना होना
३३ मुखपाक
३४ गले का पक जाना
३५ चक्षु का पाक होना
३६ गुदा का पाक
३७ मूत्रेन्द्रिय का पाक
३८ रक्त का स्राव
३९ चक्कर आकर अन्धकार भासना
४० नेत्र, मूत्र, मल हरा-पीला हो जाना।

इन पित्तविकारो के कारण रोगी जब डाक्टरो के पास जाता है तो वह लक्षणात्मक चिकित्सा करता है तो दवा खाने तक तो रोग को आराम रहता है। दवा छोडने पर फिर वही लक्षण पैदा हो जाते हैं। शीतपित्त के ऐसे सैकडो रोगियो को देखने का मौका मिला है- जो अम्लपित्त का इलाज करने से शीतपित्त से भी मुक्त हो गये।

अम्लपित्त से पैदा होने वाले रोगो मे पहिले अम्लपित्त का इलाज करना जरूरी होता है। अगर इस तरह से नहीं किया जायेगा तो मुख्य रोग को कोई खास फर्क नहीं पडेगा। अगर फर्क आ भी गया तो कुछ समय बाद फिर पहले वाली हालत हो जायेगी। पाठको की जानकारी के लिए यहा एक घटना बता रहा हू जिस को पढकर पाठक स्वय अदाजा लगा सकते है कि आयुर्वेद की सामर्थ्य वहा भी अपना जलवा दिखाती है जहा पर बडे-बडे डाक्टरो के हाथ खडे हो जाते है।

अठराह की शिकार (पजाब मे आठवे महीने तक हो जाने वाले गर्भपात को अठराह कहा जाता है) एक औरत बार-बार गर्भपात का शिकार हो जाती थी। बहुत से डाक्टरो और वैद्यो से इलाज करवाये पर हर बार गर्भपात हो जाता था। पजाब और चडीगढ के प्रसिद्ध हस्पतालो मे गर्भ ठहरने के बाद वह और गर्भपात से बचने के लिए पाच-पाच महीने दाखिल रही। पर हर बार आठवा महीना आते ही सब यत्नो के बावजूद गर्भपात हो जाता था।

बार-बार मिलने वाली असफलता के कारण वो निराश होकर बच्चा होने की उम्मीद छोडकर घर बैठ गये। उनकी आडत की दुकान पर मेरा एक मरीज जाता था। जब उसको इस घटनाकर्म का पता चला तो उसने उनको मेरे बारे मे बताया और भरोसा दिया कि एक बार दिखा देने मे हर्ज क्या है ?

अगले दिन वह मरीज को लेकर मेरी क्लीनिक पर आ गया। मैने रोगी की नब्ज देखी और अम्लपित्त के लक्षणो के बारे मे पूछा। जैसे-जैसे मै बताता गया औरत के शरीर और मन की हालत से मिलता गया। अत मे मैने उसको माहवारी का ज्यादा आना और बार-बार गर्भपात होते रहने की शका जाहिर की।

जब बिना बताये उस औरत के रोग के सभी लक्षण मिल गये तो उनको मेरे पर विश्वास जमा। और सारी बीती हुई कहानी मुझे बताई और मुझसे इलाज के बारे मे पूछा।

मैंने उनको अठराह के इलाज मे होने वाले परहेजो के बारे मे बताया और कहा कि मेरा इलाज शुरू होने से लेकर चार महीनो तक गर्भ नहीं ठहरना चाहिए। गर्भ ठहरने के बाद नौ महिनो तक सभोग नहीं करना, भारी काम नहीं करना, नल नही गेडना, सीढिया नहीं चढना आदि। अगर यह परहेज कर सकती हो तो इलाज शुरू कर लो-अगर नहीं कर सकती तो फिर कोई फायदा नही।

उनके हा कहने पर मैने उसका इलाज शुरू कर दिया। उस औरत की मुख्य बीमारी अम्लपित्त होने के कारण सारा इलाज अम्लपित्त को ठीक करने पर केन्द्रित कर दिया।

पजाब मे वमन-विरेचन लेने से सभी लोग भागते है। इसलिए उस औरत का इलाज भी बिना शोधन के ही शुरू किया। पहिले दस दिन रोटी बद कराकर सिर्फ फ्रूट जूस और नारियल का जल लेने को कहा। दस दिन बाद कम से कम मिर्च मसाले वाली दाल सब्जी के साथ रोटी शुरू करवा दी।

इलाज के एक महीने बाद उसका अम्लपित्त ठीक था। महावारी भी ठीक दिनो के बाद आम जैसे आई। तीन महीने यह इलाज करके मैने उसकी यह दवा बद कर दी और उसको कह दिया कि बाकी इलाज गर्भ होने के बाद शुरू करेगे।

गर्भ रह जाने के बाद मैने अठराह को रोकने का इलाज शुरू कर दिया। औरत को पूरी तरह आराम करने की सलाह देकर उसको खाने-पीने की चीजो की लिस्ट बनाकर दे दी।

एक-एक करके महीने बीतने लगे। आखिर आठवा महीना भी सुख-शाति से बीत जाने के बाद मै भी और उनका परिवार भी खुश था।

दसवे महीने उस औरत को लडका प्राप्त हुआ। आज वह औरत तीन बच्चो की मा है।

पाठको के साथ इस घटना को साझा करने का भाव सिर्फ यह बताना था कि अगर बीमारी के सही कारणो की जानकारी हो और उनका विधि-विधान से इलाज किया जाए तो आयुर्वेद के सामने कोई बीमारी नहीं ठहर सकती।

अविपत्तिकर चूर्ण मे निशोथ मिलाया है, जिस से इस चूर्ण मे विरेचन गुण भी मौजूद रहते है। इस चूर्ण के सेवन करने से आमाशय मे सग्रहीत हुआ पित्त अतडियो मे चला जाता है और रोगी को जलन से तुरत राहत मिल जाती है।

अगर तेजाब ज्यादा बनता हो और जलन भी काफी हो रही हो तो इस चूर्ण मे सज्जीक्षार मिला कर ले लेने से जादू जैसा असर होता है। यदि इस चूर्ण के विरेचन गुणो के कारण ज्यादा टट्टिया आ रही हो तो इस चूर्ण को थोडी सी मात्रा मे रोटी से पहिले और थोडी सी मात्रा रोटी के बाद घी और शहद मे मिलाकर लेना चाहिए। इस तरह इसके विरेचन गुण कम हो जाते है।

कई बार अम्लपित्त जब रक्त मे ज्यादा मात्रा मे मिल जाता है तो सारे शरीर के नाडीतत्र मे एक खिचाव बन जाता है, जिससे नाडीतत्र मे दर्द होना शुरू हो जाता है। अक्सर शिरदर्द की शिकायत भी बनी रहती है। ऐसी हालत मे अगर रोगी दर्द-निवारक अग्रेजी गोलिया खाता रहे तो यह अम्लपित्त Peptic Ulcer मे तबदील हो जाता है।

पुराने शिरदर्द से पीडित दरजनो औरते जिनका शिरदर्द आधुनिक-दर्द निवारक दवाइयो से भी नहीं हटता था, की असल बीमारी अम्लपित्त का इलाज करने के बाद अब तक कभी शिरदर्द की शिकायत नहीं आई।

पुराने शिरदर्द, शीघ्रपतन या शुक्राणुओ की कमी के रोगी का ठीक तरह निदान कर लेना चाहिए। क्योकि यह अक्सर अम्लपित्त की ही देन होते है। इस तरह के सभी रोगो मे अगर अम्लपित्त की शिकायत है तो पहिले इसका इलाज करना चाहिए। और बाद मे जरूरत हो तो दूसरी बीमारी का इलाज करना चाहिए। अगर इसका पहिले इलाज नही किया जायेगा तो बीमारी पर असर दिखाने वाली अच्छी से अच्छी दवा भी अपना असर नहीं दिखायेगी।

अम्लपित्त मे लवणभास्कर चूर्ण और हाजमोला जैसी गोलिया फयदा पहुचाने की जगह नुकसान करती है। इसलिए पाचक रसो को बढाने वाली दवा इस रोग मे उपयोग नहीं करनी चाहिए।

आजकल अखबार रिसाले कब्ज तोडने वाले चूर्णों के इश्तहारो से भरे हुए होते हे। जिनके उपयोग से पेट गैस, कब्ज और अम्लपित्त हटाने के बडे-बडे दावे छपे होते है। कई पढे-लिखे लोग डाक्टर के पास जाने की बजाए उस इश्तहारबाजी से प्रभावित होकर इन चूर्णों का उपयोग शुरू कर देते हे। इन चूर्णो मे सनाय एक मुख्य दवा होती है जो कि सभी कब्ज तोडने वाले चूर्णों मे पाई जाती है। इन चूर्णों के उपयोग से अम्लपित्त और कब्ज से राहत तो मिलती है पर लम्बा समय सेवन करने से अतडिया कमजोर हो जाती हैं। चूर्ण छोडने के बाद अम्लपित्त पहिले की तरह अपना रग दिखाने लग जाता है। इसलिए इन चूर्णों से जितना बचा जा सके बचना चाहिए। ऐसे लोगो को इन बाजारी चूर्णों की जगह अविपत्तिकर चूर्ण लेना चाहिए। इसके सेवन से अम्लपित्त से होने वाली कब्ज जड से खतम हो जाती है।

वृक्क-दाह होने पर रक्त मे मूत्रविष की वृद्धि होती है। फिर आखो और मुखमण्डल पर शोथ हो जाती है। देह कृश हो जाती है। चेहरे की रौनक गायब हो जाती है। किसी भी काम को मन नहीं करता। दृष्टि मन्द हो जाती है। रक्त की प्रक्रिया अम्ल हो जाती है। आमाशय मे पित्त तेज हो जाता है। और कब्ज भी पूरा दुख देती है। ऐसी स्थिति मे यह अविपत्तिकर चूर्ण लेने से सभी लक्षण दूर हो जाते है।

बहुत बार इस रोग मे कई औषधियो का मिश्रण करके देना पडता है। अम्लपित्त मे नीचे लिखे अनुसार औषधि देकर देखे। औषधि तत्काल अपना प्रभाव दिखावेगी। इसके उपयोग से अग्रेजी दवाये लेकर थक चुके लोग भी हैरान रह जाते है।

अविपत्तिकर चूर्ण	२ ग्राम
कामदुधा रस	२५० मि० ग्रा०
सज्जीक्षार	१२५ मि० ग्रा०
सूतशेखर रस	१ गोली

सुबह-शाम खाना खाने से दस मिनट पहिले पानी से।

इस मिश्रण से मेदे मे बना हुआ तेजाब दो चार मिनटो मे अतडियो मे चला जायेगा। होने वाली जलन एक मिनट मे ही खतम हो जाती है।

इस योग का प्रयोग अब तक सैकडो रोगियो पर किया है। सालो से पीडित अम्लपित्त के रोगी को १०-२० दिनो मे पूरा फायदा करता है।

अम्लपित्त से होने वाले शिरदर्द मे ऊपर लिखी औषधि मे सुवर्णमाक्षिक भस्म २५० मि० ग्राम मिलाकर दे।

अम्लपित्त के कारण अगर Peptic Ulcer हो गया हो तो सुबह, शाम दूध मे ईस्बगोल का छिलका मिलाकर दे। रोटी बद कराकर दूध या फलो के जूस पर रखे। पहिले बताये गये योग मे अविपत्तिकर चूर्ण की जगह धात्री लोह मिलाकर दे। दस-बीस दिन मे मौत के मुह मे पडा रोगी बच जाता है। दवाई जरूरत के अनुसार लम्बा समय दे।

बदहजमी से पीडित रोगियो को किसी योग्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए क्योकि अम्लपित्त और अग्निमाद्य दोनो मे ही बदहजमी की शिकायत होती है। दोनो के इलाज और कारण अलग-अलग है। अग्निमाद्य मे पाचक रसो मे से खट्टापन कम हो जाता है। इसलिए उसके इलाज मे पाचक रसो मे जरूरत के अनुसार खट्टापन लाने के लिए गर्म दवाई का आयोजन किया जाता है और अम्लपित्त मे इससे विपरीत दवा दी जाती है। दोनो के लक्षण मिलते होने के कारण कई बार अच्छे वैद्य भी उलझ जाते है।



अम्लपित्त पर विशिष्ट अनुभव

वैद्य बल्देवप्रसाद एच० पनारा, अहमदाबाद (गुज०)

अडतीस वर्ष की वैद्यकीय प्रैक्टिस के दौरान मेरे पास आये हुये मरीजो मे ९० प्रतिशत जितनी अधिक तादात मे "अम्लपित्त'' के रोगी ही पाये गये।

यह एक ऐसा रोग है कि प्राय रुग्ण उसकी उपेक्षा करके या थोडी बहुत परहेज पालकर, अपनी गाडी चलाता रहता है, किन्तु जिसके ही दर्द से अनेक और अधिक भयावह व पीडकारी दर्द हो सकते है। जिसका सही अनुमान प्राय रुग्णो को नहीं होता।

अम्लपित्त से होने वाले अन्य रोग-

इस रोग के जीर्ण होने पर या रक्त मे अम्लता व्याप्त हो जाने पर रुग्ण को ५-१० वर्षोपरान्त आमाशय-व्रण Peptic Ulcer Duojenal ulcer हो जाता है। जिसके बाद भी योग्य उपचार न मिलने पर रुग्ण को कर्केटिक Cancer (आमाशय का) हो जाता है। कभी-कभी रुग्णो की गरदन व छाती (उर) जकड जाती है। कभी हृदय-प्रदेश मे सूची भेदवत् पीडा होने पर रुग्ण को हृदय रोग की आशका होती है। ग्रीवा की जकडन से "स्पोन्डिलासिस'' की आशका होती है और यदि रुग्ण अकुशल अल्प अनुभवी चिकित्सको की राय लेता है तो उसकी अयोग्य या झूठी ट्रीटमेन्ट होने से रुग्ण को तनिक भी लाभ नहीं होता। ऐसी स्थिति मे रोग का सही निदान कराने हेतु व सही उपचार हेतु अपने इलाके या शहर के किसी अनुभवी, सफल व अनुभवी चिकित्सक से ही परामर्श लेना सही कदम होता है।

ईश्वर कृपा से हमारे पास आये सैकडो अम्लपित्त के रुग्णो का दर्द जडमूल से मिट गया है किसी-किसी की १० या १५ साल पुरानी या २५-३० साल से भी पुरानी बीमारी से आजीवन मुक्ति मिल गयी है। अम्लपित्त के रोगी हमारी दवा से अच्छे हुये सैकडो रुग्ण अपने पहचान वाले दूसरे रुग्णो को हमारे पास भेजते है। भगवान् धन्वन्तरि की कृपा से उन सभी को पूर्ण लाभ होता है।

हमारा अनुभूत चिकित्सा सूत्र-

हमारी ३८ साल की प्रैक्टिस के दौरान जिस चिकित्सा-सूत्र से हमने सफलता पायी है वह हम यहा कुछ भी गुप्त रखे विना अगली पीढी के नये वैद्यो के लिये बता देते है।

१ **अभयादि क्वाथ**-अम्लपित्त के रुग्णो को सबसे प्रथम हम अभयादि काढा २-२ चम्मच सुबह-शाम देते है। यदि यवकुट चूर्ण के रूप मे प्रतिदिन नवीन काढा पीया जाय तो सबसे अधिक अच्छा है। किन्तु समयाभाव मे फार्मेसी का तैयार काढा भी स्तेमाल हो सकता है। हमारे अनुभव से यह क्वाथ अम्लपित्त रोग को जडमूल से मिटाने मे "मास्टर'' सर्वोत्तम निरापद औषधि है। जिसके अभाव मे पर्पटादि काढा, पथ्यादि काढा या फलत्रिकादि काढे का भी प्रयोग हो सकता है। रुग्ण को कम से कम ३ से ५ महीना जिसका अन्य सहयोगी औषधियो के साथ प्रयोग करना परिणामदायक है।

२ **उदुम्बरावलेह**-परम पित्त-दोष शामक व शीतल है। प्राय मै अभयादि काढे के साथ ही इसकी २ चम्मच (१०-१५ ग्राम) मिलाकर सुबह-शाम दो बार देता हू। जिन रुग्णो को अनिद्रा या मानसिक चिन्ता आदि रहती है। उनको मै इसकी जगह पर "ब्राह्मी कम्पाउन्ड सीरप'' देता हू। जिसके बहुत अच्छे परिणाम मिलते है।

३ **अविपत्तिकर चूर्ण व पित्तशामक भस्मे**-अविपत्तिकर चूर्ण १०० ग्राम, प्रवाल पचामृत ५ ग्राम, सूतशेखर रस या लीला रस १० ग्राम, कामदुधा रस २।। ग्राम सबका समिश्रण भोजन के पूर्व ५ ग्राम मात्रा मे दोपहर व शाम को पानी के साथ देता हू। जो रुग्ण पाउडर फोर्म दवा नही ले सकते उनको मे "बानफार्मा (राजकोट गुजरात) की बनी ऐसिडीनोल टेब० या चरक फार्मा की 'अल्सारेक्स टेब० भोजन के पूर्व २ टेब० दो बार (दोपहर-शाम) पानी से देता हू। यह भी अच्छी परिणामदायक औषधि सिद्ध हुयी है।

४ **शखवटी या सुक्तिन** टेब०-अम्लपित्त के रुग्ण को उपरोक्त दवाओ के साथ ही भोजनोत्तर १ घन्टे पर शखवटी टेब० २-२ देता हू। कई रुग्ण को शखवटी प्रतिकूल रहती है। तब मे एलारजिन क० की सुक्तिन टेब० २-२ खाने के बाद २ बा देता हू।

५ **सुदर्शन घन वटी**-जिन रुग्णो को पित्तदोष अति तीव्र होता है या साथ मे कफदोष भी रहता है, उन्हे मे शखवटी या 'सुक्तिन' के साथ मे २-२ टेब० सुदर्शन घन वटी भी देता हू। जिसके बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त हुये है।

६ **सूतशेखर रस**-अम्लदोष वाले नये रुग्णो को सादा और अधिक दोष वाले जीर्ण रुग्णो को सुवर्ण सूतशेखर रस देना बहुत लाभप्रद है। सादे सूतशेखर की २-२ टेब० भोजनोत्तर या अभयादि काढे के साथ दे। जब कि स्वर्ण सूतशेखर रस को मै धात्री रसायन या कूपमाण्ड अवलेह मे मिलाकर देता हू। स्वर्ण सूतशेखर रस ३ से ५ ग्राम तक खा जाने वाले रुग्णो को इस दर्द मे प्राय काफी लाभ हो जाता है।

७ **शतावरी घृत**-अम्लपित्त के तीव्र पित्त या वातदोष के रुग्णो को मै छात्री रसायन कूपमाण्ड अवलेह या शतावरी अवलेह की १ चम्मच के साथ ५ ग्राम शतावरी घृत सुबह-शाम देता हू। जिससे पित्तदोष की परमशान्ति व शुद्धि हो जाती है। इसके प्रयोग से लम्बे अरसे तक फिर से अम्लपित्त परेशान नहीं करता व रुग्ण सब कुछ खा सकता है।

८ **एरण्ड भ्रष्ट हरीतकी चूर्ण**-औषध प्रयोगो से विभक्त पित्तदोष मल के मार्ग से शरीर के बाहर निकल जाना ही चाहिए। कोष्ठ विरेचन के लिये अम्लपित्त के सभी रुग्णो को मै एरण्डभ्रष्ट हरीतकी चूर्ण ही समग्र चिकित्सा समय पर प्रतिदिन देता हू। जिससे कोष्ठ की परम शुद्धि हो जाती है। और रुग्ण को Parmanent लाभ होता है।

नोट-कभी रुग्णो को दूसरे भी उपद्रव या शिकायते हो सकती है। ऐसी स्थिति मे रुग्ण के दर्द के स्वरूप उसकी प्रकृति व उसके दोषानुरूप अन्य जो भी चिकित्सा उचित हो, देनी चाहिये। चिकित्सको को परामर्श है कि वे अपने रुग्ण की सभी बाते पूरे ध्यान से सुने और उस पर पूरा सोच-विचार करके ही अन्य दवाये दे। जिन चीजो से रुग्ण को खाने-पीने मे प्रतिकूल प्रभाव होता हो, उनका परहेज अवश्य रखवाये।

अम्लपित्त के रुग्ण को पित्तदोषशामक सब परहेज (पथ्यापथ्य) बताना चाहिए। और उसका पालन भी करवाना चाहिये। जैसे-रुग्ण को अधिक चाय, काफी, धूम्रपान तम्बाकू खाना, मद्यपान, रात्रिजागरण या रात की नौकरी, धूप मे काम करना या घूमना नशीली चीजो की आदत, गुड, गर्म चीजे खाना मना है। ऐसे मरीज को मधुर, कडवे व तिक्त रस वाले पदार्थ खाने मे अधिक लेने चाहिए।

रुग्ण को सूचना-कोई रुग्ण इस लेख को पढकर अपने आप दवाये बाजार से लेकर अपनी चिकित्सा शुरू न करने की खास हिदायत है। क्योकि चिकित्साक्रम शुरू करने मे पहले रुग्ण की तासीर, दोष अन्य उपद्रवो, मनोबल, शरीरबल आदि बातो पर पूर्ण विचार करना अत्यन्त जरूरी होता है। इसलिये अपने शहर के किसी अच्छे अनुभवी कुशल वैद्य की व्यक्तिगत परामर्श लेकर ही अपनी चिकित्सा करवानी चाहिये। चिकित्सा की अन्य ऐसी कई बाते होती है। जो एक सामान्य जन के ख्याल मे आ ही नहीं सकतीं।

अम्लपित्त की मेरी यह चिकित्सा शतशोनुभूत है और हमारे पास चिकित्सा करा गये रुग्णो को ५ से २५ वर्ष हो जाने पर भी फिर से यही शिकायत लेकर आना नहीं पडता, ऐसा हमारा अनुभव है।

❖❖

● **सम्पादकीय टिप्पणी-**

अम्लपित्त पर एक सफल योग

योग-श्वेत अभ्रक भस्म ५० ग्राम, वराटिका भस्म ५० ग्राम, शु० गैरिक १०० ग्राम मिलाकर १ मात्रा बनावे।

मात्रा तथा उपयोग-दिन में ३ मात्राये शहद के साथ दिलवावे या कैपसूल मे भरकर ले।

अनुभव-अम्लपित्त मे ९० प्रतिशत सफल योग है। पाठक इसकी परीक्षा कर सकते है। *-वैद्य गोपालशरण गर्ग*

अम्लपित्त और उसकी सफल चिकित्सा

वैद्य रमेश जोशी, आयुर्वेदाचार्य
४ रतीलाल पार्क, बडौदा (गुजरात)-१९

निरुक्ति-अम्ल चतस पित्त अम्लपित्तम्। अर्थात् अम्लीभूत पित्त ही अम्लपित्त कहलाता है। जिसको विदग्धपित्त भी कहा जाता है। उसका रस अम्ल माना जाता है। आयुर्वेदशास्त्र मे अम्लपित्त को अलग रोग से विवेचन किया हुआ मिलता है।

रोग होने के कारण-वर्षा ऋतु जैसे काल मे ऋतु प्रभाव से शरीर मे सचित पित्त जब आहारादि की विकृति के कारण पित्त को बढाने वाले भोजन आहार-विहारादि करने से पित्त अधिक अम्ल हो जाता है। तब उसको शास्त्र मे अम्लपित्त नाम से जाना जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र मे रोग उत्पन्न होने मे ऋतु आहार-विहार खान-पान आदि अनेक सिद्धान्तो को दृष्टिगत रखकर रोगी का निदान किया जाता है। उसी तरह अम्लपित्त के बारे मे भी निम्न कारणो से अम्लपित्त होता है, उसका उचित निदान किया जाता है। जैसे-शास्त्र मे बताया है कि दूध, मछली, दूध लहसुन, दूध के साथ दही आदि अत्यधिक रात्रि-जागरण अति मानसिक परिश्रम आदि पित्तप्रकोप अन्नपान, विदाही, विष्टम्भी जैसे पदार्थों का सेवन अत्यधिक मद्य-धूम्रपान, आदि कारणो से अम्लपित्त रोग शरीर मे उत्पन्न हो जाता है।

सामान्य लक्षण-भोजन का अच्छी तरह से नहीं पचना, डकारो का आना, शरीर मे भारीपन लगना, भूख कम लगना, शिरोगौरव होना, उदर का भारीपन होना, भ्रम आना, गले मे दाह होना, शरीर मे गैस होना, शरीर मे अग गौरवता, वमन करने की इच्छा होना आदि लक्षण होते है।

साध्यासाध्य-अम्लपित्त की चिकित्सा करना बहुत कठिन है। आज के समय मे रात्रि-जागरण की नौकरी, मानसिक तनाव, तम्बाकू, मदिरापान आदि कुटेव लोगो मे बहुत आ गयी है। यह रोग नवीन हो तो रुग्ण औषधि लेने मे और आहार-विहार के क्रम मे सभलकर रहन-सहन रखता है, तो आराम हो सकता है। लेकिन उसमे अधिक प्रयास करने पडते है। रोगी को औषधि लेने मे और खान-पान मे सख्त रहना अति आवश्यक है। लेकिन अधिक समय हो गया हो तो याप्य है। कहने का मतलब यह है कि नियमित औषधि सेवन और नियमित आहार-विहार क्रम को ध्यान मे रखने से रोग दाबा जा सकता है। उसका कन्ट्रोल ज्यादा रहता है। रोग उत्पन्न होने का समय अनुकूल हो जाने से उभर के आ जाता है। उसकी चिकित्सा मे वमन-कर्म कराना शास्त्रकारो ने सूचित किया है। स्नेहपाक कराना, मृदु विरेचन देना, बस्तिकर्म कराना उपरोक्त शोधन-चिकित्सा के यथायोग्य क्रिया करने के बाद का शयन-चिकित्सा का क्रम कराना चाहिए।

चिकित्सा-शास्त्रो मे उसकी चिकित्सा के अनेक योग बताये हैं। जैसे-चूर्णकल्पना, पिष्टी कल्पना, रसकल्पना, घृतकल्पना, भस्म कल्पना, तैल मर्दन कल्पना, क्वाथ कल्पना, विरेचन कल्पना, (विशेष) खडकल्पना, पाक कल्पना, आदि अनेक उपायो के सुझाव दिये है। यथायोग्य जानकारी के लिये निम्न सूचना दे रहा हू।

चूर्ण कल्पना-अविपत्तिकर चूर्ण, निम्बचूर्ण, आवला चूर्ण।

पिष्टी कल्पना-प्रवाल पिष्टी आदि, प्रवाल पचामृत आदि।

रस कल्पना-कामदुधा रस, चन्द्रकला रस, सूतशेखर रस, अम्लपित्तान्तक रस आदि।

घृत कल्पना-शतावरी घृत, वासाघृत, पचतिक्त घृत, पिप्पली घृत।

भस्म कल्पना-शखभस्म, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म, स्वर्ण भस्म

तैल मर्दन-निम्ब तैल, तिल तैल, बिल्व तैल- अभ्यग कराना श्रेष्ठ है।

क्वाथ कल्पना-भूनिम्बादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ, अभयादि क्वाथ।

विरेचन कल्पना-त्रिफला चूर्ण, स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, अविपत्तिकर, एरण्ड भ्रष्ट, हरीतकी चूर्ण, शिवाचूर्ण, दीनदयाल चूर्ण, पचसकार चूर्ण आदि।

खड **कल्पना**-पिप्पली खण्ड, शुठी खण्ड आदि शास्त्र मे अनेक कल्पनाओ का विस्तारपूर्वक आयोजन बताया है। हमारे अनुभव मे निम्न योग से सफलता मिली है। उसकी जानकारी निम्न हैं।

१ चन्द्रकला रस १ रत्ती
प्रवाल पचामृत ३ रत्ती
अम्लपित्तान्तक रस ४ रत्ती
सूतशेखर रस ४ रत्ती
कामदुधा रस ४ रत्ती

(आयु के प्रमाण से ज्यादा-कम कर सकते हैं।)

२ अविपत्तिकर चूर्ण ४ माशा प्रात एक बार, रात को सोते समय एक बार

३ दाडिमाष्टक वटी २ गोली मुख मे रखने के लिये ३ बार

४ अथवा - शखवटी २ गोली २ बार भोजन के वाद।

५ चित्रकादि वटी-२ गोली २ बार भोजन के वाद।

६ आमपाचन वटी- २ बार भोजन के बाद।

पिप्पल्यासव-२ तोला २ बार ज्यादा पानी डालकर शनै -शनै पीने को है। भोजन के २ घण्टे बाद।

चदनासव- २ तोले २ बार उपरोक्त विधि से।

अभयादि क्वाथ - २ तोले २ बार पानी के साथ।

दशमूल क्वाथ-२ तोला २ बार शहद मिला के पीवे।



अम्लपित्त नाशक कुछ सफल योग

१ **अम्लपित्त नाशक पेय**-दालचीनी २ ग्राम, इलाइची ५ ग्राम, अनारदाना ३ ग्राम, पोदीना शुष्क ३ ग्राम, आवला ३ ग्राम, जीरा स्याह १ ग्राम, मुनक्का ५ ग्राम, पानी ९० ग्राम, गुलकद २० ग्राम, उपरोक्त सब दवा पानी मे पीसकर गुलकन्द को मल-छान कर पिला देना चाहिए। अम्लपित्त पर विशेष लाभदायक है।

२ **शतपत्यादि चूर्ण**-फूल गुलाब २० ग्राम, असली गिलोय सत्व, कबाब चीनी, छोटी इलायची, जीरा, खसखस, नागकेशर, सारिवा, नीलोफर, गोखरू, श्वेत चन्दन, वसलोचन, मोथा, ईसवगोल की भूसी, दालचीनी, कमलगट्टा, अरारोट १०-१० ग्राम मिश्री ४० ग्राम को कूट-छान कर रखे।

मात्रा-१।। ग्राम से ३ ग्राम तक ताजे जल से दिन मे २-३ बार लेने से अम्लपित्त मे लाभ होता है।

● **सम्पादकीय टिप्पणी-**

दोनो योग अम्लपित्त मे विशेष लाभदायक है। अम्लपित्त नाशक पेय शीतलता प्रदान करने वाला योग है। किसी भी एलोपैथिक एन्टासिड के समकक्ष प्रयोग किया जा सकता है।

-गोपालशरण गर्ग

उदावर्त तथा उसका सफल उपचार

डा० पी० एस० अशुमान, एच० पी० ए०
प्रोफेसर-शेठ जी० प्र० सरकारी आयुर्वेद कालेज, भावनगर (गुज०)

चिकित्सा सूत्र-

१ प्रथम अभ्यग (शीतज्वरघ्न आदि तैल) पूर्वक दोष विलीनार्थ स्वेदन (अवगाह आदि)।

२ प्रविलीन दोष आहरणार्थ-१ गुदवर्ति २ विरूहबस्ति ३ स्नेह विरेचन (एरण्ड तैल आदि) ४ अनुलोमक अन्न-पानादि द्वारा चिकित्सा।

३ विशिष्ट लक्षण एव उपद्रव मे तदानुसार चिकित्सा।

४ सभी उदावर्तो मे वायु को स्वमार्ग मे लाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(सु) तथा विशिष्ठ वेगरोधो मे कहे उपचार (च)

चिकित्सा-क्रम-

१ प्रथम वात/ मल अनुलोमनार्थ निम्नलिखित बर्ति या प्रधमन कल्प प्रयुक्त करे। प्रथम बर्ति-१ यामादि बर्ति, पिण्डयामादि बर्ति, पिप्पल्यादिवर्ति, कृमिघ्न बर्ति। (च)

२ यदि उपरोक्त बर्ति या प्रधमन चूर्णो से अनुलोमन कार्य न हो तो निम्नलिखित बस्ति-चिकित्सा उपयोग मे ली जाये।

(अ) शोधनार्थ/निरूद्ध (अति तीक्ष्ण) का प्रयोग किया जाना विहित है। दोषानुसार वात द्रव्यचयन सम्भव है। (च)

(ब) शमनार्थ-निरूद्ध मे वात शमनार्थ तैल, पित्तशमनार्थ दुग्ध तथा कफशमनार्थ गोमूत्र सयुक्त कर उपयोग मे लेना चाहिये। (च)।

३ भोजन चिकित्सा-पूर्वोक्त चिकित्सा के साथ ही अनुलोमनार्थ-

(अ) त्रिवृत्तपत्र, स्नुहीपत्र, तिलशाक या ग्राम्य ओदक, आनूपमास कल्प (ब) यवान्न (स) सुरामाड (प्रसन्ना) गुड उत्पन्न सीधु का प्रयोग। मलमूत्र-वातानुलोमनार्थ।

४ यदि फिर भी उदावर्त बना रहे तो गोमूत्र, प्रसन्ना, दधि, सुक्त, काजीयुक्त विरेचन दे। (च)

५ पुन उदावर्त होने पर स्नेहबस्ति दे। (च)

६ कुछ शमन कल्प-आवश्यकता पडने पर निम्नलिखित शमन कल्पो का युक्तिपूर्वक (विरेचन पूर्वक) प्रयोग किया जा सकता है।

चूर्ण-हिग्वादि चूर्ण (च)

वचादि चूर्ण (च)

हरीतक्यादि (यो०र०) नाराच चूर्ण (यो० र०)

त्रिफला चूर्ण / क्वाथ (यो०) पिपल्यादि क्वाथ (भै० र०)

स्नेह-

स्थिरादि घृत (च) शुष्क मूलाद्य घृत (भै० र०)

श्यामादि कषाय या स्नेह (तैल), यो० र०

लवण-

लवणपचक (च) (फलमूल), हिगु-लवण-एरण्ड तैल, लशुन रस यथा मात्र (यो०र०) सौवर्चल एव मद्य, एला एव मदिरा (भै० र०)

रस-

नाराच रस (यो० र०) इच्छा भेदी रस (भै० र०)

उदयमार्त्तण्ड रस (यो० र०)

गुटिका-

त्रिवृत्तादि गुटिका (भै० र०)

गुडाष्टक (भै० र०)

अन्य प्रयोग-

१ रसोन रस ६ मा०, मद्य १ तो० पानार्थ (भै० र०)

२ हिंग्वाष्टक चूर्ण

३ एरण्ड तैल एव दशमूलक्वाथ (अनुभूत)

पथ्य-

१ स्नेह, स्वेदन, विरेचन, बस्ति, आदिकर्म।

२ फलवर्ति, तैलाभ्यग, अनुलोमनकल्प/ पदार्थ।

३ ग्राम्य, औदक, आनूप रस।

४ एरण्ड तैल, मदिरा, एलालघु, आरग्वध, त्रिवृत्त, तिल, नुहीपत्र, आर्द्रक, बिजौरा, नीबू, यवक्षार, हीग, हरड, लौंग, द्राक्ष, गोमूत्र, सर्वलवण।

अपथ्य-

१ वेगरोध, वमन। २ शमिधान्य, कोदो, नालोतालशाक, शालूक, जामुन, ककडी, पिण्डपाक, सर्व आलू, वशाकुर, पिष्ट। ३ विरुद्ध-विबधकर द्रव्य ४ कषाय-गुरु द्रव्य।

कुछ आतुरवृत्त-

आ० क० १ एक ४० वर्षीय महिला निम्नलिखित शिकायते लेकर चिकित्सार्थ आयी-

१ यदा-कदा उदरशूल (प्राय) (१-२ सप्ताह पर)

२ उदरशूल तीव्र साथ मे, स्वेद, छर्दन, आध्मान, अरति आदि लक्षण, बाद मे अतिसरण

३ बार-बार ऐसा रोना पिछले ६-७ वर्ष से।

४ साथ मे मासिक अनियमित, कटिशूल एव श्वेत प्रदर की शिकायत। इस रुग्णा की विभिन्न परीक्षा रिपोर्ट निम्नानुसार थी।

(क) रक्त परीक्षा-

टी० सी० (डब्लु० बी० सी०) ७९००

डी० सी० पो० ६७ लिम्फ २९ ३ ओ २, मो-२, बी०

हीमोग्लोविन १०५ प्रतिशत ७५ प्रतिशत

३ एस० आर० २० एम एम०

(ख) पुरीष - अविशेष

(ग) मूत्र - अविशेष

(घ) क्ष-किरण-सब एक्युट इन्टेस्टीनल आवस्ट्रेक्मन-

(ङ) कोलेनस्कोपी-स्पाजा +

औषध-

रुग्णा की विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियो के द्वारा चिकित्सा हो चुकी थी। हमने इसका उदावर्त निदान कर निम्नलिखित औषध व्यवस्था दी।

(अ) सामान्यत -

१ शखवटी १ गोली

हिंगुकर्पूर १ गोली २ बार प्रतिदिन

२ शिवाक्षार पाचन १/२ माशे रात्रि मे

(ब) शूल की वेगकालीन-अवस्था मे-

१ नारिकेल लवण ४ रत्ती

शूलवज्रिणी १ गोली जल से

२ लवणभास्कर १ माशा सलवण निम्बुशर्बत के साथ-२-३ बार।

३ हिग्वष्टक चूर्ण - सघृत प्राग्भक्त, आवश्यकतानुसार।

(स) प्रदर के लिये-

१ प्रदरान्तक लौह १ गोली

पुष्यानुग चूर्ण १ माशा

२ बार चावल के पानी के साथ।

२ पत्रागासव १ तोले भोजनोपरान्त।

परिणाम-

रुग्णा पिछले ४-५ मास से स्वस्थ्य है। १ बार मृदु शूलवेग आया।

आ० क० २-

इसी प्रकार की एक १२ वर्षीय वाला, उदरशूल, आध्मान, विबन्ध के साथ छर्दन आदि लक्षण लेकर चिकित्सार्थ लाई गयी। इसमे भी क्ष-किरण द्वारा स्थूलान्त्र मे स्पाज्म किया गया था। अन्य सोनोग्राम मे अविशेष कहा गया था।

रक्त-परीक्षण मे श्वेतकण ६२००, डी० सी० पोलो ५९, लिम्फ ३५, ३ ओ २, मोनो १, वास्प०, हीमोग्लोविन ११५ तथा मूत्र-परीक्षा अविशेष, पुरीष मे पूयकण, रक्तकण एव रस पाया गया, इसमे भी जीर्ण प्रवाहिका का पूर्व निदानपूर्वक उत्पन्न उदावर्त निदानपूर्वक पूर्वोक्त १ शखवटी एव हिंगुकर्पूर वटी २ शिवाक्षार पाचन तथा शूल के वेग के होने पर शूलवज्रिणी दिया गया। रुग्णा को कृमिकुठार एव इन्द्रयव तथा काकच चूर्ण प्रवाहिका सक्रमण यापनार्थ दिया गया समग्रता रुग्णा को शामक प्रभाव देखा गया।



अतिसार और उसकी अनुभूत चिकित्सा

आचार्य डा० महेश्वरप्रसाद, आयुर्वेद-बृहस्पति एव श्रीमती शशिउमा देवी
आडॉम विज्ञान शोध-सस्थान, दुग्धपुरा-मगलगढ (समस्तीपुर)-८४८२०८

किसी व्याधि को समझ लेने पर उसकी चिकित्सा सहज मे समझ मे आ जाती है। अतिसार और प्रवाहिका मे अन्तर है। चरक सहिता मे प्रवाहिका का अलग व्याधि रूप मे उल्लेख है। मात्र अतिसार के लक्षण रूप मे प्रवाहिका का वर्णन आया है। दोनो मे निम्नाकित अन्तर दृष्टिगोचर होते है।

	अतिसार	प्रवाहिका
उद्‌भव स्थान	आमाशय	पक्वाशय
अधिष्ठान	पक्वाशय	'प्रवाहिणी' नामक गुदवली
प्रत्यात्म लक्षण	अतिसरण जो कि अपान वायु की स्थानीय कर्मवृद्धि को सूचित करता है।	प्रवाहण जो प्रयत्न विशेष होने से उदान वायु की विकृति को सूचित करता है।
प्रमुख लक्षण	अप् धातु वृद्धि मल मिश्रण या अधिक मल, अतिसरण मे अतिमलसरण।	वलास सञ्चय, मलरक्त (अल्प मल मिश्रण) प्रवाहण मे बार-बार अल्प मल युक्त कफ सरण।
	अप् धातु क्षय से तृष्णा, शोष आदि लक्षण।	प्रयत्न की अतिकता से इसमे एकाएक श्रम (क्लम) आलस्य आदि लक्षण।

भेद-

अतिसार भेद मे चरक ने आमज को और सुश्रुताचार्य ने भयज को पृथक् नहीं गिना है, वैसे छ भेद दोनो स्वीकार करते है। चरक सहिता मे समस्त अतिसार की साम व पक्व दो अवस्था कही गयी हैं। आचार्य सुश्रुत ने यह सकेत चिकित्सा-क्रम से किया है। चिकित्सा भेद की दृष्टि से ही चरक ने भय, शोकज को दो माना है। आचार्य सुश्रुत ने इसे मानसिक विकृति मानकर एक ही कहा है। इस प्रकार दोनो मतो मे नाम मात्र का अन्तर है।

चिकित्सा-सूत्र-

आमातिसार की चिकित्सा मे लघन, पाचन के बाद द्रव और लघु आहार देना चाहिए। बलवान् रोगी मे लघन (उपवास) सर्वोत्तम है जिसमे दोष पाचन स्वत हो जाता है। कदापि आमावस्था मे सग्राही चिकित्सा नहीं देनी चाहिए। क्योकि इससे शोथ, पाण्डु आदि हो जाते है। हा, यदि रुग्णा बाल, बृद्ध, वातपित्तबहुल, क्षीणधातु, ज्वर से पीडित तथा अति तीव्र अतिसार हो तो सग्राही कर्म किया जा सकता है। यदि रहे कि अतिसार, ज्वर रक्तपित्त एव नेत्ररोग मे शुरू मे प्रतिरोधक चिकित्सा मत देवे। प्यास की शाति के लिए 'षडग पानीय' पिलाना तथा लघन के बाद 'षडग यूष' (मुद्‌ग यूष, तक्र मे धान्यक, जीरक, सैन्धव लवण आदि मिलाकर) देवे। यदि मल विबद्ध होकर पृथक्-पृथक् मात्रा मे आता हो, तो अभया (हरड) का सेवन कराकर दोष नि सरण करवाये। शूल की अधिकता मे पिप्पली क्वाथ पिलाये। अतिबद्ध मल का अधिक त्याग होने पर पहले वमन तथा बाद मे लघन दे। आमशूलावस्था मे 'धन्यपञ्चक क्वाथ' दे। पित्तानुबन्ध होने पर बिना सोठ के उक्त क्वाथ सेवन कराये। बाल बिल्व और गुड सेवन कराने से भी कुक्षिशूल दूर होता है। पश्चात् पेयादि सेवन कराकर क्रमश अग्निदीपन कराये।

पक्वावस्था मे–अवरोधक चिकित्सा देवे। इस हेतु वृद्ध गगाधर चूर्ण का सेवन गुड और तक्र (मठ्ठा) से करे। लोध्र, कुटज छाल एव अहिफेन के योग का सेवन कराना उत्तम है।

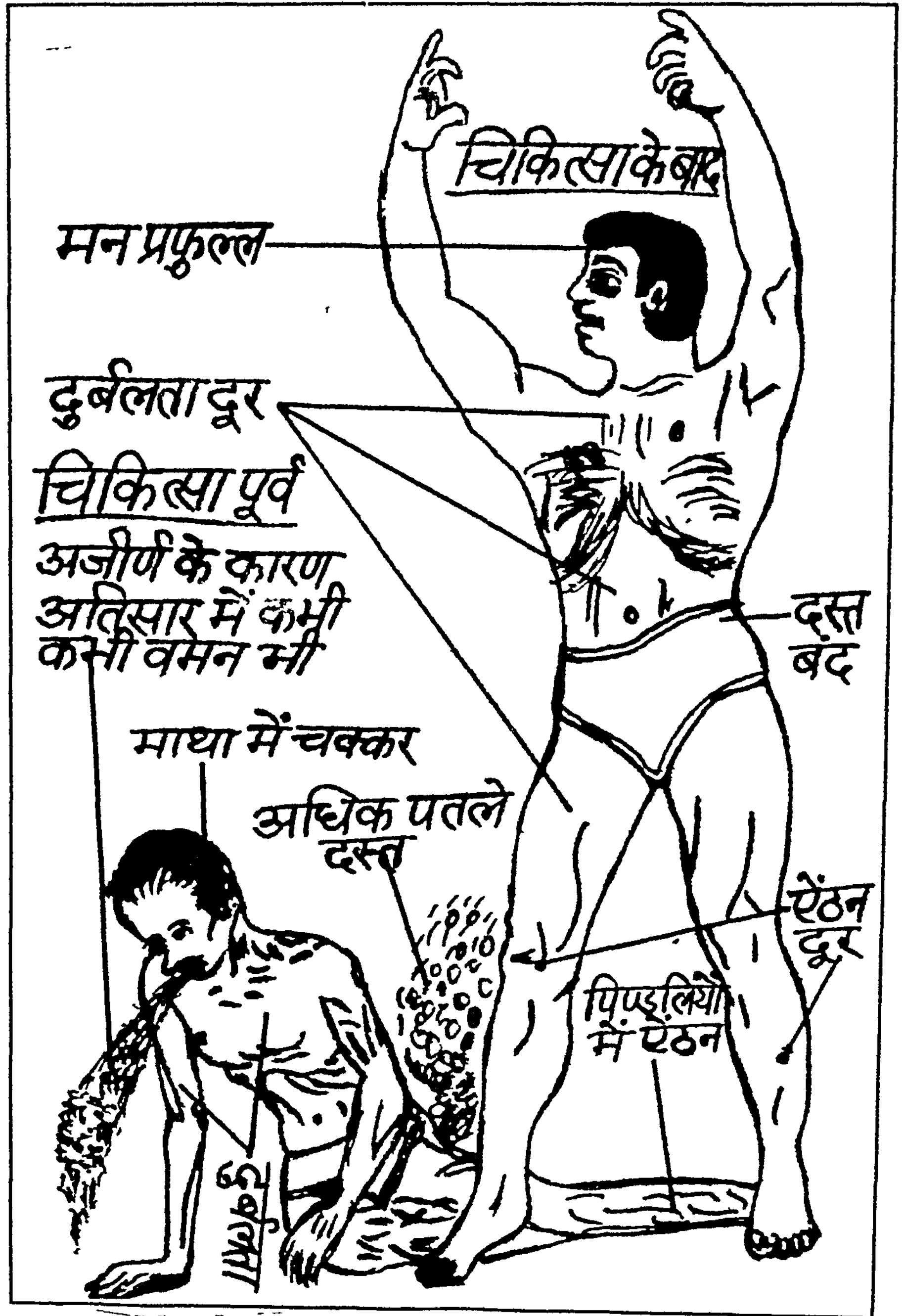
वातज **अतिसार मे**– बच, अतीस, नागरमोथा एव इन्द्रयव का क्वाथ सेवन कराये।

पित्तज अ० मे–बिल्व (बालबिल्व मज्जा), मोथा, सुगन्ध–वाला, अतीस, इन्द्रयव का काढा सेवन कराये। अथवा लोध्र, यष्टीमधु, कट्फल, दाडिमफल के छिलके का चूर्ण को तण्डुल धावन (चावल के धोवन) से सेवन कराये। दिन मे ३-४ बार।

कफज अ० मे–हरड, सौवर्चल, हिंगु सैन्धव, अतीस, वच, इनके चूर्ण को उष्णोदक से दे। आवश्यकतानुसार दिन मे २-४ बार।

रक्तज अ० मे–कुटजाष्टक क्वाथ (कुटज, अतीस, लोध्र, मोथा बालम, धातकी, चन्दन, दाडिम, पाठा का काढा) मधु से सेवन कराये। इसके अलावा पिच्छा बस्ति दे।

सन्निपातज अ० मे–कुटज की छाल को चावल के धोवन मे पीसकर जामुन के पत्ते के दौने मे रखकर कुश से लपेट कर पुटपाक करे। इससे उपलब्ध द्रव (रस) को मधु मिलाकर सेवन कराये।



भय शोकज अ० मे–हर्ष उत्पन्न करे, आश्वासन दे कि सब भय शोक बेकार हैं, कुछ नहीं होगा तथा वातघ्न चिकित्सा करे।

प्रवाहिका मे–बाल बिल्व मज्जा कल्क तथा तिलकल्क को अम्लदधि की मलाई से सेवन कराये।

विशिष्ट चिकित्सा

समस्त प्रकार के अतिसार मे ईसबगोल बीज या भूसी का हिम सशर्कर जरूर सेवन कराये। शर्कर मे ग्लूकोज देना उत्तम है। ग्लूकोज वस्तुत द्राक्षशर्कर है।

वात कफज अतिसार मे–

(१) सुबह शाम

जातिफलादि चूर्ण १ ग्राम भल्लातक तैल ५ बूद -तक्र से सेवन कराये।

(२) दोपहर रात्रि

बाल विल्व मज्जाचूर्ण १ ग्राम

ईसबगोल की भूसी १ ग्राम

आम की गुठली मज्जा चूर्ण १ ग्राम-तक्र से सेवन करावे।

(३) दिन मे चार वार (ऊपर के समय के एक घटा बाद)

सर्व अतिसार विनाशिनी रसायन-वयस्को को १ से २ गोली तथा वच्चो को चौथाई से आधी गोली मधु या जल से दे। निर्माण-विधि-आम की गुठली की मज्जा, नागरमोथा, अतीस, वाल विल्व मज्जा सूखा हुआ चूर्ण, ईसबगोल की भूसी वच, कुटज छाल और इन्द्रयव प्रत्येक १६ ग्राम, ऊपर के प्रत्येक का भस्म (क्षार) २ ग्राम, आवला सूखा कपडछान चूर्ण ८ ग्राम। इन्हे खरल मे दृढ हाथो से घोटकर समसर्वत्र बना ले। इन्हे बबूल के गोद के जल मे घोटकर ४-४ रत्ती (५०० मि० ग्रा०) की गोलिया वना ले और धूप मे सुखाले।

लाभ-इसको दिन मे चार बार सेवन करने से समस्त प्रकार के अतिसार दूर होते है। यह अनुभूत और वहुपरीक्षित है। विशेषता-औषध द्रव्यो के क्षार, सत्व एव आमला के अम्लीय तत्व एक साथ मिलकर परमाणुविक अति सूक्ष्म किन्तु अति प्रभावशाली, शक्तिशाली ऊर्जा वाला निरापद लवण प्राकृतिक रूप मे प्रस्तुत करते है जिनका असर शीघ्र और स्थायी होता है।

पित्तकफज अतिसार मे-

(१) सुबह शाम

कुटज चूर्ण सजीवनी रस शखोदर रस	समभाग मे ३ ग्राम चावल चूर्ण के साथ जल से दे।

(२) दोपहर, रात मे

सर्व अतिसार विनाशिनी रसायन वयस्को को २ गोली मधु से दे। बच्चो को उनकी आयु अनुसार चौथाई से आधी गोली दे।

वात पित्तज अतिसार मे

१ भोजन से पहले प्रतिदिन तीन बार शतावर्यादि क्वाथ ३० मि० लि० से ६० मि० लि० (२।। से ५ तोला) पिलाये।

२ दोपहर व रात को भोजन के बाद-सर्व अतिसार विनाशिनी रसायन पूर्ववत् दे।

जीर्णातिसार होने पर

१ दिन मे दो बार-धान्यपञ्चक चूर्ण डेढ से तीन ग्राम (माशा)।

बिल्वावलेह ६ ग्राम के साथ दे।

२ ऊपर के दो घटे बाद दिन मे दो बार -सर्व अतिसार विनाशिनी रसायन पूर्ववत् दे।

अतिसार शात होने पर जठराग्नि दीपनार्थ

षट्पल घृत या

चित्रकादि घृत आवश्यक एव उचित मात्रा मे दे।

दुर्बलता दूर करने के लिए

नाश्ता के बाद दो बार प्रतिदिन

स्वर्ण पर्पटी चौथाई भाग

पञ्चामृत पर्पटी दो भाग - कुल २ से ४ रत्ती (२५० से ५०० मि० ग्रा०) ऐसी एक मात्रा मधु से चटाये।

पथ्य-पुराना (तीन वर्ष का) चावल, विलेपी, लाजमण्ड, मुद्गयूष, चागेरी, केला के फूल या फल, कमलकन्द की सब्जी, कपित्थ फल सुपक्व, दाडिम की चटनी, बकरी का दूध, दही, तक्र (मठ्ठा), नवनीत, तिल, अरारोट आदि। पूर्ण विश्राम करे।

निषेध-(परहेज)-समस्त बादी एव दस्तकारक व गरिष्ठ द्रव्यसेवन से सख्त परहेज करे। अधिक श्रम एव भ्रमण से भी सख्त परहेज करे।

निष्कर्ष-रुग्णालय के अनेक रुग्णो पर प्रयोग के बाद यह परिणाम निकला कि यथोचित औषधियो के सेवन के साथ पथ्य परहेज का भी पालन कराया जाय तो समस्त अतिसार समूल नष्ट होते है।

अतिसार की सफल चिकित्सा

वैद्य प्रद्युम्न सिन्हा
सिन्हा मैडीकल हाल, गौरा सारण

चिकित्सोउपक्रम–लघन, दीपन, पाचन, ग्राही, बल्य व उपद्रव नाशक चिकित्सा।

लघन वली रोगियो को ही कराना चाहिए। कच्चे आम-विकार मे लघन रोगी को अवस्थानुसार कराना चाहिये। हल्का भोजन भी एक तरह का लघन ही है पानी मे पकाया हुआ साबूदाना, अरारोट, वार्ली धान की खील को पानी मे पकाकर मिश्री मिलाकर देना चाहिये। कफातिसार मे लघन कराना चाहिए। पित्तातिसार और रक्तातिसार मे लघन नहीं कराना चाहिये। ज्वरातिसार भी पित्त के दोष स्वरूप ही होता है, अत ज्वरातिसार मे भी लघन नहीं कराना चाहिये। बालक और वृद्ध को धातुक्षीण वाले कृश अनेक दोषो से युक्त रोगी को, जिस रोगी को मल ढेर निकलता हो ऐसे रोगियो को तुरन्त ग्राही औषध देकर दस्त बन्द करा देना चाहिए। और लघन नही कराना चाहिये।

दीपन और पाचन–लघन के बाद दीपन और पाचन औषध देनी चाहिए। दीपन-पाचन औषध देने के बाद ग्रहणी मृदु हो जाता है और आम का पाचन हो जाता है। तब सग्राहक और स्तम्भक औषध देनी चाहिये एव उसके उपद्रवो की चिकित्सा शुरू करनी चाहिए। आमातिसार मे आम कच्चा हो तो मलग्राही औषध नही देनी चाहिये। ग्राही औषध देने से आनाह अफारा शूल इत्यादि भयकर उपद्रव हो जाते है। आम दोष युक्त मल जल मे डालने से डूब जाता है वह अति दुर्गन्ध युक्त एव चिकना होता है। पक्व मल जल मे डालने से नहीं डूबता है तैरने लगता है कम दुर्गन्ध युक्त होता है। चिकना भी नहीं और हल्का हो इन लक्षणो से युक्त मल को पक्व मल समझना चाहिये।

अतिसार मे पथ्य–साबू वार्ली धान की खीलो का माड देर तक पकाया हुआ भात और उसका यूष, मसूर की दाल का पानी दही तक्र केले का फल केले की तरकारी, लौकी, शहद, जामुन, [illegible] तेल, अनार भाग, धनिया सौफ, जीरा, ये सब अतिसार के रोगी के पथ्य है। बहुत विद्वानो ने अरहर की दाल का यूष [illegible] हिरण, तीतर का मास रस सभी तरह की मछलियो का तेल, बकरी एव गाय के घी और दूध इत्यादि पदार्थों को भी अतिसार मे पथ्य कहा है पर यह अव्यवहारिक प्रतीत होता है। अरहर तो अत्यन्त गरिष्ट और वातवर्द्धक है, अत इसका प्रयोग अतिसार से निवृत्त होने पर भी नही करना चाहिए।

अतिसार मे अपथ्य–स्नान नही करना चाहिये। तैरना नही चाहिए, कठिन व्यायाम या परिश्रम नही करना चाहिए। स्त्री-सहवास नही करना चाहिये, भारी स्निग्ध कठिन अति मात्रा मे भोजन, अग्नि का सताप, धूप मे चलना, मास मछली कटु तीक्ष्ण उष्ण पदार्थ का सेवन अपथ्य है। गेहू, उडद, जौ, चना, साग (सभी तरह के) अरहर, आम, सुपारी, ईख, गुड, मदिरा, लहसुन, दाख, ककडी, खीरा, नमकीन, खट्टे पदार्थ का परहेज करना चाहिये। मल-मूत्रादि वेग को न रोकना चाहिए।

अतिसार मे जल–खूब औटाया हुआ जल शीतल होने पर पाचन, अग्निदीपक और दोषो को नाश करने वाला होता है। प्यास की अधिकता और दाह हो तो धनिया, पित्तपापडा और सुगन्धवाला द्वारा पकाया हुआ जल देना चाहिए भयकर घोर अतिसार हो जाने की सम्भावना हो तो रोगी को अल्प मात्रा मे नमक और थोडी चीनी मिलाकर जल देते रहना चाहिए। दीपन और पाचन औषध के रूप मे हरड+ सोठ का चूर्ण देना चाहिए।

१ क्वाथ द्वारा अतिसार की चिकित्सा–धान्य पचक क्वाथ धनिया नागरमोथा सुगधवाला, बेलगिरी और सोठ का क्वाथ आमशूल और विबन्ध को नाश करता है तथा पाचन और दीपन होता है। यह अतिसार को नाश करने मे उत्तम है। इसके विषय मे लोलिम्बराज (रसिक शिरोमणि) वैद्य कहते है कि अपि प्रिये प्रीत भूता मुरारी कि बालक श्री धनधान्य विश्वे यस्याप्यतिसार रजोनतस्म कि बालक श्री धन धान्य विश्वे।।

भावार्थ यह है कि जो श्री कृष्ण से प्रीति रखते है उन्हे पुत्र, लक्ष्मी धन-धान्य और ससारी जाल से क्या मतलव ? इसी तरह जिन्हे अतिसार रोग नही है और नेत्रवाला (सुगन्धवाला) धनिया नागरमोथा बेलगिरी एव सोठ से क्या प्रयोजन। अर्थात्

जिन्हे अतिसार होवे इन्हे सेवन करे तो इन औषधियो से अतिसार रोग आराम होता है। पहली पक्ति बालक - पुत्र, श्री - लक्ष्मी धन-दौलत, धान्य - धान्य, विश्व-ससारिक जाल का अर्थ रखता है और दूसरी पक्ति मे बालक - नेत्रवाला, श्री-वेल धन-नागरमोथा, धान्य-धनिया और विश्व-सोठ का सकेत करता है।

(२) बिल्वादि क्वाथ-पित्तातिसार और आमातिसार नष्ट करता है।

(३) पाठादि क्वाथ इसे दही के साथ खाने से अतिसार आनाह पीडा आदि तुरत नाश होती है।

(४) वत्सादि क्वाथ-इसके सेवन से पुराना आमातिसार, पित्तातिसार और रक्तातिसार तथा शूलो का नाश होता है।

(५) कुटजादि क्वाथ - यह रक्तातिसार की अच्छी दवा है, प्रवाहिका अमातिसार की भी अच्छी दवा है।

(६) दशमूलादि क्वाथ-इस क्वाथ मे सोठ का चूर्ण मिलाकर खाने से वातातिसार मे आराम होता है।

(७) चव्यादि क्वाथ-कफातिसार की अच्छी दवा है।

चूर्ण द्वारा अतिसार रोग की चिकित्सा-

पथ्यादि चूर्ण, गगाधर चूर्ण, पाठादि चूर्ण, पिपल्लीमूलादि चूर्ण, दाडिमाष्टक चूर्ण आदि १ चम्मच (३ ग्राम०) चूर्ण तीन बार शीतल जल या तक्र के साथ देना चाहिये।

वटी द्वारा अतिसार रोग की चिकित्सा-

सजीवनी वटी, लवगादि वटी (अग्निमाद्य), चित्रकादि वटी २-२ गोली तीन बार जल के साथ दे।

अवलेह द्वारा अतिसार रोग की चिकित्सा-

कुटजावलेह, कुटज घन वटी, विजयावलेह अतिविषावलेह आदि ३ माशे से छ माशे तक २ बार सौंफ अर्क से दे।

आसवारिष्ट द्वारा अतिसार की चिकित्सा-

कुटजारिष्ट, कर्पूरासव-१५ से ३० बूद भोजन के बाद

अफिफेनासव -१०-२० बूद भोजन के बाद

रस-रसायन द्वारा अतिसार की चिकित्सा-

गगाधार रस-१-२ गो० ३ बार तक्र से दे। या जल से

भुवनेश्वर रस-१-२ गोली ३ बार तक्र या जल से दे।

पचामृत पर्पटी -१-३ रत्ती २-३ बार दुग्ध से दे।

स्वर्ण पर्पटी-१-२ रत्ती २ बार शहद से दे।

सिद्ध प्राणेश्वर रस-१-२ रत्ती २-३ बार शहद से खाकर तक्र पीना चाहिये।

नृपतिबल्लभ रस-१-२ गोली २-३ बार शहद से दे।

जातिफलादि वटी (सग्रहणी)-१-२ रत्ती २-३ बार शहद से दे।

कर्पूर रस-१-२ रत्ती २-३ बार शहद से दे।

रोग साधारण हो तो काष्ट औषधियो द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। रोग भयकर हो तो रस-रसायन का प्रयोग करना चाहिये। रोग असाध्य हो तो स्वर्ण घटित दवाओ का व्यवहार करना चाहिए। इसमे स्वर्ण पर्पटी, रस पर्पटी, पचामृत पर्पटी अत्यन्त ही मुफीद होती हैं। अतिसार की अधिकतर दवाओ मे बेलगिरी पायी जाती है इससे साबित होता है कि बेलगिरी इस रोग की सर्वोत्तम मुफीद औषधि है। अग्रेजी दवाओ मे भी वेल का चूर्ण बनाकर क्विनोवले एव सल्फा क्विनोवेल इत्यादि औषधियो का निर्माण हो रहा है जो आमातिसार प्रवाहिका सग्रहणी मे बडा ही मुफीद हो रहा है। पाश्चात्य विद्वान् भी आमातिसार मे ईसवगोल को अच्छी दवा मानते है। पेटेन्ट दवा बनाने वाली कम्पनिया भी बेल और ईसबगोल मिलाकर बहुत पेटेन्ट दवा बना रहे है जैसे वेलक्वीन, आइसोवेल इत्यादि। हमारे यहा भी बहुत दिनो से ईसबगोल का प्रयोग आमातिसार सग्रहणी और प्रवाहिका मे होता चला आ रहा है। मेरा खास एक परीक्षित नुस्खा है जो अतिसार, सग्रहणी, प्रवाहिका आदि रोगो को नष्ट कर रोगी को निरोग कर देता है। अतीस, सोठ, इन्द्र जौ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, मोचरस प्रत्येक ५० ग्राम आम की गुठली १०० ग्राम, कच्चे बेल की गिरी १०० ग्राम और ईसवगोल की भूसी एव मिश्री २०० ग्राम मिलाकर आठ आना (५ ग्रा०) २-३ बार ताजा जल के साथ देना चाहिए। भयकर अतिसार मे जब शरीर का जलीयाश खत्म हो जाय, आख धस जाय, नाडी क्षीण या मृदु हो जाय, प्यास की अधिकता हो, शरीर शीतल हो जाय, शरीर का ताप कम हो जाय, पेशाब अल्प या बन्द हो जाय तो ग्लूकोज सैलाइन ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक सिरा से आवश्यकतानुसार जितने बोतल लगे देना चाहिए। उस समय रोगी को मकरध्वज तुलसी पत्र स्वरस और मधु से बार-बार देना चाहिए। कस्तूरी मिश्रित योग भी दिया जा सकता है। रस सिन्दूर अभ्रक भी लाभदायक है। कर्पूर, पिपरमैन्ट,

अजवायन का सत् लौग का तेल मिलाकर १०-१५ बूद बताशे मे मिलाकर बार २ देना चाहिये। रस-रसायन मे अफीम योग मिश्रित दवा जैसे कर्पूर रस, जातिफलादि वटी आदि दवाये देनी चाहिये। पुराने अतिसार मे तक्र का सेवन बडा ही मुफीद होता है। महर्षि चरक ने लिखा है कि "तक्राभ्यासो ग्रहणी दोष सोफार्शो घृत व्यापन्प्रशमना नाम" च० सू० २५/४० यानी ग्रहणी शोथ अर्श अत्याधिक घृत सेवन से उत्पन्न विकारो को शान्त करने के लिए प्रतिदिन तक्र का सेवन करना चाहिए रोगी को लगातार ४० दिन तक्र का सेवन करना चाहिए जितनी बार भूख प्यास लगे उतनी बार १-१ ग्रा० सोठ और जीरे का चूर्ण तक्र के साथ मिलाकर देना चाहिए। तक्र की प्रशसा करते हुए महर्षि चरक कहते है कि "गोरेवारोचक कार्त्ताना समन्दाऽन्यति सारिणा तक्र वात कफार्त्तानाम मृतव्याय कल्पते। यानी वात कफ के प्रकोप से पीडित उदर रोगी तथा इन दोषो से हुए अन्य रोगो से आक्रान्त गौरव, अरोचक, आनाह मन्दाग्नि एव अतिसार से पीडित पुरुषो के लिए तक्र का विधिवत् सेवन अमृततुल्य हितकारी है। अत तक्र दवा और पथ्य दोनो ही अतिसार के लिए अमृततुल्य महौषधि है। सिर्फ पित्तातिसार मे तक्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बालातिसार-१ असीस का चूर्ण ४ रत्ती से १।। माशे तक ३ बार मधु से दे।

२ काकडासिगी का चूर्ण ४ रत्ती से १० रत्ती तक दे।

३ अतीस, काकडासिगी, नागरमोथा, पीपल का चूर्ण ४ रत्ती से १० रत्ती तक ३ बार मधु से दे। इसे ही चौहदी कहा जाता है। इसे बालको का ज्वरातिसार, कफातिसार समस्त अतिसार अच्छे हो जाते है।

४ जायफल जल के साथ घिसकर बच्चो को बार २ चटाने से बच्चो का अतिसार आराम होता है।

५ बालरोगान्त वटी ४ गो० चौहदी ८ रत्ती और गगाधर रस १ गो० की ४ मात्रा बनाकर १ मात्रा ३ बार मधु से दे। उससे बच्चो का भयकर अतिसार भी अच्छा हो जाता है। परीक्षित है।

६ जो भी दवा वयस्को को दी जाती है उसकी १/४ भाग बच्चो को दी जा सकती है। वैद्यगण अपनी समझ-बूझ से दे। फायदा अवश्य होगा।

गर्भिणी अतिसार चिकित्सा-

१ बेल का गिरी का चूर्ण ३ माशा, ईसबगोल का चूर्ण ३ माशा सोठ का चूर्ण १ माशा मिश्री के साथ शीतल जल से ३ बार दे। गर्भिणी के सब प्रकार के अतिसारो मे मुफीद है। परीक्षित है।

२ मोचरस का चूर्ण मिश्री के साथ देने से आमातिसार एव प्रवाहिका मे आराम होता है।

३ बेल पकाकर उसके गूदे मे सोठ का चूर्ण और पुराना गुड मिलाकर देने से अतिसारो मे फायदा होता है।

अतिसार रोगी की रोग निवृति के बाद मुह हाथ पैर मे सूजन भूख की कमी मन्दाग्नि अरुचि इत्यादि बीमारी हो जाती है उसके लिए लोहासव १।। तोला २ बार जल के साथ भोजन के बाद देवे। उपरोक्त सभी रोग आराम हो जाते है। इस रोग की मन्दाग्नि मुख्य कारण है इसलिए दवा करते समय मन्दाग्नि पर ख्याल करते हुए दवा देनी चाहिए। हरड, सोठ, सैंधा नमक के चूर्ण थोडा २ देते रहना चाहिए। आचार्य चरक ने भी अभया देने को स्वीकारा है।

इति शुभम्।



● सम्पादकीय टिप्पणी-

अतिसार नाशक मेरा बहुपरीक्षित योग बिल्वादि चूर्ण

घटक-बेलगिरी १ भाग, मोचरस १ भाग, सौठ १ भाग, जल से धुली भाग १ भाग, धाय के फूल १ भाग, धनिया २ भाग तथा सौफ ४ भाग, सभी को पीसकर चूर्ण करले। इसमे भाग के स्थान पर १ भाग ईसबगोल की भुसी भी मिला सकते है।

मात्रा तथा उपयोग-१-२ चम्मच दिन मे २ बार जल के साथ या दही मे मिलाकर दे। अतिसार, आंवातिसार, ग्रहणी आदि मे मेरा बहुपरीक्षित योग है। पाठक इसका निर्भीकता से प्रयोग कर सकते है। *-गोपालशरण गर्ग*

विसूचिका और उसकी अनुभूत चिकित्सा

आचार्य डा० महेश्वरप्रसाद आयु० बृहस्पति
निदेशक-आडाँभ विज्ञान शोध-सस्थान, दुग्धपुरा-मगलगढ (समस्तीपुर)
एव श्रीमती शशिउमा देवी

व्याधि परिचय (अनुभूत)

किसी भी व्याधि की सम्यक् चिकित्सा जानने से पूर्व उस व्याधि से थोडा परिचित होना आश्यक है। विसूचिका प्राय तीन प्रकार के होते है-(१) विसूची, (२) अलसक तथा (३) विलम्बिका। विसूची मे आमाजीर्ण, अलसक मे विष्टब्धाजीर्ण तथा विलम्बिका मे विदग्धाजीर्ण होता है। श्रद्धेय आचार्य सुश्रुत महोदय का भी यही मत है (सु०उ० ५६)।

विसूचिका भयानक सक्रामक रोग है जो घरेलू मक्खियो के द्वारा महामारी के रूप मे प्रसारित होता है। इस व्याधि मे वमन, अतिसार, पिण्डलियो मे ऐठन, प्यास, मूत्रावरोध, शरीर मे जल और लवण की कमी, आतो मे मरोड तापक्रम की कमी, शक्ति क्षीणता, प्रथम पीला पतला दस्त और तुरन्त फिर उबले चावल के माण्ड के सदृश पतले दस्त आने लग जाते है। वमन मे पहले आमशय मे टिका भोजन निकलता है और उसके बाद पतला वमनद्रव आने लग जाता है। कई रुग्णो मे २-८ घण्टो मे ही १५-२० दस्त आ जाते है। प्रथम दस्त जोर से आते है और फिर धीरे-धीरे दस्त आते ही रुग्णा को आराम महसूस होता है। उबले चावलो के जल सदृश श्वेत वर्ण के वमन और दस्त आते है जो बिना जोर लगाये नि सृत होते है। आधुनिक एलो० चिकि० विज्ञान के वैज्ञानिक डा० कोच (Koch) महोदय ने १८८३ ई० मे विसूचिका (हैजा) से पीडित व्यक्ति के मल, रक्त, वमन तथा शरीर के तरल मे सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से 'कॉलेरा विब्रियो' (Cholera Vibrio) कीटाणुओ को देखा था, जो बृहदान्त्र (Ileum) मे पहुच वहा पोषित होकर अति तीव्रता से वृद्धि करने लगते है। जिस वर्ष वर्षा न्यून होती उस वर्ष विसूचिका अधिक प्रसार पाता है। विसूचिका की चढाई रुग्ण को प्राय रात्रि मे अथवा प्रात काल जबकि शरीर की गर्मी और शक्ति कम से कम रहती है, शुरू होती है।

विभेदक निदान (अनुभूत)-

गदा जल पीने, सडे-गले बासी खाना खा लेने, सडी दूषित मछलिया खा लेने, मल्ल (सखिया, Arsenic) विष खा लेने पर जो कै और दस्त आने लग जाते है, उनसे विसूचिका के कै और दस्त मे अन्तर यह होता है कि विसूचिका मे उबले चावल के माण्ड के सदृश सफेद दस्त तथा कै आने लगते है।, मूत्र बन्द होता है तथा पिण्डलियो मे ऐठन होती है, किन्तु दूसरे कै, दस्त मे ऐसा नहीं होता। सखिया विष सेवन कर्त्ता के पेट मे दर्द होता है वमन और अतिसार आते है किन्तु वे माड सदृश नहीं होते बल्कि दस्तो मे झाग मिला रक्त होता है। कभी भी गन्दा दूध पी लेने वाले व्यक्ति को वमन तथा विसूचिका के समान सफेद अतिसार होने लग जाते है। कारण यह है कि बिना पचे और बदले आन्त्र से दूध सफेद अतिसार के रूप मे निष्कासित होता है। अत सूक्ष्मता से पूछ-ताछ तथा जाच के बाद ही व्याधि-विनिश्चय करनी चाहिए।

स्मरण रहे कि शुष्क विसूचिका (Dry Cholera, सूखा हैजा) मे जल के सदृश्य पतले द्रव (Liquid) छोटी आन्त्र मे इतनी तीव्रता से एकत्रित हो जाते हैं कि रुग्ण चलते-फिरते, काम करते हुए बिना अतिसार आए मूर्च्छित होकर मर जाता है। उस की छोटी आन्त्रो का निरीक्षण-परीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि वे जल सदृश अतिसार द्रव से लबालब भरे होते है तथा अपनी विषाक्तता से प्राणघातक प्रभाव डालते है। अपने राष्ट्र के कई राज्यो मे इसे "गुम हैजा' कहते है। किन्तु मेरी राय मे 'ड्राई कॉलेरा' या 'शुष्क विसूचिका' (सूखा हैजा) इस प्रकार के घातक विसूचिका (हैजा) का उपयुक्त नाम नहीं जचता।

लक्षण (साधारण और विशिष्ट) अनुभूत-

विसूचिका (हैजा Cholera, कॉलेरा) के प्रारम्भ मे रुग्ण के हाथ-पैर की अगुलियो मे तीव्र वेदना होकर सिकुडन होती

और तब उसकी पिंडलियो, जाघो, आन्त्रो एव मासपेशियो मे अद्भुत सनसनाहट होना शुरू हो जाती है, हाथ एव पैरो की अगुलिया नीली तथा उनमे झुर्रिया पड जाती है, मूत्र पहले अति कम त्था गहरे पीले रग का होता है, अन्त मे एकदम बन्द हो जाता है, वृक्क के मूत्र निकलना बन्द कर देने से मूत्राशय खाली हो जाता है। आमाशय मे जलन, वेदना, तनाव, दबाने पर पीडा, जीभ सफेद और कापता हुआ, स्वाद कडवा, लार न्यून या सूख जाती है, तीव्र प्यास, जल पीते ही दस्त और वमन, होने लगते है।

व्याधि की सम्प्राप्ति होते ही रुग्णा को अत्यधिक मात्रा मे जल के समान पतले चावलो के माड के रग के दस्त बिना दर्द के शुरू हो जाते है। दस्त मे मुडे हुए दण्डाकार अधिविराम (') के आकार के कीटाणु पाये जाते है, कीटाणु के अधिक इकट्ठे हो जाने पर दस्त हल्के गुलाबी रग के मल एव रक्त मिले रहने के कारण आने लगते है। अधिक दस्त और वमन से मूर्च्छा आने लगती है। वमन चावलो के माड सदृश श्वेत या जल समान आते रहते है। दस्त और वमन के साथ कभी-कभी हिचकी भी निरन्तर आती रहती है। दस्त उदर मे जलन वाला तीव्र दर्द तथा आतो मे मरोड और ऐठन होती है। व्याधि वृद्धि के साथ समस्त शरीर शीतल, झुर्रिया युक्त तथा चिपचिपा हो जाता है, जीव बहुत ठडी तथा इसके नीचे थर्मामीटर लगाने पर तापक्रम ९५ फा० या कम हो जाता है। आखे अन्दर को धस जाती हैं, ओठ और अगुलिया नीली पड जाती है (रक्त विषमयता के कारण), नाडी सूत्रवत् पतली तथा बाद मे करमूल मे अनुभूत भी नहीं होती, रक्तदाब (B P) गिरकर ७० मि० मी० से भी कम हो जाता है। किसी-किसी स्त्री के गर्भाशय से विसूचिका के कारण रक्त मिश्रित तरल भी आता देखा गया है। बाद मे विसूचिका की विषाक्तता से मूत्र त्याग रुक जाता है, बेहोशी आ जाती है तथा रक्त गाढा हो जाता है।

चिकित्सा सूत्र-

रुग्ण को तत्क्षण गर्म बिछावन मे आराम से लिटाये रखे। चारपाई को पैर की ओर अधिक ऊचा कर दे। वह लेटे ही बैड-पैन मे पाखाना करे तथा उस पैन की तुरन्त सफाई कर दी जाय। तीव्र प्यास लगने पर नारियल का ताजा पानी घूट-घूट पिलाते रहे। पिण्डलियो या अन्यत्र पर ऐठन होते ही चम्पी-

विशूचिका के उपचार के बाद रोगी को लाभ

मालिश कर दबाते रहे। शरीर को गर्मी पहुवाने के लिए मुह नाक छोडकर समस्त शरीर को गर्म, मुलायम मोटे कम्बल या रजाई से ढँक दे तथा पिण्डलियो पार्श्वों तथा समस्त शरीर के साथ गर्म जल की भरी बोतले रखे।

अनुभूत-

ताजा परिपक्व हरे नारियल को फोडकर उसका जल निकालकर विसूचिका के रुग्ण को बार-बार घूट-घूट या एक-एक चम्मच पिलाते रहने तथा गुदा मे बहुत धीरे-धीरे प्रविष्ट करने से वमन, हृल्लास (मिचली) एव अतिसार को रोकने मे बडी सहायता मिलती है। इतना ही इससे रुग्ण की बढती हुई दुर्वलता एव शक्तिक्षय दूर होती है अधिक प्यास लगना शात होता है, रोगी का रक्त गाढा होने से रुकता है तथा रक्त मे अम्लता की ज्यादती कम होकर मूत्र बन्द नहीं होने पाता। नारियल के ताजे जल को नि स्यन्दन पत्र (Falter paper) से भलीभाति छानकर रुग्ण की शिरा मे २५० मि० लि० से ५०० मि० लि० की मात्रा मे या आवश्यकतानुसार अधिक मात्रा मे बूद-बूद करके नॉर्मल सैलाइन एपरेटस युक्त बोतल द्वारा या बडे सिरिज से दिन मे दो बार प्रविष्ट करे। यह निरापद और परीक्षित विधि है। पूर्व बगला देश मे एक बार विसूचिका (हैजा Clolera) महामारी के रूप मे फैला था। ट्रॉपिकल डिजीजेज हॉस्पीटल, लन्दन मे काम कर चुके डा० जाफरी उक्त बगला देश मे सहयोगी डाक्टरो के साथ जाकर ताजा सुपक्व हरे नारियल को फोडकर उनका ताजा जल फिल्टर करके रोगियो की शिरा मे प्रविष्ट किया था, जिससे विसूचिका के अनेक रुग्णो की जान बच गई थी। इस प्रयोग से रोगी को मूत्रत्याग भी भली-भाति होता रहता है। यदि विशेष आवश्यकता पडे तो ताजे नारियल के जल मे ०५ प्रतिशत बनारसी पान का प्रवाही सुरासार या क्लोरोक्रेजॉल (Chlorocresol) 0 1 प्रतिशत भली-भाति मिलाकर फिल्टर करके परीक्षण (Preseroation) किया जा सकता है।

विशिष्ट चिकित्सा

तुरन्त वमन रोकना आवश्यक नही। क्योकि उदर मे बिना पचा हुआ खाद्याश वमन से निकल जाय तो उत्तम है।

(१) दो-तीन वान्ति के पश्चात्-कर्पूरासव अथवा अमृतधारा (पिपरमैण्ट १ भाग, अजवायन सत्व २ भाग ।।५। उत्तम कर्पूर शुद्ध किया ३ भाग मिलाकर अर्क निर्माण करे) आवश्यकतानुसार २ से १०-१५ बूद तक बताशे मे मिलाकर हर १-१ घण्टा या ३०-३० मिनट पर सेवन कराये। २-३ मात्रा मे ही वान्ति (जी मिचलाना) बन्द हो जायेगा।

(२) दस्तो को बन्द करने के लिए-कर्पूरादि वटी २ गोली (गोमूत्र मे घोटी हुई) अदरक स्वास से दे। अथवा-

कर्पूरासव ३ से १० बूद बताशे या मिश्री चूर्ण के साथ १-१ घण्टे पर या तीव्र विसूचिका मे १५-१५ मिनट पर २-३ मात्रा दे।

(३) सजीवनी वटी- १ गोली से २ गोली (१२५ से २५० मि० ग्रा०) को स्वच्छ अदरक के रस मे दुगुनी मिश्री मिला इस पाक के साथ हर ४ घटे पर दे तो वमन, वान्ति, अतिसार मूत्रावरोध आदि दूर हो जायेगे। भयकर दशा मे हर ४ घटे पर तीन मात्रा दे।

(४) विसूचिका हर योग-श्वेत पुष्प वाले आक की जड की छाल और काली मिर्च प्रत्येक डेढ ग्राम एकत्र पीसकर चार मात्राए निर्माण करे तथा एक-एक मात्रा १५-१५ मिनट पर पिलाये। यदि पिलाते ही तत्क्षण वमन हो जाय तो पुन पिलाये। इससे वमन, वान्ति (जी मिचलाना) और दस्त बन्द हो जायेगे।

(५) अधिक प्यास लगने पर -

छोटी इलायची ६० ग्राम

सूखा (छाया मे) पुदीना ६० ग्राम

नेत्रवाला ६० ग्राम

इन तीनो को यवकुट कर ५ लिटर जल मे औटावे चौथाई अर्थात् १¼ लिटर शेष बचने पर छान ले।

सेवन विधि-१२-१२ मि० लि० औषधि प्यास लगने पर पिलाये। अत्यधिक प्यास को दूर करता है।

(६) विसूचिका विनाशिनी वटी-घृत मे भुनी हींग ३६ ग्राम, आम की गुठली की गिरी तथा लाल मिर्च के छिलके प्रत्येक २४ ग्राम, अफीम, जायफल, जावित्री, शुद्ध शिगरफ प्रत्येक ६ ग्राम। निर्माण विधि-इन समस्त औषधियो को एकत्र खरल मे डालकर ६-६ घण्टे नीबू तथा लहशुन के स्वरस मे दृढ हाथो से घोट-घोटकर समसर्वत्र बनाले। तब ६०-६० मि० ग्रा० (आधी रत्ती) की गोलिया बना ले। सेवन विधि-आवश्यकतानुसार

१ से २ गोली १-१ घटे पर विसूचिका के पूर्ण नियत्रण मे आने तक सौफ के अर्क या ताजे नारियल के जल १२ मि० लि० के साथ दे। बच्चो को वय के अनुसार कम मात्रा मे दे। लाभ-इससे विसूचिका के अतिसार, वमन, वान्ति, ऐठन, प्यास, बहुत जल्द शात होकर कीटाणु नष्ट होते है। नाडी की शीतलता एव क्षीणता दूर होती है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है। बच्चे-बूढे, स्त्री-पुरुष, युवा सबके लिए लाभप्रद है।

(७) अतिसार बन्द होने के बाद भी यदि शरीर मे उष्णता न आवे तो बृहत् कस्तूरीभैरव रस या मकरध्वज योग की औषधि हिरण्यगर्भ के साथ मिलाकर मधु से सेवन कराये। साथ ही महानारायण तैल या विष्णु तैल की शरीर मे मालिश करे तो उष्णता आयेगी।

(८) यदि मूत्राशय मे मूत्र सचित हो और मूत्रावरोध हो तो पेडू पर नारायण तैल या विष्णु तैल की मालिश करे तथा शोरा कलमी सत्व १ भाग तथा फिटकरी भस्म सत्व ८ भाग मिलाकर १ से २-४ ग्राम की मात्रा मे ताजे जल मे घोल-घोल कर पिलाते रहे तो मूत्र खुलकर आ जायेगा तथा रुकावट दूर होगी।

(९) यदि मूत्राशय मे मूत्र सचित न हो तो ताजा नारियल का जल घूट-घूट कर पिलाये अथवा श्वेत पर्पटी, छोटी इलायची के बीज तथा शीतलचीनी एक साथ सम मात्रा मे ले कपडछान चूर्ण कर १ से २ ग्राम की मात्रा मे १५-१५ मिनट पर ३-४ बार जल से खिलाये। अथवा पाषाणभेद, शीतलचीनी, छोटी इलायची के बीज तथा कलमी शोरा समभाग मे ले मिलाकर अपामार्ग की जड डालकर ३ ग्राम की मात्रा मे उबाले जल के साथ कई बार सेवन कराये। पेशाव खुलकर आयेगा।

(१०) अधिक प्यास लगने पर वर्फ चुसाये या जल मे अपामार्ग की जड डालकर पकाये और छानकर पीने को दे अथवा पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष की अन्तरछाल आग पर जलाकर उससे जल बुझाकर रखे और वही जल पीने को दे।

(११) मूत्र की रुकावट होने पर

कलमी शोरा	२०० ग्राम
फिटकरी सफेद	५० ग्राम
सैन्धव लवण	२५ ग्राम
अपामार्ग मूल का चूर्ण	२५ ग्राम

निर्माण विधि-इन सबको एकत्र पीसकर और करछुल मे पिघलाकर केले के पत्ते पर डालकर, दावकर पर्पटी बना लेवे।

से० वि०-६ ग्राम यह औषधि चूर्णकर सौफ के अर्क के साथ पिलाये। मूत्र त्याग खुलकर होगा।

(१२) लहशुनादि वटी (ग्रन्थ वैद्यजीवनम्)-आवश्यकतानुसार २ से ४ गोली नीबू के रस के साथ दिन मे ३ बार दे। तीव्र विसूचिका मे ३-३ गोली ३०-३० मिनट पर देते रहे।

लाभ-विसूचिका के हर कष्ट दूर करने मे परीक्षित है।

(१३) विसूचिका मे रुके मूत्र जारी करने तथा शरीर की उष्णता को कम करने के लिए शुष्क तुम्बी (ड्राई कपिंग ग्लास) विधिवत् लगाना अति लाभप्रद है।

(१४) विसूचिका मे मूत्र रुकना भयानक लक्षण है। उदर के निचले भाग और कूल्हो पर राई का लेप करावे तो मूत्र आने लग जाता है। ज्यो ही मूत्र बन्द हो लेप लगादे।

(१५) हाथ-पैरो मे कुडल, ऐठन पडने और शरीर शीतल होने को रोकने के लिए काँसे की कटोरी से मालिश करे या गेहू की भूसी (चोकर) की पोटली बाधकर इसे गर्म करके टकोर करे तो कुडल, ऐठन मे लाभ होगा।

पथ्य-कोई ठोस भोजन न दे। बल्कि चाय, आरारोट, बार्ले पेय, दूध मे १/३ भाग चूने का जल मिलाकर, धान का लावा आदि दे। अन्न देने मे शीघ्रता न करे। क्रमश भोजन पर ले आये।

विसूचिका एवं उसकी स्वानुभूत चिकित्सा

कविराज डा० गिरधारीलाल मिश्र, आयुर्वेद चक्रवर्ती
अधीक्षक-केदारमल मैमोरियल हास्पीटल, तेजपुर (आसाम)

विसूचिका की स्वानुभूत चिकित्सा-

विसूचिका रोग का आक्रमण यदि सहसा तीव्र गति से हुआ हो तो ५-६ घण्टे मे ही लगातार दस्त-वमन होकर शरीर का जलीयाश निकल जाता है। तथा आमाशय मे आक्षेप (Spasm) बढ जाते है। इसी स्थिति मे खाद्य-पेय कुछ भी रोगी के पेट मे रुक नहीं पाते, मुह मे लेने के साथ-साथ वमन कर देता है। और जलीयाश की कमी होने लगती है। तो तत्काल चिकित्सा नितान्त आवश्यक है।

तत्काल करणीय व्यवस्था-अत रोगी को सर्वप्रथम आयुर्वेद का विसूचिकान्तक इन्जैक्शन वलारजेक्टिकल २५ एम०एल० का सूचीवेध दे देना चाहिए। इससे आमाशय के प्रक्षोभ तत्काल शान्त होने लगता है आन्त्र और आमाशय के प्रक्षोभ को रोकने के लिय स्तम्भक एव निद्राकारक चिकित्सा का विधान है। एतदर्थ आयुर्वेद मे, अफीम, भाग, खुरासानी अजवायन के योग जाती-फलादिवटी कर्पूररस, गगाधर रस, लाई चूर्ण आदि योगो का विधान है। तथा एलोपैथिक ने भी सीक्विल, एट्रोपीन, लार्जेक्टिल, टिचर ओप्रियम, क्लोरोडीन, डावेर्स पाउडर आदि जो कि अफीम के ही मूलयोग देने का विधान है। अत सकटकालीन चिकित्सा के समय जो योग तुरन्त उपलब्ध हो, स्वविवेक एव अत्युत्पन्नमतित्व से उनका प्रयोग करना चाहिए। मै सर्वप्रथम उत्तम योग द्वारा दस्त-वमन के वेग को नियन्त्रित करता हू। साथ ही यदि जलीयाश की पूर्ति के लिये लवणोदक (Normal Salıne) चढाना नितान्त आवश्यक हो तो उसे भी ब्रह्मास्त्र मानकर ही काम मे लेता हू। कारण विसूचिका मे शरीर से निकले जल और लवण की तत्काल पूर्ति करना ही एकमात्र चिकित्सा है। सैलाइन लवणोदक होने के कारण शुद्ध आयुर्वेदीय औषध है। और ड्रिपपद्धति तो औषध को प्रयोग करने की विधि मात्र है।

स्वानुभूत पच ब्रह्मास्त्र-

१ सजीवनी वटी-२ गोली जहरमोहरा पिष्टी २ रत्ती, कर्पूर रस १ गोली - १ मात्रा प्रति २-३ घण्टे पर प्याज स्वरस या मधु + अदरख के अनुपान से दे। सजीवनी वटी जीवनदायिनी ही है।

२ हिग्वादिवटी-कस्तूरी १ ग्राम, शुद्ध अफीम २ ग्राम, कर्पूर ४ ग्राम, चन्द्रोदय ६ ग्राम, लाल मिर्च ४० ग्राम, शु० हींग ५० ग्राम। सर्वप्रथम लालमिर्च का महीन चूर्ण कर शेष औषधियो को मिलाकर प्याज के स्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलिया बनावे। रोग की गम्भीर-सकटकालीन अवस्था मे ५-१० मिनट पर प्याज स्वरस या अर्ककपूर व अर्क पुदीना के अनुपान से दे। आशुफलप्रद-शतशोऽनुभूत योग है।

३ अमृतधारा पेय-उवला हुआ ठण्डा पानी १ लीटर, चीनी ३० ग्राम नमक ३ ग्राम, श्वेत पर्पटी ३ ग्राम, अमृतधारा ३ मि० लि०। जलाभाव की अवस्था मे यह अमृत तुल्य है। Oral Salıne के रूप मे यह सर्वोत्तम योग है। रोगी को ५-१० मिनिट से जब तक देते रहना चाहिये जब तक कि उसका मूत्रत्याग सामान्य न हो जाय तथा प्यास की तृप्ति न हो। सक्रमण काल मे सामान्य पेय जल मे मिलाकर भी भुक्क्षार्थ उत्तम पेय है। शिविरो मे शतशोऽनुभूत है।

४ लहशुनादि वटी व राज गुटिका-की १-२ गोली चूसते रहने से पाचकाग्नि प्रबल होती है। जलाभाव मे इन्हे चूसते रहने से जलीयाश की पूर्ति होती है।

५ मृत सजीवनी सुरा + अहिफेनासव-२-२ चम्मच पानी से सुपाच्य भोजन के बाद देने से भोजन का पाचन होता है। और शरीर मे बल की वृद्धि होती है।

विशेष-सजीवनी वटी, अर्क कपूर, अमृतधारा, इस रोग के प्रमुख योग है। चिकित्सक के पास उक्त योग हो तो भी

प्रत्युत्पन्न मतित्व से अनुपान भेद द्वारा विसूचिका की सफल चिकित्सा सम्भव है। अनादिकाल से आयुर्वेद द्वारा विसूचिका की प्रमुख चिकित्सा होती आ रही है।

उपद्रवो की लाक्षणिक चिकित्सा-

१ **मूत्राघात**-विसूचिका मे मूत्राघात सर्वाधिक कष्टप्रद उपद्र‍ है। २०-८-८७ की एक घटना अभी भी अविस्मरणीय है। जब हम शिविरो मे चिकित्सा-कार्य समाप्त कर लौट रहे थे कि दूसरे किसी शिविर मे एक रोगी की गम्भीर स्थिति के कारण गये, विसूचिका का रोगी मूत्राघात से छटपटा रहा था, सामने ही वृक्ष से १ डाम (कच्चा नारियल) कटवाकर उसमे श्वेतपर्पटी २ ग्राम घोलकर पिला दिया और ५ मिनिट बाद ही प्रभूत मूत्र त्याग हुआ। यह सुदूर ग्रामीण क्षेत्र था, वहा कोई चिकित्सादल नहीं पहुचा था, अत रात्रि सात बजे से ११ बजे तक शिविरकार्य समाप्त हुआ।

२ **खल्ली निवारण**-पिडलियो की उग्र ऐठन मे नागरादि गुटिका २-२ गोली दे तथा तारपीन तैल कर्पूर मिलाकर पिंडलियो पर मालिश करे। सोठ, जायफल, कायफल, समभाग के चूर्ण को मलना भी आशुफलप्रद है।

३ **तृषा**-बर्फ के जल मे अर्क कपूर दे, बर्फ चूसने के लिये दे।

४ **सज्ञानाश-विलियलखलखा**-नोसादर, चूनाकली १-१ तो, केशर-कपूर १-१ माशा सबको अलग-अलग पीसकर एक शीशी मे डालकर १ तोला पानी मिलाकर कार्क बन्दकर शीशी हिला दे। इसके सयोग से अमोनिया गैस बनती है। इसको सूघने से तत्काल मूर्च्छा दूर हो जाती है।

५ **नाडी दौर्बल्य**-अन्तिम काल मे, जहरमोहरा, मकरध्वज, कस्तूरी १-१ रत्ती अदरख स्वरस से दे। कई बार आश्चर्यजनक लाभ होता है। सभी यदि गतायुष न हो तो इस प्रयोग से निश्चित रूप से प्रशसा होती है। पथ्यपालन आवश्यक है।

रोग-निवारक चिकित्सा-

स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमो पर ध्यान देना चाहिए।

१ हैजे का टीका (Cndera Vaccine Propny Lactre) लगवाना चाहिए। प्रथम मात्रा ५ मि० ली० होती है। ६वे दिन १ मि० लि० त्वचान्तर्गत देने से ६ माह इस बीमारी से सुरक्षा प्राप्त होती है। टीका लगा लेने पर भी कभी-कभी जहा महामारी के रूप मे बीमारी फैली हो वहा टीका लगाये हुये से भी दस्त-वमन होते है। और रोग का आक्रमण हो गया हो ऐसा लगता है। किन्तु मल मे परीक्षा करने पर जीवाणु नही पाये जाते और रोग मारक नहीं होता बल्कि शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

२ स्वच्छता इस रोग के प्रसार को रोकने की प्रथम सीढी है। अत घर को फिलाइल से धोना चाहिये। नीम के पत्ते, गन्धक, राल, चन्दन, गुग्गुल समभाग का धूप तैयार कर धुआ देना चाहिए। इससे वातावरण शुद्ध होता है। कुओ मे पोटाश परमेगनेट तथा शौचालयो मे चूना डलवाना चाहिए।

३ दूध और जल का प्रयोग सदैव उबालकर ही करना चाहिए। दूध से इस रोग का विशेष प्रसार होता है। अत इसका प्रयोग यथासम्भव न करे। फल और हरी सब्जी तथा मछली एव बर्फ का अतिप्रयोग नहीं करना चाहिए।

४ कभी भी सडा, ठन्डा, वासी भोजन न करे, सभी के वस्त्र पात्रादि को अलग रखे एव उबले हुये पानी से धोवे। परिचारक को भी सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए। रोगी के मल-वमन को दूर स्थान पर सावधानी से दबाकर उस पर डी डी टी या चूना छिडक देना चाहिए। तथा हाथो को अच्छी तरह साफ करना चाहिए।

५ विशुद्ध आहार-विहार, शुद्ध वायु शुद्ध जल, शुद्ध भूमि, शुद्धवस्त्र देह और मन के लिये उपयुक्त स्वास्थ्यकाल करणो के उपस्थित होने से विसूचिका की उत्पत्ति का निवारण किया जा सकता है। तथा रोग का प्रकोप होने पर आयुर्वेदीय चिकित्सा के तत्काल नियन्त्रण व मधुर चिकित्सा की जा सकती है। आयुर्वेद पथ्य-पालन एव चिकित्सा पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने मे पूर्णत समर्थ है। जय आयुर्वेद।

❖❖

विसूचिका एवं उसकी सफल चिकित्सा

वैद्य गणेशशकर उपाध्याय
चिकित्सा अधिकारी, राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
ठीकरिया, आकाशवाणी के पास, बासवाडा (राज०)

विभिन्न नाम-हैजा, आमाशय आत्र-शोथ, आत्र-शोथ, गैस्ट्रोएन्टैरायटिस, विसूचिकादि।

रोग की व्याख्या-यह मृत्युदायिनी है, अत विसूचिका कहलाती है।

इसमे चावल के धोवन के रग जैसा पतला दस्त बिना किसी आभास के अचानक पारम्भ हो जाते है, हाथ-पैरो की मासपेशियो मे ऐठन, प्यासाधिक्य, मूत्राघात, भ्रम के साथ मुखमार्ग से वमन गुदामार्ग से पतले दस्त विना पाचन हुए ही ये आमदोप के रूप मे निकलते है जिनमे पित्त, कफ, वात का अनुवन्ध रहता है। यह एक सक्रामक जनपदोध्वसक व्याधि है इसमे उल्टी दस्तो मे ही रोगी परलोकगामी हो जाता है।

इसके सक्रमण मे Cholera Bacellus, कौमा के चिन्ह जैसा Comma Bacillus, Spirillum, Cholera या Cholera Vibrio की भूमिका रहती है। यह जीवाणु गतिशील ग्राम नैगेटिव लगभग २ माइक्रोन लम्बा होता है। वाहर आने पर यह नदी, कुऐ, तालाब के जल मे प्रवेश कर यदि लगभग २ सप्ताह तक जीवित रह जाय और फिर इसी दूषित पानी से फल सब्जी धोले, और कच्ची ही खाले, या दूषित पानी पीले, या सामूहिक भोजन मे, मेलो मे इस पानी को किसी भी तरह से उपयोग मे ले लिया जाय तो यह जीवाणु हमारे पेट तक पहुच जाता है। यह जीवाणु वर्फ मे भी जीवित रह सकता है। शुष्क स्थान पर मर भी जाता है। इसलिए गर्मी और नमी वाले मौसम मे अप्रैल से सितम्बर तक यदि जहा सामूहिक रूप मे, मेलो मे किसी भोज मे यदि किसी रोगी के मल द्वारा या किसी Carrier के मल के पीने के जल मे प्रविष्ट हो जाने से अनेक लोग इसकी चपेट मे आ जाते है फिर यह आमाशय, छोटी आत मे वृद्धि करता है। हमारे अपथ्याहार द्वारा आमाशय एव आत्र के क्षुब्ध होने पर उसमे Acid के नष्ट होने पर यह निरन्तर वृद्धि करता रहता है।

पूर्व रूप-बेचेनी, उदरशूल, ऐठन, जी मिचलाना, अरुचि वमन होने का आभास।

रोग के कारण-बासी, सडागला, अनियमित या नियम विरुद्ध भोजन करना, अशुद्ध पानी पीना, रात्रि-जागरण, मद्यपान, शोक, भय, क्रोध, गन्दे स्थान पर रहना, भारी भोजन दस्तावर औषधियो के प्रयोग से, भीड वाले स्थान पर खाने-पीने से मक्खियो के कारण दूषित खाद्यान्नो के सक्रमित हो जाने पर खा लेने से रोग फैलता है। ग्रीष्म ऋतु के अन्त वर्षा के प्रारम्भ एव अन्त मे भी यह रोग फैलता है। अप्रिय भोजन, अपक्व या सक्रमित कच्ची सब्जिया, अतिशीतल पानी, कुल्फी फ्रूट ज्यूस, गन्दा पानी पीने अशुचि भोजन रूखा-सूखा भोजन खाने से या भूख लगने पर भी खाली पेट रहने से भोजन करके काफी मात्रा मे पानी पीने से, सामूहिक भोजो मे सक्रमित खाद्यानो के खाने से, विपरीत गुणो वाले भोज्य-पदार्थ खा लेने से या फूड पोयजनिग या स्टेफिलो कोकस ईकोलाई जीवाणु, क्लोरेट्रीडीयम वैक्टीरिया, साल्मोनेल कैम्पाइलोवेक्टर जीवाणु से सक्रमण से।

रोग के लक्षण-बार २ उल्टी दस्त, प्यासाधिक्य, पीने पर पानी पच नहीं पाता, आलस्य, भ्रम हाथ-पैरो मे टूटन, बेचैनी, पेट मे सुई चुभने जैसी पीडा, ऐठन, जल की कमी से रक्तवाहिनियो मे खिचाव, Collapse हृदयपात की सभावना, मूत्र का रुक जाना।

असाध्य लक्षण-मूत्र का क्षय, शरीर ठण्डा पड जाना, नाखूनो का काला होना, श्वेत दस्त, आखो मे खड्डे पड जाना, दात काले पड जाना, चेतना शून्य, सन्धिया शिथिल हो जाती है।

सम्प्राप्ति-खाद्य-पदार्थो से जीवाणु का पाचन-सस्थान मे जाना विशेषतया क्षुद्रान्त्र की ऊपरी ग्रन्थियो Luller Kuhn मे, रक्तवाहिनियो मे भी रक्त सचय अधिक होकर सम्पूर्ण झिल्ली

लाल हो जाती है। विसूचिका जीवाणु के सक्रमण से Endotoxin निकलता है। विष के रक्त मे मिलने से रस रक्त के निकल जाने से रक्त सचार मे बाधा रोगी के लिए घातक हो सकती है। विष का आत्र झिल्ली पर बुरा प्रभाव होने से आत्र की Permeability बढती है जिससे द्रव की मात्रा आत्र मे आने लगती है इससे शरीर का जलीयाश एव Sodium Chloride तथा Calcium, शरीर से निकलने लगता है फलत Dehydration हो जाता है। रक्त के प्लाज्मा मे भी क्षार की मात्रा कम हो जाती है रक्त मे से द्रवाश अधिक निकलने से वह गाढा-चिपचिपा हो जाता है जलभाग की कमी से हृदय का पोषण नहीं हो पाता, विष की मात्रा से कमजोर हो जाता है। वृक्को मे मूत्र बनने मे बाधा होती है, मूत्राघात होकर मूत्र मे विषमयता Uraemia उत्पन्न हो जाती है। विसूचिका मे रक्त मे जल की अपेक्षा लवण की कमी हो जाती है, रक्त मे यूरिया बढ जाता है।

विसूचिका की अवस्थाये-

प्रथमावस्था मे-अचानक चावल के धोवन के समान पतला दस्त, पेट मे दर्द, ऐठन शक्ति का ह्रास, कभी उल्टी दस्त दोनो ही, पिण्डलियो मे फटने जैसी ऐठन तथा शरीर मे तापक्रम बढा हुआ जिससे दाह, जलन, प्यासाधिक्य, शरीर का तापमान घट जाता है। शरीर मे विवर्णता, हृदय-प्रदेश, मस्तिष्क मे पीडा, पेशियो मे ऐठन, शिर शूल भी।

द्वितीयावस्था-इसे हिमागावस्था भी कहते है विस्तर पर ही मलत्याग, चेहरा मलीन, पीला, नीला, आखे धसी हुई शरीर की चमडी पर झुर्रिया, श्वास-गति तीव्र, भयानक तीव्र प्यास, मूत्र गाढा होकर बन्द ही हो जाता है। नाडी क्षीण, बेहोशी, बार-२ हिचकी आती है।

तृतीयावस्था मे-यदि सुचिकित्सा व्यवस्था हो जाये तो रोगी धीरे-२ स्वस्थ हो सकता है वमन, अतिसार मे कमी, कभी-कभी ज्वर आ जाता है, बेहोशी कम। आत्र मे कमजोरी होने से पथ्य पर ध्यान दे।

प्रायोगिक निदान-Epidemic स्थिति मे विशिष्ट लक्षणो से निदान हो ही जाता है। यदि मल मे जीवाणु हो तो रोग विनश्चय सभव है।

सापेक्ष निदान-फूड पायजनिग, तीव्र अतिसार, विषम ज्वर, ज्वर युक्त प्रवाहिका, सखिया, विष, ग्रीष्मकालीन आमाशयिक, उद्वेलन, बालातिसार, बच्चो मे मेनिन जाइटिस से हो जाता है।

उपद्रव-मूत्राघात, यूरीमिया, उच्च तापक्रम, गर्भपात, कर्णमूल शोथ, श्वसनी फुफ्फुस पाक, आत्र शोथ, हृदय निपात Collapse आदि।

हैजा से बचने के उपाय-अजीर्ण न होने दे, गर्म ताजा भोजन करे, भूख हो तभी भोजन करे। भोजन मे पुदीना, प्याज, पुरानी पकी इमली, कागजी नीबू का रस पिये। मक्खियो से बचे जल उबाल कर पीये, कुओ मे पोटेशियम परमैग्नेट, ब्लीचिग पाउडर डाले, टीकाकरण कराले। अधिक गर्मी हो, वर्षा नहीं हुई हो या जहा अधिक गन्दगी हो, उस स्थान को त्याग दे। रोजाना बाजार से चाट-पकौडी, दूषित खुला भोजन, रात्रि-जागरण से बचे। ऋतु परिवर्तन मे सावधानी रखे, अधिक उपवास, व्रत, दस्तावर दवा अधिक परिश्रम, अधिक धूप से बचे। रोगी के मलमूत्र वमन को गड्डा खोदकर डाल दे। फिनाइल मिलाकर कमरा स्वच्छ रखे, कमरे के दरवाजो पर नीम पत्र लटका दे। रोगी के कपडे, वर्तनो से बचे, घर से खाली पेट बाहर कभी नहीं जाये। यदि माता को हैजा हो तो नवजात शिशु को दूध न पीने दे। खाना-पीना ढककर रखे। यात्रा मे अपना खाना-पीना, पानी ले जाये। अमृतधारा, पुदीना हरा साथ रखे। कुछ भी खाने के पूर्व हाथ अच्छी तरह धोले।

चिकित्सा व्यवस्था-हरड, बच, हींग, इन्द्र जौ, लहसुन, सौवर्चल, अतीस चूर्ण गर्म पानी से दे।

● रोगी की प्यास मिटाने के लिए बर्फ चुसाये, नारियल का पानी दे।

● गर्मी की विसूचिका मे इलायचीदाना, धनिया, कासनी, गुलकन्द सभी घोट-छान कर पिलाते रहे।

● सोठ, बेल का गूदा, जायफल का काढा बनाकर दे।

● लाल मिर्च का एक बीज देशी मोम मे मिलाकर गोली बनाकर पानी से निगलवादे।

● पपीता जल मे या गुलाब जल मे घिसकर चटाते रहे।

● जावित्री दूध मे पीसकर पिलाते रहे। या अरहर के पत्ते ठण्डे पानी मे पीसकर छानकर थोडा-२ पिलाये। या करेले का रस तिल तैल मे मिलाकर पिलाये।

● **नींद लाने के लिए-**यदि रोगी को नींद आ जाये तो वह बच सकता है। इसके लिए भैस के दूध मे नमक मिलाकर रोगी के तलवो मे मालिश करे या मकडी का सफेद जाला लेकर काजल बनाये एव अजन कर दे।

● **पेशाब लाने के लिए**-चूहे की मैगनी, कलमी शोरा गर्म पानी मे पीसकर नाभि पर लेप कर दे। या टेशू फूल कमलीशोरा पानी मे पीसकर पेट, पेडू पर मालिश करे। या बेलपत्र, कालीमिर्च पीसकर नाभि, पेडू पर लेप कर दे। या नीम-फलो (निबौली) पानी मे पीसकर पेडू पर लेप करे।

रोगी के ठण्डा हो जाने पर-जायफल तिल तैल मे पीसकर शरीर पर मालिश करे। या सौठ चूर्ण मले।

वमन रोकने के लिए-राई पानी मे पीसकर थोडा गर्म कर पक्वाशय के स्थान पर लेप कर दे।

घबराहट मिटाने के लिए-पपीता गुलाब जल मे पीसकर दे।

पसीना अधिक आ रहा हो तब-गर्म पानी मे नमक डालकर कपडा भिगोकर हाथ-पैर एव पिण्डलियो पर सेक करे। या बाजरे का आटा, सौंठ चूर्ण, सैधानमक मिलाकर रोगी के हाथ-पैरो पर मले या भुनी कुलथी पीसकर इस चूर्ण की हाथ, पैरो, तलवो पर मले। या समुद्रफेन, सोठ पीसकर पानी मे लेप बनाये मालिश करे।

हैजा के रोगी को लहसुन, जीरा, सैधानमक, शु० गन्धक, सौठ, कालीमिर्च, पीप्पली, भुनी हींग बराबर मात्रा मे लेकर नीबू रस मे चने के बराबर गोली बनाकर २ से ४ गोली ताजे पानी से दे। या ६-७ बतासो के साथ पाच लाल मिर्चो को पानी मे पीसकर पिलाये। या प्याज रस थोडा-२ देते रहे।

हाथ-पैरो की ऐठन मिटाने के लिए-अर्क कर्पूर की मालिश करे। या गर्म पानी को बोतल मे भरकर सेक करे।

प्यास बुझाने के लिए-लौग पानी मे पीसकर पानी औटाये किसी मिट्टी के पात्र मे रख ले ठण्डा होने पर पिलाते रहे या सौफ अर्क, गुलाबजल, अर्क पोदीना पिलाये। बर्फ चुसाये। या सौफ, पित्तपापडा, अजवाइन अर्क २-४ चम्मच दे।

हृदय अवसाद मे-Collapse मे सिद्ध मकरध्वज या हिरण्य गर्भ पोटली रस ६० मि० ग्रा० शहद से चटाये। या स्वर्ण सिन्दूर ५० मि० ग्रा० सजीवनी वटी २५० मि० ग्रा० हर २ घण्टे पर प्याज रस या शहद से दे।

नाडी मन्द होने पर- विषगर्भ तैल, तारपीन तैल कर्पूर मिलाकर मालिश कराये।

● विसूचिका रोगी पर जामुन सिरका पानी मे मिलाकर अजमाये।

● मदार की जड का चूर्ण अदरक रस से चटाये।

● सजीवनी वटी २५० मि० ग्रा० रामबाणरस २५० मि० ग्रा०, अग्नितुण्डी वटी २ कपर्द भस्म २५० मि० ग्रा० मधु से।

● सजीवनी वटी २ लहसुनादि वटी २, लवग, सौठ, प्याज, पोदीना अर्क सभी मिलाकर दे।

● काली मिर्च ४-५ नग बतासो के साथ पानी से दे।

● अर्क विसूचिकान्तक रस यथेष्ट आवश्यकतानुसार पिलाये।

● हिचकी मे केले की जड का रस सूघे। या पोदीना-पत्र चबाये मिश्री के साथ अथवा चिरचिटा-पत्र कालीमिर्च घोडे की लार मे पीसकर अजन कर दे।

● सुहागा कर्पूर बराबर मात्रा मे लेकर पीसकर पोदीना अर्क, प्याज रस मिलाकर पिलाते रहे।

● गाय के दही की लस्सी, कालीमिर्च, इलायची, भुना जीरा डालकर पिलाये।

● उदरशूल मे-जौ का आटा, जवाखार छाछ मे पीसकर आग पर पकाले, पेट पर गुनगुना लेप करे।

● विसूचिका रोगी को जावित्री भूनकर शहद से चटाये।

● नारियल जटा की भस्म मिश्री या शहद मिलाकर चटाये।

● रोगी के पास तम्बाकू एव कर्पूर की धूनी दे।

● कौच की जड के क्वाथ मे शहद मिलाकर चटाये।

● जहरमोहरा खताई २५० मि० ग्रा० शहद से चटाये।

● मोरपख के चन्दवे की राख, बडी इलायची को पीसकर शहद से दे।

● ज्वार के भुट्टे का फूस पीसकर पानी से दे।

● नारियल जटा, ५० ग्राम मिश्री, नीम की एक सीक के सभी पत्ते पीसकर खने के बाद पिलाये।

● विसूची विध्वसक रस ३५० मि० ग्रा०, सौफ अर्क से दे या प्याज रस से दे।

● अफीम, जायफल, लौग, केशर, कर्पूर उचित मात्रा मे पीसकर गर्म पानी से दे।

नोट-कुछ योग कही पढे, सुने या परिक्षित है। कृपया वैद्यकीय निरीक्षण मे प्रयोग करे।



प्रवाहिका और उसकी सफल चिकित्सा

वैद्य दरबारीलाल, आयुर्वेद भिषक्
अशोक भैषज्य भवन, फतेहगढ (फर्रुखाबाद) उ० प्र०

प्रवाहिका जिसको अग्रेजी मे डिसेन्ट्री और हकीम लोग इसको पेचिश कहते है यह बडी आत का रोग है। इसमे आत मे प्रदाह (इन्फ्लामेशन) हो जाता है। जब तक आतो मे सूजन रहती है तब तक सफेद आव आती है और जब सूजन फटकर घाव (जख्म) बन जाता है। तब सफेद आव मे घाव का खून भी शामिल होकर लाल आव आने लगती है। तब दर्द भी अधिक होने लगता है। सर्वप्रथम आयुर्वेद मतानुसार उसका निदान लक्षण आदि लिख रहा हू।

प्रवाहिका रोग का कारण (निदान) अतिसार रोग को पैदा करने वाले जो कारण है वही कारण प्रवाहिका के भी है। जो निम्नलिखित है।

विरुद्ध भोजन करना जैसे दूध मछली को मिलाकर खाना, अध्यशन अर्थात् एक बार जाने के बाद कुछ थोडे समय बाद और खा लेना। भारी अधिक चिकने सूखे, अति गरम, अति पतले पदार्थ, अति स्थूल तथा अतिशीतल पदार्थ खाने से, अजीर्ण से, विषम भोजन से, चिकने पदार्थों के अति सेवन से, या विष के खून आदि मे मिल जाने से, भय के कारण, शोक से, अत्यन्त शराब के पीने से, असात्म्य वस्तुओ के सेवन करने से, अधिक तैरने आदि से, मलमूत्रादि के वेगो को रोकने से, कृमि रोग होने से वायु बढकर एकत्रित हुये कफ को नीचे धकेलता है और बारम्बार जोर लगाने पर भी थोडा सा मल से युक्त वही कफ बाहर निकलता है। उसे प्रवाहिका कहते है।

लक्षण-वातिक प्रवाहिका मे गुदा मे शूल होता है। पित्तज प्रवाहिका मे दाह होता है। कफज प्रवाहिका मे कफ निकलता है। रक्त प्रवाहिका मे रक्त निकलता है। ये सभी प्रवाहिकाये अतिसार मे अधिक चिकने पदार्थों के सेवन से होती हैं। इन सबके लक्षण, क्रम, आम तथा पक्वता अतिसार के लक्षण आदि के अनुसार ही समझने चाहिये।

जिस रोगी का मूत्र विना मल के स्वतत्र निकलने लगे तथा विना मल के स्वतत्रता से अधोवायु निकले, अग्नि प्रदीप्त हो तथा आमाशय तथा पेट हल्का हो, उसका अतिसार, प्रवाहिका रोग दूर हो गया समझो। जब प्रवाहिका, अतिसार का रोगी जकड, जाय, कापे, आध्मान हो, शरीर सारा ठडा हो जाय तब मृत्यु के लक्षण समझो।

प्रवाहिका के असाध्य लक्षण-प्यास खासी, शोष, ज्वर दाह, मूर्छा, हिचकी अन्न से द्वेष, वमन तथा शूल हो वह असाध्य है।

डाक्टरी मत से प्रवाहिका का वर्णन-प्रवाहिका (डिसेन्ट्री) मे बडी आत पर बीमारी का हमला होता है। बडी आत की ग्रन्थियो व श्लैष्मिक झिल्ली मे प्रदाह होकर ज्वर, पेट मे असह्य मरोड, खरोचने के दर्द के साथ आव रक्त मिली आव थोडी-२ करके बार-२ निकलती है। उसी को रक्तामाशय और अग्रेजी मे डिसेन्ट्री कहते है। डिसेन्ट्री मे साधारण प्रदाह की तरह पहली अवस्था मे आतो मे रक्त सचय होता है उसके बाद दूसरी अवस्था मे उस स्थान पर रक्त सचय होकर सूजन आ जाती है। तीसरी अवस्था मे आतो मे घाव हो जाता है और पीव होकर मल के साथ निकला करता है। यह बीमारी कभी-कभी एपोडिमिक के रूप मे भी प्रकट होती है। अर्थात् एक जगह के बहुत से आदमियो को एक साथ यह बीमारी हो जाती है।

कारण-ऋतु परिवर्तन, सर्दी लगना, सडा दूषित खान-पान, ज्यादा फल-मूल खाना, मास खाना, बदबूदार, गीली सडी वाली, मलेरिया वाली जगह मे रहना, आतो मे कीड़े होना, गरिष्ट भोजन करना, यकायक रात के समय ठड पडने पर, गरमी मे इत्यादि कारणो से डिसेन्ट्री होती है।

लक्षण-प्राय पहिले दस्त होते है उसके बाद डिसेन्ट्री मे बदल जाती है। रोगी को बार-बार टट्टी जाना पडता है। टट्टी करने की चेष्टा करता है पर बहुत थोडा पाखाना होता है। मल के साथ सफेद आव, रक्त या रक्त मिली सफेद आव आती है। मल का रग हरा, पीला, भूरा, लाल आदि नाना प्रकार का होता है। जब आतो मे जख्म हो जाता है तो पके फोडे की तरह पीव और रक्त निकलता है। मल मे सडी बदबू आती है। दस्त

दिन-रात मे ४-५ से ३०-४० बार तक या और भी अधिक आ सकते हैं। कभी-२ अधिक काखने और जोर लगाने से काच भी निकल आती है। किसी-किसी को मिचली और वमन भी होती है। पेशाव मे कष्ट और पेशाब थोडा २ हो सकता है। कभी-कभी हिचकी भी आने लगती है। धीमा-धीमा बुखार भी रहता है। प्यास तेज, भूख नहीं, निर्बलता रहती है। रोग अधिक बढने पर अन्त्रावरक झिल्ली प्रदाह आतो के रेशो मे प्रदाह, मलान्त्र-प्रदाह, निमोनिया, फुपफुसावरक झिल्ली-प्रदाह, प्लीहा-यकृत् प्रदाह, विसर्प, रक्त-स्राव आत मे आत घुस जाना आदि हो सकते है।

असाध्य लक्षण-बहुत अधिक रक्तस्राव, पीव मिले रस की तरह या चाकलेट के रग की तरह बदबूदार मल निकलना, बहुत सुस्ती, और कमजोरी, नाडी क्षीण और उसकी गति तेज, शरीर ठडा लसदार पसीना, नीला चेहरा मलद्वार खुला रहना, अनजान मे मल निकल जाना, बडी आत मे छेद होना, कपकपी, विसर्प, तेज वमन, तेज हिचकी, प्रलाप खींचन, अकडन, पक्षाघात, मलेरिया ज्वर आदि।

डाक्टरी मे डिसेन्ट्री को दो प्रकार का माना गया है- १ वैसेलरी २ अमीविक।

वैसेलरी डिसेन्ट्री के लक्षण-यह नई और हलके ढग की बीमारी है। इसमे दिन-रात मे ४०-५० बार आव के दस्त आते है और कुथन, शूल का दर्द वेग ज्वर आदि रहने पर भी रोग सहज ही मे ठीक हो जाता है। कभी-कभी ठीक न होकर पुराना रूप धारण कर लेता है। इस मे आतो मे घाव नहीं होता, यकृत् मे फोडा नहीं होता, मल मे शिगा वै० सिलाई नामक कीटाणु मिलता है। यह बीमारी डाक्टरी दवा इमेटिन इजेक्शन से ठीक होती है।

अमेबिक डिसेन्ट्री-यह पुराने ढग की बीमारी है। इसमे वैसिलरी डिसेन्ट्री की तरह दस्तो की सख्या कम या ज्यादा रहने पर भी कुथन, शूलवेग, पेट मे दर्द आदि सभी रहते है। आत मे जख्म हो जाता है। यकृत् मे फोडा होता है, मल मे एमीवा नामक कीडा पाया जाता है। इमेटीन इजेक्शन से लाभ नहीं होता है।

डिसेन्ट्री के साथ दूसरे-दूसरे रोगो का प्रभेद

अतिसार इसमे मल के साथ रक्त आदि निकलने पर भी डिसेन्ट्री की तरह वेग, कुथन, थोडा-थोडा मल निकलना आदि लक्षण नहीं रहते।

हैजा-यह रोग यकायक होता है। इसमे कै दस्त अधिक होते है तथा ऐठन, शीताग, अकडन आदि भी लक्षण रहते है। डिसेन्ट्री मे ये नहीं रहते।

रेक्टम मे कैंसर के कारण घाव-इसमे डिसेन्ट्री की तरह कुछ कुथन और मल की प्रकृति तो रहती है पर डिसेन्ट्री के दूसरे लक्षण नही रहते। इसके अतिरिक्त मलद्वार की परीक्षा करने पर भी रोग का पता लग सकता है।

आत के भीतर आत घुसने (इन्टससेप्शन) मे वमन, कुथन, आव-खून के दस्त, बेचैनी, सुस्ती आदि डिसेन्ट्री के बहुत से लक्षण मिलते है। परन्तु परीक्षा करने पर पेट की दाहिनी तरफ पजरे के नीचे और उसके ऊपर वाले अश की हड्डी के वीच के स्थान मे और कुक्षि प्रदेश मे आत मे भीतर आत घुसने का एक ऊचा सा पदार्थ हाथ मे अनुभव होता है। इस मे दर्द और वमन बहुत अधिक और तेज होता है।

टाइफाइड ज्वर मे भी कभी-२ खून के दस्त आते है। परन्तु टाइफाइड मे अविराम ज्वर का नियमित रूप से घटना बढना और साथ मे नाक से रक्तस्राव, प्लीहा वृद्धि, ब्राकाइटिस आदि बहुत से लक्षण रहते है। जबकि डिसेन्ट्री मे ज्वर अनियमित और सविराम होता है। और टाइफाइड के अन्यान्य लक्षण कुछ भी नही रहते है।

रक्तार्श (खूनी बवासीर) इसमे मल के साथ रक्त आता है। कभी-कभी कुथन और मरोड रहने पर भी बवासीर के प्रधान लक्षण कमर के नीचे एक तरह का दर्द, मल-द्वार मे खुजली, सुरसुरी, सुई चुभने के समान दर्द, चिलक मारना, जलन, ऐसा अनुभव होना कि मल-द्वार के भीतर कुछ गड रहा है ये सब लक्षण डिसेन्ट्री मे नहीं रहते है। बवासीर का रक्त-स्राव हमेश पाखाना होने के पहिले या बाद मे होता है। खून कभी-कभी पिचकारी की तरह तेजी से निकलता है। वह मल के साथ मिला नहीं रहता है। मल-द्वार के भीतर अगुली डालकर परीक्षा करने पर बवासीर का मस्सा और एक प्रकार का फटा चिन्ह अथवा घाव की तरह पाया जाता है।

डियोडिनाइटिस-इसमे डियोडिनम की जगह पर अकडन का दर्द और खिचन मालूम हुआ करती है। प्रदाह के कारण झिल्ली (मिम्ब्रेन) फूल जाती है। इससे पित्त के आने जाने की राह रुक जाती है। जिससे कामला हो जाता है। मलावरोध रहता

है। यदि कभी पेट की गडबडी हो जाती है तो मल के साथ खून और आव रहती है। पाखाने के समय डिसेन्ट्री की तरह कुथन, शूल का दर्द होता है। पेट मे वायु इकट्ठी होती है। बच्चो को होने पर ज्वर और मुह मे घाव हो जाता है।

एक्यूट कोलाइटिस-इसमे ठीक डिसेन्ट्री की तरह जल्दी-जल्दी दस्त होते है। आव और रक्त मिले दस्त कभी-कभी केवल आव और रक्त के दस्त होते है। रक्त और आव का परिमाण बहुत ज्यादा रहता है। कुथन पेट मे दर्द और बडी आत के ऊपर विशेषकर दाहिनी तरफ पेट मे अत्यत स्पर्श असहिष्णुता पूर्ण दर्द रहता है। पेट मे असह्य दर्द और कुथन आदि दो पाखानो के बीच मे भी थोडा-थोडा दर्द रहता है। ज्वर समान रूप से नहीं रहता रोग सख्त होने पर ज्वर १०४ डिग्री तक हो जाता है। कभी-कभी वमन भी होती है। आव रक्त अधिक निकलता है। कभी-कभी मल बिल्कुल नहीं रहता। डिसेन्ट्री मे आव और रक्त कम निकलता है। रोग पुराना पडने पर सिगमाइड फ्लेक्जर मे हमेशा एक प्रकार का आक्षेप बना रहता है। पेट थुलथुला हो जाता है। रोज २-३ बार से ८-१० बार तक दस्त होते हैं। कभी-कभी दो-एक दिन कब्ज २-४ दिन दस्त, इसी तरह चला करता है।

म्यूकोडन्टेराइटिस-यह अतिसार और डिसेन्ट्री के बीच का रोग है। इसमे अतिसार की तरह फटे दस्त नहीं आते मल के साथ कभी गाठे कभी-कभी सफेद कफ की भाति का पदार्थ या आव रहती है। पेट मे मरोड कुथन, वायु होती है। पेट फूलता है। वमन होती है, निर्बलता होती है। ज्वर १०३, १०४ तक रहता है। यह रोग बच्चो को होता है। यदि मल के साथ रक्त आये तो रोग कठिन समझे। कठिन रोग होने पर रोग ठीक होने मे विलम्ब होता है और मृत्यु भी हो सकती है।

प्रवाहिका की आयुर्वेदिक चिकित्सा

१ बेल का गूदा, गुड, तिल का तेल, छोटी पीपल, सोठ सबको घोट-पीस मिला चाटने से वातजशूल युक्त प्रवाहिका नष्ट होती है।

२ छोटी पीपलो को या काली मिरचो को पानी के साथ पीसकर दूध से पिये। दो-तीन दिन मे पुरानी प्रवाहिका भी नष्ट हो जाती है।

३ जिस रोगी की जठराग्नि प्रदीप्त हो और अनेक दोष बिगडे हुये हो तथा कब्ज से मल निकलता हो तो उसे वायविडग, छोटी पीपल, बडी हर्र की बकली, बहेडा की बकली, आमला इन सबका क्वाथ बनाकर पिलाये इससे विरेचन होकर पेट साफ हो जायेगा।

४ सोठ, मिर्च काली, पीपल छोटी, अतीस, हींग घी में भुनी, वच, काला नमक और बडी हर्र की बकली समान भाग लेकर चूर्ण बना ३ से ६ ग्राम तक दिन मे ३ बार लेने से प्रवाहिका तथा आमातिसार नष्ट होता है।

५ धनिया, सुगन्धवाला, बेलगरी, नागरमोथा, सोठ समान भाग लेकर काढा बना पीने से आम-शूल को नष्ट करता है। ग्राही है, दीपन तथा परम पाचक है। प्रवाहिका नष्ट करने मे प्रसिद्ध काढा है। यदि रक्त अधिक आता हो तो सोठ न डाले। उसके बजाय खस डाले।

६ सोठ को पीसकर समान भाग गुड मे मिला झरबेर प्रकार की गोली बना दिन मे ३-४ बार २-३ गोली जल के साथ सेवन करने से सफेद आव वाली प्रवाहिका नष्ट होती है।

७ बेलगिरी के चूर्ण और गुड को मिलाकर सेवन करने से कुक्षिशूल, आमशूल, कब्ज से हुआ आध्मान तथा अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका नष्ट होती है तथा पेट की गुडगुडाहट भी नष्ट होती है।

८ कुटजाष्टक क्वाथ-कुडे की छाल, अतीस, नगारमोथा, सुगधवाला, पठानी लोध, लाल चन्दन, धाय के फूल, अनार-दाना, पाठा सब को समभाग लेकर क्वाथ बनाकर मधु मिला पिलाये तो दाह, रक्तातिसार, शूल और भयकर आम रोग, प्रवाहिका, अतिसार को नष्ट करता है।

९ सुगधवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, धनिया, कुडे की छाल, मजीठ, धाय के फूल, पठानीलोध, सोठ इनका क्वाथ दीपन तथा पाचन है। अरुचि, पिच्छ के समान मल निकलना आम, कब्ज, अतिसार, रक्तातिसार, ज्वर सहित अतिसार, प्रवाहिका को नष्ट करता है।

१० बेलगिरी तथा आम की गुठली का क्वाथ शहद और खाड मिलाकर पिलाये तो अतिसार, प्रवाहिका तथा उसके साथ वमन होने को रोकता है।

११ चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोठ लालचन्दन, सुगधवाला कुडे की छाल का काढा मधु मिला पिलाने से

प्रवाहिका, अतिसार, शोथ, ज्वर नष्ट होता है। एक व्यक्ति को ज्वर था और रक्तातिसार था उसको यही काढा व कर्पूर रस दिया जिससे उसका ज्वर भी ठीक हो गया और रक्तातिसार भी ठीक हो गया।

ऊपर जितने काढे प्रयोग करने के लिये लिखे गये है। उनका रोज-२ बनाना एक झझट होता है। इसलिये आज के व्यस्त जीवन मे काढे का चलन बहुत कम हो गया है। हालाकि काढे ऐलोपैथी के मिक्श्चरो से भी अधिक लाभकारी हैं। काढे मे रोग मे लाभ करने वाली दवाये कुछ डाली भी जा सकती है और जो दवाये लाभ न करने वाली हो या हानिकारक हो उनको निकला भी जा सकता है। जिससे काढा तुरन्त लाभ करने वाली दवा प्रमाणित हो जाती है। परन्तु कोई बनी हुई दवा मे से कोई दवा न निकाल सकते और न डाल सकते है। काढे से लाभ प्राप्त करने के लिये काढे की दवा से आसवारिष्ट के विधान से आसवारिष्ट बनाले या काढे से शर्बत वनाले। जिससे रोज-रोज काढा औटाने का झझट खत्म हो जायेगा और बना बनाया हर वक्त प्रयोग करने के लिये तैयार रहेगा। शर्बत बनाने का तरीका लिख रहा हू। इसी प्रकार हर काढे का शर्बत बनाकर रख लेने से समय पर प्रयोग करने के लिये प्रभावशाली दवा तैयार रहेगी।

शर्बत बनाने की विधि-काढे की दवाओ को दसगुने पानी मे औटाकर आधा पानी जल जाने पर उतार कर मलकर छान ले और उस छने हुये पानी मे पानी की तौल के बराबर दाने बाली शक्कर मिलाकर फिर चूल्हे पर चढाकर गरम करे जब आधा पानी जल जाय तब उतार कर छानले और बोतल मे रखकर सुरक्षित रखले और आवश्यकता पर प्रयोग करे। मात्रा उसकी १०-मि० लि० से २० मि० लि० तक पूरी उम्र वालो को और बच्चों को चौथाई से १ चम्मच तक उम्र के अनुसार दे।

१२ पचसकार चूर्ण भी सफेद आव वाले मरीज के लिये चमत्कारी लाभ करता है। एक ही खुराक मे रोग दूर हो जाता है। इसका पता तब लगा जब एक रोगी ने जिसको आव के दस्त हो रहे थे कहा कि मुझे दस्त साफ नहीं आता है अत दस्त साफ आने की दवा दो। उसे दस्त साफ लाने के लिये पचसकार चूर्ण की ६ ग्राम की एक मात्रा गरम पानी से रात को लेटते समय दी। आशा थी कि प्रात एक दो दस्त साफ आजायेगे। लेकिन प्रात कोई दस्त नहीं आया और आव के दस्त भी एक ही खुराक से ठीक हो गये। उसके बाद बहुत रोगियो पर प्रयोग कर के लाभ प्राप्त किया।

पचसकार चूर्ण का योग-सनाय ५ भाग बडी हर्र की बकली २ भाग सैधानमक, सोठ, सौफ १-१ भाग लेकर कपडछान चूर्ण बनाले। मात्रा ६ ग्रा० से ९ ग्राम तक गरम जल से सोते समय दे। कब्ज वाले रोगी को प्रात एक दो दस्त आकर पेट साफ हो जायेगा। पेट का दर्द, अफरा आदि दूर होगा और भूख खुल जायेगी।

१३ इन्द्र जौ, धाय के फूल, नागरमोथा, पठानी लोघ, कुडे की छाल, वायबिडग, अतीस, बेलगिरी, कज्जली (पारा-गधक की) अफीम समान भाग लेकर कूट-पीस छान जल से घोटकर १-१ रत्ती की गोली बनाले। एक-एक गोली दिन मे तीन बार अनार के रस से या दही से या बेल के मुरब्बा से दे। प्रवाहिका, अतिसार, सग्रहणी तथा हैजा आदि किसी रोग के कारण दस्त हो तो यह गोलिया तुरन्त लाभ करती है।

१४ नागरमोथा, अतीस, मोचरस, बेलगिरी, सोठ, धाय के फूल, इन्द्र जौ, पाठा, कुडे की छाल, ईसबगोल की भुसी, माजूफल, पोस्ता की बोडी, आम की गुठली, जामुन की गुठली, सफेद राल, पठानी लोघ, अनार के फूल, जीरा भुना, जायफल, भाग १-१ तो० चीनी पिसी २० तो० लेकर कपडछान चूर्ण बना ३ से ६ ग्राम तक प्रात, दोपहर, साय जल से या मट्टा से या मधु से या बेल के मुरब्बा से दे। सभी प्रकार की प्रवाहिका, नया पुराना अतिसार, सग्रहणी, आतो के घाव सभी नष्ट होते है।

१५ कत्था, जायफल, चौकिया सुहागा का फूला, अफीम समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रख ले। मात्रा बडो को ४ रत्ती बच्चो को उम्र के अनुसार। अतिसार मे ठडे जल से रक्तातिसार मे चावल के धोवन से या सौफ के अर्क से प्रवाहिका मे बेल के मुरब्बा से दे। चमत्कारी लाभ करता है।

१६ गगाधर रस व कर्पूर रस भी चमत्कारी लाभ करते है।

१७ ऐलोपैथिक दवा क्लोर स्ट्रेप कैपसूल भी चमत्कारी लाभ करते हैं। मै प्रात साय निहार मुह १-१ क्लोरस्ट्रेप कैपसूल पानी से देता हू और कैपसूल के एक घटे बाद प्रात साय लवणभास्कर चूर्ण २ ग्राम हिंग्वष्टक चूर्ण १ ग्राम कर्पूर रस २ रत्ती मिलाकर एक मात्रा बनाकर ऐसी १-१ मात्रा पानी से देता हू। इससे केवल इन ४ खुराको से एक ही दिन मे प्रवाहिका, अतिसार आदि ठीक हो जाते है। खाने के लिये रोटी न दे।

दही खिचडी दे जिसे कैपसूल पुडिया खाने के एक घटा बाद दे। खिचडी दही पेट-भर न खाये बल्कि कुछ कम खाये। यह दवा हमारे अनुभव मे सर्वोत्तम प्रगति हुई है। सभी रोगियो को यही देकर एक ही दिन मे ठीक करता हू। कर्पूर रस के स्थान पर डेस्टाल टेबलेट एक खुराक मे दो टेबलेट मिला सकते है। वह भी [illegible]ी प्रकार का लाभ करती है। क्लोरस्ट्रेप के स्थान पर सिगनस्ट्रेप भी प्रयोग कर सकते है।

१८ प्रवाहिका मे पेट साफ करने के लिये-शुद्ध एरड तेल (कास्ट्रायल) १ ड्राम गोद बबूल २ ड्राम पिपरमैट २ रत्ती पानी १ औस। पहिले एरड तेल, पिपरमैट और गोद के चूर्ण को खरल मे डालकर घोटे फिर थोडा कर के पानी खरल मे डाले और खूब अच्छी तरह घोटे जिससे तेल पानी से अलग न होने पाये। फिर थोडा-२ करके सब पानी मिलादे। मीठा करने के लिये १ ड्राम चीनी मिला दे। यह एक खुराक बनी दिन मे ऐसी १-१ खुराक ४-५ बार दे। एक साल के बच्चे को १ ड्राम प्रति मात्रा दे। पहिले दो दिन इसे देकर फिर तीसरे दिन सफेद राल ३ माशा मिश्री ३ मा० मिला एक मात्रा बना १-१ मात्रा दिन मे ३ बार पानी से दे। एक साल के बच्चे को १ मात्रा दे। प्रवाहिका, रक्तातिसार, गुदभ्रश रोग (काच निकलना) मरोड आदि बहुत शीघ्र ठीक होते है।

१९ सोठ, सौफ, छोटी हर्र घी मे भुनी समान भाग लेकर मिश्री सब के बराबर लेकर चूर्ण करके ३ से ५ ग्राम तक दही, मट्ठा या जल से ले। प्रवाहिका, आमातिसार पर चमत्कारी लाभ करता है।

२० सोठ, मिश्री, पोस्ता, सौफ भुनी हुई समान भाग लेकर चूर्ण कर ६-६ ग्रा० दिन मे ३ बार पानी से ले। प्रवाहिका, आमातिसार, सग्रहणी मे अतीव लाभकरी है।

२१ कुटजारिष्ट व मुस्तकारिष्ट भी प्रवाहिका मे चमत्कारी लाभ करते है।

२२ मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बडौत द्वारा निर्मित एन्ट्रोल टेबलेट प्रवाहिका की बहुत अच्छी दवा है।

२३ ऐलोपैथी की इन्ट्रो क्वीनाल, इन्ट्रोजायम, डिपेन्डाल टेबलेट भी प्रवाहिका को नष्ट करने की बहुत अच्छी दवाये है।

२४ क्लोरोडीनमो इस रोग की अच्छी दवा है। जिसे जनसाधारण भी भलीभाति जानता है।

२५ वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की बनाई हुई दवा ईसब्बेल, कुटज घनवटी व वातकादि घनवटी (अमीबिका टेबलेट) भी इस रोग की बहुत अच्छी दवाये है।

२६ सिद्धि फार्मेसी ललितपुर का बेल सूचीवेध (इजेक्शन) भी प्रवाहिका को नष्ट करने मे सफल इजेक्शन है। उससे नई पुरानी सभी प्रकार की प्रवाहिका, अतिसार नष्ट होते है।

२७ कुडे की छाल, अतीस, बेलगिरी, अर्क मूलत्वक्, सोठ ३-३ ग्रा० लेकर कूट कपडछानकर २ औस रेक्टीफाइड स्प्रिट या मृत सजीवनी सुरा मे मिलाकर शीशी मे भर मजबूत कार्क लगा सात दिन धूप मे रखे उसको रोज हिला दिया करे। सात दिन के बाद उसको फिल्टर पेपर से छान ले और मजबूत कार्क वाली शीशी मे भरकर रखले। बस प्रवाहिका, अतिसार नाशक कुटज इजेक्शन तैयार हो गया। इसकी मात्रा १० बूद एव मिली लीटर डिस्टिल्ड वाटर मे मिलाकर मास गत (इन्ट्रामस्क्यूलर) लगाये।

अब आगे होमियोपैथिक के विधान से प्रवाहिका की चिकित्सा लिख रहा हूँ।

एकोनाइट ज्वर होना, पेट मे दर्द, खूनी आव आना, रोगी को मृत्युमय हो तथा बैचेनी हो।

कोर्बेविज बदबूदार वायु निकले, पेट फूले, विशेषकर ऊपरी पेट फूले, डकारे अधिक आये गर्मी से आकर बर्फ का पानी पी लेने से उत्पन्न प्रवाहिका, पैर ठडे, मूत्र बदबूदार मूत्र की रुकावट, दस्त बदबूदार,नाडी क्षीण, पुराने रोग मे अच्छा काम करता है। नये रोग मे न दे।

हैमामेलिस जब मल के साथ गाढा कालिमा लिए खून निकले और मल भी ज्यादा निकले।

मर्ककार डिसेन्ट्री की बढिया दवा है। खूनी आव,पेट मे मरोड, पाखाना हो जाने के बाद भी यह मालूम हो कि अभी और भी पाखना होगा। मुह मे थूक भरना आदि यह लक्षण उग्र रूप मे रहने पर मर्ककार दे ये लक्षण थोडे रहने पर मर्कवाइ वस ६ × विचूर्ण या मर्कसाल दे।

नक्स वोमिका-दस्त आते समय यथा उसके पहिले बहुत मरोड, जाने के बाद मरोड आदि का बन्द हो जाना, थक्का-थक्का लाल आव निकलना, बार-बार दस्त होने पर दस्त आव

परिमाण मे कम होना, पाखाना होने के बाद भी ऐसा मालूम होना कि अभी और टट्टी आयेगी, लेकिन आती नहीं। टट्टी वहुत जोर की लगती,रोगी को फौरन टट्टी के लिए भागना पडता है। लेकिन १०-२० बूँद आव ही निकलती है और रोगी इस आशा से कि टट्टी अभी और आयेगी काफी देर पाखाने मे बैठा रहता है, मगर फिर भी टट्टी आती नहीं है।

मर्ककार और वोमिका मे यह भेद है कि नक्स वोमिका मे पाखाना होने के बाद कुछ देर के लिए मरोड बन्द हो जाती है परन्तु मर्ककार मे पाखाना होने के वाद भी मरोड वनी रहती है।

मग्नेशिया फास-पेट मे बहुत दर्द, मलाशय मे बेहद तकलीफ मे गरम पानी से दे।

ऐलम्टोनिया-मलेरिया बुखार के साथ प्रवाहिका, खून की कमी ।

वेलाडोना-पेट मे अफरा, लगातार मरोड के साथ दस्त। मल नाली मे न प्रदाह, तेज बुखार, चेहरा लाल, आखे चमकीली, प्रलाप पाखना के वाद भी कराना। बच्चो की प्रवाहिका मे अधिक लाभप्रद।

पोडोफाइलम-ताजे खून का दस्त, खून की लकीर पडी हुई आव मवाद-दस्त, बहुत मरोड, पेट मे शूल का दर्द, काच निकल आना, मिचली, हरी आव या खून मिले दस्त। बच्चो के अतिसार मे लाभप्रद।

कोलो सिथ-पेट फूलना, मरोड दबाने से या झुककर दोहरा हो जाने से दर्द कम होना, जीभ पर सफेद मैल, खूनभरी चिकनी आव, मिचली किन्तु उल्टी (वमन) न हो।

एलोज-मैला अर्म ,खून गिरे, मरोड वडी, कटिशूल, नाभि प्रदेश मे अधिक दर्द, मुह सूखना, प्यास, पेट के नीचे के हिस्से मे अफरा, कभी-२ पाखाना होते समय वेहोशी, पुरानी प्रवाहिका की वढिया दवा है।

इपीकाक-हरे रग का या पुराने गुड की तरह कालिमा लिये फेनभरा दस्त, मरोड के साथ पहिले फेन भरा बदबूदार खून का दस्त, पीछे खून मिला आव निकलना, लगातार मिचली व कै। कच्चे फल या खट्टी चीजे खाने के कारण प्रवाहिका होने पर दे।

पल्सेटिला-सादा श्लेष्मा भरे दस्त, पेट के निचले हिस्से मे दर्द, घी, तेल मे पकी चीजे खाने से प्रवाहिका हो गया हो, रात मे रोग वढे।

आर्सेनिक-शरीर मे दाह, तेज प्यास, रोगी निर्बल निस्तेज हो जाय, सडी वदवू के दस्त खून मिला काला दस्त, थोडा-थोडा पानी वार-२ पिये। वेचैनी, मौत का डर।

कैन्थरिस-रोग सकटापन्न होने पर तथा बहुव्यापक प्रवाहिका मे, मूत्र कष्ट, मूत्र त्याग के बाद बहुत जलन, दस्त मास के धोवन की तरह, पेट मे तेज दर्द, अफरा, हिमडग, पानी पीने की अनिच्छा।

रस टस्क-रात मे बेखबरी मे टट्टी निकल जाना, तल पेट मे दर्द, बराबर पाखाना लगा रहना, पुरानी प्रवाहिका मे महौषधि का काम करता है।

सल्फर दस्त होने के बाद मरोड बन्द हो जाय, खून मिले आव के दस्त न होकर आव के ऊपर सूत की तरह खून की रेखा दिखाई दे। रोग दुस्साध्य हो या किसी दवा से लाभ न हो तो इसे दे। पुरानी प्रवाहिका मे उत्तम लाभ करता है।

इनके अतिरिक्त नाइटिक एसिड, वैक्सीनिनम ,मार्टिलस मदर टिचर एपिस, एल्युमेन, चायना, ब्रायोनिया, लाइड्रस्टिल, लैकेसिस, प्लम्बम विरेट्रम एलबम, जिक्डम, फास्फोरस, लाइकोपोकडयम, बैप्टिशिया, कैप्सीकम, कोलचिकम्, आनिकी, कास्टकम मैम्बोजिया, कल्केरिया कार्ण, कल्केरिया फास, मर्क इलसिस भी लक्षणानुसार प्रयोग करने पर उत्तम लाभ करते हैं।

पथ्य-यह रोग पेट का है। इसलिए इसमे खाने-पीने का ध्यान बहुत रखना पडता है। लघुपाकी और बलकारक पथ्य दे। रोगी को रोटी, पूडी पराठे, कचौडी, घी तेल की तली चीजे फौरन छोड देनी चाहिए। मट्ठा, दही धान की खीलो का माड, चावल का माड साबूदाना, वार्ली, दूध, नीबू, अनार का रस, दही, खिचडी ब्रेड, बिस्कुट आदि देना चाहिए। मै तो केवल दही खिचडी रोगी को खिलाता हूँ और वह भी कम मात्रा मे। एक ही दिन मे रोग ठीक हो जाता है। यदि रोगी को खासी भी हो तो दही खिचडी न खिलाकर ब्रेड दूध या चाय से खिलाता हूँ। फलो मे सेव, केला, मुसम्मी, सन्तरा, अनार, दे सकते हैं। पपीता न दे। पेडा, वर्फी, गुलाबजामुन, भी थोडे-थोडे दे सकते है। फिटकरी द्वारा फाडा गया दूध पिलाने से विशेष लाभ होता है।



प्रवाहिका और मेरे अनुभव

डा० सत्यनारायन खरे, आयुर्वेदाचार्य

विशिष्ट चिकित्सा

१ इसमे मुख रूप से अन्न का सेवन बन्द करके सोठ, जीरा हीग से गाय का तक्र सिद्ध करके दिन मे दो-चार बार सेवन करना चाहिये। इससे सेवन से पहले दस्त ज्यादा आवेगे बाद मे स्वत कम हो जावेगे।

२ अगर रक्तस्राव ज्यादा हो रहा हो और जल सेवन से भी ऐठन होती हो तो सभी पेय व भोज्य-पदार्थ बन्द करके उबला हुआ शीतल जल और बकरी या गाय के दूध को उबालते समय नीबू का रस डाल देने से दूध फट जावेगा फिर इसका जल मात्र अलग करके इसे फल शर्करा (ग्लूकोज) मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। यह भोजन तब तक चालू रहे जब तक कि रक्तस्राव पूर्णतया बन्द न हो जावे।

३ ईसबगोल ६-६ ग्राम दही या तक्र के साथ दिन मे ३ बार सेवन कराने से नई पेचिस मे लाभ होता है।

४ कच्चे बेल के गूदे मे गुड मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

५ हिंग्वष्टचूर्ण मे थोडी अफीम व जीरा मिलाकर सेवन कराने से शीघ्र ही लाभ होता है।

६ अनार के कच्चे फल का रस २-२ तो० पिलाने से लाभ होता है।

७ कुटज की छाल और अनार का बक्कल १-१ तोला मिलाकर काढा करके दिन मे तीन बार पिलाने से लाभ होता है।

८ चूना और अफीम समभाग लेकर शहद या अदरक के रस के साथ आधी-आधी रत्ती की गोलिया बनाकर १-१ गोली दिन मे २ या ३ बार जल से सेवन करने से सभी प्रकार की पेचिस ठीक हो जाती है।

९ शास्त्रीय योग जो बाजार मे उपलब्ध है उनमे गगाधरचूर्ण, पियूषवल्लीरस, शखोदरस, जातिफलादिवटी, कुटजादिवटी, सिद्ध प्राणेश्वरस, कुटजारिष्ट एव लाईचूर्ण आदि योग हैं जिनके सेवन से शीघ्र ही लाभ होता है।

अफीम के योग अगस्तिसूतिराज, हिंगुलवटी, शखोदर रस अहिफेनादिवटी और जातिफलादिवटी आदि हैं इनका उपयोग पक्व अवस्था मे ही करना चाहिए एव कम मात्रा मे करना चाहिए।

१० जीर्णप्रवाहिका मे पञ्चामृत पर्पटी दिन मे ३ बार देते रहने से ज्वर, रक्त और पीव आना सब दूर हो जाता है। यह सभी अवस्थाओ मे दी जा सकती है।

११ मलक्षय हो, अग्नि प्रदीप्त हो और आग के साथ थोडा-थोडा आम निकलता हो तो सोठ का क्वाथ उबालकर शहद के समान बनाया हुआ फाणित दही, घृत या दूध मिलाकर पिलाना चाहिए।

१२ नये रोग मे कोमल प्रकृति वाले बालक व सगर्भा स्त्री को एरण्डतैल से कोष्ठ शुद्धि करके कुटजादिवटी, कुटजारिष्ट, अवलेह आदि से लाभ होता है।

१३ यदि रोग प्रवल है और रोगी निर्बल है व कोष्ठ-शुद्धि हो गई हो तो अफीम के योग जातिफलादिवटी या शखोदररस सुविधानुसार प्रयोग करना चाहिए।

१४ रोगमुक्ति के बाद क्षीण शरीर वाले रोगी को भोजन के बाद द्राक्षासव को १।। तोला की मात्रा मे बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद प्रयोग करने से पेट की ऐठन कम हो जाती है, पाचन होता है एव शक्ति व बल की वृद्धि होती है। शरीर स्वस्थ व सुडौल बनता है।

नोट-कभी-कभी कुछ रोगी अनेको ओषधियो के प्रयोग करते रहने पर भी स्वस्थ नहीं होते है ऐसी परिस्थिति मे औषधि पूर्णतया बन्द करके केवल आहार मे परिवर्तन करने से ही लाभ हो जाता है। जैसा कि लेखक ने एक पूना शहर का रोगी केवल तक्र का प्रयोग कराके इस व्याधि से मुक्त किया था। भोजन मे मूग की दाल चावल की खिचडी, लाल गेहू की रोटी एव गाय का उपरोक्त विधि के अनुसार सिद्ध किया हुआ तक्र के अतिरिक्त सभी भोज्य-पदार्थ बन्द करने पडे। रोगी एक सप्ताह बाद पूर्ण स्वस्थ हो गया यह रोगी आयुर्वेदिक फार्मेसी पूना का मालिक है।

इस प्रका उपरोक्त विधि के अनुसार प्रत्येक रोगी को स्वस्थ बनना चाहिये।



ग्रहणी रोग की अनुभूत चिकित्सा

प० नन्दकिशोर शर्मा, वैद्यरत्न
पो०- आगर (मालवा)

यह वडा भयकर रोग है, इसके द्वारा रोगी को बहुत दिनो तक अत्यन्त कष्ट भोगना पडता है। पहले यह रोग इस देश मे इतनी अधिकता से देखने मे नहीं आता था, किन्तु आजकल यह क्षय रोग के समान बडी तेजी से बढ रहा है। विशेषत कलकत्ता बम्बई, मद्रास आदि वडे -२ स्थानो मे इसका प्रकोप देखा जाता है।

प्रधान कारण

मिलावटी खाद्य, दूषित वायु दूषित जल तथा दूषित रहन-सहन ऐसे रोगो को उत्पन्न करने मे प्रधान कारण है। भारत के प्राय सभी बडे नगरो मे खाने-पीने के सभी पदार्थ नकली और दूषित मिलते है। दूध, घृत, शक्कर, मिठाई, सब पदार्थ मिलावटी दीख पडते हैं, ऐसे पदार्थों के सेवन करने से बहुत शीघ्र पाचकाग्नि विगड कर ग्रहणी रोग आदि उत्पन्न हो जाते है। बडे शहरो मे शुद्ध वायु का प्राप्त होना कठिन है इसके अतिरिक्त अत्यन्त गरम, अत्यन्त चरपरे, अत्यन्त दाहकारक, अत्यन्त खट्टे, अत्यन्त खारी, नमकीन, अत्यन्त चिकने, अत्यन्त भारी, वासी, सडे हुए, कठिन और अत्यन्त रूखे पदार्थों को सेवन करने से यह रोग उत्पन्न हो जाता है, ग्रामो और छोटे नगरो मे निर्दोष आहार, शुद्ध वायु, शुद्ध जल, और वहा का शुद्ध रहन-सहन होने से ऐसे रोग नहीं होते अथवा बहुत कम होते हैं।

अन्य कारण

दिन मे सोना, रात मे जागना, बडे-२ कार्यों मे व्यस्त रहना, मल-मूत्रादि के वेगो को रोकना और विषय वासना मे अधिक लिप्त रहना अत्यादि कारणो से भी यह रोग हो जाता है, और भी कई कारण है-

एकदम देश की जलवायु खराब हो जाना, मौसम बदल जाना, अत्यन्त सर्दी, गर्मी अथवा अधिक बरसाती हवा मे रहना, भीगे हुए स्थानो मे रहना जलवायु का बदलना, केदारनाथ, बद्रीनाथ, आदि की यात्रा करना, कुभ आदि बडे-२ मेलो मे जाना आदि कारणो से यह रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त शराब, चाय, काफी, तम्बाकू सिगरेट, नशीले पदार्थ तथा सोडावाटर, वर्फ और कृत्रिम पानियो के सेवन से एव तीक्ष्ण और विषैली औषधियो के सेवन करने से विशेषकर बार-२ जुलाब की औषधियो और दस्तावर औषधियो के सेवन करने से यह रोग सहज मे हो जाता है, कुनैन, सखिया, पोटास आयोडाइड आदि तीक्ष्ण औषधियो का अधिक मात्रा मे या अधिक दिनो तक सेवन करने से आतो की श्लेष्मल त्वचा बिगडकर यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सा

(१) गाय की छाछ (तक्र) के साथ लोध के चूर्ण का पान करे तो कठिन से कठिन ग्रहणी रोग शान्त हो जाता है।

(२) चारो नमक, २००,२०० ग्राम, कलमी शोरा १०० ग्राम, मिरच, पीपल, अमलवेत सफेद, जीरा भुना, निम्बू सत्व २५,२५ ग्राम, नौसादर ५० ग्राम, दालचीनी १० ग्राम, लौग १० ग्राम का चूर्ण बनाले।

यह चूर्ण ३ ग्राम प्रमाण मे जल से देने से, मदाग्नि, अरुचि ग्रहणी,गुल्म, अर्श, प्लीहा, विसूचिका, अतिसार, नित्य के होने वाले दु खदायी रोगो को नष्ट करता है।

(३) रसौत, अतीत, कुडे की छाल, सोठ, इन्द्रयव, और धाय के फूल, समभाग को चूर्ण बनाकर मधु, घृत युक्त करके धूनी दे।

(४) नागरमोथा, इन्द्रजौ, मोचरस, धाय के फूल, पठानी लोध, कुडे की छाल, बेलगिरी, आम की गुठली, जायफल, कालाजीरा, अफीम कपूर, प्रत्येक १०-१० ग्राम मकरध्वज ५ ग्राम सबका एकत्र चूर्ण कर खरल मे डाल आम, जामुन, और अनार की छाल की १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बना लेना चाहिए। इसमे से नित्य एक गोली प्रात काल के समय देने से ग्रहणी, अतिसार आदि दूर हो जाते है।

अनुभव सिद्ध प्रयोग

(५) इन्द्रजौ नागरमोथा, धाय के फूल, बेलगिरी लोध और मोचरस, सबको समानभाग ले चूर्ण बनाकर मट्ठे के साथ देवे।

(६) चौकिया सुहागा फुलाया हुआ ४ ग्राम, शुद्ध हिंगुल ४ ग्राम, अफीम ४ ग्राम, सबको निम्बू के रस मे घोटकर गोली बनावे और दोनो समय सेवन करे।

ग्रहणी मे तक्र का उपयोग

(७) तक्र दीपन ग्राही, और हल्का होने से ग्रहणी मे बडा उपयोगी है, तथा मधुर पाकी होने से पित्त को कुपित नही करता तथा स्वादु अम्ल होने से वात मे हितकर है ताजा तक्र ही उत्तम होता है ।

तक्रारिष्ट

(८) अजवायन, आमले, हरड, काली मिर्च १००, १०० ग्राम पाचो नमक ४०-४० ग्राम तक्र १५ किलो (गाय का)सबको इकट्ठा कर एक मिट्टी के चिकने पात्र मे डालकर रखना चाहिये। जब अरिष्ट तैयार हो जाय, तब उसको काम मे लाना चाहिये। अग्नि को दीपन करता है ग्रहणी तथा अर्श को दूर करता है।

(९) शुद्ध सिगरफ, अफीम नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल, कपूर, प्रत्येक ५-५ ग्राम सबको मिलाकर १-१ रत्ती की गोली बनाले। यह ग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार को बन्द करने मे रामबाण है १-१ गोली प्रात -साय उष्णोदक ले।

जब ग्रहणी पुरानी हो जाय या ग्रहणी के कारण हाथ-पैर-मुख आदि पर शोथ होने लगे तब यह औषधि अधिक लाभ देती है।

(१०) शुद्ध पारा, शुद्ध गधक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, चादी भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म सुहागा, रसौत, प्रत्येक ४-४ ग्राम, नागरमोथा, जीरा, लज्जावती, लोध, अतीस, इन्द्रजौ जायफल प्रत्येक ४-४ ग्राम, कपडछन कर खरल मे डालकर कुडा, बेलगिरी, अनार, इनकी १-१ भावना देकर फिर भागरे की ७ भावना एव बकरी के दूध की १ भावना देकर चने के बराबर गोली बना लेनी चाहिए।

एक रोगी जो कई दिनो से रुग्ण था। अत्यत पीडा के साथ दस्त आता था मल त्याग करने के पश्चात् उठने को जी नहीं चाहता था और मीठा-२ दर्द होता था। वायु नही निकलती थी तथा नाभि से वायु उठकर बडे दर्द के साथ सारे पेट मे फैल जाती थी, रोगी दर्द की अधिकता से बेहोश तक हो जाता था। तब हमने निम्नाकित भल्लातक क्षार चूर्ण सेवन कराया इससे वह ५-७ दिन ही रोगमुक्त हो गया फिर कोई कष्ट नही हुआ।

भल्लातक क्षार

शुद्ध भिलावे, सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आवला काला नमक, साभर नमक, प्रत्येक ५०-५० ग्राम सब को कूटकर गजपुट मे रख फूक देना चाहिए, फिर उस भस्म को खरल करके रखले। पश्चात् ३ ग्राम की मात्रा मे आधा भोजन करने के बाद घृत मे मिलाकर रोटी के टुकडे के साथ देना चाहिए। ऊपर से भोजन कर लेना चाहिए। पथ्य आयुर्वेदानुसार।

'इतिशम्'।



● **सम्पादकीय टिप्पणी-**

रक्तज ग्रहणी में उपयोगी विजयादि वटी

योग-शु० भाग २० ग्राम, जायफल २० ग्राम, लोघ्र पठानी, अम्बुल दखवैन अजवायन, इलायची, सोनागेरू १०-१० ग्राम, अहिफेन ३० ग्राम, चने बराबर गोली बनाले।

मात्रा तथा उपयोग-२-२ गोली दिन मे ३-४ बार जल के साथ देने से अतिसार तथा रक्तज ग्रहणी मे विशेष लाभ होता है।

अनुभव-प्रस्तुत योग आयुर्वेद के मर्मज्ञ वैद्य गोपाल जी ठक्कर का है हम उनके मूल योग मे कुछ सशोधन करके बनाते हैं। रक्तज ग्रहणी (अल्सरेटिव कोलाइटिस) पर विशेष लाभ करता है। *-वैद्य गोपालशरण गर्ग*

ग्रहणी की चिकित्सा में सफल अनुभव

डा० विद्याधर शुक्ल, विद्यावारिधि
रीडर-सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

ग्रहणी-चिकित्सा सहायक निर्देश

चिकित्सक को चाहिये कि वह वात आदि दोष, रस-रक्तादि दूष्यधातु, देशकाल, सात्म्य, मनोबल, देहबल, आयु, रोगबल, औषध, अग्नि और आहार आदि का भली-भाति विचार करके चिकित्सा करे और रोगी के लिए यथोचित पथ्य-व्यवस्था का सावधानी से प्रवन्ध करावे-

दोषान् दुष्यान् देशकालौ सात्म्य सत्त्व बल वय ।
विकृति भेपज वह्निमाहार च विशेषत ।।
निरीक्ष्य मतिमान् वैद्यश्चिकित्सा कर्तुमुद्यत ।
पथ्यानि योजयेन्नित्य यथास्व सर्वरोगेषु ।।

चिकित्सा-सूत्र

सभी प्रकार के अजीर्ण (आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण आदि) और अग्निमान्द्यजन्य विकारो (मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि एव विषमाग्नि) का समावेश ग्रहणी रोग मे होता है, इसलिए अग्नि को व्यवस्थित बनाने का समस्त उपक्रम करने पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

-चरक चि० १५-७१

आमावस्था मे उपक्रम-सर्व-प्रथम साम और निराम का विचार करके ही उपचार शुरू करना चाहिये। यदि आम मल आता हो तो रोगी का स्नेहन, स्वेदन करने के पश्चात् विरेचन देकर शोधन करना चाहिए। बाद मे दीपन-पाचन औषधि मिश्रित पथ्य देवे। आहार के विदग्ध होने से उदर मे आध्मान, शूल, अरुचि, भारीपन और जलन उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति मे गरम पानी मे सैधानमक मिलाकर रोगी के बलानुसार पिलाकर वमन कराना चाहिए, अथवा मदनफल का चूर्ण ३ ग्राम पिप्पली चूर्ण २ ग्राम और ३ ग्राम सरसो पीसकर पिलाकर वमन करावे। यदि आमदोष पक्वाशय मे पीडा उत्पन्न कर रहा हो तो दीपन औषधिया (चित्रक आदि) के साथ निशोथ चूर्ण ३ ग्राम खिलाकर कोष्ठ का शोधन करावे। यदि आम-दोषयुक्त रस सब शरीर मे फैल गया हो तो लघन (उपवास) और पाचन औषधियो का प्रयोग करना हितकर होता है। जब अमाशय या पक्वाशय का शोधन कराकर आमदोष का निर्हरण कर दिया जाय तो रुग्णा को पचकोल (पीपर, पीपरामूल, चाभ, चीता, सोठ) ३० ग्राम का चूर्ण ३ सेर जल मे डालकर खूब खोलाकर पानी छान ले और पीने के लिए अथवा पेया, मन्ड या भात बनाने मे इसी पानी का प्रयोग करे। तत्पश्चात् दीपन, पाचन क्षुधावर्धक औषधियो का प्रयोग करे।

-चरक चि० १५-७३-७६

पक्वावस्था मे उपक्रम

आम का पाचन हो जाने पर दीपन-पाचन औषधि युक्त गोघृत का प्रयोग करे। जाठराग्नि प्रदीप्त हो जाने के पश्चात् तीन दिन तक घृतपान कराकर तथा बाहर तैलाभ्यङ्ग कराकर स्नेहन करने के बाद आस्थापन बस्ति का प्रयोग करे, जिसके योग मे-दशमूल का क्वाथ ३२ तोला सैधानमक आधा तोला मधु १ तोला और तिल का तेल ८ तोला सभी को मिलाकर मथकर गुदा के द्वारा बस्ति देवे। पुन एरण्ड तैल के प्रयोग से विरेचन कराना चाहिए। शोधन के बाद कोष्ठ मे वायु के विकार के प्रतिरोध के लिए वातनाशक द्रव्यो से सिद्ध तैल (नारायण तैल आदि) की १२ तोले की मात्रा की अनुवासन बस्ति दे।

इस प्रकार आस्थापन, विरेचन और अनुवासन बस्ति के प्रयोग के बाद लघु, अग्निप्रदीपक दीपन-पाचन औषधि सिद्ध आहार का प्रयोग करे और औषधि सिद्ध चागेरीघृत आदि का प्रयोग करने का अभ्यास बनाये रखे जब तक रुग्ण स्वस्थ न हो जाय।

-चरक चि० १५/७७/८१

रोगावस्थानुसार चिकित्सा सूत्र-यदि वायु का प्रकोप हो तो खट्टी और नमकीन वस्तुओ के साथ घृत का प्रयोग करे।

यदि कफ क्षीण अग्नि मन्द और मल पक्व एव पतला आता हो, तो सोठ और सैधानमक के साथ अल्प मात्रा मे घृत पान करावे।

सग्रहणी मे कदाचित् मल शुष्क हो और अन्त्र मे प्रतिबन्ध उपस्थित हो तो पचलवण या क्षारत्रय के साथ घृतपान कराना चाहिए। उदर मे तीव्र पीडा हो, तो उदर पर अफीम, कपूर, तारपीन का तैल और तिल तैल मिलाकर धीरे-धीरे मालिश करनी चाहिए और शूलघ्न औषधि रसोनवटी, हिग्वादिवटी, अर्क लवण या काकायनवटी आदि देवे।

तीव्र पीडा मे भाग का प्रयोग लाभकर होता है। भाग सम्मोहक होने से पीडा को सद्य शान्त करती है और अग्नि को उदीप्त करती है। भाग के साथ छोटी इलायची, सफेद मिर्च, सौफ, धनिया, जीरा और सोठ का चूर्ण उचित मात्रा मे मिलाकर प्रयोग करे।

रोगी को पूर्ण विश्राम करावे, भोजन स्पर्शसह ईषद् उष्ण देवे। चाय, काफी, शराब, मछली-मास, उडद, मटर चना के बने पदार्थ और गरिष्ठ भोजन सर्वथा न दे। चरपरे, नमकीन, खट्टे, रुचिकर तथा अग्निवर्धक आहार देना चाहिए।

अन्त्र मे दाह-शोथ-होने पर "सारिवादि चूर्ण" (काली अनन्तमूल, छोटी इलायची, कतीरागोद, रूमी-मस्तगी, लालबोल, कत्था, कबावचीनी और धमासा सब समभाग का चूर्ण) ३ ग्राम की मात्रा मे दिन मे ३ बार मठे से दे।

अन्त्रव्रण-मे ईसबगोल की भूसी को मठे मे या जल मे भिगोकर पिलावे।

रक्तस्राव-मे कतीरागोद १ तो० को जल मे भिगो दे ३ घण्टे बाद मसलकर छानकर २ तो० चीनी मिलाकर दे, दिन मे तीन बार।

जीर्ण रोग-मे तक्र, दुग्ध, आम्र एव पर्पटी के कल्प का प्रयोग हितकर होता है।

कल्पो का प्रयोग अनुभवी चिकित्सा की देख-रेख मे ही करना चाहिए। "अन्त्रशोथ" मे रसपर्पटी, "रक्ताल्पता" मे लोह पर्पटी, "ज्वर अम्लपित्त आदि" उपद्रवयुक्त ग्रहणी मे पञ्चामृत पर्पटी, "यकृत्प्लीहावृद्धि" मे ताम्रपर्पटी, "समज, विषज" एव अति दौर्बल्य मे स्वर्ण पर्पटी देनी चाहिए। "सगर्भा स्त्री" को ग्रहणी मे अभ्रकपर्पटी का सेवन हितकर होता है। पर्पटी सेवन के पूर्व एरण्डतैल देकर कोष्ठ शोधन करा लेना चाहिए। आवश्यकता महसूस होने पर बीच-बीच मे भी एरण्डतैल देते रहना चाहिए।

पाचनार्थ-दाडिमाष्टकचूर्ण, कपित्थाष्टकचूर्ण और बृ० गगाधर चूर्ण के प्रयोग से नये ग्रहणी रोग मे रोग का शमन हो जाता है। बेल का मुरब्बा, गूलर के पके फल कच्चे बेल के गूदे मे सोठ और गुड मिलाकर मठे के साथ देने से मल बध जाता है। और शूल शान्त हो जाता है। ग्रहणी रोग मे वात प्रधान होने पर हिंग्वाष्टक चूर्ण पित्त प्रधान होने पर यवानीषाडवचूर्ण और वात-कफ प्रधान होने पर चित्रकादिवटी का सेवन कराना चाहिए।

वातज ग्रहणी चिकित्सा-रोगी के कोष्ठ की रूक्षता को दूर करने के लिए दीपन-पाचन औषधि युक्त घृत का प्रयोग करना चाहिए। अन्त्रगत रूक्षता को दूर करने के लिए घृतपान निरूहबस्ति फिर अनुवासन बस्ति को प्रयोग करे। रोगी का मल कठिन, शुष्क और कदाचित् द्रव होता है, इसलिए लक्षणो के अनुसार चिकित्सा करे। यदि कठिन गाठदार और शुष्क मल हो और उसके निकलने मे कठिनाई और वेदना हो, तो घी मे सैधानमक मिलाकर खिलावे और अनुपान मे गरम पानी पिलावे।

१ *नितान्तदुष्टेर्मरुतो यदा नरो-*
मल विमुञ्चेत् कठिन च रूक्षम्।
ससैन्धव सर्पिरिहौषध तदा-
प्रयोजयेत् तस्य शुभाय वैद्य ।। -भैषज्य र०

वातज ग्रहणी मे "अतिसार" की तरह पतला मल निकलने की हालत मे ग्रहणीकपाट या अगस्ति सूतराजरस २-२ रत्ती की मात्रा मे दिन मे ३ या ४ बार आवश्यकतानुसार देते रहना चाहिए।

एक व्यवस्था पत्र-

दिन मे ४ बार।

रामबाणरण ४ रत्ती, अगस्तिसूतराज ४ रत्ती, शख-भस्म २ रत्ती, वराटभस्म २ रत्ती। ४ मात्रा।

मोचरसचूर्ण २ ग्राम प्रतिवार मधु से। अथवा

कर्पूररस ६ रत्ती। ३ मात्रा।

चावल के धोवन के साथ। या

जातीफलादिवटी ६ रत्ती। ३ मात्रा। जल से।

ये योग अन्यन्त ग्राही अहिफेनादि से युक्त है, अत अत्यावश्यक होने पर ही इनका प्रयोग करना चाहिए।

गुदा मे व्रण या दाह-पुन -पुन शौच जाने से गुदा की वलियो मे फटन हो जाने से मलत्याग के समय जलन और वेदना होती है, ऐसी स्थिति मे परवल और मुलहठी के काढे मे बकरी या गाय का दूध डालकर गुदा का प्रक्षालन करावे या 'गूलर' की छाल के क्वाथ मे फिटकरी डालकर आबदस्त लेने को कहे।

कनकसुन्दररस, नायिकाचूर्ण, हिंग्वष्टकचूर्ण या हिंग्वादिचूर्ण का प्रयोग अवस्थानुसार करना हितकर होता है।

उदरशूल होने पर-अग्नितुण्डीवटी ३ रत्ती, काकायनवटी १।। ग्राम, सर्जिका १ ग्राम। ३ मात्रा।

नीबू के जल से प्रति २ घण्टे पर देनी चाहिए।

मेथीमोदक, जातीफलादिचूर्ण एव लवगादिचूर्ण का प्रयोग करे।

मेथी मोदक-मेथी पिसी हुई ३०० ग्राम, पुराना गुड ६०० ग्राम लेकर पहले मेथीचूर्ण को थोडे से घी मे (५० ग्राम) आटे की तरह भून ले, फिर गुड की चासनी बनाकर उसमे मेथीचूर्ण और निम्नलिखित औषधियो का चूर्ण डालकर लड्डू की तरह बनाले। अग्नि बल के अनुसार दिन मे तीन-चार बार ६ ग्राम की मात्रा से प्रयोग करे-

प्रक्षेप द्रव्य-सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आवला, नागरमोथा, जीरा, स्याहजीरा, धनिया, कायफल, काकडासिगी, अजवायन, सैधानमक, कालानमक, तालीसपत्र, नागकेसर, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, जायफल, जावित्री, लौग, कपूर और लालचन्दन प्रत्येक १०-१० ग्राम लेकर बारीक चूर्ण बनाकर मिलाले।

पित्तज ग्रहणी चिकित्सा

पित्तज ग्रहणी मे द्रवीभूत अग्नि को मन्द करने वाले पित्त को वमन द्वारा तथा विरेचन द्वारा शोधन कराना चाहिए। रोगी की अग्नि को सम बनाने के लिए सौम्य, तिक्त रस प्रधान औषध और आहार देना चाहिए। पेया, विलेपी, बेल का मुरब्बा आदि मधुर पदार्थ हितकर होते है। अविदाही कषाय तिक्त एव मधुर रसयुक्त द्रव्यो से सिद्ध तिक्त षट्फल घृत, चागेरी घृत आदि का प्रयोग लाभप्रद होता है।

अति विषादि चूर्ण-अतीस, रसौत, इन्द्र जौ, कुटज की छाल, सौठ, धाय का फूल, गुलाब का फूल, पके गूलर का फल और लाल चन्दन सभी बराबर मात्रा मे लेकर बारीक चूर्ण बना ले। ३-३ ग्राम की मात्रा मे मधु से दिन मे ४ बार दे, बाद मे तण्डुलोदक पिलावे।

तालीसादि चूर्ण, यवानीषाडव चूर्ण और लघुलाही चूर्ण का प्रयोग हितकर होता है। जातीफलादि चूर्ण और लवगादि चूर्ण, नारिकेल खण्ड, दाडिमावलेह के प्रयोग से पित्त के कारण होने वाले उपद्रव शान्त हो जाते है और क्षुधा व्यवस्थित हो जाती है।

तीव्र रोग मे-स्वर्ण पर्पटी या ग्रहणी कपाट रस का रोगी के बल के अनुसार प्रयोग करे। जीरकादि मोदक और बेल या आवले का मुरब्बा खिलाना चाहिए।

पित्त की तीव्रता और दाह मे-सूतशेखर रस ३ रत्ती, वराट् भस्म ३ रत्ती, लीलाविलास रस ३ रत्ती और गुडूची सत्व ६ रत्ती लेकर तीन मात्रा बनावे और घी के साथ खिलावे।

ज्वर पाण्डु और शोथ होने पर-दुग्धवटी, कल्पलता वटी, पचामृत पर्पटी, लौह पर्पटी और सर्वांग-सुन्दर रस इनमे से जो उपलब्ध हो, उसका प्रयोग रोगी के बल के अनुसार दिन मे २ या तीन बार करे। दुग्ध-वटी के सेवन मे मात्रा दुग्धाहार ही देना हितकर होता है।

वृक्क शोथ होने पर-ताम्र पर्पटी ६ रत्ती/३ मात्रा भुने जीरे के २ ग्राम चूर्ण और मधु से दिन मे तीन बार देना चाहिए।

मल रक्तयुक्त आने पर-(१) पञ्चामृत पर्पटी ६ रत्ती/३ मात्रा कुटजावलेह या दाडिमावलेह या चागेरी स्वरस के साथ देवे।

(२) माण्डूर माक्षिक भस्म ६ रत्ती, खूनखराबा ३ ग्राम, वराट् भस्म ३ रत्ती और स्वर्णगैरिक १ ग्राम लेकर ४ खुराक बनावे, ३-३ घण्टे पर ३ ग्राम दाडिमाष्टक चूर्ण के साथ दे।

दाह होने पर-अनार, सेव, मुसम्मी या फालसे का रस पिलावे एव मुक्तापिष्टी ३ रत्ती प्रवाल पिष्टी ३ रत्ती, गुडूची सत्व

१ ग्राम की तीन मात्रा बनाकर दिन मे ३ बार पित्तपापडे के अर्क या अनार के शर्बत के साथ देवे।

कफज ग्रहणी चिकित्सा-

कफजन्य ग्रहणी-विकार मे सर्वप्रथम दुष्ट कफ को वमन कराकर शोधन करना चाहिए। तदनन्तर कटु, अम्ल, लवण, क्षार एव तीक्ष्ण द्रव्यो का प्रयोग कर जाठराग्नि को प्रदीप्त करने का यत्न करना चाहिए। इसके लिए सोठ, वायबिडग और नागरमोथा का चूर्ण ३ ग्राम की मात्रा मे ईषद् उष्ण जल से देवे।

जातीफलादि चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण, क्रव्यादि रस या चित्रकादि वटी का प्रयोग आवश्यकतानुसार करना हितकर होता है।

आम एव कफवृद्धि होने पर-आनन्दभैरव रस, अगस्ति सूतराज रस या रामबाण रस का दिन मे ३ बार १-१ रत्ती की मात्रा मे प्रयोग करना चाहिए। ज्वरानुबन्ध रहने पर लाहीचूर्ण देना चाहिए। वमन, शूल एव अग्निमाद्य मे अगस्तिसूतराज अधिक लाभकर होता है।

ग्रहणी रोग मे तक्र का प्रयोग-तक्र (मठा) ग्राही, अग्निप्रदीपक और लघु होने के कारण एव आन्त्र की शोषण-क्रिया वर्धक होने के कारण ग्रहणी रोग मे प्रयोग श्रेष्ठ पथ्य माना गया है। यह तीनो दोषो मे प्रयोग योग्य होता है-मधुर, अम्ल और गाढा तक्र वातज ग्रहणी मे एव मीठा तक्र पित्तज ग्रहणी मे लाभकर होता है। सदैव ताजे ही तक्र का व्यवहार करना चाहिए। कुछ मीठा किञ्चित् अम्ल ताजा और गाढा ही तक्र प्रयोग मे लाना चाहिए। वातज ग्रहणी मे मक्खन समेत गाढा और कफज ग्रहणी मे एकदम मक्खन निकाला हुआ तक्र प्रयोग करे।

मट्ठे के सेवन से आमाशय, ग्रहणी एव आन्त्रगत पाचनकर्म व्यवस्थित और नियमित हो जाता है। लघु आन्त्र मे रसाकुरिकाओ की शोषण-क्रिया सम्यक् होती है, रक्ताभिसरण क्रिया बलवती होती है। रक्त विशुद्ध और लाल बन जाता है और आन्त्रो मे सबलता आ जाती है।-चरक चि० १५/११८-११९।

सग्रहणी चिकित्सा-इस रोग मे हेमगर्भ-पोटली रस, अग्निकुमार रस, ग्रहणीगजेन्द्र रस, ग्रहणीकपाट रस और नृपतिबल्लभ रस एव पीयूषवल्ली रस ये श्रेष्ठ औषधिया है। आन्त्र की दुर्बलता मे भाग मिश्रित दवाए जातीफलादि चूर्ण आदि हितकर है। अति दुर्बल रोगी के लिए सुवर्ण पर्पटी, सूतशेखर एव मुक्तापिष्टी देनी चाहिए।

यदि मल बधा हुआ हो, तो प्रात -साय सुवर्णपर्पटी १-१ रत्ती के साथ च्यवनप्राश या दाडिमावलेह १ से २ तोले तक देना चाहिए। भोजन के बाद कुटजावलेह २-२ तोले देवे और दिन मे ९ बजे, २ बजे जातीफलादि चूर्ण १ ग्राम, मुक्तापिष्टी १ रत्ती (प्रतिमात्रा) मधु से देवे। जिन्हे पतला शौच होता हो, उन्हे मट्ठे पर या बकरी के दूध पर ही रखना चाहिए। और दिन मे ४ बार पचामृत पर्पटी १-१ रत्ती भुना जीरा २ ग्राम और मधु से दे।

जिन्हे भोजन पच रहा हो, उन्हे मूग या मसूर का यूग, दलिया, खिचडी, धान के लावा का मण्ड, साबूदाना आदि हल्का आहार देना चाहिए।

ग्रहणी रोग मे अनेक प्रकार के कषाय, चूर्ण, वटी, मोदक, अवलेह आदि के रूप मे काष्ठौषधियो का प्रयोग किया जाता है। यदि रोग नया हो और सामान्य स्थिति हो, तो इनसे काम चल जाता है, परन्तु जीर्ण और गम्भीर रोग मे रसौषधियो के बिना काम चलना मुश्किल होता है। ऐसे रोगियो की चिकित्सा चलते-फिरते नही की जाती, अपितु उन्हे कुटी प्रावेशिक विधान से "अन्तरग चिकित्सालय" मे रखकर ही चिकित्सा करना अच्छा रहता है। रोग और रोगी के बलाबल का विचार कर उन्हे कल्प विधान् से पर्पटी का प्रयोग कराया जाता है जिसे "पर्पटी कल्प" कहते है। एक लघु मात्रा से औषध प्रारम्भ की जाती है और क्रमश मात्रा बढायी जाती है। एक निश्चित् मात्रा पर रोककर फिर क्रमश मात्रा घटायी जाती है और फिर दवा बन्द कर दी जाती है। ऐसे रोगियो के आहार-विहार मे भरपूर नियन्त्रण करना अपेक्षित होता है, उन्हे दूध या तक्र पर रखा जाता है। इस विधान का नाम "कल्प-चिकित्सा" है।

सग्रहणी रोग मे जब सामान्य चिकित्सा लाभकर नही साबित होती, तब कल्प द्वारा चिकित्सा की जाती है। "कल्प-चिकित्सा" मे "पर्पटी-कल्प" एक प्रसिद्ध कल्प है। कल्प चिकित्सा से रोग मुक्त हो जाने पर पुन रोगाक्रमण का भय नही रहता है, क्योकि इस चिकित्सा से पाचन-सस्थान नीरोग और सबल हो जाता है। शरीर मे धातुसाम्य होकर सभी धातुए पुष्ट हो जाती है, और इन्द्रिया सबल एव अपने कार्य मे दक्ष हो जाती है।

पर्पटी-कल्प-पर्पटी सेवन के शुभारम्भ के एक दिन पहले रोगी को कालादाना चूर्ण ६ ग्राम गरम दूध से खिलाकर मल शोधन करा लेना चाहिए।

प्रथम दिन-प्रात -साय, रसपर्पटी २ रत्ती २ मात्रा भुने जीरे का चूर्ण १ ग्राम और ३ ग्राम मधु से दे।

दूसरे दिन-प्रात -साय, प्रथम दिन की तरह-

तीसरे दिन-प्रात -साय मध्याह्न, रसपर्पटी ३ रत्ती। ३ मात्रा जीराचूर्ण और मधु से।

चौथे दिन-प्रात साय मध्याह्न ३ मात्रा जीराचूर्ण और मधु से।

पाचवे दिन-दिन मे ४ बार रसपर्पटी ४ रत्ती। ४ मात्रा जीराचूर्ण और मधु से।

छठे दिन-दिन मे ४ बार पर्पटी ४ रत्ती। ४ मात्रा जीराचूर्ण और मधु से।

सातवे दिन-दिन मे ४ बार पर्पटी ५ रत्ती। ५ मात्रा जीराचूर्ण और मधु से।

आठवे दिन-दिन मे ५ बार रस पर्पटी ५ रत्ती। ५ मात्रा जीराचूर्ण और मधु से।

नवे दिन-दिन मे ६ बार रसपर्पटी ६ रत्ती। ६ मात्रा जीराचूर्ण और मधु से।

इस प्रकार ग्यारहवे दिन ७ रत्ती, तेरहवे दिन ८ रत्ती, पन्द्रवे दिन ९ रत्ती, सत्रहवे दिन १० रत्ती, उन्नीसवे दिन ११ रत्ती और इक्कीसवे दिन १२ रत्ती की मात्रा दे। ७ रत्ती से १२ रत्ती तक देने की अवधि मे पर्पटी को ६ मात्रा मे ही बाटकर देना चाहिए, जिससे २-२ घण्टे के क्रम मे दिन मे ६ बार दवा खायी जा सके।

यदि इक्कीसवे दिन तक मल न बधे और पतला ही दस्त होता रहे, तो एक सप्ताह तक प्रतिदिन १२ रत्ती की मात्रा ६ बार मे देते रहे। पुन प्रतिदिन १-१ रत्ती की मात्रा घटाते जावे, जब तक कि २ रत्ती पर न आ जावे। इस वृद्धि और ह्रास के क्रम मे १२ रत्ती पहुचने के पूर्व ही, आठ, दस रत्ती तक की मात्रा देते समय प्राय मल बध जाता है, क्षुधा जागृत हो जाती है, रोगी को आरोग्य लाभ महसूस होने लगता है। यदि उक्त लक्षण दीख पडने लगे, तो उतनी ही मात्रा पर रोककर एक सप्ताह तक दवा देते रहना चाहिए। फिर क्रमश १-१ रत्ती प्रतिदिन घटाकर २ रत्ती प्रतिदिन तक लाना चाहिए।

पर्पटी की मात्रा ज्यो-ज्यो बढती है, उसी अनुपान मे दुग्ध या तक्र की मात्रा बढाते चलना चाहिए। अजीर्ण न हो और भूख बनी रहे इसका ध्यान रखना चाहिए। दूध या मठे की मात्रा जहा तक बढ जावे, उसे पर्पटी की मात्रा घटाते समय घटाना नही चाहिए। जितना दूध या मठा पी सकता हो देते रहना चाहिए।

पर्पटी कल्प के बाद पथ्य-कल्प की समाप्ति के बाद तुरन्त सामान्य आहार नही देवे, अपितु प्रथम दिन १-२ तोले धान के लावा का माड, दूसरे दिन २ तोले की पेया, तीसरे दिन ३ तोला पुराना भात और मठा, चौथे दिन ४ तोला पाचवे दिन ५ तोला दे। यो ही क्रमश खिचडी, फिर नमकीन यूष, फिर छौककर कच्चे केले की या गूलर की सब्जी, अदरक, नीबू, करेला, नेनुआ आदि हलकी चीजे देते-देते जब अग्नि सबल हो जावे और खुलकर भूख लगने लगे, तब सामान्य भोजन देना चाहिए।

दूध या मठे की जगह आम के रस का भी प्रयोग किया जाता है। तक्र सेवन योग्य को तक्र, दुग्ध जिसे अनुकूल पडता हो उसे दूध और आम के रस के योग्य को आम्ररस को कल्प विधान से दिया जाता है।



अतिसार-ग्रहणी नाशक कनकादि वटी

श्वेत कनक बीज अशुद्ध, कालीमरिच, लवग १०-१० ग्राम। पानी मे पीसकर मटर बराबर गोली बनाले। प्रात , दोपहर, साय १-१ गोली पानी के साथ देने से अतिसार ग्रहणी मे विशेष लाभकर है

-वैद्य दरोगा प्रसाद मिश्र
प्रयोग सग्रह अक से

मूढ़वात-प्रतिलोमवात (गैस) परिचय एवं अनुभूत चिकित्सा

वैद्यराज डा० रणवीरसिह शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य एम० ए० पी०एच०डी०
पचकुया, आगरा (उ० प्र०)

रोग परिचय-

रोगी व्यकित के अतिरिक्त साधारण व्यक्ति भी अपने उदर मे गैस बनने की शिकायत करता है कि पेट मे गुडगुड, अफारा, तनाव और शूल उत्पन्न हो रहा है भूख लगती नही, अजीर्ण की उद्गारे आती रहती है विष्ठम्भ बना रहता है अपानवायु कम निकलती या नितान्त मन्द रहती है, गैस (प्रतिलोमवात) के प्रकोप से शिर शूल, शिरोगुरुत्व-भ्रम, सर्वांग पीडा-कटिशूल, स्तब्धता और आलस्य देह व बुद्धि को निस्तेज बनाकर अकर्मण्य व चिडचिडा बना देते है। स्फूर्ति-शक्ति-पौरुषत्व सभी का ह्रास होने लगता है और जीवन दूभर हो जाता है।

कारण सक्षेप से-

गरीब की झोपडी से राजमहल तक के निवासी-व्यक्तियो को इस अदृश्य शक्तिशाली एव राष्ट्रव्यापी रोग ने किसी न किसी रूप मे अपने प्रभाव मे ले रखा है-

शास्त्रीय विवेचन मे इस कष्टकारक व्याधि को मूढवात विकृत् वात नाम से प्रकट किया जाता है, वातधातु देह मे अपने-२ स्थानो पर स्वास्थ्य सवित्ति के लिए पाच प्रमुख स्थानो पर विशिष्ट कार्य करने से पाच प्रकार का है-यथा-

हृदि प्राणो गुदेऽपान, समानो नाभि मण्डले।
उदान कण्ठ देशस्थो व्यान सर्व शरीरग ।।

पाचो प्रकार के वायुओ मे गैस रोग की विशेष भूमिका समान और अपान वायु प्रस्तुत करते है, मिथ्याहार विहार से यथा स्थान स्थित वातधातु विकृत् होकर अपने प्राकृत कार्यों मे शिथिलता व सक्षोभ उत्पन्न कर देता है जिससे पाचक-सस्थान तथा मलसस्थान मे विकृति व अव्यवस्था हो जाती है और वही शुद्ध वात विकारी होकर आटोप गैस आदि उपद्रव करने लगता है।

दूषित अन्न (खाद्य-पदार्थ) और दूषित जल (पियपदार्थ)

प्राचीन समय मे अर्थात् मेरे बाल्यकाल आठ दशाब्द के दिनो मे और उससे पूर्व मूढवात (गैस) का कोई व्यापक प्रभाव न था, उस काल राष्ट्र की जनसख्या भी न्यून थी, अपने देश मे गोबर की खाद से निर्दोष गुणाकारी सुमधुर खाद्य-पदार्थ उत्पन्न होते थे, परन्तु जब देश की जनसख्या बढी भूमि परिमित थी, देश के विभाजन मे तत्कालीन शासन की अटूट दर्शिता के कारण बाहरी देशो के विस्थापितो को भी भारत मे बसा दिया गया, जिससे जनसख्या सुरसा के मुख की तरह बढती गई, और शीघ्र ही १ अरब होने को है। "राष्ट्रगीत बन्देमातरम्" के निर्माण के समय "त्रिश कोटि" की जनसख्या थी, अब तिगुनी हो गई, निवास के लिए कोठियो मे कृषि भूमि घेरली, भूमि कृषि योग्य बहुत कम है।

विदेशी अन्न का आयात-अपने देश मे रासायनिक खेती

जिन्होने विदेशी अन्न या वैरायिटी का गेहू आदि अन्न खाया है वह सम्पूर्ण उदर रोगो का जन्मदाता है, एक फसल की जगह तीन फसल उतने ही दिनो मे वैज्ञानिक ढग से पैदा करना जनता का पेट भरता है सारहीन अन्न भूसा ही है। चौगुनी आबादी को पालना ही शासन का दायित्व है। यूरिया-पोटासियम आदि अनेक प्रकार के खादो से फसले कृत्रिमरूप मे बढाई जा रही है।

पानी का दोष-

गैस की उत्पत्ति मे सबसे अधिक महत्व पेय जल का है, बडे २ नगरो मे वाटर वर्क्स से मिलने वाला पानी कितना दूषित है अनेक प्रकार से जल शुद्धि की जाती है परन्तु शुद्ध जल उपलब्ध नहीं होता। जल शोधक अपने कर्तव्यो की ओर उदासीन रहते है।

[illegible]

[illegible] जल गैस को नष्ट करता है

[illegible]

[illegible] (गैस) के अन्य हेतु--भोजन--

[illegible] जाने [illegible] । [illegible] निदान में [illegible] है-

प्रायेणाहार वैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ।
तन्मूलोरोग संघातस्तद् विनाशाद् विनश्यति ।।४८।।

[illegible] होती है [illegible] और न्यूनाधिक भोजन करना [illegible] जठराग्नि विकृत हो [illegible] है।

आमोत्पत्ति-

मन्दाग्नि होने से पथ्य और अपथ्य दोनो प्रकार का भोजन नहीं पचता आम रूप (कच्चारस) उत्पन्न होने लगता है। यह आमरस आतो में चिपकने वाला, दुर्गंध, [illegible], गुरु और शूल उत्पन्न करता है।

आम सभी रोगो का कारण-

आहारस्य रस शेषो योन पाकोऽग्निलाघवात् ।
आम संज्ञा स लभते बहुव्याधि समाश्रय ।।

भोजन का सही परिपाक न होने से आतो में आम संचित होती है मल सड़ता है, अपानवायु की विशेष उत्पत्ति होने लगती है, अतिसार व प्रवाहिका का निरन्तर प्रकोप होता है, उदर में रुका हुआ [illegible] स्थान वायु को भी निष्क्रिय कर देता है दोनों वायु के दूषित होने से [illegible] वात उदार [illegible] [illegible] है। [illegible] अंगो पर गैस का दुष्प्रभाव होकर [illegible] [illegible], सिरोभ्रम [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] आदि अनेक उपद्रव होते है। यही आम रक्त में [illegible] होकर जोड़ो का दर्द (आमवात-गठिया) और शीतपित्त उत्पन्न करता है। इस प्रकार उदर रोग में [illegible] समता और विषमता प्रकट की है।

चिकित्सा काल में-सभी रोगियो में समता और विषमता की परीक्षा कर चिकित्सा करने से रोग शीघ्र नष्ट होता है।

अजीर्ण में भी भूख लगना-जिस रोगी को आमाशय के [illegible] जठराग्नि [illegible] होती है उस रोगी को [illegible] भूख लगता है।

[illegible] यदा दोष विकृतमाम लीन च तेज पथ मावृणोति ।
भवत्यजीर्णेऽपि तदा बुभुक्षा सामन्दबुद्धि विषवान्निहन्ति ।।

ऐसी भूख में भोजन करना जीवन को संकट में डालना है।

अजीर्ण के अन्य कारण-मानसिक विकार-

ईर्ष्या भय क्रोध परिप्लुतेन, लुब्धेन रुग् दैन्य निपीडितेन ।
प्रद्वेष युक्तेन च सेव्यमान मन्न न सम्यक् परिपाकमेति ।।

बौद्धिक विकारो मे ईर्ष्या (डाह) भय, क्रोध लोभ, शिरोवेदना, दीनता-द्वेष आदि मानसिक दोषो से पीड़ित व्यक्ति का भोजन भी अच्छी प्रकार नहीं पचता, और उदर में विकृत होकर दूषित वायु (गैस) बनाता है।

प्रज्ञापराध-यह भी मानसिक रोग है-

बुद्ध्या विषम विज्ञान विषम च प्रवर्तनम् ।
प्रज्ञापराध विजानीयाद् मनसो गोचर हितत् ।।चरक।।

बुद्धि का विषयो मे मिथ्या (विषम-विपरीत) ज्ञान का होना साथ ही विपरीत गलत प्रवृत्ति होना प्रज्ञापराध कहलाता है अर्थात् बुद्धि का अपराध (दोष) बिना विचारे बिना सोचे समझे कार्य करना, विवेकहीन होकर परिणाम की चिन्ता न करते हुए किसी कार्य में प्रवृत्त होना ही बुद्धि विभ्रम है।

साराश यह है कि भोजन न पचने मे मानसिक दोष भी कारण बन जाते है और अजीर्ण-अपचन पैदा करके गैस उत्पन्न करते है।

अशनलोलुप और परिश्रमहीन अकर्मण्य व्यक्ति ही मूढवात (गैस) की व्याधि को पालते और बढाते है।

आलस्य-आलसी और उपेक्षित मानव कभी भी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता और स्वर्णिम दिनो की चाह करते हुए भी न उन्नति कर सकता है न आरोग्य ही प्राप्त कर सकता है, आलस्य परित्याग स्वास्थ्य का भूलना है।

व्यसन (नशा आदि की प्रवृत्ति)

व्यसन अच्छे और बुरे दोनो प्रकार के होते है। जो देहमन-शरीर के किसी भाग को हानि पहुचाते हो और समय व स्वास्थ्य का नाश करते हो ऐसे व्यसन बुरे है जैसे-अफीम-चरस-मदक-भाग-सुल्फा-गाजा,कोकीन, ब्राउनशुगर आदि का किसी भी प्रकार से सेवन उदर-व्याधियो अजीर्ण, गैस आदि को जन्म देता है।

चाय कॉफी आदि पेय भी सान्त्वना देने वाले कम हानिकारक पेय है इनसे क्षणिक स्फूर्ति और उत्साह मिलता है, इनका भी अधिक मात्रा मे या बार-२ सेवन अजीर्ण मन्दाग्नि गैस आदि को उत्पन्न करता है। इनका यथा शक्ति परित्याग करना चाहिए।

अच्छे व्यसन-

जो व्यसन शरीर-बुद्धि और सामाजिक व आत्मिक प्रतिष्ठा को बढावे वे व्यसन उत्तम या अच्छे है, इनका अभ्यास व पालन जीवन के उत्कर्ष को करता है। यथा-प्रात ब्राह्ममुहूर्त मे उठना, उष पान, नित्य कर्मो से निवृत्त होना, स्नान, प्रभु का ध्यान, तैल मर्दन, साधारण व्यायाम, भ्रमण, समय पर प्रातराश भोजन-चक्रामण-षत्सक आदि करना और अपने व्यापार व व्यवसाय मे परिश्रम और तन्मयता रखना, धार्मिक और आस्तिक विचारो का पालन, आश्रितो की यथोचित सहायता करना, आदि अच्छे व्यसन कहलाते है, इनकी समृद्धि आरोग्य और व्यवसाय का सवर्धन करती है।

नियमित जीवन, निर्व्यसनी और विवेकशील जीवन सदा स्वास्थ्य-आरोग्य और प्रतिष्ठा प्रदान करता है।

अजीर्ण और गैस निवृत्ति के उपाय-

किसी भी रोग को नष्ट करने के लिए केवल औषधोपचार ही पर्याप्त नहीं है-तात्कालिक लाभ तो औषध सेवन से करना चाहिए। परन्तु चिरस्थायी लाभ के लिए आहार-विहार पर भी ध्यान देना चाहिए।

जठर सम्बन्धी व्याधियो के निराकरण के लिए भोजन व्यवस्था, सुधारिये, प्रात नित्यकर्म निवृत्ति के बाद प्रातराश (कलेवा-नाश्ता) हल्का दलिया दूध मिश्रित नमकीन या हल्का मीठा एक कटोरी लेना चाहिए। तली हुई वस्तुए-कचौडी जलेबी, मिठाइया और नमकीन पदार्थ कलेवा मे नहीं ले, अथवा थोडा कभी २ ले, प्रतिदिन का अभ्यास नहीं होना चाहिए।

भोजन-दोपहर के भोजन का जो भी समय निश्चित हो अपनी सुविधानुसार रोटी चावल-दलिया, खिचडी-शाक-सब्जी रसेदार लेनी चाहिए। ताजे दही का रायता आदि के रूप मे प्रयोग कर सकते है परन्तु दही मे चीनी बूरा आदि मिलाकर नहीं खाना चाहिए। भोजन के बीच मे शुद्ध जल थोडा २ पीना चाहिए, भोजनो से पूर्व अथवा भोजन के पश्चात् तत्काल पानी न पीवे।

इसमे शास्त्र मर्यादा है-

द्वौ भागौ पूरयेदन्नैर्भागमेक जलेन तु।
वायो सञ्चारणार्थ च चतुर्थमवशेषयेत्।।

अर्थात् अन्न से उदर के दो भागो को पूर्ण करे और एकभाग जल से भरे तथा चतुर्थ भाग को खाली रखे। जिससे पाचनक्रिया सरलता से हो सके, ऐसा भोजन शीघ्र पचता है और कोई उपद्रव नहीं करता। गरिष्ठ पदार्थ भी कम खाने चाहिए अन्यथा अजीर्ण हो जायगा।

शुष्क मेवाओ का प्रयोग-

बादाम-अखरोट-काजू-पिस्ते- चिलगोजे, छुआरे आदि मेवा थोडी खानी चाहिए, अधिक मात्रा मे लेने से मन्दाग्नि और अजीर्ण होकर गैस बनती है, मुनक्का, किसमिस, अजीर और खुमानी आदि अधिक मात्रा मे भी ली जा सकती है।

मूढवात (गैस) नाशक अनुभूत प्रयोग-

१ सर्वप्रथम उदर शुद्धि आवश्यक है-छोटी हर्र-हर्र का मुरब्बा, गुलकन्द, गुलाब, अथवा गुलकन्द अमलतास का प्रयोग करे, पानी या गर्म दूध से ले, कब्ज कभी न रहने दे।

२ **हिग्वाष्टक चूर्ण एव हिग्वादि चूर्ण**–मात्रा १ माशे से ३ माशे तक ताजे पानी या मठे से सेवन करे। मन्दाग्नि के रोगी को भोजनो से पूर्व १।। माशे चूर्ण नीबू के स्वरस या शुद्ध घृत मे मिलाकर चाटकर भोजन करे।

३ **गैसहर हरीतकी**–गोमूत्र और कानातक मे पाच दिन तक भीगी हर्रों को धूप मे सुखाले और माड मे या कढाई मे भूनकर अमृतवान मे भर नींबू के स्वरस मे भिगो दे इसमे काली मिर्च, सोठ, छोटी पीपल, जीरा सफेद, जीरा काश्मीरी पाचो नमक, हींग भुनी डालकर अच्छी प्रकार हिलाकर रखे, धूप मे रखने से शीघ्र ही समाधान होता है। इसमे से १ या दो हरडे खाने से ही पेट भी साफ होता है और रुकी हुई हवा (गैस) निकल जाती है। अनुभूत है।

४ **कुमारी लवण**–ग्वारपाठे के पत्तो को कुचलकर १ सेर मे अजवायन देशी काला नमक वायबिडग एक-एक पाव मिलाकर कढाई मे पकावे, सभी द्रव्यो के भुन जाने पर (राख न हो) उतारकर सूक्ष्म चूर्ण कर १ तो० भुनी हींग मिलाकर शीशियो मे भर ले, मात्रा २ सीसे २ माशे तक पानी या अर्क सौंफ से दे, तीन बार, इससे सभी प्रकार की गैस पेट के रोग ठीक हो जाते है।

क्रव्यादि-अथवा (महाक्रव्यादि रस)-

दोनो का योग समान ही है लोक व्यवहार से यहा मिला दिया है।

घटक द्रव्य-शुद्ध पारद ४ तो०, शुद्ध गन्धक ८ तो०, ताम्रभस्म २ तोले, लोह भस्म २ तो०, इनको घोटकर अग्निपाक कर एरण्डपत्रो पर पर्पटी बनावे, लोहे के खरल मे डाल ४०० तो०, जम्भीर का पका स्वरस डाल अग्नि पर पाक करे और पञ्चकोल का क्वाथ डाल अम्लवेत के क्वाथ मे घोटे, टकण भस्म ४०० तोले मिलाकर खरल करे, विड्नमक २०० तो० काली मिर्च ४०० तोले मिलाकर चूने के खार के पानी मे घोटकर २-२ रत्ती की गोलीया बनावे। यह भैषज्यरत्नावली का उत्तम योग है, इसके सेवन से पेट का अजीर्ण, गैस, आटोप आदि शीघ्र शान्त होता है और सभी खाया-पीया पच जाता है।

लशुनाष्टक वटी (वैद्यजीवन)-

शुद्ध लहसुन, जीरा सफेद, सैधानमक, शुद्ध गन्धक, सोठ, काली मिर्च, पीपल, हीग भुनी, इन सबं को समभाग मिला नीबू के स्वरस मे पीसकर ४-४ रत्ती की गोलिया बनाले, मात्रा-१ गोली से ४ गोली तक पानी या पोदीने के अर्क से दे। सभी प्रकार के अजीर्ण-गैस मन्दाग्नि दूर होते है।

हिग्वादि वटी-

सोठ, काली मिर्च, पीपल छोटी, पोदीना सूखा, सैधानमक, इलायची बीज, काश्मीरीजीरा, अजवायन बम्बई सभी को समान भाग लेकर कपडछन करले, १ तो० भुनी हीग को नीबू के स्वरस मे मिलाकर घोटे और बेरी के फल के समान गोलिया बनाले। मात्रा-१ गो० से ४ गो० तक चूसे या पानी से निगले, सभी प्रकार के अजीर्ण-वमन-गैस-शूल अरुचि आदि नष्ट होते है।

जम्भीरद्राव-

बिजौरे नीबू का गूदा और स्वरस १ सेर ले किसी कलई या स्टील के स्वच्छ भाण्ड मे १ तो० जीरा भुना, १ तो० मकडाराई भुनी, १ तो० कालीमिर्च, १ तो० छोटी पीपल, १ तोले सोठ का चूर्ण ५ तो० सैधानमक, विड्नमक २ तो०, हींग हीरा भुनी ६ माशे मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करे, और गाढा होने पर चीनी या काच के अमृतवान मे रखले, यह जम्भीरद्राव है।

मात्रा-१ छोटे चम्मच से आधा चम्मच से २ चम्मच तक चाटे अत्यन्त स्वादिष्ट अग्निदीपक, आम, गैस,-मन्दाग्नि आदि दूर करता है।

हरीतकी लवण-छोटी हर्र १ सेर काला नमक १/२ सेर, अजवायन बम्बई पावभर, सबको लोहे की कढाई मे डालकर अग्नि पर पकावे, अच्छी प्रकार भुनने पर उतार कर पीसछान सुरक्षित रखे।

मात्रा-४ रत्ती से १ माशे तक-तीन बार परनी से ले।

गुण-मन्दाग्नि, मूढवात, गैस, प्रतिलोमवात, विष्टम्भ आध्मान आदि नष्ट होते है।

शास्त्रोक्त योगो मे-

अग्निकुमार रस, अग्नितुण्डी वटी, शखवटी, बृहत्शखवटी, क्षुधासागर रस, अजीर्णकण्टक रस, लवणभास्कर, चित्रकादि वटी, शखद्राव, द्राक्षासव, पिप्ल्यासव, आदि अनेक योग है चिकित्सक को विवेक पूर्वक रोग शान्ति का उपाय करना चाहिए।

उपसहार-

६५ वर्ष के चिकित्सा-काल मे विश्वस्त रूप से लिखा जा रहा है कि मूढवात (गैस) आदि रोगो का प्राय अभाव था, इस ईसवी सदी के प्रारम्भ मे सन् १९२५ तक गैस आदि का प्राचुर्य उभार भी नहीं था, जब से रासायनिक खाद से अन्न उत्पन्न हुआ है, तभी से इन रोगो का प्रादुर्भाव भी हुआ है।

१ उदर रोगो मे उत्तम पाचक-निर्दुष्ट-शुद्ध जल की महती आवश्यकता है जिनको अमृत तुल्य जल उपलब्ध है उन्हे पेट के रोग कभी नही होते, दूषित जल से सदा दूर रहो।

२ भोजन परिमित हितकारी करो, भोजन कर भ्रमण अवश्य करो, आलस्य का परित्याग, समय पर भोजन, पान, स्नान, ध्यान करना चाहिए।

३ स्वादिष्ट वस्तुओ को अधिक मत खाओ, अत्यशन-अध्यशन कभी मत करो, शाक-सब्जी अधिक लो, अन्न व तली चीजे कम खाओ।

४ मैदा वेसन-डबलरोटी-विस्कुट आदि दुर्जर वस्तुए न खाओ। नशा-व्यसन-तम्बाखू के योगो का सेवन करना छोड दो।

५ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करो, विषयी व लम्पट-कभी न बनो। यही जीवन है।

६ अत्यम्बुपानच्च न विपच्यतेऽन्न, निरम्बुपानाश्च स एव दोष ।

तस्मान्नते वहि विवर्धवाय मुहुर्मुहुर्धरि पिवेदभूरि।।

चाणक्य नीति मे भी लिखा है-अजीर्ण भेषज कटि जीर्णेचापि बल प्रदम्।

भोजनेऽमृतदारि, भोजन्तसे विषप्रदम्।।

शुद्ध जल पीने से कभी कोई रोग नहीं होगा, गैस कभी नही बनेगी।



उदर रोगों पर "चार अनुभूत प्रयोग"

(चिकित्सका-श्रीमती सावित्री शास्त्री, आयुर्वेद रत्न, आगरा)

परिचय-

प्राय चिकित्सक के पास आने वाले रोगियो मे अधिकाश रोगी उदर रोगो से पीड़ित है चिकित्सा का महगा होना इस युग का अभिशाप है, देशी दवाओ का मूल्य बीस गुने से पचास गुना तक बढ गया है, ऐसी विषम स्थिति मे सरल-स्वल्प मूल्य-शीघ्रगुणकारी अनुभूत औषधो का प्रयोग सर्वत्र सुलभ होना चाहिए। निम्न प्रयोग इसी कोटी के लिखे जा रहे है।

१ जाठर सुधा-नीबू (जम्भीरी) अभाव मे कागजी नींबू भी-स्वरस १ सेर मूली जड का स्वरस १ सेर, पोदीना का स्वरस १ पाव, प्याज का स्वरस १ पाव, अदरख स्वरस १ पाव, सभी स्वरसो को मिलाकर एक चीनी के अमृतवान मे भर दे। और सोठ १ तो०, काली मिर्च १ तो, पीपल बडी १ तो०, जीरा भुना १ तो०-बडी इलायची बीज १ तो० सूक्ष्म पीसकर मिला दे। साथ ही-कालानमक ६ तोले, सैंधा ४ तो०, विड्लवण ४ तो० चूडी नमक ४ तो० और समुद्र नमक ४ तो० पीसकर मिला दे। १ तोले उत्तम भुनी हींग भी सबके पश्चात् मिलावे, किसी लकडी या स्टील के चमचे से हिलाकर, मुख बन्द करे, दिन मे धूप मे रखे, महीना चालीस दिन मे सन्धान होगा छान कर बोतलो मे भर डाट लगादे।

स्मरण रहे-औषध निर्माण करते समय दूषित वर्तनो, मलिन हाथो का तथा पानी का सम्पर्क नहीं होना चाहिए, अन्यथा विकृत होने का भय रहता है, कभी २ अमृतवान को सावधानी से हिलादे अथवा लकडी की चम्मच से चला दे, पुन मुख बन्द कर दे। यह जठर रोग नाशक स्वादिष्ट सुधा है।

प्रयोग विधि-छोटे बच्चो को २ बूद से ४ बूद पानी मिलाकर दे। बडे बालको को १० बूद से ३० बूद तक पानी मिलाकर दे। तरुण व्यक्ति (वयस्क) को १ चम्मच से २ चम्मच (बडा) तीन बार दे पानी मिलाकर।

गुणधर्म-यह दीपन-पाचन-क्षुधावर्धक, गैस नाशक, रुचिकारक-मूत्रल सुधा है। आध्मान, मलावरोध-शूल, गुल्म, गैस तथा गैस के उपद्रव, अजीर्ण मन्दाग्नि, विसूची, वमन,

अजीर्णतिसार, कृमि, वृक्क-विकार, दूषित अम्ल और यकृद्-विकारो को नष्ट करती है। इसका प्रयोग शोथ रोगी को नहीं करना चाहिए।

२ द्वितीय प्रयोग-कुमारी सन्धानम्-

ग्वारपाठे का गूदा ५ सेर मथकर स्वरस बना छान ले।
अजवायन बम्बई- २० तो० (पीसकर)
पाचो नमक-१५ तोले
नवसादर कत्तल का -४ तो०
गुड पुराना-२।। सेर
त्रिकुटा - ३ तो० (सोठ, पीपल, काली मिर्च)
मण्डूर भस्म-२ तो०
वायबिडग-१ तो०
बडी इलायची बीज - १ तो०, धाय के फूल ५ तोले।

निमार्ण विधि-सर्वप्रथम कुमारी स्वरस और गुड को घोल पाचो नमक व नवसादर पीसकर मिला ले और चीनी के अमृतवान या चिकने मटके मे भर शेष वस्तुओ को डाल अच्छी प्रकार मिला दे। वर्तन का मुख बन्द कर १। महीने बाद छानकर बोतलो मे सुरक्षित रक्खे।

मात्रा-छोटे बालको को २ बूद से १० बूद तक दिन मे दो बार कुछ खाने के पश्चात् पानी मिलाकर दे, वयस्को के लिए १ छोटे चम्मच से दो चम्मच तक पानी समभाग मिलाकर पिलावे, पानी की मात्रा अधिक भी ले सकते है।

गुणधर्म-यह सन्धान यकृद्वृद्धि-प्लीहा-विकार, मन्दाग्नि अजीर्ण, पाण्डुरोग, कृम्युदर, उदरशूल, आध्मान, जीर्ण ज्वर, वृक्क-शूल, वात कफ विकार आदि को शीघ्र दूर करता है।

अपथ्य-स्निग्ध और तली हुई वस्तुए, खटाई, दही, मिष्ठान्न, मेवाए, अरबीशाक, केला उडद की दाल मैदा व बेसन के बने खाद्य-पदार्थ, लाल मिर्च आदि का सेवन औषध सेवन काल मे न करे।

३ तृतीय प्रयोग-जम्भीरी सन्धानम्-

बिजौरा नीबू स्वरस (अभाव मे कागजी नीबू स्वरस) १ सेर ले इसमे काली मिर्च-छोटी पीपल, सोठ का सूक्ष्म चूर्ण १-१ तो० नमक काला, नमक सेधा, २।।-२।। तोले, हींग भुनी ३ माशे राईमकडा भुनी १ तोले, जीरा भुना १ तोले सूक्ष्म चूर्ण कर नींबू के स्वरस मे मिलाकर बोतलो मे भर ले और हिलाते रहे, २०-२५ दिन पश्चात् प्रयोग करे। यह स्वादिष्ट सन्धान है।

मात्रा-५ वर्ष से १० वर्ष तक १/२ चाय चम्मच से १ चम्मच तक तीन बार कुछ खाने के बाद, समभाग पानी मिलाकर पीवे, वयस्क व्यक्ति के लिए १ चम्मच से ४ चम्मच तक, पानी मिलाकर पीवे।

गुणधर्म-यह सधान जुकाम-खासी-कफ-विकार-शोथ, गलपीडा नेत्र रोगी आदि को नहीं पीना चाहिए।

इसके सेवन से अरुचि-मन्दाग्नि, अजीर्ण, आनाह, आम-गैस-कृमि आदि उदर रोग नष्ट होते है वायु (गैस) का सञ्चार और उद्गार नियमित हो जाते है। जब नीबू का मौसम हो उन्हीं दिनो इसे सन्धित करे।

४ चतुर्थ प्रयोग-बालार्क सन्धान-इस प्रयोग मे १ सौफ, २ गाजवान, ३ पोदीना सूखा, ४ अजवायन देशी, ५ मकोय बीज, ६ तुलसीपत्र, ७ गुलाबफूल इन सात अर्कों का मिश्रण है, इनको पृथक्-पृथक् लेकर समभाग मिलाले, यदि आपके पास वासणीयन्त्र (भवका) विद्यमान् है तो सभी औषधियो को एक दिन पूर्व भिगोकर अर्क खींच ले, यह बालार्क सन्धान अथवा सप्तार्क सन्धान है।

प्रयोग-शिशु सम्बन्धी व्याधियो के लिए यह उत्तम योग है जो शिशु प्रकृति (कोमल-असहनशील-नाजुक मिजाज) के व्यक्ति हो, उन्हे भी इस सन्धान का प्रयोग करना चाहिए। इस अर्क के समुच्चय प्रयोग से किसी प्रकार की कोई हानि या उपद्रव की सभावना नहीं है।

गुणधर्म-स्तनपायी, दुग्धान्न सेवी, केवलान्न सेवी, सभी प्रकार के बालको के लिए इसका प्रयोग करे, शिशुओ की कफ खासी, जुकाम, ज्वर, उदरशूल-अतिसार वमन, शिर शूल, हरे-पीले दस्त, उदर-कृमि, दाह-सताप, अफारा, आम-विकार, मन्दाग्नि, रक्त-विकार, चिडचिडापन आदि सभी प्रकार के रोग दूर होते है।

गर्मी की ऋतु मे-औषध शीतल स्थान पर रखकर पिलानी है।

सर्दी की ऋतु मे-औषध को कदुष्ण कर पिलावे।

मात्रा-चौथाई छोटे चम्मच से १ चम्मच तक तीन बार पिलावे। वयस्क को मल प्रकृति रोगी को १ तो० से ४ तो० तक मात्रा दे सकते है।



उदरशूल एवं आमाशय-व्रण की चिकित्सा में सफल अनुभव

कविराज दुर्गाप्रसाद शास्त्री
गिरिहिण्डा चौक, शेखपुरा (बिहार)

१ उदरशूल एव आमाशय-व्रण

आमाशय तथा ग्रहणी व्रण की उत्पत्ति तथा वृद्धि आधुनिक सभ्यता एव विज्ञान के इस युग मे बहुत ही गति से अनेकानेक आश्चर्यजनक आविष्कार होते चले आ रहे है। नि सदेह इन आविष्कारो का मानव कल्याण एव मानव जीवन मे सुख सुविधाए प्रदान करने मे अद्वितीय योगदान है। अन्य अविष्कारो के साथ-साथ विद्युत् एव इलेक्ट्रॉनिक ( ) के क्षेत्रो मे हो रहे आविष्कारो ने तो मानव जगत् मे एक नई क्रान्ति ही ला दी है। इसके फलस्वरूप मनुष्य एकदम आराम-तलब, व श्रमहीन बन गया है। उसके शारीरिक एव वैचारिक दोनो प्रकार के दृष्टिकोणो मे महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गया है।

परिणामत आज का मानव प्राकृतिक जीवन से एकदम दूर कटकर रह गया है और जैसे-जैसे वह विज्ञान की बरदान स्वरूप इन नई उपलब्धियो के करीब आता जाता है । वैसे-वैसे ही वह प्रकृति से अलग-अलग हो रहा है । इन्ही आविष्कारो की बदौलत उसका दृष्टिकोण प्रकृति के स्वभाविक नियमो के विपरीत होता जा रहा है एक प्रकार के आविष्कार मे सफलता मिलने पर वैज्ञानिक जगत् किसी दूसरे आविष्कार की खोज मे सलग्न हो जाता है तो दूसरी ओर एक प्रकार की सुविधा प्राप्त होने पर सामान्य मानव अपनी जिन्दगी मे अन्य सुविधाए प्राप्त करने की आशा मे बैठा रहता है उदाहरण के तौर पर गर्मी से बचाव के लिए पखे का आविष्कार मनुष्य के लिए एक बरदान सिद्ध हुआ।

परन्तु उसे इसमे सन्तुष्टी नहीं हुई और अधिक ठडी हवा प्राप्त करने के लिए तथा प्रकृति की देन गर्मी से पूर्णत छुटकारा प्राप्त करने के लिए क्रमश कुलर और वातानुकूल (एयरकन्डीशन) जैसी सुख-सुविधा प्राप्त कर ली। स्पष्टत मानव मे सुख व आराम प्राप्त करने के लिए नये से नये साधनो की प्राप्ति की अभिलाषा निरन्तर बढती जा रही है इस इच्छा और अभिलाषा का परिणाम हमारी समझ ही हैं। मनुष्य की प्रकृति से निरन्तर बढती दूरी है।

वनौषधि चिकित्सा-

अब उसे इस प्रकार की कृत्रिम परिस्थितियो मे रहना पड रहा है। जिसकी वजह से उनके अनेक प्रकार के रोगो को सुविधापूर्वक आक्रमण के लिए अनुकूल अवसर मिल जाता है। आमाशय व्रण (गैस्टिक अल्सर) ग्रहणी (डोडेनल अल्सर) भूख की अनियमितता होती है, यकृत् (लीवर) की क्रियाशीलता मे शिथिलता तथा पेट मे अम्लपित्त (एसीडिटी)की अधिकता आदि रोग आजकल की कृत्रिम दिखावटी एव आरामतलब जिन्दगी जीने का ही परिणाम है।

दैनिक जीवन मे हमारे खान-पान व रहन-सहन की आदत तथा तौर-तरीके, आचार-विचार तथा अन्य आदते सभी इस हद तक अप्राकृतिक तथा दिखावटी हो गयी है कि उपरोक्त रोगो मे बढने के लिये अनुकूल स्थान वातावरण आसानी से मिल जाता है सच कहा जाय तो यह सब रोग ही आज के फैशन के समान ही मनुष्य का एक अभिन्न अग बन गये हैं इस प्रकार मनुष्य की अधिकाश एव अमूल्य क्रियात्मक शक्ति नष्ट होकर रह गयी है।

अजवायन

औषधीय गुण - अजवायन के बीजो का प्रयोग आमाशय शोध, पेट मे अम्लपित्त का बनना। अफरा, भोजन के बाद छाती मे जलन होना पेप्टिक व्रण आतो मे तीव्र पीडा होना और कब्ज, इन सब रोगो की चिकित्सा मे किया जाता है। इनके सेवन से

भूख बढती है इसके पत्तो मे भी यही गुण पाया जाता है। परन्तु बीजो की अपेक्षा कुछ कम मात्रा मे। वैसे इन पत्तो का प्रयोग प्राय सलाद और सूप मे किया जाता है। अजवायन के बीज और पत्ते दोनो ही खासी की बीमारी, उल्टी होना हृदय रोग, यकृत्-विकार, मूत्र रोग, जोडो के दर्द एव स्त्रियो मे मासिकधर्म का बन्द हो जाना। इन रोगो मे भी लाभ पहुचाते है।

२- आवला

औषधीय गुण- इसका प्रयोग अचार, चटनी, जेली, और मुरब्बा सभी प्रकार से किया जाता है। आवला विटामिन का सबसे बढिया प्राथमिक श्रोत है। इसमे बहुत अधिक मात्रा मे तत्व पाया जाता है। आवले के रस मे सतरे के रस की अपेक्षा २० गुना विटामिन सी अधिक पाया जाता है। आवले की एक विशेषता यह है कि ताजे आवले मे जो विटामिन सी प्राप्त होता है यह तत्व उसको उबालने व पकाने से भी नष्ट नहीं होते।

इसलिए सूखा हुआ आवला भी ताजे आवले के सदृश ही मनुष्य के लिए उपयोगी है।

आवले का प्रभाव-शीतकारक प्रभाव है इसका प्रयोग आमाशय शोध, आमाशय व्रण ग्रहणी व्रण तथा भूख न लगने पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त अल्सर, रक्त प्रदर, पेचिस, पोलिया, कब्ज, अग्निमाध, बवासिर, उल्टी, पेट मे दर्द, यकृत्-विकार तथा बालो का गिरना व सफेद होना। इन सब रोगो की चिकित्सा मे आवले का प्रयोग किया जाता है।

३-शतावरी

गुण-धर्म-शतावरी का प्रयोग आमाशय शोध, पेप्टिक व्रण, पुराना अग्निमान्ध्य, जठर, अत्यम्लता, खून की उल्टी होना तथा खूनी अतिसार आदि रोगो की चिकित्सा मे अत्यधिक लाभप्रद है। यह रक्तस्राव रोकने मे अच्छा काम करती है। इसलिए रक्त प्रदर खूनी बबासीर तथा शरीर के अन्य अगो से रक्तस्राव होने पर इसका औषधि के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त रोगो के अतिरिक्त, अपस्मार, तपैदिक, पेचिस तथा रात्रिअन्धता आदि रोगो मे भी इसका प्रयोग किया जाता है। शतावरी शीतल गुण की औषधि है। यह औषधि स्त्रियो के लिए बहुत लाभदायक है। गर्भावस्था के दौरान और इसके पश्चात् दोनो ही प्रकार से उपयोगी है। यह बच्चो को पुष्ट बनाती है। तथा भूख को बढाती है।

४- नागकेशर

गुण-धर्म-नागकेशर का प्रयोग पेट मे अम्लता होने पर भोजन के बाद छाती मे जलन होना। आमाशय शोध, पेप्टिक व्रण, खून की उल्टी, भूख न लगना, तथा आतो मे दर्द आदि रोगो की चिकित्सा मे किया जाता है। इसके अतिरिक्त खासी, दमा, कास, सिर-दर्द, अतिसार, पेचिश गला पकना, हिचकी, हृदय रोग, यकृत्-विकार, खूनी बबासीर तथा मासिकधर्म मे अत्यधिक रक्तस्राव होने पर भी नागकेशर उपयोगी औषधि है।

कन्डू स्के बीज, व्रण (अल्सर) तथा एक्जीमा आदि चर्म-रोग होने पर भी नागकेशर का बाहरी रूप से प्रयोग किया जाता है।

५-हींग

गुणधर्म- हींग एक लोकप्रिय एव घरेलू औषधि है। जिसका बहुत लोग प्रयोग करते है। आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे भी अपच, अफरा आमाशय शोध, पेप्टिक व्रण जठर मे अत्यल्मता, आतो मे पीडा, खट्टी डकारो आदि की चिकित्सा के लिए हींग का अत्यधिक प्रयोग बताया गया है। इन रोगो के अतिरिक्त हृदय रोग, साधारण खासी हिक्का, दमा, पेट मे कीडे होना, गठिया तथा मासिकधर्म अनियमित होने पर भी हींग का उपयोग बहुत लाभकारी सिद्ध होता है।

पेट मे बहुत अधिक दर्द होने पर तथा पेशाब मे रुकावट आने पर हींग का कल्क पेस्ट गर्म करके नाभि के आस-पास लगाने से बहुत जल्दी आराम मिलता है। नेत्र रोगो व दात मे पीडा होने पर भी हींग का बाह्य रूप से प्रयोग किया जाता है।

६-मुस्ता

औषधीय गुण- मुस्ता पेट की बहुत सी बीमारियो मे और अन्तडियो की अनियमितता मे बहुत उपयोगी औषधि है। इसका प्रयोग आमाशय शोध, पेप्टिक व्रण, छाती जलन, अम्लपित्त एसीडिटी, भूख न लगना, अतिसार, पेचिश, ग्रहणी तथा यकृत् की मन्द क्रिया होने पर औषधि के रूप मे किया जाता है। इन उपरोक्त रोगो के अतिरिक्त कास, दमा, मूत्र सबधी रोग, पेट मे कीडे पडना, अपस्मार ज्वर, मासिकधर्म मे अनियमितता

इत्यादि उपचार के लिए मुस्ता उपयोगी है। इस औषधि के सेवन से किसी प्रकार की हानि की सभावना नहीं होती है। अत बच्चो के रोगो मे भी इसका प्रयोग कर सकते हैं।

७-भागरा (ट्रैलिग इक्वीप्टा)

औषधि गुण धर्म-भागरे का प्रयोग आमाशय शोध, पेचिस वण, पेट मे अम्लपित्त की अधिकता, छाती मे जलन, खट्टी डकारे, भूख न लगना, पीलिया तथा पुरानी कब्ज के इलाज मे किया जाता है। इसके अतिरिक्त ज्वर, जलन, गले की खराबी, अपस्मार हृदय रोग तथा बालो के जल्दी सफेद हो जाने पर भी भागरे का प्रयोग बहुत ही लाभप्रद है।

विसर्प त्वचा पर लाल चकत्ते पडना तथा एक्जीमा चमडी की बीमारियो के होने पर इसका बाहरी रूप से प्रयोग किया जाता है।

भागरे का प्रयोग खाकर तथा बाहर लगाकर दोनो ही प्रकार से किया जाता है।

८-नारियल कोकोनट

गुण धर्म-औषधीय-नारियल का प्रयोग आमाशय शोध, पेप्टिक व्रण, पेट मे अम्लपित्त होना, यकृत् रोग एव रक्तस्राव आदि रोगो मे बहुत लाभप्रद है इसके अतिक्ति पेट मे अफरा होना, हिचकी, मास और मासिक धर्म की अनियमितता होने पर भी इसका उपयोग किया जाता है।

खुजली होना, जल-जाना, एक्जीमा तथा त्वचा पर एलर्जी से होने वाले चकत्तो आदि चर्म-रोगो के इलाज के लिए नारियल का बाहरी रूप से प्रयोग प्रचिलित है।

नारियल का प्रयोग आतरिक व बाह्य दोनो ही रूपो मे किया जाता है।

नारियल

नारियल एसिड को मारता है क्योकि मद्रास मे जन-जन मे इमली खाने का रिवाज है वहा लोगो को नारियल और इसके तेल से सभी भोजन-पदार्थ तैयार करते है। इसी कारण से वहा के लोग अमाशय व्रण से बहुत कुछ बचे रहते है। जिस प्रकार हम सरसो का तेल साग सब्जी मे डाल कर खाते है वहा लोग नारियल के तेल को साग-सब्जी मे डाल कर खाते है। वहा लोग रियल के तेल का ही प्रयोग करते हैं।

नारियल का जल और कच्चा नारियल नारकेलक्षार आदि वैध समाज मे बहुत प्रचिलित है। और प्रयोग रोगियो पर करते है।

९ सफेद पेठा-

औषधीय गुण-सफेद पेठे के बीज और गूदा दवाई के रूप मे इस्तमाल किये जाते है पेप्टिक व्रण आमाशय शोध, गैस्ट्रीज, अम्लपित्त, एसीडिटी, छाती मे जलन, पेट मे कीडे होना तथा जठराग्नीय पुणाली, रक्तस्राव होना इन सब रोगो मे पेठा बहुत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त तपैदिक, रिनी बवासीर, मूत्र सम्बन्धी रोग, जलन होना तथा स्त्रियो के मासिकधर्म के समय अत्यधिक रक्तस्राव आदि रोगो की चिकित्सा मे भी इस औषधी का प्रयोग किया जाता है।

१० सहजन

औषधीय गुण-सहजन के फूल, फल पत्ते व छाल औषधि के रूप मे प्रयुक्त होते है। आमाशय शोथ, पेप्टिक व्रण, भूख न लगना, अरुचि, अफरा, तथा आतो मे कीडो आदि होने पर सहजन को एक औषधि के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा, हृदय रोग जननागो मूत्र सबधी रोग, वास, दमा, तपैदिक और मासिकधर्म की अनियमितता होने पर भी सहजना बहुत उपयोगी है। फोडे फुसियो व सूजन आदि होने पर औषधि का बाह्य रूप मे प्रयोग किया जाता है। नेत्राभिष्यन्द (   ) तथा मोतियाबिन्द आदि नेत्रो के रोगो की चिकित्सा मे इसके बीजो का प्रयोग किया जाता है।

११ सफेद चन्दन

औषधीय गुण-अम्लपित्त, पीलिया, आमाशय शोध, पेप्टिक व्रण, अतिसार, पेचिश, जलन, अतडियो मे कीडो की चिकित्सा मे चन्दन का प्रयोग किया जाता है। शरीर के किसी भी अग से रक्तस्राव होने पर तथा मूत्र सबधी रोग होने पर यह अति उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त हृदय रोग, अनिन्द्रा स्नायु दौर्बल्य तथा पुराना मास होने पर भी इसका उपयोग लाभप्रद है।

सिर-दर्द, जलन, घाव, शरीर से दुर्गन्ध आना व जलने पर चन्दन का बाहरी रूप से भी प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त रोगो मे (ग्रहणी व्रण के) हमारे अनुभव मे श्रद्धेय वैद्यजी भगवानदास जी के मतानुसार ग्यारह दवाइयो पर मेरा अनुभव-

१ अजवायन, २ आवला, ३ नागकेशर, ४ नारियल, ५ भागरा, ६ मोंथा, ७ शतावरी, ८ सफेद चन्दन, ९ सफेद पेठा, १० सहिंजन, ११ हींग।

इन सब दवाइयो का मिश्रण या अकेला भी प्रयोग करने पर अति लाभदायक भी पाया गया है। इसका सक्षिप्त विवरण दे रहा हू। और अपना अनुभव जो कि मै अपना ३६ वर्षों मे प्रयोग करता आ रहा हू।

१ मैसूर मे सरकारी आयुर्वेदिक हॉस्पीटल मे प्रयोग होता आ रहा है। वह इस प्रकार है-

१ **यष्टीमधु चूर्ण**-डेढ ग्राम, २ कपर्द भस्म आधा ग्राम मिलाकर एक छटाक पानी मे पाउडर घोलकर सुबह, शाम रोगियो पर प्रयोग कराना चाहिए यह नुक्शा मैसूर आयुर्वेदिक हास्पिटल मे बहुत प्रयोग होता है। सौ मे अस्सी प्रतिशत सफलता मिलती है। इसमे किसी चिकित्सक को शका हो सकती है कि नीबू के रस मे एसिड पायी जाती है जिससे ग्रहणी व्रण पर नुकसान कर सकता है। इसके उत्तर मे निवेदन यह है कि नीबू का रस विपाक मे मधुर हो जाता है। इसलिए नुकसान नहीं करता है। बल्कि ग्रहणी व्रण मे मधुरयष्टि और कपर्दक मिलकर एक मलहम टाइप का बनकर ग्रहणी व्रण का रोपन करता है।

भोजन-मनुष्य ने आज के युग मे भोजन का नियत्रण नहीं रखा इसका मुख्य कारण स्वस्थवृत्त की जानकारी नहीं रहना। या जानकारी रहते हुए आधुनिक चकाचोध मे प्राचीन सभ्यता को भूल जाना ही मुख्य कारण है। कुछ ही वर्षों पूर्व तक हमारे देश के देहाती लोग छानयुक्त एव कुछ मोटा आटा खाना अधिक पसन्द करते थे। हाथ से कूटा हुआ धान भोजन मे प्रयुक्त किया जाता था।

परन्तु समय के साथ-साथ अब प्राय बाजार से पिसा-पिसाया छिलका उतरे हुए गेहू का परिष्कृत बारीक आटा ही प्रयुक्त किया जाता है। चावल भी मिलो से कुटे हुए आते है इस तरह के परिष्कृत (इफान्ड) अन्न उदर सम्बन्धी अनेक रोगो को उत्पन्न करने मे सहायक होते है। इसी भोजन के अतिरिक्त अन्य अनेको खाद्य-पदार्थ भी तैयार किये जाते है।

यद्यपि इस प्रकार के खाद्यान्न देखने मे सुन्दर और खाने मे स्वादिष्ट होते है परन्तु वे आमाशय व्रण जैसे रोगो मे पनपने के लिए अनुकूल स्थान तैयार कर देते है इसी प्रकार जो-जो सब्जिया पहले प्राय उनके छिलको, बीजो व रेशो सहित खाई जाती थीं अब उनके छिलके उतार दिये जाते हैं और रेशे भी निकाल दिये जाते हैं इस प्रकार की सब्जिया खाई भी कम मात्रा मे जाती है। इससे उदर सबधी अनेक प्रकार की समस्याए उत्पन्न होती है।

हम अपने भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए एव कभी-कभी अपनी सुविधा के लिए अनेको खाद्य-पदार्थों मे कुछ हानिकारक रसायन पदार्थों (केमिकल्स) जैसे मीठा सोडा एव अनेक मसालो का प्रयोग करते है। ये सब स्वास्थ्य विशेषत पेट के लिए हानिकारक है। जो लोग बहुत बारीक एव परिष्कृत अनाज एव छिलके के रहित भोजन का सेवन करते है। उनमे मोटा और छिलके युक्त भोजन करने वालो की अपेक्षा आमाशय व्रण (पेप्टिक अल्सर) की सभावना अधिक होती है।

पेय पदार्थ-

भोजन के साथ-साथ हम लोगो की पेय पदार्थों के सेवन की आदते भी कुछ इस प्रकार की बनती जा रही है जिससे आमाशय व्रण के आक्रमण की सभावना बढती जाती है। अब तो चाय और कॉफी पीना एव साधारण सी बात बन गयी है। कुछ वर्ष पहले हमारे देश के ग्रामीण लोग चाय और काफी का नाम तो नहीं जानते थे। परन्तु अब वही लोग इन्हे पीने के अभ्यस्त बन चुके है। अनेक उष्ण कटिबन्धी देशो मे दक्षिण पूर्व एशियाई देशो के लोग जहा भोजन के बीच मे एव बाद मे साधारण जल पीते है।

पाश्चात्य देशो मे वातित जल (जेनरेटेड वाटर) का प्रचलन बहुत बड गया है। इस प्रकार अब सभ्य एव आधुनिक कहे जाते है समाज में भोजन एव जल के स्थान पर चाय कॉफी एव वातित पेयो का प्रयोग बढता जा रहा है इससे इन लोगो मे आमाशय व्रण (पेप्टिक अल्सर) होने की आशका अपेक्षाकृत अधिक रहती है।

उन उपरोक्त पेयो के साथ-साथ लोगो मे मादक द्रव्यो (अल्कोहलिक ड्रिंक्स) के सेवन का रिवाज भी दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है। इन मादक द्रव्यो को यदि पर्याप्त भोजन के साथ अपने भारी भोजन के साथ लिया जाय तो हानि की सभावना नहीं रहती है परन्तु बहुत से लोग गरीब होने के कारण

अधिक भोजन नहीं जुटा पाते है और धनी लोगो के पास इतना समय नहीं है कि उचित समयानुसार भोजन ग्रहण कर सके।

इस प्रकार मादक द्रव्यो के सेवन मे आमाशय (स्टोमेक) एव ग्रहणी (डूडेमन) की श्लेष्मल कला पर कुप्रभाव बढता है। परिणामत उचित मात्रा मे श्लेष्मा के उत्पन्न न होने के कारण आमाशय व्रण (पेप्टिक अल्सर) की सभावना बढ जाती है।

३ मानसिक तनाव (मेन्टल टेन्शन)-

मानसिक तनाव आज के युग मे उदर रोगो पर भी प्रभाव डालती है। आज के इस भौतिकता वादी समाज मे अधिकाश मनुष्य मानसिक तनाव एव दबाव से आक्रान्त पाये जाते है। ऐसी परिस्थिति मे शरीर मे कुछ हार्मोन्स का अधिक मात्रा मे निर्माण होने लगता है। इनके प्रभाव से आमाशय एव ग्रहणी मे अम्ल (एसिड) की मात्रा की उत्पत्ति आवश्यकता से अधिक मात्रा मे तथा श्लेष्मा (म्यूकस) का निर्माण आवश्यकता से कम मात्रा मे होने लगता है। इस प्रकार अमाशय व्रण बनता है।

२ यह मेरा अपना अनुभूत योग सभी प्रकार के उदर रोग मे अति लाभदायक है। वह इस प्रकार है। १ वायबिडग चूर्ण आधा माशा, २ ताम्र भस्म चौथाई रत्ती मधु के साथ सुबह शाम चटाने से भोजनोपरान्त कुमार्यासव मे मिलाने से रियाही दर्द मे बहुत ही फायदा करता है। समयाभाव से उदर रोगो पर बहुत-बहुत से नुक्शे अनुभव हमारे अनुभव मे है वह कभी अवसर मिला तो लिखूगा अन्त मे मै आपको धन्यवाद देता हू कि उदर रोग विशेषाक प्रकाशित करके आयुर्वेद जगत् और वैद्य समाज को बहुत लाभ पहुचेगा साथ-साथ रोगियो का उदर रोग से पीडितो को फिर लाभ पहुचेगा। शरीर स्थान मे उदर रोग का मुख्य स्थान है। वैसे तो समाज मे आयुर्वेद के अनुसार तीसरा स्थान दिया है।

ब्रह्मणो अस्य मुखमासीद बाहु राजन्यकृत ।

उदरु तदस्य यद् वैश्य पदभ्याम् शूद्रोअजायत ।।

परन्तु शरीर मे मुख्य स्थान पेट का होता है यदि पेट सही न हो तो, पाचन-क्रिया मन्द पड गयी हो तो मुख्य बाहु और पेटो को पूर्ण रूपेण रक्त नहीं प्राप्त होने से सब शिथिल हो जाते हैं। इसलिए पेट को महत्व ज्यादा देना चाहिए। इसलिए लोगो मे युक्ति है कि पेट नहीं होता तो दुनिया मे किसी से भेट नहीं होती।

भक्तो मे कहावत है-भूखे भजन न होहि गोपाला।

ले लो अपनी कठी माला।

इसलिए आपने उदरोगाक निकाल कर बहुत महत्व का काम एव यश का कार्य किया है आप को धन्वन्तरि भगवान् दीर्घ आयु प्रदान करे। जिससे आयुर्वेद का ससार मे यश फैलता रहे और आपकी कृति बढती रहे। इस शुभ इच्छा के साथ।

आपका धन्यवाद।

जय भारत, जय आयुर्वेद।



● सम्पादकीय टिप्पणी-

उदरशूल नाशक एक परीक्षित योग

योग-अर्क अजवायन, अर्क सौफ, अर्क पोदीना तीनो २००-२०० मि० लि० ले ले। इसमे १० मि० ग्रा० डावर का पोदीना हरा मिलावे और एक बडी शीशी मे भरकर रखले।

मात्रा-प्रयोग विधि तथा उपयोग-उदरशूल की अवस्था मे उपरोक्त मिश्रित पेया मे से ६ चम्मच लेकर २ चम्मच सोडा वाई कार्ब तथा १ चम्मच ग्लूकोज मिलाकर १-१ घटे पर २-३ बार पिलाने से उदरशूल, वमन आदि मे विशेष लाभ होता है।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

उदरशूल नाशक दो अनुभूत योग

वैद्य रामकुमार स्वामी
आर्य आयुर्वेद आरोग्य आश्रम, किराडा छोटा वाया कलाना (हनुमानगढ) राज०

उदरशूल के अनेक कारण हो सकते है, उन पर प्रकाश न डालते हुए एक ऐसा प्रयोग प्रस्तुत किया जा रहा है जो इन्जेक्शनवत् आशुफलप्रद है। किन्तु यह योग कोई रसायनशास्त्र नहीं वनाने के कारण स्वय चिकित्सक को ही बनाना पडता है। दर्द चाहे आन्त्रशूल हो या पित्ताश्मरी, वृक्काश्मरी या वस्तिशूल भी क्यो न हो, एक ही मात्रा मे तुरन्त फायदा देखे। नोवलजीन, बरालगन फोर्टविन जैसे इजेक्शन लगाने के बाद कभी-२ आतुर यह शिकायत करता रहता है कि दर्द है किन्तु प्रयुक्त प्रयोग के पश्चात् इस शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।

प्रथम योग-

औषधि का नाम-शखद्राव चूर्ण

मूल पाठ-गुप्त सिद्ध प्रयोगाक (धन्वन्तरि) सन् १९५८

लेखक-श्री विभूतिराम त्रिपाठी, वैद्य विशारद, आयुर्वेदिक चिकित्सालय, हरिपुर बस्ती।

घटक द्रव्य-यवक्षार, कलमी शोरा, नवसार, फिटकरी काला नमक समभाग।

निर्माण विधि-सभी प्रकार के द्रव्यो को बारीक चूर्ण कर एक हाडी मे रखकर मुह बन्दकर आच पर रखे। जलाश समाप्त हो जाने पर विलकुल जम जावेगा। यह औषध सावधानीपूर्वक निकाल पीसकर बोतल मे भर लेवे। डाट सख्त होनी चाहिए यही श्वेत द्रव्य शखद्राव चूर्ण है।

मात्रा-एक माशा (एक ग्राम लगभग)

गुण-घोर उदरशूल तुरन्त बन्द करता है। यह उदरशूल की अचूक दवा है। चाहे जैसा भी दर्द हो।

नोट-घोर कुकर कास (हूपिंग कफ) मे ३-४ रत्ती बहेडे के चूर्ण या अडूसा-पत्र रस से देने पर अविलम्ब आश्चर्यजनक लाभ करता है। गुल्म, यकृत्-वृद्धि मे आशुफलप्रद है।

२ उदरशूल का दूसरा योग-

किसी सन्यासी द्वारा बताया गया योग है जो एक कर्मचारी द्वारा मुझे बताया गया। आशुफलप्रद एव अनुभूत है।

घटक द्रव्य-नींबू रस-५०० ग्राम

मिश्री-१०० ग्राम

मीठा सोडा- १० ग्राम

साफ एव सख्त बोतल मे नींबू स्वरस एव मिसरी मिला लेवे। तत्पश्चात् मीठा सोडा डाल देवे। झाग निकले उस समय बोतल के मुख को हाथ से दबाये रखे अगर छोड दिया तो सारी दवा बाहर निकल जावेगी। धीरे-२ झाग शान्त होने देवे। दवा तैयार है मात्रा १० मि० लि० से २० मि० लि० समभाग जल से भोजनोत्तर अन्य सहायक औषधिया साथ मे कुछ समय तक देने से पूर्ण फायदा होता है।

कोष्ठ बद्धता-प्रचलित स्वानुभूत योग।

कुछ जीर्ण रोगो मे रोगी का शरीर क्षीण होने की स्थिति मे तीव्र विरेचक औषधि नहीं दी जा सकती। बस्ति (एनीमा) भी अपना असर नहीं दिखा पाती ऐसे समय मे चिकित्सक किंकर्त्तव्यमूढ हो जाता है उस समय के लिए आशुफलप्रद योग-

घटक द्रव्य-तेल मीठा (तिल या सरसो) ५० ग्राम

गेहू का आटा - ५० ग्राम -गुड ५० ग्राम

यानी ५० ग्राम तेल मे गुड का हलुवा बनाना है विधि हलुवा बनाने के समान ही हो। हलुवा बनने के पश्चात् तुरन्त गीला कर निचोडा सूतीवस्त्र मे डालकर एक पोटली बनाकर सुहाता, सुहाता पेट पर सेक करे। ठण्डा होने पर उसी कपडे मे पेट पर बाध देवे। थोडी देर मे रोगी को दस्त होगा। अफारा हो तो वह भी ठीक हो जावेगा।



जलोदर की सफल चिकित्सा व्यवस्था

डा० रवीन्द्रचन्द्र चौधरी, नारदघाट, वाराणसी-१

अपनी चिकित्सा मे हमने जलोदर रोगी विशेषतया निम्नोक्त कारणजन्य पाये है-

(१) यकृद्दाल्युदरजनित- इसमे ग्रहणीजन्य जलोदर भी है।

(२) बालको मे यकृद्दाल्युदरजनित।

(३) हृद्रोगजनित जिसमे-

(क) माइट्रल स्टेनोसिसजनित

(ख) माइट्रल रेगुएशनजनित

(ग) अन्य हृद्रोगजनित

(घ) पाण्डुजनित

(४) वृक्कशोथजनित।

(५) मैलिगनैण्ट ट्यूमरजनित।

यकृद्दाल्युदरजनित जलोदर अगर ग्रहणीजनित न हो तो विरेचन से अधिक लाभ होता है।

चरकाचार्य ने कहा-

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्ग निरोधनात्।

सम्भवत्युदर तस्मान् नित्यमेव विरेचयेत्।।

प्राय सभी जलोदर के रोगियो को विरेचन देना अत्यन्त आवश्यक होता है। जिस कारण से जलोदर हुआ है, उसको दृष्टि मे रखते हुए तथा व्याधिप्रत्यनीक औषधि देते हुये भी यदि नियमित रूप से विरेचन औषधि का प्रयोग न किया जाय तो रोगी का उदरायतनस्फीति घटाना कठिन होता है। यह बात सभी प्रकार के जलोदर रोगियो के लिए साधारणतया प्रयोज्य है।

विरेचन के लिए हमने निम्नोक्त औषधियो का प्रयोग किया है। यथा-सिद्धकणादि (स्नुही भावित पिप्पली), जलोदरारि रस, इच्छाभेदी रस, अर्शकुठार रस, बिन्दुघृत, पुनर्नवाष्टक क्वाथ (आरग्वध समन्वित अथवा कुटकी, हरीतकी युक्त)। साधारणतया जलोदर रोगी मे नियमित रूप से नित्य पुनर्नवाष्टक क्वाथ का उपयोग किया जाता है। जिनको पुनर्नवाष्टक क्वाथ से विरेचन नहीं होता है, उनके लिए क्वाथ द्रव्य मे आरग्वध या कुटकी, हरीतकी द्विगुण मात्रा मे मिलाई जाती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी एरण्ड तैल भी उसमे डाल दिया जाता है। बहुश प्रयोगार्थ सिद्धकणादि अधिक उपयोगी है। परन्तु इससे कभी-कभी अन्नप्रणाली मे दाह होता है। सिद्धकणादि प्रयोगान्तर जिसके पेट या गले मे दाह होती है उनको इसमे शिवाचूर्ण १ माशा दिया जाय या इच्छाभेदी रस या जलोदरारि मे शिवाचूर्ण मिलाकर प्रयोग किया जाय तो उनको जलन नहीं होती है। रूक्षता के कारण किसी-किसी रोगी को यह विरेचन औषधि सहन होना सम्भव न समझकर बिन्दुघृत दिया जाता है। बिन्दुघृत दुग्ध के साथ मिलाकर देने से रोगी को सहज रूप से विरेचन हो जाता है। परन्तु कभी-कभी पुराना होने से अथवा किसी-किसी रोगी को किसी विशेष अज्ञात कारण से बिन्दुघृत से भी गलनाली व आमाशय में दाह और वमन होते हुए देखा गया है। वमन होने का कभी-कभी एक प्रधान कारण है पूर्वभुक्त भोजन पदार्थो का अपचन। इसीलिए पूर्वरात्रि मे हल्का भोजन देकर अथवा प्रात खाली पेट मे कुछ घटे बाद विरेचन देना चाहिए।

बिना किसी कष्ट उत्पन्न किये किसी औषधि से अच्छा विरेचन होना कठिन होता है।

जलोदर तथा प्लीहोदर मे प्राय वर्धमान पिप्पली का प्रयोग अच्छा होता है। प्रथम दिन तीन पिप्पली शुरू करके तीन-तीन बढाकर वह प्रयोग मात्रा १८ तक पहुचती है। किसी रोगी को ३० पिप्पली तक मात्रा पहुचायी जाती है। पीपल दुग्ध के साथ क्षीरपाक विधि से पकाकर वही दुग्ध पीने के लिए दिया जाता है। जिसको यह प्रयोग सहन हो उसको पीपल दुग्ध से पकाकर अथवा पीसकर पीने को दिया जाता है। किन्तु यह पिप्पलीकल्क बहुत रोगियो को सहन नहीं होता है। किसी को इससे गले तथा शरीर मे जलन होती है। रक्तस्राव होने का भय रहता है। केवल वर्धमान पिप्पली के ऊपर निर्भर रहकर हमने जलोदर रोगी की चिकित्सा नहीं की। अन्य औषधियो का प्रयोग भी साथ-साथ किया था। अधिकतर रोगी तिब्बिया कालेज हास्पीटल, दिल्ली (मदनमोहनलाल आयुर्वेद अनुसन्धान विभाग) से लिये गये थे।

यकृद्दाल्युदरजनित जलोदर रोगी मे मुख्य औषधि के रूप मे पुनर्नवामण्डूर, शोथभस्म लौह, यकृदरि लौह, आरोग्यवर्धिनी का प्रयोग किया था। मूत्रल औषधियो मे चन्द्रप्रभावटी, शुभ्रपर्पटी, इक्षुक्षार, शरक्षार, दर्भक्षार, खरबूजक्षार, तरबूजक्षार का उपयोग किया था। इनमे से खरबूजक्षार, शरक्षार का मूत्रल प्रभाव बहुत ही अच्छा प्रतीत हुआ। एक ५ वर्ष के शिशु मे इस क्षार से मूत्र का परिणाम १५ दिन मे प्रतिदिन १५ औस से बढकर ४०-५० औस तक हुआ था। एक ग्रहणीजनित जलोदर मे खरबूजक्षार से प्रतिदिन २ रत्ती मात्रा मे २ बार सेवन से मूत्र-परिणाम ८ औस प्रतिदिन से बढकर २४ औस हुआ था। शरीर-भार एक सप्ताह मे २७ पौड से घटकर २५ पौड हुआ था। रोगी को केवल दूध पीने के लिए दिया जाता था। इस पानीय क्षार के प्रयोग से प्रारम्भ मे तो मूत्र-परिणाम बढ जाता है परन्तु पश्चात् मूत्र उतना बढा हुआ नहीं रहता है। अत सदैव इससे सामयिक सुफल होते हुये भी स्थायीफल की आशा नहीं की जा सकती है।

जलोदर मे जलनिष्कासन करने का विधान चरक, सुश्रुत आदि सहिता ग्रन्थो मे उल्लिखित रहते हुए भी हमने विस्रावणकर्म अधिक सख्यक रोगियो मे नहीं किया। क्योकि शास्त्र मे इसके बारे मे पर्याप्त फलश्रुति नहीं मिलती है। परन्तु विधि-निषेध बहुत है। दूसरी बात यह है कि उदर-गह्वर (Peritoneal cavity) से एक बार शस्त्र द्वारा जल-निष्कासन से अधिकतर रोगियो मे पुन शीघ्र ही उदर में जलसचय हो जाता है जिसको औषधि देकर हटाना कठिन हो जाता है। किसी-किसी रोगी मे जलविस्रावणोत्तर अधिक जल निकालकर पश्चात् औषधि सेवन से यथेष्ट आराम पहुचता है। कभी-कभी रोगी को उदर-स्फीति अत्यधिक होने पर तथा श्वास-कष्ट आदि उपद्रव कष्टदायक होने पर सामयिक आशुलाभ देने के लिए विस्रावण करना अत्यावश्यक हो जाता है। परन्तु विस्रावण विशुद्ध सुश्रुतोक्त प्रणाली मे किया जाना चाहिए तथा विस्रावणोत्तर पश्चात्कर्म यथारीति शास्त्रानुसार अधिक दिन तक नियमपूर्वक करना आवश्यक है।

हृद्रोग-जनित जलोदर मे पूर्ववर्णित पुनर्नवामण्डूर आदि औषधि के अतिरिक्त प्रभाकर वटी, बृ० वातचिन्तामणि रस, योगेन्द्र रस, मुक्तापिष्टी, नागार्जुनाभ्र, अर्जुनशालपर्णी-बला-गोक्षुर का क्षीरपाक तथा विश्वेश्वर रस (हृद्रोगाधिकारोक्त) विशेषतया फलप्रद सिद्ध हुए हैं।

हमारे अनुभव मे दकोदर की स्थिति मे अत्यधिक उदर मे तनाव हो तो विस्रावण कभी-कभी अत्यावश्यक होता है। साथ ही ऊपर कथनानुसार औषधि सेवनार्थ दी जाती है।

शिशुसुलभ यकृद्दाल्युदर (Infantile liver cirrohosis) जनित जलोदर मे हमे सफलता नहीं मिली। इसके सम्भवत दो मुख्य कारण है-१ रोग कृच्छ्रसाध्य या असाध्य होता है। २ रोगी अधिकतर पुराण या गम्भीर होने के पश्चात् चिकित्सार्थ आता है।

पथ्यापथ्य-सभी जलोदर के रोगियो को पथ्य के रूप मे केवल दुग्ध दिया जाता है। दूध १ सेर से धीरे-धीरे बढाकर ३-३।। सेर तक दिया जाता है। दूध मे चीनी नहीं मिलायी जाय तो उत्तम है। जिसका यकृत् का कार्य विशेष शिथिल है (जिसे कामला भी हो) तो उसको मक्खन निकालकर दूध दिया जाता है। वर्धमान पिप्पली देने से तीव्र क्षुधा होती है। पिप्पली बढाने के साथ-साथ दूध भी बढाना आवश्यक होता है। किसी-किसी रोगी को वर्धमान पिप्पली प्रयोग से रक्तनिर्गम या अधिक जलन होती है। दुग्ध अधिक देते हुए जलन कम नहीं हो तो पिप्पली घटा देना आवश्यक होता है अथवा बन्द कर देनी चाहिए।

पथ्य के रूप मे रोगी को माणमण्ड देना आवश्यक होता है। यह माणकन्द चूर्ण, चावल का आटा, दूध और पानी मे पकाया जाता है। इसमे अल्प मात्रा मे चीनी डाली जाती है। यह माणमण्ड स्वादिष्ट तथा जलोदर मे फलदायक भी है।

पर्पटी चिकित्सा

ग्रहणीजनित जलोदर मे पचामृत पर्पटी केवल निर्दिष्ट मात्रा मे अथवा क्रम वर्धमान मात्रा मे २ रत्ती से लेकर १० रत्ती तक प्रयोग की जाती है। केवल दो रोगियो मे इसका प्रयोग किया। दोनो रोगी अच्छे हो गये।

स्वर्ण-पर्पटी कल्प जलोदर मे एक रोगिणी पर प्रयोग किया गया। यह अधिक लाभकारी प्रतीत होती है। रोगिणी स्वास्थ्य लाभ करके २० वर्ष तक जीवित रही।

चरकाचार्य ने जलोदर मे अन्तिम चिकित्सा के रूप मे सर्पविष आहार के साथ उपयोग करने को कहा परन्तु हमे इसका उपयोग करने का अवसर नहीं मिला।

उदर रोग मे तक्रपान के ऊपर काफी महत्त्व दिया गया है। परन्तु हमने जलोदर मे तक्र का प्रयोग कम किया है। इसमे प्रधान कठिनाई यह है कि यह ठीक प्रकार से प्रस्तुत करना पिलाना कठिन है। द्वितीय आपत्ति यह है कि इसमे जल की मात्रा अधिक होने की सम्भावना है जो वाञ्छनीय नहीं है।

[illegible]तैलवचा शुण्ठी शताह्वाशुण्ठी गैन्धवे ।।१०४।।
युक्त प्लीहोदरी जात सव्योषतुदकोदरी।

-च० चि० १३

जलोदर मे त्रिकुट के साथ तक्र देवे।

डा० सी० द्वारकानाथ कहते है दकोदर मे आमाशयकला नि सृत रस की अधिक उपयोगिता है। यह विरेचक न होते हुये मूत्रल और उदर-वृद्धि रोधकारी है।

निम्न पक्ति मे कुछ हमारे द्वारा आरोग्य प्राप्त जलोदर रोगियो का विवरण दिया जा रहा है।

(१) प० न० वय ६० वर्ष-रोग-जलोदर।

चिकित्साकाल-लगभग ३ मास।

प्रारम्भ मे क्षुधामान्द्य, यकृद्देश मे गुरुत्वानुभव, कोष्ठवद्धता आदि कष्ट चल रहे थे। बाद मे मर्मसाधिक काल ज्वर से पीडित रहे। इसकी चिकित्सा अग्रेजी चिकित्सा पद्धति से की गई थी। प्राथमिक कुछ लाभ होते हुए अग्निमान्द्य, श्वासकष्ट, कोष्ठवद्धता चलते रहने के कारण रोगी चिकित्सार्थ आया। पहले रोगी को उरस्तोय समझकर उर प्रदेश से जलविस्रावण किया गया। परन्तु उदरस्फीति बढती गई। क्षुधामान्द्यादि लक्षण पूर्ववत् वर्तमान रहे। आयुर्वेदि चिकित्सा करने के पहले उदर परिधि ४२ इच, दृतिवत् क्षोभ, श्वासकष्ट, कास, कोष्ठबद्धता, दुर्वलता आदि लक्षण थे। ऐसी अवस्था लेकर तिब्बिया कालेज अनुसन्धान विभाग मे प्रविष्ट हुआ। परीक्षा से जलोदर और उरस्तोय (वाम) दोनो रोग प्रमाणित हुये। रक्त मे हिमोग्लोबिन-७० प्रतिशत था। यहा आयुर्वेदीय औषधि जैसे विन्दुघृत, पुनर्नवामण्डूर, यकृदरिलौह, शोथभस्म लौह, प्रभाकर वटी, नागार्जनाभ्र, योगेन्द्ररस, प्रवाल, मुक्तापिष्टी आदि औषधि यथा समय सेवन से तथा अर्जुनादि का क्षीरपाक, पुनर्नवाष्टक क्वाथ, तृणपञ्चमूल पेय आदि पान करके रोगी सम्पूर्ण आरोग्य लाभ करके घर गया। जाते समय उदर परिधि ४२ इच से घटकर ३४ इच, श्वास गति ३० प्र० मि० [illegible] १८ [illegible] मि०, [illegible] मूत्र परिमाण [illegible] प्रतिदिन [illegible] नहीं था।

(२) [illegible]

रोगी [illegible] लगा। [illegible] २६ [illegible] रोगाक्रान्त होकर आरोग्यशाला मे आया।

प्रवेश-समय उ० प० ३३।। इच [illegible] पौ० मूत्र परिमाण (२४ घण्टे) १०-१२ औ०। उदर [illegible] सुपरिस्फुट थी। रोगी को पथ्य के रूप मे दुग्ध १ सेर से [illegible] करके २।। सेर तक दिया जाता था। २। मास [illegible] से रोगी स्वस्थ होकर घर जाते समय उनकी उदर परिधि [illegible] इच, शरीर-भार-९२ पौ०-मूत्र परिमाण प्रतिदिन [illegible] था। औषधि के रूप मे पुनर्नवामण्डूर, पुनर्नवाष्टक क्वाथ [illegible] दिन अन्तर मे सिद्धकणादि दिया जाता था।

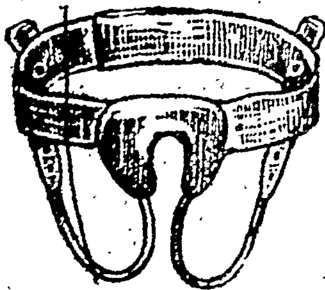
(३) म० र०-आयु-५० वर्ष जलोदर, स्थिति काल १।। मास। चिकित्सा के पहले ५ मास पूर्व रोगी की कमर मे दर्द व मृदु ज्वर १०-१२ दिन तक रहा। इसके बाद आमाशय के ऊर्ध्वभाग मे कुछ कठिन पदार्थ प्रतीत होने लगा। क्षुधामान्द्य कोष्ठवद्धता, मूत्राल्पता, दुर्बलता होने लगी तथा उदरायतन बढने लगा। चिकित्सार्थ आने के समय उदर-परिधि ३६ इच शरीर भार- १३० पौ० मूत्र परिमाण-१६ १७ अ०। यकृत् का वाम भाग Xyphoid Process से ५ अगुल नीचे तक वर्धित था। बाद मे वापस जाते समय उ० प०-२७ इच, यकृत् ३ अगुल नीचे बढा हुआ था। वजन ११३ पौ० मूत्र परिमाण प्रतिदिन ३० था।

रोगी को पुनर्नवामण्डूर २ बार, यकृदारि लौह, आरोग्यवर्धिनी, चन्द्रप्रभा, शुभ-पर्पटी, पुनर्नवाष्टक क्वाथ गोक्षुरयुक्त तृणपञ्चमूल पेया, वर्तमान पिप्पली (३-१८) एक दिन सिद्धकणादि दिया जाता था। उदर-परिधि २७ इच होने के बाद यकृद्-वृद्धि उपशम तथा क्षुधावर्धनार्थ यवानी खाण्डव, शखभस्म,

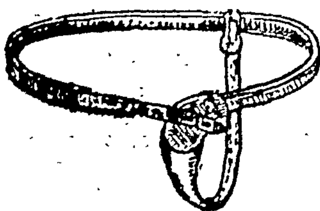
तेल लगाकर फिर पत्तों को गरम कर आन्त्रवृद्धि के ऊपर रखकर लंगोट से या किसी कपड़े द्वारा बांध दें। इस प्रयोग से रोगी को काफी विरेचन होते हैं। अतः भय की कोई बात नहीं है। लगभग १ माह तक इस प्रयोग को करना चाहिए। इससे हर प्रकार की आन्त्रवृद्धि चाहे वह किसी भी अवस्था से गुजर रही हो अवश्य नष्ट हो जाती है।

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला लेकर दोनों की कज्जली करें। लोहभस्म, वंगभस्म, ताम्रभस्म, कांस्य-भस्म शंखभस्म, कौड़ी की भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध तूतिया, त्रिकुट, त्रिफला, चव्य, विडंग, विधारा, कचूर, पीपलामूल, पाठा, हाऊबेर, वालवच, बड़ी इलायची, देवदारु तथा पञ्चलवण सब द्रव्य १-१ तोला हरड़ के क्वाथ में पीसकर १/८ तोला प्रमाण की गोलियां बनालें। प्रातः, दोपहर एवं सायं १ से २ गोली अवस्थानुसार जल के साथ सेवन करने से कठिन से कठिन आन्त्रवृद्धि का भी नाश हो जाता है। झड़बेर की अंगूठे जैसी मोटी जड़ के ४ तोला टुकड़े को कूटकर ६० तोला जल में मन्द आंच पर पकावें। २० तोला जल शेष रहने पर छानकर रोगी को पिलावें। इसी प्रकार प्रातः सायं ४० दिन तक पिलाने से आन्त्रवृद्धि समूल समाप्त हो जाती है। यदि इस प्रयोग से कोष्ठबद्धता हो जाय तो उष्ण जल की बस्ति देनी चाहिए।

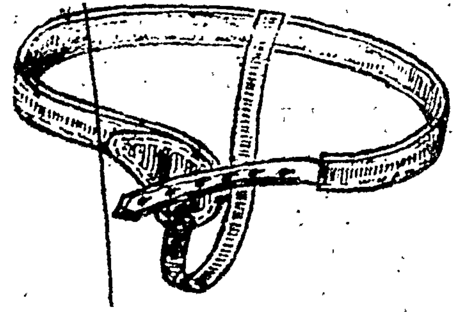
बालवच तथा सरसों अथवा सहंजने की छाल तथा सरसों का लेप करने से आन्त्रवृद्धि की शोथ नष्ट हो जाती है।



दांयी ओर की आन्त्रवृद्धि में लगाने वाली पेटी



बायीं ओर की आन्त्रवृद्धि में लगाने वाली पेटी



दोनों ओर की आन्त्रवृद्धि में लगाने वाली पेटी

(४) प्राकृतिक चिकित्सा–रोगी को चित्त लिटाकर उसकी कमर के नीचे एक पतला तकिया रख दें। ऐसा करने से कमर और पेट ऊंचे होंगे और छाती तथा सिर नीचे रहेंगे। अब फूले हुए स्थान को अंगुली से धीरे-धीरे दबाकर आंत को भीतर लावें। आंत के भीतर न जाने पर बर्फ की थैली आक्रान्त स्थान पर रखें। आंत शीघ्र ही ऊपर चली जायगी।

आंत के भीतर चले जाने के बाद आक्रान्त स्थान पर कालीमिट्टी की लपेट लगाकर कपड़े की पट्टी से बांध दें। ऐसा हर रोज प्रातः, सायं किया करें।

दर्द की जगह गर्म जल की सिकाई करें। मिश्री या चीनी का शर्बत पीने को दें। रोगी को कठोर शारीरिक श्रम करने से बचाये रखें। इन उपायों के साथ-साथ पेट को साफ करने के लिए एनीमा लगाया करें।

पथ्यापथ्य विचार–

पथ्य–रोगी को अधिक से अधिक आराम करना चाहिए। खाने-पीने के प्रति हल्का भोजन देना चाहिए। हरी सब्जी, पालक, मूली, दलिया, खिचड़ी, स्थानीय अभ्यंग स्वेदन आदि पथ्य हैं।

अपथ्य–लालमिर्च, आलू, मटर, गोभी, व तैल के पदार्थ, अधिक चाय पीना, धूम्रपान करना, अधिक सामान उठाना, सहवास आदि न करना चाहिए। निदान में कहे गये सभी कारणों का परित्याग करना चाहिए। आनूपमांस, दही, उड़द की दाल, मिष्ठान, दूषित अन्न, घोड़ा-साइकिल आदि बाहन, अतिमार्ग गमन, ठूंस-ठूंस कर भोजन करना, उपवास आदि कर्म नहीं करना चाहिए।



आंत्रवृद्धि की विभिन्न सफल चिकित्सा

वैद्य छगनलाल समदर्शी आयुर्वेद रत्न
समदर्शी मल्टीपर्पज हास्पीटल, रायपुर (झालावाड़) राज०

चिकित्सा-

पंचकर्म चिकित्सा-घृत, तेल, अथवा वसा द्वारा अथवा तीनों को मिलाकर उचित मात्रा में रोगी को पिलाकर स्नेहन करना चाहिए।

स्नेहन के बाद विरेचनार्थ एरण्ड तैल और दुग्ध का उचित मात्रा में रोगी के बलानुसार प्रयोग करना चाहिये अथवा रासना, मुलहठी, गिलोय, एरण्डमूल, बरियारा, अमलतास, गोखरू, परवल के पत्र तथा अडूसा के पत्र का क्वाथ ४ सेर, कल्क एक पाव, एरण्ड तेल १ सेर लेकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर उचित मात्रा में रोगी को विरेचनार्थ देवें।

निरूहबस्ति के लिये वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ कल्क तथा स्नेहों के योग देने चाहिए।

अनुवासन के लिये मुलहठी के क्वाथ एवं कल्क के योग से सिद्ध तैल का उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। अनुवासन बस्ति देने से पहले रोगी को मांसरस के साथ भात खिला देना चाहिए।

आन्त्रवृद्धि के स्थान पर वातनाशक द्रव्यों से स्वेदन एवं लेपन करना चाहिए।

औषधि चिकित्सा-पुनर्नवा १ तोला, दशमूल के १० द्रव्य, क्षीर, विदारी, असगन्ध, एरण्डमूल, शतावर, कुश, दाभ, शर, काश, ईख तथा चरदल की जड़ें १०-१० पल लेकर एवं कूटकर ४ द्रोण जल में पकावें। अष्टमांश रहने पर छान लेवें और उसमें गुड़ ३० पल, एरण्ड तेल १ प्रस्थ, अजवायन तथा सोंठ २-२ पल मिलाकर पाक करें। जब अवलेह तैयार हो जाय तब उतार लेवें। यह सुकुमार नामक सुन्दर रसायन उचित मात्रा में सेवन करने से आन्त्रवृद्धि को नष्ट कर देता है।

समुद्र शोष विधारा (Avrgyreia Speciosa) की जड को गोमूत्र के साथ खूब महीन पीसकर थोड़ा सैंधानमक गरम कर सूजन पर अर्थात् उतरी हुई आंत पर लेपकर १ घण्टा बाद लेप को साफ कर महुआ के तेल में दसवां भाग कपूर मिला कुछ गरम कर मालिश करें। पश्चात् निर्गुण्डी की पत्तियों को पानी में उबालकर उस पानी मे सैंधानमक मिलाकर उसमें कपडा तर कर आन्त्रवृद्धि के चारों तरफ सुहाता हुआ सेक करें। साथ ही साथ रोगी को छोटी हर्र की रेंडी के तेल में गर्म कर हर्र यदि १० तोला हो तो उसमें काला नमक और अजवायन २-२ तोला, हींग भुनी १ तोला मिलाकर खूब महीन कर ६-६ माशा प्रातः-सायं क्वाथ कर ऊपर से १ पाव गरम दुग्ध में गोमूत्र और शक्कर प्रत्येक २।। तोला मिलाकर पिलाया करें। इसके लगभग ८-१० दिन तक विधिपूर्वक प्रयोग करने से आंत उतरना बन्द हो जाती है और उतरी हुई आंत अपने स्थान पर आ जाती है।

रास्ना, मुलहठी, एरण्ड की जड़, खरैटी और गिलोय प्रत्येक ४-४ माशा लेकर एक पाव जल में क्वाथ विधि से क्वाथ करें। २५ ग्राम जल शेष रहने पर छान लें। इसमें एक तोला एरण्ड तैल मिलाकर रोगी को हर सायंकाल में पिलावें। आन्त्रवृद्धि में अतिशीघ्र लाभ मिलेगा।

अर्क अजवायन २० बूंद तथा अर्क पोदीना २० बूंद, को २ औंस जल में मिलाकर रोगी को प्रातः-सायं देवें। साथ ही शशिशेखर रस और अन्त्रवृद्धिहर गुटिका की २-२ गोलियां मिलाकर प्रातः-सायं भोजन के १ घण्टे बाद सेवन करावें। रात्रि को सोते समय व प्रातः उठते समय सैंधवादि तेल की आक्रान्त स्थान पर मालिश कर तम्बाकू के पत्ते पर थोड़ा सा सैंधवादि

---

१. आन्त्रवृद्धिहर गुटिका की निर्माण-विधि-शुद्ध सिंगरफ ५ तोला, एलुवा ३० तोला, गूगल, लालबोल, कांटेदार करंज के बीज, नौसादर, कालानमक, हींग इन छः चीजों को ५-५ तोला लें। इस सबको बारीक पीसकर चूर्ण बना लें, फिर घीकुंवार के रस में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

इन कृमियों के कारण-मितली जी मिचलाना, हृल्लास, लालास्राव (Salivation) अजीर्ण, अरुचि, मूर्छा, छर्दि, ज्वर, आनाह (Flatulence) कृशता, छींक (Sneuzing) तथा पीनस (नासागत रोग Sinusiti) हो जाते हैं।

२. रक्तवाही सिराओं में रहने वाले रक्तज कृमि-यह कृमि अति सूक्ष्म, पादरहित, गोल रूप ताम्रवर्ण के अति सूक्ष्मता के कारण आंखों से न दिखायी पडने वाले होते है। यह संख्या में ६ होते है। ये सभी कुष्ट या उसके सदृश्य रोगों (त्वचा-वात विकारों) को उत्पन्न करते है।

३. पुरीषज कृमि-यह पक्वाशय में उत्पन्न होने वाले, नीचे की ओर गतिशील तथा अधिक वृद्धि करने पर आमाशय की ओर बढ़ने पर मुख-डकार, श्वास में विष्ठा के समान गन्ध की अनुभूति; आकार में गोल, छोटे या लम्बे, वर्ण में कुछ काले-पीले-सफेद-नीले। ये संख्या मे पांच होते हैं। विरुद्ध मार्गों मे पहुचने पर मलभेद, शूल, मलावरोध, कृशता, रूक्षता, पाण्डुता, रोमांच, अग्निमांद्य तथा गुदा में खुजली (कण्डू) उत्पन्न करते हैं।

●● इन कृमियों के वर्गीकरण में (कफज तथा पुरीषज कृमि से साम्यता वाले) आन्त्रिक कृमि या आंतो में रहने, उत्पन्न होने वाले कीड़ों (इन्टैस्टाइनल वॉर्म्स और पैरासाइटस) का जिनको उदरगत या आन्त्रगत कृमि भी कहा जाता है वर्तमान प्रसग में प्राय: रोगियों में पाये जाने से अधिक महत्व है।

चिकित्सा-वॉर्म्स की चिकित्सा भोजन से प्रारम्भ करनी चाहिए। रोगी को हल्के आहार पर रखें। भारी भोजन शीघ्र नहीं पचता है। मधुर, मीठे पदार्थों का निषेध उत्तम रहता है। सूत्रि-कृमि वयस्कों की अपेक्षा शिशुओं को अधिक पीडित करते हैं क्योकि वह दुग्ध और स्वीट्स पर अधिक निर्भर रहते हैं। साथ ही उनके भोजन Bitteror pungent substances का आहार में अभाव रहता है। करेला, नीम पाउडर एवं लहसुन की अल्प मात्रा भोजन में अधिक उपयुक्त रहती है। विडंग (Vidanga) जिसे इम्बेलिया रिबिस Embeliaribes कहते हैं एवं पलाश (Palasa) जिसे बूटिया मोनोस्पर्मा Buteamonosperm कहते हैं। चिकित्सा की प्रमुख आयुर्वेदिक औषधियां हैं। इन वृक्षों के बीज पाउडर रूप में (The seeds of thise plants are used in Powder form) उपयोग में लाये जाते हैं। इन पाउडरों को १ चम्मच की मात्रा में दिन मे ३ बार १ कप गरम जल के साथ दिया जाता है। यह रोगी की आंतों को साफ रखते हैं और नियमित रूप में हल्का दस्तावर (Laxatives) प्रभाव रखते हैं। The Boweld of the patient should be kept clean and he should be given laxatives-requlariy.

इन अवस्थाओं में घरेलू काम आने वाली हरिद्रा (Haridra) जिसे सरकूमा लोंगा Curcuma Longa कहते हैं। चिकित्सा मे विशेष लाभकर होती है। इस वृक्ष के Rhizame के पाउडर को १ चम्मच की मात्रा मे दिन में ३ बार १ कप दूध के साथ दिया जाता है। नियमित रूप से लेने पर यह आंतो में कृमियों के लिये प्रतिकूल वातावरण (An unfavourable atmosphere) तैयार करती है। यह वार्म्स मल के साथ जीवित या मृत अवस्था में निकलते है। हरिद्रा पित्ती और बुखार में भी अहिम भूमिका निभाती है।

पर्सीकायमानी perseekayamani (खुरासानी अजवायन Khurasani Ajwani) पाउडर रूप में २०० मि० ग्रा० की मात्रा में रोगी को १० ग्राम गुड़ खाने के बाद देना चाहिए। यह औषधि थायमोल के रूप में उपलब्ध है और राउण्ड वार्म्स मे विशेष उपयोगी है। एरीका नट (Areca nut) शुष्क रूप में लेकर सिल पर पीसकर लाइम जूस के साथ देने से सूत्र-कृमि (Thredwoms) के निराकरण में अन्य औषधियों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। तुम्बी (Thumbi) ftls Seeds of round bitter gourd कहते है, २०० मि० ग्रा० की मात्रा में मक्खन के साथ लेने से आन्त्र-कृमियों का नाश होता है।

अन्य औषधियो में कमीपालक (Kamipallak) चूर्ण १-२ ग्राम की मात्रा में एव किरमानी अजवाइन चूर्ण १-३ ग्राम की मात्रा में मिलाकर दिन में ३ बार ली जा सकती है।

आधुनिक चिकित्सा के अन्तर्गत-मैवेण्डाजोल (Mebandazole) आन्त्र-कृमियों की सर्वसुलभ औषधि है। बीर्मन (Wormin) इडीबेण्ड (Idibend) आदि अनेकों मे १० मि० ग्रा० प्रमाण से यही औषधि है। मात्रा प्राय: एक गोली दिन में ३ बार, ३ दिन तक। आवश्यकता पडने पर एक सप्ताह के बाद पुन: औषधिक्रम चलाया जा सकता है। स्फीति-कृमि (Tape worms) में उक्त औषधि की मात्रा अधिक है। मिश्र उपसर्ग (Conbined infastation) में यह सर्वोत्तम कृमि नाशक

आन्त्रकृमि तथा उसकी विभिन्न चिकित्सा

डा० जहानसिंह चौहान आयुर्वेद-वारिधि
मु० पो०-ठठिया (फर्रुखाबाद) उ० प्र०

मनुष्य के महास्रोत्स या उदर विशेषकर आन्त्र में विभिन्न प्रकार के कीड़े (कृमि) पाये जाते हैं जो कि अधिकतर बालकों में मिलते है। इनको आन्त्रगत कृमि (इन्टैस्टाइनल वर्म्स) भी कहा जाता है और पाचन-संस्थान से सम्बन्धित इसी वर्ग के कृमियों की प्रधानता व्यवहारिक रूप से है। कृमि से तात्पर्य प्राय: पेट के कीडों या उदरकृमि (इन्टैस्टाइनल वर्म्स) से है। इस श्रेणी में चार प्रकार की कृमियां आ सकती हैं-१. अंकुशमुखकृमि (Hookworm) २. गण्डेपद कृमि (Roundworms) ३. स्फीत कृमि (Tapeworm) और ४. सूत्रेकृमि (Thread worm)। इन सबका निवास स्थान महास्रोत है।

रोग कारण-अजीर्ण में ही भोजन करना, मधुर अम्ल पदार्थों का अधिक सेवन करना, पतले पदार्थों का अधिक सेवन, गुण का अधिक सेवन करना, व्यायाम न करना या शारीरिक श्रम से वचना, दिन मे अधिक सोना, परस्पर विरुद्ध या असंयोज्य पदार्थों का सेवन आदि कृमियों की उत्पत्ति में सामान्य निदान या हेतु रहते है।

ये सभी कारण आन्तरिक कृमि में साक्षात् अप्रत्यक्ष तथा सहायक उत्पादक रूपों के हैं, जो कृमियों के उत्पन्न होने में आवश्यक महत्व रखते है। इस प्रकार कृमियों की उत्पत्ति में उक्त कारणों से कृमि जनन तथा वृद्धि के लिये अनुकूल परिस्थिति अनिवार्य रूप से रहती है। कृमियों की वयस्कों तथा बालकों सभी आयु वर्ग के व्यक्तियों में उत्पत्ति का देश, काल, जलवायु अर्थात् विशिष्ट स्थान में निवास का साक्षात् तथा मल प्रभाव प्रमुख साधारण कारणो में है, जैसे यह आमतौर पर देखा जाता है कि किसी प्रदेश या स्थान विशेष में जाकर अस्थायी निवास करने तथा उस जगह के रहने वालों को प्राय: विशिष्ट या विभिन्न प्रकार के कृमियों से ग्रस्त रहना पडता है। इसलिये किसी विशिष्ट क्षेत्र की अधिकतर पाये जाने वालों या आम बीमारियो (प्रिडोमिनेन्ट डिजीज इन्सीडेन्स) में कृमि या उदर के कीडो का परिगणन होता है और इसकी वस्तु स्थिति की अनेक उदाहरणों से व्यवहारिक रूप में पुष्टि हो सकती है।

उपरोक्त कृमि/पैरासाइटस के ओवा (Ova) मनुष्य शरीर में अपना रास्ता बनाते हैं (भोजन पानी के द्वारा) और आंतों में बृद्धि करते हैं। आयुर्वेद के अनुसार अधिक मीठा और Sour foods के खाने से आंतें पैराइटस की वृद्धि में अनुकूल वातावरण तैयार करती हैं।

लक्षण एवं चिन्ह (Signs and Symptoms)- संक्रमण (Infestation) के लक्षण एवं चिन्ह विभिन्न प्रकार के वर्म्स से विभिन्न प्रकार के अलग- अलग उत्पन्न होते हैं। हुक वर्म्स रक्त को चूसते हैं और होस्ट में रक्ताल्पता (Anaemia) पैदा करते हैं। इनसे उदर मे तीव्र पीड़ा उत्पन्न होती है साथ ही मलावरोध (Constipation) अथवा अतिसार (Diarhoea) भी। राउण्ड वर्म्स खासी (Cough) वमन (Vomiting) मितली (Nausea) एवं भूख की कमी (Loss of appetite) के लिये उत्तरदायी (Responsible) होते है। यह वर्म्स मल (Stool) के द्वारा मृत या जीवित (Dead or alive) अवस्था में निकलते हैं। माइक्रोस्कोप। सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखे जा सकते हैं और कुछ नग्न आंखों द्वारा इन से रोगी में पित्ती (urticaria) ज्वर और खांसी (Bronchitis) उत्पन्न होती है।

सामान्य लक्षण आयुर्वेद के अनुसार-

आन्त्र कृमि (Intistinal worma) के सामान्य लक्षण हैं ज्वर विवर्णता शरीर के प्राकृत रंग में परिवर्तन, शूल, हृदय रोग, अंगों की शिथिलता, भ्रम, भोजन में अरुचि (Anorexia) तथा अतिसार, जिनसे कृमि-विकार का संकेत मिलता है। विभिन्न कृमि में दो के अनुसार लक्षणों में वैशिष्ट्य रहता है-

१- कफ की अधिकता से- आमाशय में उत्पन्न होने वाले कफज-कृमि वृद्धि को प्राप्त करके नीचे और ऊपर की ओर घूमते हैं। उनमें कुछ चमडे की मोटी तांत (पृथुबुहन) तथा कुछ केचुओं (गण्डूपद) की तरह लम्बे एवं कुछ नये धान्याकुर के समान छोटे सूक्ष्म, श्वेत या ताम्राभ वर्ण के कृमि। ये संख्या में सात होते हैं।

३-४ वर्ष के बालक १/२ चम्मच दिन में ३ बार प्रतिदिन भोजनोपरान्त।

५-६ वर्ष के बालक १ चम्मच दिन में २ बार प्रतिदिन भोजनोपरान्त।

७-१२ वर्ष के बालक १ चम्मच दिन मे ३ बार प्रतिदिन भोजनोपरान्त।

१२ वर्ष से ऊपर-२ चम्मच दिन में २ बार प्रतिदिन।

सूत्र-कृमि में-७ दिनो तक औषधि सेवन करानी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर ७ दिन बाद पुनः दोहराई जा सकती है।

गोल कृमियों में -२०।। किलो शरीर-भार पर ६ चाय चम्मच औषधि।

विशेष ज्ञातव्य-औषधि सुबह ६ बजे देनी चाहिए।

मलावरोध की स्थिति में औषधि प्रयोग के ४-५ घंटे बाद लवण वाला जुलाब (मैगसल्फ) देना चाहिए।

उपयोग-यह सूत्र-कृमि एवं गोल कृमियां का नाश करती है।

७. कृमिहर सीरप (नि० वैद्यनाथ)

मात्रा-१/२-१ चम्मच दिन मे २ वार ७ दिनों तक।

उपयोग-यह बच्चों के पेट के गोल तथा लम्बे कृमियां को नष्ट करती है।

८. बेबीडोल (Babydol) नि० शिव फार्मा

मात्रा-शिशु १/२ चम्मच दिन मे २ बार, दूध के साथ।

बालक-१ चम्मच, दिन में २ वार, दूध के साथ।

उपयोग-उदर-कृमि, दांत निकलते समय के कष्ट आदि। अवस्थाओं में उपयोगी है।

आयुर्वेदिक इन्जेक्शन चिकित्सा-अनार (बुन्देल खण्ड आयुर्वेदिक फा०)

वायबिडंग (बुन्देल खण्ड आयुर्वेदिक फा०)

यह दोनों इन्जेक्शन समस्त प्रकार के आन्त्र-कृमियो को नष्ट करते है। इनकी मात्रा १-२ मि० ली० पासपेशीगत हे। (लेखक की पुस्तक आयुर्वेद की पेटेन्ट औषधियो से साभार)

वर्म्स चिकित्सा सारांश में-

* For Tape Worms : Remove mucous from intestine by samudrak vircclan churna give low diet, milk etc. for two days. then give krimimugdar Rasa with triphaladi quath or vidang churana or Vidangsaravaleha quti followd by castor oil.

* Round worms : Tiktajirak churana Kirman churana Krinimugdar Rasa with Trifatadi quath or krimaghna tikdi.

* Threod worms Regulati the diet and in site upon salt with food. Internally gie Tonic pills or vidanga dyavaleha, after meals and samudrak-virccan churna in the morning.

कृमिनाशक एलोपैथिक पेटेन्ट औषधियां-

टेबलेट्स-

- एल्वेण्डाजोल/एल्वीजोल (खण्डेलवाल)
- एल्जाड Alzad (टाटा फार्मा)
- बेन्डेक्स (Bended.प्रोटेक)
- कम्बेण्ट्रिन (Combantrin - फीजर)
- इक्सपेण्ट (Expent टाटा फार्मा)
- केट्रेक्स (Ketrax -1 c 1)
- मीबाजोल (Mebazole-टोरेण्ट)
- मेबेक्स (Mebex - सिपला)
- मेण्डाजोल (Mendazole-विडल शायर)
- निकलोसान (Niclosan - विडल शायर)
- नोवर्म (Noworm-एल्केम)
- नबेण्ड (Nubend - कोप्रान)
- पायरमोएट (Pyrmoate tabs. -फ्रेको-इंण्डियन
- अल्बेन (Alben -मेज्डा)
- वर्मीसोल (Vermisol-खण्डेलवाल)
- वोमीवान (Womiban - ब्लू क्रोस)
- वीर्मन (Wormin - केडिला)
- जेण्टिल (Zentel & S. K. F. Co.)

औषधि मानी जाती है। पर इस औषधि का प्रयोग गर्भावस्था के प्रथम त्रिमास मे नही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्फीति कृमि की प्रधान औषधि निकलोसामाइड (Niclosamide) मानी गई है। इसे १ ग्राम प्रात: तथा फिर उतनी २ घण्टे बाद खाली पेट देते हैं। गण्डूपद (Rounel worm, Ascaris lumbricoides) के संक्रमण में पिपराजीन/पिपराजाइन (Helmacid आदि) मुख्य औषधि हैं।

मात्रा-४ ग्राम एक साथ रात्रि में अंकुश कृमि में लिवेमिसोल Livemisol (Devormis) आदि १२० मि० ग्रा० एक साथ प्रात: नाश्ते के बाद दें। वैफीनियम (एल्कोपार Alcopar) इसकी विशिष्ट औषधि है।

आहार चिकित्सा-(Diet)-रोगी को ऐसा आहार न दें जो कठिनाई से हज्म (digest) हो सके। अजीर्ण (Indigestion) कृमियों की वृद्धि में उपयुक्त वातावरण तैयार करता है। तिक्त (Bitter) आहार यथा Bullter gourd Neem flower एवं अन्य तिक्त पदार्थ ऐसे रोगियों में उपयुक्त रहते हैं। चीनी (Suger) और इससे निर्मित योगों का व्यवहार नही करना चाहिये। कृमि रोग की अवस्था में पत्तेदार आहार (Leafy Vegetables) का उपयोग करना उपयुक्त रहता है। हरिद्रा एवं लहसुन का उपयोग सभी प्रकार के आहार में पर्याप्त मात्रा में मिला होना चाहिए।

आन्त्र कृमि चिकित्या पेटेन्ट आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा-

पेट के कीडों के लिये निम्नलिखित औषधियां लाभ करती हैं-

१-कृमिघ्न कैप्सूल (नि० गर्ग वनौषधि भण्डार)

यह औषधी सब प्रकार के कृमियों को नष्ट कर उन्हें पेट से बाहर निकालती है। कृमियों के कारण उत्पन्न होने वाले उपद्रवों यथा पेट दर्द, वमन, मितली, अफारा, मलावरोध एवं रक्ताल्पता आदि विकारो को भी दूर करतीं है।

रोग की तीव्रवस्था में इसके साथ पलाश के बीजों का चूर्ण, १ ग्राम की मात्रा में रात को सोते समय पानी के साथ सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

कृमिघ्न केप्सूल की मात्रा-

वयस्क-२-२ कैप्सूल प्रात:, सायं जल के साथ।

बालक-१-१ कैप्सूल प्रात:, सायं जल के साथ।

साथ में विडंगारिष्ट ३-३ ड्राम भोजन के बाद।

२-कृमिघातनी केप्सूल (नि० श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन)

मात्रा-१-२ कैप्सूल दिन में २-३ बार, गरम पानी के साथ।

प्रयोग-सब प्रकार के उदर कृमियों का नाश कर कृमियों के कारण होने वाले उपद्रवों यथा, वमन, मितली, उपकाई उदर-शूल, अफारा, अरुचि, ज्वर आदि विकारों को दूर करता है।

३-उदर कृमि टेवलैट(नि० मेहता रसायनशाला)

मात्रा-२ -४ गोली, रात्रि के सोते समय।

उपयोग-समस्त प्रकार के उदर कृमियों की उत्तम औषधि है। यह सब प्रकार के कृमियों का नाश करती है।

४- वर्म्स क्योर टेबलेट- (Worms cure tablet नि० जनता फार्मास्युकटकल्स वर्क्स)

मात्रा-२-२ गोली रात सोते समय।

उपयोग-यह पेट के कीड़ों को बाहर निकालती है। सोते समय बच्चों के दांत किटकिटाना, विस्तर पर पेशाब कर देना एवं पेट-दर्द आदि मे हितकर है।

५-कृमिनल सीरप (Crumumill Syrup) नि० चरक फार्मास्युटिकल्स)

मात्रा-शिशु १५-२० बूंद दिन में ×३ बार ७ दिन तक।

बालक-१/२ चम्मच × दिन में ३ बार ७ दिनों तक।

वयस्क-१ चम्मच × दिन मे ३ बार ७ दिनों तक।

उपयोग-यह दवा गोल-कृमि, सूत्रकृमि, हुकवर्म, फीता-कृमि आदि आंतों के कृमियों को बाहर निकालती है। एवं कृमियों के कारण उत्पन्न उपद्रवों-दांत पीसना, अफारा, उदरशूल, अरुचि ज्वर, श्वास रोग, खुजली, पित्ती अनार्तव, इओसिनोफीलिया आदि में भी हितकर है।

आवश्यक होने पर इसका कोर्स १ सप्ताह बाद दोहराया जा सकता है।

६-पिंपराजीन सीरप(नि० डाबर)

मात्रा-१ माह से दो वर्ष के बालक १/२ चम्मच दिन में २ बार प्रतिदिन भोजनोपरान्त।

मलावरोध एवं उसका सफल उपचार

श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
मु० पो०-सीकर (राज०)

उदर रोगों की उत्पत्ति में मलावरोध प्रमुख हेतु बनता है-"मलवृद्ध्या प्रवर्तन्ते विशेषेणोदराणि तु।" शरीरस्थ अग्नि की रक्षा जीवन के लिए अनिवार्य है। किसी विद्वान् ने कितना अच्छा कहा है-

अस्तु दोषशतं क्रुद्धं सन्तु रोगशतानि च।
कायाग्निरेव मतिमान् रक्षन् रक्षति जीवितम्।।

मलावरोध पेट की इस अग्नि को अव्यवस्थित कर देता है। उदर रोगों की सम्प्राप्ति में कहा गया है कि अग्नि के मन्द होने पर उष्ण विदाही विरुद्ध और सड़े-गले आहार द्रव्यों का सेवन करने से उनका पाचन सम्यक् नहीं हो पाता। तब वात प्रधानदोष और पुरीष आदि संश्रित होते हैं। इससे ग्रहणी तथा अन्त्रधराकला के स्रोतों में विगुणता उत्पन्न होती है। संचित दोष प्राणपान को दुष्ट कर अग्नि को अधिक मन्द कर सम्पूर्ण शरीर में संचरण करते हुये स्वेदवह और अम्बुवह स्रोतों को अवरुद्ध कर ग्रहणी तथा अन्त्रधराकला के विगुण स्रोतों में स्थान संश्रय कर उन्हें दुष्ट करते हैं।

उदर रोगों का ही नहीं अपितु अन्य भी कई रोगों का हेतु यह मलावरोध बनता है। यहां तक कहा गया है-"सर्वे रोगा: मलाश्रया:।" अमेरिका के डा० जे० डब्ल्यू० विल्सन ने अपनी पुस्तक "दि न्यू हाइजिन" में लिखा है कि-"एक बार अमेरिका के डाक्टरों ने मलाशय में संचित मल की अवस्था की पूर्ण तत्परता के साथ खोज की। इस निमित्त उन्होंने लगभग २८४ शवों की परीक्षा की। ये शव विभिन्न रोगों के रोगियों के थे। डाक्टरों ने देखा कि उनमें से २५६ शवों की आंतें सड़े हुए मल से भरी थीं।"

मलावरोध से उत्पन्न होने वाले अनेक रोग हैं। मलावरोध के कारण रक्त-प्रवाह दूषित हो जाने के कारण पामा, कच्छू, दद्रु, कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रक्तचाप, स्वप्नदोष, अनिद्रा, पाण्डु, नेत्र-विकार, कर्णबाधिर्य, प्रतिश्याय, कास, श्वास, आमवात, दन्तवेष्ट, अर्श, मधुमेह, भगन्दर, अन्त्रपुच्छशोथ आदि व्याधियां भी मलावरोध से उत्पन्न हो सकती हैं। राजयक्ष्मा एवं उन्माद जैसी भयंकर व्याधियों को भी मलावरोध उत्पन्न कर देता है। स्त्रियों के श्वेतप्रदर व योषापस्मार रोग भी मलावरोध के दुष्परिणाम हैं।

खाये हुए भोजन को आमाशय से क्षुद्रान्त्र में पहुंचने में लगभग चार घण्टे लग जाते हैं और इतना समय ही उसे क्षुद्रान्त्र में रुकने में लग जाता है। उण्डुक में मल ९० प्रतिशत जलमय होता है। बृहदन्त्र में पहुंचते के बाद उपयुक्त जल ही मल में शेष रह पाता है। बृहदन्त्र कुण्डलिका (सीगमाइड़ फ्लेक्सजर) तक पहुंचने में भोजन को लगभग २६ घण्टे लग जाते हैं। इसके आगे मलाशय में मल आकर रुक जाता है। मलत्याग का समय आने पर मल के दबाव के कारण मलाशय की श्लेष्मकला में संवेदना होती है और प्रवृत्ति होकर मल गुदा द्वारा बाहर निकल जाता है।

वेगावरोध, अध्यशन, मिताशन, जलन्यूनता, अनिद्रा, अव्यायाम, दुर्व्यसन, मानसिक चिन्ता, शौचालय की अस्वच्छता, जराशोष, जीर्णज्वर और अन्त्र के रोग आदि कारणों से अपान प्रकुपित हो जाता है, उपयुक्त जल का मल में अभाव हो जाता है। तब अन्त्र की अनुलोमन गति (मोशन) एवं मलत्याग की प्रवृत्ति (सन्सेशन) में न्यूनता आ जाने से मल कठिन हो जाता है जो "मलावरोध" व्याधि को जन्म देता है।

पुरीष संग, विष्टम्भ, विड्ग्रह, विबन्ध, अल्पविट्कला और कोष्ठबद्धता, आदि नाम मलावरोध के लिए प्रयुक्त हुये है। मलावरोध मुख्यतया आनाह एवं उदावर्त नामक रोगो में पाया जाता है। आचार्य सुश्रुत पुरीषसंग, विष्टम्भ आदि से आनाह की अभिन्नता स्वीकार करते हैं अत: पुरीषानाह मलावरोध नामक व्याधि कहा जा सकता है। वैसे तीव्र मलावरोध को ही शास्त्रोक्त पुरीषानाह नाम दिया जाना उपयुक्त है। अन्यथा चिरस्थायी आधिक्येन पाया जाने वाला मलावरोध सामान्य पुरीषानाह के

सीरप (Syrup or Suspension)-उपरोक्त सभी पेटेन्ट औषधियो के एक-दो को छोडकर सभी सीरप एवं सस्पेन्शन आते हैं।

नोट-●● उपरोक्त सभी पेटेन्ट औषधियां समस्त प्रकार के उदर-कृमि में लाभकर हैं।

आन्त्र कृमि नाशक आयुर्वेदिक औषधियां-

नाम औषधि	उपयोग	मात्रा
❒ कृमि कुठार रस	समस्त उदर-कृमियों मे	२५० मि० ग्राम० उचित अनुपान से।
❒ कीटारि रस	उदर-कृमि के निष्कासनार्थ	३०-६० मि० ग्रा० आयु० बल के अनुसार।
❒ कृमिमुद्गर रस	सब प्रकार के कृमि नाशनार्थ	१२०-३६० मि० ग्रा० आयु के अनुसार।
❒ कीटमर्द रस	सब प्रकार के कृमियों मे	१२०-२४० मि० ग्रा० आयु के अनुसार।
❒ कृमिशार्दूल चूर्ण	सब प्रकार के उदर-कृमियों में	३ ग्राम गरम जल के साथ।
❒ कृमिकालानल रस	कृमि-विनाशनार्थ	६०-१२० मि० ग्रा० आयु के अनुसार।
❒ कृमिरोगरि रस	सब प्रकार के कृमि रोग में	१२०-२४० मि० ग्रा० आयु० के अनुसार।
❒ कृमिविनाशन रस	सब प्रकार के कृमि रोग में	१२०-२४० मि० ग्रा० आयु के अनुसार।
❒ बिडंगादि लौह	सब प्रकार के कृमि रोग में	२४० मि० ग्राम विडंग क्वाथ से।
❒ कृमिघातनी वटी	सब प्रकार के कृमि रोग में	४८० मि० ग्रा० गरम जल से।
❒ पारिभद्रावलेह	सब प्रकार के कृमि रोग में	२-३ ग्राम आयु के अनुसार।
❒ त्रिफलाघृत	सब प्रकार के कृमि रोग में	विवरण-पत्र के अनुसार।
❒ मुस्तादि रस	सब प्रकार के कृमि रोग में	आयु० बल के अनुसार।
❒ कृमिहर सीरप	सब प्रकार के कृमि रोग में	विवरण-पत्र के अनुसार।
❒ पारासीयादि रस	सब प्रकार के कृमि रोग में	१।। ग्राम शहद के साथ।

आन्त्र-कृमि पर अन्य सामान्य योग-

- ❒ ढाक के बीज, इन्द्र जौ, वायबिडंग, नीम की छाल और चिरायता का चूर्ण उचित मात्रा में गुड़ के साथ।
- ❒ ढाक के बीज + अजवाइन का समभाग चूर्ण उचित मात्रा में गुड़ के साथ।
- ❒ १०० ग्राम गरी (नारियल) दूध के साथ १ सप्ताह तक लेने से।
- ❒ कड़वी तुम्बी के बीजों का चूर्ण मट्ठा के साथ।
- ❒ अजवाइन के चूर्ण में सैंधानमक मिलाकर प्रात:काल।
- ❒ वायबिडंग का चूर्ण शहद में मिलाकर।
- ❒ खुरासानी अजवाइन बासी पानी के साथ। पहले थोड़ा गुड़ खाने के बाद प्रात:काल औषधि लें।
- ❒ गुड़ के साथ कबीला का चूर्ण देने से उदर-कृमि निकल जाते हैं।
- ❒ बिडंगारिष्ट का सेवन कराने से उदर-कृमियां नष्ट हो जाती हैं।
- ❒ पलाश के बीजों का चूर्ण मट्ठा में घोलकर अथवा शहद में मिलाकर दें।
- ❒ कच्ची सुपारी का चूर्ण ३-६ ग्राम तक अथवा मट्ठा में घोलकर पिलावें। इससे पेट के कीड़े निकल जाते हैं।
- ❒ कच्ची सुपारी का चूर्ण २ ग्राम की मात्रा में नीबू स्वरस के साथ दें।
- ❒ पलाश के बीज + अजवाइन का समभाग चूर्ण २-३ ग्राम की मात्रा में उचित अनुपान से दें।
- ❒ पलाश के बीज, वायबिडंग, चिरायता, इन्द्र जौ और नीम की छाल-बराबर भाग का चूर्ण २-३ ग्राम की मात्रा में समान भाग गुड़ मिलाकर।



६. **तैल विरेचक**-एरण्ड तैल, जैतून तैल, जयपाल तैल, अलसी तैल, मार्त्तीक (लिक्विड पैराफीन) तैल आदि।

७. **लावणिक विरेचन**-सैंन्धवलवण, अर्कलवण, नारिकेललवण, कल्याणलवण आदि।

८. **पारदीय विरेचन**-इच्छाभेदीरस, अश्वकंचुकीरस, जलोदरारि रस, रूक्मिशरस, नाराचरस, मृतसंजीवन रस, शोथोदरारि रस आदि।

विरेचक द्रव्यों की कार्मुकता के अनुसार विरेचन के दो भेद किये जा सकते हैं-

१. सामान्य विरेचन २. तीव्र विरेचन।

आयुर्वेद शास्त्र में अधोभाग संशोधन (विरेचन) के चार भेद पाये जाते हैं-

१. **अनुलोमन**-उदर की पाकक्रिया पर बिना बाधा डाले मलबन्ध को भेदन कर अधोनयन करने वाले द्रव्य को अनुलोमन कहा जाता है। इसे सर भी कहा जाता है-"सरोऽनुलोमन: प्रोक्त:" -सु०सू० ४६

कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्वा बन्धमधो नयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी।।

-शा० प्र० खं० अ० ४

२. **स्रंसन**-यह पाचन-क्रिया पर प्रभाव डालकर पच्यमान मलादिकों को पकाये बिना ही मलबन्ध को तोडकर अधोनयन करता है-

पक्तव्यं यदपक्त्वैव क्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।
नयत्यध: स्रंसनं तद्यथा स्यात् कृतमालक:।।

-शा० प्र० खं० अ० ४

३. **भेदन**-यह पाचन-क्रिया का अवरोध कर, आंत्र की पुरस्सरण क्रिया को बढ़ाकर बद्धमल को बलपूर्वक बाहर निकालता है-

मलादिकमबद्धं वा बद्धं वा पिंडितं मलै:।
भित्वाध: पातयति तद् भेदनं कटुकी यथा।।

-शां० प्र० खं० अ० ४

४. **विरेचन**-यह पाचनक्रिया, शोषणक्रिया का अवरोध कर द्रवत्स वृद्धिकर आन्त्र की पुरस्सरण क्रिया को बढ़ाकर जोर से रेचन करता है-

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।
रेचयत्यपि तत् ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा।।

-शा० प्र० खं० अ० ४

भगवान् चरक ने विरेचन के तीन विभाग किये हैं। अनुलोमन को मृदुविरेचन, स्रंसन को सुखविरेचन तथा भेदन एवं विरेचन को तीक्ष्ण विरेचन कहा गया है। आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने अपने औषधि विज्ञान शास्त्र में सामान्य विरेचन एवं तीव्र विरेचन दो भेद कर अनुलोमन और स्रंसन को सामान्य विरेचन के अन्तर्गत तथा भेदन और विरेचन को तीव्र विरेचन के अन्तर्गत लिखा है। सामान्य मलावरोध या चिरस्थायी मलावरोध में सामान्य विरेचन उपयोगी है तथा तीव्र मलावरोध में तीव्र विरेचन उपयोगी होता है।

१. **सामान्य विरेचन**-यदि आंतों में रूक्षता, खरता बढ़ी हुई हो तो स्नेहन स्वेदन के पश्चात् यथावश्यक प्रयोग काम में लेने चाहिए-

१. ग्वारपाठे का कल्क २ तोला, कालानमक २ रत्ती, मिलाकर सबेरे, शाम खाली पेट देना चाहिए, धीरे-धीरे, इसकी मात्रा बढ़ानी चाहिए। ५ तोले तक मात्रा कर देनी चाहिए।
-वैद्य सहचर भाग २

२. सामान्य विरेचनार्थ अमलतास की फली का गूदा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। मार्त्तीक (पैराफीन) तैल का जितना अंश पच जाता है वह शरीर के लिए उपकारक नहीं होता और एरण्डतैल विरेचन के पश्चात् अन्त्र का आकुञ्चन करता है जिससे दूसरे दिन मलावरोध हो जाता है, ये दोनों दोष अमलतास में नहीं हैं। अतएव कहा है-

ज्वरहृद्रोग वातासृगुदावर्त्तादिरोगिषु।
राजवृक्षोऽधिकं पथ्यं मृदुर्मधुर शीतल:।।

-अ० हृ० क० २/३०

इसका गुलकन्द २० से ५० ग्राम तक दूध के साथ सेवन करना चाहिए। -श्री उदयलाल जी महात्मा

३. *सनामुकी मिषिद्राक्षा प्रत्येकं कोलसंमिता।*
क्वथिता धर्षयन्त्यर्शो विबन्धं शकृतामपि।।

-सिद्धभैषज्यमञ्जूषा ३/२/८

नाम से जाना जा सकता है। सभ्यता और भोज के संस्कारों के साथ इस रोग की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। अकेले अमेरिका में लगभग ५५ करोड़ रुपयों की मलावरोध नाशक दवाएं भिन्न-भिन्न नामों से बिकती हैं।

चिकित्सा-

यदि आमजन्य मलावरोध हो तो आमदोष निर्हरणार्थ वमन उपयोगी है। आमविकारों में लंघन का भी अत्यन्त महत्व है। वमन, लंघन के पश्चात् पाचन औषधि देनी चाहिए-शुद्ध हींग १ भाग, बच २ भाग, विड्नमक ३ भाग, सौंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरड़ ६ भाग, पुष्करमूल ७ भाग, कूठ ८ भाग मिलाकर चूर्ण यथावश्यक मात्रा में कवोष्ण जल से देवें (चरक० चि० २६/२२)।

अधिक मलावरोध में चरकोक्त वर्ति का प्रयोग भी हितावह है-

श्यामात्रिवृन्मागधिकां सदन्तीं-
गोमूत्रपिष्टां दशभागमाषाम्।
सनीलिकां द्विर्लवणां गुडेन-
वर्तिं करांगुष्ठनिभां विदध्यात्।।

-चरक० चि० २६/१२

शास्त्र में बस्तिकर्म (एनिमा) की बहुत प्रशस्ति गाई गई है। नीबू जैसी कोई क्षारयुक्त वस्तु को जल में मिला देने से इसकी उपयोगिता अत्यधिक बढ़ जाती है। पूर्ण वयस्क को लगभग डेढ़ किलो तक कवोष्ण जल चढ़ा सकते हैं।

पक्वाशय में मल अधिक समय तक रहने से अपानवायु मल में खरत्व, काठिन्य उत्पन्न कर देता है। अपानवायु पार्थिव प्रधान होने से खर गुणाधिक्य है। ऐसी स्थिति में जैतून के तैल की या अन्य कोई वातशमक औषधि सिद्ध तैल की पिचकारी देनी चाहिए।

मलावरोधनाशक विरेचक द्रव्यों का प्रयोग यथावश्यक करना चाहिए। विरेचक द्रव्य सामान्यतया उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, सर, व्यवायी एवं विकाशी गुण युक्त होते हैं। ये अपने गुण-वीर्य-प्रभाव के द्वारा शरीर से मल का निष्कासन अधोमार्ग से करते हैं। ये विरेचक द्रव्य अपने प्रभाव विशिष्ट से ग्रहणी आदि में स्थित द्रव्यों का पक्वाशय की ओर गति करवाते हैं। जिससे तत्काल [illegible] के पूर्व ही प्रवृत्त होने में समर्थ होते है।

आचार्य शार्ङ्गधर ने विरेचन को आभ्यन्तरशय शोधन के अन्तर्गत माना है किन्तु विरेचक द्रव्यों के [illegible], [illegible] तैलाभ्यंग और [illegible] सेवन आदि प्रयोग इसे [illegible] भी प्रदान करते है।

इस विरेचन का शोधन और पञ्चकर्म में ही नहीं अपितु चिकित्सा-क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि-

१. शारीर और मानसिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करने मे विरेचन विशेष महत्व रखता है।

२. पुरीषसंचय ही नहीं धातुगतमलों एवं दोषों को निकालने में विरेचन प्रमुख है।

३ विरेचन से पित्त की ही नहीं कफ व वात की भी शान्ति होती है। 'प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां सम्यग्विरिक्तस्य भवेत् क्रमेण'' के आधार पर विरेचन को विट्पित्तकफवातहर कहा जाता है।

४. रक्तभार को कम करने में विरेचन सहायक होता है।

५. शोथ कम करने के लिए रक्तवारि को धातुओं से खींचने में श्रेष्ठ है।

६. तापक्रम कम करने में सहायक होता है।

७. पुरीषवह स्रोतस ही इससे प्रभावित नहीं होता अपितु सभी स्रोतस इससे न्यूनाधिक प्रभावित होते है। एतावता पञ्चकर्म में अन्य कर्मों की अपेक्षा विरेचन साध्य व्याधियां सर्वाधिक हैं।

विरेचक द्रव्यों के कई प्रकार हैं-

१. मूलविरेचक-चित्रक, अपामार्ग, स्वर्णक्षीरी, दन्ती, त्रिवृत्, गुंजा, इन्द्रवारुणी आदि।

२. क्षीर विरेचक-स्नुहीक्षीर, अर्कक्षीर, सप्तपर्णक्षीर आदि।

३. त्वक् विरेचक-पूतिकरञ्जत्वक्, लोध्रत्वक्, रक्तलोध्रत्वक् आदि।

४. फल विरेचक-हरीतकी, विभीतक, आमलकी, एरण्ड, अमलतास आदि।

५. पत्रविरेचक-अमलतास, सनामुकी, पूतिकरञ्ज आदि।

८. विन्दुघृत-मदार का दूध ९६ ग्राम, थूहर का दूध २८८ ग्राम, हरड, कबीला, काली निशोथ, अमलतास का गूदा, सफेद अपराजिता, नीलिनी, निशोथ, दन्ती, शंखिनी चित्रक जड़ प्रत्येक ४८-४८ ग्राम लेकर १ प्रस्थ (७६८ ग्राम) घृत, ३ किलो ७२ ग्राम जल में पाक करें। तीव्र विरेचनार्थ १ बूंद घृत पर्याप्त है। इस घृत के जितने बूंद दिये जाते हैं उतने ही दस्त होते है।

-चक्रदत्त

९. *यः सप्तरात्रित्रितयं सुधायाः*
क्षीरेण चूर्णं मृदितं कणायाः।
लेटि प्रकामं मधुरं च भुङ्क्ते
तस्योदर व्याधिरुपैति नाशम्।।

राजमार्तण्ड (भोजकृत)

चिरस्थायी मलावरोध में जब आंतों की मांसपेशियां दुर्बल व निष्क्रिय हो जांय उन्हें शक्तिशाली बनाने के लिए स्नेहन के बाद निम्नलिखित व्यवस्था करना हितावह है-

प्रातः सायम्-

अग्नितुण्डीवटी २४० मि० ग्राम, विजयपर्पटी २४० मि० ग्राम, दशमूलषट्फलघृत १० ग्राम, कवोष्ण दुग्ध २५० मि० ली० ऐसी १-१ मात्रा देवें।

भोजनोत्तर-

कुमार्यासव २५ मि० ली०, द्राक्षारिष्ट २५ मि० ली० समान जल मिलाकर देवें।

नियमित विरेचन औषधियां लेने से आंतों की स्वाभाविक प्रेरक शक्ति नष्ट हो जाती है। विदग्धाजीर्ण होकर अन्त्रशोथ व प्रवाहिका तक होने का भय रहता है। सुतरां यथाशक्य इन विरेचक औषधियों से पृथक् रहकर आहार-विहार पर ही विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिससे ऐसी दारुण व्याधियों का प्रादुर्भाव ही न होने पावे। एवं उत्पन्न व्याधियां भी सहज में ही नष्ट हो जावें।

यदि विकृति बृहदन्त्र के आरम्भिक भाग में हो और मल वहीं संचित रहता हो तो अवश्य विरेचक औषधि प्रयोग अनिवार्य है। विरेचन मृदु, क्रूरकोष्ठों का विचार कर देना चाहिए-

पित्तेन मृदुकोष्ठः स्यात् क्रूरो वातकफाश्रयात्।
मध्यमः समदोषत्वाद् योज्या मात्राऽनुरूपतः।।

दोषों के अनुसार रसकल्पना भी आवश्यक है-

कषायमधुरैः पित्ते विरेकः कटुकैः कफे।
स्निग्धोष्णलवणैर्वायोरप्रवृत्ते च पाययेत्।।

कतिपय उपयोगी योग इस लेख में उधृत किये गये हैं फिर भी स्वबुद्धि से कल्पित करने में भगवान् चरक का यह निर्देश है-

स्वबुद्ध्यैव सहस्राणि कोटीर्वापि प्रकल्पयेत्।
बहुद्रव्यविकल्पत्वाद्योगसंख्या न विद्यते।।

-चरक० क० १२/५०

भैषजकल्पनांक (धन्वन्तरि) के आयुर्वेद महत्तापरिचायक सम्पादकीय अंश को उधृत करना भी गौरवज्ञानार्थ मैं समीचीन समझता हूं-

जब हम "नान्यौषध भूत किञ्चिदस्ति जगत्" ऐसा मानकर चलते हैं तो इसका स्पष्ट अर्थ है संसार में उत्पन्न किसी भी द्रव्य का उपयोग हम औषधि के रूप में कर ले सकते हैं। संसार के सब पदार्थ हमारे द्वारा सुसंस्कृत होकर उपकार के लिए हमारी पुष्टि के लिए, हमारी वेदना शान्ति के लिए, हमारी रोग से निवृत्ति के लिए, हमारी योग प्रवृत्ति के लिए, हमारी आयु को चिरंजीवनी करने के लिए, हमारे बल को बढ़ाने के लिए, हमारे ओज की वृद्धि के लिए और हमारे वर्ण को सुन्दर करने के लिए हमारे व्यवहार में लाये जा सकते हैं। जिस दिन से यह विचार हमने स्मरण किया तभी से हमारी भैषज्य कल्पना का क्षेत्र अति विस्तृत और विशाल बन गया।

-आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी

योगों के वर्णन के उपरान्त अब कुछ मलावरोध नाशक आहार का वर्णन उपयुक्त होगा-

१. चोकरयुक्त आटे की रोटी-

चोकर में आंतों की सक्रियता के लिये प्राकृतिक उत्तेजन (स्टूमुलेंट) है। इसके साथ इसमें विटामिन "बी" पाचनप्रणाली को उपयुक्त बनाने हेतु एवं नाडीमंडल हेतु खनिज लवण होते है। प्रत्येक अन्न के छिलको में मलावरोधनाशिनी प्रचुर शक्ति होती है। चना भिगोकर नमक तथा कुछ अद्रक मिलाकर खाना भी लाभदायक है।

सनाय ८ ग्राम, सौंफ ८ ग्राम, द्राक्षा ८ ग्राम का क्वाथ मलावरोध नष्ट करने में श्रेष्ठ है।

४. सैन्धव, सनाय, शिवा (हरड़ की छाल), सौंठ और सौंफ प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण बनालें। ३ ग्राम से ६ ग्राम तक गरम जल से दें। -सि० भै० मणिमाला

५. गुलाब के पत्ते, सैंधानमक, सांभरनक, सफेद जीरा, कालाजीरा, जौखर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सौंठ, मिर्च, पीपल, फुलाया हुआ टंकण, इलायची दाने प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम सनाय १४० ग्राम। इन सबका चूर्ण ३ ग्राम से ६ ग्राम तक देवें।

-सिद्ध भेषज मणिमाला

६. तरुयादिकषाय-गुलाब के फूल १ तोला, सनाय १ तोला, सौंफ १ तोला और मुनक्का २ तोला लेकर सबको बिना कूटे ही रात को २० तोला जल में भिगोदें। सबेरे पकाकर पांच तोला जल बाकी रहे तब उसमें १ तो० शर्करा (यूनानी तुरंजबीन) या आधा तोला मिश्री मिलाकर कपड़े में छानकर पिलावें। इससे २-३ दस्त बिना कष्ट के साफ हो जाते हैं। -सिद्धयोग संग्रह

७. पंचसम चूर्ण-हरीतकी, त्रिवृत्, शुण्ठी, पिप्पली, कालानमक समान लें, ३ ग्राम से ६ ग्राम तक दें।

-शार्गंधर संहिता

८. त्रिफला ३ तोला, अजवायन १ तोला, सैंधानमक १ तोला लेकर चूर्ण करलें। ३ माशे से १ तोला तक गर्म जल या दूध से देवें। -श्री डा० जहानसिंह चौहान

९. *क्षीरेणैरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वा सकृत्।*
ज्योतिष्मत्याः पिबेत्तैलं पयसा वा दिने-दिने।।

-वृन्दमाधव

१०. *पुटितं भावितं लोहं त्रिवृत्क्वाथैरनेकशः ।*
उदावर्तहरं युञ्ज्यात्समितं वा यथाबलम्।।

-रसेन्द्रचिन्तामणि

११. *तिल्वकस्य कषायेण कल्केन च सशर्करः।*
सघृतः साधितो लेहः स च श्रेष्ठो विरेचने।।

-चरकसंहिता कल्प १०

तीव्र विरेचन-

१. सुखविरेचनवटी-जमालगोटे के बीज को फोड़कर उसकी मींगी की दो दाल करलें। ऐसी २६ दालों को रात को एक कलईदार पात्र में उबलते हुए पानी में डालकर रातभर ढांककर रखदें। सबेरे दालों को हाथ से मसलकर जल से धोकर, खरल में डालकर उनको खूब घोटें। दाल अच्छी तरह पिस जाने पर उसमें दो तोला सोंठ का कपड़छन चूर्ण मिलाकर, जल से ३ घण्टा मर्दन कर, २-२ रत्ती की गोलियां बना सुखाकर, रखलें। १-२ गोली ठण्डे जल से दें।

-वैद्य श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी

२. श्रेयसीवटी-एरण्डतैल में भुनी हुई छोटी हरड़ ६० ग्राम, उत्तम कालानमक १२० ग्राम, घृत में अच्छी प्रकार भुना हुआ जमालगोटा १८० ग्राम तथा ३६० ग्राम पुराना गुड़ इन सबको यथाविधि कूट-पीसकर ४-४ ग्रेन की गोलियां बनालें। १-२ गोली ठण्डे जल से दें।

-सिद्धभैषजमणिमाला

३. त्रिवृदादिगुटिका-निशोथचूर्ण २ भाग, पिप्पलीचूर्ण ४ भाग, हरीतकी ५ भाग इन सबके समान गुड़ लेकर ६ ग्राम की गोलियां बनालें। एक गोली कवोष्ण जल या दुग्ध से दें।

-भैषज्यरत्नावली

४. रुक्मिशरस-१ भाग जयपाल ५ भाग हरीतकी चूर्ण को स्नुहीदुग्ध में मर्दित कर चणक प्रमाण गुटिका बनालें। १-२ गुटिका शीतल जल से देवें। -रसेन्द्रसारसंग्रह

५. नाराचरस-पारद १ भाग, टंकण १ भाग, मिर्च १ भाग, गन्धक २ भाग, पिप्पली २ भाग, शुण्ठी २ भाग, इन सबके समान जयपाल मिलाकर २४० मि० ग्रा० की गोलियां बनालें। एक गोली ही विरेचनार्थ परियाप्त है। -रसेन्द्रचिन्तामणि

६. विश्वतापहरण रस-शुद्ध पारद, ताम्रभस्म, निशोथ, शुद्ध गन्धक, कुटकी, शुद्ध जमालगोटा, छोटी पीपल, शुद्ध कुचला और बड़ी हरड़ का दल ये सब द्रव्य समभाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली कर उसमें ताम्रभस्म तथा अन्य औषधियां का सूक्ष्म चूर्ण मिला, धतूरे के पत्तों के स्वरस में एक दिन तथा भांगरे के स्वरस में सात दिन मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। १-२ गोली जल से दें। -योगरत्नाकर

७. उसारेरेबन्द २० ग्राम, निशोथ, शंखभस्म, सोंठ, शुद्ध जयपाल, इन्द्रायण बीज मज्जा ५-५ ग्राम लेकर वस्त्रपूत चूर्ण करें। खरल में मर्दनकर २५० मि० ग्रा० दवा कवच में भरलें। २ कवच गर्म दुग्ध से सेवन करायें।

-हकीम नत्थूराम जी तायल (सुधानिधि-कैप्० अंक)

नाभिगत प्रमुख रोग और उनका उपचार

डा० जहानसिंह चौहान, आयुर्वेद-वारिधि
मु० पो०-ठठिया (फर्रुखाबाद)

नाभि उदर की अनेक नस-जालों का एक मूल है। ठीक नाभि के नीचे कुछ वाम-पार्श्व में घड़ी की भांति एक नाड़ी चलती रहती है। इसके अपने स्थान से हट जाने पर एवं बालकों में नाभि के रोग प्राय: असम्यक् नाड़ी कल्पन के कारण उत्पन्न होते हैं। नाभिलोच्छेदन के समय यदि पूरी सावधानी न बरती गई, सूत्र या नाड़ी काटने के लिये प्रयोग में लायी गई कैंची, ब्लेड या चाकू एवं वस्त्र आदि में किसी तरह की गन्दगी या संक्रमण रह गया तो व्रणयुक्त नाड़ी दूषित हो जाती है। यह देखा गया है कि यह दोष नाड़ी के द्वारा यकृत् या रक्त में पहुंचकर ज्वर, वमन, प्रवाहिका, कामला आदि रोगों को उत्पन्न कर देता है।

नाभि-पाक

यह रोग बच्चों में विशेषकर देखने को मिलता है। इसमें नाभि के दूषित होने से प्राय: उसमें पाक उत्पन्न हो जाता है और उसमें सूजन आ जाती है। नाभि पाक की उचित चिकित्सा न करने से ही अन्य रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिये चरक एवं वाग्भट् ने इस क्रम में प्रथम नाभिपाक का ही उल्लेख किया है-

तस्यचेन्नाभि: पच्येत तां लोध्रमधुक प्रियङ्गुसुरदारुहरिद्रा कल्पक सिद्धन तैलेनाभ्यज्यात्, एवामेव तैलौषधानां चूर्णयेत्।
-चरक शा० ८/४४

चिकित्सा-यदि नाभि पकने लगे तो लोध, मुलैठी, प्रियंगु, देवदारु और जल्दी के कल्क से विधिपूर्वक बनाये हुए तैल का अभ्यंग करें। तैल सिद्ध करने वाले इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण का पके हुए भाग पर अवचूर्णन करें।

वृद्धवाग्भट्ट ने भी लगभग ऐसा ही कहा है-

यष्टीलोध्र निशाश्यमाकल्क पक्वेन सेचयेत्।

नाभि पाके तु तैलेन तच्चूर्णैश्चवचूर्णयेत्।।

-अ० सं० उ० २/१३४

अर्थात् मुलैठी, लोध, हल्दी, एवं काली निशोथ-इनके कल्क से तैल पकाकर उसी से परिषेक करें और इन्हीं वस्तुओं के चूर्ण को लगावें।

नाभि पाक के प्रयुक्त अन्य सरल योग-

१. गर्म पानी में वस्त्र डुबो-डुबोकर नाभि को साफ करें और सेकें। तत्पश्चात् वैसलीन और घृत समान मात्रा में थोड़ी सी हल्दी का बारीक चूर्ण मिलाकर इस का फाहा नाभि पर रखकर पट्टी बांध देते हैं। ऐसा करने से नाभि पाक शीघ्र नष्ट हो जाता है।

२. नाभि को दिन में २-३ बार त्रिफला क्वाथ, न्यूग्रोधादि गण क्वाथ पंचवल्कल क्वाथ अथवा पोटेशियम परमेंगनेट के जल से अथवा कार्बोलिक लोशन से धोना चाहिए। तत्पश्चात् ऊपर से मुर्दासंख, रसौत और कबीला को बारीक पीसकर नाभि पर छिड़कना चाहिए। अथवा बोरिक एसिड मरहम लगाना चाहिए। अथवा घृत गर्म करके लगाना चाहिए और ऊपर से पट्टी बांधनी चाहिए।

३. नाभि पाक पर माजूफल पानी में घिस कर लेप करें। अथवा पीपल की छाल पीसकर घी में मिलाकर नाभि पर लगावें। तुरन्त लाभ मिलेगा।

नाभिनाल की जीवाणुमयता

नाभिनाल विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं के लिए सबसे अधिक सुग्राह स्थान होता है। नाभि में जीवाणु संक्रमण से स्थानीय पूतिता (Local Sepsis), पूतिजीवरक्तता (Septicaemia), नवजात धनुस्तम्भ, प्रतिहारी-शिरा घनास्रता (Portal vein thrombosis) या पर्युपर्याशोथ पेरीटोनाइटिस आदि विकार उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है जो बालक के लिये प्राणघातक सिद्ध होती है। इस प्रकार की जटिल समस्यायें कभी-कभी उत्पन्न होती हैं। प्राय: दोष नाभि अथवा उसके आसपास तक ही सीमित रहता है।

२. पत्रशाक-

पत्रशाक ताजे एवं कच्चे सेवन करने चाहिए, पत्रशाकों में रेशादार दुष्पाच्य भाग वहुत होता है यह अवशिष्ट मल को बाहर निकालने मे सहायता करता है। शाकों में बास्तूक, तण्डुलीय, पालक, [illegible], शलजम, मूली और मेंथी उपयोगी हैं। पालक की कच्ची पत्तियों को बिना पानी डाले ही सिल पर कुचल कर उसका रस निकाल २५० ग्राम लगभग पीने से पेट साफ होता है। इसका सेवन प्रातःकाल करना चाहिए। काली गाजर की पत्तियों का रस पीना या शाक बनाकर खाना भी लाभप्रद है। टमाटर में सेल्यूलोज होता है, अतः यह भी मलावरोध में पथ्य है। फास्फोरस का भण्डार करेला भी इस व्याधि में उपयुक्त है। पत्रशाक को अधिक उबालना, तल-भुन कर अनेक मिर्च-मशालों में मिलाकर सेवन करना इनकी उपयोगिता को नष्ट करना है।

३. दुग्ध-

दुग्ध विरेचक होने से पुरीष तथा वायु के अवरोध को नष्ट कर उन्हें प्रवृत्त करता है। स्निग्ध एवं उपलेपक होने से अन्त्र को भी स्वस्थ बनाता है। यदि श्लेष्मकला व्रणित हो तो उसका भी रोपण कर देता है।

दुग्ध के गुणों में "पुरीषे ग्रथिते पथ्यं" कहा गया है। चरक चि० ३/१६७ में "बद्धप्रच्युतदोषं वा निरामं पयसा जयेत्" कहा गया है।

४. तक्र-

पुरीष और वायु के अनुलोमन हेतु तक्र अम्ल रसयुक्त एवं सैन्धव लवण सहित उपयोग में लेना चाहिए। चरक चि० १४/८४ में वर्णनानुसार रूक्ष (जिसका स्नेहांश निकाल लिया गया हो) तक्र कफ के शमन में हितावह है। यह तक्र महास्रोतस स्थित कफ का ही शमन करता है, श्वाससंस्थान स्थित कफ का नही।

५. फल-

फलों में लवण तथा अम्लता प्राकृतिक रूप में होने के कारण मलावरोध को हटाने में फल सर्वश्रेष्ठ हैं। प्रत्येक युवक-मनुष्य को २४ घण्टों में ४०० से ५०० ग्राम तक फल खाने चाहिए। आयु, ऋतु और पाचन-शक्ति के अनुसार फलों की मात्रा निश्चित की जाती है। भोजन से १-२ घण्टे बाद फल खाना लाभदायक है।

पोटेशियम, एल्ब्युमेन तथा सोडियम क्लोराइड, फास्फोरस, लौह आदि विद्यमान् होने से अंगूर उपयोगी है। सौ ग्राम अंगूर खाने से ४५ कैलोरी ऊर्जा (Energy) प्राप्त होती है। ग्लूकोज शर्करा अंगूर में सर्वाधिक होती है। भोजन में एक घण्टे बाद नींबू, नमक और कालीमिर्च डालकर अमरूद खाने से मलावरोध की शिकायत नहीं रहती। नीबू और साइट्रिक एसिड तथा पोटास, खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है और यूरिक एसिड के कारण यह अत्यन्त पाचक है। एक नीबू काटकर रात को ओस में रख दें। सबेरे इसकी शिकंजवीज वना लें। इससे मलावरोध दूर होता है। रात को दो-तीन अंजीर भिगोकर चांद की चांदनी में रख दें। प्रातः उनको खाकर दूध, पानी से भी लाभ होता है।

प्रातःकाल बिना और कुछ खाये १० दाने काजू और ५ दाने मुनक्का खाने से मलावरोध नहीं होता। प्रातः १०० ग्राम टमाटर का रस नित्य पीना भी अत्यन्त लाभप्रद है। टमाटर का रस आंतों में जमे मल को काटकर आंतों की सफाई में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है। प्रातः खाली पेट दो सेब दांतों से काटकर खाना भी अत्यन्त हितकारक है। इसी भांति नाश्ते से पूर्व दो बड़े, पीले, पके संतरों का रस भी पीना लाभप्रद होता है।

पपीता आंतों की सफाई करने में अद्वितीय है। यह उनमें पाचक क्षार का प्राकृतिक स्तर बनाये रखता है।

मलावरोध से पीड़ित रुग्ण को जल भी पर्याप्त पीना चाहिए। जल की न्यूनता से आहार का पाक और शोषण सम्यक् नहीं हो पाता है। फ्रान्स में एक कहावत है कि "आधी दुनियां के लोग अपनी कब्रें दांतों से खोदते हैं"। अतः प्रत्येक मनुष्य को उपयुक्त आहार पर पूर्णतया ध्यान रखने की नितान्त आवश्यकता है। उपवास या लंघन को परमौषध कहा गया है। मलावरोध के रोगी को अधिक उपवास तो ठीक नहीं, प्रारम्भ में २ दिन का और बाद में साप्ताहिक उपवास अवश्य करना चाहिए।



औषधि चिकित्सा- 'चरक' ने नाभिगत रोगों की चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त का निर्देश करते हुए कहा है-

तत्राविदाहिभिर्वातपित्तप्रशमनैरभ्यङ्गोत्सादन परिषकैः सर्पिर्भिश्चोपक्रमेत् गुरुलाघवमीमसीक्ष्य। -च० शा०, ८/४५

नाभि रोगों के प्रशमनार्थ अविवाही, वातपित्तशामक अभ्यंग, उत्साहन, परिषेक, घृतसेवन आदि चिकित्सा करनी चाहिए। इस चिकित्सा में दोषों की गुरुता एवं तारतम्यता का ध्यान रखना चाहिए।

उन्नत नाभि-नाल के गिर जाने पर भी यदि उभार हो तो बकरी की मैंगनी को जलाकर उसकी राख को नाभि पर छिड़कें।

अनुन्नत नाभि-जो नाभि उठी हुई न हो और उसमें व्रण बन चुका हो, तो ऐसी स्थिति में उस पर असगन्ध, अंजन, मुलैठी, बकरी और भेड़ की मैंगनी-इनके बारीक चूर्ण को घी में मिलाकर लेप करना चाहिए।

नाभि टलना

नाभि उदर की अधिकांश नस-जालों का एक मूल है। ठीक नाभि के नीचे कुछ वाम-पार्श्व में घड़ी की तरह एक नाड़ी चलती रहती है इसके अपने नियत स्थान से हटने पर जो व्याधि उत्पन्न होती है उसे नाभि टलना" कहते हैं। इसमें नाभि से ऊपर दर्द विशेष होता है। वमन के साथ दर्द होता है। आधुनिक चिकित्सा ग्रन्थों में नाभि टलने पर कोई वर्णन नहीं मिलता है।

कारण-१. असावधानी से चलते समय पांव विषम भूमि पर पड़ जाने से।

२. सहसा खड़े होकर अंगड़ाई लेने से।

३. ऊंचे स्थान से कूदने पर। ४. अज्ञानतावस पेट मलने से। अर्थात् शौचशुद्धि न होने पर कुछ लोग अपने पेट को मलने लगते हैं अथवा जरा-सा पेट भारी मालूम होने पर पेट को मलने लगते हैं, इससे नाभि अपने स्थान से हट जाती है। ५. यह भी देखा गया है कि कुछ रोगियों में अतिसार के पश्चात् अपक्व रस से दूषित वायु के तिर्यग्गामी होने से नाभि अपने स्थान से हठ जाती है। ६. दौड़ना, उछलना, फुटवाल, वालीवाल आदि खेल, घुडसवारी, बस या ट्रेक्टर में सफर करने से। खड्डे या नाली में कूदकर लांघना आदि के कारण झटका लगने से।

लक्षण-कारण भेद से लक्षण ३ प्रकार के होते हैं। जिसके प्राथमिक लक्षण अलग-अलग और अन्तिम लक्षण प्रायः समान होते हैं।-

१. इसमें नाभि नीचे को हटती है। पेट में मीठा-मीठा दर्द और दस्त अधिक आते हैं। प्रायः २४ घण्टे पश्चात् दस्तों में रक्त आना प्रारम्भ हो जाता है जो आगे चलकर बढता ही रहता है।

● नाभि टल जाने पर सर्वप्रथम अतिसार प्रारम्भ होता है और पतले दस्त आना प्रारम्भ होते हैं। प्रायः वातिक अतिसार के ही लक्षण मिलते हैं।

२. जब दांये या बांये नाभि हटती है तब उसके सभी लक्षण नं० १ के समान मिलते-जुलते हैं।

३. जब नाभि ऊपर को हटती है तब मीठा-मीठा दर्द होता है। दस्त नहीं आते हैं बल्कि कब्जियत की शिकायत रहती है।

४. अन्तिम लक्षण अन्तिम अवस्था में पहुंचने के पश्चात् तीनों दशाओं में रक्त मिले दस्त आते है। अंग-प्रत्यंग भारी तथा सारे शरीर में पीडा प्रारम्भ होती है। रोगी को प्रायः साधारण बुखार रहता है, शरीर में रक्त की कमी हो जाती है।

● रोगी के वार-वार दस्त जाने और कांखने से आन्त्र में व्रण बन जाते हैं जिससे दस्तों में रक्त आना प्रारम्भ हो जाता है।

कभी-कभी यह रोग मृत्यु का कारण भी बन सकता है-

जब रोग अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है तब रोगी की भूख प्रायः समाप्त हो जाती है। यदि रोगी कुछ खाता है तो वह पचता नहीं है और दस्तों के साथ बाहर निकल जाता है। इससे शरीर में रक्तरस की कमी हो जाती है, रोगी का यकृत् बढ़ जाता है अथवा शरीर में शोथ उत्पन्न हो जाता है। रोगी को निरन्तर बुखार बना रहता है, ऐसी स्थितियां मृत्यु का कारण बन जाती है।

कभी-कभी अतिसार भी नाभि टलने का कारण बन जाता है-

जिस प्रकार के अतिसार के पश्चात् नाभि टलती है उसी अतिसार के लक्षण देखने को मिलते है।

नाभिगत आन्त्रवृद्धि

जिन बालकों में नाभिपाक का रोग हो जाता है प्राय: उनकी नाभि कमजोर हो जाती है। यदि इस दुर्बलता के साथ-साथ दारुक कोष्ठबद्धता, निरुद्ध प्रकाश अथवा रोदनाधिक्य का शिकार हो जाता है तो बालक के पेट पर अधिक तनाव पड़ता है जिससे आंत का कुछ हिस्सा नाभि के छिद्र में से बाहर आने लगता है और नाभि ऊपर नीचे होती सी मालूम पड़ती है। वह धौकनी के समान फूलती-पचकती है। इस अवस्था को नाभिगत आन्त्रवृद्धि (Umbilical Hernia) कहते हैं।

नोट-बिना नाभिपाक के भी बालक को लगातार मलावरोध बना रहने से भी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

चरकोक्त नाभि-विकार

'चरक' के अनुसार असम्यक् नाडी-कल्पन से चार प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं।-

असम्यक् कल्पने हि नाड्या आयामव्यायामोत्तुण्डिता-पिण्डलिका-विनामिका-विजृम्भिकाबाधेम्यो भयम्।

-चरक शा० ८/४५

१. उत्तुण्डिता-इसमें नाड़ी लम्बाई चौड़ाई में उत्तुण्डित अर्थात् मोटी और बाहर को निकली हुई सी प्रतीत होती है।

२. पिण्डलिका-नाडी पिण्ड के आकार की गोल तथा कठिन हो जाती है।

३. विनामिका-नाड़ी किनारों से ऊंची शोथयुक्त तथा मध्य में दबी सी रहती है।

● बृद्धवाग्भट ने उत्तुण्डिता एवं पिण्डिलिका को उन्नत और विनामिका को अनुन्नत नाभि कहा है।

४. विजृम्भिका-नाभि का बार-बार घटना-बढ़ना अथवा ऊपर-नीचे होना।

● जिस समय बालक रोता है अथवा मल त्याग करता है, उस समय पेट पर भार पड़ने से नाभि फूल जाती है, अन्यथा दबी रहती है।

● वास्तव में चरकोक्त उक्त चारों विकार स्वतत्र विकार न होकर एक विकार नाभिगत आन्त्रवृद्धि के ही चार भेद प्रतीत होते हैं।

● बालक की आयु-वृद्धि के साथ-साथ नाभि का आयाम-व्यायाम तो नहीं बढ़ता पर आन्त्र की लम्बाई और मोटाई बढ़ती जाती है। आगे चलकर यह विकार स्वत: शान्त हो जाता है।

चिकित्सा-उपर्युक्त नाभि रोगों के निवारणार्थ अविदाही, वातपित्त नाशक अभ्यंग, उत्सादन, परिषेक या घृतपान द्वारा रोगी की चिकित्सा करनी चाहिए। किस दोष की गुरुता या लघुता है, इसका विचार करके रोगी की चिकित्सा करनी चाहिए।

नाभितुण्डी

वातेनाप्मापितां नाभि सरुजां तुण्डिऽसंसिताम्।
मारुतघ्नै: प्रशमयेत् स्नेहस्वेदोपनाह नै: ।।

सु० शा० आ० १०-४६

वातविकार के द्वारा शूल युक्त तुण्डिसंसक व्याधि वही है जिसे 'चरक' ने आयाम व्यायमे तुण्डिता कहा है। इन्हें दूर करने के लिये वातनाशक द्रव्यों से स्नेहन, स्वेदन तथा उपनाह का प्रयोग करना चाहिए। सुश्रुत ने भी इसमें वायु के अनुलोमन, स्नेहन, स्वेदन एवं उपनाह का उपदेश किया है।

● वायुदोष का शमन ही इसका प्रधान उपचार है।

नाभिनाल व्रण

कुछ केसिस ऐसे देखने को मिलते हैं जिनमे नाभिपाक बढ़कर नाभिनालव्रण (Umbilical fistula) का रूप धारण कर लेता है। इसमें मल-मूत्र तथा श्लैष्मिक स्राव के अंश की उपस्थिति मिलती है। साथ ही पीतक आन्त्रवाहिनी, येरेकस अथवा अंधकोष्ठ (Blind Pouch) की उपस्थिति का संकेत देती है। कभी-कभी बच्चों में नाभि के ठीक से न बंधे होने से विभिन्न प्रकार के विकार विशेषकर-क्षति, स्थानीय संक्रमण, पूति-जीवरक्तता (Septicaemia) या रक्तस्रावी उपसर्गों के कारण उससे रक्तस्राव आदि उपस्थित हो सकते हैं।

नाभि-पालिय

यह एक नाभिगत रोगों की रक्ताभ पर्विका या पिण्ड (Red Nodule) के आकार का प्रतीत होता है। जो पीतक -आन्त्रवाहिनी, यूरेकस या अन्ध-कोष्ठ का श्लैष्मिक अवशेष मात्र होता है।

२. औषधि चिकित्सा-औषधि-व्यवस्था इस प्रकार से की जाती है जिससे वायु शुद्ध हो और अतिसार की निवृत्ति हो।

वयस्कों के लिये-सूखे आंवले को मट्ठे के साथ पीस लिया जाता है और उसे नाभि के आस-पास लगा दिया जाता है। नाभि के भीतरी भाग में अदरख का स्वरस भर दिया जाता है। रोगी को २-३ घण्टे उत्तान पडा रहने देते हैं। यह कार्य दिन में दो वार करते हैं। रोगी को भोजन में दूध+साबूदाना दिया जाता है।

बालकों के लिए-अदरख का स्वरस गर्म करके रुई का फाहा तर करके नाभि के ऊपर रखकर एरण्ड या महुआ का पत्ता रखकर कपड़े से हल्का बांध देते हैं।

नाभि टलने में प्रयोगार्थ अन्य योग-

१. लघु गंगाधर चूर्ण मधु अथवा तक्र के साथ।

२. नाभि के आस-पास थूहर के दूध का लेप करने से।

३. बहेडे का क्वाथ १-१ घण्टे के अंतर से ३-४ बार पिलाने से।

४: नकछिकनी १ ग्राम चूर्ण को गुड के साथ खाने से।

५. मैनफल को पानी में पीसकर दोनो हाथों की हथेली और पैर के तलवों में गाढ़ा-गाढा लेप करने से।

६ अजवाइन, सोंठ, नकछिकनी-तीनो बराबर लेकर दूने गुड और घी मिलाकर खाने से।

नाभि से रक्तस्राव-

जन्म से दूसरे और पांचवे दिन के बीच में नाभि शिरा और उसकी शाखा बन्द हो जाती है। नाभि शिरा अब एक गोल रज्जु के समान हो जाती है दूसरे और पांचवे दिनों के मध्य नाभि धमनियां भी सूख जातीं है। चौथे और सातवें दिन के बीच नाल भी सूख कर गिर जाता है।

● उपर्युक्त क्रियायें प्रकृति के नियमानुसार होती हैं, परन्तु यदि इन क्रियाओं में कोई अनियमितता आ जाती है तो नाभि से रक्तस्राव होने लगता है।

कारण-

● नाभि शिरा या धमनी का समय पर बन्द न होना।

● फुफ्फुसियां धमनी फुफ्फुसों में जाने की अपेक्षा महा धमनी में जावें।

● बंधन ठोस न होने से।

चिकित्सा-

ज्ञान होते ही तत्काल रक्तस्राव बन्द करने का यत्न करना चाहिए।

१. फिटकरी ३६० मि० ग्रा०+जिंग सल्फेट २४० मि० ग्रा०+ १२० मिली लीटर पानी में डालकर नाभि को धोये। साथ ही माजूफल ४ ग्राम को.२५० मिली.लीटर भर पानी उबाल कर उसमें फिटकरी और कत्था का चूर्ण डालकर मोटे कपडे की गद्दी बना भिगो कई दिन तक नाभि पर रखें।

२. प्रवाल पंचामृत, प्रवाल पिष्टी, गोदन्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, सौवीरांजन भस्म, एलमफूलादि कैल्शियम प्रधान औषधियों का आन्तरिक प्रयोग।

३. पीली मिट्टी को बारीक पीसकर पानी में भिगोले और १ अंगुली मोटी तह बना पेडू पर रखने से।

४ आधुनिक चिकित्सा-पेडू पर वर्फ की पट्टी कैपेलिन अथवा क्लाउडेन का इन्जेक्शन १ मि० ली० की मात्रा में मान पेशीगत दे।



रोगी परीक्षा-

१. प्रथम परीक्षा-रोगी को तखत या समतल भूमि पर लिटालें। लेटने में सीधा उत्तान लेटें। सिर भी जमीन पर रहे (तकिया आदि न रखा जावे)। पैर सीधे और लम्बे रहें हाथ भी सीधे उभय पार्श्व-संलग्न रहें। सिर एवं गर्दन बिलकुल सीधे रहें। इस प्रकार लेटने के पश्चात् सारे शरीर को ढीला छोड़ दें।

अब चिकित्सक एक मोटा डोरा लेकर एक हाथ से एक शिरा पकड़ कर रोगी की नाभि पर रखें। इस प्रकार रोगी के नाभि और स्तन का अंतर मिल जाना है। इसके पश्चात् स्तन के ऊपर वाला हाथ डोरे सहित उठाकर दूसरे स्तन पर रखें। ऐसा करने से यदि नाभि अपने स्थान से हटी होगी तो नाभि और उभय स्तनों का अंतर बराबर (सम) न होकर नाभि और एक स्तन का अंतर कुछ कम और नाभि तथा दूसरे स्तन का अंतर कुछ अधिक होगा।

●● इस परीक्षा से यह ज्ञात होता है कि नाभि जिस ओर को टली होगी उसी ओर के स्तन एवं नाभि का अंतर कम होगा।

● अधिकांश रोगियों में नाभि वाम ओर को ही टलती है, पर कभी-कभी इसका अपवाद भी हो सकता है।

द्वितीय परीक्षा-यह परीक्षा रोगी के बिना खाये (भूखे पेट) ही की जाती है। इसमें रोगी को बिलकुल सीधे लिटा कर रोगी के बांई ओर बैठकर दाहिने हाथ की चारों अंगुलियों से नाभि को अदर की ओर दबाया जाता है। यदि नाभि अपने स्थान से नहीं टली होगी तो नाभि के नीचे भीतर एक नाडी चलती हुई (फुदकती हुई) प्रतीत होती है। इसके विपरीत यदि नाभि टली होगी तो उस नाडी का संचलन (फुदकना) नाभि स्थल से हटा मिलेगा।

चिकित्सा-

१. सामान्य चिकित्सा-१. प्रथम उपाय-अनुभवी व्यक्ति नाभि को मलकर खींचकर अपने स्थान पर बिठाल कर बांध देते हैं और कुछ भोजन करा देते हैं। ऐसा करने से नाभि बैठ जाती है।

२. द्वितीय उपाय-सूर्य नमस्कार अथवा मयूरासन करने से भी नाभि बैठ जाती है।

३. तृतीय उपाय-रोगी को उत्तान बिलकुल सीधा लिटा देते हैं। साथ ही उसे सारा शरीर ढीला छोड़ने को कहते हैं। तत्पश्चात् रोगी धीरे-धीरे अपनी श्वास नासिका से बाहर निकाले और पेट को भीतर की ओर जितना खींच सके खींचे। फिर धीरे-धीरे श्वास ले और पेट को ऊपर लावे। इस प्रकार ४-६ बार करने से नाभि यथा स्थान बैठ जाती है।

४. चतुर्थ उपाय-नाभि टलने पर दस्त आने लगते हैं। शौच जाने के बाद वहीं बैठे-बैठे डोरे की वत्ती बनाकर नाक में डालें, ऐसा करने से छींकें आ जावेंगी। यह क्रिया इस प्रकार से करें कि रोगी को २-३ छींकें अवश्य आ जानी चाहिए।

नोट-छींक लेते समय पेट पर किसी प्रकार का दबाव नहीं रहना चाहिए। ऐसा करने से नाभि यथास्थान बैठ जाती है।

गिलास लगाना-नाभि टलने में ग्लास का लगाना अधिक हितावह होता है। इससे अल्पमात्रा में स्वेदन भी हो जाता है। साथ ही ऊर्ध्वाकर्षण के कारण विचलित नाड़ी यथास्थान स्थित हो जाती है।

ग्लास लगाने की विधि-एक चीनी मिट्‌टी के प्याले के भीतरी भाग में किनारे से एक अंगुल छोड़ कर स्प्रिट पोत देते है। तत्पश्चात् दियासलाई से प्याले के भीतर आग लगा देते हैं। अब उस प्याले को उलटकर पेट के अभीष्ट स्थान पर तत्काल रख देते है। रखते समय इस बात की सावधानी रखते हैं कि प्याला चारों तरफ से पेट पर बराबर जमा रहे हैं। प्याले के बराबर जम जाने पर वायु का आवागमन रुक जाता है। जिससे प्याले की आग बुझ जाती है। प्याले के अंदर धुंवा भर जाता है। ५ मिनट के बाद एक ओर से प्याले को उठा कर धीरे से उठा लेते है।। प्याला हटने पर उदर का वह भाग ऊपर को उठा हुआ स्वेद से युक्त दीखने लगता है। कभी-कभी १-२ अंगुल का अंतर देकर लगातार कई बार गिलास लगाते हैं। जब कहीं जाकर लाभ मिलता है। ग्लास को एक स्थान पर ३-४ बार से अधिक नहीं लगाते है। आवश्यकता पडने पर ५-६ घंटे बाद पुन: प्रयोग करते है।

● यदि इस क्रिया के द्वारा नाभि को किसी स्थान की ओर खींचना आवश्यक होता है तब नाड़ी को स्पर्श करते हुए उस दिशा की ओर ग्लास रखते हैं। जिस दिशा की ओर नाडी को आकर्षित करना होता है।

नाभिभ्रंश (टलना) तथा उसका सफल उपचार

डा० ब्रह्मदेव प्रसाद सिन्हा
मु०-भंण्डागोर पो०-कोशी (नवादा) विहार

परिचय-नाभी पेट के ऊपर भाग में होता है, उसे धरणि भी कहा जाता है मगर यह रोग नाभि का नहीं बल्कि पेट में आंत्र का रोग है जो बच्चे को होने पर उसे लोग 'उझला' कहते हैं और बड़े को होने पर "नाल कबड़ना'' या नाभि का हटना कहा जाता है।

कारण-चलते समय पैर का ऊपर नीचे पड़ना, भारी बोझ उठाना, वृक्ष या ऊंची जगह से गिरना या कूदना, कठिन परिश्रम करना, खाने के बाद दौड़ना या कसरत करना आदि आंत पर वल पड़ने या झटका लगने से आंत नीचे खिसक जाती है। नाभी का आंत से सम्वन्ध रहने के कारण नाभी भी अपने स्थान पर नहीं रहती, इसलिए इसे नाभि का हटना कहा जाता है।

लक्षण-नाभि के हटने वाले रोगी को वार-बार पतले दस्त होते रहते हैं। पेट में गड़गड़ाहट की आवाज दूर से ही सुनाई पड़ती है। पैखाने में मल कम और पानी का अंश ज्यादा होता है। खाया भोजन ठीक से पचता नहीं। शरीर में हरारत और सुस्ती बनी रहती है। पेट दर्द तथा गैस बनने की शिकायत भी होती है। रोगी को कोई दवा फायदा नहीं करती। दिनों-दिन कमजोरी बढ़ती जाती है। ज्यादा दिन रोगी रहने से 'लीवर' खराव हो जाता है। पीछे कमला, जलोदर ऐसे असाध्य रोग होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

निदान-नाभी और पसली की हड्डी के बीच की दूरी में समानता होनी चाहिए मगर नाभी के हटने के कारण समानता नहीं रहती। इससे पीड़ित व्यक्ति को परीक्षा के लिए समतल जमीन या चौकी पर लिटा देना चाहिए। जिसमें पेट ऊपर हो। सुता या रस्सी से नाभी और पसली के वीच की दूरी बांये और दांये मिलानी चाहिए। अगर उनकी दूरी दोनों तरफ समान न रहे तो उसको यह रोग हुआ समझना चाहिए। जिस ओर की पसली से दूरी अधिक हो उस ओर की आंत पर विशेष प्रभाव पड़ा है ऐसा समझना चाहिए। ऐसा रोगी जिसे दवा फायदा नहीं कर रही है पैखाना चालू है उसकी परीक्षा अवश्य करें।

चिकित्सा-१. रोग से पीड़ित व्यक्ति को समतल जमीन पर, चटाई या बिछावन पर चित्त (पेट ऊपर के तरफ) लिटा देना चाहिए फिर जिस ओर की आंत विशेष प्रभावित हो उधर के पैर के तलवा में अपनी मुठी से जोर से चार-पांच बार चोट मारना चाहिए। जिधर कम हो उधर कुछ हल्के आघात करना चाहिए। फिर देखने वाला उसके दोनों पैर के 'फिसली' को अपने पंजे से कसकर बांध लेने के बाद रोगी को खड़े होकर १५-२० बैठक लगाने का आदेश देना चाहिए। इससे नाभि खुद अपने स्थान पर चली जायेगी। कमजोर रोगी पैर के 'फिसली' रस्सी या कपडे से बांधकर लाठी या दिवाल के सहारे उठ बैठ कर सकता है।

२. जिसकी नाभी हट गई हो उसे चित्त लिटा दें, दूसरा व्यक्ति रोगी के पैर पर खड़ा होकर पैर के दोनों अंगूठे को झुकाकर पकड़कर ऊपर उठाकर झटका देने से नाभी अपने स्थान पर सरलता से आ जाती है। मजबूत और जबान रोगी के लिए यह अच्छा उपाय है।

३. बच्चे की अगर नाभी हट गई हो तो मां अपने आंचल समतल जगह पर फैला कर बच्चे को उस पर सुला दें और दूसरी औरत की सहायता से उसे कपड़े में ही नीचे से ऊपर पांच सात बार उटल-पुलट करें। ध्यान रहे जिस ओर की नाभी विशेष अक्रांत हो वह भाग उलटे समय नीचे पड़े। अक्सर माताएं अपने बच्चे को ऐसा करती भी हैं।

४. जो रोगी मजबूत हैं वह आसन चिकित्सा भी कर सकते हे इसके लिए धनुरासन, मयूरासन शीर्षासन, भुजंगासन, पश्चिमोत्तासन आदि जिसके आंत की क्रिया विपरीत दिशा में हो सके फलदायी होता है।

नाभि भ्रंश और उसकी सफल चिकित्सा

वैद्य देवीदत्त शर्मा
ब-६४ शास्त्रीनगर, जोधपुर (राज०)

उपरोक्त विषय में आयुर्वेदिक व एलोपैथिक पद्धतियों में मतभेद है। एलोपैथिक वाले तो मानते ही नहीं कि नाभ टलना कोई प्रकार की व्याधि है परन्तु आयुर्वेद में इसका निदान व चिकित्सा दोनों ही हैं जो निम्न प्रकार हैं-

१. **परिभाषा**-नाभी व उसकी नाड़ी का स्थान छूट जाने को "नाभ-टलना'' कहते है। इसे कई जगह "धरण-टलना'' या पेचूटी-टलना'' कहते हैं।

२. **कारण**-ज्यादातर नाभी व संबंधित नाड़ी, भूखे पेट ज्यादा बजन उठाने में संतुलन बिगड़ने या चलते वक्त कहीं खड्डे या ऊबड़-खाबड़ स्थान में अचानक पैर पड़ जाने के कारण पेट में झटका लगने से अपना स्थान छोड़ देती है और पेट में दर्द होना शुरू हो जाता है।

३. **रोगी की स्थिति**-खंड २ की स्थिति बनने पर पेट में हलका-हलका व कभी-कभी तेज उदरशूल महसूस होने लगता है। यह दर्द उपचार न होने पर कई दिनों तक चलता रहता है। ऐसे मरीजों को दस्त भी शुरू हो जाते हैं। पैरों की पिंडलियों में झनझनाहट व कभी-कभी खिंचाव भी महसूस होता रहता है। खाने में भी रुचि कम हो जाती है व मरीज के चेहरे पर उदासी व मुर्झाहट सी छाई रहती है। कोई भी काम करने में रुचि नहीं रहती और न ही रोगी आराम से सो बैठ सकता है।

४. **(परीक्षा) निदान**-यह निश्चित करने के लिए कि रोगी को परेशानी नाभी की नाड़ी टलने से ही है, विभिन्न विधियां निम्न प्रकार हैं-

(अ) गांव वाले अक्सर नाभी के मध्य भाग पर एक डोरा (धागा) दबा कर वहां से सीने पर बने दोनों ओर के काले गोलाकार के मध्य ऊपर उठे हुए भाग जिसे स्तन की बीटली कहते हैं तक नापते हैं। यदि दोनों तरफ के नाप में भिन्नता पाई जाय तो उसे नाभी का टलना कहते हैं। परन्तु यह तरीका हर जगह सही तरीके से अपनाया नहीं जा सकता खास तौर से दोषपूर्ण शारीरिक आकृति वालों व स्त्रियों के बारे में।

(ब) दूसरा व मेरे विचारों में ज्यादा सही तरीका यह है कि मरीज को सीधा चित्त सुला दीजिये और आपके हाथ का अंगूठा मरीज की नाभी के ऊपर बीचोंबीच इस प्रकार रखिये कि अंगूठे का अगला हिस्सा मरीज के सिर की ओर रहे। अगर नाभी की नाड़ की धड़कन मालूम पड़े तो समझो नाभी नहीं टली है व सही स्थिती में है। नाभी पर धडकन महसूस नहीं होने की स्थिती में अंगूठे को थोड़ा सा दायें-बायें दबाकर देखें। नाड़ी की धड़कन इधर-उधर अवश्य महसूस होगी और यही नाभी के टलने का संकेत है।

५. उपचार-नाभी को सही स्थिती में लाने के लिए नीचे लिखे उपचार कारगर साबित हुए हैं-

१. यह उपचार अनेकों बार आजमाया हुआ है। व सही है। सात पत्ते मरूवे (यह हिन्दी पंजाबी व गुजराती में भी इसी नाम से जाना जाता है) के लेकर उसमें थोड़ा सा गुड़ करीब ५ ग्राम रगड़ मसल कर मिलादें व एक जीव मिल जाने पर मरीज को चटाकर सीधा सुलादें। बीस सांस लेने के बाद मरीज को दाई ओर करवट पलटने को कहें। इधर भी बीस सांस (श्वास) लेकर वापस सीधा सोने को कहें। थोड़ी ही देर में पेट में गड़गड़ाहट होकर नाभी यथा स्थान आ जायगी व पेट का दर्द बंद हो जायगा और मरीज को आराम मिल जायेगा। थोड़ी देर ऐसे ही पड़े रहने के बाद मरीज को धीरे-धीरे उठकर बैठने व कुछ खाने को कहें ताकि पेट में दबाव रहे।

२. मैनफल को कुटकी या कांजी के साथ पीसकर नाभी पर लेप करने से शूल मिटती है।

३. समुद्रफल के चूर्ण को दही के साथ खाने से भी नाभी (धरण, पेचूटी) ठिकाने आ जाती है। इससे पेट के कीड़े भी मर जाते हैं।



गुदभ्रंश और चिकित्सकीय अनुभव

वैद्य हरिशंकर शाण्डिल्य, भिषगाचार्य, डी०एस०सी० (आयु०) आयुर्वेद चक्रवर्ती
भरतपुर (राज०)

गुदभ्रंश का सामान्य परिचय-यह आयुर्वेद शास्त्रों में क्षुद्ररोग प्रकरण में वर्णित, सर्व सामान्य में भली प्रकार सुविज्ञात रोग है। दुर्वल प्रकृति के क्षीणकाल व दीर्घकालीन अतिसार पीड़ित बालकों में एवं अल्पश: युवकों-युवतियों में पाया जाने वाला कष्टप्रद रोग विशेष है। सामान्य जनता में इसे "कांच निकलना" नाम से जाना जाता है। अनुभव में देखा गया है कि जब तक रुग्ण को इसके कारण विशेष कष्ट अनुभव न होने लगे तव तक अभिभावक इसे लेकर चिन्तित नहीं होते। इसी प्रमादपूर्ण स्थिति के परिणामस्वरूप रुग्ण यदाकदा भयंकर संकट में पड़ जाता है और चिकित्सालय की शरण में आता है।

इस रोग में गुदा की दीवाल (श्लैष्मिक कला) या आंन्त्र के अन्तिम भाग का एक से चार पांच इंच तक हिस्सा गुदा-मार्ग से बाहर निकल आता है। जिसे पुन: अन्त: स्थापित करने के लिए कभी तो साधारण लोग प्रचलित उपाय कारगर हो जाते हैं पर कभी-कभी विशिष्ट चिकित्सकीय सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

जब इस रोग में मात्र श्लैष्मिक कला निकलती है तो इसे (Prolapse Ani) तथा जब पूर्णत: आन्त्र का भाग बाहर निकलता है तब इसे (Prolapse Recti) नामक आधुनिक संज्ञाओं से पुकारा जाता है। इसका प्रथम प्रकार प्राय: युवकों में, तथा द्वितीय प्रकार बालकों में शिशुओं में देखा जाता है।

आयुर्वेद शास्त्रवेत्ता महर्षि चरक एवं वाग्भट आदि ने इसे वातज अतिसार की लक्षणावली के अन्तर्गत "भृष्टगुद" तथा भृष्ट पायु" नाम से वर्णित किया है।

गुदभ्रंश के निदान-

१. रुक्ष एवं कृश शरीर कला रुग्ण यदि मलवेग की प्रवृत्ति एवं उदीरणार्थ तीव्र प्रवाहण करता है तो उसका अधरगुद बाहर निकल आता है। इसमें वायु का प्रकोप परिलक्षित होता है।

२. स्त्रियों में प्रसवकाल में अतिशय वेगपूर्वक प्रवाहण (गर्भ निष्क्रमणार्थ) करने के परिणामस्वरूप गर्भ के साथ-साथ गुदा भी बर्हिगत हो जाती है।

३. जीर्ण कोष्ठबद्धता, अर्श, उदावर्त्त (गैस बनना) मूत्रग्रन्थि (प्रोस्टेटाइटिस) तथा वातज प्रवाहिका आदि प्रवाहणयुक्त रोग।

४. मातृज व पितृज आदिबल प्रवृत्ति (हेरेडिटी)।

५. वातकारक आहार-बिहार सेवन।

गुदभ्रंश चिकित्सा-

इस रोग के चिकित्सात्मक क्रम को दो भागों में बांटा जा सकता है। १. सामान्य चिकित्सा। २. विशिष्ट चिकित्सा औषधापेक्षी।

सामान्य चिकित्सा-

सर्वप्रथम रोगी को निदान परिवर्जन का निर्देश करें। रोगी वातवर्धक आहार-विहार तथा मलत्याग के समय तीव्र प्रवाहण से बचाव का पूर्ण ध्यान रखें। मलावरोध न होने दें।

साथ ही रुग्ण व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य सुधार हेतु वल्य एवं पौष्टिक सुपाच्य आहार व औषधि कल्पों का सेवन करावें। यथा अश्वगंधारिष्ट, दशमूलारिष्ट, द्राक्षासव, च्यवनप्राश आदि।

गुदा भृष्ट होकर बाहर निकल आने पर उसे यथाशीघ्र स्वच्छ हाथ की सहायता से गुदा पर निर्मल विसंक्रमित गॉज का टुकडा लेकर सहज रूप से दवाते हुए अन्दर पुर्नस्थापित करदें। इस हस्तलाघव द्वारा गुदा अन्दर स्थिर हो जाता है विना किसी कठिनाई के और अग्रिम मलवेग प्रवृत्ति तक स्थिर रहता है। यह क्रिया जन सामान्य में बहुश: प्रयुक्त व प्रचलित है।

विशिष्ट चिकित्सा-

जब उक्त स्थिति की बार-बार पुनरावृत्ति होती रहे और गुदसंकोचनी पेशी व स्नायु दुर्वल होने पर भ्रंशित गुदा पूरी तरह

नोट-ऊपर की सारी क्रिया खाली पेट सुबह ही करनी चाहिए।

मंत्र चिकित्सा-मंत्र-"बांसा के चूर में, हेलल चोर, 'फलना' के नाला बान्धू, नाला बान्धू, पेट झरी बान्धू। दोहाई कामरूप कमक्ष या देवी, नैना योगिन, बीर हनुमान की दुहाई।''

नोट-रोगी के बाल या उसके बदन के कपडा में यह मंत्र पांच बार पढ़कर एक गांठ ओंझा की लगा देनी चाहिए। इस गांठ को २४ घंटा के बाद ही खोलनी चाहिए। यह मंत्र मुझे अपने दादा से प्राप्त हुआ था उनके पास इस तरह के रोगी बराबर आते थे और मंत्र पढ़ाकर बन्धन बन्धवा कर चले जाते थे। 'फलना' के जगह रोगी का नाम लेकर मंत्र पढ़ना चाहिए।

औषधि-लवण भास्कर चूर्ण के बरावर मीठा सोडा या सोडावाई कार्व चवन्नी भर जल के साय २४ घंटे में चार वार लेने से गाढ़ा पैखाना भोजन पच कर होने लगता है। दवा की व्यवस्था तब करनी चाहिए जब नाभी अपने स्थान पर होने के बाद भी अतिसार कम न हो। जिसकी जीभ खराब होने से दूसरी बीमारी हो गई हो तो बीमारी के अनुसार आयुर्वेदिक शास्त्र मे औषधि -मुस्तकारिष्ट, कुमारी आसव, सूतराज रस, अग्नि कुमार रस, जलोदरारिरस यकृत् प्लीहारि लौह, अग्नितुण्डी वटी आदि का सेवन लक्षणानुसार करना चाहिए।



● सम्पादकीय टिप्पणी-

नाभिभ्रंश पर मेरा अनुभव

हमारे चिकित्सा अनुभव से नाभिभ्रंश के कारण दुखी अनेकों रोगियों को हमने नीरोग किया है। निसंदेह नाभी हटने के बाद कई उदर-विकारों में तब तक लाभ नहीं होता जब तक नाभी अपने स्थान पर नहीं आ जावे। आम जनता में अनेक लोग नसें खींचकर तथा अन्य प्रकार से नाभी को स्थान पर लाने का प्रयास करते हैं लेकिन हमारा अनुभव है कि इन उपायों से लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना अधिक रहती है। हम नाभिभ्रंश में एक लेप रोगी को बता देते हैं जो १ माह तक नाभी के चारों ओर करना होता है लेप का योग इस प्रकार है-

उडद की दाल (काली) का आटा २०० ग्राम लेलें इसमें हल्दी, पिसी, मैथी तथा अजवायन सावुत, सैंधव नमक यह सभी १०-१० ग्राम तथा हींग चुटकी भर लेकर मिला दें अब इस आटे को पानी में गूंथकर रोटी बनालें तथा एक ओर सेक लें तथा एक ओर कच्ची रहने दें। कच्ची ओर से अण्डी का तैल चुपडकर गरम-गरम नाभी के चारों ओर बांध दें ऊपर से एक तौलिया रखकर गरम पानी की थैली रखदें जिससे उसकी गर्मी से रोटी गर्म बनी रहे। २५-३० मिनट तक यह सिकाई करनी चाहिए। इससे नाभी के चारों ओर फैला नाभि मण्डल-शोथ विहीन हो जाता है और नाभी अपने स्थान पर बनी रहती है।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

चमत्कारी प्रयोग रत्न है। निष्फलता की शंका ही न करें। स्वानुभव सिद्ध अनेकश: प्रयुक्त सिद्ध तैल है।

कतिपय अनुभव सिद्ध मुष्टि योग (घरेलू प्रयोग)

१. कोमलं पद्मिनी पत्रं य: खादेच्छर्करान्वितम्।
एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुद निर्गम:।।

(यो० र०) (भाव० प्र०)

अर्थात् कमल के कोमल हरे पत्र (पुष्पदल नहीं) लेकर छाया शुष्ककर सूक्ष्म चूर्ण बनालें, चूर्ण के समभाग मिश्री पीसकर मिलादें व सुरक्षित कांच की शीशी में रखें।

मात्रा-५ से १० ग्राम, १-२ बार शीतल जल से दें, लगभग दो माह तक।

गुण-गुदभ्रंश रोगहर विशिष्ट योग है। (अनुभूत)

२. कछुआ की पीठ की हड्डी को भली प्रकार प्रक्षालन कर साफ (धूल मिट्टी रहित) करलें। सुखाने के बाद, सूक्ष्म चूर्ण तैयार करें व सुरक्षित रखें।

प्रयोग विधि-निर्मित सूक्ष्म मसृण चूर्ण को आवश्यकतानुसार भ्रंशित गुदा पर भली प्रकार छिड़क कर दबादें और गॉज रखकर पट्टी बांध दें। अल्पावधि में ही कांच निकलना (गुदभ्रंश) बन्द हो जावेगा।

३. मलत्याग के उपरान्त गुदभ्रंश का रोगी यदि स्वमूत्र से गुदा प्रक्षालन करे तो कुछ समयोपरान्त गुदा के भ्रंश की स्थिति बनना समाप्त हो जाती है।

४. फिटकरी का फूला+ताजा लिहसोडे के फलों का कल्क बनाकर गुदा प्रदेश पर बांधने से कांच का निकलना बन्द हो जाता है।

एक अनुभव-एक बार एक युवा दम्पति मेरे पास चिकित्सालय में उपस्थित हुए। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नि को गुदभ्रंश की स्थिति है जो कि विगत दे माह से कष्ट दे रही है। पत्नि जो कि संकोचवश नीची निगाह से भूमि को देख रही थी, से मेरे द्वारा प्रश्नोत्तर काल में ज्ञात हुआ कि उन्हें यह व्याधि विगत दो माह पूर्व होने वाले प्रथम प्रसवकाल मे ग्रामीण महिला दाइयों द्वारा वेगपूर्वक प्रवाहण कराने के फलस्वरूप पैदा हुई थी। तभी से जब कभी गुदा बाहर आकर कंष्टपूर्ण व शर्मनाक स्थिति पैदा कर मानसिक तनाव का कारण बन रही है मैने उक्त महिला की स्थिति को भली प्रकार समझ निम्न प्रकार व्यवस्था प्रदान की। जिससे वह १।। माह की चिकित्सा के बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई।

प्रात: सायं-स्वर्णमाक्षिक भस्म २५० मि० ग्रा०,+ लौह भस्म २५० मि० ग्रा०,+ प्रतापलंकेश्वर रस २५० मि० ग्रा०, त्रिफला चूर्ण ३ ग्राम/१-२ दूध+ घृत से दिया गया।

दोपहर भोजनोत्तर-द्राक्षासव+बलारिष्ट+लोहासव+ दशमूलारिष्ट सब २००-२०० एम०एल० लेकर मृतसंजीवनी सुरा १०० मि० ली० मिला मिश्रण तैयार किया। उसमें से ३०-३० मि० ली० मिश्रण दिन में दो बार दिया।

गुदाप्रदेश बन्धनार्थ-श्लेष्मांतक घृत-(स्वानुभूत)-लिहसोड़े शुष्क १०० ग्राम, गौघृत २०० ग्राम। सर्वप्रथम घृत को मंदाग्नि पर कढ़ाई में गर्म किया तथा लिहसोड़ों को कूटकर (जौकुट चूर्ण) घी में जलकर कोयला हो जाने तक पकाया गया। पश्चात् खरल से भली प्रकार घुटाई कर श्लक्ष्ण मलहर-वत् तैयार किया गया। तथा मलहर में गॉज-पिचु भिगोकर भ्रंशित गुदा पर बांधकर लंगोटवत् पट्टी बांधने का निर्देश दिया गया।

इस प्रकार लगभग ७ सप्ताह के चिकित्साक्रम से रुग्णा को पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हुआ। जो कि अब तक स्वस्थ रहकर आयुर्वेद का गुणगान करती रहती है।

द्वितीय अनुभव-आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व एक महिला, उम्र ४२ वर्ष निवासी ग्राम खुडासा (भरतपुर) मेरे पास अपने जीर्ण रोग गुदभ्रंश + योनिभ्रंश की चिकित्सा हेतु उपस्थित हुई। उसकी करुण गाथा सुनकर मेरा चिकित्सक मन आन्दोलित हुआ और उसे कुछ दिन बाद परामर्श हेतु बुलाया। बीच की अवधि में सटीक चिकित्सार्थ विविध ग्रन्थों का अध्ययन व उचित चिन्तन कर चिकित्साक्रम तैयार किया।

रुग्णा के पुन: उपस्थित होने पर उसे पूर्ण लाभ का आश्वासन देते हुए, मूषक तैल निर्माण स्वयं करके प्रयोग करने हेतु सलाह दी गई तथा सामान्य बलवर्धनार्थ स्वर्ण बसन्तमालती १ रत्ती + प्रवाल पंचामृत सादा २ रत्ती + लौह भस्म शतपुटी १ रत्ती + नाग भस्म १ रत्ती + सितोपलादि चूर्ण २ माशा। ऐसी १ मात्रा प्रात:, सायं द्राक्षावलेह १५ ग्राम के साथ सेवन कराई गई। भोजनोत्तर दशमूलारिष्ट १५ मि० ली० + अशोकारिष्ट १५ मि० ली० जल ३० मि० ली० के साथ हिंग्वादिवटी २ गोली + रसोनादिवटी २ गोली १ मात्रा -२ बार सेवन हेतु निर्देश किया।

बाहर आ जाय और चिरकाल तक बाहर रहे तो गुरुत्वाकर्षण के सामान्य नियमानुसार उसमें रस रक्त का संचय होकर भ्रंशित भाग स्थूल हो जाता है और गुदद्वार के परिमाप की अपेक्षा वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। तब इसकी आकार-वृद्धि को घटाने व संकुचित करने का प्रयास किया जाता है।

इसके लिए सर्वप्रथम दशमूल २० ग्राम+हरड़ छाल १० ग्राम का क्वाथ बनाकर व छानकर उसके कवोष्ण जल से भ्रंशित व वर्धित गुदा का मृदुसेक करते हुए प्रक्षालन करें। पश्चात् नारायण तैल या शतावरी तैल, या बला तैल, या दशमूल तैल, आदि किसी वातहर तैल में एक स्वच्छ विसंक्रमित गॉज का टुकड़ा भिगोकर भ्रष्ट आन्त्र के ऊपर रखकर मृदु व सहज दबाव डालते हुए गॉज सहित आन्त्र (गुदा) को अन्दर ढकेल कर बैठा दें। विधिवत् स्थापित हो जाने पर गोफण (कृषक वर्ग का खेती रक्षक अस्त्र विशेष) के आकार का चमड़े का चौड़ा पट्टा जिसमें गुदाछिद्र प्रमाण एक छेद मध्य में किया हो, लेकर T. Shaped बेण्डेज के रूप में बांध दें। चर्म पट्ट में मध्य छिद्र होने से इसे बार-बार मलत्याग के समय खोलने की आवश्यकता न पड़ेगी और कदाचित् प्रवाहण वेग से गुदा के भ्रंश होने का खतरा भी टल जायेगा।

विशेष-यदि चर्म पट्ट की व्यवस्था न हो पावे तो दृढ़ वस्त्र जीन्स आदि से कार्य साधन किया जा सकता है। परन्तु इसे भी मध्य में छिद्रान्वित तो करना ही श्रेयस्कर होगा।

तत्पश्चात् यथावसर, मलावेग रहित विश्राम काल में प्रकुपित वायु शमन हेतु गुद-द्वार पर स्नेहन युक्त मृदु स्वेदन करते रहना मूलोच्छेद एवं उत्तम चिकित्सा परिणाम दृष्ट्या अपेक्षित है।

इस प्रकार भ्रंशित-गुदा को यथा स्थान बैठाने के बाद गुदा प्रदेश के स्नायु व पेशीमंडल को सुदृढ़ बनाने के प्रयास करने चाहिए तथा कारणभूत उपस्थित रोग की चिकित्सा करनी चाहिए ताकि गुदभ्रंश की पुरावृत्ति को नियन्त्रित किया जा सके। रोगी यदि बालक हो तो मलावरोध दूर करने के लिए हरड़ का घासा काला नमक व हींग (भर्जित) मिलाकर दिन में एक या दो बार दें। तथा अमलतास फली का गूदा दूध में उबालकर पिलाने से भली प्रकार मल पतला होकर बिना कुंथन किए बाहर निकल जाता है।

रोगी यदि वयस्क स्त्री पुरुष हो तो मलशोधनार्थ पंचसकार चूर्ण ३ ग्राम, तरुणी कुसुमाकर चूर्ण ३ से ५ ग्राम, अभयादि मोदक १-२ गो०, अभयासन गुटी १-२ गो० सायं को गर्म दूध से सेवन कराया जा सकता है।

रुग्ण बालक हो तो सामान्य दौर्बल्य नाशनार्थ बालार्क रस, ६२-१२५ मि० ग्रा० + प्रवाल पंचामृत ६२ मि० ग्रा०+सितोपलादि चूर्ण ५०० मि० ग्रा० मधु से १×२ मात्रा प्रतिदिन दें।

सर्वदेह अभ्यंग हेतु चन्दनबला लाक्षादि तैल, वला तैल, लाक्षादितैल, लाल तैल आदि का प्रयोग करें।

यदि बालक को अतिसार रोग हो तो उसे रस पीपरी १२५ मि०ग्रा०+शंख भस्म ६२ मि० ग्रा० + गंगाधर चूर्ण ५०० मि० ग्रा०। १-३ मात्रा बिल्वावलेह या बब्बूलारिष्ट १ से २ चम्मच ×३, या अरविन्दासव १-२ चम्मच १×३ बार दें। इससे अतिसार निरोध होकर बल बढ़ता है।

चांगेरी घृत एवं मूषिका तैल का प्रयोग गुदभ्रंश रोग को स्थायी लाभ प्रदान करने हेतु सुविख्यात हैं।

चांगेरीघृत निर्माण-चांगेरी (चन्दलाई, ग्राम प्रसिद्ध नाम) को कूटकर १ लीटर, शुण्ठी ३० ग्राम, यवक्षार ३० ग्राम, गाय का शुद्ध घी ३७५ मि० ली०।

इन सबको पीतल की कढ़ाई या भगोना में मन्दाग्नि पर रख पकावें। जब जलीयांश जलकर घृतपाक के लक्षण दिखाई पड़ें तो घृतसिद्ध समझकर नीचे उतार छानकर सुरक्षित रखें।

मात्रा-५ से १० मि० ली० प्रातः सायं दूध में मिलाकर सेवन करावें। उत्तम लाभप्रद योग है। पाचनशक्तिवर्धक है।

मूषिका तैल-छोटी जाति की मूषिका (चुहिया) पकड़कर उनकी आतों (आन्त्र) को बाहर निकाल कर उनका मांस भाग १०० ग्राम, दशमूल क्वाथ के द्रव्यों का कल्क १०० ग्राम, तिल तैल ८०० ग्राम, दशमूल क्वाथ सिद्ध जल ३.२०० लीटर को एकत्रित कर एक कलईदार भगोना में मंदाग्नि पर पकावें। जब जलीयांश नष्ट हो जावे तथा तैलपात्र से ग्रहित कल्क अग्नि खण्ड पर डालने पर चट-चट की आवाज न करे तो तैल सिद्ध समझें और छानकर सुरक्षित रखें।

प्रयोग विधि-सिद्ध मूषिका तैल में पिचु या गॉज भिगोकर भ्रंश स्थान पर रखें। भ्रंश को स्थायी लाभ प्रदान करने वाला

जलोदर की अनुभूत चिकित्सा

वैद्य ब्रजविहारी मिश्र
मंत्री नि० भा० आयु० विद्यापीठ दिल्ली अध्यक्ष-प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन उ० प्र०
२८० रामनगर कालोनी, लखनऊ-२२६००४

उदर में पानी भर जाने को जलोदर कहते हैं। जलवाही स्रोतों की दृष्टि से यह रोग होता है। पेट में जल भरने के पूर्व पेट का सामने वाला अंश बडा और ऊंचा सा दिखाई देता है। ज्यों-ज्यों पानी अधिक बढ़ता है त्यों-त्यों वह पानी उदर के दोनों तरफ एवं नीचे फैलता जाता है। उदर में जब जल पूर्ण रूप से भर जाता है तब वह चिपटा दिखाई देने लगता है। ऐसी अवस्था में रोगी को श्वास लेने में कष्ट, हृदय में धड़कन, बेचैनी, उठने-बैठने में कष्ट होता है। मूत्र की मात्रा कम हो जाती है तथा विबन्ध रहता है।

आधुनिक विद्वानों के मतानुसार हृद्रोग, वृक्क रोग, प्लीहा, यकृद्रोग आदि जलोदर के मुख्य कारण हैं। इसके सामान्य लक्षणों में उदर में उत्सेध, मशक के समान क्षोभ या कर्म बुभुक्षानाश, कास आदि हैं। रोगी जिस करवट लेटता है उसी ओर का पेट फूल जाता है। तरल पदार्थों का हिलना या घटना-बढ़ना करवट बदलने से मालूम होता है।

महर्षि चरक के मतानुसार प्राय: सम्पूर्ण उदर रोग उत्पत्ति काल से ही कृच्छ्रसाध्य होते हैं। उदरावरण की गुहा में जल का सञ्चय (जलोदर) रोगों का अन्तिम परिणाम है। उदर रोगों का परिपाक होकर जलोदर होता है, अस्तु सभी असाध्य हो जाते हैं किन्तु रोगी यदि बलवान् हो और रोग नवीन हो तो यत्नपूर्वक चिकित्सा करने से लाभ की सम्भावना रहती है और रोग याप्य या कृच्छ्रसाध्य रहता है।

जलोदर निवारण में व्यालप्रिया-जलोदर जैसे असाध्य रोग में जब समस्त औषध एवं शस्त्र-कर्मों से भी यथेष्ठ लाभ नहीं होता, तब व्याल-प्रिया ने अपने जल शोषक गुण के प्रभाव से अनेक रोगियों को आरोग्य प्रदान किया है। हमारे परिवार में पिछले लगभग २०० वर्षों से इस औषधि का जलोदर रोग पर प्रयोग किया जा रहा है, परिणाम भी अन्य शास्त्रीय औषधियों से कहीं अधिक लाभप्रद सिद्ध हुये हैं।

व्याल-प्रिया परिचय-व्याल-प्रिया अर्थात् भुजंग प्रिया सर्प को प्रिय लगने वाली औषधि। यह औषधि सांपों की प्राचीन बांवियों को खोदन से मिलती है। यह इन्द्रायण के फलों जैसी ऊपर से काली एवं अन्दर तोडने पर दुग्ध के समान श्वेत होती है। छोटे बडे सभी प्रकार के फल होते हैं। फल ठोस होते हैं। कन्जड़ (वन्य जाति) जाति के लोग सर्पों की बॉबी खोदकर लाते है। उनके अनुसार सर्प इस औषधि को चाटते रहते हैं। सर्पों के चाटने से यह औषधि बढ़ती तथा पुष्ट होती है। सर्पों को अत्यन्त प्रिय होने के कारण ही हमारे पितामह शतवर्षीय स्व० पं० मन्नूलाल मिश्र राजवैद्य ने इसका नाम व्याल-प्रिया रखा। कन्जड लोग इसे पत्ताल तोमड़ी के नाम से पुकारते हैं।

मात्रा एवं अनुपान-रोगी के बलाबल को देखकर इस औषधि का प्रयोग २ से ४ रत्ती अर्थात् २०० मि० ग्रा० से ४०० मि० ग्राम तक भुनी छोटी हरड़ के ३ ग्राम चूर्ण के साथ प्रात:, सायं दूध से देने से जलोदर में यथेष्ठ लाभ होता है। इस औषधि के सेवन काल में रोगी को सब चीजें बन्द कर केवल गोदुग्ध पर रखा जाता है। प्राय: ४० दिन में पर्याप्त लाभ होते देखा गया है।

जलोदर प्रतिषेध में सर्प-विष का प्रयोग-आचार्य चरक के मतानुसार जब सम्पूर्ण प्रकार की चिकित्सा करने पर भी जलोदर में कोई लाभ न हो, दोषों का शमन न हो तो अन्तिम चिकित्सा के रूप में इस भयंकर उपचार का भी प्रयोग किया जा सकता है। सर्प से किसी फल को कटवा के जिसे सर्प ने अपने विष से मुक्त कर दिया हो, खिलाया जावे। इस क्रिया से रोगी का विमार्ग स्थित दोष संघात जो शरीर में स्थिर एवं लीन हो गया है, उसका विघात होकर शीघ्रता से निकल जाता है क्योंकि विष तीव्र आशुकारी एवं प्रभावी होता है। दोषों के निर्हरण हो जाने के अनन्तर रोगी का शीतल जल से परिषेक करके उसको बल के अनुसार पर्याप्त मात्रा में गाय का दूध अथवा यवागू का प्रयोग भोजन के रूप में करना चाहिए।

रुग्णा इस चिकित्सा के आरम्भ करने के १५ दिन बाद पुन: उपस्थित हुई तो बताया कि आपके द्वारा निर्देशित औषधि व्यवस्था तो यथावत् चल रही है। परन्तु मूषक मांस को तैल में पकाया तो वह कुछ चरमराहट अधिक करता था कि कष्टप्रद होने से अपने स्वयं के विचार से ही १०० मि० ली० तैल पुन: प्रथकश: तैयार किया जिसमें बडे चूहे के मांस के स्थान पर छोटी-छोटी चुहियां ६-७ संख्या में डालकर जला ली गई तथा काली पड़ने पर तैल छानकर प्रयोग किया गया। इस तैल का फोया (पिचु) बना कर गुदा एवं योनि मध्य रख रही हूं। इस दोबारा निर्मित तैल से मुझे चरमराहट या अन्य कोई परेशानी अनुभव नहीं होती है जैसी कि पूर्व निर्मित तैल से होती थी। अत: आप बतावें कि तैल पहला वाला काम में लूं या दूसरा वाला। मैंने रुग्णासंवेद्य अनुभव को प्रमुखता देते हुए दूसरा वाला तैल ही प्रयोग का परामर्श दिया तथा शेष चिकित्सा यथावत् लेते रहने का निर्देश दिया। इसी प्रकार तीन माह तक उक्त चिकित्सा क्रम अपनाने से वह रुग्णा अपने इस कष्टसाध्य एवं ऑपरेशन हेतु डाक्टरों द्वारा निर्देशित रोग से पूर्णतया मुक्त हो गई तथा सामान्य स्वास्थ्य भी उसका उदाहरणीय हो गया। रुग्णा एवं उसका परिवार आज भी आयुर्वेदीय चिकित्सा भी श्रेष्ठता का गुणगान करता है।



विसूचिका नाशक कुछ परीक्षित योग

१. **मृत संजीवनी गुटिका**-वायबिडंग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, बड़ी हरड़ का बक्कल, आंवला, बहेडा, बच, गिलोय, भिलावा शुद्ध, मीठा तेलिया शुद्ध प्रत्येक समान भाग ले बारीक पीसकर एक दिन गौमूत्र में खरल करें और १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। मात्रा-१ गोली। अनुपान-गर्म जल, अर्क सौंफ, अर्क इलायची के साथ देवें। यह विसूचिका (हैजा) के लिए अक्सीर दवा है।

२. प्याज का रस ३ माशा से १ तोला तक लेकर उसमें उतना ही शहद मिलाकर १५-१५ मिनट के बाद ३-४ बार पिलावें। हैजे की महौषधि है। इस पर बड़ा ही भरोसा रखकर हैजा के रोगी को देना चाहिए। इससे प्यास और व्याकुलता जाती रहती है, वमन और दस्त बन्द हो जाते हैं।

३. लहसुन, जीरा, मिर्च, शुद्ध गन्धक, सेंधा नमक, सोंठ, पीपल, भुनी हींग प्रत्येक समान भाग लेकर महीन पीस नीबू के रस में घोट चने बराबर गोलियां बना रख लें और हैजा की बड़ी हालत में १ से २ गोली तक गरम पानी के साथ १५-१५ मिनट के अन्तर से दें।

४. **कर्पूरादि वटी**-उड़ाया हुआ कपूर ६ माशा, शुद्ध अफीम १ तोला, शुद्ध सिंगरफ १ तोला लेकर अदरक के रस में ४ घन्टा घोटकर बाजरे के समान गोलियां बनाकर छाया में सुखा रख लें। अनुपान-गुलाब जल, पोदीना या सौंफ के अर्क के साथ। मात्रा-१-२ गोली।

यदि गोली पच जाय तो १० मिनट बाद फिर दें अगर न पचे निकल जाये तो ५-५ मिनट बाद दें। गुण-प्रथम और द्वितीयावस्था की घोर विसूचिका में भी लाभ करती हैं। १० वर्ष तक के बच्चों का कष्ट साध्य हैजा भी इस योग से शान्त किया है परीक्षित हैं।

-डा० कन्हैयालाल शर्मा, पचावर (मथुरा)

अर्श एवं उसकी सफल चिकित्सा

डा० डी० डी० त्यागी आयु० रत्न
अखिल भारतीय आयु० विज्ञान सम्मेलन, पिलानी (राज०)

वातादि दोष त्वचा, मांस एवं मेद को दूषित करके गुदा, नाशिका आदि मे अनेक प्रकार की आकृति वाले मांसांकुरों को उत्पन्न कर देते हैं। जिन्हें अर्श और साधारण बोल चाल में बवासीर कहा जाता है। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में अर्श को Piles अथवा Haemorrhoids कहते हैं। जो कि वस्तुत: गुद शिराओं (Haemorrhoidal Veins) के उभार (Vericosity) के कारण हो जाती है।

कहने का तात्पर्य यह हुआ कि इसमें गुदा के अंदर की शिरायें वक्री हो जाती हैं और यह वक्रता भिन्न २ प्रकार की सूजन उत्पन्न करके प्रकट होती है। जो कि सम्पूर्ण रूप से गुदा के अंदर (Internal Piles) अथवा कुछ अंदर और कुछ बाहर (External Piles) भी हो सकती है। अत: अर्श (Internal Piles) भी कई बार रोगी के मल त्याग के समय बल प्रयोग (कांखने) करने पर बाहर आ जाते हैं इससे गुदामार्ग में से जामुनी रंग (Voilet Coloured) की सूजन युक्त अर्श (Piles) बाहर आ जाती है।

लक्षण-अर्श एक भयानक रोग तो नही परंतु बहुत कष्टदायक जरूर है क्योंकि इसमे निरंतर रक्तस्राव होता रहता है। इसमे बार-बार सूजन और थ्रोम्बोसिस (Thrombosis) का आक्रमण होता रहता है। इस कारण इसमें बहुत दर्द होता है। इसमें निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं।

१. सुर्ख चमकीला लाल रंग का रक्त मल के साथ कभी ज्यादा प्रमाण मे कभी मल त्याग के पीछे बूंद २ गिरता है।

२. मल त्याग में दर्द होता है जो कि मल के गुदामार्ग से निकल जाने के बाद भी कुछ समय तक बना रहता है।

३. जब अर्श सूजकर आपस में मिल जाते हैं (Strangulated) तब दर्द बहुत तेज होता है।

४ मलबंध (Constipation) प्राय: अर्श के रोगी में सदा रहता है।

५. गुदा मार्ग पर कई बार कण्डु (खुजलाहट) बहुत ही असह्य होती है।

६. अतिशय रक्त निकल जाने पर शरीर में रक्त की कमी आ जाती है जिससे शरीर में रक्त न्यूनता (Anaemea) हो जाती है।

कारण-१. सदा ही मलबंध (Chromic constipation) रहना नि:संदेह अर्श का एक बडा कारण है।

२. यकृत् में जाने वाले रक्त संचार में हो रही रुकावट से स्वत: ही अर्श उत्पन्न होती है।

३. मद्यपान से यकृत् में रक्त संचय (Cirrhosis) हो जाता है जिससे अर्श उत्पन्न होते हैं।

४. शारीरिक व्यायाम का अभाव और आलसी आदतों के परिणामस्वरूप भी अर्श पैदा होते हैं।

५. गुदामार्ग या बस्ति गुदा (Pelvic cavity) में कार्सीनोमा (Carcinoma) होना अथवा अन्य अर्बुद उत्पन्न होना भी इसके कारण हैं।

६. उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त विरूद्ध आहार-विहार से अतिशीत आसन पर बैठना या नरम गद्दे पर लगातार बैठे रहना गुदा की छोटी शिराओं में संकुचन पैदा कर देता है इससे गुदा में अर्श पैदा हो जाता है।

चिकित्सा-(क) साधारण उपाय-१ मद्यपान को छोडना चाहिए।

२. बाहर निकले अर्शों को विशेषत: स्वच्छ जल से धोना चाहिए और तुरन्त अंदर कर देवें।

३. मल त्याग नियमपूर्वक समय से करें और प्रयास करें कि मल कठोर न होकर तरलता युक्त हो।

४ भारी भोजन, मद्यपान या जिससे यकृत् में रक्त संचय या शोथ (Cirrhosis or Engorgement) होता है वह सब त्याज्य है।

सर्प विष की चिकित्सा में मुख्य कठिनाई मात्रा निर्धारण की है। सर्प दंशित फल कितनी मात्रा में खिलाया जाय यह निर्णय करना कठिन होता है। यदि अधिक मात्रा हो जाय तो प्राण जाने का भी भय रहता है। इसीलिये आचार्य चरक ने जलोदर की चिकित्सा में सर्प विष प्रयोग को अन्तिम उपचार के रूप में करने का आदेश दिया है। साथ ही आचार्य ने कहा है कि इस चिकित्सा के प्रारम्भ करने के पूर्व रोगी के सगे सम्बन्धी (स्त्री पुत्रादि) राजा, सरपंच आदि की भी लिखितरूप में वैद्य को यह आश्वासन ले लेना चाहिए कि यदि रोगी का प्राणान्त हो जायेगा तो चिकित्सक पर कोई कार्यवाही नहीं होगी। आज के युग में रोगी के प्राण भले ही चले जावें कोई भी सगा सम्बन्धी सर्पदंशित फल अपने रोगी को देने को तैयार न होगा।

व्याल-प्रिया के प्रयोग में ऐसी कोई बात नहीं है। यद्यपि सर्प इसे चाटता रहता है फिर भी यह मारक नहीं होती और विमार्ग स्थिति दोष संघात को विदीर्ण कर रोगी को शीघ्र आरोग्य प्रदान करती है। हमने भी जलोदर के कई रोगियों पर इसे आशुफलप्रद पाया है। आयुर्वेद की गरिमा बढ़ाने एवं जलोदर जैसे दुष्चिकित्स्य रोग के निवारणार्थ अपने परिवार के अत्यन्त गोपनीय योग को सर्व साधारण के लाभ हेतु प्रकाशित कर रहा हूं। आशा है सुधीजन लाभ उठायेंगे।

❖❖

भस्मक रोग की सफल चिकित्सा

भस्मक रोग पर लेखनी को गति देते हुए मेरे समक्ष अब्दुल सत्तार नामक रोगी की आकृति साकार हो उठती है जिसने चरणों में पड़कर रुदन करते हुए अपनी भूख बन्द करने के लिए प्रार्थना की थी चिकित्सालय में उपस्थित अन्य श्रोता रोगीगण भी इसकी आतुर पुकार से आश्चर्य चकित थे जहां अन्य रोगी भूख बढ़ने की दवा चाहते हैं वहां भूख बन्द करने के लिए रो रहा था कारण लगभग ३ महीने पहले लगभग इसी रोग से आतुर इसके बड़े भाई का स्थानीय सिविल होस्पिटल में शल्य-कर्म करते समय स्वर्गवास हो गया था स्वयं अब्दुर सत्तार भी ऐलोपैथिक चिकित्सा में ३ हजार रुपये बर्बाद कर शल्य-कर्म के भय से मेरी चिकित्सा उर्फ आयुर्वेद की शरण में आया था। रोगी को प्रति घंटे भरपेट भोजन चाहिए दिन रात में ८-१० किलो भात-रोटी खाने पर भी भूख के मारे रोने लगता रात मे भी सायंकाल उबालकर ठन्डे पानी में भिगोकर रखे हुए भात चार बार खाने पर भी भूख शांत नहीं होती थी अत: रोग का निदान तो रोगी के विवरण से ही तीक्ष्णाग्नि व भस्मक रोग हो गया था पर उपयुक्त योग चिकित्सालय में तैयार न था अत: सामान्य विरेचन देकर दूसरे दिन प्रात:काल रोगी को आने का निर्देश दिया तथा निम्न व्यवस्था की-

अपामार्ग तन्दुलक्षीर-

अपामार्ग के बीज ५ ग्राम, भैंस का दूध ५.०० मि० लि० में पकाकर चीनी, घी मिलाकर खीर बना कर खाने को दी गई। प्रथम सप्ताह में ही रोगी सन्तुष्ट था और एक माह के प्रयोग में ही रोगी पूर्णत: ठीक हो गया तथा आज भी वह स्वस्थ, प्रसन्न एवं आयुर्वेद का परमभक्त है।

पथ्याहार-

चरकाचार्य के निम्न चिकित्सा-सूत्र पर ध्यान दिया गया-

कफे वृद्धि जितेपित्ते मारूते चानलसम: ।
समधातो पचत्यन्नं पुष्ट्यायुर्वल वृद्धये ।।

अर्थात् रोगी का आहार-विहार ऐसा होना चाहिए जो कफ की वृद्धि कर पित्त और वात को जीत कर अग्नि को सम करे पथ्य चिकित्सा का कितना वैज्ञानिक आधार है कफ की वृद्धि और पित्त की शांति के लिये निम्न भोजन की व्यवस्था की गई-

प्रात:काल ७ वजे नाश्ता मे इच्छानुसार पके हुए केले घी के साथ। प्रात: १० वजे बड़े, कचौरी, गुड़ की मिठाई तथा तन्दुलक्षीर। दोपहर व रात के भोजन में भात-दाल (दाल उड़द की) व खिचड़ी, मछली, भेड़ का मांस व घरेलू पालतू जानवरों का मांस व गरिष्ठ भोजन अपामार्ग तन्दुलक्षीर दिन में तीन वार भोजन के साथ दी जाती थी।

-वैद्य गिरधारीलाल मिश्र

अर्श का सफल उपचार

वैद्य दरबारीलाल आयु० भिषक्,
अशोक-भैषज्य, फतेहगढ़ (फर्रुखाबाद)

अर्श रोग को नष्ट करने के लिए आयुर्वेद में चार प्रकार की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। जैसा कि भैषज्य रत्नावली में कहा गया है कि-

दुर्नाम्ना साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्तितः ।
भेषज क्षार शस्त्राग्नि-साध्यत्वाद्य उच्यते ।।

-भै० र०।

अर्थात् अर्श रोग को नष्ट करने के लिये औषधि-चिकित्सा, शस्त्र-चिकित्सा, क्षारचिकित्सा तथा अग्नि-चिकित्सा कुल चार प्रकार की चिकित्सा हैं। इस लेख में औषधि-चिकित्सा पर ही अपने विचार पाठकों के समक्ष रख रहा हूं।

चरक भगवान् ने शुष्कार्श और आर्द्रार्श दो रूपों में अर्श की चिकित्सा का वर्णन किया है। वात कफ से उत्पन्न अर्शों को शुष्कार्श कहते हैं जिसे लोकभाषा में आजकल बादी की बवासीर व बाह्यार्श भी कहते हैं और रक्त तथा पित्त प्रधान प्रस्रावी अर्शों को आर्द्र अर्श या खूनी बवासीर या आन्तरिक अर्श भी कहते हैं।

शुष्कार्श में प्रलेप आदि तीक्षण क्रिया का प्रयोग करें। आर्द्रार्श (खूनी बवासीर) में रक्त रोकने के लिए रक्तपित्त की विधि से चिकित्सा करें।

निदान परिवर्जनम् के सिद्धान्तानुसार सर्वप्रथम कारणों को दूर करना चाहिए। पिछले पृष्ठों में लिख आये हैं कि सभी कारण मिलकर पाचन-क्रिया को बिगाड़ कर कब्जियत उत्पन्न करके गुदस्थान की शिराओं पर रक्त का दवाव डालकर अर्श को उत्पन्न करते हैं। इसलिए अर्श रोगी को ऐसी औषधि और अन्न-पान का सेवन करना चाहिए जो जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला, वायु का अनुलोमक तथा कब्जनाशक, पाचक और यकृत् के दोषों को सुधारने वाला हो।

वात कफज अर्श रोग में गाय के दही से बनाये हुए ताजे तक्र का सेवन अमृत के समान लाभदायक है। किन्तु दूध के जमाने से पहले पात्र में चित्रकमूल को जल में पीस लेप कर देना चाहिए। फिर उस दही से मट्ठा बनाकर उपयोग में लावें। तक्र से बना हुआ तक्रारिष्ट तो अर्श की एक मानी हुई दवा है। बल और समय का विचार कर सात दिन, दस दिन, पन्द्रह दिन या एक मास तक तक्र (मट्ठा) का प्रयोग करें। फिर उसके बाद क्रम-क्रम से उसको कम करते हुए बन्द करना चाहिए। अक्समात् तक्र सेवन बन्द न करें, तक्र के प्रयोग से जलाये हुये अर्श पुनः जीवित नहीं होते हैं। इस विषय में भगवान् चरक कहते हैं कि-

"हतानि न विरोहन्ति तक्रेण गुदजानि तु।
भूमावपि निषिक्तं तद्दहेत्तक्रं तृणोलुपम्।
किं पुनर्दीप्त कायग्नेः शुष्काण्यार्शांसि देहिनः।।"

अर्थात् तक्र द्वारा नष्ट हुए अर्श पुनः नहीं उत्पन्न होते हैं। इसको उदाहरण द्वारा सिद्ध करते हुए चरक भगवान् कहते हैं कि जब भूमि पर सींचा हुआ तक्र वहां के तृण समूह को जलाता है, तब प्रदीप्त जाठराग्नि वाले मनुष्य की शुष्कार्श का क्या कहना। अर्थात् तक्र सेवन से अर्श समूल नष्ट हो जाता है।

अर्श रोग में प्रायः मलावरोध रहता है। इसलिये मलावरोध को सर्वप्रथम दूर करना चाहिए। इसके लिये निम्नलिखित प्रयोगों में से कोई एक प्रयोग सेवन करना चाहिए।

(१) रात्रि को सोते समय पंचसकार चूर्ण यथाबल ६ माशे से ९ माशे तक एक गिलास गरम पानी से या गरम दूध से लेना चाहिए। प्रातःकाल एक-दो टट्टी आकर पेट का जमा हुआ मल बाहर निकल जायेगा और गुद शिराओं के ऊपर का दबाव हटकर अर्श में आराम मिलेगा।

इसको सप्ताह में एक-दो बार लेते रहें।

(२) प्रातःकाल एरण्ड तेल २ से ५ तो० तक गरम दूध में मिलाकर लें।

५. सूजे हुये और बाहर निकले अर्श को गर्म पानी में पोटेशियम परमेंगनेट डालकर सेक करें। यह कार्य गर्म पानी में बैठकर करें।

६. निरंतर रहने वाले मलबंध को दूर करने के लिये हरीतकी खण्ड, ईशवगोल की भुसी अथवा हरड़ का मुरब्बा प्रयोग करें।

७. अर्श में अग्निमांद्य रहता है अत: अग्नि को बढ़ाने के लिये तक्र का प्रयोग ज्यादा से ज्यादा करें।

(ख) शल्य कर्म-१. उपयुक्त समय और शल्यक साधनों द्वारा अर्श का शल्यकर्म करें।

२. इंजैक्शन द्वारा-अ-इंजैक्शन द्वारा ५ सी०सी० घोल जिसमें Phenol 20 grain] Menthol 1 grain तथा बादाम का तेल 1 ounce हो अर्श के चारों ओर दिया जाता है। इससे Thrombosis होकर अर्श कट कर गिर जाते हैं।

ब-इंजैक्शन द्वारा Phenol का ५ से २० प्रतिशत तक बना कड़ुवे बादाम के तेल का घोल अर्श के चारों ओर दिया जाता है।

३. क्षार सूत्र प्रयोग-आयुर्वेद पद्धति द्वारा क्षार सूत्र तैयार करके अर्श की जड़ों (Pedicle) में सावधानी से बांधा जाता है। इससे अर्श कटकर गिर पड़ते हैं।

४. अर्श यदि बहुत कठिन और सूजा हुआ है तो उस पर जलोंका द्वारा भी रक्तमोक्षण कराने से आराम मिल जाता है।

ग-औषध चिकित्सा-चूंकि अर्श शुष्क और आर्द्र भेद से दो प्रकार की होता है। शुष्कार्श के लिये-प्राणदा गुटिका, चंद्रप्रभा गुटिका, शूरण मोदक, भल्लान्तक गुड़ बाहुशल गुड उत्तम है। अर्श के कठिन, शोफ और शूलयुक्त होने पर उन्हें तेल से स्निग्ध करके जौ, उडद, कुलथी की पोटली के क्वाथ से स्वेदन करें। बांसा, ऑक, एरण्ड और बिल्व के पत्तों के क्वाथ से सेक करें। अरणी या सहिंजना के क्वाथ में बैठाना चाहिए। धूपन के लिये काले सांप, सूअर, ऊंट की वसा को प्रयोग करते हैं। हल्दी के चूर्ण को स्नुही के दूध में मिलाकर मस्सों पर लगावें। पूर्व भोजन के गुड़ और हरड खावें। गोमूत्र में रखी हुई हरड का प्रयोग करें। त्रिफला को तक्र के साथ प्रयोग करें। चित्रक से लेप की हुई मिट्टी की हांडी में बनाई गई दही को प्रयोग करें।

आर्द्र अथवा रक्तार्श के लिये-कुटजावलेह, भल्लातक लौह अग्निमुख लौह और भल्लातक गुड़ का प्रयोग करना उत्तम है। बकरी का दूध, वथुवे का रस या शाक और आयापान का रस प्रयोग करना उत्तम रक्त स्तम्भक है। केशर को मक्खन और शक्कर के साथ अथवा दही की मलाई के साथ खाना उत्तम है। परिषेचन के लिये पंचवल्कल में वट-गूलर-पीपल-पिलखन-जामुन की छाल का क्वाथ प्रयोग करें।

वात्तिक रक्तार्श में-जब अर्श में रक्त पतला-सुर्ख झागदार होता है तब वायु से सम्बन्धित समझकर स्निग्ध और शीतल चिकित्सा प्रयोग करें।

कफज रक्तार्श में-जब अर्श में रक्त घना, तन्तुवाला, पाण्डुवर्ण और पिच्छिल तथा स्निग्ध हो तो इसे कफज मान कर रूक्ष और शीतल चिकित्सा प्रयोग करें। इस दूषित रक्त को सहसा ही बंद मत होने दो। दूषित रक्त के निकल जाने पर ही इसे बंद करें।

पित्तज रक्तार्श में-ग्रीष्म काल में अर्श यदि पित्त वाला है तो उससे निकले रक्त को यथा जल्दी रोकना चाहिए। रक्त को बहने से बंद करने के लिये कुटज रस क्रिया, कुटजावलेह उत्तम है।

फूले हुये मस्सों पर-कासीशादि तेल और पिपल्याद्य तेल लगाना अत्युत्तम है। इसी प्रकार से गुदभ्रंश में चांगेरी घृत को पीने के लिए देना चाहिए।

स्वानुभूत योग-१. मस्सों पर लगाने के लिये हिमालय की Pilex मलहम तथा खाने की Pilex गोली दो सुबह दो शाम भोजनोपरांत दी।

२. तीव्र दर्द में Proctosedyl मलहम लगाया।

३. कार्बोलिक एसिड का ग्लीसरीन १० प्रतिशत घोल तैयार करके १ से ३ बूंद तक इंजैक्शन द्वारा मस्सों के आस-पास दिया गया।

४. अत्यधिक बहते रक्तार्श में ४ ग्राम बर्फ मिले हुये ठंडे जल के २४० मि० ली० का एनिमा देने से रक्त बहना बंद हुआ।

५. उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार उचित एंटीवायटिक्स के साथ २ सुपाच्य भोजन और टोनिक्स का प्रयोग कराया गया।

आशा है प्रिय पाठक उपरोक्त औषधियों का प्रयोग अनुभवी चिकित्सक की देखरेख में करके अवश्य ही लाभान्वित होंगे।



५. अर्शकुठार रस १ से २ गोली तक प्रातः सायं तक्र से या जल से प्रयोग करने से अर्श का नाश होता है।

६. द्राक्षासव १। तो० से २।। तो० तक बराबर पानी मिलाकर दिन में दो बार खाना खाने के बाद पियें। इससे बवासीर के मस्से नष्ट होते हैं, टट्टी साफ आती है, भूख बढ़ती है, रक्त बढ़ता है बल बढ़ता है, रंग निखरता है, स्वास्थ्य ठीक होता है, गुल्म, उदर, कृमिरोग, हृदय-रोग, रक्तपित्त, भगंदर रोग नष्ट होते हैं।

७. एलुआ २ रत्ती लेकर मलाई में लपेट कर रात को रोगी को निगलवा दें। एक ही मात्रा से मस्सों का दर्द, सूजन दूर होकर रोगी को चमत्कारी लाभ होता है। कई रोगियों को देकर इसका आश्चर्यजनक गुण देखा है। यह इलाजुल गुर्वा का नुस्खा है। वातार्श के लिये अक्सीर है।

८. एलुआ, कौडी की भस्म ६-६ मा०, मुनक्का बीज निकले हुए १ तो० लेकर घोट-पीस ३-३ रत्ती की गोलियां बना प्रातः सायं १-१ गोली जल से प्रयोग करें। दोनों प्रकार की बवासीर में अचूक लाभ करती हैं। पीड़ा, जलन, मस्सों की सूजन बहुत जल्द दूर होती है। पथ्यपूर्वक एक माह तक सेवन करने से दोनों प्रकार की अर्श हमेशा के लिये नष्ट हो जाती हैं। यह योग एक महात्मा का बतलाया हुआ है। उनके आदेशानुसार चिकित्सक वर्ग से निवेदन है कि लागतमात्र से अधिक पैसे इस योग के न लें।

९. रीठा के छिलके की भस्म, पपरिया कत्था १-१ तो० लेकर पानी से खरल कर ३-३ रत्ती की गोलियां बना लें, १-१ गोली प्रातः, सायं मलाई या मक्खन में मिलाकर खाने से सात दिन में बवासीर नष्ट हो जाती है। इसके सेवन से मलावरोध अर्श की खुजली और मस्से ठीक होते हैं। खून बन्द हो जाता है, यदि हर छठे महीना ७-७ दिन इसका सेवन कर लिया जाय तो बवासीर के फिर उभरने का भय नहीं रहता।

रक्तार्श में रक्त का अधिक दवाव होने के कारण रक्तस्रोत एक बार ही फूट पड़ते हैं और उन फूटे हुए स्थानों से रक्तप्रवाह होने लगता है। इसमें सर्वप्रथम उस क्षत स्थान का रोपण करना चाहिए और उसे इतना विश्राम दें कि रोपण दृढ हो जाय। रोगी पूर्ण विश्राम करें और दुग्धाहार पर रहे। इसमें ऐसी दवाओं का प्रयोग करें जो रक्त के दबाव को कम करें, रक्त में जमने वाली शक्ति बढायें और क्षतों का रोपण भी करें। इसमें सर्वप्रथम रक्तपित्त के आधार पर दवा दें, वाद में अर्श के आधार पर चिकित्सा करें। आगे कुछ दवायें लिखी जाती हैं उनका प्रयोग कर लाभ उठायें।

१. गूलर की छाल एवं पत्तों का स्वरस या इनके घनक्वाथ में रुई या कपड़ा तर करके गुदमार्ग में प्रविष्ट करके गुदद्वार पर रुई की मोटी तह रखकर लंगोट से मजबूती से कसकर बांध दें ताकि बाहर न निकल आये। इससे ब्रण का रोपण भी होगा और रक्तस्राव भी रुकेगा।

२. फिटकरी, हीराकसीस २।।-२।। रत्ती तूतिया जलाया हुआ १/२ रत्ती भवके से उडाया हुआ पानी या गुलाबजल २।। तो० में मिलालें और इसमें कपडा तर करके गुदा के अन्दर उपरोक्त विधि से प्रयोग करें। इससे भी रक्तस्राव रुकेगा।

३. शु० कुचला ४ चावल, मधु ६ मा० में मिला, चाटने से खूनी बवासीर जड़ से चली जाती है।

४. संगजराहत, सोनागेरू, राल, कहरवा शमई, दम्मुल अखबैन, वंशलोचन, मिश्री प्रत्येक द्रव्य बराबर-बराबर लेकर कूट-पीस कपडछान कर ४-६ माशे शर्बत अंजवार में दिन में ३ बार चाटें। रक्तार्श के रक्त को बन्द करने में आश्चर्यजनक लाभकारी है।

५. दूब का रस लें या दूब का शर्बत बना, पानी मिलाकर लें। रक्तस्राव रुकेगा।

६. निबौली की गिरी, दम्मुल अखबैन, मुनक्का, गेरू, कहरवा शमई, मुक्ताशुक्ति पिष्टी प्रत्येक बराबर लेकर पानी से घोट ३-३ रत्ती की वटी बना, २-२ गोली प्रातः, सायं जल से प्रयोग करें। खूनी बवासीर में निश्चय लाभ होता है।

७. बोल पर्पटी या बोलबद्ध रस ४-४ रत्ती दिन में तीन बार मक्खन मिश्री के साथ या दूब घास के रस और मधु के साथ या शर्बत अंजवार के साथ खाने से रक्तार्श का रक्त गिरना बन्द हो जाता है तथा उससे शरीर के किसी भी अंग से निकलने वाला रक्त रुक जाता है।

८ कुड़े की छाल, नीलकमल पुष्प, लोध, लाल चन्दन, मंजीठ समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण बनालें। ३-३ माशे जल से या मठा से दिन में तीन बार सेवन करें। यह रक्तनाशक है और रक्तस्राव की पुनरावृत्ति को रोकता है।

(३) एक तोले पुराने गुड में ६ माशे बड़ी हर्र का चूर्ण मिला गरम पानी से लें।

(४) सनाय पत्ती ६ मा०, गुलकन्द २।। तो०, मुनक्का ११ ग लेकर १० तो.० पानी में उबालें, जब ५ तो० पानी शेष रह जाय तब उतार लें और मल-छानकर पीलें। रात को सोते समय लेने से प्रात: दो टट्टी आकर पेट साफ हो जाता है। यह सौम्यरेचक है, पीने में भी स्वादिष्ट है। कोमल स्वाभाव वाले भी सरलता से ले सकते हैं। इसका प्रयोग रक्तार्श में अच्छा रहता है।

(५) इच्छाभेदी रस व नाराच रस भी दस्त लाने के लिये अच्छा काम करते हैं।

(६) सत् ईसवगोल ६ मा० से १० मा० तक शाम को जल के साथ लेने से प्रात: टट्टी खुलकर आ जाती है और पेट साफ होकर मलावरोध मिट जाता है।

शुष्कार्श (बादी बवासीर) के मस्सों को नष्ट करने के लिये लगाने के कुछ योग लिखे जाते हैं। उनमें से किसी एक का प्रयोग करके लाभ उठाना चाहिए।

१. २ भाग मुश्क काफूर, १ भाग कार्बोलिक एसिड लेकर दोनों को एक शीशी में डाल दें। दोनों गलकर द्रवरूप में हो जायेंगे। फिर इस द्रव का १ भाग, वैसलीन ४ भाग में मिलाकर मलहम बनालें। इस मलहम को पाखना जाने से पूर्व मस्सों पर तथा गुदा के अन्दर बाहर खूब अच्छी तरह लगालें और पाखाना हो जाने के बाद भी लगायें। इससे मस्से सिकुड़ते है, दर्द मिटता तथा शुष्क मल भी सरलता से उतरता है।

२. तिल का तेल ४ तो० देशी मोंम २ तो० लेकर किसी पात्र में रखकर गरम करें, जब मोंम पिघलकर तेल में मिलकर एक रस हो जाय तो उतार लें उसके ठण्डे होने पर इसमें १० माशे अफीम और १० माशे सिन्दूर मिला घोटकर रखलें। इस मलहम को मस्सों पर तथा गुदा के बाहर भीतर शौच के पूर्व तथा बाद में लगावें, इससे वेदना दूर होकर आराम मिलता है। मस्से सिकुडते हैं।

३. हिंगुल, कपूर, मुर्दासन, सिन्दूर प्रत्येक ३-३ मा० मक्खन १०१ बार का धुला हुआ ३ तो० सबको मिलाकर मलहम तैयार करलें। प्रात:, सायं मस्सों पर मलने से मस्से मुर्झा जाते हैं।

४. शास्त्रोक्त बृ० काशीसादि तेल लगाने से मस्से नष्ट होते हैं।

५. भृंगराज (भांगरा) गोभी (जंगली घास) की पत्ती ६-६ मा० भांग ३ मा० बादाम की मींग आधी लेकर सबको पानी में पीस टिकिया बनालें फिर एक करछली में थोड़ा घी डालकर गरम करें। जब घी गरम हो जाय तब उसमें उस टिकिया को रखकर सेक लें। फिर उस टिकिया को जितना सह सकें उतना गरम मस्सों पर रखकर ऊपर से रुई रखकर लंगोट कस लें। ऐसा करने से बवासीर के मस्से जो फूले हुए हों और पीड़ा होती हो वह बहुत शीघ्र दूर हो जाती है, मस्से मुर्झा जाते हैं।

६. हल्दी, कडवी तुम्बी का चूर्ण, थूहर का दूध, सेंधा नमक इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से मस्से नष्ट हो जाते हैं।

७. लाल फिटकरी पानी में घिसकर मस्सों पर लेप करने से मस्से नष्ट हो जाते हैं।

८. गुदा में किसी दवा के लगाने के कारण या वैसे ही रोग के कारण दाह (जलन) होती हो तो १०१ बार धुले हुये घी या मक्खन में कपूर, कत्था, सोनागेरू मिला कर लगावें।

९. तूतिया घी में घोट कर इसमें रुई तर करके मस्सों पर बांधने से एक ही बार में मस्से नष्ट हो जाते हैं। हमारे यहां एक व्यक्ति इसी प्रकार प्रयोग कराकर ठीक करता था।

अर्श को नष्ट करने वाली खाने की दवायें आगे लिखी जाती हैं। इनका अवस्थानुसार प्रयोग करें।

१. दो तोले काले तिल अच्छी प्रकार चबाकर खायें ऊपर से पानी पियें, दोनों प्रकार के अर्श में लाभदायक हैं।

२. पंचकोल (छोटी पीपल, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रकमूल त्वक्, सोंठ समभाग) का चूर्ण ४ माशे भर मट्ठे के साथ प्रयोग करने से अर्श नष्ट हो जाता है। इस का प्रयोग बादी बवासीर में करना चाहिए।

३. अभयारिष्ट १। तोले से २।। तोले तक बराबर पानी मिलाकर भोजनोपरान्त दिन में दो बार प्रयोग करने से अर्श नष्ट हो जाते हैं। मल-मूत्र की कब्जियत, उदर रोग को नष्ट करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है।

४. काले तिल, भिलावे शुद्ध, बडी हरड की बकली गुड में चारों द्रव्य समभाग लेकर कूट-पीसकर गोली बनावें। इसके सेवन से अर्श नष्ट होता है।

भगंदर की सफल चिकित्सा

वैद्य मौहरसिंह आर्य
मु० पो०-मिसरी (चरखी दादरी) हरियाणा

चिकित्सा-सिद्धान्त

(१) भगन्दर अथवा नाड़ीव्रण को दबाकर पूय निकालें। जिससे नाली स्वच्छ हो जाए और औषधि यथा स्थान पहुँच जाए।

(२) नाडी की गहराई तथा दिशा ज्ञानार्थ एवणी (Probe) को नाडीव्रण के भीतर प्रविष्ट करें, यह कार्य बड़ी दक्षता से करें। भगन्दर की नाली प्राय: सीधी होती है।

(३) नाडीव्रण का मुंह छोटा है, जिसमें तैलादि औषधि न जा सके तो ग्रन्थिभेदन क्षार को मुँह पर लगावें अथवा चीरा लगाकर संचित पूय को निकाल कर औषधि लगावें।

(४) चीरा लगाने के पश्चात् शुद्ध गॉज आगे कहे हुए तेलों में से किसी एक में भिगोकर व्रण के भीतर रखकर बन्धन कर दें। ऐसा दिन में २ बार करें एक बार रात्रि में सोते समय लगावें।

(५) सभी प्रकार के नाडीव्रण अथवा भगन्दरों को पूय आदि से स्वच्छ कर औषधोपचार करें।

(६) शल्यज नाडी व्रण या भगन्दर में चीरा लगाकर भीतरी शल्य को निकाल कर तैलादि औषधि लगावें।

विषिष्ट अनुभव-

नाडी व्रण या भगन्दर के भीतर अन्तिम भाग तक तैलादि औषधि पहुंचाने के लिए सूचिका प्रयोग करें। एक सूचिका (Needle) ले लीजिये और उसकी तीक्ष्ण धार को घिसकर कुण्डित कर लीजिये ताकि शरीर में कुहीं चुभ न जाए। इस निडिल को सिरिञ्ज में फिट करें। यथावश्यक तैल सिरिञ्ज में भरकर नाड़ीव्रण या भगन्दर के व्रण के मुख द्वारा सूचिका प्रविष्ट कर औषधि भीतर पहुँचावें। इस प्रकार छोटे मुँह के नाड़ीव्रण में भी औषधि प्रविष्ट की जा सकती है।

आवश्यक सूचना

(१) भगन्दर पिडिका को पकने से पूर्व ही इसका प्रतीकार करना आवश्यक है, अन्यथा वह कष्टसाध्य हो जाता है। चिकित्सक का कर्तव्य है कि "भगन्दर पिडिका" को पकने न दे। ऐसी औषधियों को प्रयोग करे कि पिडिका वहां ही बैठ जाए। पिडिका उत्पन्न होते ही रक्त निकलवाएं, एतदर्थ जोंकें लगवाए।

(२) तब तक भगन्दर पिडिका अपक्व हो, उसमें अपतर्पण, आलेप, परिषेक, अभ्यंग, स्वेद विम्लापन, उपनाह, पाचक, विस्रावण, स्नेह, वमन-विरेचन आदि शोथनाशक उपचार करें।

(३) जब पिडिका पककर फूट जाए, व्रण गतिमान् हो जाए तब उसका पूय निकाल, शुद्ध करने का प्रयत्न करें।

(४) यह उभय चिकित्सा साध्य रोग है।

(५) भगन्दर का व्रण ठीक हो जाने पर भी एक वर्ष तक पथ्यपूर्वक रहें।

(६) भगन्दर पिडिका जब पक जावे तो उसको चीर कर पूय निकाल दें।

चिकित्सा

(१) अपक्व भगन्दर हर लेप-सोंठ, पुनर्नवा, बटपत्र, पानी में पडी हुई पुरानी ईंट समभाग लें। सूक्ष्म पीसकर लेप करें। इससे भगन्दर पिडिका वहीं बैठ जाया करती है।

(२) चमेली के पत्ते, वटपत्र, गुडूची, सोंठ, पुनर्नवामूल तथा लवण समभाग ले सूक्ष्म पीस, छाछ में मिला, गरम करके दिन में ३-४ बार बांधने से भगन्दर पिडिका बैठ जाती है।

(३) अहिफेन एलुआ ६-६ ग्राम मुनक्का २ ग्राम को गोमूत्र एवं पानरस में पीस कर लेप करें। इससे पिडिका बैठ जाती है।

(४) गन्धक, मैनसिल, सोंठ, वायबिडंग, जौ की राख समान भाग लेकर पीस लें। फिर केकडे के रक्त में मिलाकर लेप करने से गाठें बैठ जाती हैं।

विद्वान् वैद्यों के अनुभव

(१) पञ्चगुण तैल (सि० यो० सं०) नाड़ीव्रण में इस तैल की वर्तिका या पिचकारी से भरें। साथ मे त्रिफला घृत दुग्ध से दें। भोजनोत्तर आरोग्यवर्धिनी वटी २ गोली, सारिवाद्यारिष्ट

निम्नांकित योग से बादी बवासीर के मस्से कटकर गिर जाते हैं। इसका कई रोगियों पर व्यवहार किया गया, सभी को लाभ हुआ। श्री ऊधौसिंह यादव सहायक अध्यापक, शारीरिक शिक्षा नगर पालिका, फर्रुखाबाद कई वर्षों से अर्श रोग से पीडित थे, उन्हों बहुत डाक्टरी दवा की व खर्च भी काफी किया, मगर रोग दूर न हुआ। जब मेरे यहां आये तो मैंने इस योग का सेवन कराया, जिससे मस्से कट कर गिर गये और रोग दूर हो गया।

वह योग इस प्रकार है-

सफेद संखिया, कलमी शोरा, वरकिया हरताल, सफेद फिटकरी, सज्जीखार, नीलाथोथा, यवक्षार, सुहागा, नौसादर ठीकरी का प्रत्येक ६-६ माशे।

विधि-पहले निम्बु स्वरस की भावना देकर फिर कुकरौंदा की पत्ती के रस की भावना देवें और शिवलिंगी के आकार की गोलियां बनावें। पानी में घिसकर बड़ी सावधानी से मस्सों पर गाढ़ा लेप करें। जब लेप सूख जाय तो ऊपर ठण्डा हलुवा बांध दें। दिन में दो बार लेप लगावें। अगर मस्सों में दर्द हो तो घी या मक्खन या दही का पनीर बांध देवें। १२ दिन के प्रयोग से मस्से काले रंग के हो जायेंगे। इसके बाद मस्सों पर खांड डालकर ऊपर दही का पनीर बांध दें। २-३ दिन के बाद मस्से निकल जायेंगे। दाह होने पर निम्नलिखित महलम लगावे।

मलहम-कत्था, कपूर, सोनागेरू सबको समभाग लेकर बारीक पीसकर घी में मिलाकर लगावें, २-३ दिन में दाह ठीक हो जायगा। बाद में व्रणों पर यह मलहम लगावें।

मलहम-सुहागा फूला, सफेद सेलखड़ी, सिन्दूर, राल प्रत्येक समभाग लेकर कपड़छान कर घी मिलाकर लगावें। मस्सों का स्थान भी ठीक हो जायेगा।



मन्दाग्नि नाशक पांच सफल योग

१. **शिवाग्नि वटी**-(स्वानुभूत) शिवाक्षार पाचन चूर्ण ३५० ग्राम, शंखभस्म तथा शुद्ध कुचिला ५०-५० ग्राम मिलाकर चूर्ण रूप में रखें या ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें। १-२ गोली सुबह-शाम पानी से लें, अत्यन्त ही अग्निप्रदीपक सहस्रानुभूत योग है जो उदरवात, उदरशूल, उदरकृमि का नाश कर क्षुधावृद्धि करता है साधारण सा लगने पर भी चमत्कारिक योग है।

२. **नागार्जुन वटी (चक्रदत्त)**-त्रिफला, पांचों नमक, कूठ मीठा, कुटकी, देवदारु, बिडंग, निम्बौली, खिरैटी, कंघी, हल्दी, दारुहल्दी, हुलहुल सबको समभाग लेकर लताकरंज पत्र स्वरस व करंज छाल क्वाथ की भावना देकर बेर की गुठली के बराबर (४-४ रत्ती) गोलियां बनालें। २-२ गोली उष्ण जल से लेने पर मन्द हुई अग्नि को शीघ्र प्रदीप्त करती है। जब अग्निमांद्य के साथ-साथ उदर कृमि की शिकायत अधिक रहती है तब उदर-कृमि नाशक योग देने से उदर-कृमि का निःसरण तो हो जाता है पर उदरकृमि का निर्माण उदर में बराबर होता ही रहता है एतदर्थ उदर कृमि जन्य मन्दाग्नि के रोगियों के लिए बनाया गया यह योग बड़ा ही अनुकूल सिद्ध हुआ है। सहस्रों रोगियों पर परीक्षित सफल प्रयोग है।

३. **हिंग्वष्टक चूर्ण** को घी में मिलाकर भोजन पूर्व खाना अग्निवर्धक है।

४. **लशुनादिवटी**-छिलका निकाला हुआ लहसुन २० ग्राम, जीरा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, सैन्धा नमक, काली मिर्च, पिप्पली, घी में भुनी हुई हींग प्रत्येक १० ग्राम को नीम्बू रस की भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें। उदरवात और विषमाग्नि वायु की उर्ध्वगति होना अजीर्ण और मन्दाग्नि नाशक बहुप्रचलित योग है।

५. **राज गुटिका (गन्धक वटी)**-शास्त्रीय सुप्रसिद्ध योग है। आयुर्वेद ग्रन्थों में सहस्रों मन्दाग्नि नाशक योग हैं लेकिन सफलतम होने के कारण आयुर्वेद का यह योग सर्वोपरि है।

-वैद्य जगदीश प्रसाद शर्मा, गौतम गौड़ खैर

गुदभ्रंश पर सफल अनुभव

डा० अशोककुमार गुप्ता बी०ए०एम०एस०
मु० पो०-मँल्लावा (हरदोई)

गुदभ्रंश की अवस्था में सर्वप्रथम उन कारणों को दूर करना चिकित्सा का पहला करणीय कर्म होता है, जिनके कारण गुदभ्रंश की अवस्था उत्पन्न हुई है। यथा-मलावरोध, अतिसार, कृमि, अपोषणजन्य शिथिलता आदि को दूर करना आवश्यक होता है। उसके पश्चात् निम्न बाह्य कर्मो का विधान करना चाहिए-

स्वेदन कर्म-(१) गुदभ्रंश की अवस्था में बाहर निकले हुए भाग को वस्त्र या रुई से स्वच्छ कर उस पर नारायण तैल की मालिश करके हाथ के सहारे अन्दर प्रवेश कर देते हैं। फिर पत्थर या वस्त्र की सहायता से गुदा का सेंक करते हैं, ऊपर चमड़े या रबड का छेददार टुकडा लेकर उसके दोनों ओर पट्टी बांध देते हैं। इसको गुदा पर इस तरह बांधा जाता है कि रबड़ के छेद वाला भाग गुदद्वार पर आ जाय और अपानवायु आसानी से बाहर निकलती रहे। इस प्रकार गुदा का बार-बार स्वेदन करना चाहिए, इससे गुदभ्रंश में स्थायी लाभ देखने को मिलता है।

(२) गुदभ्रंश में चूहे के मांस को उबालकर पोटली द्वारा सेंकने से लाभ होता है।

अवचूर्णन-(१) माजूफल ६ माशे, फिटकरी ६ माशे, पावभर पानी में डालकर कांच को धोवें और उन्हीं दोनों का चूर्ण कांच पर छिड़क कर गुदा को अन्दर कर दें।

(२) सूखे लभेड़े को जलाकर उसकी राख को गुदभ्रंश की अवस्था में अवचूर्णन करने से लाभ होता है।

(३) पुराने चमडे के जूते को जलाकर राख करलें, इसको निकली हुई कांच पर बुरकने से गुदभ्रंश में स्थायी लाभ होता है।

(४) आम और जामुन की छाल बराबर-बराबर लेकर जला लें और मिश्रित छाल की राख को निकली हुई गुदा पर अवचूर्णन करें तो बहुत लाभ होता है।

अन्तः प्रयोग

(१) यदि रोगी बालक हो और उसे मलावरोध रहता हो तो अमलतास का गूदा दूध में मिलाकर देना चाहिए। इससे मल पतला होकर आसानी से निकल जाता है और गुदा पर जोर नहीं पडता। यदि रोगी युवा है तो उसे अश्वकंचुकी रस या पंचसकार चूर्ण देते रहना चाहिए।

(२) यदि रोगी को निरन्तर अतिसार के कारण गुदभ्रंश है तो अतिसार के लिए चातुर्भद्र चूर्ण, महागन्धक रस, रसपर्पटी आदि औषधियां देनी चाहिए।

(३) यदि रोगी बालक है और उसकी दुर्बलता के कारण गुदभ्रंश है तो उसका मांसक्षय दूर करने के लिए लाक्षादि या चन्दनबला लाक्षादि तैल की मालिश समस्त शरीर की करानी चाहिए और प्रवाल पंचामृत १/४-१/२ रत्ती प्रतिदिन सुबह-शाम दूध में घोलकर सेवन कराना चाहिए।

(४) चांगेरी घृत-चांगेरी का रस सवा सेर, दही का पानी सवा सेर, सोंठ, यवक्षार २।।-२।। तोला, गौघृत ६ छटांक लेवें। पहले शुण्ठी को पीसकर कल्क बना लेवें, फिर उसमें यवक्षार मिलाकर घृत पाक विधि से घृत पकावें। इस घृत को अवस्थानुसार रोगी को खिलाने से गुदभ्रंश में स्थायी लाभ होता है।

(५) पथ्याद्य घृत-हरड़, कालानमक, यवक्षार, बिडग, त्रिकटु, हींग, कटुकी का कल्क १-१ भाग, घी ४ भाग, दूध घी के बराबर डालकर सिद्ध करलें। यह घृत सेवन करने से गुदभ्रंश में लाभ होता है।



के साथ दें। सर्प की केंचुली जलाकर उसे बड के दूध में मिलाकर रुई का फोहा तर करके नासूर पर बांध दें।

-(स्व० वैद्य गूगनराम यादव)।

(२) गिरगिट १ नग लेकर उसके पेट में पारद २५ ग्राम भर दें और पेट को सीं दें। फिर तिलतैल २५० मि० लि० में गिरगिंट को जला दें। पीछे काले धतूरे के बीज १२ ग्राम, शुद्ध कबीला २५ ग्राम डालकर नीम के डण्डे से ७ दिन घुटाई करें। इस मलहम को नाड़ीव्रण पर लगावें। यह कण्ठमाला, नाड़ीव्रण नाशक है। खाने के लिए त्रिफला घृत तथा आरोग्यवर्द्धिनी वटी उपरोक्त विधि से दें।

-(वैद्यभूषण मंगलचन्द्र आर्य)।

अन्त: प्रयोज्य भेषज

(१) **तालसत्व**-उत्तम हरताल पत्रक ३० ग्राम, काले सांप की केंचुली १५ ग्राम, भल्लातक २५ नग लें। तीनों द्रव्यों को पृथक-पृथक् पीसकर फिर एकत्र मिला खरल करें। पश्चात् २१ दिन तक स्नुही दुग्ध में घुटाई करें। फिर शुष्क होने पर एक प्याले में डाल, दूसरा प्याला ऊपर उल्टा रख सुदृढ़ सन्धि बन्द कर कपडमिट्टी कर सुखा, चूल्हे पर चडा दें, नीचे दो अंगुल मोटी बेरी की दो लकडी जलावें। तीन प्रहर आंच दें। ऊपर वाले प्याले को गीले वस्त्र से ढका रखें ताकि शीतल रहे। स्वांग शीतल होने पर ऊपर वाले प्याले में लगा धूसर वर्ण का सत्व प्राप्त करें।

मात्रा-२ चावल। अनुपान-घृत। उपयोग-नाड़ी व्रण, नासूर तथा भगन्दर की महौषधि है।

बाह्य प्रयोज्य भेषज

(१) **अनन्त गुण तैल**-निम्बमूलान्तर त्वक् निर्गुण्डी पत्र, हरड बहेड़ा, आंवला प्रत्येक ५०-५० ग्राम, जल २।। लीटर लें। पांचों द्रव्यों को यवकुट कर क्वाथ बनावें। चतुर्थांशावशेष रहते उतार कर छान लें। इस क्वाथि में तिल तैल १ लीटर मिला आसन्न पाक करें फिर निम्न द्रव्य मिला रखना-

राल, मोम देशी, गूगल, गन्धा बिरोजा, शिलारस प्रत्येक ५०-५० ग्राम। इनको भलीभांति कूट पीस तैल में मिला खर पाक होने तक पका कपडे से छान लें फिर इस गरम-गरम तैल में कर्पूर ५० ग्राम, एसिड कार्बोलिक २५ ग्राम, तारपीन का तैल, नीलगिरी का तैल २५-२५ मि० ली० मिला दें। यह तैल उत्तम वेदनाहर, व्रण का शोधन रोपण करने वाला है।

(२) नाड़ीव्रणान्तक तैल-तिल तैल १ लीटर, जंगाल १५ ग्राम, कर्पूर २५ ग्राम, नरशिरोस्थि चूर्ण १५ ग्राम लें। तैल कडाही में डाल खरपाक कर, जंगाल का चूर्ण डाल दें। जब तैल स्वच्छ हो जाए, झाग मिट जाए तो इसमें शेष दोनों द्रव्य डालकर उतार लें और कड़छी से घोट लें। शीतल होने पर नितरा हुआ तैल प्राप्त करें। इस तैल में गॉज भिगोकर नासूर, भगन्दर में रखें।



चिकित्सक रोगी के दाहिनी ओर खड़ा होकर दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुजी में रबड का दस्ताना (अंगुली) अथवा पूरे हाथ में दस्ताना पहनकर (अंगुली पर संज्ञाहरण द्रव्य (Xylocainielly 2%) लगा लेते है। कुछ मलहम गुदा द्वार पर भी लगा दिया जाता है। रोगी को मुंह खोलकर लम्बी-लम्बी सांस लेने की सलाह दी जाती है। पुन: धीरे-धीरे अंगुली को गुदा में प्रवेश कराते हैं तथा घडी की सुई की दिशा में अंगुली को घुमाते हैं। यदि अंगुली शिकंजे में जकड़ी प्रतीत हो तो सन्निरुद्ध गुद, दरार के समान खुदरा स्पर्श हो तो गुदविदार (Anal Fisssure) मस्सा प्रतीत हो तो अर्श तथा अंगुली के सदृश्य मांस की रचना (खासकर बच्चों में) मिले तो मलाशय का पोलिप समझना चाहिए।

गुददर्शक यंत्र द्वारा भी उपर्युक्त विधि से (उत्तम प्रकाश में) सभी रोगों का परीक्षण किया जाता है।

चिकित्सा-चिकित्सा की दो विधियां अपनाई जाती हैं।

(१) औषध द्वारा तथा (२) शल्यक्रिया द्वारा

वस्तुत: सन्निरुद्ध शल्य-साध्य व्याधि है, परन्तु शल्य-कर्म के पूर्व और पश्चात् औषध (विरेचन) का प्रयोग आवश्यक होता है। प्राचीन मतानुसार परिकर्तिका की चिकित्सा ही सन्निरुद्धगुद की चिकित्सा है। महर्षि चरक ने सिद्धि स्थान के बस्तिसिद्धि नामक दसवें अध्याय के ३४वें श्लोक में परिकर्त्तिका नाशक दो वस्तियों का वर्णन किया है।

शल्य क्रिया-रोगी के नाड़ी, रक्तदाब, हृदय, फुफ्फुस आदि की पूर्ण परीक्षा के बाद ही शल्यकर्म (गुदा का बिस्फारण) किया जता है। दो दिन पूर्व से ठोस आहार बन्द करा दिया जाता है तथा मृदुविरेचन कराया जाता है। प्रारम्भ में ही टेटनस का टीका (Tetvac) लगा देना चाहिए।

शल्यकर्म पूर्ण संज्ञानाश (G.A.) में किया जाता है। अत: उस दिन किसी प्रकार का आहार या पेय रोगी को नहीं देना चाहिए। संज्ञाहरण हेतु विशेषज्ञ के द्वारा ही रोगी को बेहोश कराना चाहिए। पूर्ण संज्ञाहरण के पश्चात् रोगी को चित्त अवस्था में दोनों घुटनों को मोड़कर (Lihotomy position) मेज के किनारे कमर को खींच लेते हैं जिससे गुद प्रवेश चिकित्सक के सामने आ जायें। गुदप्रदेश को सेवलोन या डिटोल के घोल से पोंछकर विसंक्रमित कर लेते हैं। पुन: गुदा द्वार पर तथा अंगुलियां में जाइलोकेन जेली लगाकर क्रमश: दो से छह अंगुलियां दोनों हाथों की (अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी) डालकर चारों ओर घुमा देते हैं। इस प्रकार गुदा का पूर्ण विस्फार हो जाता है। पट्टी के मोटा रोल पर (गुदा में अंटने लायक) बिटाडीन मलहम लगाकर पैकिंग कर देते हैं ताकि रक्तस्राव न हो। पुन: चौडी पट्टी के द्वारा लंगोट की तरह (मूत्रमार्ग छोड़कर) पट्टी बांध देते हैं।

शल्यकर्म के बाद एक सप्ताह तक दर्दनाशक एवं सूजान नशक दवा का प्रयोग कराते हैं। एक सप्ताह तक रोगी को पूर्ण विश्राम तथा मृदु आहार-बिहार की सलाह दें। मल का वेग आने पर ही दूसरा या तीसरा दिन बैंडेज और पैकिंग को हटाना चाहिए। इसके साथ ही मृदु विरेचन देते रहना चाहिए ताकि मल सूखा और कडा न निकले।

उपरोक्त शल्यकर्म के पश्चात् सन्निरुद्ध गुद, परिकर्तिका, गुद-विदार आदि की सम्पूर्ण चिकित्सा हो जाती है तथा रोगी पूर्ण चंगा हो जाता है।

सावधानियां-शल्यकर्म हेतु रोगी को पूर्ण जांच तथा आवश्यक उपकरणों द्वारा शल्यकर्म (गुदा विस्फारण) किया जाना चाहिए। संज्ञाहरण हेतु विशेषज्ञ के नेतृत्व में कुशल शल्यक द्वारा ही सभी आत्ययिक चिकित्सा साधन उपलब्ध रहने पर शल्यकर्म करें।



सन्निरुद्ध गुद (Stricture of the Rectum) का सफल उपचार

डा० रंगनाथ मिश्र

मिश्रा ट्रीटमैन्ट होम मु०-माड़नपुर, पो०-चांद चौरा (गया) बिहार

सामान्यत: गुदा मार्ग का संकीण हो जाना ही सन्निरुद्धगुद कहलाता है। यह गुदा का एक भयंकर (दारुण) रोग है जो स्वतंत्र या अन्य रोगो के कारण होता है। जैसे-प्रवाहिका, अतिसार, अर्श, भगन्दर, मलाशय के फिरंग, राजयक्ष्मा, कैसर (कर्कटार्बुद) से गुदा में व्रण, व्रणवस्तु (Scar) तथा संकोच (Stricture) बन जाने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। माधव निदान (उत्तरार्ध) में क्षुद्र रोगों के अन्तर्गत सन्निरुद्ध गुद का वर्णन किया गया है।

गुदा का यह कष्टदायक रोग प्राय: सभी वय के स्त्री एवं पुरुषों में पाया जाता है, परन्तु स्त्रियों में अधिक होता है क्योंकि स्त्रियां प्राय: लज्जा एव सकोचवश मल और अपानवायु के वेग को रोके रहती हैं। सन्निरुद्ध गुद बाद में गुदविकार या परिकर्तिका (Anal fissure) के रूप में प्रकट होता है जो अत्यन्त कष्टप्रद होता है।

निदान-आचार्य सुश्रुत के अनुसार-

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुद माश्रित: ।
निरूणाद्धि महत्स्रोत: सूक्ष्मद्वारंकरोतिच। ४८

(सु० नि० १३)

अर्थात् मल एवं अपानवायु का वेग धारण करने से प्रकुपित हुआ वायु गुदा में पहुंचकर महास्रोत (आन्त्र) के मार्ग को अवरुद्ध कर द्वार को सूक्ष्म कर देता है।

मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छेण पुरीषं तस्यगच्छति।
सन्निरुद्ध गुदं व्याधि मेनं विघात् सुदुस्तरम्।।४९

(सु० नि० १३)

अर्थात् मार्ग के संकीर्ण हो जाने के कारण मल कठिनता से निकलता है। इस भयंकर व्याधि को सन्निरुद्ध गुद कहते हैं।

रोग का लक्षण-(१) विबन्ध (कब्जियत) का बना रहना रोग का प्रारम्भिक लक्षण है।

(२) मल का कडा, चपटा और फीते के समान पतला निकलना।

(३) शौच के बाद भी शौच करने की प्रवृत्ति बना रहना।

(४) मल त्यागने मे दर्द होना उसका मुख्य लक्षण है। खासकर सूखा एवं कडा मल निकलने पर अत्यन्त पीड़ा होती है।

(५) कभी विबन्ध और कभी अतिसार होता है। बाद मे मल के साथ आम और रक्त भी गिरता है।

(६) गुदविदार या परिकर्तिका होने पर मल के साथ रक्त की लकीर पायी जाती है।

(७) अग्निमान्द्य और आध्मान होने के कारण रोगी कमजोर और कांतिहीन दिखता है।

(८) मल त्यागने के बाद तक चेहरे पर पीडा एवं क्षोभ के भाव वर्तमान रहते हैं।

(९) कभी-कभी नवजात शिशु में गर्भ दोष के कारण गुदमार्ग बन्द (Impeforated anus) पाया जाता है। इस रोग का समावेश भी सन्निरुद्ध गुद मे कर लिया गया है।

रोग परीक्षण विधि-रोग का परीक्षण दो प्रकार से किया जाता है।

(१) गुद दर्शकयंत्र (Proctoscope) द्वारा

(२) गुदा में अंगुली डालकर (इसे संक्षेप में PR कहते हैं।

सर्व प्रथम रोगी को बांया करवट लिटा देते हैं। रोगी का दाहिना घुटना मुड़ा हुआ तथा बांया पैर सीधा रखते हैं। अब

विद्रधि दोषों की दृष्टि से असाध्य होती है। यदि रोगी में आध्मान, मूत्रावरोध, वमन, हिचकी, प्यास, तीव्र पीड़ा और श्वास लेने में कष्ट के लक्षण हों तो विद्रधि असाध्य होती है।

यकृत् विद्रधि का चिकित्सारम्भ पूर्व में दोष, भेद, निदान, लक्षण निश्चित करना चाहिए। यदि यह निश्चित हो जाये कि पित्त प्रधान लक्षण हैं, जैसा कि प्राय: देखा जाता है और आमावस्था के लक्षण हैं, तो आरम्भ से रोगी को केवल गोदुग्धाहार पर रखना चाहिए। यह क्रम एक मण्डल (चालीस दिन) अवश्य होता है। यदि पक्वावस्था हो तो भी गोदुग्धाहार श्रेष्ठ पथ्य है। यदि पक्वावस्था हो तो यकृत् स्थल के ऊपर १५ से ३० जोंक लगाकर रक्तमोक्षण करना चाहिए। इस क्रम को तीन बार तक करना चाहिए। समय पर जोंक (जलायु) उपलब्ध न हों तो, दक्षिणी बाहु की बाहवी धमनी (Axillary artery) से ५० सी० सी० तक रक्त निकालना चाहिए। रक्त निकालने से दाह, ज्वर, शोथ कम हो जाते हैं। यकृत् पर फलघृत का कदुष्ण सेंक करना चाहिए। शोभांजन (संहिजन) की छाल को पीसकर सेर भर पानी में उबालकर आधा सेर शेष रहने पर छानकर पतले कपड़े की घरी कर काढ़े में डुबोकर सेक करना चाहिए। अल्प पक्व विद्रधि इतने से शान्त हो जाती है। यदि एक बार वेग कम होने पर चार-पांच दिन बाद फिर से शेष दाह पीडा तीव्र होने लगे तो शल्यकर्म करना ही श्रेयष्कर होता है। पर उक्त चिकित्सा से पक्वावस्था में भी लाभ होता है हानि नहीं। यदि आमावस्था हो तो रक्तमोक्षण से अतिशीघ्र लाभ होने लगता है।

यदि ज्वर कम न हो तो सर्वज्वरहर लौह, जयमंगल रस पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह, लक्ष्मीनारायण रस में से कोई एक रस २ गुंजा की तीन मात्रा मधु के साथ तीन बार प्रतिदिन और संहिजन छाल १ तोला का काढ़ा पावभर जल में बनाकर चतुर्थांश शेष छानकर २ तोला महासुदर्शन सिद्ध काढा मिलाकर ऊपर से पिलाना चाहिए। ज्वर कम होते ही आरोग्यवर्धिनी २ गुंजा, पुनर्नवामण्डूर ६ गुंजा, शतपुटी अभ्रक ३ गुंजा, उत्तम मण्डूर भस्म १ ग्राम को मिलाकर तीन मात्रा प्रतिदिन, ऊपर से संहिजन छाल का काढा देने से लगभग १५ दिन में विद्रधि लक्षण शान्त हो जाते हैं। दवा पन्द्रह दिन अधिक देते रहना चाहिए। दुग्धाहार के साथ मुनक्का, मौसम्बी रस देना चाहिए।

४० दिन बाद पेया, विलेपी क्रम से अन्न देना चाहिए, दूध घटाते जाना चाहिए। पावल सूप, करेला, मेंथी, पालक, मूली सूप यथा रुचि देना चाहिए, रोगी स्वस्थ हो जाता है। यदि रोगी को आरम्भ से मूत्राल्पता, तो, वृक्क या बस्तिमूत्र में भी विकृति हो, तो आरोग्यवर्धिनी के साथ संहिजन काढ़े के स्थान में वरुणादिगण का काढ़ा बनाकर देना चाहिए। ऐसी अवस्था मे वरुणादिगण का काढ़ा लाभ करता है।

यकृत् के अन्य विकारों में भी आरोग्यवर्धिनी वटी का कार्य कामधेनु का सा देखा जाता है। इस वटी पर विद्वानों के विविध अनुभव है। मैंने यकृत् विद्रधि के दो रोगियों पर इस वटी का प्रयोग किया है। वरुणादिगण सिद्ध क्वाथ झण्डु कम्पनी बेचती थी। अब उसको बन्द कर दिया है। सन् १९५० ई० धन्वन्तरि सिद्ध चिकित्सांक के पृष्ठ ११२ पर मेरा एक लेख "विद्रधि की अनुभूत चिकित्सा'' शीर्षक से प्रसिद्ध हुआ है। जिसमें कुछ रोगियों का विवरण दिया था। इस लेख का विस्तार न हो जाये इससे रोगी का विवरण नहीं लिख रहा हूँ। पाठक उस अंक को भी देखने की कृपा करें।



यकृत् विद्रधि पर मेरे अनुभव

वैद्य नागेशदत्त शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य
बम्बई (महा०)

आज के आधुनिक निदान में विद्रधि को Abscess माना जाता है। यह एक भयंकर ऊंचा उठता हुआ उग्र शोथ है। जिसकी जड़ें गहरी होती हैं, पीड़ा भयंकर होती है। आकार में यह अवयव विशेषकर गोल और लम्बा दोनों प्रकार का रूप धारण करता है। यह शोथ शीघ्र पकता है। इस पूयावस्था पक्वावस्था का वर्णन A circumscribed collection of pus surrounded by a zone in which acute inflammatory changes are evidently present, किया जाता है। उपरोक्त वर्णन पक्वावस्था में शल्यकर्म साध्य है। वैद्य के पास समय से रुग्ण आ जाये तो आमावस्था में उत्तम उपचार द्वारा शोथ नष्ट करना ही कुशलता है।

नोपगच्छेत यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक्।
पर्यागते विद्रधौतु सिद्धिर्नैकान्तिकी स्थिता।।

-सु० चि० १७-३८

शोथ के पक्व हो जाने पर, पूयमय हो जाने पर चिकित्सा सफलता अनिश्चित है। सुश्रुत ने आम पक्वैषणीय में व्रणशोथ की तीन आमावस्था, पच्यमानावस्था और इन दोनों से भिन्न अवस्था पक्वावस्था को विद्रधि बतलाया है।

विद्रधि की सम्प्राप्ति-त्वचा, रक्त, मांस, मेद, धातुओं में होती है। इसका स्थान संश्रय अस्थि है। चार धातुएं एवं त्वचा दूष्य है। दोषों में पृथक्-पृथक् तीन दोष सन्निपात, रक्तज एवं क्षयज इस प्रकार से भेद होते हैं। विद्रधि तीव्र (Acute) एवं जीर्ण (Cronic) होती है। विद्रधि बाह्य एवं आभ्यान्तर होती है। त्रयो रोगमार्गा:-शाखा रक्तदयो घातवस्त्वक् या रक्तादि धातु में एवं त्वचा बाह्य विद्रधि के स्थान है। त्वचा, मांस, स्नायु, बाह्य विद्रधि के स्थान हैं। मर्मास्थि सन्धय:-स मध्यमो रोगमार्ग:। कोष्ठ:-स आभ्यन्तरो रोगमार्ग:। मध्यम मार्ग एवं कोष्ठगत विद्रधि अधिक गम्भीर दारुण व घातक आभ्यन्तर विद्रधि होती है। बाह्य भाग में होने वाली विद्रधि तीव्र पीड़ादायक होती है। पर उपचार करने में सरल होती है। आभ्यन्तर विद्रधि की चिकित्सा करना कठिन होता है।

आभ्यन्तर विद्रधि के स्थान गुदा, बस्तिमुख, नाभि, कुक्षि, दोनों वंक्षण, दोनों वृक्क, प्लीहा, यकृत, हृदय और क्लोम है। नाभि, हृदय, क्लोम, वृक्क की विद्रधि बड़ी कठिन विद्रधि होती है।

मुझे अब यकृत् विद्रधि के सम्बन्ध मे विचार प्रगट करना है। दोषों के भेद से शरीर के जिन बाह्य और आभ्यन्तर स्थानों में विद्रधि होती है, उनमें अन्यतम किसी दोष से आरम्भ हो सकता है। पर जिन विशेष अवयवों व स्थानों में विद्रधि यकृत् जैसे रक्त संस्थान के रक्त व मांस धातु एवं यकृत् के कर्म की हानि करती है। इनका परिणाम पूरे शरीर पर पडता है। यकृत् रक्तधरा कला का स्थान है। "तस्यां शोणितम् विशेषश्च सिरायु यकृत् प्लीहोश्च भवति। -सु० शा० ४-१०

यकृत् विद्रधि में पित्तज विद्रधि के एवं रक्तज विद्रधि के लक्षण पाये जाते हैं। आचार्यों ने विद्रधि लक्षण बाह्य विद्रधि के रूप में लिखा है-

पक्वोदुम्बर संकाशा श्यावो वा ज्वर दाहवान।
क्षिप्रोत्थान प्रपाकश्च विद्रधि: पित्तसंभव:।।

-सु० नि० १-४

ज्वर और दाह तो सभी विद्रधियों में होता है, पर यकृत् विद्रधि में तीव्र ज्वर, तीव्र दाह और अत्यन्त स्वेद आता है। दक्षिण आनुपार्श्विक प्रदेश (Right Hypochondric gegion) में पीड़ा होती है। इसका उठाव कंधे की तरफ होता है। ज्वर अन्येद्युष्क भी देखा जाता है। हृल्लास, जी मिचलाना, श्वेतकायाणुभयता जांच करने पर पाये जाते हैं। यकृत् पर स्पर्शासहिष्णुता और उत्सेध श्वास लेने पर दक्षिण पार्श्व में गति कम, वाम कुक्षि की अपेक्षा प्रतीत होती है। सान्निपातिक

गोमूत्र (गोदुग्ध भी कुछ लोग लेते हैं) सोंठ के चूर्ण के साथ लेते रहने से कामला दूर होता है।

१२. वंगसेन की कुटज गुटिका पाण्डु, कुष्ठ, यकृत्-प्लीहा, कामला, अर्श शोथादि रोगों में अच्छा काम करती है। योग यों है-८ पल शिलाजीत में १० दिन तक १६-१६ पल कुटज, त्रिफला, नीम, पटोल, मोंथा और अदरक के रसो की भावनाएं दें फिर उसमें ८ पल चीनी (या खांड) मिलावें फिर वंशलोचन, पीपल छोटी, आंवला, कर्कट, कटेरी के फल और जड, दालचीनी, इलायची छोटी, तेजंपात डाल कूट कपड़छन करके ३ पल शहद डालकर बहेडे के फल के बराबर बडी गोलियां वनालें। १-१ गोली प्रात: सायं लें, ऊपर से अनार का रस, कांजी, दूध, मांसरस मुग्द यूष, सुरा या आसव जो वैद्य बतावे पिये, अन्न न ले पर हितकर अन्य द्रव्यों का सेवन करें।

१३. उसने हरिद्राद्य घृत तथा गुडूची घृत को भी उत्तम कामलानाशक माना है। पिछला योग काफी सरल है-

गुडूची रसकल्काभ्यां सिद्धं क्षीर चतुर्गणे।
माहिषं घृतमेवाशु कामलाहरमुत्तमम्।।



उदर रोगों पर कुछ सफल योग

१. उदरशूल नाशक योग:

शुद्ध कुचला २५ ग्राम, सौंठ, मिर्च, पीपल, देसी नौसादर, हींग अच्छी प्रत्येक २५-२५ ग्राम और शुद्ध गन्धक ५० ग्राम। प्रथम हींग को खरल करें। अन्य वस्तुओं को बारीक महीन कपडछन चूर्ण मिलाकर घोटें और जल के योग से मटर के समान गोलियां बना लें। १-१ गोली खाने के बाद ठण्डे पानी के साथ सुबह सायं १० दिन लें। इससे दीपन, पाचक, अग्निबर्द्धक, उदर में मन्द-मन्द शूल, भोजन को पचाना, इन तीनों प्रकार के उदर रोगों में बहुत फायदा करती है।

२. उदरशूल हर योग :

जायफल चूर्ण ४० ग्राम और शंख भस्म १० ग्राम दोनों को पीसकर रखें। १ तोला सुबह, सायं गर्म पानी के साथ १० दिन लें, कैसा भी पेट दर्द, शूल को १० मिनट में शर्तिया दूर करता है। इसके अलावा शीत से, अजीर्ण से मरोड़युक्त पतले दस्त हों तो केवल २ ही खुराक में दस्त बन्द कर देता है। परन्तु १ घन्टे बाद ही १ खुराक देना पानी के साथ जरूर फायदा होता है।

३. उदरशूल हर योग :

एलुवा, सुहागा चौकिया, काली मिर्च, फिटकरी सफेद और अजवायन, काला नमक, ये सब चीजें समभाग लेकर कपडछन चूर्ण करके घीक्वांर (गुवार-पाठा) के रस में घोटकर गोलियां बना लें।

मात्रा-१ से २ गोली गर्म पानी के साथ। इस से उदरशूल व वायुगोला में बहुत फायदा होता है। मेरा अनुभव किया हुआ नुस्खा है।

४. रेचक वटी :

काली मिर्च ५० ग्राम, शुद्ध जायफल ५० गाम, केशर असली ३ ग्राम, कपूर देशी ९ ग्राम, सैंधा नमक १० ग्राम, सबको खरल मे डालकर महीन घोट लें, नीबू का रस डालकर घोटकर गोलियां बना लें। १ से ३ गोली पानी के साथ खाने के बाद इन गोलियों से जुलाब दस्त साफ होता है। पेट की वायु ठीक हो जाती है। खट्टी डकारें नहीं आती हैं और तीनो दोषो में रेचन के लिये ठीक है।

-वैद्य महेश नारायन मोहता

कामला की सफल चिकित्सा तथा अनुभव

वैद्य विष्णुदेव अधिकारी बिलासपुर (म० प्र०)

कामला की चिकित्सा के सम्बन्ध में निम्न ज्ञान कर लेना आवश्यक है-

१. *रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत् ।*
ततः प्रशमनी कार्या क्रिया वैद्येन जानता ।।

-भै० रत्नावली ।

अर्थात् पहले कामला से पीड़ित रोगी का स्नेहन करावें फिर विरेचन दें तत्पश्चात् प्रशमनी चिकित्सा पर ले जायं।

२. विरेचन मृदु होना चाहिए-निशोथ शर्करा मिलाकर या इन्द्रायण की जड़ को गुड़ के साथ।

३. त्रिफला, गिलोय, दारुहल्दी या नीम का स्वरस शहद मिलाकर सवेरे-सवेरे पिलाना उत्तम माना गया है।

४. द्रोणपुष्पी स्वरस का अंजन कामलानाशक माना गया है।

५ गोमूत्र-भावित मण्डूर भस्म का सेवन कामला में बहुत लाभ करता है।

६. बन्दाल फल की नस्य (सावधानी से दें अन्यथा नुकसान भी हो सकता है।) या कर्कोटक की जड़ नस्य दें।

७. फलत्रकादि क्वाथ इस रोग की सिद्ध औषध है।

हरड़, बहेड़ा, आमला, कुटकी, नीम की छाल, चिरायता और अडूसे के पत्ते समभाग जौकुट कर ३ तोला आधा किलो जल में औटावें, चौथाई रहने पर छान शहद मिला शीशी में रखें और २ या ३ बार में पीलें। यह पाण्डुरोग और कामला दोनों को ठीक करता है। धात्रीलौह या नवायस चूर्ण २ से ४ रत्ती शहद के साथ चाट ऊपर से उपर्युक्त क्वाथ देने से भी बहुत शीघ्र लाभ होता है।

८. आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी ने वैद्य सहचर (वैद्यनाथ प्रकाशन) में शुद्ध कासीस मात्रा ४ रत्ती मधु के अनुपान से तथा कासनी के पत्तों के स्वरस ५ तोला जल के साथ ३ बार प्रतिदिन देने से, अनुपान में कुलफा का रस २ तोला देने से लाभ होता है। कासीस [illegible] बढ़ाता है जिससे [illegible] दूर होता है। पहले सप्ताह में [illegible] है, दूसरे में बल बढ़ता है, तीसरे में रक्त और मांस की वृद्धि होती है।

कासनी के रस का प्रयोग लिवर के [illegible] को दूर कर कामला को दूर करता है। ३ सप्ताह में ही कामला [illegible] है। पहले सप्ताह के प्रयोग से अवरोध दूर होता है, [illegible] अरुचि नष्ट होती है। मूत्र साफ उतरता है और [illegible] बाद में ठीक होने लगता है। दूसरे हफ्ते में अन्न के प्रति अभिलाषा बढ़ती है। तीसरे सप्ताह में केवल दुर्बलता रह जाती है, उसके लिए कासीस भस्म का प्रयोग बतलाया है। कासीस भस्म विबन्ध पैदा कर सकती है, अतः त्रिफला क्वाथ या पटोलादि क्वाथ देना आवश्यक होता है।

९. कामला के रोगी को लोहासव तथा पुनर्नवासव दोनों को मिलाकर देना काफी लाभ देता है।

१०. नवायस चूर्ण (सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़ बहेड़ा, आंवला, मोथा, विडंग, चित्रक १-१ भाग, लोहभस्म ९ भाग पीस-छान चूर्ण करलें) २ से ६ रत्ती तक शहद और घी मिलाकर देने से पाण्डु, हृद्रोग, कामला, कुष्ठ और अर्श दूर होते हैं।

११. रसिक और कविराज श्री लोलम्बराज ने २ प्रयोग इन शब्दों में दिये हैं-

(क) *गिरिमृद्रात्रिधात्रीणां अंजनं कामलापहम् ।*
इदं न हि भवेन्मिथ्या शपथस्तु तवांगने ।।

हे अंगने ! तेरी शपथपूर्वक कहता हूं कि गेरू, हल्दी आंवलो का अंजन (चूर्ण) सेवन करने से (या इनके चूर्ण का अंजन नेत्रों में लगाने से) कामला दूर होता है। यह योग कभी झूठा नहीं हो सकता।

(ख) *अये मनोज्ञ कुण्डले स्फुरन्मुखेन्द्रमण्डले ।*
गवां पयः सनागरं निहन्ति कामलाभरम् ।।

"हरी इलाइची के बीज, नारियल दरियायी, कपूर कचरी प्रत्येक १०-१० ग्राम लें सूक्ष्म कपडछन चूर्ण कर लें फिर उसमें ५ ग्राम जहरमोहरा पिष्टी मिला घोटकर एक सम करके रख लें।'' औषधि तैयार है।

एक-एक ग्राम चूर्ण २ तो० नींबू के शर्बत या सिकन्जवीन निम्बू में मिलाकर १-१ घंटे पर दिन में ५-६ बार चटाएं। मिचली आनी बन्द हो जाएगीं।

नोट-यदि मितली आनी जल्द बन्द न हों तो ४ तो० सिकन्जवीन नींबू+ २ तो० खाने का नमक एक लीटर गरम जल में मिलाकर पूरे का पूरा पिला दें और गले में मुर्गे का पंख आदि लगाकर हरकत करें। इससे खूब खुलकर उल्टी आ जावेगी, पश्चात् ऊपरी नुस्खा प्रयोग करें।

छर्दि (वमन, उल्टी) पर अनुभव

स्वस्थ मनुष्य का आमाशयस्थ द्रव्य जीर्ण होने के पश्चात् अधोगत रूप से मलाशय द्वारा बाहर निकलता है यही द्रव्य यदि किसी कारण से उर्ध्वगत होकर एकाएक तीव्र रूप में मुख द्वारा बाहर आ जाय, इसी अवस्था को छर्दि का वमन कहते हैं। यह स्वयं कोई रोग न होकर अन्य कारणों के उपद्रव-स्वरूप ही उत्पन्न होता है यथा-आंत्र-प्रदाह, आंत्र-व्रण, आंत्रपुच्छ-प्रदाह, शिर में चोट, ब्रेन ट्यूमर, मस्तिष्का वरण प्रदाह, तीव्र ज्वर, कालेरा (हैजा), खाद्य-विषाक्तता, विष-विषाक्तता इत्यादि और कुछ स्नायुविक कारण भी होते हैं यथा किसी विशेष पदार्थ के देखने या गन्ध से, गर्भावस्था, मूत्र विषमयता इत्यादि।

जब तक मूल कारण दूर नहीं होंगे तब तक कै आनी भी बन्द नहीं होगी अत: मूल कारण का पता लगाकर साध्यासाध्य का विचार करके चिकित्सा करनी चाहिए। सामान्यता निम्नलिखित औषधि हर प्रकार के वमन में अधिकाधिक लाभप्रद प्रमाणित हुई है बल्कि कभी-कभी तो चमत्कारिक असर दिखाती है-

"वट जटा, नारियल जटा, बडी इलायची सालम और सन्तरे का छिल्का शुष्क प्रत्येक २००-२०० ग्राम लें एक मिट्टी की हॉडी में बन्दकर मुंह पर सामान्य कपरौटी करके रात्रि को १० कि० ग्रा० उपलों के मध्य रख कर फूंक दें। प्रात: हौंड़ी से औषधि की राख निकाल, सूक्ष्म चूर्ण बनाकर रख लें) यह चूर्ण १०० ग्राम, कर्पूर कचरी का सूक्ष्म कपडछन चूर्ण १०० ग्रा० मयूर चन्द्रिका भस्म, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण, नारियल दरियायी का चूर्ण, प्रवाल पिष्टी, जहरमोहरा पिष्टी प्रत्येक २५-२५ ग्राम, पिपरमैन्ट ५ ग्रा०-सबको असली गुलाबजल में ३ दिन घुटाई करके शुष्क कर लें और शीशी में सुरक्षित रख लें। औषधि तैयार है।''

मात्रा २ से ३ रत्ती तक उम्र के अनुसार, दिन में ४ से ८ बार तक (रोग की तीव्रता के अनुसार) मधु, नींबू का शर्बत, अर्क पुदीना या मिश्री के साथ दें।

अनुभूत वमनकारक योग

शरीरस्थ दोषों की अतीव वृद्धि यथा कास-श्वास-निमोनिया आदि में कफ की वृद्धि, अम्लपित्तादि में पित्त की वृद्धि, आमवातादि में आंव का संचय, उदर में मल का संचय या विष भक्षण आदि अवस्थाओं में कभी-कभी दोषों का शमनोपाय निरर्थक सिद्ध होता है अथवा रोगी की जान खतरे में पड़ जाती है। ऐसी दशा में वमन-विरेचनादि द्वारा शरीरस्थ दोषों का निर्हरण कर देने से शीघ्र ही राहत मिल जाती है एवं रोगी की प्राणरक्षा हो जाती है। यहां वमनोत्पादक एक अत्युत्तम योग दे रहा हूं जिसे बनाकर आत्ययिक अवस्था के लिए सदैव अपने पास रखना चाहिए-

विदेशी आक की मूल (जो दक्षिणी अमेरिका के ब्राजील प्रदेश से आती है और सभी होमियोपैथिक औषधि-निर्माताओं के यहां इपिकाक क्रुड के नाम से मिल जाती है) १०० ग्राम, रीठा का छिल्का शुष्क किया हुआ १०० ग्राम, राई ठीक से सुखायी हुई १०० ग्राम और मैनफल २०० ग्राम-सबका चूर्ण बना एक सम कर रखें (सूक्ष्म चूर्ण बनाने की आवश्यकता नहीं) बस औषधि तैयार है।

आवश्यकता के समय १० ग्राम चूर्ण आधे लीटर जल मे उबालें और ३-४ उबाल आ जाने पर रोगी को गरमागरम पिला दें अथवा वैसे ही उष्ण जल में घोलकर पिला दें। बस ५ मिनट के अन्दर वमन होनी प्रारम्भ हो जायेगी। बार-बार गर्म जल पिलाते रहें जब तक दोषों का पूर्णतया निर्हरण न हो जाय। आवश्यकतानुसार दूसरी मात्रा भी दी जा सकती है।

नोट-इच्छुक सज्जन निर्दीष्ट स्थान से इपिकाक खरीदें। मुझसे अनावश्यक पत्राचार न करे।

अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि पाचन विकारो पर एक अनुभूत चूर्ण-

विभिन्न उदर-व्याधियां तथा मेरे अनुभव तथा कुछ परीक्षित योग

वैद्य (डॉ०) एम० अहमद
पो०-सुघर छपरा, वलिया (उ० प्र०)

मनुष्य द्वारा लिया गया खाद्य-पदार्थ (भोजन) जब गले से नीचे उतरता है, वहां से (Stomach आमाशय) लेकर भोज्य पदार्थ के जीर्ण होकर शरीर से बाहर निकलने तक के अंग (Anus गुदमार्ग) को उदर गुहा, अन्न-नलिका प्रणाली, पाचन तंत्र या Alimentary System के नाम से जाना जाता है। पाचन-क्रिया में सहयोग देने वाले कुछ अंग यथा यकृत, पित्ताशय, अग्न्याशय, प्लीहा आदि भी पाचन-प्रणाली के ही अन्तर्गत अन्तर्भूत है। जिस प्रकार जीवन-रक्षा हेतु भोजन का सर्वाधिक महत्व है उसी प्रकार ग्रहण किए भोजन को शरीर के सर्वांगीण विकास हेतु चयापचय की क्रिया करने में उदर-गुहा का सर्वोपरि स्थान है। भोजन को पचाकर शरीर में रस-रक्त-ऊर्जा-शक्ति आदि की वृद्धि करना ही पाचन-प्रणाली (उदर-गुहा) का मुख्य कार्य है। अतएव शरीर की रक्षा हेतु पाचन-प्रणाली का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है।

पाचन-प्रणाली में विभिन्न शारीरिक कार्य सम्पन्न करने हेतु भिन्न-भिन्न अंग हैं जिनमें थोड़ी भी विकृति आ जाने से पूरा शरीर ही रोगी हो जाता है। अतएव पाचन-प्रणाली की किसी भी विकृति पर सर्वप्रथम ध्यान देना प्रत्येक मनुष्य के लिए अति आवश्यक है। यहां विशेष विस्तार में न जाकर कुछेक उदर-व्याधियों पर स्वानुभूत, शास्त्रीय, पेटेन्ट योगों एवं अन्यान्य विद्वान् वैद्यों के कुछ उत्तम चुने हुए योगों का ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जायेगा। यदि पाठक गण इन्हें बनाकर स्वयं का एवं रुग्ण जनों का कुछ भी कल्याण कर सकें तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

तृष्णाधिक्य पर (आयुर्वेदिक एलेक्ट्रॉल)

सौंफ, धनियां, श्वेत चन्दन का चूरा, गुलाब-पुष्प, कमलगट्टे की गिरी, नागरमोंथा, छोटी इलायची के बीज प्रत्येक का अति सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण १००-१०० ग्राम, टाटरी (निंबू सत्व) २०० ग्राम, कलमी शोरा ३०० ग्राम, सैंधव लवण ४०० ग्राम, द्राक्षा शर्करा (ग्लूकोज) १६०० ग्राम, पिपरमैण्ट या मेन्थॉल (सत्व पुदीना) १६ ग्राम सबको एक बड़े खरल में खूब मर्दन करके एक सम कर लें और ५०-५० ग्राम औषधि पैकेट में एअर टाइट पैक करके सुरक्षित रखें।

गुणोपयोग-वमन, अतिसार, विसूचिका, लू लगना, अग्निदग्ध, तीव ज्वर, रक्तस्राव आदि रोगों में रोगी की प्यास (तृषा) अतीव बढ जाती है और बार-२ शीतल जल पीने पर भी तृषा शान्त नहीं होती। ऐसी हालत में इस चूर्ण का २-२ चम्मच एक गिलास (४ औंस) जल में मिलाकर हर ३-३ घंटे पर पिलाने से शीघ्र ही तृषा शान्त हो जाती है; साथ ही अरुचि, दाह, जलन, उदर में दाह आदि भी शान्त हो जाते हैं। गरमी की ऋतु में यात्रा में यदि प्यास लग जाय और तत्काल जल न मिले ऐसे में इसकी एक चुटकी मुंह में रखने मात्र से ही प्यास गायब हो जाती है, चमत्कारिक औषधि है।

यदि रोगी की तृषा किसी भी प्रकार बन्द होने में न आये तो पीपल वृक्ष की शुष्क छाल को जलाकर उसके अंगारों को पानी में बुझा दें और उस पानी को छानकर उसमें उपरोक्त दवा घोलकर पिलाने से प्यास शीघ्र और अवश्य ही नष्ट हो जाती है, परीक्षित है। साथ ही इस योग से वमन भी नष्ट होती है।

उबकाई (मितली) व थुकथुकी आना

यह एक वमन की ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें रोगी ऐसा अनुभव करता है कि अब उल्टी होगी लेकिन बाहर कुछ भी नहीं निकलता, यह कृमि-विकार या अम्लपित्त के उपद्रव स्वरूप होती है तथा औरतों को प्राय: गर्भावस्था में भी होती है। किसी-२ रोगी को उबकाई के साथ-२ या अकेले मात्र दिन भर थुकथुकी ही आती रहती है। मूल कारण के निवारण से उपद्रव स्वयं ही शान्त हो जाता है। उबकाई व थुकथुकी आने मात्र में निम्न योग अति लाभप्रद प्रमाणित हुआ है-

. (४) समूल रोग निवारण योग-

(क) ''अम्लपित्तहर रस''-शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, लौह भस्म, मण्डूर भस्म, अभ्रक भस्म शतपुटी प्रत्येक १-१ तोला; स्वर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल भस्म चन्द्रपुटी, जहरमोहरा पिष्टी, शंख भस्म, शु० स्वर्ण गैरिक प्रत्येक २-२ तो०; ताजी शुष्क हरीतकी का चूर्ण सब दवाओं के बराबर अर्थात् १५ तो०- सबको विधिवत् मिला आंवला स्वरस, गिलोय स्वरस और शतावरी-क्वाथ की २१-२१ (न्यूनतम ७-७) भावना दें, सुखाकर शीशी में सुरक्षित रखें (इसकी ४-४ रत्ती की वटिका या कैपसूल भी बना सकते हैं)।

मात्रा-४ से ८ रत्ती तक प्रातः सायं मधु या शर्बत आंवला में चटाकर ऊपर से अर्क सौंफ ५ तो० या अम्लपित्तहर पेय २ तो० समभाग जल मिलाकर पिलायें।

इसके ३ माह सेवन कर लेने से अम्लपित्त रोग समूल नष्ट हो जाता है।

(ख) ''अम्लपित्त हर मिश्रण-सूतशेखर रस, अम्लपित्तान्तक लौह, प्रवाल पंचामृत, कामदुधा रस (मुक्तायुक्त) प्रत्येक १-१ तो०, जहरमोहरा पिष्टी, अमृता सत्व, कर्पूर-कचरी का सूक्ष्म चूर्ण, आमलकी रसायन प्रत्येक २-२ तो० सबको खरल में ३-४ घंटे दृढ मर्दन करके शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा-रोग की अवस्थानुसार ६ से १२ रत्ती तक प्रातः-सायं मधु या शर्वत आंवला में चटाकर ऊपर से अम्ल पित्तहर पेय २ तो० समभाग जल मिलाकर दें।

यह मिश्रित योग २ से ३ माह के अन्दर अम्लपित्त और आमाशय प्रदाह को उपद्रवों सहित निर्मूल कर देती है''।

(ग) ''अम्लपित्त हर पेय''-आमलकी, अमृता (गिलोय), पटोल पत्र, पित्तपापड़ा, कर्पूर-कचरी, मुलहठी प्रत्येक ५००-५०० ग्राम लें जौकुट चूर्ण कर ४८ लीटर जल में २४ घंटे भिगोने के पश्चात् चूल्हे पर चढ़ाकर पकायें। छः लीटर जल शेष रहने पर उतार कर कुछ ठंडा होने पर खूब मसलकर कपडे में छान लें और इसमें ३ कि० मिश्री + ३ कि० ग्लूकोज मिलाकर अग्नि पर पकायें। एक तार की चाशनी हो जाने पर उतार कर उसमें पोटाशियम मेटा बाई सलफाइड ५ ग्राम और पिपरमैण्ट ५ ग्राम घोटकर मिला दे और शीतल होने पर शीशियों में पैक कर लें।

मात्रा-२ से ८ चाय के चम्मच तक दवा आयु और रोग की अवस्थानुसार दिन में २ से ३ बार तक समभाग जल मिलाकर दें। इसे उपरोक्त औषधियों के अनुपान स्वरूप देने से अतिलाभप्रद है।

यह पेय अकेले भी अम्लपित्त को सोपद्रव एवं समूल नष्ट करने में समर्थ है।

(घ) कब्ज रहने पर रोज रात्रि को सोते समय "अविपत्तिकर चूर्ण'' २ चम्मच (१० ग्रा०) उष्णोदक से दिया करें। पेट मे आध्मान, भारीपन व शूल रहने पर भोजन के मध्य "शिवाक्षार पाचन चूर्ण'' १-२ चम्मच ले लिया करें।

नोट १-गर्ग की ''एसिडिन कैपसूल'' अम्लपित्त पर अत्यधिक लाभप्रद प्रमाणित हुई है। आधुनिक एन्टासिड्स से बढ़कर है। २-२ कैपसूल्स दिन में २ से ३ बार तक जल से लेवें। मेरी दैनिक चिकित्सा में अब तक इसकी सहस्रों शीशियां फरोख्त हो चुकी हैं।

नोट २- आमाशय व्रण, अन्नद्रवशूल, ग्रहणी पक्वाशय व्रण, परिणाम शूल एवं प्रपाच्य व्रण को दूर करने के लिए भी अम्लपित्त में वर्णित योग ही प्रयुक्त होते हैं। उचित औषधियों का चुनाव कर रोगानुसार एक से २ वर्ष तक प्रयोग करने चाहिए।

गैस ट्रबल (उदरवात) और आध्मान पर अनुभव-

आधुनिक युग में सर्वाधिक व्याप्त इस व्याधि से कौन परिचित नहीं होगा। अतः विस्तार में न जाकर यहां एक गैस एवं अफारा नाशक शतशोनुभूत प्रयोग दे रहा हूँ। इससे मूल व्याधि के साथ-साथ उदरशूलादि उपद्रव भी समूल नष्ट हो जाते हैं (आहार-विहार, दिनचर्या, नशीले पदार्थों के सेवन इत्यादि के बारे में पूर्ण संयम-नियम का पाल अति आवश्यक है)-

घी में भुनी उत्तम हिंग, एरण्ड तैल में शोधित कुचला चूर्ण, मण्डूर भस्म, टंकण भस्म, शंख भस्म प्रत्येक १-१ तो०; छिल्का दूर कर पूर्णतः शुष्क किया हुआ लशुन, सुण्ठी, अजवायन, करन्ज बीज मज्जा, काला नमक प्रत्येक २-२ तो० सबको सूक्ष्म घोट-पीस कुमारी-स्वरस में ३ घण्टे दृढ़ मर्दन करके ४-४ रत्ती की गोलीयां बना छाया-शुष्क कर एअर टाइट शीशी में सुरक्षित रखें। इसका नाम "गैसहर वटी'' है।

मात्रा-१-२ वटी दिन में २ से ४ बार तक उष्णोदक से दें।

"स्वादिष्ट पाचन चूर्ण"

शुद्ध घी में भुनी उत्तम हिंग १० ग्राम, शंख भस्म २० ग्राम, टाटरी ३० ग्रा०, चित्रकमूल का सूक्ष्म चूर्ण ४० ग्रा०, काली मिर्च का सूक्ष्म चूर्ण ५० ग्राम, भुने हुये श्वेत जीरे का चूर्ण ६० ग्राम, जौ... नुसार १२० ग्राम संचल लवण ३३० ग्राम सबको घोटकर एक ... करके शीशी में पैक कर लें।

१।।-१।। माशे चूर्ण दिन में ३-४ बार भोजनोपरान्त उष्ण जल से लें या यथावश्यक वैसे ही चूसकर खायें। अति-स्वादिष्ट एवं पाचन-विकारों में उपयोगी चूर्ण है।

नोट-अम्लपित्त, आंत्रव्रण एवं उरःक्षत में इसे न दें।

तीक्ष्णाग्नि पर सुलभ योग

कभी-कभी किसी व्यक्ति को पाचक पित्त की वृद्धि हो जाने से भूख राक्षसी हो जाती है जिसे तीक्ष्णाग्नि या भस्मक रोग कहते है। मधुमेह मे भी कभी-कभी भूख अतीव बढ़ जाती है, ऐसे में जब तक मधुमेह का निवारण नहीं होगा तब तक अग्नि सामान्य नहीं होगी। भस्मक रोग पर मेरे पिताजी की डायरी से एक योग प्राप्त हुआ है जो अत्यन्त ही उपयोगी भासता है। उनके अनुसार-"इस योग को ४० दिन सेवन कर लेने से अति प्रवृद्ध भस्मक रोग भी शान्त हो जाता है और इसे यदि स्वस्थ व्यक्ति २१ दिन सेवन कर लें तो उसे एक माह तक भूख नहीं सताती''। मुझे तो भस्मक के एक भी रोगी आज तक नहीं मिले, यदि आप लोगों में से किसी को मिलें तो अवश्य ही परीक्षण करें और फलाफल की सूचना दें-

शकरकन्द को काट-सुखाकर पिसवा लें, यह शकरकंद का आटा २ सेर लेवें। चिरचिटे के पोधों पर बीज (जो कपडों में चिपट जाते है) खूब पुष्ट होकर सूखने लगें तो उन्हें सावधानी से उतार कर ओखली में कुटवा कर चावल निकाल लें। चिरचिटे के इन चावलों का आटा १ सेर लेवें। सालम पंजा का चूर्ण आधा सेर लें और कोलस्थि मज्जा (विर की गुठली की मिंगी) को सुखाकर बनाया गया चूर्ण १ पाव लेवें, फिर अविपत्तिकर चूर्ण १ पाव लें, अब सबको मिलाकर एक सम कर लेवें। औषधि तैयार है।

सेवन-विधि-५ तो० उक्त चूर्ण + ५ तो० मिश्री + आधा सेर भैस का दूध + २ तो० भैस का घी-सबको आग पर पकाकर खीर बना लें और इतनी खीर रोगी को प्रतिदिन प्रातः सायं खिलावें।

अम्लपित्त (Hyper Acidity) और आमाशय प्रदाह (Gastritis) पर अनुभव

(१) वे आहार-विहार जिनसे रोग पैदा हो या रोग वृद्धि हो, का पूर्णतः परित्याग सर्वप्रथम आवश्यक है। अर्थात् 'पथ्यापथ्य' का विशेष ध्यान रखें।

(२) **संशोधन चिकि०**-यदि रोग प्रवृद्ध अवस्था में हो तो सर्वप्रथम वमन-विरेचन द्वारा उदरस्थ पित्त का निर्हरण करें। वमनार्थ प्रातःकाल शौच से निवृति के पश्चात् 'अम्लपित्तहर पेय ५० मि० लि० + मैनफल चूर्ण २० ग्रा० + उष्ण जल १ ली० मिलाकर पूरे का पूरा पिला दें। १५ मिनट के अन्दर ही उल्टी होने लगेगी। जब-जब उल्टी हों, गर्म पानी पिलाते रहें। ४-५ बार में आमाशय पित्त का निर्हरण हो जाएगा। पश्चात् दिन में सामान्य सात्विक आहार दें, पुनः रात्रि को सोते समय "अम्ल-पित्त हर पेय ५० मि० ली० + निशोथ का चूर्ण २० ग्राम + गर्म जल २५० मि० ली० मिलाकर पिलाएं, प्रातः ३-४ दस्त आकर उदरस्थ वृद्ध पित्त का शमन हो जाएगा। प्यास लगने पर अर्क सौफ ग्लूकोज मिलाकर दें।

(३) *"शूलहरण योग"*-कौडी (आमाशय) प्रदेश में जब तीव्र शूल हो तो निम्न लिखित औषधि से १५ मिनट के भीतर ही शूल पूर्ण रूप से शमन हो जाता है। आधुनिक इंजे० या टेबलेटों से अधिक प्रभावकारी है। इसे जब भी शूल हो ३-३ घंटे के अन्तर से २-४ खुराके सेवन करा देनी चाहिए-

"शंख भस्म १० ग्राम, शुक्ति भस्म १० ग्रा०, कपर्द (वराटिका) भस्म २० ग्रा०, सूतशेखर रस (लघु) १० ग्राम, शूल-वज्रिणी वटी १० ग्राम, मधुरक्षार ४० ग्राम'' सबको खूब घोटकर एक सम करके शीशी मे सुरक्षित रखें।

मात्रा-रोग की अवस्थानुसार १ से २ ग्राम तक हर ३-३ घंटे पर जवारिश कमूनी (हमदर्द) में मिलाकर, अर्क सौफ से या मात्र उष्णोदक से दें।''

नोट-यदि भोजन के बाद नियमित रूप से दर्द होता है तब प्रति बार भोजनोपरान्त शंखवटी २ + शूलवज्रिणी वटी २ + शिवाक्षार पाचन चूर्ण २ ग्राम अर्क सौफ या उष्ण जल के अनुपान से दें।

आम निस्सारक वटी-

पेट मे आम का संचय हो जाने से आमवात, वातरक्त, गठिया, उर्ध्ववात, कृमि-विकार, रक्तविकार आदि व्याधियां घर करने लगती हैं। ऐसी अवस्था में उदर संचित आम-विष का निस्कासन कर देने से मूल व्याधि स्वयमेव शीघ्र शमन होने लगती है। एतदर्थ मेरा यह खोजपूर्ण अनुभूत योग अधुना उपलब्ध सभी आमनिस्सारक योगों से बढ़कर लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। पाठकों की सेवा में यह गुप्त योग प्रस्तुत है-

इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण) के फलों का ताजा गूदा २ कि० ग्रा०, नया गुड़ १ कि० ग्राम, एरण्ड के बीजों का मगज ५०० ग्राम, सैंधव लवण २५० ग्राम सबको एक ओखली मे डालकर मूसले से इतनी कुटाई करें कि सभी द्रव्य एक रस होकर गोली बनाने योग्य हो जायें। बस इसकी १-१ ग्रा० की गोलियां बना हल्की धूप में सुखा लें। सूखने पर गोलियां ५०० मि० ग्राम की हो जायेंगी।

मात्रा-२-२ गोली प्रातः, सायं भोजन के बाद उष्ण जल से लें। आराम हो जाने पर मात्रा १-१ गोली कर दें।

आंत्र-शोथ और मेरा अनुभव-

छोटी आंत में शोथ या क्षत (व्रण) हो जाने को छुद्रान्त्र शोथ (Enteritis) और बड़ी आंत में शोथ या क्षत हो जाने को वृहदांत्र शोथ (Colitis) कहते हैं। इसमें आंतों में शोथ, मूल में रक्त आंव एवं पूय, उदर में तीव्र शूल, कुंथन और कभी-कभी वमन और तीव्र ज्वर भी हो जाता है। कभी-कभी यह रोग स्वतः शान्त हो जाता है और पुनः कुछ दिनों बाद दुबारा आक्रमण कर बैठता है। इस प्रकार वर्षों तक यह रोग पीछा नहीं छोड़ता उग्र अवस्था में तो प्रायः यह रोग जानलेवा साबित होता है। पाश्चात्य विज्ञान में तो शल्य-क्रिया के अतिरिक्त इसे ठीक करने का कोई उपाय नहीं है। भीषण मलावरोध, आंत्रिक सन्निपात, तीव्र-पेचिश, उपदंश, क्षय, चाय-काफी नशे का अत्यधिक सेवन आदि कारणों से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग से मुक्त होने के लिए सादा सुपाच्य भोजन, सात्विक आहार-विहार एवं नियमित दिनचर्या का अनुगामी होना एवं तीक्ष्ण उष्ण-गरिष्ठ व नशीले आहार का परित्याग अति आवश्यक है।

इस रोग पर निम्नलिखित औषधि चमत्कारी लाभप्रद प्रमाणित हुई है। इसे रोग की अवस्थानुसार ३ सप्ताह से लेकर ३ माह तक पथ्य-पूर्वक सेवन करना चाहिए-

वरुणत्वक्, शरपुंखा-मूल, रोहितक-त्वक्, उदुंबर-त्वक् और दारुहरिद्रा प्रत्येक १-१ किलो ग्राम, शोभांजन-मूल-त्वक् (नूतन) २।। कि० ग्रा०, कुटज-त्वक् ५ कि० ग्रा० सबका विधि पूर्वक निर्माण किया गया घनसत्व ५०० ग्राम, अतीस का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण २५० ग्राम, प्रवाल पंचामृत १२५ ग्राम, रस पर्पटी (समगुण पारद-गंधक से बनी) सूक्ष्म पिसी हुई ६२.५ ग्राम सबको खरल में डाल सहिंजने की मूल की छाल के स्वरस (या क्वाथ) में ३ दिनों तक दृढ़ मर्दन करके ४-४ रत्ती की गोलियां बना, सुखा शीशी में सुरक्षित रखलें।

मात्रानुपान-गंभीरावस्था में २-२ गोली, अन्यथा १-१ गोली ३-३ घंटे पर प्रतिदिन ४ बार दें। पूर्ण आराम हो जाने पर धीरे-२ कम करते हुए छोड़ें। अनुपान सहिंजना स्वरस, अर्क सौंफ, या मात्र जल से दें।

ग्रहणी रोग और अनुभव-

इसमें प्रातःकाल श्वेत, मटमैला, फेनिल, वसामय और यदाकदा रक्तमिश्रित अनपचे दस्त कई-कई बार आया करते हैं। मुख गह्वर की शलैष्मिक कला लाल एवं व्रण युक्त हो जाती है। रोगी जब भी खाता है पैखाना लग जाता है तथा मल की मात्रा खाये गये भोजन की मात्रा से अधिक होती है। यह रोग वर्षों तक पीछा नहीं छोडता और रोगी दिन व दिन कमजोर होता चला जाता है।

इस रोग के निवारण के लिए शास्त्रों में अनेकों उत्तमोत्तम योग भरे पडे हैं। यहां मैं एक सुगम सफल योग दे रहा हूं। जिससे पाठक लाभ उठा सकते हैं। यह योग वंश परंपरागत प्राप्त हुआ है-

लाल बडी दूधी जिसके पौधे एक वालिस्त से लेकर २ फुट तक के और पत्ते भांगरा से मिलते-जुलते है, पूरा पौधा रोमश और हल्का गुलाबी रंग के डंठल व पुष्प युक्त तथा फल गुच्छेदार छोटे-२ दानों के रूप में होता है, कहीं से भी तोडने से दुग्ध निकलता है, इसी बूटी से अभिप्राय है। इस क्षुप का स्वरस ५ लीटर, कुडे की छाल का चतुर्थांश-वशिष्ट क्वाथ ५ लीटर दोनों को मध्यम अग्नि पर पकाएं और जब पककर गाढ़ा हो जाय, तब उतार कर उसमे शुण्ठी का सूक्ष्म चूर्ण, बिल्व गिरी, शु० रसौत और भुने हुए जीरे का सूक्ष्म चूर्ण ५००-५०० ग्राम, छोटी इलायची के बीज, वंशलोचन, कवावचीनी प्रत्येक २५०-२५० ग्राम, शोधित कज्जली (समगुण) गंस भस्म और

नोट-गर्ग का ''गैसान्तक'' कैपसूल भी अतिलाभप्रद प्रमाणित हुआ है। २-२ कैप० दिन में २-३ बार उष्ण जल से लेने चाहिए'' उदर-वात पुराना होकर यदि गुल्म (आम बोलचा की भाषा में वायुगोला) में परिणित हो गया हो तो गैसहर वटी के साथ-साथ 'गुल्मारि' को नियमित सेवन करने से गुल्म रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

''गुल्मारि'' की निर्माण विधि-

आक या मदार के पत्ते ३ कि०, अजवायन १/२ कि० ग्रा०, संचल लवण १/२ कि० ग्रा०, सैंधव लवण १/२ कि० ग्रा०, नौसादर २५० ग्राम-दोनों लवण तथा नौसादर को बारीक पीस लें, पश्चात् एक बडी हांड़ी लेकर उसमें आक के पत्तों व अजवायन की हत विछाकर उस पर नृसार-लवण की तह लगा दें। इस प्रकार तह पर तह लगाते हुए संपूर्ण द्रव्यों को हांड़ी में भर दें। फिर हांड़ी के मुंह पर ढक्कन लगा सामान्य रूप से मुख-मुद्रा वन्द कर कुंभार के आंवे या गजपुट में रखकर फूंक दें। शीतल होने पर हांड़ी में से संपूर्ण द्रव्य निकाल, पीस-छानकर रख लें।

उपरोक्त लवण मिश्रण १ कि० ग्रा०, करंजुबा के बीजों के मगज का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण १ कि० ग्रा०, टंकण भस्म २५० ग्राम और घी में भुनी उत्तम हींग ५० ग्राम-सबको एक बड़े खरल में डाल घीकुवार के स्वरस में दिनभर घुटाई करके ५०० मि० ग्राम की बटिकायें बना लें और सुखाकर वायु रहित शीशी में सुरक्षित रखें।

मात्रा-२ से ४ बटी तक, दिन में २ से ३ बार तक कुमार्यासब या उष्ण जल के अनुपान से दें।

जब तक गुल्म रोग नष्ट न हो जाय, तब तक सेवन करते रहें।

नोट-सर्व प्रकार के उदरशूल में रामबाणवत् कार्य करने वाली औषधि "कोलेक्स कैपसूल्स'' की निर्माण विधि 'अनुभूत प्रयोग रत्नाकर' (सुधानिधि विशेषांक १९९४) में देखें''।

मलावरोध पर अनुभव योग

"योग सभी रोगों की जड़ है''-यह कथन प्राय: सभी स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है और इसके निवारण के सैकड़ों-हजारों उपाय भी शास्त्रों में भरे पड़े हैं। यही कारण है कि प्राय: सभी औषधि-निर्माता मलावरोधहर योगों का निर्माण करते हैं और प्रचुरता से इनका चिकित्सा में उपयोग भी होता है। तात्पर्य यह कि किसी भी अनुकूल शास्त्रीय या पेटेन्ट योग से समय पर लाभ उठाना चाहिए। यहां मैं दो अत्यन्त सरल व स्वानुभूत मलावरोध हरयोग पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ-

(१) **मलावरोधहर सौम्य योग-** उत्तम क्वालिटी की सनाय की पत्तियां (डंठल रहित) १ कि० ग्रा०, छोटी जाति की सौंफ भुनी हुई, छोटी हरड़ (जंगी) एरण्ड तैल में भुनी हुई प्रत्येक १-१ पाव (२५०-२५० ग्राम), देशी गुलाव के पुष्प (लाल पंखुड़ियां मात्र) शुष्क और ईसबगोल की भूसी प्रत्येक १२५-१२५ ग्राम, सैंधानमक और कालानमक प्रत्येक ६०-६० ग्राम (१-१ छटांक)-ईसवगोल के सिवाय सबको कूटकर चूर्ण बनालें, फिर ईसबगोल मिश्रित करके शीशी में पैक कर लें। हवा और नमी से बचाकर रखें।

मात्रा-१ से ३ चाय के चम्मच भर दवा (अवस्थानुसार) रात्रि को सोते समय उष्ण जल के साथ सेवन करने से प्रात: बिना कष्ट के ही एक दो दस्त साफ हो जाते हैं।

(२) **मलावरोधहर तीव्र, पर हानि रहित योग-** समभाग मिश्रित शुद्ध पारद एवं शुद्ध गंधक की कज्जली १०० ग्राम, सुपुष्ट शुण्ठी का कपडछन चूर्ण २०० ग्राम, शोधित जयपाल ४०० ग्राम-सबको खरल में डालकर मिश्रित करें पश्चात् नींबू के स्वरस में ३ दिन दृढ़ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियां बना सुखा शीशी में सुरक्षित रखें। आवश्यकता पर १ गोली ठण्डे जल या अर्क सौंफ से दें।

इन गोलियों का उपयोग सामान्य से लेकर तीव्र विरेचन हेतु हो सकता है। इनके सेवन से यदि किसी को उदर में दाह प्रतीत हो तो मट्ठा, अर्क सौंफ, धनिये के फान्ट, शर्बत अनार या कोई उपयुक्त शीतल पेय ले सकते हैं।

नोट १-इन गोलियों का असर वर्षों तक सुरक्षित रहता है।

नोट २-सभी प्रकार के अतिसार, संग्रहिणी, आमातिसार, रक्तातिसार एवं कालातिसार आदि पर अचूक महौषधि "डी०डी० फोर्ट कैपसूल'' का योग अनुभूत प्रयोग रत्नाकर (सुधानिधि विशेषांक १९९३) पृ० सं० ३२० पर देखें।

आदि कई प्रकार कृमि पैदा हो जाते हैं जिनके कारण उपसर्ग के रूप में अल्प या तीव्र उदरशूल, वमन-मिचली या थुकथुकी आना, ज्वर, बार-बार सर्दी होना, एलर्जी-खारिश या शीतपित्त, आन्त्रावरोध, रक्ताल्पता आदि विभिन्न व्याधियां उत्पन्न होकर शरीर को कष्ट पहुंचाती हैं, बल्कि रक्तहीनता, आक्षेप, आंत्रावरोध आदि से कभी-कभी तो भयानक स्थिति उत्पन्न हो जाती है अत: उदर-कृमियों की अवलेहना न करके समुचित चिकित्सा करें।

आयुर्वेदिक औषधियों की श्रेष्ठता–कुछ चिकित्सक सोचते हैं कि आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान में तो ऐसी-ऐसी औषधियां उपलब्ध हैं जिनसे मात्र एक खुराक में ही सर्व प्रकार की कृमि नष्ट हो जाते हैं, तो फिर जड़ी-बूटी कूटने और क्वाथ बनाने का झंझट कौन करे। बस मरीज को एक गोली एलबेन्डाजोल दे दो और कृमियों का सफाया। यहां यह ज्ञातव्य हो कि कृमियों के अण्डों (Ovum) पर औषधि का कोई प्रभाव नहीं होता अत: पुन: इनके जीवावस्था में आ जाने पर पुन: एलबेन्डाजोल दे दिया जाता है। इस प्रकार बार-बार आधुनिक विषैली दवा के प्रयोग से कभी-कभी भयानक एलर्जी भी हो जाती है। चलिए मान लेते हैं कि एलर्जी भी नहीं हुई और कृमि भी नष्ट हो गए। लेकिन उदर में कृमियों के मल मूत्रादि संचय, एवं इन विषों के रक्त में पाचन हो जाने पर एलर्जी, शीतपित्त, खुजली, आक्षेप प्रभृति व्याधियां उत्पन्न हो जायें, उनका कैसे निराकरण हो ? मात्र लाक्षणिक (शमनकारी) चिकित्सा के अतिरिक्त मूल दोष (रक्त से विषादि) निष्कासन का है कोई उपाय ? जी नहीं, आधुनिक चिकित्सा में इसकी कोई अनुकूल व्यवस्था नहीं है। यही एलोपैथी के ऊपर आयुर्वेद की महत्ता है। अत: आयुर्वेदक चिकित्सा की कभी भी अवहेलना न करें।

एक अनुभूत योग–अब यहां पाठकों की सेवा में सर्व प्रकार के उदर-कृमि नाशक एक ऐसा परीक्षित प्रयोग दे रहा हूं जो कृमियों का सफाया करने के साथ-साथ तद्जनित विकारों (उपसर्गों) यथा वमन, थुकथुकी, उदरशूल, आक्षेप, ज्वर, शीतपित्त, रक्त-दृष्टि, चर्म रोग आदि विकारों को भी नष्ट कर देता है-

खट्टे अनार के मूल की ताजी छाल २ कि० ग्रा०, मनाय पत्र, अफसन्तीन रूमी, पलाश (ढाक) के बीज, बिडंग प्रत्येक ५००-५०० ग्राम सबको जौकुट कर ३२ लीटर अति उष्ण जल में २४ घंटे भीगने दें। पश्चात् चूल्हे पर चढ़ा मध्यम-तीव्र आंच से पकाएं। चतुर्थांश (३ लीटर) जल शेष रह जाये तो उतार कर शीतल होने पर दोनों हाथों से खूब मसल-मसल कर कपडे में छान लें। छनित द्रव को पुन: चूल्हे पर चढ़ा अग्नि दें। जब गाढ़ा होने के करीब आए तो उसमें-करंज-बीज मज्जा, कालीजीरी, कबीला अमली, खुरासानी अजवायन प्रत्येक का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण १२५-१२५ ग्रा०, शुद्ध कज्जली (समगुण पारद-गंधक), शुद्ध कुचला चूर्ण वस्त्रपूत, सत्व अजवायन, कर्पूर, हींग और यवाक्षार प्रत्येक ५०-५० ग्राम डालकर खूब घुटाई करके ३-३ रत्ती की गोलियां बनायें और छाया में सुखाकर एअर टाइट शीशी में सुरक्षित रखें।

मात्रा–छोटे बच्चों को १, बड़े बच्चों को २ और बड़ों को ४-४ गोली दिन में २ या ३ बार दुग्ध (गुड मिश्रित), बिडंगारिष्ट या मात्र जल से दें। चर्म-विकार भी हो गए हों तो सारिवाद्यरिष्ट + बिडंगारिष्ट ४-४ चम्मच के अनुपान से दें। रक्ताल्पता हो तो साथ-साथ लौहासव भी दें।

नोट–आन्त्रक्षय पर अत्युत्तम लाभप्रद "कोक्सिडॉल कैपसूल" और उभय प्रकार के अर्श को समूल नष्ट करने वाले अर्शहर वटी और 'अर्शहर मलहम' के योग सुधानिधि में 'परीक्षित प्रयोग' शीर्षक से पूर्व में प्रकाशित हो चुके हैं अत: पुन: लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

गुदभ्रंश पर भी दो योग गत वर्ष १९९३ में सुधानिधि विशेषांक में प्रकाशित हो चुके है। उत्सुक सज्जन यथास्थान देखने का कष्ट करें।

नवासीर-भगन्दर-नासूर और मेरे अनुभव-

नवासीर (गुद विदार-गुद चीर Anal Fissure), भगन्दर (Anal Fistula) और नासूर (नाड़ीव्रण Sinus) ये तीनों ही गुद स्थान की महान कष्ट दायक व्याधि हैं। शल्य-चिकित्सा साध्य होने के कारण बहुत से चिकित्सक इसे शल्य-चिकित्सा हेतु त्याग देते हैं। मैं भी त्याग दिया करता था, लेकिन जब से विद्वानों के निम्नलिखित शास्त्र सम्मत योग मुझे प्राप्त हुए हैं तब से अब तक पांच रोगियों पर इन्हें आजमा चुका हूं और प्रतिबार देर-सबेर सफलता प्राप्त हुई है-

१. शिग्रु गुग्गुल–सहिंजन की ताजी छाल ५ कि० ले जौकुट कर ४० लीटर जल में पकायें। १० लीटर जल शेष रह जाने

लोह भस्म १०० पुटी प्रत्येक १२५-१२५ ग्राम डालकर खूब घोट करके गोलियां बनाने योग्य हो जाने पर १-१ ग्राम की गोलियां बनालें।

मात्रा-२-२ गोली प्रात: दोपहर सायं कुटजारिष्ट या मट्ठे के अनुपान से दें। भुना जीरा व सैंधव युक्त मट्ठा इस रोग में सर्वोत्तम पथ्य है।

नोट-यह औषधि आंत्र-शोथ पर भी लाभप्रद है।

आन्त्रवृद्धि पर मेरा अनुभव-

अति प्रसंग, बार-बार आमातिसार का प्रकोप आदि रोगों में आंतों का शिथिल होकर या भारी बजन उठाने, आदि कारणों से पेट के अन्दर आंतों का कुछ भाग निम्नोदर, नाभि:गर्त या अण्डकोष में उतर आता है-इसी को आंत्रवृद्धि, आंत उतरना या हर्निया कहते हैं। यह शल्य-चिकित्सा साध्य व्याधि है और प्रारंभिक अवस्था (Incomplete Hernia) में ही औषधियों से लाभ की आशा की जा सकती है, पूर्ण आंत्र-वृद्धि (Complete Hernia) बिना शल्य-चिकित्सा के नहीं ठीक होती। इस व्याधि में तीव्र उदर-शूल होता है।

जब कोई हर्निया का रोगी आपके पास आए तो उसकी कमर ऊंची और सिर नीचा करके शोथ-स्थान पर हाथ से दबा-दबा कर और वर्फ की थैली रख-रख कर नीचे ले आवें, गड़गड़ाहट के साथ आंतें अपने स्थान पर चली जावेंगी। यदि खूब प्रयास करने पर भी न जांये तो रुग्ण को शीघ्र ही शल्य-क्रियार्थ भेज देना चाहिए। और यदि आंतें स्वस्थान पर स्थापित हो जांय तो हर्निया बैल्ट बांध दें (कि पुन: न उतरें) और चिकित्सा शुरू कर दें। अब तक की आयुर्वेदिक चिकित्सा में मैंने जिस योग को सर्वाधिक कार्यकारी पाया है। वह पाठकों की सेवा में निस्वार्थ प्रस्तुत है-

"शुद्ध हिंगुल, शुद्ध कुचिला चूर्ण वस्त्रपूत, शुद्ध हींग (घृत भर्जित) और लौह भस्म १०० पुटी प्रत्येक ५०-५० ग्राम, शुण्ठी, संचल लवण, शोभान्जन-निर्यास आग पर फुलाया हुआ और गटारन के बीजों को भुनने के बाद निकाली गई गिरी प्रत्येक १००-१०० ग्राम, शुद्ध गुगुल, शुद्ध एलुवा और एरण्ड तैल में भुनी छोटी हरड प्रत्येक २००-२०० ग्राम।

सबको विधि पूर्वक मिला घृतकुमारी स्वरस में ३ दिन खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बना शीशी में सुरक्षित रख लें।

मात्रा-२-२ गोली दिन में ३ बार उष्ण जल से दें।

शोथ-स्थान पर छोटी कटेरी की मूल पीसकर हल्का गर्म करके लेप करें, दिन में २ बार।

आन्त्रपुच्छ-प्रदाह और मेरा अनुभव-

दांए निम्नोदर की त्रिकोण स्वथली (Triangular Space) के मध्य आंत से जुड़ी पुच्छ नुमा एक उपांत्र लटकी रहती है जिसे आन्त्रपुच्छ (Appandix) कहते हैं। इसमें किसी तरह अन्नादि के कण यदि प्रवेश कर जायें तो सड़न पैदा करके उपान्त्र में शोथ व तीव्र दर्द पैदा हो जाता है जिसे उपांत्रप्रदाह (Appendicitis) कहते हैं। इसमें शोथ, तीव्र शूल वमन, ज्वर आदि हो जाते हैं। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान में इसकी शल्य-चिकित्सा ही रोग निवारण का एक मात्र उपाय है। एंटीवायोटिक्स और शूलनाशक दवाओं से कुछ काल के लिए दब जाता है और बार-२ उभरता रहता है और आंत्रपुच्छ के पक्वावस्था में आ जाने पर यदि शीघ्र से आपरेशन न कराया जाय तो व्रण विस्फोट होकर रक्त विषमयता तो जाने से मृत्यु हो जाती है।

यदि रोग ने नया-नया आक्रमण किया है या प्रदाहावस्था में है तो निम्नलिखित औषधि व्यवस्था से अवश्य ही समूल नष्ट हो जाता है-

(१) अग्नितुण्डी वटी १ (१ रत्ती), भीमवटी (र० तं० सा०) १ (२ रत्ती), शंख वटी २ (४ रत्ती) ऐसी एक मात्रा दिन में २ से ४ बार तक आवश्यकतानुसार उष्ण जल से दें।

यह दवा भीषण शूल को भी शीघ्र शमन करती है। भीम बटी र०तं० सार द्वि० भा० के आधार पर स्वयं निर्माण कर लें।

(२) आरोग्यवर्द्धिनी वटी २ (४ रत्ती), सेप्टिलीन (हिमालय) ४ वटी प्रात:-सायं, सारिवाद्यरिष्ट ५ चम्मच के अनुपान से दें।

यह रोग-विष का निर्हरण कर शोथ का शमन करती है।

(३) दशांगलेप का स्थानीय प्रयोग दिन में ३ बार करें।

उदर-कृमि और मेरे अनुभव

उदर में आगन्तुज, मल सड़ने, पुरानी पेचिश इत्यादि कारणों से सूत्रकृमि (Thread worms), केंचुवे (Ascariasis), अंकुशकृमि (Hookworms), स्फीतकृमि (Tape warme)

चूर्ण ६०-६० ग्राम, भुनी हींग असली ३० ग्राम''-सबको एक कांच या चीनी मिट्टी के ऐसे पात्र में भरें जिसमें न्यूनतम २ मन जल आ सके (पात्र छोटा होने पर द्रव्य मिश्रित करते समय उवाल खाकर बाहर गिरने लगता है) फिर पात्र का मुंह स्वच्छ कपड़े से ढककर २१ दिन तक धूप में रख दें, प्रतिदिन लकडी के डण्डे से १-२ बार चला दिया करें। पश्चात् चौतह वस्त्र में छानकर स्वच्छ शीशियों में भरकर सुरक्षित रखें।

मात्रानुपान-१० से २० मि० ली० तक समभाग जल मिलाकर दोनों समय भोजनोपरान्त दें।

गुणोपयोग-यह अति स्वादिष्ट, दीपक व पाचक द्राव है जो अनेक उदर रोगों यथा अपच, अजीर्ण, पेट दर्द, गुल्म, यकृत्-प्लीहा वृद्धि, मन्दाग्नि, वायु-विकार, वमन आदि मिटाने में रामबाण है।

नोट-परिणाम-शूल (Peptic Ulcer) के रोगियों को इसका सेवन न करायें।

२. उदरामृत वटी-

योग घटक व निर्माण विधि-''शुण्ठी, काली मिर्च, पिप्पली, चित्रकमूल, करंज वीज मज्जा, श्वेत जीरा भुना हुआ, शुद्ध कुचला, शुद्ध आमलासार गंधक प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १००-१०० ग्राम, सैंधव लवण, मूलीक्षार (या यवाक्षार), शुद्ध चौकिया सुहागा, चिन्चाम्ल (Tartaric Acid) प्रत्येक ५०-५० ग्राम, घृत में भुनी हीरा हींग २५ ग्राम, शंख भस्म सबके बराबर अर्थात् एक कि० ग्रा० सबको एक बड़े पत्यर के खरल में शोभांजन-स्वरस, लशुन-स्वरस और आद्रक-स्वरस की १-१ भावना दें। पश्चात् थोड़ा-२ निम्बू-स्वरस डालते हुए घुटाई करें और जब दो लीटर नींबू स्वरस शोषित होकर गोली बंधने योग्य हो जाय तब २-२ रत्ती की गोलियां बना, ठीक से सुखा कर एअर टाइट शीशियों में सुरक्षित रख लें (ये हवा लगने पर कुछ आद्र होने लगती हैं, अतएव सदैव बन्द शीशियों में रखें)।

मात्रानुपान-१ से ४ गोली तक रोगानुसार उष्ण जल से दिन में २ से ४ बार तक दें।

गुणोपयोग-उदरशूल, गुल्म, अजीर्ण, अफारा, गैस ट्रूबल, वायु का निर्हरण न होना, कब्ज, मितली, अरुचि, मन्दाग्नि आदि अनेकों उदर-व्याधियों में विज्ञजन अपनी बुद्धि से प्रयोग करके लाभान्वित हो सकते है। यह एक ही औषधि समय पर घरेलू वैद्य का काम करती है।

३. तृष्णाहर योग-

गर्मियों में पिपासाधिक्य, यात्रा में जल न मिलने से प्यास के कारण बुरी हालत होना, अतिसार, वमनाधिक्य, कालातिसार, रक्तस्राव आदि उग्र बीमारियों में शरीरस्थ जलीयांश की कमी से होने वाले उपद्रव (पिपासाधिक्य, शरीर ऐंठना, मूर्च्छा आदि), आदि-आदि जहां भी शरीर में द्रावत्व की कमी (Dehydration) हो वहां इस अमूल्य औषधि का प्रयोग कर लाभ उठाया जा सकता है-

घटक व निर्माण-विधि-''छोटी इलायची के बीज, धनियां, सौंफ, श्वेतचन्दन, गुलाब पुष्प, उशीर (खश की जड), केवड़े के पुष्प और कमलगट्टे की मज्जा प्रत्येक का अति सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण १००-१०० ग्राम, सैंधव लवण, निम्बू सत्व (टाटरी) २००-२०० ग्राम, सत्व पुदीना (या पिपरमैण्ट) १० ग्राम, सूर्यक्षार (अंग्रेजी शोरा, Potassium Nitrati) ३०० ग्राम, द्राक्षा शर्करा (Glucose) ३ कि० ग्रा०।

सबको खूब घुटाई करके एक सम करलें और छोटे-२ पैकिटों में एअर-टाइट पैक कर लें।

उपयोग-विधि-१०० मि० लि० स्वच्छ जल में २ चम्मच चूर्ण (१० ग्राम) घोलकर यथावश्यक पिलाया करें। गर्मियों में यात्रा में हों तो जल के अभाव में सिर्फ उक्त चूर्ण ही चुटकी २ भर मुंह में डालकर चूसते रहें।

४. उत्क्लेशारि लेह-

वमन की ऐसी प्रवृत्ति जिसमे कुछ भी बाहर न आए, को मिचली, मितली, उत्क्लेश, हल्लांस, उवकाई आना आदि कहा जाता है। यह कृमि-विकार, पित्ताधिक्य, गर्भावस्था आदि कारणों से होता है। मूल रोग निवारण से उत्क्लेश आना प्रायः बन्द हो जाता है। इसमें निम्नलिखित योग अतिलाभप्रद है-

घटक व निर्माण-विधि-छोटी इलायची के बीज, कपूर कचरी, नारियल दरियायी, प्रत्येक का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण १००-१०० ग्राम, जहरमोहरा पिष्टी ५० ग्राम सबको अर्क वेद-मुश्क या अर्क गुलाब या अर्क केवड़ा में दिन भर (१२ घंटे) मर्दन करें, पश्चात् उसमें १०० मि० ली० नीम्बू का शर्बत मिलाकर घुटाई करके एक सम करके लेहवत् (चटनी जैसा) बना रखें।

पर उतार लें और मसल-छान कर छनित को पुन: आग पर चढायें और एक कि० ग्रा० महिषाक्ष गुग्गुल की पोटली क्वाथ में डूबी हुई लटका दें। आधा क्वाथ शेष रहे तब पोटली को मसल कर गुग्गुल को क्वाथ में निचोड लें और अपद्रव्य को फेंक दें। इसे पुन: मन्द अग्नि पर पकायें और जब गाढ़ा होने लगे तो उसमें हरड़, बहेडा आंवला, पिप्पली और कच्छपास्थि भस्म प्रत्येक बारीक पिसी २००-२०० ग्राम डालकर नीचे उतार लें और खूब घुटाई करके १-१ ग्रा० की गोलियां बनालें।

मात्रा-१ से ४ गो० तक प्रात:, सायं शिशु-स्वरस, शिशु-क्वाथ या केवल जल के साथ दें। न्यूनतम् ३ माह प्रयोग करें।

२. **चोपचीनी** के लड्डू-चोपचीनी, गोघृत और मिश्री ३२-३२ तो० लौहभस्म और शु० मैनसिल ४-४ माशे। सबको मिलाकर ३-३ तोले के लड्डू बना लेवें। इनमें से १-१ लड्डू प्रात:काल और रात्रि को दूध के साथ सेवन कराने से भगन्दर, नाड़ीव्रण, रक्तविकार आदि चमत्कारिक रूप एक मास में ही ठीक हो जाते है। किन्तु सावधानी वश पुनराक्रमण रोकने के लिए ३ माह तक सेवन करना चाहिए।

३. **बाह्य प्रयोगार्थ**-'जात्यादि तैल'' या "निर्गुण्डी तैल'' का प्रयोग करना चाहिए। गुद-विदार में इसे प्रतिदिन ३-४ बार लगायें, भगन्दर को प्रथम क्षार सूत्र से शोधन करने के बाद जात्यादि तैल की वर्ति लगाकर प्रतिदिन ड्रेसिंग पट्टी करें और नासूर को प्रथम तुत्थ द्रव से ४-५ दिन तक शोधन करें पश्चात् जात्यादि तैल की वर्ति लगाकर पट्टी करें। इस प्रकार पूर्ण आराम होने तक करें। वर्ति प्रवेश क्रमश: कम करते जाना चाहिए।

नोट-कब्ज होने पर सुगम चूर्ण, एरण्ड स्नेह आदि कोई उपयुक्त औषधि यथा समय देते रहना चाहिए।

"गुद मार्गीय रक्तस्राव (Malena)'' जिसका कोई कारण समझ में न आए, उसमें अधोगत रक्तपित्त के समान चिकित्सा करनी चाहिए। इस उद्देश्य हेतु "रक्तप्रवाहांकुश कबच'' (अनु० प्र० रत्ना० पेज २९५) २-२ कवच रोज ३ बार देना अतीव लाभप्रद है।

यकृत्-वृद्धि, पाण्डु आदि विभिन्न यकृत्-रोगों पर अनुभूत गुप्त योग "एच०बी० आर० टेबलेट'' और जलोदर पर सफल योग'' जलोदरान्तक वटी'' के योग "अनु० प्र० रत्ना०'' पृष्ठ ३०१ पर देखें। प्लीहा विकार पर शतश: अनुभूत योग "प्लीहारि कैपसूल'' उसी विशेषांक के पृ० सं० ३१९ पर प्रकाशित हो चुका है। अत: इस सम्बन्ध मे पुन: योगो को प्रकाशित कराना व्यर्थ है।

विभिन्न उदर रोगो पर कार्यकारी कुछ अनुभूत प्रयोग सुधानिधि के अवशिष्ट अंक या किसी साधारण अंक में देगे।

उदर विकारों पर मेरे परीक्षित योग-

सामान्यत: प्रत्येक चिकित्सक को प्रतिदिन उदर-विकार के रोगियों से दो चार होना पडता है और एतदर्थ विभिन्न शास्त्रीय एवं स्वानुभूत योग प्रयोग में लाए जाते है। आयुर्वेद शास्त्र के ग्रन्थो में सहस्रों उदर रोग नाशक योग भरे पड़े हैं। आवश्यकता है दोषानुसार अनुकूल औषधि (या औषधियों) का चयन एवं रोगो में प्रयुक्त करने की। शास्त्रीय योगो से तो सभी परिचित हैं, लेकिन स्वानुभूत सिद्ध एवं गुप्त योगों को विद्वज्जन पत्रिकाओं के माध्यम से प्रगट करें-ऐसा मेरा साग्रह निवेदन है, तभी जनकल्याण संभव है। उदाहरणार्थ 'गर्ग वनौषधि भंडार' ने अत्यल्प समय में ही अनेक सफल योग प्रस्तुत किये है। मैंने भी अपना अधिकतम् सफल एवं गुप्त योग गत वर्द के सुधानिधि विशेषाक में प्रकाशित करा दिया है। कुछ अन्य योग (उदर-विकारो पर) पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत हैं-

१. उदरामृत द्राव-

यह जबलपुर वाले स्व० श्री चन्द्रशेखर वैद्य का गुप्त प्रयोग है जो अभी तक सहस्रों उदर-व्याधि पीडित रुग्णों में मेरे द्वारा सफलता के साथ प्रयुक्त किया जा चुका है। अर्थ व्यय करके प्राप्त किया हुआ यह गुप्त योग जन कल्याण हेतु नि:स्वार्थ प्रेषित है-

घटक व निर्माण-विधि-"जम्भीरी निम्बू (अभाव में कागजी निंबू) का स्वरस १० लीटर, आद्रक स्वरस, मूली-स्वरस, घृतकुमारी-स्वरस, पुदीना-स्वरस २-२ लीटर, गन्ने का रस २० लीटर (अभाव मे गुड १ कि० ग्रा० + जल १४ ली० का घोल), नींबू सत्व (टाटरी उत्तम), संचल लवण, सैन्धव लवण, सांभर लवण, प्रत्येक १००-१०० ग्राम, नृसार, कलमी शोरा, शंख भस्म, कपर्द भस्म, मण्डूर भस्म प्रत्येक ५०-५० ग्राम, बड़ी हरड का छिल्का, सोंठ, काली मिर्च, पीप्पली, चित्रक छाल, भुना हुआ श्वेत जीरा, स्माह जीरा, अजवायन, सौफ पीपलमूल प्रत्येक का

तक दें) आमातिसार या रक्तातिसार (सह ज्वर) में शुण्ठी को हटाकर उसके स्थान पर रसौत (दार्वी घनसत्व) मिश्रित करें।

नोट-सुकुमार व्यक्ति या बच्चे जो इस औषधि की कटुता न बरदाश्त कर सकें, उन्हें इस औषधि का घनसत्व कैपसूलों में भरकर उष्ण जल से दें अथवा अन्य औषधि व्यवस्था करें।

९. आम-निस्सारक चूर्ण-

सुधानिधि के पाठकों की सेवा में यह गुप्त योग निस्वार्थ प्रस्तुत है-

निर्माण विधि-७ अदद इन्द्रायण के ताजे फल लाकर उनके छिलके व बीज दूर करके, मात्र गूदे को किसी देगची मे बन्द कर थोड़े जल के साथ वाप्प स्विन्न करें। मुलायम हो जाने पर इमामदस्ते में कूटकर कपडे में रखकर रस निचोड लें। फिर २५० ग्राम जुलाफा के चूर्ण को उक्त स्वरस की भावना देकर शुष्क करें, पश्चात् उसमें २५० ग्राम छोटी (काली) हर्रे का चूर्ण (एरण्ड तैल में भर्जनोपरान्त निर्मित किया हुआ), १२५ ग्राम सौंफ (भुना हुआ) का चूर्ण, १२५ ग्राम ईसबगोल की भूसी (विना कुटी पिसी) और १२५ ग्राम संचल (काला) लवण बारीक पिसा हुआ मिश्रित करके हाथ से एक-सम करके डिब्बों में सुरक्षित रख लें।

उपयोग-३ से ६ माशे तक (कोष्टाग्नि एवं वयानुसार) रात्रि को सोते समय उष्ण जल से दें। अधिकाधिक एक सप्ताह के सेवन से विना कष्ट संपूर्ण आंव का निर्हरण हो जाता है एवं तद्जन्य संपूर्ण उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

१०. ग्रहणी-काल कैपसूल्स-

योग घटक-"रूमी मस्तंगी, रसौत (दार्वीघनसत्व) अतीस, शुण्ठी, विल्वगिरी, कुटज-त्वक् घनसत्व, चित्रकमूल-त्वक् प्रत्येक १-१ तोला, प्रवाल पंचामृत २ तोला, पंचामृत पर्पटी सभी दवाओं के बराबर अर्थात् ९ तोला।

निर्माण-विधि-प्रथम पंचामृत पर्पटी को खरल में बारीक पीसकर कुटजारिष्ट के साथ ३ दिवस तक (प्रतिदिन ६ घंटे) मर्दन करें, शुष्क हो जाने पर उसमें एक-एक करके सभी दवायें मिला लें और दिन भर घुटाई करने के पश्चात् २५० मि० ग्रा० के कैपसूल्स भर लें।

उपयोग विधि-२ दिन १-१ कैपसूल प्रात: सायं, २ दिन २-२ कैपसूल्स प्रात: सायं, २ दिन ३-३ कैपसूल्स प्रात: सायं ..... इसी तरह १० कैपसूल तक बढ़ायें और फिर उसी क्रम से घटाते हुए १ कैपसूल पर आकर छोड़ दें, अर्थात् कुल ४० दिन सेवन करना है। अनुपान 'भुना जीरा चूर्ण, काली मिर्च चूर्ण एवं सैंधव मिश्रित मट्ठा १ लीटर मट्ठे में २ ग्राम काली मिर्च, २ ग्राम सैन्धव और ३ ग्राम भुने जीरे का मिश्रण करें (इसी अनुपान से यथावश्यक बनाकर सेवन करें)।

प्यास लगने पर उक्त मट्ठा ही पियें, जल का परित्याग करें। भूख लगने पर सेव, अनारदाना, केले एवं पक्व बिल्व फल का ही सेवन करें। अन्न एवं जल का सेवन बिल्कुल न करें। मट्ठे के अतिरिक्त अलग से लवण का भी परित्याग करें। दूध घी सर्वथा बन्द रखें।

४० दिन बाद धीरे-२ जल एवं सुपाच्य आहार लेते हुए सामान्य पर आ जायें।

गुण-इस औषधि के ४० दिन पर्यन्त सेवन कर लेने से पुरानी से पुरानी संग्रहणी भी अवश्यमेव ठीक हो जाती है। साथ ही भूख, पाचन-शक्ति एवं स्वास्थ्य में अतीव वृद्धि हो जाती है।

११. यकृत्प्लीहारि पेय-

घटक व निर्माण विधि-रोहितक-त्वक् घनसत्व, रेबन्दचीनी घनसत्व, टंकण भस्म, शंखभस्म, यवक्षार, जौहर नृसार, सूर्यक्षार, कसीस हरित वर्ण प्रत्येक १०-१० तोला लेकर एक पत्थर के बडे खरल में डाल, उसमें एक लीटर सौंफ का अर्क गर्म करके डाल दें और खरल को किसी पात्र में ढंककर २४ घंटे के लिए छोड दें। पश्चात् धीरे-२ घुटाई करें कि सभी द्रव्य मिलकर एक सम हो जायें। एक कांच के बरने में १० कि० ग्रा० घृतकुमारी का गूदा टुकडे-२ करके डालें और उसमें खरल में स्थित सभी द्रव्य डाल दें। फिर बरने का मुख बन्द कर सामान्य धूप में रख दें। सप्ताह में एक बार किसी लकड़ी के दण्ड से चला दिया करें। चालीस दिन के उपरान्त फिल्टर करके शीशियों में भर लें। औषधि तैयार है।

मात्रानुपान-१/२ से २ तो० तक प्रात:, सायं समभाग जल मिलाकर दें (बच्चों को १/२ तो०, बड़े बच्चों को १ तो० और वयस्कों को २ तो० दें)।

गुणोपयोग-हर प्रकार की यकृत्-प्लीहा वृद्धि एवं तद्जन्य उपद्रवों पर अतीव लाभप्रद योग है। रोग उन्मूलन पर्यन्त सेवन कराना चाहिए।



मात्रा-थोड़ा-थोड़ा लेह उंगली पर लेकर आधे-आधे घंटे पर चटाया करें। यथावश्यक दिन में कई बार दे सकते हैं। ठीक हो जाने पर चटाने की आवश्यकता नहीं है। यदि ठीक होकर वमनेच्छा की प्रवृत्ति पुनः-पुनः हो जाय तो प्रथम किसी सौम्य वमनकारक औषधि को पिलाकर उल्टी करवा दें, पश्चात् उक्त लेह का प्रयोग करें तो पूर्ण लाभ होगा।

५. स्वादिष्ट पाचक चूर्ण (मुफ्त में बांटने हेतु)

यह अति स्वादिष्ट चूर्ण सस्ता होने के साथ-साथ अरुचि, मन्दाग्नि आदि अनेक उदर रोगों में लाभप्रद भी है। मेरे यहां मुफ्त बांटा जाता है। आप भी बनाकर, वितरण कर यश कमायें-

"सैन्धव लवण १ कि० ग्रा०, मिश्री १ कि० ग्रा०, नौसादर, कलमीशोरा, काली मिर्च प्रत्येक २५०-२५० ग्राम, निम्बू सत्व १२५ ग्रा०, घी में भुनी हिंगु ५० ग्राम"-प्रथम हिंगु और निम्बू सत्व को एकत्र घोंटे, फिर शेष दवाओं का चूर्ण एक-एक करके मिलाकर एक सम कर लें।

यथावश्यक १ चुटकी चूर्ण मुंह में डालकर चुसायें।

६. बुभुक्षा बर्द्धक वटी-

योग घटक व निर्माण विधि-घी में भुनी हिंगु, अजवायन सत्व, शुद्ध कुचला चूर्ण वस्त्रपूत १०-१० ग्राम, सोंठ काली मिर्च, पिप्पली, यवाक्षार, नौसादर, सैंधवनमक, काला नमक, निम्बू सत्व, चित्रक मूल, आक की कली शुष्क प्रत्येक २०-२० ग्राम, बीज और छिल्के हटाकर शुष्क किया हुआ पपीता का चूर्ण ११५ ग्रा०, श्वेत जीरा भुना हुआ ११५ ग्राम, शुद्ध गंधक ३३० ग्राम सबको एकत्र मर्दन करके मूली स्वरस, आद्रक स्वरस एवं शिग्रु (सहिंजना) स्वरस की ३-३ एवं निम्बू-स्वरस की छः भावनायें देकर, खूब श्लक्ष्ण घुटाई करके २-२ रत्ती (२५० मि० ग्रा०) की गोलियां बना लें, फिर खूब शुष्क करके सुरक्षित रख लें।

मात्रानुपान-२ से ४ गोली तक रोगानुसार, दिन में २ से ३ बार तक भोजनोपरान्त उष्ण जल से दें। अजीर्ण व अफारे में बिना भोजन किए दें।

गुणोपयोग-भूख न लगना (Dyspepsia), मन्दाग्नि (Lac of digestion)। अजीर्ण (Indigestion), अफारा (Flatulence), उदर-शूल आदि उदर-विकारों को नष्ट कर क्षुधा बढ़ाने एवं उदरस्थ अन्न को शीघ्र पचाने में अद्वितीय गुणकारी औषधि है।

७. कुर्स अहमदी-

आधुनिक अकर्मण्यता पूर्ण जीवन की सर्वाधिक विस्तृत व्याधि उदरवात (गैसट्रबल) पर कुठाराघात करने वाली, मेरे औषधालय की सर्वाधिक प्रचलित इस औषधि का गुप्त योग पाठकों के लाभार्थ निःस्वार्थ प्रेषित है-

घटक व निर्माण-विधि-तक्र (खट्टे मट्ठे) में भिगोकर जिह्वा निकाली हुई एवं एरण्ड तैल में भूनकर काली की हुई कुचला का सूक्ष्म चूर्ण, शुद्ध घृत में भुनी हुई हिंगु और आग पर फुलाया हुआ सुहागा तीनों २५-२५ ग्राम, संचल लवण, यवाक्षार, मण्डूर भस्म (त्रिफला क्वाथ व कुमारी-स्वरस से निर्मित), इन्द्रजौ, श्वेत जीरा प्रत्येक ५०-५० ग्राम, मट्ठे में ७ बार निमज्जित शुद्ध गन्धक आमलासार, निंबू-स्वरस योग से निर्मित शंख भस्म, शुण्ठी चूर्ण और करन्ज बीज मज्जा चूर्ण प्रत्येक १००-१०० ग्राम सबको एक-एक करके खरल करते हुए एकसम करें, पश्चात् लशुन-स्वरस, शिग्रु-स्वरस एवं नीम्बू स्वरस की ७-७ भावना देवें। प्रत्येक स्वरस की अन्तिम भावना में ३ घंटे दृढ़ मर्दन करें और अन्त में ४-४ रत्ती की बटिकायें बना, छाया शुष्क कर सुरक्षित रख लें।

मात्रानुपान-१/२ से २ गोली तक आयु एवं रोग की तिव्रतानुसार दिन में ३ बार सुखोष्ण जल से दें।

गुणोपयोग-आध्मान (अफारा), पेट में गुड़गुड़ाहट, आलस्य, विष्टम्भ, उदरशूल, उदरवायु का निस्सरण न होना, गुल्म (वायुगोला), मन्दाग्नि, अरुचि, गैस जनित हृदयशूल आदि विकारों की रामबाण दवा है। अवश्य बनाकर उपयोग में लेवें।

८. एक सामान्य योग पर चमत्कारिक अनुभव-

शास्त्रीय शुठ्यादि क्वाथ-ज्वरातिसार पर रामबाण साबित हुआ है। यह सामान्य सा दिखने वाला योग आज तक कभी असफल नहीं हुआ। प्रयोग निम्नलिखित है-

"सोंठ, अतीस, नागरमोंथा, चिरायता, गुडूची और कुटज-छाल प्रत्येक समभाग ले चूर्ण कर, २ तोला चूर्ण को २०० मि० ली० जल में ५० मि० ली० शेष रहने तक पकायें और रोगी को सुखोष्ण पिला दें। इस प्रकार दिन में ३ बार पिलाने से अतिसार सह ज्वर अवश्य ही नष्ट हो जाता है (यह मात्रा वयस्कों के लिए है, छोटों को उनकी आयु के अनुसार चौथाई से आधी मात्रा

इनमें शरीर विकार प्रशाम्यति प्रौषधैः। देव युक्तिव्यपाश्रयैः मानसिक ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि द्वारा शान्त होती है। आज हम केवल अन्नमय शरीर की ही चिकित्सा कर रहे हैं। प्राणमय या मनोमय ज्ञानमय तक ज्ञानपूर्वक चिकित्सा दुर्लभ है। विस्तारमय इसका विशेष विवेचन न करते हुये स्थूल शरीर विज्ञान पर ही प्रकाश डाल रहे हैं। क्योंकि आयुर्वेद का स्मरण कर प्रजापति को उसका ज्ञान दिया था अतः अष्टांग आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक जीवन शास्त्र है। वेदों में त्रयोदश रोगों का विशेष वर्णन है। उनमें उदर भी है। यथा-

उदरात् क्लोम्नोनाम्या हृदयादधि, यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निखोचमहंत्वत्।

अथर्व वेद काण्ड ४ सू० ५ क० २

आज जब कि अनुभूत चिकित्सा योगों का ही बाहुल्य बढ़ता जाता है। तब वात, पित्त, कफ, रक्त एवं रज, तम, की विवेचना का अवकाश ही कहां है। इस समय आर्षप्रणाली द्वारा चिकित्सानुयायी कितने हैं। यह एक विचारणीय अवस्था है।

चरकीय उदररोग विवरण के कुछ अंश-

वायु प्रकुपित होकर कुक्षि, हृदय, वस्ति, गुदमार्ग में जाकर अग्नि का बल क्षीण कर कफ को उत्तेजित कर उससे मार्गों को अवरुद्ध कर उदररोगों को समुत्पन्न करता है। यह वायु त्वक् मांस के अन्दर अपना स्थान बनाता है। इसके साथ स्वेदाम्बुवाही स्रोतों में रुकावट उत्पन्न कर आम का संचय, मलवृद्धि आदि अनेक प्रकार के प्राण अग्नि एवं अपान को दूषितकर उदर रोगों को जन्म देता है।

इनके निवारणार्थ एवं बलवृद्ध्यर्थ-

क्षीरं वलार्थं पाययेत्तुतम्।

क्षीर प्रयोग का सर्वप्रथम विधान है। आजकल के नव्य चिकित्सक क्षीर का बड़ा विरोध करते हैं। उनका कहना है कि इससे गैस उत्पन्न होती है। जब कि ऋषि का कथन है-प्रवरं जीवनीयानां क्षीर युक्तं रसायनम्।। यह तो चिकित्सक के ऊपर निर्भर है कि किस प्रकार दोषादेय में किस-किस का क्षीर का प्रयोग करें। उदर रोगों में ऊंटनी के दुग्ध का विधान है। यथा-

रुक्षोष्णं क्षीर मुष्ट्रीनां।
शस्तं वात कफानाह कृमि शोफोदरार्शसाम्।।

मन्दाम्ल लवणं युक्त यूष या रस को भी पिया जाता है। शाकंगाढपुरीषाम्- विबद्ध वाले रोगी को शाकों का प्रयोग कराना चाहिए। पित्तोदरी को इक्षुरस का भी प्रयोग सुखद रहता है।

साधारण चिकित्सा में नारायण चूर्ण बहुत ही लाभदायक है। परन्तु शहरी व्यक्ति इसको इसलिये लेने से इन्कार करता है कि इससे विरेचन आते हैं। परन्तु यह एक आयुर्वेद का उत्कृष्ट योग है। इसे मट्ठा के साथ देना चाहिए।

वातोदरी के लिए-सामुद्राद्य चूर्ण का प्रयोग सुखकारक रहता है।

साधारण प्रयोगों में दो प्रयोग मेरे अनुभव में अच्छे हैं।

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेत् ततः।
मस्तुनातत् पिवेत् क्षीरं गुल्मप्लीहोदरापहम्।।

सर्वांग शोथोदर में-लौहभस्म के साथ पुनर्नवाष्टक क्वाथ विशेष लाभकारी है। अगर रोहितक घृत बना सकें तो इससे विशेष उपकार होता है। रसेन्द्रसार संग्रह की दारुभस्म भी छोटा प्रयोग होने पर लाभदायक है। रसादिक औषधियों में आजकल आरोग्यवर्धिनी का प्रयोग प्रचुरता से हो रहा है। पुनर्नवादि लौह भी अच्छा है। इसके अतिरिक्त-

बृहद् गुडपिप्पली, वज्रक्षार, तामेश्वरवटी, शोथोदरारि लौह और वारिशोषण रस के प्रयोगों को हमने अपनी चिकित्सा में लाभप्रद पाया है।

अरिष्टों में-रोहितकारिष्ट का प्रयोग किया है।

घृतों में-केवल अग्निघृत का प्रयोग किया है। इसे विशेष लाभप्रद पाया है। यह मन्दाग्नि को तीव्र करता है। अर्श, गुल्म, उदररोगों को नष्ट करने की विशेष शक्ति रखता है।

विशेष-प्रायः कष्टसाध्य सभी रोगियों को हमने केवल क्षीरपाक विधि से दुग्ध को पकाकर उसी के ऊपर रखा है। तब रोग से शीघ्र छुटकारा मिल जाता है। उदर रोगी को नित्य शौच होता है और अपानवायु निःसरित होती है। इसका ध्यान आवश्यक है।

दो अन्य अनुभूत योग-

उदर रोगहर चूर्ण-

१. बडी इलायची के दाने, सुहागा भुना, दालचीनी, जीरा काला, छोटी इलायची के दाने, पीपल छोटी सब १०-१० ग्राम

उदर रोगों पर मेरे अनुभव

आचार्य वेदव्रत शास्त्री
नदवई गेट, कासगंज (उ० प्र०)

सिद्ध विद्याधरों से सेवित, नन्दन वन के समान समस्त ऋतुओं में सबके लिये सदा आनन्ददायक, कैलास पर्वत पर उग्रतप से तप्त साक्षात् मूर्तिमन्त धर्म के समान देदीप्यमान भिषक्, विद्या के प्रवर्तक, आयुर्वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ जितात्मा पुनर्वसु से किसी समय अग्निवेश ने एक प्रश्न किया था।

अग्निवल से क्षीण प्राणी दीन, दुर्बल, समस्त शारीरिक, मानसिक चेष्टाओं से हीन, नित्य प्रति प्राणों का परित्याग कर रहे हैं, उनके हितार्थ आयुर्वेद का यथावत् निदान, चिकित्सा श्रवण करने की मेरी अभिलाषा है।

ऋषि ने सर्वभूत हितकारक शिष्य का वचन श्रवण कर, सर्वभूत हितकारक वाक्यों के द्वारा उदरस्थ रोगों का वर्णन चिकित्सा, पथ्य, साध्यासाध्यता पर विशद् प्रकाश डालकर शिष्य की आकांक्षा की निवृत्ति की थी। यह सब वर्णन चरक चिकित्सा स्थान में उदर रोगाधिकार में वर्णित है।

वेद में आयुर्वेद-

आयुर्वेद वेद का ही अंग है, वेदों में विविध प्रकार की विद्याओं का समास-व्यास आदि का वर्णन है। परन्तु वैदिक परम्परा के विलुप्त हो जाने के कारण वह सब वैदिक विद्यायें जिनके यथावत् ज्ञान होने पर ही मानव वैद्य (विद्यां वेद इति वैद्यः) जो विद्याओं को जानता है, वही वैद्य पदभार होता था और वैद्य पद सार्थक होता था।

वैदिकी परिभाषा में-अग्निषोमात्मकं जगत्।

शतपथ ब्राह्मण में कहा जाता है-

द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। आर्द्रं चैव शुष्कं च। यत् शुष्कं तद् आग्नेयं। यद् शुष्कं तत सौम्यम्।

वैदिक परिभाषा में प्राकृतिक प्राण तत्व ऋषि कहलाता है।

वशिष्ठ, विश्वामित्र, आदि सभी प्राणात्मक तत्व हैं, यह सृष्टि प्रवर्तक मौलिक तत्व हैं। जिसने अपने तपोयोग से प्राणात्मक जिस ऋषि तत्व का आविष्कार किया वे उसी नाम से प्रसिद्ध हुये।

१. के जले-लासोल सनंदीप्तिरस्य

२. विमेति रोगों यस्मात् असौभिषक् (अर्थात् जिससे रोगभयाक्रान्त होते हैं।

वैदिक शारीर ज्ञान का प्रवर्तक ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा है।

शारीर विज्ञान में तीन प्रकार के शारीरों का उल्लेख है।

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर, इनमें कारण शरीर आत्मतत्व विशिष्ट है। सूक्ष्म शरीर इन्द्रिय समूह संगत है। स्थूल शरीर पंच भूतात्मक है।

इनको इस प्रकार समझा जा सकता है। कारण शरीर का ज्ञान दर्शन शास्त्र द्वारा संभव है। सूक्ष्म शरीर प्राणमय होता है। इसका ज्ञान प्राणोपनिषद् द्वारा ग्राह्य है। स्थूल शरीर वाङ्मय होता है। यह तीनों ही शरीर वैदिक विज्ञान के अनुसार ज्ञान, उपासना, कर्मकाण्ड के मूल हैं। आचार्य चरक के शब्दों में हम कह सकते हैं कि-

सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकास्तिष्ठन्ति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

इसलिए-

शरीरं सत्व संज्ञहि व्याधीनामाश्रयो मतः।
तथा सुखानां-योगस्तु सुखानां कारणं समः।।
निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्व भूतगुणेद्भियैः।
चैतन्ये कारणं-नित्यो, दृष्टा-पश्यति हिक्रियाः।।
वायुः पित्तं कफश्चेति शरीरो दो संग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च।।

एक उदर रोगी की सफल चिकित्सा

डा० ओ० पी० तिवारी, विभाग प्रमुख पंचकर्म
जवाहरलाल नेहरू चिकित्सालय एवं अनुसन्धान केन्द्र, भिलाई (म० प्र०)

उदर रोगों में जलोदर, अष्टम, कठिनतम और असाध्य माना जाने वाला रोग है सामान्य तौर पर जठराग्नि की गड़वड़ियों से होने वाला यह रोग कभी-कभी अन्य कारणों से होकर चिकित्सा को परेशानी में डाल देता है खासकर थाइराइड ग्रंथी से गड़बड़ियां होने पर जलोदर जैसा उदर दीखता ही है, परकशन करने पर पानी भरे जैसा भी लगता है, पर हाथों की अंगुलियों की त्वचा में खुरदरापन या कांटे जैसा दीखना ही विशेष लक्षण है जिससे आप पहचान सकते हैं कि यह जलोदर थाइराइड ग्रंथी की कारगुजारी है और उचित चिकित्सा कर रोगी को लाभ पहुंचा सकते हैं। कभी-कभी ट्यूबरकूलर पेरीटोनाइटिस वाला जलोदर अपने मूल कारण को छिपाने में सफल हो जाता है और चिकित्सक परेशानी में पड़ जाते हैं। एक ऐसे ही रोगी के बारे में मेरे अनुभव प्रस्तुत हैं।

मैं मूलतः वात-गठिया आदि इसी तरह के रोगों का चिकित्सक हूं, पर मेरे एक नजदीकी रिश्तेदारी की वजह से एवं रोगी के कष्ट को देखकर साथ ही चारों तरफ इलाज कराकर थके हारे उनके घर वालों के चेहरे को देखकर, मुझे जलोदर से पीड़ित रोगी की चिकित्सा की जिम्मेदारी लेनी पड़ी।

रोगी अत्यंत गंभीर अवस्था में था, रक्त नहीं के बराबर (५ ग्राम हीमोग्लोबिन) हाथ-पैर लकड़ी के जैसा सूखा-सूखा और उदर कद्दू जैसा गोलमटोल तथा नाभी फूलकर बाहर आकर चीकू जैसी दीखती थी। यह रोगी रेल्वे में सर्विस करता है, यहां वहां आना-जाना पड़ता ही है। वह पिछले दो-तीन वर्षों से बीमार था और जब वह दूर-दूर तक इलाज कराके निराश हो गया तब भिलाई लाकर उसके इलाज की सोची गई। भिलाई के हमारे अत्याधुनिक १२०० बिस्तरों वाले अस्पताल में सारे टेस्ट कराये गये। पर जलोदर के कारण का पता ही नहीं चला। हृदय, यकृत्, वृक्क, प्लीहा, गुदा, फेफड़ा सब कुछ ठीक था बस उसके भ्रमणशील नौकरी के कारण शराबी होने की शंका होती थी, पर ठीक से पूछने पर यह भी निराधार साबित हुई।

न ज्वर था, न कास, फिर भी रोगी दिन पर दिन क्षीण होता जा रहा था। अब समस्या थी कि क्या इलाज किया जाय। लक्षण से आयुर्वेदानुसार जलोदर के सारे लक्षण मिलते थे। अंत में मैंने पूरा परीक्षण किया, तत्पश्चात् मैंने उनको कठिन पथ्य में रखने की सोची और उसे रात में एक चम्मच नारायण चूर्ण विरेचन के लिये और पुनर्नवादिमण्डूर २-२ गोली सुबह-शाम मूत्रल के रूप में दीं तथा खाने में मात्र एक से दो रोटी आधा कटोरी मूंगदाल परवल-लौकी की सब्जी, बिना नमक के और पीने के पानी की जगह मात्र पुनर्नवादि अर्क का ही सेवन करने की अनुमति दी गयी।

इस प्रकार रोगी और क्षीण होता चला गया और बाद में भोजन भी नहीं के बराबर लेने लगा ऐसा लगता जैसे वह मर ही जायेगा, पर इससे उसका उदर धीरे-धीरे कम होता गया और एक माह के अथक प्रयास के बाद अंततः उदर उदरस्त हो गया, इससे पेट में गोल गठान ग्रंथी जैसा गोला छूने से नजर आने लगा। इस लक्षण के मिलते ही डायग्नोसिस एकदम साफ थी यह उदर के क्षयजन्य उदरावरण शोथ (एबडामिनल कास) से पीड़ित था। जिसके प्रभाव से रक्तवाहिनियों की भित्ती से तरल का अधिक स्राव होने पर जलोदर हुआ था फिर क्या था क्षय रोग के उचित इलाज से ६ माह के अंदर ही वह भला-चंगा होकर नौकरी करने योग्य हो गया इलाज हांलाकि आगामी डेढ़ वर्ष तक चलता रहा।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के चिकित्सक हैरत में थे, वे मुझसे पूछें यह कैसे संभव हुआ मैने कहा चिकित्सा के नाम पर मैंने ज्यादा कुछ नहीं किया इस रोगी का हौशला बढ़ता रहा और पानी पीने नहीं दिया, नमक खाने नहीं दिया और उसे अपनी चिकित्सा के योग्य बना लिया। इस प्रकार "व्याधि विपरीत उपशय से हेतु तक पहुंचा जा सकता है" ताकि चिकित्सा सफल हो सके।



मिर्च काली २० ग्राम, शु० नौसादर १५० ग्राम कूट-पीसकर रख लो फिर १० ग्राम गन्धक शुद्ध और १० ग्राम पारद की कज्जली कर उसमें मिलाकर घोटो। मात्रा १ ग्राम से ३ ग्राम तक अनुपान मन्दोष्ण जल समय प्रातः सायं। रोग उदर सम्बन्धी सभी विकार जो साधारण होते हैं, इससे निश्चय ही दूर हो जाते हैं।

२. पाचक वटी-सोंठ ३५० ग्राम, सुहागा ५० ग्राम, नमक काला ६० ग्राम, हींग १० ग्राम, कालीमिर्च २० ग्राम, जीरा काला १५ ग्राम, चित्रक २० ग्राम, सबको कूट-पीसकर सहजने के अर्क में गोली झड़बेर प्रमाण की बांधकर रखो। १-१ गोली प्रातः सायं अनुपान जल, उदर-रोगों के शूल को मिटाकर अन्न का पाचन करती है।

३. क्षुधाबोधक क्षार उडा हुआ नौसादर १०० ग्राम, नमक सैंधा १०० ग्राम, शु० गंधक आमलासार ३० ग्राम सबको घोट-छानकर रखो। मात्रा-१ ग्राम अनुपान जल-पेट के विकारों को मिटा क्षुधा-वृद्धि करता है। पाचक चूर्ण-हींग १० पीपल ५० ग्राम मिर्च काली ५० ग्राम, सैंधा नमक १०० ग्राम, सत्त नींबू ५० ग्राम, बूरा १०० ग्राम सबको कूट पीसकर रखो-मात्रा ५ ग्राम अनुपान जल। उदर रोगों में अरुचि को दूर कर भरेमन में रुचि उत्पन्न करता है।

कविराज पं० रामलाल शर्मा, वैद्य विजयगढ़

शिखिवाद्रव रस

मारितं सूत ताम्राभ्रं गन्धकं माक्षिकं संमम् मर्दयेत् निम्बुकद्रावैः यवक्षार युतं दिनम् त्रिगुज्जं भक्षयेत् नित्यं नागबल्लीदलेन च वात गुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिवाद्रवः।

कुछ पाठ परिवर्तन कर हम-शु० पारद १० ग्राम, शु० गन्धक १० ग्राम की कज्जली बनाकर उसमें ताम्र भस्म, आम्र भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक १०-१० ग्राम लेकर मर्दन कर निम्बूक नीर में तीन दिन मर्दन कर १ दिन यवक्षार १० ग्राम मिलाकर मर्दनकर सुखाकर या १-१ ग्राम की गोली बनाकर रख लेते हैं। इस प्रयोग को वातगुल्म पर लिखा है। परन्तु दुग्ध कल्प पर रखने पर उदर-रोगों को नष्ट करने में आशा से अधिक सफलता देता है। इसके साथ जो मुख्य रोग हो उसकी भी औषधि देना अधिक लाभदायक रहता है। यदि अन्न पर ही रोगी को रखा गया हो तो हिंग्वादि वटी भोजन के पश्चात् दो-दो गोली और देते रहना चाहिए। प्रायः सभी उदर-रोगों पर लाभप्रद है।

-वेदव्रत शास्त्री, कासगंज



● सम्पादकीय टिप्पणी-

उदरशूल नाशक सफल योग
सुधांशु द्राव

सोडाबाई कार्ब २०० ग्राम, फिटकरी ५० ग्राम को मिलाकर अग्नि पर पिघलाकर एक करलें फिर शीतल होने पर पीसकर २० ग्राम में १० ग्राम सैन्धा नमक मिलाकर २०० मि० ली० पानी में मिलाकर १६ खुराक बनालें उदरशूल व परिणामशूल बन्द हो जाता है आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार व रात्रि में यदि शूल बढ़ जाए तो इसकी एक खुराक पिलाते ही उदरशूल शांत हो जाता है। हमें लगभग ३-४ रोगियों का लगभग १५ वर्ष के चिकित्सा काल में भस्मक रोग की चिकित्सा का अवसर मिला है जिनमें यह रोगी सर्वाधिक असाध्य स्थिति का था जिसे आयुर्वेद ने जीवन दान दिया।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

इतने से पेट स्वच्छ न हो तो ईसबगोल, पन्चसकार चूर्ण हरीतकी चूर्ण, इच्छाभेदीरस में से कोई एक देना चाहिए।

हल्का सुपाच्य भोजन, फल, दूध, मट्ठा, कन्द, मूल, फलों का रस, आसव, अरष्टि, मधु, मधूकपुष्प आदि का प्रयोग उचित होता है। पीयूषपाणि चिकित्सालय में निम्नलिखित औषधियों को अनुपान भेद से उदर रोगी के बलाबल को देखते हुये सेवन कराया जाता है। परिपूर्ण लाभ होता है।

१. गोमूत्र
२. एरण्ड तैल
३. हरीतकी चूर्ण
४. इच्छाभेदी रस
५. नाराचरस
६. गोदुग्ध
७. गोतक्र
८. पुनर्नवारिष्ट
९. दशमूलारिष्ट
१०. दशमूल क्वाथ
११. कुमार्यासव
१२. लौहभस्म
१३. पटोल चूर्ण
१५. नारायण चूर्ण।

"कदाचित्कुथते माता, नोदरस्था हरीतकी"।

विशेष ज्ञातव्य-यह स्मरण रखना चाहिये कि जो अनुभूत योग वैद्यों के द्वारा पत्रिकाओं में दिये जाते है उनके लिये भी चिकित्सक का परामर्श लेना आवश्यक है। अमृत के समान उत्तम औषधि भी थोडे अनुपान के गलत होते ही रोगी के लिये विष बन सकती है।



उदर रोगों पर एक सफल योग

पिपली १२५ तो०, पिपलामूल १२५ तो०, चित्रक १२५ तो०, सौंफ १२५ तो० द्रव्य-कच्चा बिल्व ५०० ग्रा० अनारदाना ५०० ग्राम, बब्बूलत्वक् ५०० ग्राम। सबको कूटकर चूर्ण करलें फिर उसे १६ गुणे जल के साथ एक हांडी में डालकर अग्निताप से क्वाथ करें, जब अष्टमांश जल (४ सेर) शेष रहे, तब उसे छानकर, उसमें २ सेर मिश्री डालकर दो तार की चासनी में ४ तो० सत् पिपरमैन्ट ४ तो० देशीकपूर ४ तो०, सत् अजवाइन, ४ तो० अर्क दालचीनी, ४ तो० अर्क इलायची, ८ तो० मृतसंजीवनी सुरा मिलाकर एक स्वच्छ शीशी में भरकर, डाट लगाकर रख दें। मात्रा-बच्चों को दस बूंद से २० बूंद वयस्कों को १ चाय चम्मच भर प्रात: मध्याह्न और सायं दें। यह हर्षुल जठर-तंत्रोजातर्पण, अतिसार और संग्रहणी की, हैजे की वमन, उत्क्लेद और सब प्रकार के अजीर्ण की औषधि होते हुए, यह अम्लपित्त, गैस्ट्रिक अल्सर अमीबिक डिसेंट्री पर भी लाभकारी है। यह जठर में पहुंचते ही जठरतंत्र को उत्तेजित करती है, पाचक रसों का उत्पादन बढ़ाती है। श्वास कास युक्त वातोदर, पित्तोदर कफोदर में समान रूप से लाभप्रद है। यह कृमि, वात, पित्त, कफ, नाशक है।

-वैद्य हर्षुल मिश्र

उदर-विकार एवं उसकी आशुगुणकारी चिकित्सा

वैद्य विद्याभूषण द्विवेदी एम० ए०, व्याकरण आयुर्वेद साहित्याचार्य
आयुर्वेद-संस्थान आचार्य नगर, बवेरू बांदा

रोगा: सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ, सुतरामुदराणि च।
अजीर्णे मलिनैश्चान्नै: जायन्ते मल संचयात्॥

सम्पूर्ण उदर रोग मन्दाग्नि, अजीर्णता मल संचय के कारण ही होते हैं। प्राय: यह जाना जाता है कि समस्त विकारों का मूल उदर-दोष ही है। लोकोक्ति है "आंतगरू तो माथगरू"। जैसे महोदधि में सम्पूर्ण सरिताओं का जल संग्रहीत होता है वैसे ही मुख विवर से निगलित पदार्थ उदर में संचित होते हैं। कदाचित्। भूख में भक्ष्य पदार्थ खाये गये हैं तो पाचन संस्थान उन्हें पचाकर रस आदि सप्त धातुओं में परिणत कर देगा। यदि मात्रा से अधिक तथा अभक्ष्य पदार्थों का सेवन किया गया है तो मन्दाग्नि, अपच, कोष्ठबद्धता जैसे प्रारम्भिक विकार बनने प्रारम्भ हो जायेंगे। आज के निन्दनीय प्रचलन में भोजन की सीमाओं का पूर्ण उल्लंघन कर रखा है। जब चाहे तब खाते रहना, बिना क्षुधा के भोजन करना, अधिक गरिष्ठ भोजन करना, पेट में अन्न के अतिरिक्त जल एवं वायु के लिये स्थान खाली न रखना आदि के कारण यह उदर दरीं अनेक रोगों की भण्डार बन गई है।

प्रात: जगते ही धूम्रपान गुटका, चुटका, तमाखू, बीडी, सिगरेट, चाय की दिनभर भरमार रहती है। भोजन में सब्जी आदि को तेल व लाल मिर्च से इतना तल दिया जाता है कि सब्जी प्राय: मृतप्राण हो जाती हैं। कुछ अभ्यासी उसे सहज खा जाते हैं परन्तु अनेक व्यक्ति अश्रुपात, नासिका प्रवाह व शीशी की ध्वनि करते रो-रोकर जैस खाते हैं और ऐसे ही अग्नाह्य पदार्थ पेट को जलाते तथा दूषित करते हैं जिससे अनेक रोग आविर्भूत हो जाते हैं। टी० वी०, सिनेमा, उपन्यास तथा अन्य रात्रि-जागरण के साधनों के माध्यम से पूरी रात्रि जागकर बिता देते हैं। इसका प्रभाव नेत्र, मन, मस्तिष्क तथा उदर पर पड़ता है। श्रद्धा, सद्भाव प्राय: विलुप्त होते जा रहे हैं। पति-पत्नी, पिता-पुत्र भाई-भाई से परस्पर में नहीं बनती, अत: निरन्तर मानसिक तनाव भरा जीवन जीने से पाचन-संस्थान प्रभावित होता है। अपच के कारण खाया हुआ पदार्थ पेट में सड़ता है, छोटे या बड़े कीट पड़ जाते हैं और वे कीड़े अनन्त संख्या में बड़ जाते हैं। उदर शिथिल हो जाता है, आलस्य, प्रमाद आने लगते हैं। रोगी निराश हो जाता परिणामत: कभी आत्मघात करता तो कभी वेचैनी दूर करने के लिये नशीली वस्तुओं का प्रयोग करता। निद्रानाश से अर्क विक्षिप्त तथा पूर्ण विक्षिप्त तक पहुंच जाता है अत: स्वस्थ जीवन के लिये अहितकर पदार्थों का सर्वथा त्याग करना ही उचित होता है।

उदर रोगों के परिगणन में प्राय: १-वातोदर २-पित्तोदर ३-कफोदर ४-सन्निपातोदर ५-प्लीहोदर ६-वद्धगुदोदर ७-जलोदर ८-सोदर विशेष रूप से जाने जाते हैं। इस रोग के उपचार में नमक का प्रयोग बिल्कुल नहीं या अल्पमात्रा में करना चाहिए। तक्र तथा गोमूत्र पान को प्राथमिकता देनी चाहिए। तक्र के साथ दोषों की वृद्धि या बलावल के अनुसार लवणभास्कर हिंग्वष्टक आदि चूर्णों का प्रयोग किया जा सकता है।

आशुगुणकारी चिकित्सा के सन्दर्भ में सर्व प्रथम ज्ञातव्य है कि समस्त उदर रोग त्रिदोषों की विकृति पर ही होते हैं। अत: वात-पित्त-कफ-शामक प्रक्रिया अपनानी चाहिए। अपेक्षित पंचकर्मों के माध्यम से शरीर संशोधन परमावश्यक है। विशेषकर स्नेहपान को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। एक गिलास गुनगुने गोदुग्ध (दुग्ध) में दो तोला शुद्ध एरण्ड तैल (कास्टर आयल) सायं पड़ते समय देना चाहिए। यह क्रिया तब तक चलती रहे जब तक पेट साफ न हो जाय। अथवा ५ तोला गोमूत्र के साथ दो तोला एरण्ड तैल देना भी उपयुक्त है। यदि

२. मूलकुठार अवलेह।

१. सनाय का वस्त्रपूत चूर्ण	१० ग्राम
२. मुलहठी का वस्त्रपूत चूर्ण	१० ग्राम
३. बादाम की गिरी का चूर्ण	५० ग्राम
४. बाल हरड़ का वस्त्रपूत चूर्ण	२५ ग्राम
५. बीज निकाला हुआ मुनक्का	७५ ग्राम
६. गुलकन्द	१०० ग्राम।

पहले मुनक्के को पीस कर उसकी बारीक चटनी बना लें फिर गुलकन्द मिलाकर खूब घोटें उसके बाद सभी चूर्ण थोड़े-थोड़े करके मिलाते जायें और घोटते जायें, अवलेहवत् हो जाने पर चौड़े मुंह की शीशी में भरकर रखलें।

यह व्यवस्था तीन सप्ताह तक करें तदनंतर शेष औषधियां बन्द कर दें केवल आसव और अवलेह का प्रयोग तीन सप्ताह और करवा दें। यकृत् विकृति के रोगियों को वातहर स्नेह का प्रयोग नहीं करवाया जाता है उनको आरोग्यवर्धिनी वटी दो गोलियां प्रातः, सायं भोजन से पहले दें एवं उपरोक्त आसवों के स्थान पर कुमार्यासव, रोहितकारिष्ट २० मि० लि० (प्रति) जल ४० मि० लि० मिलाकर भोजन के उपरान्त दें मधुमेह के रोगियों में मूलकुठार नहीं दिया जाता उनको भी आरोग्यवर्धिनी वटी दो गोलियां प्रातः, सायं भोजन से पहले दें।

पथ्य-१. निद्रा का दुश्चक्र भंग करने के लिये रोगी को प्रातः पांच बजे (घड़ी का अलार्म लगाकर) उठ जाना चाहिए एवं एक गिलास जल (सर्दियों में गर्म गर्मियों में ठण्डा पीकर प्रातः भ्रमण के लिये निकल जाना चाहिए तथा दिवा निद्रा को त्याग देना चाहिए।

२. भ्रमण (कम से कम एक घण्टा चलने के बाद) से लौटने पर एक नम्बर की औषधि लेनी चाहिए।

३. नाश्ते में फल या सब्जियों का सूप अथवा फलों का रस ही लेना चाहिए।

४. चपाती चोकर समेत आटे की लें खाने के साथ उचित मात्रा में घी का प्रयोग करें।

५. रिफाइण्ड आटा, मैदा, पालिश हुये चावल मिठाई एवं तली भुनी वस्तुयें मत लें।

यहां यह बताना भी मैं अपना कर्त्तव्य समक्षता हूं कि व्यवसाय में कभी-कभी ऐसे भी रोगी मिलते है। जिन्हें या तो कब्ज का वहम होता है जैसा कि ऊपर बता चुके है। या वह किसी अन्य रोग से पीड़ित होते हैं। अतः जब भी कोई रोगी कब्ज की शिकायत लेकर आये उसे पूछें कि मल ग्रंथित है या पतला। दिन में कितनी बार शौच जाना पड़ता है। शौच में बल तो नहीं लगाना पडता ? शौच के समय गुदा में पीडा होती है कि पेट में ? जिन रोगियों में मल पतला होता है तथा थोड़ा सा मल उत्सर्ग हाने के उपरान्त मल प्रवृत्ति नहीं होती रोगी बैठा-बैठा प्रतीक्षा करता है कि अभी और मल प्रवृत्ति होगी परन्तु निराशा ही हाथ लगती है, पेट का निचला हिस्सा (भाग) भारी रहता है, कभी-कभी पेट में हल्का-हल्का दर्द रहता है। पेट भरा सा प्रतीत होता है, ऐसे रोगी प्रातः दो से चार बार शौच जाते हैं। कभी-कभी शाम को भी इन्हें शौच जाना पड़ता है।

यह रोगी प्रायः सामान्य शरीर के होते है। इनकी भूख और निद्रा भी सामान्य ही होती है वास्तव में यह जीर्ण मलावरोध के नहीं अपितु जीर्ण प्रवाहिका के रोगी होते हैं इनकी चिकित्सा इस प्रकार करनी चाहिए।

चिकित्सा-१. नृपतिबल्लभ रस २ गोलियां प्रातः मधु के साथ अनुपान तक्र।

२ चिन्ताभल्लातक वटी १ गोली भोजन के मध्य में दिन में दो बार।

३. कुटजारिष्ट २० मि० लि० दशमूलारिष्ट १० मि० लि० जल ३० मि० लि० दोनों समय भोजन के बाद।

भल्लातक रसायन होने पर भी कई लोगों को अनुकूल नहीं पड़ता, अतः प्रथम चिन्ताभल्लातक की सूक्ष्म मात्रा देकर अनुकूलता निश्चित कर लेनी चाहिये यदि यह सहनीय हो तो इसका प्रयोग अवश्य करें, यत सद्यः अग्नि प्रदीप्त करके रोगी को रोग मुक्त कर देती है। जिन्हें यह प्रतिकूल हो उनको अभया पिप्पली (हरड़ और पिप्पली का समभाग वस्त्रपूत चूर्ण) चार रत्ती से एक माशा दिन में दो बार चिन्चा भल्लातक के स्थान पर भोजन से पूर्व दें। दो सप्ताह के उपरान्त, नृपतिबल्लभ, चिन्चा-भल्लातक बन्द करदें और अभया पिप्पली एवं दोनों आसव एक मास तक और प्रयोग करवाने चाहिये।

पथ्य-दूध, कच्ची सब्जियां फल (केले और अनार को छोडकर) मूंग मसूर और चने की दाल के अतिरिक्त सभी दालें, पत्तेदार शाक, आवश्यकता से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए।

दोनों रोगों में चिकित्सा छोडने पर भी कम से कम छः मास पथ्यपूर्वक रहना चाहिए।



उदर रोगों पर चिकित्सकीय अनुभव

डा० (वैद्य) शिवदत्त शर्मा आयुर्वेदाचार्य
आरोग्य निकेतन, गान्धीनगर जम्मू

प्राय: कब्ज को कोई विशेष रोग नहीं समझा जाता, प्रत्येक व्यक्ति को कभी न कभी कब्ज हो ही जाता है, तथा लोग उसकी चिकित्सा भी स्वयं ही त्रिफला, ईसबगोल, पैराफिन इत्यादि लेकर कर लेते हैं। परन्तु यदि कोई वास्तव में इस रोग से पीड़ित हो जाता है तो स्थिति रोगी और चिकित्सक दोनों के लिये सिरदर्द बन जाती है।

निदान-१. वायुवर्धक आहार-विहार २. व्यायाम का अभाव ३. कृमि (पुरीषज) ४. उपवास या आवश्यकता से कम भोजन करना ५. वेगावरोध ६. रेचक औषधियों का दुरुपयोग ७. धूम्रपान ८. यकृत्-विकार ९. मधुमेह १०. चिन्ता (दुष्चिन्ता) ११. चाय, काफी का अधिक प्रयोग।

लक्षण-मल का शुष्क एवं ग्रंथित होना, पेट के अधोभाग एवं गुदा में पीड़ा होना, मल प्रवृत्ति विलम्ब से एवं कष्टकर होती है। भोजन के बाद में पेट फूल जाता है। कई रोगियों को घबराहट, चिन्ता इत्यादि लक्षण होते हैं। यह सभी लक्षण उदावर्त के एवं चरकोक्त 'पुरीषावृत वायु' के हैं। मलबन्ध के रोगी प्राय: प्रकृति के होते हैं। तथा वातवर्धक आहार-विहार से वायु कुपित होकर पक्वाशय में स्थित मल को सुखा देती है। ऐसे रोगी अल्प मल त्याग करते हैं एवं उनका मल सूखा ग्रंथित होता है, या उनको दो या तीन दिन में एक बार मलोत्सर्ग होता है। मलोत्सर्ग में कठिनाई होती है कई बार गुदा में पीड़ा भी होती है और सूखे (वकरी की मैंगनी जैसे) आमयुक्त मल के साथ रक्त (गुद-वल्लियों से रगड़ (घर्षण) द्वारा स्रवित भी आ जाता है। उसे शिरशूल, अनाह हो जाता है, भूख और निद्रा कम आती है, रोगी सदैव चिंतित रहता है।

वास्तव में इस रोग में सम्यक् मल प्रवृत्ति के अभाव से चिन्ता, चिन्ता से अनिद्रा, अनिद्रा के कारण प्रात: देर से जागना एवं मल त्याग के समय की उपेक्षा करना एवं उससे मलवन्ध इस प्रकार का एक दुश्चक्र बन जाता है, यदि रोगी कोई रेचन औषधि लेना प्रारम्भ कर देता है, तो यह यक्र और भी विकृत हो जाता है बेशक रोगी को इससे सदा मानसिक तुष्टि होती है। मगर रोग जटिल हो जाता है और रोगी जानते हुये भी कि रेचक औषधि नहीं लेनी चाहिए। उसका सतत् प्रयोग करता रहता है।

कई लोगों को स्वभावत: दो या तीन दिन के उपरान्त सुख-पूर्वक मलोत्सर्ग होता है तथा अन्य कोई शारीरिक मानसिक लक्षण नहीं होते यह एक स्वभाविक अवस्था है, मांसाहारियों को शाकाहारियों की अपेक्षा अल्प मल प्रवृत्ति होती है वह भी रोगी नहीं होते, वास्तव में जिन लोगों को मल त्याग करने में कठिनाई होती है एवं जिनको मल त्याग करने में बल लगाना पड़ता है, जिनका मल शुष्क एवं ग्रंथित होता है वह ही मलबन्ध के रोगी होते हैं।

चिकित्सा-१. वातकुलान्तक रस १०० ग्राम, वातहर स्नेह १ चम्मच एक कप दूध में मिलाकर प्रात: भोजन से पहले।

२. अग्नितुण्डी वटी २ गोलियाँ भोजन के मध्य में।

३. दशमूलारिष्ट २० मि० लि०, रोहितिकारिष्ट १० मि० लि०, जल ४० मि० लि० दोपहर के भोजन एवं रात्रि के भोजन के उपरान्त।

४. मूलकुठार अवलेह २ चम्मच रात को सोते समय दूध के साथ।

उपरोक्त औषधियों में वातहर स्नेह एवं मूलकुठार का वर्णन है उन्हें अन्य स्वयं निर्माण करें अन्य औषधियां प्रसिद्ध कल्प हैं किसी अच्छी फार्मेसी की लेकर प्रयोग करें।

१. वतहर स्नेह।

दशमूल का यवकुट चूर्ण २५० ग्राम लेकर उसे चार किलो जल में भिगो दें दूसरे दिन उसका क्वाथ करें, दो किलो क्वाथ रहने पर उसे छान लें और उसमें एक लीटर एरण्ड तैल, सैन्धा नमक पचास ग्राम, हरिद्रा पचास ग्राम मिलाकर मन्दाग्नि पर पकायें तैल मात्र रहने पर छान कर बोतल में भर लें।

शूल होता हो, उद्‌गार शुद्धि न होने पाये तथा अन्त्र में सूक्ष्म कृमि हो तो इसे अवश्य सेवन कर लाभ प्राप्त करें। निरन्तर प्रयोग से पाचन-क्रिया सुधरती है। जिन्हें प्राय: कब्ज रहती हो उन्हें इसका कुछ समय लगातार सेवन करना चाहिए। इसकी सामान्य मात्रा ३ ग्राम है और अनुपान उष्ण जल है।

इसमें कुचला होने से इसे भोजन के पश्चात् ही लेना चाहिए। लम्बे समय तक लेने वाले व्यक्तियों को ८-१० दिनों के पश्चात् एक दिन इसे बन्द कर पुन: प्रारम्भ करना चाहिए। यह औषधि सेवन करने वालों को आहार में दूध व घृत का प्रयोग अवश्य करते रहना चाहिए।

अग्निमांद्य में इसे जीरक क्वाथ से, अजीर्ण में मुस्तक क्वाथ से, छर्दि में लवंग-बृहदेला क्वाथ से, गुल्म में सौंफ या कुष्ट या त्रिकुट क्वाथ से एवं विष्टम्भ किंवा आनाह जन्य उदरशूल में त्रिफला क्वाथ में घृत भृष्टहिंगु डालकर उसके अनुपान से दे सकते हैं। रोगी एवं रोग की स्थिति के अनुसार स्वयं चिकित्सा किसी अन्य उपयोगी अनुपान का निर्धारण कर सकता है।

जीर्ण रोगों में इस प्रयोग को कुछ अधिक समय तक सेवन करावें। अन्यथा मुख्य योगों के साथ में इसे सहायक औषधि के रूप में उपयोग में ला सकते हैं। सभी द्रव्यों की कार्मुकता को ध्यान मे रखते हुये इस प्रयोग को काम में लाना चाहिए। साथ में ही उपयुक्त पथ्यापथ्य पर भी अवश्य ध्यान देवें। तब ही यह प्रयोग चिकित्सक को पुण्य यश और श्री का भागी बना सकता है।



प्लीहारोग नाशक कुछ परीक्षित योग

१. एलुआ, अभ्रक भस्म, कसीस और लहसुन इन सबको समभाग लेकर तीन प्रहर तक द्रोणपुष्पी के रस में घोटकर ६-६ रत्ती की गोलियां बना लें। इसका सायंकाल जल के साथ सेवन करने से प्लीहा शोथ कम हो जाता है।

२. नौसादर, कलमीशोरा, फिटकरी और यवक्षार सबको समभाग लेकर डमरूयन्त्र से अर्क निकालें। यह प्लीहा और अश्मरी को नष्ट करने में अत्यन्त लाभदायक है। ५ से १० बूंद तक जल में मिलाकर इसे देना चाहिए।

३. बृहत् लोकनाथ रस को २ रत्ती मात्रा में, सुबह-शाम चाटने से प्लीहा में शीघ्र लाभ होता है। इसके साथ ही लोहासव का प्रयोग कराया जाय तो पाचन-क्रिया तेजी से सुधरती है।

४. यह एक यूनानी सिद्ध योग है। नौसादर २० तोला, जवाखार ५ तोला, नमक मनिहारी ५ तोला, नमक लाहौरी ५ तोला, सैन्धव लवण ५ तोला इन सब औषधियों को पीसकर आधा सेर कागजी नींबू के रस में मिलाकर, चीनी मिट्टी के बर्तन में डालकर धूप में रखें। जब नींबू का रस शुष्क हो जाये तो मिट्टी की हांडी में डालकर दूसरी हांडी उसके ऊपर रखकर कपड़मिट्टी कर चूल्हे पर चढ़ाकर तीव्र अग्नि देवें। सत्व ऊपर की हांडी में जा लगेगा। १ माशे की मात्रा में सुबह-शाम देवें शीघ्र लाभ होगा।

–वैद्य गुरुप्रसाद गौड़

एक उत्तम उदरामयहर प्रयोग

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' विशेष सम्पादक- 'वनौषधि रत्नाकर अंक'
मु० पो०- पचार (सीकर) राज०

रस कुपीलु शोधित सखे सैन्धव सर्जीक्षार।
शंख शिवा अरू दीप्यका संहार।।

१. रस सिन्दूर -	५ ग्राम
२. शुद्ध कुचला -	१० ग्राम
३. सैंधानमक -	२० ग्राम
४. सर्जिक्षार -	३० ग्राम
५. शंखभस्म -	२० ग्राम
६. हरीतकी चूर्ण -	१६० ग्राम
७. अजवाइन चूर्ण -	१२० ग्राम।

सर्वप्रथम रस सिंदूर को पीसकर उसमें शोधित कुचला का चूर्ण मिलाकर घोटें। इसके पश्चात् क्रमशः सैंधानमक, सर्जिक्षार तथा शंख भस्म मिलाकर भलीभांति घोटकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। इसमें मात्रानुसार हरीतकी का चूर्ण और अजवाइन का चूर्ण मिलाकर घोटकर दवा तैयार करलें। इससे उपयुक्त रोगों में उपयुक्त मात्रा में उपयुक्त अनुपान के साथ देवें।

द्रव्यों की कार्मुकता के विषय में कुछ दिगदर्शन करा देना उपयुक्त होगा-

१. रस सिंदूर-इस निमित्त षड्गुणगन्धक जीर्ण रस सिंदूर ही काम में लावें। उदरामयों में यह उदरशूल, गुल्म, अग्निमांद्य, आध्मान, अर्श, अजीर्ण, छर्दि आदि रोगों को नष्ट करता है। यह त्रिदोषहर एवं योगवाही होने से अत्यन्त उपयोगी है। प्रायः सभी दोषजन्य विकृतियों में यह लाभदायक है साथ में ही योगवाही होने से समिश्रित द्रव्यों के गुणों में भी वृद्धि करता है।

२. शु० कुचला-दीपन-पाचन, ग्राही एवं शूल प्रशमन होने से यह उदर रोगों में अतीव गुणकारी है। अग्निमांद्य, अजीर्ण, अम्लपित्त, उदरशूल, ग्रहणी, आमाशय शोथ, आध्मान, अन्त्रशूल, अतिसार, कृमिरोग आदि उदर रोगों को नष्ट करने में यह श्रेष्ठ द्रव्य है।

३. सैन्धव-यह दीपन-पाचन होने से आमाशयिक रसों मे बृद्धिकर भूख को बढ़ाता है एवं भोजन के पचाने में सहायक होता है। यह शीतवीर्य होने से पित्तहर है। यह शीघ्र पचने वाला तथा विबन्ध को मिटाने वाला है। सामान्यतया यह त्रिदोष शामक कहा गया है।

४. सर्जीक्षार-यह उष्णवीर्य पाचन एवं आध्मनादि वायु प्रकोप जन्य रोगों को नष्ट करने में श्रेष्ठ है। इसके सेवन से भूख में वृद्धि होती है। गुल्मरोग को नष्ट करने में यह श्रेष्ठ है। यह अम्लपित्त को भी शान्त करता है। छर्दि, अतिसार और ग्रहणी में भी यह उपयोगी हो सकता है।

५. शंखभस्म-यह अतिसार (विशेषतः- पक्वातिसार) ग्रहणी, परिणामशूल, अम्लपित्त गुल्म, अग्निमांद्य, छर्दि आदि उदर रोगों को शान्त करने में श्रेष्ठ है। यह जठराग्नि को बढ़ाने के लिए उत्तम औषधि है।

६. हरीतकी-यह दीपन-पाचन, कृमिघ्न, मृदुरेचन और यकृत्दुत्तेजन होने से उदर रोगों में अत्यन्त हितावह है। स्रोतः शोधन के लिए हरीतकी श्रेष्ठ औषधि है।

७: अजवाइन-यह दीपन-पाचन वातानुलोमन शूलप्रशमन तथा कृमिघ्न होने से प्रायः सभी उदर रोगों में लाभप्रद है।

इस प्रकार यह सात द्रव्यों के मिश्रिण से तैयार औषध उदर रोगों में बहुत लाभदायक है। इसे अधिक प्रभवी बनाने के लिए गोमूत्र से भावित कर छाया शुष्क कर सेवन करना चाहिए। लेखक ने अनेक बार इसका निर्माण कर उपयोग में लिया है प्रायः सर्वत्र सफलता मिली है।

यह प्रयोग दीपन-पाचन एवं सारक होने से अधिक लाभदायक है क्योंकि प्रायः सभी विकृतियां अग्नि की विकृति से ही होती है। जब आमाशय के रस की अम्लता बढ़ती जाय यकृत् से पित्त स्राव कम होने लगे, उदर में वायु की वृद्धि हो, बार-बार

२. योग-त्रिफला (समभाग) १०० ग्राम

विधारा के बीज २५ ग्राम

भांग शुद्ध २५ ग्राम

सौंठ ५० ग्राम

गुलाल शुद्ध १०० ग्राम

यथाविधि कूट छान कर १-१ ग्राम की वटी बनावें। १-१ गोली दिन में ३ बार गर्म जल से प्रयोग करें कब्ज न होने दें। गन्धक शुद्ध करते समय वचा हुआ घृत अथवा नीम का तैल गुदा की वलियों में लगावें।

बाह्य प्रयोगार्थ मलहम-समस्त उदर एवं बाल विकारों पर-

कुचले तलने से वचा हुआ एरण्ड तैल यदि न मिले तो केवल

एरण्ड तैल	१०० ग्राम,
हींग कच्ची	१० ग्राम,
कपूर सादा	१० ग्राम,
तम्बाकू पत्ते वाला	२० ग्राम,
नमक सैंधा	१० ग्राम,
मोंम देशी	२० ग्राम,
कलमी शोरा	१० ग्राम।

तैल गर्म करके मोंम व कपूर मिलावें पश्चात् शेष औषधि वारीक पीसकर मिला देवें।

उपयोग-आध्मान, उदर-शोथ, आन्त्र वृद्धि एवं वातज-शोथ मोच आदि में भी प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

❖❖

उदर रोगों में तक्रपान व्यवस्था

स्वस्थ रहने के लिए नीरोग मनुष्यों को भी तक्र सेवन अमृततुल्य है। नित्य विधिवत् तक्र सेवन करने वाला कभी बीमार नहीं पड़ता। कहा भी है-"न तक्र सेवी व्यथते कदाचित्।"

कफजनित पेट के रोग में मधुर रस से युक्त तक्र श्रेष्ठ होता है। वातोदर में पीपर और सेंधा नमक डालकर, पित्तोदर में काली मिर्च और शक्कर मिलाकर, कफोदर में अजवायन, सैंधानमक, जीरा, शहद और त्रिकुटा मिलाकर सन्निपातोदर में मधु, तैल, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सैंधानमक मिलाकर, बद्धोदर में हाउबेर, अजवाइन, सैंधानमक और जीरा आदि मिलाकर, छिद्रोदर में पीपल और शहद मिलाकर तथा जलोदर में त्रिकुटा का चूर्ण मिलाकर के तक्र पान करना उत्तम है।

उदर रोगों में विशेष उपयोगी त्रिफला रसायन

योग-हरीतकी, आंमला और बहेड़ा का सूक्ष्म चूर्ण कर उसके पच्चिसवां भाग काला नमक मिलाकर उस चूर्ण को नियमित ३ माशे शीतल जल से सेवन करने वाले मनुष्य को किसी प्रकार के पेट रोग नहीं होते। कब्ज का रोग जिन्हें हो इसका सेवन करें मल साफ होगा। पेट के रोग नहीं होंगे।

उदर रोगों में यह शिकायत प्राय: पाई जाती है और मल त्याग नहीं होता। उन पुरुषों को त्रिफला रसावन का सेवन अवश्य करना चाहिए।

मल त्याग करने के लिए हरीत की एरण्ड तेल में भून कर काला नमक मिलाकर रखना चाहिए और रोज रात्रि को सोते समय इसे ६ माशे सेवन करना चाहिए। इससे पेट साफ हो जाता है।

(संकलित)

उदर रोगों पर मेरे कुछ परीक्षित योग

वैद्य महेशनारायन मोहता भू० पू० मंत्री जनपद आयुर्वेद सम्मेलन
सराय मानसिंह (अलीगढ़)

उदर-विकारों में "अष्टक्षारीय गुटिका-

यह योग मेरे पूज्य बाबाजी के समय से मेरे चिकित्सालय में प्रयुक्त होता आया है। यह सभी प्रकार के उदर रोग जैसे शूल, आध्मान, भूख न लगना, उदर-कृमि, यकृत् एवं प्लीहा विकारों में लाभकारी है।

योग- हींग नं०	५० ग्राम
कज्जली (समभाग)	५० ग्राम
हिंगलोत्थ (पारदकी)	५० ग्राम
सौंठ	५० ग्राम
मिर्च	५० ग्राम
पीपल	५० ग्राम
शंख भस्म	५० ग्राम
पीतकर्पद भस्म	५० ग्राम
इमली क्षार	५० ग्राम
लौहभस्म	५० ग्राम
कसीस भस्म	५० ग्राम
पंचलवण	२५० ग्राम
जवाखार	५० ग्राम
मूलीक्षार	५० ग्राम
पुनर्नवा क्षार	५० ग्राम
स्वर्ण बंग क्षार	५० ग्राम
नौसादर कत्तल	५० ग्राम

यथाविधि कूट-छान कर अदरक, मूली, तथा नीबू के रस की २-२ भावना देकर १/२-१/२ ग्राम की वटी बना प्रयोग में लावे।

उदर-विकारों में "पाचक चूर्ण"

समस्त उदर-रोगों में बहुत पूर्व काल से इस योग को तैयार कर "पाचक चूर्ण" के नाम से प्रयोग करते आए है समस्त उदर-रोगों में आशुफलप्रद है।

हिंग्वाष्टक चूर्ण (शास्त्रोक्त) १०० ग्राम

नौसादर कत्तल ५० ग्राम

आक (अर्क) क्षार ५० ग्राम

यवक्षार ५० ग्राम

खाना सोड़ा १०० ग्राम

छोटी हरड भुनी ५० ग्राम

टाटरी २५ ग्राम

पिपरमैन्ट ५ ग्राम

अर्श-शास्त्रों में अर्श रोग ६ प्रकार का बताया गया है किन्तु लोक मे अर्श प्रायः खूंनी, बादी एवं आधुनिक चिकित्सा सार में भी २ प्रकार का मानते हैं। गुदा के भीतरी तथा बाहरी भाग के अर्श एक अत्यन्त दुखदायी बीमारी है। रोग के अतिघातक होने पर अतिरिक्त स्राव से मृत्यु तक हो सकती है।

उक्त भयंकर बीमारी से मुक्ति हेतु बहुत समय से मेरे चिकित्सालय में प्रयोग हो रहे योग निम्न हैं पाठकगण प्रयोग कर अवश्य लाभ प्राप्त करें।

१. योग-नागकेशर जीरे वाली -	५० ग्राम
दुधवच	२५ ग्राम
रसौत शुद्ध	२५ ग्राम
हरड छोटी (भुनी या तली हुयी)	५० गाम
गेंदे की पत्ती (छाया में सुखायी हुयी)	५० ग्राम

उक्त चूर्ण तैयार कर ५ ग्राम दिन मे २ बार प्रयोग करें मस्सों पर भांग या गेंदे की पत्ती पीसकर थोड़ी सी फिटकरी डाल टिकिया बना बनाकर वांधें।

१. अविपत्तिकर चूर्ण   २ ग्राम
लवणभास्कर चूर्ण   १ ग्राम
त्रिफला चूर्ण   १ ग्राम
१ मात्रा × २ बार

२. शंख वटी २-२ गोली तीन बार भोजोत्तर।

३. चित्रकादि वटी २-२ गोली २ बार चूसें।

४. पंचपुष्प ४-४ चम्मच दोनों वक्त भोजन के बाद बरावर जल मिलाकर।

अयवा

१. उदरामृत चूर्ण २-२ ग्राम तीन बार।

२. गैसान्तक कैपसूल १-१ कैप० दो वार भोजन के बाद।

३. पंचारिष्ट या पंचासव ४-४ चम्मच भोजनोत्तर बराबर जल मिलाकर दोनों वक्त।

४. सुगम चूर्ण या दीनदयाल चूर्ण या कायम चूर्ण १ चम्मच रात को सोते समय उष्ण जल के साथ।

नोट-उदरामृत चूर्ण अकेले भी गैसरोग में बहुत बढ़िया काम करता है। कई बार का अनुभव है।

अयवा

१. सीरप लिव-५२-२-२ चम्मच प्रात:, शाम खाली पेट। इसके स्थान पर सीरप लिवोट्रीट (गर्ग) दे सकते है।

२. सुक्तैन (Sooktyn) २-२ गोली २ बार।

३. गैसनौल २-२ चम्मच २ बार भोजन के बाद।

४. त्रिफगोल १-२ चम्मच रात को सोते समय।

नोट-केवल शिवाहार पाचन चूर्ण १-१ चम्मच तीन बार लेने से भी गैस रोग में फायदा होता है। गरीब रोगी जिन्हें एक से अधिक दवाएं नहीं दी ज़ा सकतीं उन्हें शिवाक्षार पाचन चूर्ण देना चाहिए। खाना हजम होता है, गैस दूर होता है एवं दस्त खुलासा आता है।

आंव (खूनी और सादा)

१. कुटजाघन वटी २-२ गोली २ बार सौफ के अर्क के साथ।

२. चित्रकादि वटी २-२ गोली ३ बार चूसें।

३. कुटजारिष्ट ४-४ चम्मच दोनो वक्त भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर।

४. ईसब्बेल (वैद्यनाथ) १-२ चम्मच रात को सोते समय।

नोट-कुटजघन वटी के स्थान पर वत्सकादिघन वटी या कुटजघन कैप० गर्ग २-२ दिया जा सकता है। मल में झाग अधिक होने पर Liv-52 Syrup २-२ चम्मच भी २ बार खाली पेट देना चाहिए। उपरोक्त चारों दवाएं और Liv-52 Syrup का प्रयीग मैने आंव के कई पुराने रोगियो को ठीक किया है जो वर्षों से इस रोग से पीडित थे। आंव के कुछ रोगियों के पेट में दाह (जलन) भी होता है वैसे रोगियों को उपरोक्त सभी के साथ-साथ प्रवालपंचामृत रस भी १-१ गोली २-३ बार देता हूं।

आंव के नये तथा तीव्र केसों में कुटजघनवटी २-२ गोली तीन बार वत्सकादि क्वाथ (ताजा) ४-४ चम्मच, चित्रकादि वटी २-२ गोली तीन-चार बार, ईसब्बेल १-१ चम्मच २ बार देने से प्राय: पहले दिन ही लाभ हो जाता है और ३-६ दिनों में रोगी ठीक हो जाता है जो वैद्य आंव के रोगियों को आधुनिक दवा Metrogyl सेवन कराते है वे इन औषधियो का सेवन कराके देखें। लाभ देखकर आश्चर्य चकित रह जायेंगे। Metrogyl कब्ज करता है परन्तु इन औषधियों से कब्ज नही होता है क्योकि ईसब्बेल का वेल चूर्ण और ईसफगोल की भूसी कब्ज भी दूर करता है।

वत्सकादि क्वाथ का योग इस प्रकार है-कुडा की छाल, कडुवा अतीस, कच्चे बेल की गिरी, नेत्रबाला और नागरमोंथा बराबर-बराबर मात्रा में लेकर जौकुट करके रख लें। इसमे से १५ ग्राम लेकर २४० ग्राम जल में पकावे जब ६० ग्राम जल बचे तो उतारकर छान लें और ३०-३० ग्राम की दो मात्राएं बना लें।

४. उदर कृमि-

१. कृमिकुठार रस २-२ गोली २ बार।

२ विडंगारिष्ट ४-४ चम्मच २ बार भोजन के बाद।

३. शिवाक्षार पाचन चूर्ण १-१ छोटा चम्मच २ बार।

अथवा

उदर रोगों की अनुभूत चिकित्सा

वैद्य सुनीलकुमार
पो०-नीमचा कोलियरी पो० विधान वाग वर्धमान (प० बंगाल)

१. अम्लपित्त और आमाशय व्रण (Hyperacidity and Ulcer)

१.	स्वर्ण सूतशेखर रस	१२५ मिग्रा०
	मुक्ता कामदुधा रस	१२५ मिग्रा०
	प्रवाल पिष्टी	१२५ मिग्रा०
	स्वर्णमाक्षिक भस्म	१२५ मिग्रा०
	गिलोय सत्व	१२५ मिग्रा०

१ मात्रा ×२ बार प्रातः, सायं खाली पेट अनुपान-आंवला मुरब्बा एक नग तथा गाय का दूध एक गिलास।

२. सुक्तैन टैब (Sooktyn Tab) - २ -२ गोली दिन व रात के भोजन के १५ मिनट बाद जल के साथ। रोग की तीव्रता में इसकी मात्राएं भी ली जा सकती हैं।

३. सीरप लिव-५२ (Syrup Liv-52) २-२ चम्मच दो बार भोजन के आधे घंटे पूर्व।

४. अविपत्तिकर चूर्ण १ चम्मच रात में सोते समय जल के साथ।

नोट-यह चिकित्सा-व्यवस्था अम्लपित्त, परिणामशूल, आमाशय-पक्वाशय व्रण पित्तहदाह में सामान रूप से उपयोगी है।

२. उदरवात (गैस रोग) (Gas Trouble)

१. गैसहर वटी (र०त०सा०) २-२ गोली ३ बार भोजन के बाद।

२. कुर्मायासव	२ चम्मच
द्राक्षासव	२ चम्मच
लोहासव	१ चम्मच

१ मात्रा ×२ बार भोजनोत्तर बराबर जल मिलाकर।

३. पंचसकार चूर्ण	२ ग्राम
लवण भास्कर चूर्ण	२ ग्राम
त्रिफला चूर्ण	१ ग्राम

१ मात्रा रात को सोते समय गर्म जल के साथ।

नोट-गैस रोगी अगर चाय के स्थान पर रामकेसर औषधालय (पटना) का बना आमलकी चाय सेवन करें तो गैस और कब्ज में अच्छा लाभ होते देखा गया है।

अथवा

१. चित्रकादि वटी	१ गोली
लहसुनादि वटी	१ गोली
हिंग्वादि वटी	१ गोली
शंख भस्म	१२५ मिग्रा०
त्रिफला चूर्ण	१ ग्राम
लवणभास्कर चूर्ण	१ ग्राम
आंवला चूर्ण	१ ग्राम

१ मात्रा × ३ बार।

२. लोहासव	१ चम्मच
कुमार्यासव	२ चम्मच
द्राक्षासव	२ चम्मच

१ मात्रा ×२ बार भोजन के बाद बराबर पानी मिलाकर।

३. एरण्ड भृष्ठ हरीतकी चूर्ण १ चम्मच रात में सोते समय सुखोष्ण जल या दूध के साथ। छोटी हर्रें १०० ग्राम लेकर अंडी के तैल (Caster Oil) में लाल होने तक मंद आंच पर भूनकर चूर्ण बना लें। यही एरण्ड भृष्ठ हरीतकी चूर्ण है।

अथवा

उदर-विकार नाशक कुछ परीक्षित द्राव प्रयोग

वैद्य श्रीनिवास दीक्षित, डा० सी० के० दीक्षित, डा० मधु दीक्षित
दीक्षित भवन पो०-सरदारशहर (राज०)

वर्तमान काल में पाश्चात्य संस्कृति के चकाचौंध व जिह्वा लोलुपता के वशीभूत होकर मनुष्य आहार सम्बन्धी आचार-संहिता व आयुर्वेदीय सद्वृत की निरन्तर अवहेलना करता जा रहा है। आज मुख्यत: आहार के स्वाद पर ही ध्यान दिया जा रहा है, उसकी गुणवत्ता को गौण समझकर हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसी का परिणाम है कि आज प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी उदर रोग से पीडित है। प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं में वर्जित अष्टविध आहार विशेषयतन, सद्वृत पालन आदि आहार ग्रहण करने के नियमों का पालन कर मनुष्य इन उदर रोगों के उत्पन्न होने से बच सकता है, परन्तु प्रज्ञापराधवश यदि व्याधि उत्पन्न हो जाए तो उनसे छुटकारा पाने के लिए आवश्यक है कि इन नियमों का पालन करने के साथ ही विधिपूर्वक पथ्यापथ्य का ध्यान रखते हुए, यथा समय मात्रावत् औषधि का सेवन करना। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इन उदर रोगों की चिकित्सार्थ अनेक औषध योगों का उल्लेख किया गया है, यहां पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत है, कुछ हमारे अनुभूत आशुकारी द्राव योग, इनका निर्माण कर लाभान्वित होंवे।

१. कुमारी द्राव-

घटक द्रव्य एवं निर्माण विधि-लौह चूर्ण ८० ग्राम, अजवायन १० ग्राम, अम्लवेत १० ग्राम, जीरक १० ग्राम, त्रिकुटा प्रत्येक २०-२० ग्राम, विभिक्त छाल, पीपलामूल, मूर्वा, सौंफ, आमलकी, चित्रक छाल हींग भुनी हुई हरीतकी छाल, अजमोद, धनियां, वायबिडंग, प्रत्येक १० ग्राम, कंलमी शोरा ५० ग्राम, सांभर लवण ५० ग्राम, सौवर्चल ५० ग्राम, सैंधव नमक ५० ग्राम, कुमारी स्वरस एक किलोग्राम।

उक्त समस्त द्रव्यों को एक साथ मिलाकर कांच या चीनी मिट्टी के स्वच्छ पात्र में मुख अच्छी तरह बन्द करके एक महीने पर्यन्त धूप में रख छोड़ें। एक माह पश्चात् स्वच्छ महीन वस्त्र से छानकर कांच की शीशी में मजबूत ढक्कन लगाकर रख लेवें।

सेवन काल-सुबह, सायं भोजन के बाद।

सेवन मात्रा-१० मिली० (दो चम्मच) पानी के साथ मिलाकर।

गुणधर्म एवं उपयोग-यह द्राव अग्नि मान्द्यंयता, उदरशूल, गुल्म, अपचन आध्मान, मलावरोध, यकृत्प्लीहा के विकार, अतिसार, ग्रहणी आदि दूर करता है।

इसके सेवन से उदर-विकारों का शमन होता है। यह द्राव शीघ्र फलदायी एवं गुण प्रदान करने वाला है।

२. शिग्रु द्राव-

घटक द्रव्य एवं निर्माण विधि-संहिजन मूल का रस, आर्द्रक रस, कड़वी छाल का रस, पोदीने का रस, नीबू का रस, प्याज का रस, कुमारी स्वरस एवं दही का पानी प्रत्येक ८०० मिली लीटर, जामुन का सिरका ४०० ग्राम, गन्धकाम्ल २० मिली०, यवक्षार ५० ग्राम, सज्जी क्षार ५० ग्राम, मधुर क्षार १०० ग्राम, सुहागा भुना हुआ ५० ग्राम, नरसार १०० ग्राम, कलमी शोरा २०० ग्राम, अपामार्गक्षार, तिलक्षार, कदली क्षार इमली क्षार, अर्क क्षार, स्नुही क्षार, चणक क्षार, झाऊ क्षार, विड्नमक, कांचनमक प्रत्येक २०-२० ग्राम, सैंधव नमक २०० ग्राम, सौवर्चल नमक २०० ग्राम, सांभर नमक २० ग्राम राजिका २०० ग्राम, हींग भुनी ५० ग्राम, चित्रकमूल छाल १०० ग्राम, सौठ, मरिच, पीपल, पीपलामूल, चव्य, श्वेत जीरक, कृष्ण जीरक, अजवायन प्रत्येक ५० ग्राम लेवें।

१. कृमिघातनी वटी २ गोली

त्रिफला चूर्ण ५ ग्राम

१ मात्रा × २ बार प्रात: शाम।

२. विडंगासव ४-४ चम्मच दोनों वक्त भोजन के बाद।

नोट-गर्ग कृमिघ्न कैप० १-१ तीन बार बिडंगारिष्ट के अनुपान से देने से अच्छा कार्य होता है। चरक का कृमिनिल भी अच्छा परिणाम देता है।

५. कामला (Jaundic)

१. आरोग्यवर्द्धिनी वटी २ गोली

नवायस लौह २ रत्ती

लिव-५२ सीरप २ चम्मच

१ मात्रा × २ बार खाली पेट

२. पुर्नवामंडूर २-२ गोली २ बार।

३. कुमार्यासव २ चम्मच

लोहासव २ चम्मच

पुनर्नवासव २ चम्मच

१ मात्रा ×२ बार भोजनोपरान्त बराबर जल मिलाकर।

४. त्रिफला चूर्ण १० ग्राम रात को सोते समय।

अथवा

१. कामलाहर फोर्ट कैप० १-१ कैपसूल ३ बार

२. लिव-५२ सीरप २-२ चम्मच ३ बार

३. लोहासव ४-४ चम्मच दोनों वक्त भोजन के बाद बराबर पानी मिलाकर। अथवा नवायस लोह या पनर्नवामंडूर २-२ गोली २ बार।

नोट-भैषज्यरत्नावली का फलत्रिकादि क्वाथ ४-४ तोला सुबह शाम १ तोला शहद मिलाकर नवायस लौह या पुनर्नवामंडूर २ गोली के साथ लेने से खूब फायदा करता है। योग इस प्रकार है त्रिफला ६० ग्राम, गुडूची, वासा, कुटकी, चिरायता और निम्बत्वक प्रत्येक २०-२० ग्राम लेकर ३२० ग्राम पानी में पकावें। जब जल जलकर ८० ग्राम रह जाय तो उतारकर छानकर दो मात्रा बनाकर पिवें।



उदर रोगों पर ३ अनुभूत योग

१. **गुल्म रोग पर योग :** हींग अच्छी १० ग्राम, वच २० ग्राम, बिड्नमक ३० ग्राम, सोंठ ४० ग्राम, अजवायन ५० ग्राम, बड़ी हरड ६० ग्राम, चित्रकमूल छाल ५० ग्राम और कूठ ४० ग्राम, नौसादर १० ग्राम सबको कूटकर कपडछान चूर्ण कर लेना।

मात्रा-१ तो० से २ तो० चूर्ण कुमारी आसव १ तो० २ तोला पानी मिलाकर सेवन करे ५ दिन में समस्त वायु गुल्म, उदर-विकार, उदरशूल नष्ट हो जाते हैं।

२. **यकृत्प्लीहा रोग हर योग :** अजवायन, चित्रकमूल, जवाखार, सज्जीखार, पीपरामूल, दन्ती जड, बडी पीपल, नौसादर और काली मिर्च, सब १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण कर लें मात्रा ३ से ६ माशे तक ठण्डे पानी के साथ सेवन करने से यकृत्प्लीहा रोग ठीक हो जाते है।

३. **बदहजमी में एक विशेष योग :** अर्क कपूर बहुत फायदा करता है। लहसुन तो० १, जीरा तोला १, सैंधा नमक तो० १, शुद्ध गन्धक तो० १, सौंठ तो० १, काली मिर्च तो० १, पीपल तो० १ और भुनी हुई हींग १ तो० इन ८ दवाओं को लेकर कपडछान चूर्ण करके नींबू के रस में घोटकर गोलियां बना लें, २ से ४ गोलियां खाने के बाद लेने से हैजा, पेट दर्द, जी मिचलाना, बजहजमी, दस्त, वमन आदि रोग ठीक होते हैं। यह घरेलू नुस्खा है। घर में डाक्टर वैद्य की जरूरत नहीं पडेगी। घर में चित्रकादि वटी जरूर रखनी चाहिए।

-वैद्य जगदीश प्रसाद आर्य गौतम मोड़ (खैर)

असहनीय उदर रोग पर अविस्मर्णीय अनुभव

वैद्य (डा०) कन्हैयालाल शर्मा
मु० पो०-पचावर (मथुरा)

करीब चार साल पहले की बात है। एक महिला नाम दीपिका पत्नी श्री मास्टर दीपचन्द जी (प्रधान अध्यापक) ग्राम बरौठ पो० नौहझील जिला मथुरा उ० प्र० के पेट में दर्द हो गया और पहले स्थानीय चिकित्सकों को दिखाया गया लाभ न होने पर नौहझील के सरकारी अस्पताल में और अन्य कस्बा के कई वैद्य डाक्टरों के दिखाने के बाद जब लाभ न हुआ और मरीज की हालत मरणासन्न हो चली तो फिर मथुरा के प्रसिद्ध हास्पीटल मैथोडिस्ट में भर्ती किया गया और डा० श्री थौमस ने अन्त में बड़ा आपरेशन करके आंत कुछ भाग निकाल दिया और रोगी को अन्य हाई एण्टीवायोटिक्स दवाओं के साथ एण्ट्रीटयूबर क्लोसिस दवायें भी प्रारम्भ कर दी। बाद में कुछ टांकों में मवाद (पीव) भी बनी पर वह करीब २ महीने से भी ज्यादा दवा चलने पर ठीक हो गयी-रोगी के जिस समय टांके पके हुये थे। उसी के आस-पास क्यों में संगीत व दंगल कुस्ती प्रेमी होने के नाते गांव कूयरा जिला अलीगढ़ में कुस्ती दंगल रेफ़रशिफ करने गया था वहां मरीज का लड़का व्याहा था तो मुझे पता लगा और मैं उसके चार दिन बाद गांव बरौठ मरीज को देखने पहुंचा तो मरीज के पति के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा कि आप अब तक नहीं आये उनको गुस्सा होना भी स्वाभाविक था क्योंकि मरीज पत्नी श्री दीपचन्द्र शर्मा का बेटा मेरा एकमात्र साढू है। अत: खूब नाराज हुए जैसे तैसे हमने उनको सान्त्वना दी कि भाई हमको तो कूबरा के दंगल में सूचना मिली है कि आण्टी के पेट में दर्द था और जैसिंहपुरा (मैथोड़िस्ट) में आपरेशन हुआ है और करीब २३ हजार रुपये का खर्चा आया है। खैर वे कुछ शान्त हुए पर रोगी को देखा टांके जो लगे थे उनमें से पीव बह रहा था और रोगी थोड़ी-थोड़ी दर्द की शिकायत करता था तो उस समय हमने उनसे नाड़ी परीक्षण करने के बाद कहा कि घबड़ाने की बात नहीं अब आप याद रखना कि इस रोगी को पुन: दर्द होगा और हमें खबर देना हम ही इसे जड से ठीक करेंगे बात आयी गयी हो गयी और रोगी ऐसे ही चलता रहा टांके तो ठीक हो गये पर कमजोरी पाचन आदि यथावत् रहे।

करीब १० महीने बाद रोगी के पुन: दर्द हुआ और स्थानीय वैद्य डाक्टरों के २-४ घन्टे के इलाज के बाद वह पुन: मैथोडिस्ट ले गये और जाने माने डा० थौमस से ४-५ दिन ट्रीटमेन्ट करने के बाद कहा कि तुम जल्दी २-४ घन्टे में पैसों का इन्तजाम करके जमा करें मरीज का दुबारा आपरेशन होगा-तब उनको अचानक मेरा ध्यान आया कि अब इतने अल्प समय में पैसे भी नहीं होंगे और कमजोर मरीज का दुबारा आपरेशन के पक्ष में भी हम नहीं तो उन्होंने मरीज को मैथोडिस्ट से निकाला और मेरे पास ले आये फिर मैंने प्रभू का नाम लेकर उनकी चिकित्सा की।

१. सर्वप्रथम रोगी को खाने के लिये सिर्फ घीया (कद्दू) की सब्जी दी गयी और दूध कतई बन्द कर दिया गया।

२. मालती बसन्त रस (स्वर्णयुक्त) १ गोली दिन में २ बार।

३. सूतशेखर रस गोली स्वर्ण युक्त दिन में २ बार।

४. आरोग्यवर्धिनी+सितोपलादि चूर्ण+संजीवनी वटी+कर्पदक तथा शंख (कपर्दक तथा शंख न्यून मात्रा में डाली गयी) करीब तीन महीने तक।

५. रोहिताकारिष्ट+अश्वगन्धारिष्ट+अमृतारिष्ट+द्राक्षारिष्ट समान भाग जल से पहले १ महीने तक फिर इस योग में से दूसरे महीने अमृतारिष्ट तथा तीसरे महीने द्रक्षारिष्ट को निकाल दिया गया तथा रोहितकारिष्ट तथा अश्वगंधा ६ महीने तक चलाया।

उक्त समस्त औषधी को एक स्वच्छ कांच या चीनी मिट्टी के पात्र में अच्छी प्रकार बन्द करके रख देवें। एक माह पश्चात् महीन स्वच्छ वस्त्र से छान कर स्वच्छ कांच के पात्र में अच्छी प्रकार ‾क कर रख लेवें, आवश्यकतानुसार उपयोग में लेवें।

सेवन काल-सुबह, सायं भोजन के बाद।

सेवन मात्रा-१० मिली द्राव (दो चम्मच) पानी के साथ मिलाकर।

गुण धर्म एवं उपयोग-इसके सेवन से मन्दाग्नि, गुल्म, यकृत-प्लीहा के विकार, उदरशूल एवं उदर के समस्त विकार ठीक होते हैं। यह अनेक रोगों को सरलता से दूर करने वाला चमत्कारिक योग है।

विशेष-अधिक आहार सेवन किए होने पर इसकी एक मात्रा सेवन शीघ्र पाचन करने वाला है।

३. आर्द्रक द्राव-

घटक द्रव्य एवं निर्माण विधि-त्रिकुटा प्रत्येक १५ ग्राम, हींग भुनी ७ ग्राम, सुहागा भुना हुआ १५ ग्राम, चित्रक छाल १५ ग्राम, लवंग १५ ग्राम, हरीतकी छाल १५ ग्राम, सैंधव नमक १०० ग्राम, सौवर्चल नमक ५० ग्राम, सांभर नमक ५० ग्राम, नीबू का रस ८०० मिली०, आर्दक रस ८०० मिली, दही ८०० मिली० लेवें।

उक्त समस्त द्रव्यों को मिलाकर किसी स्वच्छ कांच या चीनी मिट्टी के पात्र मे बन्द करके धूप में ग्यारह दिन पर्यन्त रख देवें। ग्यारह दिन पश्चात् किसी स्वच्छ महीन वस्त्र से छानकर स्वच्छ कांच के शीशी में बन्द करके रख देवें।

सेवन काल-दोनों समय भोजन के पश्चात।

सेवन मात्रा व विधि-१० मिली० (दो चम्मच) विगुल जल के साथ या बिना जल के सेवन करावें।

गुण धर्म एवं उपयोग-यह द्राव अतिसार, ग्रहणी-विकार, उदरशूल आदि को नष्ट करता है, क्षुधा बढाता है।

यह श्रेष्ठ दीपन, पाचन, रूचिकर स्वादिष्ट द्राव पाचन सम्बन्धित समस्त विकारों को दूर करने वाला है।

४. लौह द्राव

घटक द्रव्य-सुई सार की १०१ नग, कलमी शोरा १५ ग्राम, नवसादर १५ ग्राम, पंच लवण प्रत्येक १५ ग्राम, चोवा सज्जी १५ ग्राम, सोंठ १५ ग्राम, यवक्षार १५ ग्राम, टंकण १५ ग्राम, फिटकिरी १५ ग्राम, घृतकुमारी का गूदा १२०० ग्राम, नीबू का रस ७५० मिली लीटर लेवें।

निर्माण विधि-उक्त में समस्त शुष्क औषधियों को मोटा-मोटा कूटकर, समस्त को मिलाकर (नीबू रस व कुमारी गूदा सहित) एक अच्छी मिट्टी की चिकनी हांडी में डालकर अच्छी प्रकार कपड़मिट्टी करके मुख बंद मजबूत करके जमीन में गाड़ देवे। तत्पश्चात् इक्कीस दिन पश्चात् इसे निकालकर स्वच्छ वस्त्र से छानकर स्वच्छ कांच की शीशी में भरकर रख लेवें।

उपयोग मात्रा-एक चम्मच (पांच मिली), जल से साथ।

सेवन विधि-द्राव में जल मिलाकर गले से भीतर की ओर डाल देवें, दांतों के स्पर्श न होने पाए।

गुणधर्म-इस द्राव के उपयोग से जलोदर, कठोदार, शोफोदर, यकृत्-प्लीहा के विकार, उदरशूल, मन्दाग्नि आदि रोग शीघ्र नष्ट हो जाते है।

यह द्राव पाचन-क्रिया को सुधारकर समस्त विकारों को दूर करता है।

५. विशिष्ठ शंखद्राव-

घटक द्रव्य-फिटकरी, यवक्षार, कलमीशोरा, नरसार, सज्जीक्षार, सोंठ समुद्र लवण, खारी लवण, सांभर लवण, इन सब औषधों को समभाग लेकर पीस लेवें एवं नीबू रस आवश्यकतानुसार लेवें।

निर्माण विधि-उक्त औषधों को एक सप्ताह तक नीबू रस में खरल करें, फिर स्वच्छ कांच की शीशी में डालकर पाताल यंत्र द्वारा इसे चुवा लेवें। यह मन्द-मन्द अग्नि पर दो-तीन पहर तक चुवायें। फिर चुवाये द्रव को स्वच्छ कांच की शीशी में कार्क लगाकर रख लेवें।

उपयोग मात्रा-तीन बूंद सुबह-सायं या आवश्यकतानुसार।

सेवन विधि-इसको जल मिलाकर कांच या चीनी मिट्टी की नलिका द्वारा गले में नीचे डाल देवें, दांतो के न लगे इसका ध्यान रखें। इसके पश्चात् तत्काल पके भात (चावल) एवं चीनी का पथ्य सेवन करावें। पथ्याभाव में रोगी को बहुत कष्ट होगा।

गुणधर्म-यकृत्-प्लीहा, गुल्म, अर्श, भगन्दर, मन्दाग्नि, उदरशूल एवं अन्य उदर-विकार नष्ट होते हैं।

विशेष-द्राव परीक्षण-शंख द्राव में कौड़ी डालने पर गल जाए तब इसे अच्छा बना है समझे।



- आयुर्वेदिक
- एलोपैथिक
- होम्योपैथिक
- प्राकृतिक
- ज्योतिष-योग-तंत्र एवं
- अन्य चिकित्सा सम्बन्धी समस्त पुस्तकों एवं सुधानिधि के पूर्व प्रकाशित विशेषांकों का

सूचीपत्र

सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

६. रोगी पूर्ण विश्राम के साथ किसी भारी वस्तु को उठाने के लिए मना किया गया तथा कभी कोई जुलाब न लेने की सलाह दी गयी १ काली मिर्च, ३ तुलसी पत्र तथा २ रत्ती सोंठ सब्जी में कभी भी खाने को कहा।

इस प्रकार पथ्य व धैर्यपूर्वक दवा लेने पर रोगी लगभग साड़े तीन साल से पूर्ण स्वस्थ है तथा कभी कोई दर्द नहीं हुआ कभी कोई बुखार खांसी आदि की शिकायत नहीं हुई वैसे मैं पाठकों की ओर कुछ कहना चाहूं कि इस दर्द निवारक कोई विशेष दवा का उल्लेख नहीं है मैं मानता हूं पर सिर्फ इसी चिकित्सा से रोगी पूर्ण रूप से रोग मुक्त है रोगी की उम्र करीब ५० वर्ष की है तथा सारा परिवार आयुर्वेद के गुणगान करता रहता है इस रोगी के सभी पूर्ण जांच आदि के सबूत रोगी व हमारे पास मौजूद हैं।



● **सम्पादकीय टिप्पणी :**

उदर रोगियों को कुछ आवश्यक परामर्श

१. वर्तमान में चूंकि खाद्यान्नों में मिलावट की भरमार रहती है, अत: शुद्ध खाद्यान्न के सेवन के प्रति जागरुक रहे।

२. ज्यादा तले हुये मिच, मसाले,. वाले भोजन से बचें।

३. पानी शुद्ध ग्रहण करें। उबला पानी लेना अधिक हितावह है।

४. लघु, पौष्टिक, सुपाच्य, अग्निदीपक पदार्थों का सेवन अधिक करें।

५. प्रात: उठते ही जलपान करना बहुत उत्तम साधन है। अम्लपित्त के रोगियों को इससे विशेष लाभ होता है।

६. फलों में पपीता, सेब, अंगूर, सन्तरा, नींबू, मौसम्बी, उत्तम है। सब्जी में परवल, तरोई पपीता, पत्ता गोभी, लौकी, गाजर, मूली, करेला आदि उत्तम है। स्वस्थ व्यक्ति सप्ताह में एक बार शनिवार रात्रि को उत्तम मृदु विरेचन लिया करें।

७. प्रात: नित्य टहलने का नियम एक आवश्यक चर्या है। सभी उदर रोगियों को प्रात: टहलने से विशेष लाभ होता है।

८. ऋतु परिवर्तन के समय १५ दिवस तक भृंगराज, घृतकुमी, कुटकी, चिरायता, रोहितक, गुडुची, निम्ब, यवतिक्ता काकमाची आदि में से किसी एक का स्वरस क्वाथ २ तोला प्रात: सायं लेने से यकृत् को बल मिलेगा। आलस्य प्रवृत्ति के कारण यदि रस या क्वाथ के झंझट में न पडना हो तो किसी यकृत रोग नाशक पेटेण्ट औषधि का प्रयोग करें।

९. किसी अच्छे वैद्य से या आयुर्वेदिक संस्था से अपनी प्रकृति चांज करावें तथा अपने लिए निर्देशित जीवन-यापन करें।

१०. मद्यपान छोडे, नित्य मद्यपान यकृत के लिए घातक है।

११. कोई भी तीक्ष्ण औषधि चाहे एलोपैथिक हो या आयुर्वेदिक बिना चिकित्सक के परामर्श न लेवें। चिकित्सक गण भी आवश्यकता के अनुरूप ही औषधि का प्रयोग करें। सामान्य तथा सौम्य काष्ठ औषधि से ही चिकित्सा होनी चाहिए।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग

बालों के रोग	१२.००
बाल रोग चिकित्सा	३०.००
विष चिकित्सा	१५.००
बवासीर चिकित्सा	१०.००
व्याधि विज्ञान विश्व कोष	२०.००
बुढ़ापे के रोग	१०.००
बच्चों के रोगों का निरीक्षण	५.००
बच्चों के रोगों का इलाज	१०.००
बांझपन चिकित्सा	१०.००
ब्लड प्रेशर चिकित्सा	६.००
ब्लड प्रेशर	१०.००
ब्लड व ग्लूकोज	१०.००
भोजन द्वारा स्वास्थ्य और चिकित्सा	२०.००
मुंह, जीभ तथा गले के रोग	७.००
मानसिक रोग चिकित्सा	७.००
मोतियाबिन्द की बिना आपरेशन चिकित्सा	५.००
मोटापा घटाएं	१५.००
मधुमेह चिकित्सा	१०.००
मूर्छा चिकित्सा	१०.००
मार्डन इंजेक्शन	५०.००
माइनर सर्जरी	३०.००
मार्डन ब्लड प्रेशर	२०.००
मेडीकल समस्या	२५.००
मार्डन डायग्नोसिस	२५.००
मेडीकल इमरजेंसी	२०.००
मार्डन स्टेथिस्कोप	५.००
मलेरिया चिकित्सा	१०.००
यकृत एवं प्लीहा के रोग	५.००
लड़का लड़की इच्छानुसार उत्पन्न करने के गुप्त भेद	७.००
लेडी डाक्टर	३०.००
स्नायु दौर्बल्य (नर्वसरोग)	२०.००
स्वमूत्र द्वारा स्वास्थ्य	१०.००
सिर दर्द चिकित्सा	५.००
सिर व मस्तिष्क के रोग	५.००
संक्रामक रोगों की चिकित्सा	५.००
श्वास रोग चिकित्सा	१०.००
स्टेथिस्कोप गाइड	१०.००
शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान	४०.००
सचित्र ई० सी० जी०	३०.००
हार्ट अटैक व हृदय रोग	१५.००

गुण तथा उपयोग की पुस्तकें

अदरख और सोंठ के उपयोग	५.००
केला के उपयोग	५.००
गाजर के उपयोग	५.००
तुलसी के उपयोग	५.००
नीबू के उपयोग	५.००
नीम के उपयोग	५.००
प्याज के उपयोग	५.००
मूली के उपयोग	५.००
लहसुन के उपयोग	५.००
हल्दी के उपयोग	५.००

होम्योपैथिक तथा वायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन	१५.००
कम्पलीट होम्यो० रेपर्टरी (राजेश दीक्षित)	८०.००
चर्म रोगों की होम्यो चिकित्सा	६.००
यकृत रोगों की होम्यो० चिकित्सा	७.००
फेंफड़ों तथा हृदय रोगों की होम्यो० चिकित्सा	६.००
वृहद होम्यो० चिकित्सा (राजेश दीक्षित)	१८०.००
वृक्क शोथ व मूत्राशय के रोगों की होम्यो० चिकित्सा	६.००
मानसिक रोग चिकित्सा	७.००
सरल होम्यो मेटेरिया मेडिका (राजेश दीक्षित)	३०.००
होम्यो० चिकित्सा विज्ञान (वाई०डी० गहराना)	४८.००
होम्यो परिवार चिकित्सा (राजेश दीक्षित)	६०.००
होम्योपैथी के चमत्कार (राजेश दीक्षित)	५०.००

आयुर्वेदिक एलोपैथिक की उपयोगी पुस्तकें

आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान	७५.००
आयुर्वेद चिकित्सा कोष	६०.००
आयुर्वेद के चमत्कार	५०.००
आयुर्वेदिक चिकित्सा सार	३०.००
आयुर्वेदिक इंजेक्शन	२०.००
आयुर्वेदिक पेटेण्ट चिकित्सा	२०.००
अशोक एलोपैथिक गाइड	६०.००
आधुनिक एलो० पेटेण्ट चिकित्सा चार्टस (जहानसिंह चौहान)	२१०.००
अप्टूडेट कम्पाउण्डर्स गाइड	२०.००
अस्थि एवं दंत रोग चिकित्सा	६.००
एक हजार यादगारी दवायें	२५.००
एड्स रोग चिकित्सा	३६.००
एड्स रोग चिकित्सा	१५.००
एलोपैथिक मेडीकल प्रेक्टिशनर	६०.००
एलोपैथिक पशु चिकित्सा	५०.००
एक्यूपंचर चिकित्सा	८०.००
एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका	२५.००
एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा	२०.००
एलोपैथिक पेटेण्ट मेडीसन्स	३०.००
एलर्जी एवं रियेक्शन करने वाली औषधियां	५.००
एवोर्शन गाइड	३०.००
एक्यूप्रशर चिकित्सा	१०.००
एण्टीवायोटिक ड्रग्स	५.००
कब्ज चिकित्सा	७.००
क्लीनिकल लैव गाइड	८०.००
कम्पलीट फर्स्टएड	२०.००
खांसी चिकित्सा	१०.००
गुप्त अनुभूत योग	१०.००
गुप्त रोगों का इलाज (सभी पद्धतियों द्वारा)	२०.००
गर्भपात व गर्भ निरोध	१०.००
गर्भपात चिकित्सा	५.००
घरेलू नुस्खे	१०.००
घरेलू स्वास्थ्य	२०.००
चुम्बक चिकित्सा	१०.००
चर्म रोग चिकित्सा	१०.००
मार्डन चर्म रोग चिकित्सा	२०.००
जड़ी बूटियों के चमत्कार	२५.००
जोड़ों के दर्दों की चिकित्सा	१०.००
ज्वर चिकित्सा	१५.००
डायग्नोसिस गाइड	१५.००
ताकत का खजाना (शक्तिवर्धक औषधियां)	१५.००
दुबला व पतलापन की चिकित्सा	१५.००
दन्त रोग चिकित्सा	१५०.००
दर्दों की चिकित्सा	२०.००
डायविटीज चिकित्सा	६.००
नाक तथा कान की बीमारियां	७.००
नाड़ी परीक्षा	५.००
नजला जुकाम की चिकित्सा	५.००
नशामुक्ति चिकित्सा	३०.००
पशुओं के घरेलू इलाज	१५.००
पाचन संस्थान के रोग	५.००
प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार	५.००
पैसा-पैसा की सफल दवायें	१०.००
पक्षाघात चिकित्सा	५.००
पथरी रोग चिकित्सा	२०.००
पौरुष शक्ति वर्धक योग	१५.००
प्रदर रोग चिकित्सा	५.००
प्रेक्टिस आफ मेडिसन्स	१०.००
प्रदर चिकित्सा	६.००
प्रेस्क्रिप्शन बुक	२०.००
पाकेट इन्जेक्शन गाइड	१५.००
प्रेक्टिस रोगी व आय बढ़ाने के रहस्य	५.००
पशु एवं पौल्ट्री के रोग और पेटेण्ट औषधियां	६०.००

सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

होम्यो चिकित्सा सार (राजेश दीक्षित)	३०.००
होम्यो मानस दर्शन	३०.००
होम्यो स्त्री रोग चिकित्सा बड़ी	३०.००
होम्यो स्त्री रोग चिकित्सा छोटी	१५.००
होम्यो [illegible] चिकित्सा	१५.००
होम्यो [illegible]लरोग चिकित्सा	१५.००
होम्यो मदर टिक्चर्स गाइड	१५.००
होम्यो गुप्त रोग चिकित्सा	१२.००
होम्यो चर्मरोग चिकित्सा	१२.००
होम्योपैथिक चिकित्सा	१२.००
होम्यो उदर रोग चिकित्सा	१०.००
होम्यो चुम्बक चिकित्सा	१०.००
होम्यो वात रोग चिकित्सा	६.००
होम्यो नेत्र रोग चिकित्सा	६.००
होम्यो प्रेस्क्रिप्शन	६.००
होम्योपैथिक दर्पण (पाकेट गाइड)	६.००
होम्योपैथी द्वारा आसान इलाज	६.००
होम्योपैथी के अचूक नुसखे	५.००
होम्योपैथिक गाइड	१५.००
वायोकैमिक गाइड	१५.००
कम्पलीट वायोकैमी	७५.००
वायोकैमी के चमत्कार	५०.००
वायोकैमिक चिकित्सा	१२.००
वायोकैमिक दर्पण (पाकेट गाइड)	६.००
वायोकैमी द्वारा आसान इलाज	६.००

योग एवं योगासन की पुस्तकें

८४ योगासन एवं स्वास्थ्य	१२.००
योगासन एवं स्वास्थ्य	२०.००
योग के अद्भुत चमत्कार	३०.००
योगासन सबके लिए	१८.००

यौन, सैक्स एवं कामविज्ञान की पुस्तकें

१०१ सम्भोग शक्तिवर्धक योग	५.००
काम वासना ज्ञान	१०.००
कामवासना उत्पन्न करने वाली औषधियां	५.००
पुरुष गुप्त रोग चिकित्सा	१५.००
वीर्य मर्दाना बांझपन चिकित्सा	५.००
स्वप्न दोष चिकित्सा	६.००
शीघ्रपतन चिकित्सा	६.००
स्त्री पुरुष गुप्त रोग चिकित्सा	२५.००
शादी से पहले शादी के बाद	१५.००
सचित्र नपुंसक चिकित्सा	१५.००
सम्भोग आनन्द विज्ञान	१५.००
स्वप्न दोष, शीघ्रपतन	१०.००
सम्भोग सम्राट बनाने वाली औषधियां	१०.००
शुक्रकीट वीर्य वृद्धि विज्ञान	५.००
स्तन सौंदर्य एवं स्तन रोग चिकित्सा	१५.००

ज्योतिष, योग एवं तंत्र विद्या की पुस्तक

अलौकिक शक्तियों की साधना	४५.००
ग्रहनक्षत्र तंत्रम्	४५.००
चमत्कारी रत्न साधना	५१.००
चमत्कारी तांत्रिक साधना (वनस्पति तंत्र)	३०.००
दुर्गा शप्तशती	२५.००
नवग्रह अनुकूल तंत्र	३०.००
भारतीय फलित ज्योतिष	७५.००
भारतीय तंत्र विद्या	१२५.००
भाग्य का प्रतिविम्ब (हस्तरेखायें)	६५.००
मनोकामना पूरक मंत्र	३०.००
रहस्यमयी गुप्त विद्यायें (यंत्र मंत्र तंत्र)	५१.००
शक्ति तंत्रम्	३०.००
शावर मंत्र विद्या	३०.००
श्री तंत्रम (धन प्रदायक साधनाऐं)	३०.००
सूर्य तंत्रम्	३०.००

वैद्यों के लिए आवश्यक

रोगी रजिस्टर २०० पृष्ठ	२५.००
रोगी रजिस्टर १०० पृष्ठ	१५.००
सिकनेस सर्टीफिकेट २० पेजी (अंग्रेजी)	५.००
फिटनेस सर्टीफिकेट २० पेजी (अंग्रेजी)	५.००
रोगी व्यवस्था पत्र बड़ा साइज़	१०.०० सैकड़ा
रोगी व्यवस्था पत्र, छोटा साइज	८.०० सैकड़ा

सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

निदान चिकित्सा विज्ञानांक (पंचम भाग)–इस भाग में प, फ, ब, भ, म अक्षरों से प्रारम्भ होने वाले लगभग ५० रोगों के निदान, लक्षण तथा चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस भाग के विशेष सम्पादक आयुर्वेद जगत् के विशिष्ट विद्वान तथा अनेक ग्रन्थों के रचियता डा० महेश्वर प्रसाद प्राणाचार्य हैं। ४०० पृष्ठों के इस विशेषांक में अनेक चित्रों का समावेश किया गया है। मूल्य-४०.००।

वनौषधि रत्नाकर अंक

वैद्यराज देवीशरण जी गर्ग ने अपने जीवन काल में धन्वन्तरि पत्रिका के माध्यम से आचार्य कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी के सम्पादकत्व से 'वनौषधि विशेषांक' नाम से ६ भाग प्रकाशित कराये थे जिनकी आयुर्वेद जगत् में विशेष प्रशन्सा हुयी और प्रत्येक भाग के कई कई संस्करण प्रकाशित किये गये। लेकिन बाद में इनका पुनर्मुद्रण नहीं हो सका और इसकी माग निरन्तर बनी रही। वनौषधि विशेषांक के अभाव की पूर्ति के लिये हमने सुधानिधि के माध्यम से वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' के सम्पादन से 'वनौषधि रत्नाकर' श्रृंखला का प्रकाशन वर्ष ८६ में प्रारम्भ किया जिसके अब तक ४ भाग प्रकाशित हो चुके है और इनका भी वनौषधि विशेषांक की तरह आयुर्वेद जगत् मे स्वागत हुआ है। इसका प्रथम भाग समाप्त हो चुका है जिसका शीघ्र ही पुन: मुद्रण कराने की योजना है। बाकी के भागो की भी शीघ्र समाप्त होने की आशा है। सुधानिधि के पाठको से हमारा अनुरोध है कि वह इस श्रृंखला के जो भी भाग उपलब्ध है उन्हें मंगाकर रखलें ताकि जब प्रथम भाग पुन: प्रकाशित हो तो श्रृंखला पूरी हो सके। द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ भाग का विवरण इस प्रकार है-

द्वितीय भाग-पृष्ठ संख्या ४००, वनौषधियो की सूची-उदम्बर, उलटकम्बल, उशीर, उस्तखद्दूस, एरण्ड, एलाद्वय, कटफल, कटुका, कन्टकारी, वृहती, कपिकच्छु, कर्पूर, करंज, कर्कटश्रंगी, कांचनार, किरात, कुचला, मूल्य-४०.००।

तृतीय भाग-पृष्ठ संख्या ३८४, वनौषधियां-कुटज, कुमारी, कुलजंन, कूठ, केशर, खर्जूर, खदिर, गुग्गुल, गिलोय, गुलाब, गोक्षुर, चक्रमर्द, चदन, चव्य, चित्रक। मूल्य-४०.००।

चतुर्थ भाग-पृष्ठ संख्या ३५२, वनौषधियां जटामासी, जातीफल, जीरक, कलोजी, ज्योतिष्मती, ताम्बूल, तालीस, तुवरक, तुलसी, तेजोवती, त्रिवृत्त, त्वक, दन्ती, जयपाल, दाडिम, द्राक्षा, मूल्य-४२.००।

कैंसर निदान चिकित्सा विज्ञानांक

कैंसर वर्तमान की एक बहुप्रचलित व्याधि है। इस विषय पर अब तक अनेक साहित्य प्रकाशित हुआ है। सुधानिधि ने भी वर्ष १९९२ मे इस विषय पर 'कैंसर निदान चिकित्सा विज्ञानांक' के नाम से एक वृहद विशेषांक आयुर्वेद जगत के विशिष्ट विद्वान डा० महेश्वर प्रसाद 'प्राणाचार्य' के सम्पादन में प्रकाशित किया गया था। ४०० पृष्ठो तथा अनेक चित्रों से युक्त इस विशेषांक की आयुर्वेद जगत मे भूरि-भूरि प्रशंसा हुयी। आयुर्वेद जगत् के विशिष्ट विद्वानों की मान्यता है कि कैंसर विषयक आयुर्वेद ज्ञान को प्रस्तुत करने वाला इसकी तुलना में दूसरा कोई ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। कैंसर [illegible] पर आयुर्वेद सिद्धान्तो के साथ-साथ अनेक विद्वानों के अनुभव इस विशेषांक की विशेषता है। आयुर्वेद के अतिरिक्त अन्य चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से भी कैंसर विषयक विपुल सामिग्री प्रस्तुत की गयी है। यदि आपके पास इस महत्व पूर्ण विशेषांक की प्रति नहीं है तो १ प्रति अवश्य मंगाकर रखलें।

मूल्य-[illegible]।

सुधानिधि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

गर्ग वनौषधि भण्डार

विजयगढ़ (अलीगढ़)

द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक, पेटेन्ट शास्त्रोक्त औषधियों
तथा आयुर्वेदिक कैपसूलों का
संक्षिप्त विवरण एवं

मूल्य तालिका

गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़ (अलीगढ़)

आयुर्वेदिक कैपसूल, पेटेन्ट एवं शास्त्रोक्त औषधियों के विश्वस्त निर्माता

सुधानिधि के पूर्व प्रकाशित लघु अंक

वैद्य देवीशरण गर्ग स्मृति अक (अनुभूत प्रयोग सहित)	३ ५०	गुदरोगांक	४ ००
[illegible]दावांक (प्रथम भाग)	३ ५०	फिरग एवं पूयमेह अक	४ ००
दन्त रोगांक	३ ५०	होम्योमंजूषा अक	४ ००
यक्ष्मारोगाक	३.५०	कुष्ठ रोगांक	४.००
पाण्डु कामला अंक	३ ५०	सन्ततिनिरोध अक	४.००
अपस्मार योषस्मार अक	३ ५०	रोगी परीक्षा निदानांक (भाग-२)	४ ००
गृह वस्तु चिकित्साक (द्वितीय भाग)	३ ५०	रोगी परीक्षा निदानाक (भाग-३)	४.००
काम समस्या अंक (भाग-४)	६ ००	रोगी परीक्षा निदानाक (भाग-४)	४.००
काम समस्या अक (भाग-५)	६ ००	रोगी परीक्षा निदानांक (भाग-५)	४ ००
प्रदर रोग अक	६.००	बायोकैमिक अक	४ ००
प्रतिश्याय रोग अक	६ ००	अस्थि रोगांक	४ ००
रति रहस्य अक (भाग-१)	६.००	कैसर रोगाक (प्रथम भाग)	४.००
रति रहस्य अंक (भाग-२)	६ ००	कैसर रोगाक (तृतीय भाग)	४.००
योगासन अक (भाग-१)	६.००	क्लैव्य एव बाजीकरणांक	४ ००
योगासन अक (भाग-२)	६ ००	रक्त रोगाक	४ ००
एड्स रोगाक	६ ००	प्रमेह रोगाक	४.००
चुम्बक चिकित्साक	६ ००	मधुमेह अनुसधान अंक (प्रथम भाग)	४ ००
स्थूलता निवारण अक	६ ००	मधुमेह अनुसधान अक (द्वितीय भाग)	४ ००
अम्लपित्त रोगाक	६ ००	एक्यूप्रेशर अक	४ ००
स्वमूत्र चिकित्सांक	८ ००	आमवात रोगाक	४ ००
नाडी परीक्षा अंक	८ ००	गर्भावस्था रोग चिकित्सांक (भाग-१)	४ ००
श्वास रोग चिकित्सांक	४ ००	गर्भावस्था रोग चिकित्सांक (भाग-२)	४.००
वृक्क (गुर्दा) रोग चिकित्सांक	४ ००	रति रहस्य अक (भाग-३)	८.००
सक्रामक रोगांक	४ ००	मानसिक रोग चिकित्सांक	८ ००
बालशोष एव फक्क रोगांक	४ ००	शहद उपचार अंक	८ ००
इन्जेक्शन विज्ञानांक (प्रथम भाग)	४ ००	आत्मरति (हस्तमैथुन) मीमासा अक	१० ००
यकृत् रोग चिकित्साक (प्रथम भाग)	४ ००	केरलीय पचकर्म चिकित्सा अक	१०.००
यकृत् रोग चिकित्साक (द्वितीय भाग)	४ ००	कर्ण रोग चिकित्सांक	१० ००
सोरायसिस रोग चिकित्सांक	१०.००	व्यसन निवारण उपाय अक	१० ००
मलावरोधाक	४ ००	महिला यौन समस्या अक	१० ००

विशेषांक मंगाने के नियम

१ सुधानिधि के ग्राहको को उपरोक्त मूल्य पर २५ प्रतिशत रियायत प्राप्त होगी।

२ उपरोक्त मूल्य के अतिरिक्त पोस्ट-व्यय, रेलभाडा आदि खर्च ग्राहक को देने होगे।

३ अधिक विशेषाक मगाने पर पोस्ट से खर्च अधिक लगता है। इसलिये अधिक विशेषाक मंगाने के लिये अपने पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखे।

सुधानिधि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

गर्ग के आयुर्वेदिक घनसत्व

आयुर्वेद में घनसत्वों की विशेष उपयोगिता बतायी गयी है। हमारे संस्थान द्वारा शास्त्रोक्त विधि से कुछ घनसत्वों का निर्माण किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार है।

	घनसत्व का नाम	उपयोग	५०० कैपसूल	१०० कैपसूल	५० कैपसूल	१ किलो पावडर	१०० ग्राम पावडर
१-	उदम्बर घनसत्व	मधुमेह, बहुमूत्र में उपयोगी	३४०-००	७०-००	३६-००	६८०-००	७०-००
२-	अपामार्गादि घनसत्व	श्वास, कास में उपयोगी	३६०-००	७४-००	३८-००	७००-००	७२-००
३-	अशोक घनसत्व	गर्भाशय शोथ, प्रदर में उपयोगी	३४०-००	७०-००	३६-००	६८०-००	७०-००
४-	अश्वगंधा घनसत्व	शक्तिवर्धक, वजन बढ़ाने वाला	३६०-००	७४-००	३८-००	७००-००	७२-००
५-	बावलीघास घनसत्व	रक्तरोधक, रक्तपित्त नाशक	३४०-००	७०-००	३६-००	६८०-००	७०-००
६-	नेत्रबला घनसत्व	अपस्मार, हिस्टीरिया आदि में उपयोगी	३६०-००	७४-००	३८-००	७००-००	७२-००
७-	सर्पगंधादि घनसत्व	अनिद्रा, उच्च रक्तचाप में उपयोगी	३८०-००	७८-००	४०-००	७६०-००	८०-००
८-	ब्राह्मी शंखपुष्पी घनसत्व	स्मरणशक्ति की कमी में लाभप्रद	४००-००	८२-००	४२-००	८३०-००	८५-००
९-	कुटज घनसत्व	अतिसार, आमातिसार में उपयोगी	३६०-००	७४-००	३८-००	७००-००	७२-००
१०-	अर्जुन घनसत्व	हृदय जन्य विकारों में प्रशस्त	३४०-००	७०-००	३६-००	६८०-००	७०-००
११-	रास्ना घनसत्व	आमवात, गृध्रसी, सन्धिशोथ आदि में उपयोगी	४००-००	८२-००	४२-००	८३०-००	८५-००
१२-	सुदर्शन घनसत्व	विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर नाशक	३८०-००	७८-००	४०-००	७३०-००	७५-००
१३-	रुदन्ती घनसत्व	यक्ष्मा, जीर्ण कास आदि में उपयोगी	३८०-००	७८-००	४०-००	७६०-००	८०-००

१. उपरोक्त मूल्य पर २५% कमीशन ग्राहकों को उपलब्ध कराया जाता है।
२. ५०० कैपसूल पर ५० कैपसूल फ्री दिये जाते हैं।
३. सैलटैक्स, पोस्ट व्यय ग्राहक को प्रथक देना होता है।

गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़ (अलीगढ़)

गर्ग के अनुभूत आयुर्वेदिक कैपसूल

क्र०	नाम कैपसूल	रोग निर्देश	५०० कैप०	१०० कैप०	५० कैप०
१-	यक्ष्मान्तक नं० १	यक्ष्मा (टी० बी०) नाशक	६६०-००	१३६-००	७०-००
२-	यक्ष्मान्तक नं० २	यक्ष्मा (टी० बी०) नाशक	४४०-००	९०-००	४६-००
३-	ज्वरीना	विभिन्न ज्वर नाशक	४४०-००	९०-००	४६-००
४-	क्लीवान्तक	नपुंसकता, शीघ्रपतन में उपयोगी	५००-००	१०५-००	५५-००
५-	वातान्तक	विभिन्न वात-विकारों में उपयोगी	४००-००	८२-००	४२-००
६-	रक्तचापान्तक	बढ़ हुए रक्तचाप में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
७-	हिस्टीरियान्तक	हिस्टीरिया में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
८-	मधुमेहान्तक	मधुमेह में उपयोगी कैपसूल	४४०-००	९०-००	४६-००
९-	विषम ज्वरान्तक	मलेरिया में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
१०-	हृदय रोगान्तक	हृदय रोगों में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
११-	श्वासान्तक	श्वास में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
१२-	रजावरोधान्तक	मासिक रुकावट में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
१३-	प्रदरान्तक	प्रदर में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
१४-	चर्मरोगान्तक	चर्म विकारों में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
१५-	अर्शान्तक	अर्श में उपयोगी कैपसूल	३६०-००	७४-००	३८-००
१६-	वीर्य तरलान्तक	वीर्य को गाढ़ा करने एवं स्वप्नदोष नाशक	४४०-००	९०-००	४६-००
१७-	विरेचन	मलावरोध (कब्ज) नाशक कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
१८-	शिवाशक्ति	शक्तिवर्धक, वजन बढ़ाने वाला	४४०-००	९०-००	४६-००
१९-	शिवाशक्ति फोर्ट	शीघ्रपतन नाशक, स्वर्ण मकरध्वज युक्त	११००-००	२२५-००	११५-००
२०-	शूलान्तक	विभिन्न शूलनाशक कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
२१-	उष्णवातघ्न	सुजाक, मूत्र की रुकावट में उपयोगी	४००-००	८२-००	४२-००
२२-	पाण्डुहारी	पाण्डु, कामला नाशक कैपसूल	४४०-००	९०-००	४६-००
२३-	शिशुशोषान्तक	बच्चों के सूखा रोग में उपयोगी	३६०-००	७४-००	३८-००
२४-	कृमिघ्न	कृमिनाशक कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
२५-	डायरौल	अतिसार में उपयोगी कैपसूल	४४०-००	९०-००	४६-००
२६-	लिवट्रीट	यकृत्-विकारों में उपयोगी कैपसूल	४४०-००	९०-००	४६-००
२७-	फैटकिल	मोटापा कम करने वाले कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
२८-	पथरीन	पथरी को निकालने वाला कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
२९-	एसिडिन	अम्लपित्त में उपयोगी कैपसूल	३६०-००	७४-००	३८-००
३०-	स्वप्ना	स्वप्नदोष में उपयोगी कैपसूल	४००-००	८२-००	४२-००
३१-	पोलियान	पोलियो में उपयोगी कैपसूल	४४०-००	९०-००	४६-००
३२-	एपिलैप	अपस्मार (मिर्गी) में उपयोगी कैपसूल	३६०-००	७४-००	३८-००
३३-	शिलाजीत	शक्तिवर्धक कैपसूल	५००-००	१०५-००	५५-००
३४-	गैसान्तक	गैसनाशक कैपसूल	४४०-००	९०-००	४६-००
३५-	पुंसवन	लड़का उत्पन्न करने हेतु उपयोगी कैपसूल	-	६० कैप०	८५-००
३६-	श्वित्रहर	श्वेतकुष्ठ नाशक कैपसूल	-	६० कैप०	४८-००

उपरोक्त रेट थोक के हैं। सुधानिधि के ग्राहकों को इन पर २५% कमीशन दिया जाता है। किसी भी कैपसूल के ५०० कैपसूल लेने पर ५० कैपसूल फ्री दिये जाते हैं। पोस्टव्यय सैलटैक्स ग्राहक को प्रथक देने होते हैं।

गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़ (अलीगढ़)

	पेटेन्ट उत्पादन	पैकिंग	मूल्य		पेटेन्ट उत्पादन	पैकिंग	मूल्य
25.	**रुदन्ती- १० टैबलेट** यक्ष्मा तथा जीर्ण कास में उपयोगी	५०० टैब० १०० टैब० ५० टैब०	२४०-०० ५०-०० २६-००	37.	**सुकर्ण ईयर ड्राप्स** कान के रोगों में उपयोगी ड्राप्स	१० मि०	८-००
26.	**चर्मनौल मलहम** खाज, खुजली एवं चर्म विकारों में उपयोगी महलम।	२८ ग्राम	१२-००	38.	**सुनेत्र आई ड्राप** आँखों के रोगों में उपयोगी ड्राप्स	१० मि०	६-००
27.	**वातनौल मलहम** वातविकार- नाशक, गठिया में उपयोगी मलहम।	२८ ग्राम	१२-००	39.	**अशोका कार्डियल फोर्ट** स्त्रियों के प्रदर एवं अन्य विकारों में प्रशस्त	४०० मि० २०० मि०	४८-०० २५-००
28.	**छाजन हर मरहम** छाजन नाशक अनुभूत मरहम।	२[illegible] ग्राम	[illegible]२-००	40.	**गैसनौल** पेट की गैस, उदरशूल में उपयोगी	४०० मि० १०० मि०	६५-०० १७-००
29.	**दग्धनौल मरहम** जले में उपयोगी मरहम	२८ ग्राम	१०-००	41.	**एनर्जीटोन** शक्ति वर्धक अनुपम पेय	४०० मि० २०० मि०	५०-०० २६-००
30.	**नवयौवन मरहम** नपुंसकता में वाहिरी उपयोगी हेतु मरहम	१० ग्राम	१२-००	42.	**जुकाम हारी** जुकाम, प्रतिश्याय में उपयोगी शर्बत	४०० मि० १०० मि०	६[illegible]-०० १७-००
31.	**वातनौल तैल** वात विकार में उपयोगी तैल	४०० मि० ५० मि०	१२०-०० १६-००	43.	**कासरिपु** सभी प्रकार की खांसी में उपयोगी शर्बत	४०० मि० १०० मि०	६०-०० १६-००
32.	**भृंगराज केश तैल** बालों के विकारों में उपयोगी तैल	४०० मि० १०० मि०	११५-०० ३०-००	44.	**बाल विट जन्म घुट्टी** अर्क पद्धति से बनी बच्चों की उपयोगी घुट्टी	४०० मि० १०० मि०	६५-०० १७-००
33.	**श्वित्रहर घृत** श्वेत कुष्ठ में बाह्य उपयोग के लिए	२५ मि०	१०-००	45.	**शर्बत ब्राह्मी शंख पुष्पी** स्मरणशक्तिवर्धक मस्तिष्क को ठण्डक पहुँचाने वाला शर्वत	४०० मि० २०० मि०	४८-०० २५-००
34.	**कामशक्ति केशरी रसायन** वीर्यवर्धक, रति शक्ति वर्धक	१ किलो २५० ग्राम	१६०-००	46.	**बाल विट ड्राप्स** बच्चों के लिये उपयोगी	४०० मि० ३० मि०	६०-०० १०-००
35.	**त्रिफलावलेह** कब्जनाशक, नेत्र ज्योति वर्धक	१ किलो २५० ग्राम	८०-०० २२-००	47.	**लिवट्रीट सिरप** यकृत विकारों में उपयोगी शर्वत	४०० मि० १०० मि०	६५-०० १७-००
36.	**नेत्र ज्योति वर्धक सुरमा** मोतिया बिन्द में लाभप्रद सुरमा	५ ग्राम २ ग्राम	१०-०० ६-००	48.	**स्वर्ण रक्ता सिरप** रक्त शोधक शर्वत	४०० मि० २०० मि०	४८-०० २५-००

- उपरोक्त मूल्य पर २५% कमीशन ग्राहकों को मिलेगा।
- किसी भी पैकिंग के २० पैक मंगाने पर १ पैक फ्री मिलेगा।
- सैलटैक्स, पोस्ट व्यय प्रथक देने होंगे।
- शर्वत तथा अन्य तरल औषधियां रेल या ट्रान्सपोर्ट से मंगाने

गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़ (अलीगढ़)

गर्ग की अनुभूत पेटेन्ट औषधियाँ

	पेटेन्ट उत्पादन	पैकिंग	मूल्य		पेटेन्ट उत्पादन	पैकिंग	मूल्य
1.	**उदरामृत चूर्ण** गैस एवं विभिन्न उदर विकार नाशक चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	१८५-०० १६-०० १०-००	13.	**पायोहर्व मंजन** पायोरिया तथा अन्य दन्त विकार नाशक मंजन	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	१८०-०० १६-०० १०-००
2.	**सुगम चूर्ण** मलावरोध नाशक परीक्षित चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	१८५-०० १६-०० १०-००	14.	**कामशक्ति केसरी वटी** कामशक्ति वर्धक गोलियाँ	६० गो०	१५०-००
3.	**शिवाशक्ति चूर्ण** धातुस्राव, स्वप्न विकार नाशक एवं वीर्य वर्धक चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	१६०-०० २०-०० ११-००	15.	**नपुसंक्तारि वटी** नपुंसकता नाशक गोलियाँ	६० गो०	११५-००
4.	**भृंगराज चूर्ण** बालों के रोगों में उपयोगी चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	१५०-०० १६-०० ६-००	16.	**वसन्त कुसमाकर रस (विशेष)** नपुंसकता एवं मधुमेह के लिए विशेष उपयोगी	६० गो०	२६०-००
5.	**सूगरौल चूर्ण** मधुमेह तथा उसके उपद्रवों में उपयोगी चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	२३०-०० २४-०० १३-००	17.	**शक्ति चन्द्रोदय वटी** वीर्य विकार नाशक अनुभूत गोलियाँ	१०० गो० ५०० गो० ६० गो० ३० गो०	२५०-०० १३०-०० २२-०० १२-००
6.	**आम पाचक चूर्ण** उदर गत आंव को समूल नष्ट करने वाला चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	१६०-०० २०-०० ११-००	18.	**स्वर्ण चन्द्रोदय वटी** शीघ्रपतन में विशेष उपयोगी	५०० गो० ६० गो०	३००-०० ४०-००
7.	**स्वप्ना चूर्ण** स्वप्न विकार नाशक चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम ५० ग्राम	१४०-०० १५-०० ८-००	19.	**सुगरौल टैब** मधुमेह नाशक उपयोगी गोलियाँ	६० गो०	४०-००
8.	**श्वेत प्रदरान्तक चूर्ण** प्रदर नाशक अनुपम चूर्ण	१ किलो १०० ग्राम	१४०-०० १५-००	20.	**वातान्तक वटी** वातविकार नाशक अनुभूत गोलियाँ	६० गो०	३०-००
9.	**रुप निखार उबटन** मुँहासे नाशक, सौन्दर्य वर्धक उबटन	१ किलो १०० ग्राम	२२०-०० २४-००	21.	**श्वित्रहर वटी** श्वेतकुष्ठ नाशक अनुभूत गोलियाँ	१० ग्राम	२०-००
10.	**योनि प्रक्षालन चूर्ण** प्रदर में योनि प्रक्षालन हेतु	१ किलो १०० ग्राम	१४०-०० १५-००	22.	**यौवन पिण्डिकान्तफ वटी** मुँहासे नाशक अनुभूत गोलियाँ	६० गो०	२६-००
11.	**छाजन हर चूर्ण** छाजन में वाह्य प्रयोग हेतु	२०० ग्राम	१२-००	23.	**मलेरिया दमन वटी** मलेरिया नाशक अनुभूत गोलियाँ	१ किलो १०० ग्राम	४४०-०० ४५-००
12.	**क्लीवान्तक पोटली** नपुंसकता में वाह्य प्रयोगार्थ	१०० ग्राम	२०-००	24.	**कफ टैबलेट** कास नाशक गोलियां	५० ग्राम २५ ग्राम	३०-०० १६-००

आयुर्वेदिक शास्त्रोक्त औषधियां

कूपीपक्व रसायन	५० ग्राम	१० ग्राम	५ ग्राम	१ ग्राम	१/२ ग्राम
सिद्ध मकरध्वज	–	२६०.००	१३२.००	२७.००	–
मल्ल सिंदूर	–	७८.००	४१.००	९.००	–
रस सिंदूर	३१०.००	६३.००	३४.००	८.००	–
सिद्ध चन्द्रोदय	–	२६०.००	१३२.००	२७.००	–
स्वर्ण वंग	३१०.००	६३.००	३४.००	८.००	–
रस माणिक्य	१२०.००	२५.००	१६.००	४.००	–
समीर पन्नग	–	८९.००	४७.००	११.००	–

पर्पटी	५० ग्राम	१० ग्राम	५ ग्राम	१ ग्राम	१/२ ग्राम
पंचामृत पर्पटी	८२.००	१९.००	१०.००	–	–
रस पर्पटी	८२.००	१९.००	१०.००	–	–
तांम्र पर्पटी	८२.००	१९.००	१०.००	–	–
लौह पर्पटी	८२.००	१९.००	१०.००	–	–
श्वेत पर्पटी	३८.००	९.००	६.००	–	–

पिष्टी	५० ग्राम	१० ग्राम	५ ग्राम	१ ग्राम	१/२ ग्राम
अकीक पिष्टी	६३.००	१४.००	८.००	–	–
प्रवाल पिष्टी	१४०.००	३०.००	१६.००	–	–
जहर मोहरा पिष्टी	६३.००	१४.००	८.००	–	–
मुक्ता पिष्टी	–	७४६.००	३८०.००	७९.००	४०.००
मुक्ता शुक्ति	५०.००	१२.००	७.००	–	–

बहुमूल्य रस रसायन	५० ग्राम	१० ग्राम	५ ग्राम	१ ग्राम	१/२ ग्राम
वृ० वात चिन्तामणि रस	१२००.००	६२०.००	१२७.००	६७.००	
रस राज रस	११२५.००	५६७.००	११६.००	६०.००	
स्वर्ण वसन्त मालती	५८२.००	२९७.००	६१.००	३३.००	
वसन्त कुसुमाकर रस	५७५.००	२९४.००	६०.००	३२.००	
जय मंगल रस	११२६.००	५७०.००	१२७.००	६६.००	
वृ० कामचूड़ामणि रस	५७२.००	२९२.००	६०.००	३२.००	
महालक्ष्मी विलास रस	३०४.००	१५७.००	३३.००	१८.००	
कुमार कल्याण रस	१३९२.००	७०६.००	१४२.००	७२.००	
श्वास कास चिन्तामणि रस	४३०.००	२२०.००	४६.००	२४.००	

गर्ग के अनुभूत आयुर्वेदिक सैट

अपनी चिकित्सा में अनेक बार परीक्षा करने पर जो औषधियाँ विशेष रूप में सफल हुई हैं, उनके हमने सैट तैयार कराये हैं। इन सैटों को चिकित्सक अपने रोगियों पर बिना सन्देह के प्रयोग कर लाभ उठा सकते हैं। सैटों का विवरण इस प्रकार है। १ सैट १ माह के लिये तैयार किया जाता है।

	सैट का नाम	सैट में सम्मिलित औषधियों का विवरण	उपयोग	मूल्य
1.	कामशक्ति, वर्धक सैट	१) कामशक्ति केशरी (६०) २) नपुंसकत्वारि वटी (६०) ३) बसन्त कुसुमाकर (विशेष) (६०) नवयौवन मलहम- निःशुल्क	कामशक्ति वर्धक, स्तम्भन न्यूनता, सम्भोगजन्य दुर्बलता आदि में उपयोगी अनुपम सैट	५२०-००
2.	मधुमेहान्तक सैट	१) सुगरौल टैब (६०) २) सुगरौल चूर्ण (१०० ग्राम) ३) बसन्तकुसुमाकर (विशेष) ६० गी०	मधुमेह तथा उसके उपद्रवों में उपयोगी सैट है।	३३५-००
3.	श्वेतकुष्ठान्तक सैट	१) श्वित्रहर कैपसूल (६०) २) श्वित्रहर वटी (२० ग्राम) ३) श्वित्रहर घृत (५० मि० ली०)	श्वेतकुष्ठ नाशक वर्षो के अनुसंधान पर प्रस्तुत सफल सैट है। १० हजार से अधिक रोगी इसके प्रयोग से लाभ उठा चुके हैं।	१००-००
4.	वातरोगान्तक सैट	१) वातान्तक कैप० (६०) २) वातान्तक वटी (६०) ३) वातनौल तैल (२०० मि० ली०)	आमवात, सन्धिवात, गृध्रसी, पक्षाघात आदि वात विकार नाशक परीक्षित सैट।	१४०-००
5.	प्रदर रोगांतक सैट	१) प्रदरान्तक कैप० (६०) २) श्वेत प्रदरान्तक चूर्ण (१०० ग्राम) ३) योनि प्रक्षालन चूर्ण (१०० ग्राम)	श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर एवं उसके उपद्रवों में उपयोगी सैट	७७-००
6.	केश रोगांतक सैट	१) भृंगराज चूर्ण (२०० ग्राम) २) भृंगराज केश तैल (२०० मि० ली०)	केश (बालों) के रोग यथा बालों का झड़ना, बालों का सफेद होना, शिर की रूसी (फियास) आदि में उपयोगी सैट	६२-००
7.	यौवन पिडिकान्तक सैट	१) चर्मरोगान्तक कैप० (६०) २) यौवनपिडिकान्तक वटी (६०) ३) रूपनिखार उबटन (१०० ग्राम)	मुँहासों को दूर कर चेहरे की कालिमा दूर करने वाला अनुपम सैट	६८-००

१) उपरोक्त सभी सैट १ माह के लिये हैं। प्रयोग विधि सैट के साथ भेजी जाती है।

२) उपरोक्त मूल्य पर ग्राहकों को २५% कमीशन दिया जाता है। १० सैट एक साथ लेने पर १ सैट फ्री दिया जाता है। सेलटैक्स, पोस्ट-व्यय पृथक् देना होता है।

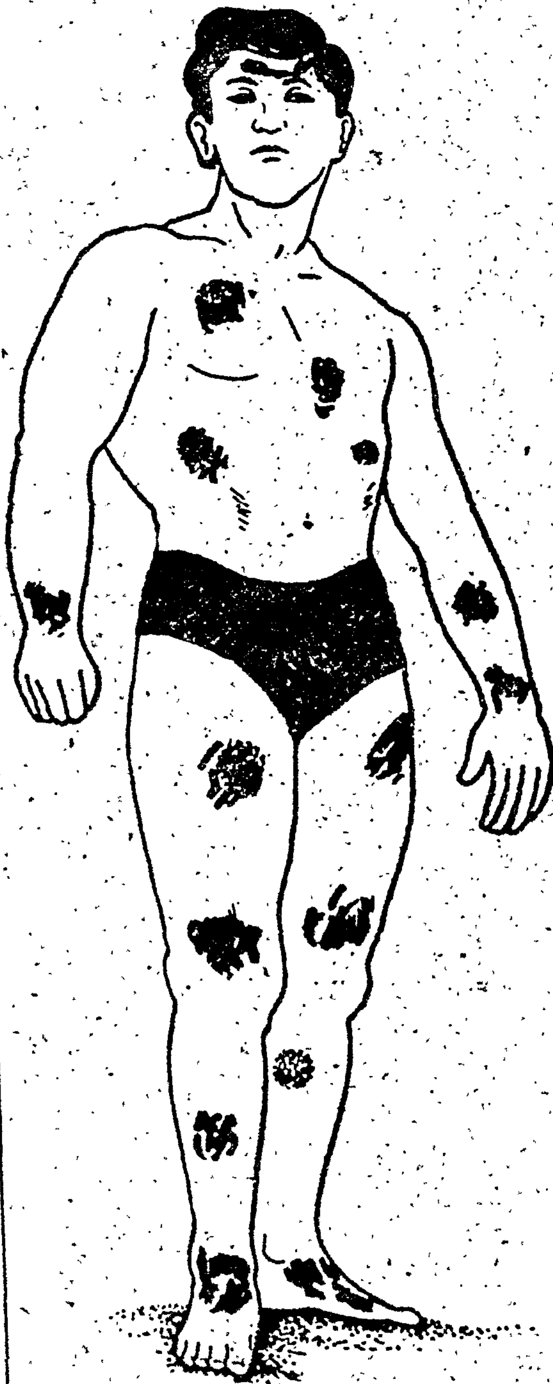
गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़ (अलीगढ़)

विषमज्वरान्तक लौह	-	१७४.००	८८.००	१८.००	-
महामृत्युञ्जय रस	१३१५.००	१३२.००	६७.००	१४.००	-
यकृत् हर लौह	१३१५.००	१३२.००	६७.००	१४.००	-
लहशुनादि वटी	८७२.००	८८.००	४५.००	१०.००	
लघुमालती	-	१६५.००	८८.००	१८.००	-
लक्ष्मी विलास रस	१३३०.००	१३८.००	७०.००	१५.००	-
लाई रस	-	९५.००	४८.००	१०.००	-
शंख वटी	-	८२.००	४२.००	९.००	-
श्वास कुठार रस	-	११४.००	५८.००	१२.००	-
संजीवनी वटी	५६८.००	६०.००	३१.००	७.००	-
सर्पगंधा वटी	-	१९६.००	९८.००	२०.००	-
सूत शेखर रस	१५००.००	१६५.००	८४.००	१७.००	
त्रिभुवन कीर्ति रस	९१८.००	१००.००	५२.००	११.००	-
गुग्गुल	**१ किलो**	**१०० ग्राम**	**५० ग्राम**	**१५ ग्राम**	
कैशोर गुग्गुल	७००.००	७२.००	३७.००	१२.००	
काँचनार गुग्गुल	७००.००	७२.००	३७.००	१२.००	
गोक्षुरादि गुग्गुल	७००.००	७२.००	३७.००	१२.००	
वृ० योगराज गुग्गुल	१८६३.००	१८८.००	९५.००	२०.००	
योगराज गुग्गुल	७००.००	७२.००	३७.००	१२.००	
सिंहनादि गुग्गुल	७००.००	७२.००	३७.००	१२.००	
चूर्ण	**१ किलो**	**१०० ग्राम**	**५० ग्राम**	**१५ ग्राम**	
अविपत्तिकर चूर्ण	२१५.००	२३.००	१३.००	-	
तालीसादि चूर्ण	२१५.००	२३.००	१३.००	-	
पंचसकार चूर्ण	१६५.००	१८.००	१०.००	-	
प्रदरान्तक चूर्ण	१६५.००	१८.००	१०.००	-	
पुष्यानुग चूर्ण	१६५.००	१८.००	१०.००	-	
लवणभास्कर चूर्ण	१६५.००	१८.००	१०.००	-	
सितोपलादि चूर्ण	२६५.००	२८.००	१६.००	-	
सुदर्शन चूर्ण	१६५.००	१८.००	१०.००	-	
हिंग्वष्टक चूर्ण	२१५.००	२३.००	१३.००	-	
त्रिफला चूर्ण	८८.००	१०.००	७.००	-	
शोधित द्रव्य	**५०० ग्राम**	**२५० ग्राम**	**१०० ग्राम**		
कज्जली (बराबर गन्धक पारद)	४३०.००	२२०.००	९०.००		
शुद्ध गन्धक आँवलासार	१४५.००	७५.००	३२.००		
शु० पारद हिंगुलोत्थ	७४५.००	३७५.००	१५२.००		
शु० वच्छनाग	१७७.००	९०.००	३८.००		
शु० गिलोय सत्व	१५५.००	७८.००	३४.००		
शु० विषबीज (कुचला)	१५५.००	७८.००	३४.००		
शु० भल्लातक	१५५.००	७८.००	३४.००		
शु० हिंगुल हंसपदी	६२०.००	३१२.००	१२६.००		
शु० गूगल	१७७.००	९०.००	३८.००		

काम दुधा रस नं० १	११०.००	५८.००	१२.००	७.००
वृ० पूर्ण चन्द्र रस	५५०.००	२७७.००	६०.००	३२.००
सूतशेखर रस नं० १	४६२.००	२२२.००	५२.००	२७.००
प्रवाल पंचामृत रस	२२०.००	११२.००	२४.००	१३.००

भस्म	५० ग्राम	१० ग्राम	५ ग्राम	१ ग्राम	१/२ ग्राम
अभ्रक भस्म नं० १	–	३१६.००	१६०.००	३३.००	१८.००
कपर्द भस्म	३८.००	९.००	५.००	–	–
गोदन्ती हरताल भस्म	३८.००	९.००	५.००	–	–
नाग भस्म	१००.००	२२.००	१२.००	–	–
प्रवाल भस्म	१२६.००	२६.००	१४.००	–	–
वंग भस्म नं० १	१२६.००	२६.००	१४.००	–	–
माण्डूर भस्म	३८.००	९.००	५.००	–	–
कान्त लौह भस्म	८८.००	१९.००	१०.००	–	–
लौह भस्म नं० १	२७८.००	५७.००	३०.००	–	–
त्रिवंग भस्म	८८.००	१९.००	१०.००	–	–
स्वर्णमाक्षिक भस्म	८८.००	१९.००	१०.००	–	–
शंख भस्म	२५.००	७.००	४.००	–	–
संगजराहत भस्म	२५.००	७.००	४.००	–	–

रस रसायन गुटिका	१ किलो	१०० ग्राम	५० ग्राम	१० ग्राम	१/२ ग्राम
अग्नितुण्डी वटी	९२५.००	९५.००	४८.००	१०.००	–
अग्निकुमार रस	८००.००	८२.००	४२.००	९.००	–
आरोग्य वर्धिनी वटी	९२५.००	९५.००	४८.००	१०.००	–
आनन्द भैरव रस	९२५.००	९५.००	४८.००	१०.००	–
एकांगवीर रस	२२००.००	२३०.००	११६.००	२४.००	–
कफकेतु रस	९२५.००	९५.००	४८.००	१०.००	–
कामदुधा रस	१२००.००	१२३.००	६३.००	१३.००	–
कृमि कुठार रस	–	११०.००	५६.००	१२.००	–
गंधक रसायन	–	११४.००	५८.००	१२.००	–
ग्रहणी गजेन्द रस	–	१२३.००	६२.००	१३.००	–
घोड़ाचोली रस	–	९८.००	५०.००	११.००	–
चन्द्रामृत रस	–	११४.००	५८.००	१२.००	–
चन्द्रप्रभा वटी	८६०.००	८८.००	४५.००	१०.००	–
चित्रकादि वटी	५५६.००	५७.००	२९.००	६.००	–
गर्भपाल रस	–	११४.००	५८.००	१२.००	–
नवायस लौह	–	१३०.००	६६.००	१४.००	–
प्रताप लंकेश्वर रस	–	१३०.००	६६.००	१४.००	–
प्रदरान्तक रस	–	१९०.००	९६.००	२०.००	–
पुनर्नवादि माण्डूर	१०६०.००	१०८.००	५५.००	१२.००	–
वृ० वात गजांकुश रस	–	१३०.००	६६.००	१४.००	–



रक्त विकारों की अप्रतिम आयुर्वेदिक औषधि

पंचतिक्त घृत गूगल

अधिकांश वैद्यराज विभिन्न रक्त विकारों में गन्धक रसायन, रसमाणिक्य, तालकेश्वर रस, आरोग्यवर्द्धिनी वटी आदि का प्रयोग कराते हैं। हमने वर्षों के अनुसंधान के बाद पाया है कि इन सभी शास्त्रीय औषधियों से पंचतिक्त घृत गूगल अधिक उपयोगी औषधि है। सोरांइसिस जैसे हठी रोग को भी लम्बे समय तक प्रयोग करने पर यह समूल नष्ट करती है। सोराइसिस अंक में इसके विलक्षण गुणों से प्रभावित होकर सैकड़ों चिकित्सकों ने हमसे इन गोलियों को मंगाकर अपने रोगियों पर प्रयोग कराकर परीक्षा की है तथा पाठकों के पत्रों से हमें यह जानकर खुशी हुयी है कि यह औषधि अधिकांश रोगियों पर प्रभावी सिद्ध हो रही है यदि आपने इनका प्रयोग नहीं किया है तो एक बार मंगाकर अवश्य परीक्षा कर लाभ उठावें। पिछले माह बारिस के कारण इसकी सप्लाई में बिलम्ब हुआ अब हमने काफी मात्रा में तैयार करा ली है ग्राहक मंगा सकते हैं।

-गोपालशरण गर्ग

मेरा अनुभव

पंचतिक्त घृत गूगल का मैंने अब तक कई सहस्त्र रोगियों पर प्रयोग किया है और मैंने पाया है कि यह योग विभिन्न चर्म-विकारों में बहुत लाभदायक है। सोरायसिस के रोगियों पर इसका विशेष प्रभाव देखने को मिला तथा समुचित समय तक प्रयोग कराने पर सोरायसिस जैसा हठी रोग समूल नष्ट हो जाता है इसके साथ कुछ अन्य औषधियों का भी प्रयोग हम कराते हैं जिनका विवरण हमने प्रारम्भ में सोरायसिस की सफल चिकित्सा के साथ दिया है। हमारा पाठकों से अनुरोध है कि आयुर्वेद के इस विलक्षण योग को अपनी चिकित्सा में अपनावें। हम चर्म-विकारों के अतिरिक्त वातरक्त, गलगण्ड, स्तन विद्रधि, भगन्दर, नाड़ी व्रण तथा कैंसर के रोगियों पर भी इसका प्रयोग अन्य औषधियों के साथ करते हैं तथा अधिकांश रोगियों को लाभ देखने को मिलता है।

मूल्य-१ किलो ६००.००, १०० ग्राम ६५.००।

पंचतिक्त घृत गूगल के साथ प्रयोज्य २ अन्य औषधिया

निम्बादि चूर्ण-नीम की छाल, गिलोय, बावची, चक्रमर्द, अजवायन, कुटकी, खैर, दारू हल्दी आदि वनौषधियों से निर्मित रक्त शोधक चूर्ण है। जो सोरायसिस में विशेष लाभदायक है। पंचतिक्त घृत गूगल के साथ इसका भी प्रयोग करने से शीघ्र-लाभ होता है। प्रयोगविधि-१-३ ग्राम तक भोजन के उपरान्त जल के साथ। मूल्य-१ किलो १८०.००, १०० ग्राम १७.००।

चर्म रोगारि तैल-मरिचादि तैल, करंज तैल, निम्ब तैल तथा चाल मौगरा तैल के मिश्रण से निर्मित यह तैल सोरायसिस में विशेष लाभदायक है। प्रयोगविधि-पीड़ित अंगों पर दिन में २-३ बार मालिश करें। मूल्य-४०० मि० लि० १००.००, १०० मि० लि० २९.००। उपरोक्त मूल्य पर २५ प्रतिशत कमीशन, सैल टेक्स पो० प्रथक।

पुंसवन कैपसूल के सम्बन्ध में विचार

पुंसवन कैपसूल हमारे संस्थान का बहुप्रचलित कैपसूल है। इसके सम्बन्ध में हमारे पास अनेकों जिज्ञासापूर्ण पत्र प्राप्त होते हैं। आधुनिक चिकित्सा जहां इसको बकवास बताकर उपहास करते हैं वहीं अन्य विद्वान लोग इसकी प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं करते। हमने इस कैपसूल का अब तक सहस्रों स्त्रियों पर प्रयोग किया है और सफलता पाई है। इस कैपसूल के प्रयोग के समय कुछ सावधानियों की आवश्यकता होती है। वह यहां हम प्रस्तुत कर रहे हैं। पुत्र प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति इनका प्रयोग इस तरह करें।

१. पुंसवन क्रिया से पहिले पुरुष को वाजीकर और शुक्रवर्धक औषधियों का सेवन करते हुये ३०-४० दिनों तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए इसके लिये हम कामशक्ति वर्धक सैट का प्रयोग रोगी को एक माह तक कराते हैं। इसके प्रयोग से शुक्राणुओं की वृद्धि होती है तथा वह सबल होते हैं।

२. पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखते हुये पुरुष को सम्भोग क्रिया करनी चाहिए। सम्भोग के बाद स्त्री को तुरन्त नहीं उठना चाहिए और इसी तरह कम से कम १ घण्टा लेटे रहना चाहिये।

३. मासिकस्राव रुकने के ७ दिनों के बाद मूत्र की जांच कराकर गर्भ का निश्चय करना चाहिए। गर्भ की जांच निश्चित होते ही स्त्री को अपने इष्ट की प्रार्थना करते हुए पुंसवन कैपसूल का प्रयोग प्रारम्भ कर देना चाहिये।

४. इन कैपसूलों का प्रयोग ३ माह तक नित्य सुबह-शाम (बिना किसी व्यवधान के) गाय के दूध के साथ कराना चाहिए। इसमें कोई समझौता नहीं करना चाहिए। प्रयास करने पर यह सब जगह उपलब्ध हो जाता है। गाय बछड़े वाली होनी चाहिए।

उपरोक्त विधि से पुंसवन कैपसूल का प्रयोग करने पर निश्चित सफलता की आशा करनी चाहिये।

-वैद्य गोपालशरण गर्ग





सुधानिधि

के ग्राहक बनने के नियम

१. सुधानिध के ग्राहक जनवरी से दिसम्बर तक के लिए बनाये जाते है।, लेकिन ग्राहक किसी भी माह में बन सकते हैं। जिस महीने से ग्राहक बनता है, उससे पहले के महीनों के सभी अंक भेजकर जनवरी से ग्राहक बना लिया जाता है और उसका भी वर्ष सभी ग्राहकों के साथ दिसम्बर में ही समाप्त हो जाता है। ग्राहक पूरे वर्ष के लिए ही बनाये जाते हैं।

२. सुधानिधि एक वर्ष में ४०० पृष्ठों का एक विशाल विशेषांक जो दो माह (फरवरी+मार्च) का संयुक्त अंक होता है तथा १० माह के अन्य अंक ग्राहकों को भेंट करता है, जिनमें चार लघु विशेषांक भी शामिल हैं।

३. ग्राहक मूल्य-सुधानिधि दो तरह के कागजों पर छपता है। ग्लेज सफेद कागज पर छपने वाले सुधानिधि का ग्राहक मूल्य ७०/- वार्षिक पोस्ट-व्यय सहित है तथा साधारण न्यूज प्रिन्ट पर छपने वाले सुधानिधि का ग्राहक मूल्य ५०/- वार्षिक पोस्ट-व्यय सहित है। ग्लेज कागज पर छपने वाले सुधानिधि को प्राप्त करने के लिए ग्राहकों को ६०/- मनिआर्डर से अग्रिम भेजने होते हैं, उन्हें ८/- की वी० पी० से विशेषांक भेजा जाता है, जिससे २/- की ग्राहक मूल्य में छूट मिल जाती है। अन्य मासिक अंक साधारण डाक से भेजे जाते है।

साधारण रफ कागज पर छपने वाले सुधानिधि को प्राप्त करने के लिए ४०/- मनिआर्डर से अग्रिम भेजने होते है, उन्हें ८/- की वी० पी० से विशेषांक भेजा जाता है, जिससे उन्हें भी २/- की छूट मिल जाती है। साधारण कागज पर छपा सुधानिधि पूरे वार्षिक मूल्य की वी० पी० से भी भेजा जाता है, लेकिन वी० पी० ५०/- की ही भेजी जाती है। उन्हें २/- की छूट नहीं मिलती।

-व्यवस्थापक

सुधानिधि के ग्राहकों को सूचना

सुधानिधि के अनेक पाठक अपने रोग के विषय में हमसे स्वयं मिलकर परामर्श तथा औषधि चाहते है। विजयगढ़ जहां से सुधानिधि प्रकाशित होता है ऐसे स्थान पर है जहां आने-जाने का साधन सुविधा जनक नहीं है। अत: हम उन्हें विजयगढ़ बुलाना उचित नहीं समझते। हम अपने ४ चिकित्सालयों के पते तथा टेलीफोन नम्बर दे रहे हैं। जहां पर नियत दिन के अनुसार रोगी मुझसे सम्पर्क कर सकते हैं। इन चिकित्सालयों का पूरा विवरण इस प्रकार है-

अलीगढ़-किसी भी बृहस्पतिवार को रोगी मुझसे मिल सकते हैं। बरेली, मेरठ आदि की ओर के रोगियों के लिये यहां सुविधा रहेगी। पता-बृजेश टाइम्स प्रेस कम्पाउण्ड, निशात टाकीज के बराबर अलीगढ़। फोन नं० ४०२९८१

फिरोजाबाद-किसी भी रविवार को प्रात: ९ बजे से सायंकाल ४ बजे तक मिल सकते है। फिरोजाबाद कलकत्ता, देहली मेन लाइन पर ट्रेन से जुड़ा हुआ है। पता-सेठ मुरारी लाल झिन्दल की कोठी, बडे हनुमान जी के गेट के बराबर, हनुमान रोड़, फिरोजाबाद फोन नं०-८२०५४९।

मथुरा-किसी भी सोमवार को प्रात: ९ बजे से सायंकाल ४ बजे तक मिल सकते है। दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान के रोगी यहां सम्पर्क कर सकते हैं। स्थान डॉ० के० के० अग्रवाल के बराबर कोतवाली के पास भरतपुर गेट, मथुरा फोन ४०३२८२।

इन्दौर-किसी भी माह के प्रथम मंगलवार को मिलें। पता-श्री मिट्ठूलाल जी चौधरी, मल्हार गंज, गली नं० २। टेलीफोन नं०-४११२७७।

इस वर्ष की आगामी तिथियां-७ मई, ४ जून, २ जौलाई, ६ अगस्त, ३ सितम्बर, १ अक्टूबर, ५ नबम्बर, ३ दिसम्बर।

हमें गर्व है अपने उत्पादनों पर

गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ़ की स्थापना धन्वन्तरि कार्यालय के संचालक एवं धन्वन्तरि एवं सुधानिधि मासिक पत्रिकाओं के भूतपूर्व सम्पादक वैद्यराज देवीशरण गर्ग द्वारा वर्ष १९७० में की गयी थी। उन्होंने इस फार्मेसी के माध्यम से अपने चिकित्सा कार्य में खरे उतरे औषधि योगों को पेटेण्ट औषधियों और कैपसूलों के रूप में आयुर्वेद जगत के समक्ष प्रस्तुत किया था। यही कारण रहा है कि इस फार्मेसी ने अल्प समय में ही आयुर्वेद जगत में पर्याप्त सम्मान प्राप्त कर लिया है। हमें गर्व है कि इस फार्मेसी ने सर्वप्रथम आयुर्वेद कैपसूलों का निर्माण कर आयुर्वेद जगत में नई क्रान्ति का सूत्रपात किया। वर्तमान में अनेक आयुर्वेदिक औषधि निर्माता आयुर्वेदिक कैपसूलों के निर्माण की दौड में आगे आ रहे हैं लेकिन हमारी फार्मेसी द्वारा बनाये गये आयुर्वेदिक कैपसूलों की गुणवत्ता के समक्ष वह कहीं भी नहीं टिक पाते।

हमने अपने अनुभव में खरे उतरे अनेक योगों को गर्ग वनौषधि भण्डार द्वारा पेटेण्ट उत्पादनों के रूप में आयुर्वेद जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि इन पेटेण्ट उत्पादनों की विशेष प्रशंसा हुयी है। हमने चिकित्सा में कार्य आने वाले प्रचलित शास्त्रीय योगों का भी निर्माण कर दिया है। आसवारिष्टों का निर्माण भी प्रारम्भ कर दिया है। प्रारम्भ में कुछ पेटेण्ट एवं शास्त्रोक्त आसवों का निर्माण किया गया है। भविष्य में अन्य आसवों के निर्माण की भी योजना है। उत्तम द्रव्यों द्वारा प्राचीन शास्त्रोक्त पद्धति से औषधियों का निर्माण करना हमारी फार्मेसी की विशेषता है। यही कारण है कि जो चिकित्सक स्वयं औषधि निर्माण नहीं कर पाते वह हमारी औषधियां मंगाकर अपनी चिकित्सा में यश अर्जित करते हैं। हम अपने उत्पादनों का अन्धा-धुन्ध विज्ञापन कर ग्राहकों को मोहित नहीं करते और विज्ञापन पर होने वाले खर्च को औषधियों की गुणवत्ता बढ़ाने पर खर्च करते हैं। हमारा निवेदन है कि यदि आपने अभी तक हमारी फार्मेसी द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक कैपसूल, पेटेण्ट आयुर्वेदिक उत्पादनों तथा शास्त्रीय योगों की परीक्षा नहीं की है तो एक बार सेवा का अवसर अवश्य प्रदान करें। आगामी पृष्ठों पर उनका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। विशेष विवरण के लिए गर्ग विवरण पत्रिका पत्र डालकर निःशुल्क मंगा लें।

भवदीय

वैद्य गोपाल शरण गर्ग

संचालक

